मराठों का नवीन इतिहास-3

गोविंद सखाराम सरदेसाई

महाराष्ट्र में सूर्यास्त
[1772 – 1848 ई. तक]

New History of the Marathas, Vol. III
का हिन्दी अनुवाद

द्वितीय संशोधित संस्करण 1972

शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी
आगरा

मराठों का नवीन इतिहास

[Hindi Edition of **New History of the Marathas**
by G. S. Sardesai]

तृतीय खण्ड

महाराष्ट्र में सूर्यास्त

[१७७२—१८४८ ई०]

मूल लेखक

गोविन्द सखाराम सरदेसाई

['मराठी रियासत' के रचयिता]

शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी

पुस्तक-प्रकाशक एवं विक्रेता : आगरा-३

लेखक की विदाई

इस पुस्तक को समाप्त करने पर मेरी प्रथम अनुभूति यह है कि इस दीर्घ-कालीन तथा श्रमसाध्य कार्य की समाप्ति पर मैं वर्णनातीत शान्ति का अनुभव कर रहा हूँ। जिन मित्रों ने केवल अपनी सहायता द्वारा यह कार्य मेरे लिये शक्य बना दिया, उनके प्रति मेरी मौन भावनाएँ कृतज्ञता लिये हुए हैं। हस्त-लिखित प्रति को मुद्रणालय के लिए तैयार करने, प्रथम मुद्रित पृष्ठों को पढ़ने तथा विभिन्न अन्य उपायों से डा० वी० जी० दिघे ने मुझे बहुत सहायता दी है। इन तीन खण्डों की हस्तलिखित प्रति तथा प्रथम मुद्रण की प्रत्येक पंक्ति को मेरे आजीवन मित्र सर जदुनाथ सरकार ने स्वयं देखने का कष्ट उठाया है। इस ग्रन्थ में वर्णित प्रत्येक समस्या तथा प्रत्येक सन्देहग्रस्त विषय पर हम दोनों में वार्तालाप हुआ है, जिसमें कभी-कभी उष्णता भी आ गयी है। यद्यपि अनेक अवसरों पर अन्त में मैंने अपने ही दृष्टिकोण का अनुसरण किया है तो भी उनकी विरोधी युक्तियों का मेरे निर्णयों के अन्तिम रूप पर सदैव निग्रहा-त्मक प्रभाव पड़ा है। समस्त भारत के अन्य विद्वानों ने अपने अवसरोचित सुझाव तथा जानकारी भेजकर मुझको सहायता दी है। यदि मैं यहाँ पर उन सबके नाम नहीं दे सकता तो इसका अर्थ यह नहीं है कि उनके प्रति अपनी कृतज्ञता की चेतना ही मुझको नहीं है।

मैंने इस ग्रन्थ का नाम 'नवीन इतिहास' रखा है, परन्तु इससे मैं यह दावा नहीं करता कि इस पुस्तक को निर्णायक प्रमाणभूत ग्रन्थ माना जाय। मेरा लक्ष्य तो इसकी अपेक्षा बहुत ही लघु अर्थात यह रहा है कि मैं सहानुभूतिभरे पाठक के समक्ष उन समस्त विचारों तथा भावनाओं को व्यक्त कर दूँ जो महाराष्ट्र के एक साधारण पुत्र के हृदय में अपने जीवन में ४८ वर्ष से भी अधिक समय तक अपने देश के दीर्घकालीन भूतकाल का अध्ययन तथा चिन्तन करने पर उठे। यद्यपि मेरे द्वारा रचित ऐतिहासिक पुस्तकों की सूची कुछ लम्बी है, परन्तु मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि मैं विद्वान हूँ या प्रशिक्षित इतिहासकार हूँ। मैं तो केवल सतत उत्सुक कार्यकर्ता हूँ। यदि आप चाहें तो इसको मेरा अन्तिम ग्रन्थ कह सकते हैं, परन्तु यह केवल एक उत्कट जिज्ञासु का वार्तालाप है।

गो० स० सरदेसाई

कामशेट, विजयादशमी,
१२ अक्तूबर, १९४८ ई०

विषय-सूची

अध्याय　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　पृष्ठ

१. नारायणराव का नौ मास का शासन (१७७२-१७७३ ई०) ... ३

[१. पूना का शासक मन्दप्रभ; २. नारायणराव पेशवा नियुक्त; ३. पूना की परिस्थिति—गार्दी लोग; ४. उत्तेजना का आरम्भ—विसाजी पन्त लेले; ५. नागपुर का उत्तराधिकार—प्रभु लोग; ६. नारायणराव को राज्यच्युत करने का षड्यन्त्र; ७. हत्या कार्यान्वित; ८. रामशास्त्री द्वारा अन्वेषण तथा दण्ड।]

२. अकारण ब्रिटिश आक्रमण (१७७४-१७७६ ई०) ... २९

[१. बारभाइयों की सभा; २. हत्यारा पलायक हुआ; ३. मोस्टिन द्वारा अपकार—थाना हस्तगत; ४. कासेगाम की लड़ाई—पेठे का वध; ५. माधवराव नारायण का जन्म; ६. अडास का युद्ध—सूरत की सन्धि; ७. पूना में अपटन का दौत्य; ८. सुन्दर की सन्धि; ९. छाद्मिक का अन्त।]

३. ब्रिटिश चुनौती (१७७६-१७७९ ई०) ... ५७

[१. बारभाइयों के सम्मुख कार्य; २. भारतीय राजनीति में अन्तरराष्ट्रीय तत्त्व; ३. मोरोबा फड़निस द्वारा विश्वासघात; ४. ब्रिटिश का बड़गाँव में पराभव; ५. महादजी घटनास्थल पर; ६. रघुनाथराव की नवीन माया।]

४. ब्रिटिश-मराठा युद्ध का अन्त (१७७९-१७८३ ई०) ... ९१

[१. रघुनाथराव तथा गोडार्ड; २. ब्रिटिश विरोधी संघ; ३. नागपुर के भोंसले परिवार का प्रलोभन; ४. गुजरात तथा मद्रास में युद्ध; ५. गोडार्ड की विचित्र असफलता; ६. मालवा में महादजी की दृढ़ स्थिति; ७. सल्बाई की सन्धि : ८. सल्बाई का निर्णय; ९. रघुनाथराव का अन्त; १०. हैदरअली तथा अन्य व्यक्ति; ११. अल्पवयस्क पेशवा का संवर्धन।]

अध्याय पृष्ठ

५. मराठों का दिल्ली में पुनरागमन (१७८३-१७८८ ई०) ... १३७

[१. दो समकालीन व्यक्ति—नजफखाँ तथा महादजी; २. बेनौय द बायने; ३. दिल्ली में इंगलिश महत्त्वाकांक्षाएँ; ४. महादजी के लिए वकीले मुतलकी; ५. राजपूतों के विरुद्ध महादजी का युद्ध—लालसोट; ६. महादजी का सावधानी से स्थिति में सुधार; ७. गुलाम कादिर मुगल प्रासाद में; ८. अलीबहादुर अग्रदल में।]

६. आन्तरिक शान्ति तथा वृद्धि के वर्ष (१७८४-१७९२ ई०) ... १७७

[१. युद्ध पश्चात मराठा राज्य की समस्याएँ; २. मित्रता की त्रिदलीय सन्धि; ३. मैसूर युद्ध के रण; ४. टीपू की अधीनता; ५. सर चार्ल्स मैलेट पूना का रेजीडेण्ट।]

७. उत्तर में शिन्दे का कार्य समाप्त (१७८९-१७९१ ई०) ... २०७

[१. महादजी को ब्रिटिश की फटकार; २. अलीबहादुर तथा महादजी में फूट; ३. होल्कर परिवार का निराशामय ह्रास; ४. बाबाराव गोविन्द—महादजी का परामर्शक; ५. राजपूतों का क्षय।]

८. शिन्दे पूना में (१७९२-१७९४ ई०) २३१

[१. दक्षिण आने में शिन्दे के उद्देश्य; २. २२ जून, १७९२ का दरबार; ३. पूना मन्त्रिमण्डल का शिन्दे से विरोध; ४. लाखेरी में होल्कर का पराभव; ५. पूना में सिन्धिया की विजय; ६. सचिव के प्रति दुर्व्यवहार; ७. घासीराम कोतवाल का दुखद अन्त।]

९. अन्तिम महान मराठा सरदार (१७९४ ई०) २७१

[१. महादजी शिन्दे की मृत्यु; २. चरित्र तथा कार्य; ३. भारत में यूरोपीय साहसिक; ४. महादजी के मुख्य अनुचर।]

१०. टिमटिमाती ज्योति (१७९५ ई०) २८९

[१. अल्पवयस्क पेशवा का पालन-पोषण; २. पूना समाज पर ब्रिटिश प्रभाव; ३. मराठा-निजाम-वैमनस्य का आरम्भ; ४. मुशीरुलमुल्क अनम्य; ५. खरडा का रण; ६. नाना तथा काले निजामअली द्वारा वंचित; ७. उज्ज्वल आशा विफल।]

अध्याय पृष्ठ

११. दुर्बुद्धि कार्यक्षेत्र में (१७९६-१७९८ ई०) ... ३२१

[१. उत्तराधिकारी की खोज में षड्यन्त्र; २. महाद से नाना की आकस्मिक चाल; ३. बाजीराव पेशवा बनता है; ४. दुष्ट त्रिमूर्ति; ५. नाना फड़निस कारावास में; ६. शिन्दे महिलाओं द्वारा युद्ध; ७. छत्रपति द्वारा स्वतन्त्र होने का प्रयास।]

१२. संकट की ओर (१७९८-१८०१ ई०) ... ३५९

[१. भारत में महान शासक का आगमन; २. वेलेजली की प्रथम सफलता; ३. नाना फड़निस की मृत्यु तथा उसका चरित्र; ४. ढोंडिया बाघ का विद्रोह; ५. यशवन्तराव होल्कर का उदय; ६. बिठोजी होल्कर का वध; ७. यशवन्तराव होल्कर रक्षक की स्थिति में; ८. यशवन्तराव का दक्षिण को प्रस्थान; ९. बाजीराव पूना में परास्त।]

१३. पेशवा द्वारा स्वातन्त्र्य विक्रय (१८०२-१८०३ ई०) ... ३९१

[१. बाजीराव का पलायन—दारुण प्रहार; २. बसई की सन्धि— पूना द्वारा शक्ति संग्रह; ३. बाजीराव पूना में पुनः स्थापित; ४. अमृतराव द्वारा देशद्रोह; ५. बाजीराव कार्य तथा उत्तरदायित्व से मुक्त; ६. किंग कालिन्स शिन्दे के पास; ७. होल्कर द्वारा संघ का परित्याग।]

१४. मराठा स्वातन्त्र्य का अन्त (१८०३-१८०५ ई०) ... ४२५

[१. दक्षिण में युद्ध; २. उत्तर भारतीय अभियान—पेरों द्वारा विश्वासघात; ३. भोंसले तथा शिन्दे द्वारा शान्ति-सन्धि; ४. आर्थर वेलेजली की वृत्ति; ५. होल्कर का प्रकोप; ६. कर्नल मोनान की विपत्ति; ७. अजेय भरतपुर; ८. सबलगढ़ की सभा—ब्रिटिश आवास का अपमान; ९. वेलेजली का वापस बुलाया जाना—नीति परिवर्तन; १०. यशवन्तराव होल्कर का अन्त।]

१५. न्यायसंगत प्रतिफल (१८०६-१८१५ ई०) ... ४५९

[१. बाजीराव के कष्ट; २. बाजीराव का अपने जागीरदारों से झगड़ा; ३. बाजीराव का प्रशासन—सदाशिव मानकेश्वर, खांडेराव रस्ते, खुर्शेदजी मोदी—त्रिम्बकजी डेंगले; ४. गायक-

अध्याय पृष्ठ

वाड़ द्वारा सहायक सन्धि पर हस्ताक्षर; ५. पेशवा-गायकवाड़ कलह—शास्त्री का दूतमण्डल; ६. शास्त्री की हत्या; ७. उत्तर कष्ट—त्रिम्बकजी का समर्पण ।]

१६. अन्तिम प्रयास (१८१७-१८१८ ई०) ... ४८६

[१. त्रिम्बकजी का अद्भुत पलायन; २. बाजीराव पर नवीन सन्धि लागू; ३. नागपुर का अप्पा साहेब; ४. पिण्डारी लोग तथा उनके कार्य; ५. पिण्डारियों का विनाश; ६. होल्कर की सत्ता नष्ट; ७. पेशवा द्वारा युद्ध; ८. पेशवा का पलायन; ९. ब्रिटिश घोषणा—बाजीराव के कष्ट; १०. मालकम के प्रति आत्मसमर्पण ।

१७. अन्तिम दृश्य (१८१८-१८४८ ई०) ... ५२५

[१. चतरसिंह भोंसले तथा छत्रपति का परिवार; २. प्रतापसिंह की सतारा में प्रतिष्ठापना; ३. विजित प्रदेश का प्रबन्ध; ४. प्रतापसिंह की दुखद कथा; ५. मराठा पतन के कारण; ६. संस्मरण ।]

तिथिक्रम

अध्याय १

१० अगस्त, १७५५	नारायणराव का जन्म ।
१७५७	सुमेरसिंह गार्दी पेशवा की सेवा में ।
१३ अप्रैल, १७६३	नारायणराव का गंगाबाई से विवाह ।
१७६५	नारायणराव अपने भाई के साथ कर्नाटक में ।
३० अप्रैल, १७६९	नारायणराव निजगल में घायल ।
१० अगस्त, १७७२	रायगढ़ दुर्ग दृढ़ हुआ ।
१३ अक्टूबर, १७७२	मोस्टिन का ब्रिटिश रेजीडेण्ट के रूप में पूना पहुँचना ।
१९ नवम्बर, १७७२	पेशवा माधवराव प्रथम की मृत्यु ।
१३ दिसम्बर, १७७२	नारायणराव को पेशवा की पोशाक प्राप्त ।
जनवरी, १७७३	सबाजी तथा मुधोजी भोंसले में युद्ध ।
७ फरवरी, १७७३	दुर्गाबाई का पांडुरंग जोशी से विवाह ।
१५ मार्च, १७७३	नारायणराव द्वारा नासिक में अपनी माता के दर्शन ।
१५ मार्च, १७७३	रघुनाथराव का बन्धन से निकल भागना ।
११ अप्रैल, १७७३	रघुनाथराव पुनः बन्धन में, उसके साथ अधिक कठोर व्यवहार ।
ग्रीष्म, १७७३	भोंसले के दूत तथा व्यंकटराव काशी पूना में ।
जुलाई, १७७३	रघुनाथराव द्वारा अनशन की धमकी ।
अगस्त, १७७३	अपने छुटकारे के लिए रघुनाथराव का हैदरअली के साथ षड्यन्त्र ।
१६ अगस्त, १७७३	पेशवा द्वारा सबाजी भोंसले नागपुर में अपने पुराने पद पर नियुक्त ।
३० अगस्त, १७७३	अन्य दस लोगों के साथ नारायणराव की हत्या ।
सितम्बर, १७७३	बिसाजी कृष्ण का राजकोष सहित दिल्ली से लौटना ।
२५ दिसम्बर, १७७३	निजाम तथा हैदर के विरुद्ध रघुनाथराव का पूना से प्रस्थान ।
१० अक्टूबर, १७७३	रघुनाथराव ने पेशवा की पोशाक पहनी ।

१० अक्टूबर, १७७३	पेशवा की हत्या के विषय में रामशास्त्री का निर्णय। रामशास्त्री का पदच्युत होना।
१६ अप्रैल, १७७४	माधवराव द्वितीय का जन्म।
जुलाई, १७७४	इन्दौर में सुमेरसिंह की मृत्यु।
२६ सितम्बर, १७७४	रामशास्त्री अपने पद पर पुनः नियुक्त।
१७७५	मुहम्मद यूसुफ गार्दी को मृत्युदण्ड।
जनवरी, १७७६	खड़गसिंह को मृत्युदण्ड।
१७६०	तुल्या पवार की हत्या।

अध्याय १

नारायणराव का नौ मास का शासन

[१७७२–१७७३ ई०]

१. पूना के शासन की अन्तिम साँसें । २. नारायणराव पेशवा नियुक्त । ३. पूना की परिस्थिति—गार्दी लोग । ४. उत्तेजना का आरम्भ—विसाजी पन्त लेले । ५. नागपुर का उत्तराधिकार—प्रभु लोग । ६. नारायणराव को राज्यच्युत करने का षड्यन्त्र । ७. हत्या सम्पन्न । ८. रामशास्त्री द्वारा अपराधी का अन्वेषण व दण्ड ।

१. पूना के शासन की अन्तिम साँसें—यदि हम अपने वर्तमान ज्ञान का आधार लेकर मराठा इतिहास के अतीत पर दृष्टिपात करें, तो हमारा ध्यान इस ओर अवश्य जायेगा कि १७७२ ई० में पेशवा माधवराव प्रथम की मृत्यु से राष्ट्र के भाग्य में महान् परिवर्तन हुआ था, पर उस समय उसे कोई जान नहीं पाया । आगामी ३० वर्ष मराठा सरकार के स्वरूप में परिवर्तन लाने वाले हुए । साथ ही बाह्य शक्तियों में अपेक्षाकृत वृद्धि भी हुई । इन दोनों कारणों ने मिलकर मराठा स्वतन्त्रता को हानि पहुँचायी तथा मराठा राज्य की एकता नष्ट कर दी । अब तक मराठा जाति की गतिविधियाँ पूना से संचालित होती थीं जो उनका केन्द्रीय स्थान था । अब तक उनकी केन्द्रीय सरकार का एक स्थायी अध्यक्ष रहा था, जिसे सभी से अपनी आज्ञा पालन कराने का वैध अधिकार प्राप्त था । यह वैध अध्यक्ष चार क्रमागत शासनों में सदैव वीर पुरुष रहा था । यह युद्ध अथवा कूटनीति और कभी-कभी दोनों का जन्मजात नेता होता था ।

परन्तु नारायणराव के राज्यारोहण (नवम्बर, १७७२ ई०) के साथ ही मराठा राज्य अध्यक्षहीन हो गया । यह सत्य है कि पेशवा का स्थान कभी रिक्त नहीं रहा, परन्तु कभी पेशवा अल्पवयस्क होता था अथवा अन्तहीन गृह-युद्ध से अपनी रक्षा करने में असमर्थ होने के कारण अपनी राजधानी और देश से भाग जाता था । इस दशा में प्रशासन की संचालन-शक्ति का किसी मन्त्री या मन्त्रिमण्डल में निहित हो जाना स्वाभाविक था । कोई मन्त्री चाहे कितना

ही अधिनायक क्यों न हो, राज्य के वैध स्वामी की स्थान-पूर्ति पूर्णरूप से नहीं कर सकता। एक बात तो यह है कि मन्त्री एक वेतनभोगी सेवक होता है, वह लगभग प्रतिनिधि के रूप से अपने स्वामी की शक्ति का व्यवहार करता है। वह उस दर्पण के समान है जो सूर्य-किरणों को प्रतिबिम्बित करता है। यह मन्त्री किसी भी समय अपने स्वामी द्वारा पदच्युत किया जा सकता है, जबकि वैध शासक आजीवन राजसत्ता हथियाये रहता है।

दूसरी बात यह है कि मन्त्री सदैव प्रतिद्वन्द्वियों से घिरा रहता है जो उसके अधिकारों को चुनौती देते हैं और प्रकट या गुप्त रूप में उसके विरुद्ध षड्यन्त्र करते रहते हैं। अतः उसको अपना अधिकांश समय तथा ध्यान सदैव इस प्रकार के प्रतिद्वन्द्वियों पर देना पड़ता है, जिससे उनके षड्यन्त्र कभी इस प्रकार प्रबल न हो जायें कि वह उनका नियन्त्रण न कर सके। वह संकट-काल में अपने नाम की दुहाई देकर समस्त राष्ट्र का आह्वान नहीं कर सकता। जब सम्राट् अबोध शिशु हो तथा मन्त्री उसका वैध अभिभावक एवं संरक्षक हो, तब वह सम्राट् के प्रतिनिधि के रूप में काम कर सकता है।

सार्वजनिक मान्यता प्राप्त राजा की तुलना में महानतम मन्त्री की भी स्थिति निर्बल रहती है। इसका स्पष्ट उदाहरण बाजीराव प्रथम की अनिश्चित स्थिति है जो उसके पद-ग्रहण के प्रथम ८ वर्षों की अवधि में रही—जब तक कि शाहू ने पेशवा को अपने प्रशासन का निर्विवाद अध्यक्ष न बना दिया। बाजीराव द्वितीय के पेशवा होने के बाद वृद्धावस्था में नाना फड़निस की जो दशा हुई, जिस अशक्त अवस्था तथा अपमान को वह प्राप्त हुआ, वह इस निर्बलता का अधिक प्रबल तथा दुखद प्रमाण है, जबकि इस मराठा चाणक्य ने गत चौथाई शताब्दी में जगद्विख्यात सफलता प्राप्त की थी तथा राष्ट्र की अविस्मरणीय सेवा की थी। यह कथन सत्य है कि वाद-विवाद मण्डली युद्ध का संचालन नहीं कर सकती। अतः चार भाइयों की परिषद् को भंग करने तथा अपने आपको एकमात्र अनियन्त्रित अधिपति बना लेने का कार्य नाना फड़निस ने स्वार्थ भावना से प्रेरित होकर नहीं किया था, वरन् यह कार्य उसने देश के जीवन-मरण के संघर्ष में उसकी आवश्यकता से विवश होकर किया था, क्योंकि शत्रुओं ने सम्पूर्ण महाराष्ट्र को घेर लिया था और वे उसकी आन्तरिक शक्ति को क्षीण कर रहे थे।

अस्थिर स्वभाव वाला १७ वर्ष का अपरिपक्व किशोर नारायणराव १७७२ ई० में पेशवा की गद्दी पर बैठा और नौ मास पश्चात उसकी मृत्यु हो गयी। आगामी पेशवा रघुनाथराव को पेशवा होने के तीन मास के अन्दर ही पूना से भागना पड़ा। इसके बाद बहुत दिनों तक राजप्रतिनिधि का शासन

रहा, जिसका अन्त उस समय हुआ जब बाजीराव द्वितीय ने अपने पूर्वजों की गद्दी प्राप्त करने के बाद नाना फड़निस का दमन कर दिया। फिर भी वह बाजीराव प्रथम या बालाजीराव के समान अपने घर का मालिक न बन सका। राज्य का प्रधान अपने आन्तरिक मामलों में तभी प्रभुता प्राप्त कर सका था जबकि उसके विद्रोही सामन्त बसईं की सन्धि (१८०२ ई०) से भयभीत होकर भाग खड़े हुए थे। परन्तु खेद इस बात का था कि उस समय जरीपटका (मराठों का राष्ट्रध्वज) झुका हुआ था और उसके ऊपर यूनियन जैक (ब्रिटिश राष्ट्रध्वज) गर्वपूर्वक फहरा रहा था।

नारायणराव की मृत्यु से दस वर्ष के भीतर ही मराठा राजनीति का गुरुत्वाकर्षण केन्द्र पूना से हटकर उत्तर भारत में चला गया। सालबई की सन्धि तथा हैदरअली की मृत्यु के बाद यह परिवर्तन निर्भ्रान्ति रूप से स्पष्ट हो गया। मराठा साम्राज्य की एकता समाप्त हो गयी जो भारतीय महाद्वीप के आरपार दक्षिण में कृष्णा तथा उत्तर में हिमालय के नीचे रामगंगा नदियों के बीच फैला हुआ था।

इस प्रकार इतिहास के दीर्घकालीन अनासक्त अवलोकन के पश्चात इस खण्ड में वर्णित युग को 'महाराष्ट्र में सूर्यास्त' की अपेक्षा अधिक उपयुक्त संज्ञा नहीं दी जा सकती।[1]

२. नारायणराव पेशवा नियुक्त—अपने छोटे भाई नारायणराव को पेशवा पद पर मनोनीत करने के बाद १८ नवम्बर, १७७२ ई० को पेशवा माधवराव का देहान्त हो गया। उसने नारायणराव को सलाह दी थी कि प्रशासन का संचालन सखाराम बापू तथा नाना फड़निस के परामर्श से करे जो राज्य के सर्वाधिक योग्य तथा अनुभवी सेवक थे। उसने लिखित रूप में विशेष निर्देश दिया था कि रघुनाथराव को निरन्तर बन्धन में रखा जाये, जिससे वह कोई शरारत न कर सके। रघुनाथराव में साहस नहीं था कि वह मरणोन्मुख पेशवा

[1] राजनीति-विज्ञान की भाषा में पेशवा को राजा कहना मेरे विचार में न्यायसंगत है, क्योंकि उसका वास्तव में वही स्थान था जो पवित्र रोम साम्राज्य के अधीन किसी घटक राजा का था। उसको राजभवन का महापौर (मेयर) कहना उचित नहीं है, क्योंकि फ्रेंच इतिहास का सादृश्य व्यापक नहीं है। पेशवा स्वयं युद्ध तथा शान्ति की स्थापना करता था। वह प्रथापालन के रूप में सतारा के स्वप्नमग्न नाममात्र के छत्रपति को अपने द्वारा किये गये कार्यों की सूचना मात्र भेज देता था। १७७२ ई० के बाद इस प्रथा का भी लोप हो गया, यद्यपि परम्परा का सम्मान किया जाता था, क्योंकि छत्रपति से पेशवा को पोशाक देने की प्रार्थना की जाती थी।

की उपस्थिति में नारायणराव की नियुक्ति का स्पष्ट रूप से विरोध कर सके। समस्त दरबार की उपस्थिति में बहुत समय तक पूर्णरूप से विवाद हुआ तथा परिवार के इष्टदेव के सम्मुख गम्भीरतापूर्वक घोषणा की गयी, अतः इस व्यवस्था के प्रति वह ऊपरी मन से सहमत हो गया। पेशवा की मृत्यु के कुछ समय पहले रघुनाथराव ने वास्तव में एक षड्यन्त्र रचा था तथा बन्धन से भाग निकला था, परन्तु शीघ्र पकड़ लिया गया था तथा उसे कुचेष्टा नहीं करने दी थी। माधवराव की मृत्यु से उसका भविष्य कुछ भी आशापूर्ण नहीं हुआ। वह व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा से अन्धा था, इसलिए अधीन स्थिति में रहकर सन्तोष न कर सका।

पेशवा का श्राद्ध थेउर में किया गया तथा २ दिसम्बर को दरबार पूना को वापस आ गया। छत्रपति से पोशाक प्राप्त करने के लिए नारायणराव सतारा जाने की तैयारियाँ करने लगा। उसके चाचा ने साथ जाने में आनाकानी की। वह चाहता था कि उसको तथा उसके परिवार को पहले ही २५ लाख वार्षिक की स्वतन्त्र जागीर दे दी जाये। उससे अनुनय किया गया कि विषम परिस्थिति के कारण इस समय वह अपनी माँग को छोड़ दे। नारायणराव को पेशवा की पोशाक सतारा में छत्रपति से १३ दिसम्बर को प्राप्त हो गयी। उस समय सखाराम बापू को प्रशासक (कारभारी) का पद दिया गया, तथा अन्य अधिकारी अपने-अपने पदों पर स्थिर कर दिये गये।

बालाजीराव के तीनों पुत्रों में कनिष्ठ नारायणराव का जन्म १० अगस्त, १७५५ ई० को हुआ था। इस समय उसकी आयु १७ वर्ष थी। उसका विवाह १८ अप्रैल, १७६३ ई० को गंगाबाई साठे से हो गया था, जबकि वह पूरे ८ वर्ष का भी नहीं था। सदाशिवराव भाऊ की विधवा पार्वतीबाई से उसका बहुत स्नेह था, क्योंकि वह विषम परिस्थिति की वेदना कम करने के उद्देश्य से उसकी देखरेख में रहा था। १७५६ ई० में प्रथम बार तथा दूसरी बार १७६९ ई० में नारायणराव अपने भाई स्वर्गीय पेशवा के साथ उसके अभियानों में करनाटक गया था। द्वितीय अभियान के समय अप्रैल, १७७० ई० के अन्त में निजगल के गढ़ पर सहसा आक्रमण करने में उसकी कलाई में घाव आ गया था। उसे पढ़ने, लिखने तथा गणित की शिक्षा दी गयी थी। संस्कृत ग्रन्थों का भी उसे कामचलाऊ ज्ञान था। विगत शासन के अन्तिम एक-दो वर्षों में नारायणराव को सखाराम बापू के साथ कर दिया गया था ताकि उसे प्रशासनीय कार्यों के संचालन की शिक्षा मिल जाये। उसके चरित्र तथा कार्यकुशलता से उसके भाई माधवराव को कभी सन्तोष नहीं हुआ। उसके भविष्य के सम्बन्ध में वह प्रायः आशंका प्रकट किया करता था। उसके

राज्यारोहण के तुरन्त पश्चात पूना के दरबार से उसकी कार्यक्षमता के विषय में यह मत प्राप्त हुआ था—"श्रीमन्त अधीर तथा कोपशील हैं, उनकी चंचलता स्पष्ट झलकती है। उनको तुच्छ तथा अनुत्तरदायी व्यक्तियों से जो सूचना प्राप्त होती है, उस पर बिना विचार किये हुए कार्य कर बैठते हैं। वह अभी तक शिशु हैं, तथा सखाराम बापू के मार्गदर्शन का अनुसरण नहीं करते। सिंह तो चला गया, अब गीदड़ ही रह गये हैं। ईश्वर ही राज्य का रक्षक है।"[2] आरम्भ में कुछ समय तक चाचा तथा भतीजे में अच्छी प्रकार बनती रही। नारायणराव शीघ्र ही मृत पेशवा की कठोर वृत्ति का अनुकरण करने लगा। वह सखाराम बापू तथा अन्य वृद्ध अधिकारियों का स्पष्ट अपमान करने से अपने को नहीं रोक पाता था।

हमको इस समय के राजनीतिक क्षितिज का निरीक्षण करना चाहिए। ऐसा मालूम होता था कि समस्त भारत में क्षणिक शान्ति विद्यमान है। महादजी शिन्दे तथा अन्य मराठा सरदार दिल्ली के शाही कार्यों में व्यस्त थे तथा उत्तर भारत के जिलों में राजस्व संग्रह कर रहे थे, जहाँ मराठा शक्ति की स्थापना उसी समय पर हुई थी। मराठों के मित्र गाजीउद्दीन इमादुलमुल्क की उत्कट इच्छा थी कि महादजी को पुनः शाही वजीर के पद पर नियुक्त कर दिया जाये, जिस पर वह पहले स्थित था। इस समय वह गृहहीन घुमक्कड़ था तथा अपने पक्ष को उपस्थित करने के लिए दिसम्बर, १७७२ ई० में स्वयं पूना गया, जिससे नये पेशवा को उत्तरी प्रदेश में कार्य-प्रबन्ध की नयी योजना लागू करने के लिए उकसाये।[3] सम्राट् शाहआलम को गाजीउद्दीन से घोर घृणा थी, क्योंकि उसने उसके पिता की हत्या की थी, तथा इस राक्षस के प्रति किसी प्रकार की अनुकम्पा के लिए वह अपनी अनुमति नहीं दे सकता था। गाजीउद्दीन मराठों का पुराना मित्र था और उसने पानीपत के युद्ध से पहले मराठों का बहुत हित किया था, जिससे उसकी वर्तमान दरिद्रावस्था में पूना में लोगों को उससे बहुत सहानुभूति थी। नाना फड़निस ने उचित समय पर उसके वापस होने से पहले ही उसे बुन्देलखण्ड में एक छोटी-सी जागीर दे दी, ताकि नारायणराव के दिखावटी वचन की पूर्ति हो सके। यह वचन सम्भवतः स्वयं नारायणराव ने उसको दिया था।

भूतपूर्व नवाब मीरकासिम मराठों का दूसरा महत्त्वपूर्ण मित्र था, जिसने इस समय अपने भरण-पोषण के लिए इसी प्रकार की याचना की थी। परन्तु उसे सन्तुष्ट करना पेशवा के अधिकार की बात नहीं थी। दक्षिण में मैसूर का

---

२ खरे, १२४३

३ पुरन्दर ३, ११२; खरे, १२४३

हैदरअली और हैदराबाद का निजामअली इस समय मराठों को कोई कष्ट नहीं देना चाहते थे। दोनों अपनी भावी नीति को स्थिर करने के लिए पूना की परिस्थिति का ध्यानपूर्वक अवलोकन कर रहे थे। इस प्रकार नारायणराव के सम्मुख कोई बाहरी दबाव न था जो उसके प्रशासन के सुचारु संचालन में विघ्न उपस्थित कर सके।

३. पूना की परिस्थिति—गार्दी लोग—परन्तु उसके घर में ही शीघ्र उसकी परिस्थिति ऐसी हो गयी, जिस पर अधिकार करना उस जैसे किशोर युवक के लिए कठिन था। प्रथम महान सकट उसके रिक्त कोष के कारण उत्पन्न हुआ। अपने ऋण चुकाने में माधवराव ने समस्त संचित धन व्यय कर दिया था। उसकी कुछ वर्षों की रुग्णता के कारण धन-संग्रह के लिए होने वाली साधारण वार्षिक कार्यवाही शनैः-शनैः शिथिल हुई और अन्त में लगभग समाप्त हो गयी। गार्दी सिपाहियों के हल्ला करने के कारण परिस्थिति गम्भीर हो गयी। वे अपने वेतन का शेष धन माँग रहे थे और इस समय राजभवन के चारों ओर तथा नगर में देखरेख के कार्य पर नियुक्त थे। पैसे के लालची इन पैदलों की शक्ति निस्सन्देह शासन के लिए संकटप्रद हो गयी थी। पेशवा और उसके परामर्शदाता किसी ने भी इसकी ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया। बुस्सी के कानून के अनुसार ये लोग केवल अपनी मजदूरी के लिए कार्य करते थे, स्वामी से उनका कोई व्यक्तिगत सम्बन्ध न था। उनमें अधिकांश उत्तर भारत के लोग, पठान, हब्शी, अरब, राजपूत तथा पुरबिये थे। प्रत्येक का मासिक वेतन ६ रुपये से १५ रुपये तक था। मराठे प्रायः नियन्त्रण सहन नहीं कर सकते थे। अतः उनमें से बहुत थोड़े लोग अनुशासित दलों में भरती होने की इच्छा करते थे। बुस्सी तथा इब्राहीमखाँ की मृत्यु हो चुकी थी। इस समय कोई प्रमुख नेता न था जो इन हल्लागुल्ला करने वाले उद्धत व्यक्तियों को नियन्त्रण में रख सकता तथा उनसे उपयोगी कार्य करा सकता। इस समय उनकी संख्या ५ हजार से अधिक न थी। मुहम्मद यूसुफ, सुमेरसिंह, खड़गसिंह उनके नेता थे जिन्होंने १७५७ ई० के लगभग सेवा में प्रवेश किया था। यूसुफ वास्तव में वीर तथा योग्य सैनिक था, जो १७७० ई० में शिरा के गढ़ पर अधिकार प्राप्त करके गत पेशवा से प्रशंसा प्राप्त कर चुका था। ये नेता तथा उनके अधीन सैनिक उस समय पेशवा के शरीर तथा भवन के रक्षक थे। उनकी स्थिति लगभग कुस्तुन्तुनिया के जैनिसेरियों के सदृश थी। मुहम्मद यूसुफ को कर्तव्य की उपेक्षा के कारण कुछ समय पहले निकाल दिया गया था।

पेशवा के नवीन शासन के लिए चिन्ता का दूसरा कारण पूना में ब्रिटिश

दूत मोस्टिन की उपस्थिति थी। अप्रैल, १७७२ ई० में, जबकि माधवराव मृत्यु-शैय्या पर पड़ा था, बम्बई परिषद् (कौंसिल) के अध्यक्ष को ब्रिटेन के गृह-अधिकारियों की ओर से आज्ञा प्राप्त हुई थी कि वह भारत की मुख्य भूमि पर स्थित साल्सेट (साष्टी), बसई, एलिफैंटा, करंजा तथा बम्बई के समीप कुछ अन्य टापू मराठों से प्राप्त करने के लिए प्रयास करे, तथा इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए पूना में एक ब्रिटिश दूत को नियुक्त कर दे। मोस्टिन पूना के दरबार से पूर्व-परिचित था, क्योंकि वह १७६७ ई० के ब्रिटिश मिशन का नेता रह चुका था। अतः वह पूना भेजा गया। वह १३ अक्टूबर, १७७२ ई० को वहाँ पहुँच गया। वह पूरे दो वर्ष तक पूना में रहा और उन स्थानों की प्राप्ति के विचार से घटनाक्रम का अवलोकन करता रहा तथा पूना की परिस्थिति के अनुसार उपाय करने के लिए बम्बई के अधिकारियों को परामर्श देता रहा।

माधवराव की मृत्यु होते ही पश्चिमी तट पर स्थित थाना, बसई, विजयदुर्ग तथा रत्नागिरि के मराठा अधिकृत स्थानों पर ब्रिटिश नौ-सेना ने उपयुक्त अवसर समझकर अकारण आक्रमण कर दिया। नारायणराव ने उपद्रव को रोकने के लिए तुरन्त उपाय किया। उसने त्रिम्बक विनायक को बसई तथा कोंकण का सर-सूबा नियुक्त कर दिया, तथा आवश्यक धन एवं नौ-सैनिकों सहित ब्रिटिश प्रगति का प्रतिकार करने की आज्ञा प्रदान की। विजयदुर्ग के मराठा नौ-सेनाधिकारी धुलप ने त्रिम्बक विनायक को अपना सहयोग दिया और वे दोनों कुछ समय के लिए ब्रिटिश धावे को विफल करने में समर्थ हुए। परन्तु मोस्टिन पूना में दूसरे उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करता रहा, जो शीघ्र ही उपस्थित हो गया।

बम्बई के ब्रिटिश व्यापारियों की भाँति जंजीरा का सिद्दी भी ऐसे अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था जबकि वह मराठा शासन में किसी प्रकार की निर्बलता से लाभ उठा सके--विशेषकर इस उद्देश्य से कि वह रायगढ़ पर पुनः अधिकार कर ले, जिसका मराठे आदर करते थे, क्योंकि वह शिवाजी के समय की पुरानी राजधानी थी और जो इस समय नाममात्र को छत्रपति के अधिकार में थी। गत पेशवा के जीवन-काल ही में नारायणराव को संकट का पूर्वाभास हो गया था तथा उसने उस गढ़ की रक्षा का उपाय कर लिया था। इन घटनाओं से वह परिस्थिति स्पष्ट हो जाती है जिससे नारायणराव को अपने शासन के आरम्भ में निपटना पड़ा। सौभाग्यवश उस समय अपने चाचा के साथ उसके सम्बन्ध प्रेमपूर्ण थे। ७ फरवरी, १७७३ ई० को रघुनाथ की पुत्री दुर्गाबाई का विवाह सानन्द तथा सोल्लास सम्पादित हुआ। नारायणराव ने इसके प्रबन्ध के निरीक्षण में विशेष भाग लिया।

४. उत्तेजना का आरम्भ—विसाजी पन्त लेले—प्रथम घटना का सम्बन्ध विसाजी पन्त लेले से था, जिसके कारण चाचा तथा भतीजे में सम्बन्ध-विच्छेद हो गया। लेले चतुर कूटनीतिज्ञ, दक्ष अधिकारी तथा योग्य सैनिक था। वह बहुत दिनों से बसई का सूबेदार था। सर्वप्रथम उसने ही थाना तथा बसई सम्बन्धी ब्रिटिश षड्यन्त्रों का भंडाफोड़ किया था, तथा वहाँ पर मराठा हितों की रक्षा करने का यथासमय उपाय किया था। सखाराम बापू को उस पर बहुत विश्वास था, तथा कई विषम परिस्थितियों में उसने बापू की निष्ठा-पूर्वक सेवा भी की थी जिनमें पारस्परिक सहायता की आवश्यकता थी। विसाजी पन्त के भ्रष्टाचार का माधवराव को बहुत दिनों से पता था जिसके फलस्वरूप वह माधवराव का विश्वास खो बैठा था। एक बार पेशवा को सूचना मिली कि विसाजी पन्त ने एक जलमग्न व्यापारी पोत की २० लाख की सम्पत्ति को हजम कर लिया है जबकि वह उस धन को राजकोष में जमा करने के लिए कर्तव्यबद्ध था। इस अपराध के कारण माधवराव ने अपने अन्तिम दिनों में पन्त को सेवा से निकाल दिया था। कुछ मास बाद जब नारायणराव पेशवा हो गया, विसाजी पन्त ने अपनी पुर्ननियुक्ति के लिए प्रार्थना की तथा सखाराम बापू ने उसका समर्थन किया। नारायणराव ने कठोरता-पूर्वक बापू के अनुरोध को ठुकरा दिया, तथा बसई के शासन पर त्रिम्बक विनायक को नियुक्त कर दिया।[४]

यह घटना उस प्रकार का प्रतिरूप उदाहरण है जिसके कारण नवीन पेशवा को शासन में अपना गौरव स्थापित करना दुस्साध्य कार्य प्रतीत हुआ। पटवर्धन सरदारों को गत पेशवा के समय में अपनी एकनिष्ठ सेवा के कारण महान् शक्ति प्राप्त हो गयी, तथा इस कारण वे लोग रघुनाथराव तथा सखा-राम बापू दोनों की आँखों में खटक रहे थे। अब इन दोनों का यह ध्येय हो गया कि नारायणराव की इच्छा के विरुद्ध पटवर्धनों के गौरव को घटा दें। शीघ्र ही यह स्पष्ट हो गया कि नवीन पेशवा तथा सखाराम बापू में अधिक नहीं पट सकती। उन्होंने निश्चय किया कि वे अपने मतभेदों को निर्णयार्थ, पेशवा-परिवार की एकमात्र ज्येष्ठ सदस्या अनुभवी गोपिकाबाई के समक्ष उपस्थित कर दें। इस कार्य के लिए नारायणराव, बापू तथा वामनराव पट-वर्धन (गोपालराव का भाई तथा इस समय उस परिवार का मुख्य पुरुष)

---

४ बाद में विसाजी पन्त ने कई लाख रुपये का भारी दण्ड पेशवा के शासन को चुका दिया और वह जून, १७७४ ई० में पुन: बसई का अधिकारी नियुक्त कर दिया गया। इस विषय पर देखो—पेशवा दफ्तर, जिल्द ३५, पृष्ठ ५ तथा आगामी; खरे नं० १२३४, १२३५, १२३८ आदि।

मार्च के मध्य में उस महिला से परामर्श करने गंगापुर गये। उन्होंने कुछ दिनों तक स्पष्ट वार्तालाप किया, परन्तु वे कोई निश्चित हल न निकाल सके।

इसी बीच पूना में अपनी विवशता पर खिन्न रघुनाथराव ने नारायणराव की अनुपस्थिति से लाभ उठाकर नये पेशवा के नियन्त्रण से भाग निकलने के लिए एक अभिनव षड्यन्त्र की रचना की। वह अपनी निजी सेना भरती करने लगा तथा उसने हैदरअली को सहायता के लिए पत्र लिखा। पूना में शान्ति तथा व्यवस्था के प्रति उत्तरदायी अधिकारी नारो अप्पाजी ने अविलम्ब उपाय किया जिससे रघुनाथराव भागने न पाये। इस निमित्त उसने राजभवन तथा नगर के समस्त बाहरी मार्गों पर पहरा लगा दिया। रघुनाथराव ने एक अभियान पर बाहर जाने की घोषणा करके अपने डेरे नगर से बाहर लगा लिये। इस घटना का समाचार नारायणराव को नासिक में प्राप्त हुआ। वह शीघ्रतापूर्वक पूना वापस आ गया। वह अपने चाचा से उसके डेरे में मिला, तथा ११ अप्रैल को उसे पुन: राजभवन में वापस ले आया। यहाँ उसने अपने चाचा का पलायन रोकने के लिए उस पर अधिक पहरा लगा दिया। इसके परिणामस्वरूप उन दोनों के बीच उत्तेजना अधिक बढ़ गयी। अपनी परिस्थिति को असह्य देखकर रघुनाथराव ने नागपुर के भोंसले-परिवार से सहायता के लिए प्रार्थना की।

५. **नागपुर का उत्तराधिकार—प्रभु लोग**—मई, १७७२ ई० में जानोजी भोंसले की मृत्यु पर उस परिवार में सदा की भाँति उत्तराधिकार-कलह उत्पन्न हो गयी, तथा माधोजी एवं सबाजी दोनों भाइयों के बीच गृह-युद्ध आरम्भ हो गया। पूना से रघुनाथराव तथा सखाराम बापू ने माधोजी का समर्थन किया। सबाजी का समर्थन नारायणराव, नाना फड़निस तथा अन्य व्यक्तियों ने किया जो दिवंगत पेशवा की नीति का पालन कर रहे थे। इसके अतिरिक्त सबाजी को निजामअली की सहानुभूति भी प्राप्त थी। जनवरी, १७७३ ई० में दोनों भाइयों में कुछ अनिर्णायक युद्ध भी हुए। कुछ निष्पक्ष शुभचिन्तकों की मध्यस्थता के द्वारा यह भ्रातृघात युद्ध अस्थायी रूप से शान्त हो गया तथा सहमति की स्थापना हो गयी। इसके अनुसार माधोजी का पुत्र रघुजी नागपुर का शासक माना जाने को था। पेशवा द्वारा इस प्रबन्ध की पुष्टि के लिए प्रभु जाति के दो दूत, वैंकटराव काशी गुप्ते और उसका भाई लक्ष्मण, रघुजी के लिए सेनासाहेब सूबा की पोशाक प्राप्त करने के लिए पूना भेजे गये। जब ये दोनों १७७३ ई० की ग्रीष्मऋतु में पूना पहुँचे तो उनको पता चला कि पेशवा तथा उसके चाचा के बीच तीव्र तनाव चल रहा है। नागपुर के प्रसिद्ध षड्यन्त्रकारी तथा कूटनीतिज्ञ देवाजीपन्त चोरघोड़े ने उनको गुप्त रूप

से उत्तेजित किया कि वे इस परिस्थिति से लाभ उठायें। यह वही व्यक्ति था जिसके गर्व का दलन दिवंगत पेशवा माधवराव ने किया था तथा जो रघुनाथ-राव और सखाराम बापू के प्रति बहुत दिनों से स्पष्ट सहानुभूति प्रकट कर रहा था। नागपुर के इन दूतों ने नारायणराव के विरुद्ध रघुनाथराव का पक्ष लेकर कुचेष्टा आरम्भ की।

इस समय प्रभु जाति को नारायणराव के विरुद्ध विशेष ईर्ष्या थी, यद्यपि इस संकट की उत्पत्ति बहुत पहले हो चुकी थी। अपने धार्मिक कर्तव्यों के पालन में प्रभु लोग क्षत्रियों के समान अधिकार चाहते थे। उनका आग्रह था कि उस कार्य के लिए वे वैदिक सूक्तों का उपयोग करें। शिवाजी के समय में इस प्रकार के व्यवहार पर कलह उपस्थित हो गयी थी। उनके विश्वासपात्र सचिव बालाजी आवजी चिटनिस ने, जो प्रभु जाति का था, अपने पुत्रों का यज्ञोपवीत संस्कार उस समय किया था जब स्वयं शिवाजी का यह संस्कार हुआ था। इस अवसर पर प्रसिद्ध नागाभट्ट के निर्देशन में वैदिक ऋचाओं का उपयोग हुआ था। उस समय से कट्टर ब्राह्मणों के हस्तक्षेप के बिना उस प्रथा का प्रचलन हो गया था, क्योंकि शाहू तथा उसके पेशवा किसी प्रकार की उत्तेजना फैलाने वाली नयी प्रथा से विवेकपूर्वक दूर रहे थे। परन्तु इस समय नारायणराव ने अविवेकवश कट्टर दल का पक्ष धारण कर लिया, तथा सम्भवतः नाना फड़निस की प्रेरणा से उसने प्रभुओं के क्षत्रिय पद का अपहरण कर लिया और कठोर दण्डों की भर्त्सना देकर उनको बलपूर्वक शूद्रों के लिए विहित प्रथाओं को ग्रहण करने के लिए विवश कर दिया, जिनको वैदिक सूक्तों के उपयोग का कोई अधिकार नहीं है। इस कार्य के लिए पूना में प्रभु जाति के कुछ प्रमुख नेता परस्पर एकत्र किये गये तथा कठोर शारीरिक यातनाओं द्वारा, जिनमें भूखा रखना भी सम्मिलित था, उन्हें ९ विशेष धाराओं की सहमति पर हस्ताक्षर करने के लिए विवश किया गया। इन धाराओं का आशय था कि उन्होंने शूद्र का पद स्वीकार कर लिया है तथा वे क्षत्रिय पद का त्याग कर रहे हैं। इस कार्य के कारण पेशवा के हाथ से उस प्रभावशाली जाति की सहानुभूति निकल गयी। क्रुद्ध होकर वे उस षड्यन्त्र में सम्मिलित हो गये जिसकी रचना इस समय मन्दगति से तथा गुप्त रूप से रघुनाथराव कर रहा था। अपने ऊपर लगे हुए प्रतिबन्धों से रघुनाथराव इस प्रकार क्रुद्ध हो गया कि उसने अपनी वधू तथा अपने दत्तक पुत्र के साथ आमरण अनशन प्रारम्भ करने की धमकी तक दे डाली। इस विचित्र परिस्थिति में नारायणराव शान्त तथा जनप्रिय मार्ग का अवलम्बन न कर सका। उसे अपने किसी परामर्शदाता पर विश्वास न था। नाना फड़निस कुछ समय पहले ही

विरक्त हो गया था तथा वर्तमान प्रशासन से अलग रहने लगा था क्योंकि उसके प्रति स्पष्ट रूप से अविश्वास प्रकट किया गया था। नाना का अपने ज्येष्ठ सहकारी बापू से भी मतभेद हो गया था, इस कारण वह तब तक प्रशासन में कोई सीधा भाग न लेता था जब तक कि ऐसा करना नितान्त आवश्यक ही नहीं होता था। यही कारण है कि अपने स्वाभाविक पर्यवेक्षण सहित नाना ने नगर में उस समय प्रचलित षड्यन्त्रों तथा योजनाओं की सूचनाओं पर ध्यान नहीं दिया तथा उनके दमनार्थ यथासमय उपाय नहीं किया। स्थानीय परम्परा में विद्यमान यह तुच्छ घटना कि पेशवा ने अपनी छड़ी से नाना की पगड़ी उसके सिर से गिरा दी, केवल एक निकृष्ट कोटि का उपहास था जो नारायणराव की अस्थिर प्रकृति के अनुरूप था। वह प्रायः गर्वपूर्वक तथा बे-समझे-बूझे भव्य योजनाओं तथा आयोजनाओं के अनुकरण की बात करता था जो उसके प्रसिद्ध पूर्वजों के योग्य थी, परन्तु जिनको कार्यान्वित करने की उसमें कोई क्षमता तथा धीरता नहीं थी।

६. **नारायणराव को राज्यच्युत करने का षड्यन्त्र**—नागपुर के दूत व्यैंकटराव काशी तथा उसका भाई लक्ष्मण पूना को मुख्यतया इस उद्देश्य से आये थे कि माधोजी के पुत्र रघुजी के लिए नागपुर की गद्दी के प्रति उत्तराधिकार के लिए पेशवा की स्वीकृति प्राप्त कर लें, और इस प्रकार उस पद पर सबाजी के मिथ्या अभियोग का अन्त हो जाये। किन्तु नारायणराव सबाजी के अभियोग का समर्थक था तथा उसने खांडेराव दरेकर के अधीन उसके भाई के विरुद्ध उसकी सहायता के लिए सशस्त्र सहायक सेना भेज दी थी। माधोजी इस प्रतिघात पर बिगड़ गया तथा उसने अपने दोनों दूतों को लिखा कि वे पूना में ही ठहरे रहें और नारायणराव के प्रति प्रबल विरोध का संगठन करें। माधोजी ने लिखा— "अब पेशवा के अत्याचार को शान्तिपूर्वक सहन करना व्यर्थ है। जिस प्रकार आप ठीक समझें, अपने विवेक से ऐसा कार्य करें जिससे रघुनाथराव के पक्ष का समर्थन करके हम अपना उद्देश्य प्राप्त कर सकें।" वास्तव में यह निर्देश संदिग्ध था परन्तु इसके द्वारा दूतों को यह अधिकार अवश्य प्राप्त हो गया कि वे शासनकर्ता पेशवा के विरुद्ध रचे गये किसी भी षड्यन्त्र में भाग ले सकें।

ये दूत (एजेण्ट) तब तक किसी योजना पर विचार नहीं कर सकते थे जब तक कि स्वयं रघुनाथराव से पूरी तरह बातचीत न कर लें, परन्तु उस पर इतना कड़ा पहरा लगा हुआ था कि कोई भी बाहरी व्यक्ति उसके साथ बातचीत नहीं कर सकता था। इस विचित्र स्थिति में नागपुर के इन वकीलों ने सखाराम हरिगुप्ते से परामर्श किया जो रघुनाथराव का निष्ठावान

पक्षपाती था, तथा नारायणराव के इस कार्य पर पहले से ही अत्यन्त रुष्ट था कि उसने प्रभु जाति पर सामाजिक प्रतिबन्ध लगा दिये थे। उन्होंने मिलकर रघुनाथराव के साथ गुप्त रूप से बातचीत करने का प्रबन्ध कर लिया। इस अवसर पर यह षड्यन्त्र निश्चित हुआ कि नारायणराव को पकड़कर कैद में डाल दिया जाये तथा रघुनाथराव को पेशवा की गद्दी पर बैठा दिया जाये। इस योजना की सफलता के लिए यह आवश्यक था कि रघुनाथ स्वतन्त्र होकर सशस्त्र दल का संगठन कर सके। अगस्त मास की एक अँधेरी रात में रघुनाथराव ने लक्ष्मण काशी का सहारा लेकर भाग निकलने का प्रयत्न किया, परन्तु पहरे वालों ने उसको पहचान लिया और अपनी देखरेख (कस्टडी) में वापस ले लिया। लक्ष्मण काशी बच निकला तथा अपनी प्राणरक्षा के लिए पूना से बाहर भाग गया। नारायणराव को जब इस घटना का समाचार मिला तो उसने अपने चाचा पर और भी कड़ा पहरा लगा दिया तथा आज्ञा दी कि उसको अपने कमरे के बाहर न निकलने दिया जाये। उसकी समस्त आवश्यकताएँ एक सीमित क्षेत्र के भीतर पूरी कर दी जाती थीं। रघुनाथराव की एक यह प्रार्थना थी कि वह खुले मैदान में खड़ा होकर सूर्य की ओर टकटकी बाँधकर बहुत देर तक देखता रहे। इस प्रकार की प्रार्थना स्वीकृत न होने से वह क्रुद्ध हो गया और स्थिति संकट की ओर बढ़ने लगी। उसी समय उसका असीम व्यय बहुत घटा दिया गया।

दिवंगत पेशवा के समय में भी इस प्रकार की उत्तेजनापूर्ण घटनाएँ कम नहीं हुई थीं, परन्तु माधवराव सावधान रहता था कि चाचा को सहन-सीमा के बाहर न सताया जाये जबकि नारायणराव में आवश्यक विवेक का अभाव था। माधवराव ने सखाराम बापू, सखाराम हरि, चिन्तो विट्ठल, गंगाधर यशवन्त, विसाजी लेले, अबाजी माधव सोहोनी तथा अपने चाचा के अन्य कट्टर पक्षपातियों से उपयोगी सेवा भी ले ली तथा उनको कोई संगठित कार्य भी न करने दिया। परन्तु नारायणराव ने इस पूर्व-सावधानी की उपेक्षा की। इन असन्तुष्ट व्यक्तियों को अपनी शत्रुवत् प्रवृत्ति तथा प्रतिशोध की भावना की तृप्ति के लिए अब अनुकूल परिस्थिति प्राप्त हो गयी। नारायणराव के विरुद्ध इस भावना को वे बहुत दिनों से गुप्त रखे हुए थे। इन सहायकों के अतिरिक्त रघुनाथराव अप्पाजी राय की सहानुभूति भी प्राप्त करने में सफल हो गया, जो पूना में हैदरअली का स्थायी राजदूत था। अप्पाजी रघुनाथराव की योजनाओं में सम्मिलित हो गया, तथा उसने अपने स्वामी को राजी कर लिया कि पेशवा परिवार के इस भाग्यहीन सदस्य को वह अपना समर्थन प्रदान करे। जेम्स फोर्ब्स ने, जो बाद को रघुनाथराव तथा उसके मण्डल के साथ गुजरात

में रहा, लिखा है "नारायणराव के दुरंगेपन तथा दुर्व्यवहार के कारण राघोबा अन्त में विवश हो गया कि वह हैदरअली के राजदूत से मिलकर अपने पलायन के निमित्त उपायों को संगठित करे। यह समाचार जब अल्पवयस्क पेशवा को प्राप्त हुआ, तो उसने राघोबा को अपने राजभवन के अन्दर बन्दी कर दिया, तथा न उसके किसी मित्र को उससे मिलने की अनुमति दी और न उसके किसी सेवक को उसके पास जाने दिया। चाहे वह अपने जीवन से ऊब गया हो, अथवा अपने भतीजे को डराना चाहता हो, राघोबा ने आमरण अनशन का गम्भीर व्रत धारण कर लिया। उस दशा में उसकी मृत्यु का कारण नारायणराव की निष्ठुरता मानी जायेगी तथा राष्ट्र उस पर यह कलंक लगा देगा कि वह हत्यारा है। इस प्रकार निश्चय कर उसने अपने व्रत का पालन आरम्भ किया, तथा १८ दिनों तक प्रतिदिन केवल १ छटाँक हरिणी के दूध के अतिरिक्त कुछ भी ग्रहण नहीं किया जब तक कि उसके अत्यन्त निर्बल हो जाने पर नारायणराव करुणार्द्र न हो गया और उसने प्रतिज्ञा न कर ली कि उसको ५ दुर्गों के सहित एक जिले का शासन तथा १२ लाख वार्षिक आय की जागीर दी जायेगी, किन्तु शर्त यह थी कि कुछ (पाँच) बड़े सरदार उसके भावी आचरण के लिए उत्तरदायी बन जायें।[1]

नागपुर के दोनों दूतों (एजेण्टों) के षड्यन्त्रों से चिढ़कर नारायणराव ने आवेशपूर्वक तुरन्त आज्ञा दे दी कि वह सबाजी भोंसले को सेनासाहेब सूबा के रूप में अपनी मान्यता प्रदान करता है। उसने दोनों दूतों को आज्ञा दी कि वे अविलम्ब नागपुर को वापस जायें और अपने साथ तीसरे दूत भवानी शिवराम को भी लेते जायें जो उसी समय नागपुर से आया था। नागपुर की गद्दी पर सबाजी की नियुक्ति की आज्ञा पर १६ अगस्त अर्थात पेशवा की हत्या के दो सप्ताह पूर्व की तारीख थी। इस प्रकार यह तारीख उस तूफान का आरम्भ है जो एकत्र हो रहा था। रघुनाथराव तथा आनन्दीबाई का अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्तिगत सेवक तुलाजी पवार इस समय दूसरे षड्यन्त्र का प्रेरक पुरुष बन गया। उस षड्यन्त्र की रचना उसने चतुरतापूर्वक की तथा उसको निर्भीकतापूर्वक कार्यान्वित किया। मूल योजना यह थी कि नारायणराव को पकड़कर बन्दी बना लिया जाये और रघुनाथराव को मुक्त करके पेशवा बना दिया जाये। इस तुलाजी ने ही हत्या के भावी षड्यन्त्र का संगठन किया। इस षड्यन्त्र की जाँच पर यह तुलाजी मुख्य अपराधी पाया गया। वह बहुत दिनों तक पकड़ा नहीं जा सका, तथा जब १७८० ई० में उसका बयान लेख-

---

[1] 'ओरिएण्टल मेमॉयर्स', १, पृ० ३०१

बद्ध किया गया तो उसने कहा कि षड्यन्त्र "थेउर के दिनों में आरम्भ हुआ था।" उसका अर्थ था कि यह निश्चय रघुनाथराव ने उस समय किया था जबकि दिवंगत पेशवा थेउर में था। उसका अभिप्राय था कि पेशवा की मृत्यु के बाद उसका पद रघुनाथराव को प्राप्त हो जाये। रघुनाथराव इस निश्चय को कभी नहीं भूला था; हाँ, परिस्थितिवश वह इसको कार्यान्वित न कर सका था। समय की इस दूरी को देखते हुए तथा एकत्रित लेखबद्ध प्रमाणों के आधार पर इस घटना पर विचार करते हुए हमें दुख होता है कि नारायणराव सर्वथा उपेक्षाशील तथा अयोग्य था। उसने आत्मरक्षा के अत्यन्त साधारण पूर्वोपायों का भी ध्यान न रखा जो उसकी स्थिति वाले शासक के लिए सुलभ थे। उसका स्वभाव कर्कश था जिसके कारण उसके उत्तम मित्र भी शत्रु हो जाते थे।

सखाराम बापू की नीति समझौते द्वारा समस्याओं को सुलझाने की थी। वह आत्यन्तिक उपायों से दूर रहकर परस्पर विरोधी हितों का सामंजस्य करना चाहता था। जब रघुनाथराव तथा उसकी पत्नी आनन्दीबाई उससे दुखी होकर शिकायत करते कि उनके प्रति पेशवा का व्यवहार कठोर है, तभी उत्तरदायी प्रशासक के रूप में सखाराम बापू को मर्मस्पर्शी कर्तव्य का पालन करना पड़ता। जिस हत्या के षड्यन्त्र की रचना हो रही थी, उसका सम्भवतः उनको ज्ञान न था।

१६ से ३० अगस्त तक पूना में अपूर्व हलचल रही। रघुनाथराव के विभिन्न पक्षपातियों में गुप्त वार्तालाप तथा वाद-विवाद होते रहे, परन्तु पेशवा के राजभवन की ये घटनाएँ साधारण थीं, इस कारण किसी उत्तरदायी अधिकारी ने उनकी ओर गम्भीरतापूर्वक ध्यान नहीं दिया। २५ जुलाई को ब्राह्मणों को श्रावण मास का वार्षिक दान यथापूर्व समाप्त हो गया। इसके आगे के दस दिन गणपति समारोह के दिन थे जबकि समस्त प्रशासक वर्ग को छुट्टी मिल जाती थी तथा समस्त अधिकारी और उनका सहकारी मण्डल उत्सव के विभिन्न कार्यों में व्यस्त रहते थे—प्रातः तथा सायं दैनिक पूजा, वेद-पाठ, संगीत, नृत्य, दरबार, भोज तथा जुलूस। यह समारोह २१ अगस्त को आरम्भ हुआ तथा भाद्रपद अनन्त चतुर्दशी ३१ अगस्त को समाप्त होने वाला था। पेशवा की हत्या ३० अगस्त को दोपहर के कुछ ही बाद हुई।

गणपति समारोह के इन दिनों में तुल्या पवार ने अपना कार्य अत्यन्त तत्परता से आरम्भ किया। वह गार्दी नेताओं के पास गया तथा पेशवा और उसके चाचा के प्रति उनकी सहानुभूति का पता चलाया। उसमें अपने स्वामी को उच्चतम आसन पर आसीन देखने तथा उस वास्तविक या कल्पित अन्याय का प्रतिशोध प्राप्त करने के लिए विचित्र उत्साह तथा निर्भय इच्छाशक्ति थी,

जिसको उसने नारायणराव तथा सम्भवत: स्वयं माधवराव के कारण सहन किया था। वायुमण्डल में विद्यमान षड्यन्त्र के संदिग्ध तथा बिखरे तत्त्वों को निश्चित रूप देने का, उसके सम्पादनार्थ योग्य व्यक्तियों को चुनने का तथा उनको वे कार्य सौंपने का जिनकी उनसे अपेक्षा थी, तुलाजी ने यथाशक्ति प्रयत्न किया। चूँकि वह राजभवन का पुराना तथा सुपरिचित व्यक्तिगत सेवक था, अत: उसको तब तक अकस्मात् नहीं निकाला जा सकता था, जब तक उस पर गम्भीर षड्यन्त्र का सन्देह न हो जाये। उसको अपने स्वामी के पास निर्बाध प्रवेश की सुविधा प्राप्त थी। वह राजभवन में बन्दी रघुनाथराव तथा उसकी पत्नी आनन्दीबाई के साथ और राजभवन के बाहर उपस्थित गार्दी सरदारों के साथ परामर्श द्वारा सुविधापूर्वक षड्यन्त्र के विभिन्न भागों की रचना कर सकता था। षड्यन्त्रकारियों का आरम्भ में केवल यह विचार था कि नारायण-राव को बन्दी बना लें तथा रघुनाथराव को उसके आसन पर बैठा दें। अत: रघुनाथराव ने सावधानीपूर्वक अपनी अभीष्ट योजना के प्रति सखाराम बापू की प्रतिक्रिया जानने का प्रयत्न किया। सम्भवत: बापू का सच्चाई के साथ यह विश्वास था कि रघुनाथराव किसी भी प्रकार अपने भतीजे से कम योग्य नहीं है। इसमें सन्देह नहीं है कि नारायणराव के पक्ष के प्रति बापू उत्साहशील न था किन्तु वह पेशवा की कोई व्यक्तिगत हानि नहीं चाहता था, इसलिए सखाराम बापू ने कोई सक्रिय प्रयास नहीं किया कि वह इस योजना को सहायता दे या रोके।

मोरोबा फड़निस भी कार्यकारी सरकार का सदस्य था, परन्तु अपने ज्येष्ठ सहयोगी बापू की भाँति उसकी वृत्ति भी उदासीन थी। हरिपन्त फड़के भी अपने मित्र नाना की भाँति विभाग भावना धारण किये हुए थे। इस प्रकार यदि इन पृथक-पृथक उत्तरदायी परामर्शदाताओं के परस्पर विरोधी विचारों का ध्यान रखा ज़ाये, तो हत्या की रोकथाम न होने पर आश्चर्य नहीं होना चाहिए। नारायणराव ने अपने बन्दी चाचा को गार्दी लोगों के अधिकारी सुमेरसिंह के निकट निरीक्षण में रख छोड़ा था। इस प्रकार उसका प्रवेश राघोबा तक स्वतन्त्र था। तुलाजी ने उसको तैयार कर लिया कि वह मुहम्मद यूसुफ, खड़गसिंह तथा बहादुरखाँ के साथ षड्यन्त्र में सम्मिलित हो जाये। इस प्रकार योजना को कार्यान्वित करना सरल हो गया। नारायणराव को बन्दी बना लेना ही एकमात्र उपाय प्रतीत हुआ जिसके द्वारा रघुनाथराव के कष्ट दूर हो सकते थे। तुलाजी ने आग्रहपूर्वक इस प्रकार कहा—"आप चार सरदारों में से प्रत्येक के पास एक-एक हजार आदमी हैं तथा आप सुविधा-पूर्वक इस कार्य को कर सकते हैं।" सुमेरसिंह ने उत्तर दिया—"इस साहसिक कार्य में यदि हम असफल रहे तो हमारे प्राण संकट में पड़ जायेंगे। अत:

हमको कुछ ठोस पुरस्कार मिलना चाहिए।" अतः इस बात पर सहमति हो गयी कि उद्देश्य-पूर्ति होने पर गार्दी सरदारों को तीन लाख रुपये का नकद पुरस्कार दिया जायेगा। रघुनाथराव की लिखित आज्ञा प्राप्त करके भी इन चार गार्दी सरदारों को दे दी गयी किन्तु इसका आशय था कि पेशवा को "पकड़ लिया जाये।" बाद को ये शब्द मिटा दिये गये तथा 'पेशवा बखर' के अनुसार आनन्दीबाई ने उनके स्थान पर "मार दिया जाये" लिख दिया। परन्तु वास्तव में यह परिवर्तन किसने किया, इस रहस्य का उद्घाटन कभी नहीं हुआ। आनन्दीबाई ने सदैव यही कहा कि इस घटना में उसका कोई हाथ नहीं था। 'नागपुर बखर' के अनुसार लक्ष्मण काशी ने गार्दी सरदारों को रघुनाथराव द्वारा लिखित वचन दिया जिसमें प्रतिज्ञा की गयी थी कि नारायण-राव को बन्दी बना लेने पर उनको तीन लाख रुपये का पुरस्कार दिया जायगा। इस प्रकार रघुनाथराव द्वारा षड्यन्त्र की रचना की गयी। उसके साथी गार्दी लोग तथा साधन तुलाजी पवार और लक्ष्मण काशी थे। डफ के कथनानुसार जब रामशास्त्री ने इस काण्ड की पूरी जाँच की, तो वह पत्र उसके सम्मुख उपस्थित किया गया जिसमें "पकड़ लिया जाये" को मिटाकर उसके स्थान पर 'मार दिया जाये" लिख दिया गया था। इस समय उस पत्र का पता नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि जब रघुनाथराव की प्रेरणा पर गार्दी सरदारों ने इस साहसिक कार्य को अंगीकार किया, तो उनको आभास हुआ कि बन्दी बनाने के कार्य में पेशवा की ओर से सशस्त्र प्रतिरोध उपस्थित होने पर पेशवा की हत्या की भी सम्भावना है। अतः जब उन्होंने इस कठिनाई को मध्यस्थों द्वारा प्रस्तुत किया, तब रघुनाथराव ने संघर्ष के बीच पेशवा की मृत्यु होने पर उन लोगों को हत्या के उत्तरदायित्व से मुक्त कर देने का आश्वासन दिया। यही कारण है कि अनुबन्ध के महत्त्वपूर्ण शब्दों में परिवर्तन कर दिया गया था।

७. **हत्या सम्पन्न**—१६ अगस्त से षड्यन्त्र जोर पकड़ने लगा। इस महत्त्वपूर्ण समय में नारायणराव मानो मरने ही के लिए घोर असावधान रहा। कोलाबा का रघुजी आंग्रे पूना आया हुआ था। वह पेशवा से मिला। पेशवा को इस भेंट के बदले में भेंट करनी थी, जो सोमवार को ३० अगस्त के प्रभात के लिए निश्चित की गयी। लगभग १० बजे प्रातःकाल नारायणराव नगर के बाहर आंग्रे के निवास-स्थान को हरिपन्त फड़के के साथ गया। अपने वार्ता-लाप में रघुजी ने पेशवा का ध्यान उन प्रवादों की ओर आकृष्ट किया जिनको उसने सुना था, तथा उसको सावधान किया कि वह अपने जीवन के प्रति आने वाले संकट से सतर्क रहे। इस भेंट के समाप्त होने पर पेशवा तथा फड़के पार्वती के मन्दिर को गये जहाँ पर अतिथि तथा निमन्त्रित सज्जनों के साथ

उनका उस दिन का नाश्ता निश्चित था। नाश्ता समाप्त होने पर हरिपन्त के साथ पेशवा अपने राजभवन को वापस आ गया। मार्ग में पेशवा ने हरिपन्त को बताया कि उसने आंग्रे से क्या-क्या सुना था तथा उससे कहा कि इस दुष्कर्म को रोकने के लिए अविलम्ब उपाय करे। हरिपन्त ने पेशवा को विश्वास दिलाया कि मध्याह्न का भोजन करने के बाद वह इस कांड की ओर ध्यान देगा क्योंकि उसको यह भोजन अपने एक मित्र के साथ करना था। पेशवा राजभवन में पहुँचकर विश्राम के लिए अपने कमरे में चला गया। तुल्या पवार को किसी प्रकार इसकी गन्ध लग गयी कि पेशवा को पूर्व-चेतावनी प्राप्त हो गयी है। उसने गार्दी सरदारों को संकेत किया कि यदि वे अपनी योजना को तुरन्त कार्यान्वित नहीं करेंगे तो सबके सब मारे जायेंगे क्योंकि उनका भेद खुल गया है। इस सूचना पर अपने चारों सरदारों के अधीन लगभग ५०० गार्दियों का सशस्त्र दल तुरन्त राजभवन में घुस आया। वे राजभवन के पीछे के उस फाटक से घुसे थे जो चौड़ा किया जा रहा था। फाटक पर नियुक्त कुछ कर्तव्यनिष्ठ व्यक्तियों को उन्होंने काट डाला तथा अपने चिरविलम्बित वेतन को चुकाने की माँग की।

तीसरे पहर के लगभग एक बजे का समय था। उपस्थित कर्णिकों (लिपिकों) तथा नौकरों ने विद्रोहियों को समझाया। उन्होंने कहा कि वे हल्लागुल्ला करके अपने स्वामी के विश्राम में विघ्न न डालें और उनकी शिकायतें तथा दुख-दर्द कार्यालय में सुने जायेंगे। इस पर वे विरोधी कर्णिक भी काट डाले गये। उनमें से एक ने एक गाय के पीछे शरण ली जो वहाँ सदैव ताजे दूध के लिए रखी जाती थी। गार्दियों ने उस गाय तथा मनुष्य के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। उन्होंने अगले फाटक को बन्द कर दिया तथा ऊपर के जीने से पेशवा के कमरे की ओर बढ़े। उनके हाथों में नंगी तलवारें थीं तथा वे कान फोड़ने वाला भारी शोर कर रहे थे। निवासियों के त्रास तथा शोक के चीत्कारों से राजभवन गूँज उठा, परन्तु दुर्निवार आक्रमण का विरोध किसी से न हो सका। अपने जीवन के प्रति भयग्रस्त तथा सर्वथा निरस्त्र नारायणराव अपने कमरे के पिछले द्वार से अपनी चाची पार्वतीबाई के कमरे में भाग गया। उसने पेशवा को निर्देश दिया कि अपने चाचा के पास जाये तथा उससे रक्षा की याचना करे। तब वह उस स्थान पर गया जहाँ रघुनाथराव पूजा कर रहा था। उसने राघोबा के पैर पकड़कर अपनी रक्षा की प्रार्थना की तथा उससे पेशवा होने एवं अपने लिये प्राणदान की याचना की। सुमेरसिंह तथा गार्दियों ने, जो इस बीच पेशवा का अति निकट से पीछा कर रहे थे, उसको उसके चाचा के पास से खींच लिया। तुल्या पवार उसको निर्दयतापूर्वक घसीटकर बाहर ले आया, तथा सुमेरसिंह ने उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। नारायणराव का सेवक चंपाजी

तिलेकर रक्षा करने के उद्देश्य से अपने स्वामी के शरीर पर लेट गया। उसके साथ कुछ दासियाँ भी थीं। वे सब भी निर्दयतापूर्वक काट डाले गये। इस प्रथम भीड़भाड़ के कुछ समय बाद नारोबा नायक नामक एक वृद्ध तथा विश्वस्त व्यक्ति जो राजभवन में सेवा-कार्य पर नियुक्त था, वहाँ आया। उसने रघुनाथराव की उसकी स्वयं की उपस्थिति में इस पाप-कर्म की सम्पन्नता के लिए घोर निन्दा की। इस पर क्रुद्ध गार्दियों ने उस निरपराध व्यक्ति को भी मार डाला। इस प्रकार आधे घण्टे के अल्प समय में ही उस प्रसिद्ध राजभवन में निर्दयतापूर्वक ग्यारह व्यक्तियों की हत्या की गयी। इनमें से सात ब्राह्मण थे तथा दो मराठा नौकर और दो दासियाँ थीं। इसके अतिरिक्त एक गाय भी थी जो जीवन के लिए उनसे कम पवित्र न थी। यह समस्त घटना एक ब्राह्मण नगर के बीच घटित हुई। फोर्ब्स ने इन विवरणों का समर्थन करते हुए लिखा है कि "इस दुखद परिणाम के अनेक विवरण हैं। पेशवा परिवार तथा अधिकांश मराठा राष्ट्र ने हत्या का आरोप राघोबा पर किया। कुछ मराठा सरदारों तथा उसके अनेक पक्षपातियों ने उसकी निर्दोषता का प्रतिपादन किया। किन्तु जब हम उसके महत्त्वाकांक्षी चरित्र तथा उस समय उसकी विचित्र परिस्थितियों पर विचार करते हैं, तो उसको दोषमुक्त करना कठिन हो जाता है।"

इस समाचार को सुनते ही हरिपन्त फड़के ने अति शीघ्रता से सेना तथा तोपखाने सहित महल को घेर लिया, परन्तु उसको पता न था कि अन्दर क्या हो रहा है, इसलिए वह भवन पर गोलाबारी नहीं कर सका। इस बीच में सरदार लोग तथा उच्च अधिकारी बुधवार की पुलिस चौकी पर एकत्र हो गये। इनमें नाना फड़निस भी था। उन्होंने भविष्य की योजनाओं पर विचार-विनिमय किया। भवनराव प्रतिनिधि, मालोजी घोरपड़े तथा अन्य प्रभावशाली व्यक्ति घटना का वास्तविक समाचार प्राप्त करने के लिए राजभवन में गये। गार्दी लोग राजभवन की रक्षा कर रहे थे। उन्होंने इन लोगों को रघुनाथराव के पास जाने की आज्ञा तभी दी जबकि उन्होंने अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र बाहर जमा कर दिये। अन्दर जाकर उन्होंने देखा कि रघुनाथराव नीचे की मंजिल के प्रांगण में बैठा हुआ है तथा नंगी तलवारें लिये हुए गार्दी लोग उसके चारों ओर खड़े हैं। इस बीच उन लोगों ने राजभवन के उपकरणों, रसोई तथा मन्दिर के बर्तनों, सोने-चाँदी के थालों तथा अन्य अनेक वस्तुओं को लूट लिया था। आगन्तुकों ने इन अत्याचारों का दोष रघुनाथराव पर लगाया तथा नगर के कुछ साहूकारों की सहायता से हल्ला करने वाले गार्दियों को शान्त कर दिया। अर्द्धरात्रि के पहले गार्दियों ने शवों को हटाने तथा दाह-संस्कार करने तक की अनुमति नहीं दी। पेशवा के शरीर के कटे हुए टुकड़े एकत्र किये गये तथा एक बोरे में भरकर दाह-संस्कार के लिए भेज दिये गये।

गार्दियों ने इसके पहले ही रघुनाथराव को राज्य का स्वामी घोषित कर दिया था तथा उसके चुने हुए अधिकारी उसके पास पहुँच चुके थे। सखाराम बापू को इतना धक्का लगा कि उसने नवीन प्रशासन में कोई भी भाग न लेने की इच्छा व्यक्त की। वह इतना पराभूत तथा विक्षिप्त हो गया कि वह नगर से भाग गया। उसको यह विचार व्यथित कर रहा था कि वह माधवराव तथा रमाबाई से की गयी नारायणराव की रक्षा करने की अपनी प्रतिज्ञा का पालन नहीं कर सका। उसको सती के शाप का भय था।

नाना फड़निस ने भी अपने पद का त्याग कर दिया तथा रघुनाथराव की नवीन व्यवस्था से पृथक रहा। रघुनाथराव को उससे कोई प्रेम न था। ऐसा मालूम होता है कि रघुनाथराव के विरोध करने पर भी सर्वोच्च न्यायाधीश के रूप में रामशास्त्री ने तुरन्त इस काण्ड की जाँच प्रारम्भ कर दी। जाँच कार्य लगभग छह सप्ताह तक चला और न्यायालय की पूछताछ की सामान्य पद्धति द्वारा निर्णय किये गये। रघुनाथराव ने पुराने मन्त्रियों की अनुपस्थिति में चिन्दो विट्ठल तथा मोरोबा फड़निस की सहायता से राज्य का प्रशासन आरम्भ कर दिया। चूँकि पेशवा के परिवार में उत्तराधिकार पद पर अपना स्वत्व रखने वाला कोई अन्य पुरुष नहीं था, अतः अधिकांश लोग केवल आवश्यकतावश नवीन शासन से सहमत हो गये यद्यपि हृदय से उनकी इच्छा हत्यारे के शासन को स्वीकार करने की नहीं थी।

पूना की इस भयानक घटना के कारण समस्त भारत में मराठा राज्य के शत्रुओं को यह प्रेरणा हुई कि वे इस सत्ता के विरुद्ध विद्रोह करें तथा उनके घर के विप्लव से लाभ उठायें। समस्त देश में सनसनी की लहर फैल गयी जिसके कारण प्रत्येक दिशा में मराठा शासन के लिए संकट उपस्थित हो गया। सौभाग्यवश किसी ने स्वयं पूना पर सीधा आक्रमण नहीं किया। नासिक में पेशवा की माता अपने पुत्र की मृत्यु पर अत्यन्त शोकातुर हो गयी। उसके तीन पुत्र थे। ज्येष्ठ पुत्र विश्वासराव का देहान्त १९ वर्ष की आयु में पानीपत के रणक्षेत्र में हुआ था। माधवराव का देहान्त ओजस्वी जीवन के पश्चात २८ वर्ष की आयु में घातक रोग के कारण हो चुका था। अब उसके एकमात्र जीवित पुत्र की हत्या हो गयी थी। वह इतनी दुखित हुई कि उन्माद की अवस्था में उसने जीवन की समस्त सुविधाओं का त्याग कर दिया तथा नारियल के आधे खोल को भिक्षा-पात्र के रूप में ग्रहण कर घर-घर भिक्षा माँगने लगी। एक वर्ष से अधिक वह ऐसा ही आचरण करती रही। जब मन्त्रीगण हत्यारे को पूना से निकालने में सफल हो गये और नारायणराव की पत्नी गंगाबाई ने सौभाग्यवश उत्तराधिकारी को जन्म दे दिया, तब मन्त्रियों के बहुत आग्रह पर उसको अपनी साधारण मनःशान्ति प्राप्त हो सकी।

स्वयं रघुनाथराव ने कभी किसी प्रकार के साहस या निर्णयकारी शक्ति का परिचय नहीं दिया। बहुत दिनों तक उसको यह हिचकिचाहट रही कि वह किस प्रकार से अपने दल का उत्तम संगठन करे तथा उस क्रोधपूर्ण विरोध और विक्षुब्ध वातावरण में अपनी स्थिति को सुरक्षित बनाये। फोर्ब्स लिखता है कि "वह कातर, अकर्मण्य तथा सन्देहग्रस्त हो गया था। उसकी बुद्धि को अन्धविश्वास ने घेर लिया था। उसका मन निर्बल हो गया था। इसका कारण या तो वह घोर यातना थी जिसका सहन उसने कुछ ही पहले तक किया था, या आहत अन्तःकरण की व्याकुलता थी।" मोस्टिन उस समय पूना में था और प्रायः रघुनाथराव से मिलता रहता था तथा उसको आवश्यकता पड़ने पर ब्रिटिश सहायता का आश्वासन दिया करता था।

नागपुर के दोनों दूत (एजेण्ट) रघुनाथराव के प्रति अपनी भक्ति में निश्चल रहे। हत्या के दिन उसने लक्ष्मण काशी को एक प्रेमपूर्ण पत्र देकर मुधोजी भोंसले के पास भेज दिया था तथा उसको निमन्त्रण दिया था कि वह अपना समस्त दल लेकर अविलम्ब पूना पहुँच जाये। नागपुर का दूसरा दूत वेंकटराव प्रशासन पर रघुनाथराव के नियन्त्रण को पुष्ट करने में सहायता करने के विचार से पूना में ठहरा रहा। दशहरा का त्यौहार २५ सितम्बर को साधारण रूप से मनाया गया। उस दिन रघुनाथराव ने डेरे में ही वास किया। उसका अभिप्राय निजामअली तथा हैदरअली की ओर से राज्य के लिए धमकी के रूप में उपस्थित किये गये संकट का यथाशक्ति प्रतिकार करना था। इस बीच में वह मुख्यतया गार्दी सरदारों की चिन्ताजनक माँगों को निपटाने में व्यस्त था। व्यावहारिक रूप में समस्त सत्ता इन्हीं के हाथों में थी। इस समय उनका एकमात्र उद्देश्य यह था कि अपनी सेवाओं के निमित्त जितना भी धन तथा पुरस्कार ले सकें, ले लें। उस समय गार्दियों की माँगों को निपटाने में भवनराव प्रतिनिधि ने रघुनाथराव के वकील का कार्य किया, तथा कुछ कठोर वाग्युद्ध के बाद वह राजभवन के इन अशुभ मित्रों से छुटकारा पाने में सफल हो गया। उसने इनको ५ लाख का समस्त धन चुका दिया। इसके अतिरिक्त उनको ३ लाख रुपये उन तीन गढ़ों के स्थान पर दिये जिनको वे अपने सुरक्षित आश्रय-स्थान के लिए माँगते थे। इन सन्धि-प्रस्तावों के बीच गार्दी लोग यहाँ तक बढ़ गये थे कि उन्होंने रघुनाथराव को धमकी दी कि यदि उनकी माँगें स्वीकार न की गयीं तो वे अलीबहादुर (शमशेर बहादुर के पुत्र) को पेशवा बना देंगे। उन्होने बलपूर्वक उससे एक लिखित प्रतिज्ञा-पत्र भी प्राप्त कर लिया कि वह बाद में भी समस्त प्रकार की परिस्थितियों से उनकी रक्षा करेगा। अब रघुनाथराव के पास गार्दी सरदार, सखाराम हरि, सदाशिव रामचन्द्र, वेंकटराव काशी, अबाजी महादेव, तुल्या पवार, मोरोबा फड़निस, मालोजी घोरपड़े, गोविन्दराव

गायकवाड़, मानाजी फड़के तथा मुधोजी भोंसले जैसे द्वितीय श्रेणी के व्यक्तियों के अतिरिक्त कोई शक्तिशाली सहायक या समर्थक नहीं था। आगामी घटनाओं के वृत्तान्त में उन सबके दर्शन होंगे। रघुनाथराव के एक शक्तिशाली सहायक गंगाधर यशवन्त की २९ फरवरी, १७७४ ई० को मृत्यु हो जाने से उसका पक्ष बहुत निर्बल पड़ गया।

पूना तथा बाहर के स्थानों में जनता में यह भावना प्रबल थी कि यदि रघुनाथराव हत्यारा सिद्ध हो जाये तो उसे पेशवा के आसन पर न रहने दिया जाये, क्योंकि "पवित्र ब्राह्मण जाति में एक भी उदाहरण ऐसा न था कि उस जाति के एक व्यक्ति ने उसी जाति के दूसरे व्यक्ति की हत्या की हो। हिन्दुओं के इतिहास में एक भी ब्राह्मण की हत्या का उल्लेख नहीं है। उसी पवित्र जाति के एक निकट सम्बन्धी द्वारा प्रेरित तलवार के कारण इस कार्य की जघन्यता और भी अधिक भयानक रूप में बढ़ जाती है।[९]

हत्यारे को शासक रूप में मान्यता न देने के इस प्रस्ताव की पुष्टि गुप्त रूप से दसवें के दिन (८ सितम्बर) हो गयी जब सम्बन्धी तथा अधिकारीगण तिलांजलि दान द्वारा मृतक आत्मा के प्रति अपनी अन्तिम श्रद्धा अर्पित करने श्मशान भूमि में एकत्र हुए। इस अवसर पर विरोध के प्रथम चिह्न दृष्टिगत हो गये तथा सखाराम बापू, नाना हरिपन्त, पटवर्धन परिवार, रस्ते परिवार तथा अन्य व्यक्तियों ने यह निश्चय किया कि यदि रामशास्त्री द्वारा की जा रही जाँच से यह सिद्ध हो गया कि उस हत्या का अपराधी रघुनाथराव है तो वे उसका साथ नहीं देंगे।

इसका कोई कारण नहीं बताया जा सकता कि रघुनाथराव को छत्रपति से पेशवा की पोशाक इतने विलम्ब से क्यों प्राप्त हुई? उसने अमृतराव को सतारा भेजा। १० अक्टूबर को उसे पोशाक प्राप्त हो गयी, परन्तु उसने पूना के पूर्ण दरबार में उसे विधिपूर्वक धारण न किया। उसने अक्टूबर के अन्तिम दिवस को भीमा नदी के समीप आलेगाँव नामक स्थान पर उसे धारण किया। इस समय उसने अपनी मुद्रा भी तैयार की जिस पर से जानबूझकर रामराजा का नाम हटा दिया क्योंकि वह अशुभ था।

अपनी मृत्यु के पहले नारायणराव ने उत्तर भारत में नियुक्त अपनी सेनाओं की वापसी के लिए आज्ञा भेज दी थी। तदनुसार विसाजी कृष्ण अपने हिसाबों को साफ करके तथा अपने अभियान के शेष कार्यों को समाप्त करके वापस आ

---

९ फोर्ब्स कृत 'ओरिएण्टल मेमॉयर्स', पृ० ३०३। पेशवा का दम्भ था—"हमारी प्रजा विश्वासघाती कार्य नहीं करती है।" हिंगने दफ्तर, जिल्द १, पृ० ११७

गया। वह पेशवा की हत्या के बाद शीघ्र पूना पहुँचा। वह अपने साथ २२ लाख रुपये नकद लाया था। इसके अतिरिक्त आभूषण तथा अन्य बहुमूल्य वस्तुएँ भी थीं। इन पर रघुनाथराव ने लोभवश अधिकार कर लिया जिससे उसका समुपस्थित आर्थिक कष्ट निस्सन्देह दूर हो गया।

८. रामशास्त्री द्वारा अपराधी का अन्वेषण तथा दण्ड—इस बीच में रामशास्त्री ने ३० अगस्त को घटित हत्याओं की जाँच समाप्त कर ली थी। पूर्व-वृत्तान्त से यह स्पष्ट हो गया होगा कि पेशवा की हत्या पूर्णतया विचार-पूर्वक की गयी थी, जिसके लिए रघुनाथराव के कई अनुचर बहुत दिनों से गुप्त तैयारियाँ कर रहे थे। वैसे उनका मूल अभिप्राय पेशवा को केवल बन्दी बनाना था। रामशास्त्री ने रघुनाथराव को मुख्य दोषी तथा उसके अतिरिक्त लगभग ५० व्यक्तियों—४९ पुरुष तथा एक दासी—को अपराध के लिए न्यूनाधिक रूप से उत्तरदायी पाया। इन ४९ में से १३ गार्दी थे—८ हिन्दू तथा ५ मुस्लिम। इन १३ के अतिरिक्त २६ ब्राह्मण, ३ प्रभु तथा ७ मराठे अपराधी सिद्ध हुए। ये २६ ब्राह्मण अधिकांशतः कर्णिक थे जिन्होंने षड्यन्त्र के विविध अंगों की रचना में तथा इसके अन्तिम सम्पादन में भाग लिया था। यह घोषणा की गयी कि तीन प्रभुओं—वेंकटराव काशी, उसके भाई लक्ष्मण तथा सखाराम हरिगुप्ते—ने षड्यन्त्र के पोषण में मुख्य भाग लिया है।

ऐसा ज्ञात होता है कि नाना फड़निस का विश्वास था कि सखाराम बापू तथा मोरोबा फड़निस न्यूनाधिक रूप से मुख्य षड्यन्त्र की रचना से सम्बन्ध रखते थे। जब सत्ता उसके हाथ में आयी तो इनको कारावास का दण्ड दिया गया, यद्यपि उस समय उन पर अन्य प्रकार के अपराधों के भी आरोप लगाये गये। नाना फड़निस आनन्दीबाई को भी अपने पति के साथ समान रूप से उत्तरदायी समझता रहा, परन्तु इस चतुर तथा सावधान महिला का नाम किसी प्रामाणिक पत्र में नहीं था जो उसके अपराध की घोषणा करता हो। सम्भवतः पेशवा परिवार की महिला होने के कारण (उस समय उसकी अवस्था लगभग २५ वर्ष थी) उसका नाम जानबूझकर छोड़ दिया गया था, परन्तु नाना फड़निस ने सदैव उसके साथ इस प्रकार का व्यवहार किया मानो वह घृणित अपराधी हो तथा उसको जीवन-भर कारागार में रखा।

सत्ता इस समय रघुनाथराव के हाथ में थी तथा दण्ड को कार्यान्वित करना भी उसी का कार्य था इसलिए दण्ड को कार्यान्वित करने का काम बहुत दिनों तक स्थगित रखा गया, तथा बाद को ब्रिटिश-मराठा-युद्ध के कठिन समय में उनका अलग-अलग करके पालन किया गया। जब रघुनाथराव ने पेशवा का पद ग्रहण कर लिया, तो रामशास्त्री (सम्भवतः आले गाँव में) उसके पास गया

तथा उसने उन आज्ञाओं का पालन करने के लिए कहा जो उसने दी थीं। रघुनाथराव ने तर्क किया कि हत्या व्यक्तिगत रूप से हुई थी तथा रामशास्त्री का उससे कोई सम्बन्ध न था। परन्तु वीर न्यायाधीश ने स्वयं उसके साथ इस विषय पर तर्क किया तथा उसके सम्मुख कह दिया कि वह स्वयं मुख्य अपराधी पाया गया है, इसलिए मृत्युदण्ड का पात्र है। इस प्रकार रघुनाथराव तथा जनता दोनों को मालूम हो गया कि सुशासित राज्य में न्याय-विभाग को क्या अधिकार प्राप्त हैं तथा उसकी सुरक्षा के निमित्त वह विभाग क्या सहायता दे सकता है। फिर भी रघुनाथराव ने इस महान न्यायाधीश को उसके पद से अलग कर दिया। रामशास्त्री शान्तिपूर्वक अपने जन्म-स्थान को चला गया। जब एक वर्ष से भी अधिक समय के बाद बार भाइयों के शासन ने उसको उसके स्थान पर वापस बुलाया तो उसने तब तक आसन ग्रहण करना स्वीकार नहीं किया जब तक कि उसको गम्भीर शपथ सहित उसके कर्तव्यपालन में कभी कोई हस्तक्षेप न करने तथा न्यायाधीश के रूप में उसके द्वारा दी गयी प्रत्येक आज्ञा को सच्चाई से कार्यान्वित करने के विषय में लिखित प्रतिज्ञा न दे दी जाये।[७]

बाद में बार भाइयों ने इंगलैण्ड के राजा को लिखकर स्पष्ट स्वीकार किया कि रघुनाथराव ने अपने भतीजे की हत्या की है तथा ब्रिटिश सत्ता से प्रार्थना की कि वह अपराधी का समर्थन न करे। इस पत्र को ५ नवम्बर, १७७७ ई० को गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिंग्ज ने राजा के पास भेज दिया। इस प्रकार यह प्रकट हो जायेगा कि दोषियों को अविलम्ब दण्ड देने का कोई साधन भी प्राप्त नहीं था। जैसे ही रामशास्त्री ने रघुनाथराव को मुख्य अपराधी घोषित किया, प्रशासन तथा जनता में से अनेक लोगों ने रघुनाथराव को राज्य का वैध मुख्य पुरुष मानने से इनकार कर दिया। शीघ्र ही बार भाइयों (बारह साथियों) की सभा का निर्माण हुआ, जिसने रघुनाथराव को उसके स्थान से निकाल दिया। इसके कारण ब्रिटेन से युद्ध हुआ जो प्रथम मराठा युद्ध कहलाता है। यह युद्ध १७७४ से १७८२ ई० तक ८ वर्ष चलता रहा।

मुख्य हत्यारे रघुनाथराव को न्यायसंगत दण्ड देने तथा ब्रिटिश आक्रमण से राज्य की रक्षा करने के लिए इस दीर्घकालीन तथा अति-व्ययसाध्य युद्ध को अंगीकार करना पड़ा। इसका परिणाम यह हुआ कि अन्त में रघुनाथराव तथा उसका परिवार गिरफ्तार कर लिया गया और उनको दण्ड दिया गया। अपने आत्मसमर्पण के बाद रघुनाथराव बहुत दिनों तक जीवित न रहा। उसने अपने अपराध को स्वीकार कर लिया और अपनी मृत्यु से पहले नासिक के स्थान पर

[७] देखो 'सिलेक्शन्स फ्रॉम द पेशवाज दफ्तर', ४६, ५४, ५७। अन्तिम पत्र पर २६ सितम्बर, १७७४ ई० का दिनांक है।

अपने पाप का प्रायश्चित्त किया। उस अवसर पर उसने यह मानने से इनकार कर दिया था कि उसके भतीजे की हत्या में उसका सीधा हाथ था, परन्तु अपने उत्तरदायित्व को इस अंश तक स्वीकार किया था कि उसने नारायणराव को पकड़ने के प्रयास में उसकी हत्या हो जाने पर गार्दी सरदारों को लिखित रूप से दोषमुक्त कर दिया था। इस कथा का समर्थन मुहम्मद यूसुफ अपनी साक्षी में करता है। उसने कहा था कि "पेशवा की हत्या का कोई षड्यन्त्र या इरादा न था। उनका उद्देश्य केवल इतना था कि उसको बन्धन में डाल दें।" आनन्दीबाई को अवश्य पता रहा होगा कि क्या हो रहा है परन्तु उसने हत्या को रोकने की चेष्टा नहीं की।

मुख्य अपराधियों में रघुनाथराव का एक व्यक्तिगत सेवक तुल्या पवार तथा ४ गार्दी और ३ प्रभु सरदार भी थे। रघुनाथराव अपने पूर्ण सामर्थ्य से उनकी बहुत दिनों तक रक्षा करता रहा। युद्ध में उन सबने भी उसका साथ दिया तथा निष्ठापूर्वक सेवा की। परन्तु उसको शीघ्र पता चल गया कि वह उनकी रक्षा नहीं कर सकता। तब उसने समीपवर्ती सत्ताओं से अनुरोध किया कि वे उनको अपने यहाँ शरण दें। उसने मुहम्मद यूसुफ को मुधोजी भोंसले के पास भेज दिया तथा तुल्या पवार और खड्गसिंह को हैदरअली के पास। इसी प्रकार सुमेरसिंह को इन्दौर भेज दिया गया जहाँ जुलाई, १७७४ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी। १८ अप्रैल को मृत पेशवा की पत्नी ने एक पुत्र को जन्म दिया जिसको पेशवा पद के वस्त्र प्रदान किये गये। इस घटना के कारण रघुनाथराव अपनी स्थिति से अविलम्ब पृथक हो गया तथा आजीवन घूमते रहने पर विवश हो गया। मराठा राज्य पर बार भाइयों का शासन पुष्ट हो गया। उस समय तक अधिकांश अपराधी पकड़ लिये गये तथा उनको दण्ड दिया गया। बार भाइयों ने मुधोजी भोंसले को मुहम्मद यूसुफ की रक्षा का भार छोड़ने पर विवश कर दिया। वह कुछ समय तक मध्य भारत के जंगलों में छुपा रहा परन्तु उसका पता लगाकर पकड़ लिया गया तथा १७७५ ई० में उसको प्राण-दण्ड दिया गया। खड्गसिंह तथा तुलाजी पवार को १७८० ई० में हैदरअली ने पूना के शासन को लौटा दिया। उनका वध शारीरिक यातनाएँ देकर किया गया। वेंकटराव काशी तथा सखाराम हरि को आजीवन कारावास भोगना पड़ा। अन्य अपराधियों में से अधिकांश अपनी कारावास अवधियाँ समाप्त करने पर उन्मुक्त कर दिये गये। इस प्रकार नाना फड़निस उचित रूप से यह गर्व कर सकता था कि उसने ८ वर्षों तक सतत एवं घोर परिश्रम के बाद नारायणराव की मृत्यु का पूर्ण प्रतिशोध ले लिया था।

तिथिक्रम

अध्याय २

१७ सितम्बर, १७७३	अंग्रेजों का तुलाजी से तंजौर छीनना ।
अक्टूबर, १७७३	रघुनाथराव का पूना से कर्णाटक जाना ।
१८ नवम्बर, १७७३	रघुनाथराव तथा निजामअली का बीदर के समीप मिलन ।
२ दिसम्बर, १७७३	थाना के विरुद्ध ब्रिटिश अभियान का आरम्भ ।
८ दिसम्बर, १७७३	मोस्टिन का पूना से बम्बई पहुँचना ।
१३ दिसम्बर, १७७३	रघुनाथराव का बीदर से अर्काट जाना ।
२८ दिसम्बर, १७७३	थाना पर ब्रिटिश अधिकार ।
६ जनवरी, १७७४	रघुनाथराव का तुंगभद्रा नदी पर पहुँचना ।
१८ जनवरी, १७७४	गंगाबाई का पुरन्दर पहुँचना और रघुनाथराव के विरुद्ध युद्ध आरम्भ ।
१७ फरवरी, १७७४	रघुनाथराव के राज्यापहारी होने की घोषणा ।
३ मार्च, १७७४	पेठे, सबाजी तथा निजामअली का गुलबर्गा में मिलन; रघुनाथराव के विरुद्ध योजनाएँ तैयार ।
मार्च, १७७४	रघुनाथराव का तुंगभद्रा से मिरज जाना ।
२६ मार्च, १७७४	कासेगाम की लड़ाई—पेठे घायल ।
२ अप्रैल, १७७४	पेठे की मृत्यु; रघुनाथराव का उत्तर को भागना ।
१८ अप्रैल, १७७४	गंगाबाई का पुत्र को जन्म देना ।
अप्रैल का अन्त, १७७४	रघुनाथराव का इन्दौर पहुँचना ।
२८ मई, १७७४	माधवराव द्वितीय को पेशवा की पोशाक प्राप्त ।
जुलाई, १७७४	सिन्धिया तथा होल्कर के साथ रघुनाथराव का पूना जाने के लिए नर्मदा पार करना ।
अक्टूबर, १७७४	रघुनाथराव का बुरहानपुर पहुँचना ।
२६ अक्टूबर, १७७४	वारेन हेस्टिंग्ज गवर्नर-जनरल नियुक्त ।
२४ नवम्बर, १७७४	बापू तथा नाना का पुरन्दर से बुरहानपुर जाना ।
१० दिसम्बर, १७७४	रघुनाथराव का धार को जाना ।
३ जनवरी, १७७५	रघुनाथराव का गोधरा होकर बड़ौदा पहुँचना ।
२६ जनवरी, १७७५	पंचगाम का युद्ध, सबाजी भोंसले की मृत्यु ।

१७ फरवरी, १७७५	अड़ास का युद्ध, रघुनाथराव परास्त, उसका कैम्बे को भागना ।
६ मार्च, १७७५	रघुनाथराव का सूरत पहुँचना ।
८ मार्च, १७७५	हेस्टिंग्ज द्वारा सूरत का सन्धि-पत्र अनधिकृत घोषित ।
१५ मार्च, १७७५	रघुनाथराव का सूरत से ब्रिटिश सेना सहित कैम्बे को जाना ।
२८ मार्च, १७७५	माही नदी पर अनिर्णायक युद्ध, दोनों सेनाएँ वर्षा-ऋतु के कारण वापस ।
१० जुलाई, १७७५	हेस्टिंग्ज का अपटन को मन्त्रिमण्डल से शान्ति प्रस्ताव करने पूना भेजना ।
अक्टूबर, १७७५	बम्बई की सरकार का टेलर को कलकत्ता भेजना ।
अक्टूबर, १७७५	अपटन का कलकत्ता से चलना ।
२८ दिसम्बर, १७७५	अपटन का पूना पहुँचना, पुरन्दर में वार्तालाप आरम्भ ।
फरवरी, १७७६	रत्नागिरि में धोखेबाज सदाशिवराव कारागार से मुक्त ।
१ मार्च, १७७६	पुरन्दर की सन्धि सम्पन्न ।
१८ जून, १७७६	हरिपन्त सेना सहित पुरन्दर को वापस ।
१९ जून, १७७६	पेशवा द्वारा भरे दरबार में नेताओं का स्वागत ।
नवम्बर, १७७६	आंग्रे द्वारा धोखेबाज (सदाशिवराव) गिरफ्तार ।
१८ दिसम्बर, १७७६	धोखेबाज (सदाशिवराव) को मृत्यु-दण्ड ।

अध्याय २

अकारण ब्रिटिश आक्रमण

[१७७४–१७७६ ई०]

१. बार भाइयों की परिषद्। २. हत्यारा भागा।
३. मोस्टन की शरारत (अपकार); थाना हस्तगत। ४. कासेगाम की लड़ाई; पेठे का वध।
५. माधवराव नारायण का जन्म। ६. अड़ास का युद्ध, सूरत की सन्धि।
७. पूना में अपटन का दौत्य। ८. पुरन्दर की सन्धि।
९. धोखेबाज का अन्त।

१. बार भाइयों की परिषद्—प्रशासन का मुख्य पुरुष नियुक्त होने के लिए पेशवा के वंश में कोई पुरुष सन्तान उपलब्ध नहीं थी, इसलिए रघुनाथराव को असंदिग्ध रूप से अपनी प्रभुसत्ता स्थापित करने की प्रत्येक सुविधा प्राप्त थी। यदि उसमें लोगों को सन्तुष्ट करने की योग्यता तथा कूटनीतिक एवं राजकीय चातुर्य का अभाव न होता तो वह अपनी प्रभुता भी स्थापित कर लेता चाहे उस पर अपने भतीजे के रक्तपात का ही कलंक लगा हुआ था। वह अयोग्य था तथा उसमें अन्ध प्रतिशोध की प्यास बुरी तरह व्याप्त थी। हत्या के बाद दो मास तक साधारण प्रशासन के प्रमुख के रूप में वह प्रायः स्थिर ही रहा जबकि पड़ोसियों के साथ सन्निकट संघर्ष का कोई कारण भी विद्यमान नहीं था। ये पड़ोसी निजामअली तथा हैदरअली थे। नागपुर में सबाजी तथा माधोजी नामक दो भाइयों के बीच चलने वाला युद्ध केवल विघ्न रूप में उपस्थित था। सबाजी का साथ निजामअली की सेना दे रही थी। उसका कनिष्ठ भ्राता रुक्नुद्दौला उस सेना का नायक तथा इब्राहीमखाँ योग्य सेनापति था। मृत पेशवा द्वारा प्रदत्त सेनासाहेब सूबा की उपाधि के बल पर सबाजी ने नागपुर राज्य की समस्त सत्ता पर अधिकार कर लिया था। सबाजी के विरुद्ध न्याय प्राप्त करने के लिए मुधोजी ने अपने वकील वेंकटराव काशी के द्वारा, जो उस समय पूना में था, रघुनाथराव से प्रार्थना की थी। इस प्रकार सबाजी के आक्रमण का दमन करने के लिए निजामअली के विरुद्ध प्रयाण करना रघुनाथराव के लिए आवश्यक हो गया।

इस बीच में हैदरअली का विश्वस्त वकील अप्पाजी राम पूना में अकर्मण्य नहीं रहा था। उसने मराठा राजधानी की घटनाओं का वृत्तान्त अपने स्वामी

को भेजकर प्रोत्साहित किया कि मराठा शासन की वर्तमान अव्यवस्था से लाभ उठाये तथा कर्नाटक में अपनी पूर्व स्थिति को प्राप्त करने का अवसर हाथ से न निकलने दे। हैदरअली ने तुरन्त इस संकेत के अनुसार कार्य किया। उसने मराठा दुर्गस्थ उन सेनाओं को सरलता से बाहर निकाल दिया जो पटवर्धन तथा रस्ते परिवारों की जागीरों की रक्षा कर रही थीं। विसाजी कृष्ण उत्तर भारत से जो धन लाया था उससे शक्ति संगठित करके रघुनाथराव ने एक अभियान का संगठन किया तथा अविलम्ब पूर्वीय कर्नाटक की ओर प्रयाण कर दिया। ऐसा प्रतीत हुआ कि निजामअली तथा हैदरअली दोनों के विरुद्ध वह सावधानीपूर्वक अपना मार्ग निश्चित कर रहा है, परन्तु गुप्त रूप से वह यह प्रयत्न कर रहा था कि यदि अपने शासन में उसकी स्थिति सुरक्षित न रहे तो उसे उन दोनों की सहायता प्राप्त हो सके। पर उसके भाग्य में अपने पूर्वजों की राजधानी के फिर से दर्शन करना नहीं लिखा था। वह १७७३ ई० में दशहरे के लगभग पूना से चल पड़ा। वह अपने प्रयाण में पूना से थोड़ी ही दूर था कि रामशास्त्री ने उसके सम्मुख नारायणराव की हत्या के सम्बन्ध में अपनी जाँच का परिणाम घोषित किया। इससे रघुनाथराव को पहली बार आगामी संकट का आभास हुआ। इसमें कहा गया था कि हत्या में रघुनाथराव का मुख्य भाग है। यह घोषणा अनेक असन्तुष्ट व्यक्तियों के लिए अप्रत्यक्ष आह्वान सिद्ध हुई कि वे उसकी सत्ता को अस्वीकार कर दें तथा विधवा गंगाबाई का साथ दें जिसके उदर में कुछ मास का गर्भ होने का उन्हें ज्ञान हो गया था। चूँकि उसे (गंगाबाई को) अपने जीवन के विरुद्ध कुछ षड्यन्त्रों का पता चल गया था इसलिए उसने बापू, नाना तथा अन्य व्यक्तियों से अपनी रक्षा के लिए करुण याचना की। इस कारण रघुनाथराव के शासन के विरुद्ध संगठन का आन्दोलन आरम्भ हो गया। सखाराम बापू पहले से ही रघुनाथराव के प्रति सम्मान तथा प्रेम खो चुका था। सखाराम बापू तथा मराठा परिवार के अन्य शुभचिन्तकों द्वारा संकटों से गंगाबाई की रक्षा करने के लिए क्रमशः सतारा के छत्रपति तथा मिरज के पटवर्धनों से उस महिला को शरण देने की प्रार्थना की गयी। इस संकटपूर्ण कार्य को कोई भी स्वीकार नहीं करना चाहता था क्योंकि इसके अन्तर्गत रघुनाथराव की सत्ता के प्रति विरोध छुपा हुआ था।

माधोजी भोंसले अपनी सेना सहित आलेगाँव में रघुनाथराव के साथ हो गया। वहाँ से ये दोनों साथ-साथ नलदुर्ग की ओर बढ़े। यहाँ पर निजामअली के वकील ५ नवम्बर को रघुनाथराव से मिले। उनके द्वारा रघुनाथराव ने निजामअली से उस सेना को वापस बुलाने का अनुनय किया जो सबाजी भोंसले

की ओर से युद्ध कर रही थी तथा इस समय सबाजी के नेतृत्व में पूना की ओर प्रयाण-रत थी। निजामअली ने रघुनाथराव की प्रार्थना अस्वीकार कर दी। इस समय पेशवा की सेना का नायक त्रिम्बकराव पेठे था। सबाजी पूना के लिए संकट उपस्थित कर रहा था, अतः रघुनाथराव ने सबाजी के विरुद्ध पेठे को भेज दिया और स्वयं निजामअली से मिलने के विचार से बीदर की ओर बढ़ा। वे १८ नवम्बर को मिले तथा उन्होंने मित्रता की सन्धि के विषय में वार्तालाप किया। इस प्रकार रघुनाथराव ने औपचारिक भेंटों तथा वार्तालापों में एक मास का मूल्यवान समय नष्ट कर दिया। २३ दिसम्बर को वह बीदर से चलकर अर्काट की ओर बढ़ा। उसका उद्देश्य तंजौर के मराठा राजा को पुनः गद्दी पर बैठाना था जिससे नवाबअली ने पैतृक सम्पत्ति छीन ली थी।[1] रघुनाथराव दूर तक न बढ़ सका और वापस लौटने के लिए विवश हो गया।

लगभग नवम्बर के आरम्भ में रघुनाथराव भीमा नदी से बीदर की ओर बढ़ा। उसके शासन के प्रति अब तक जो काल्पनिक सामान्य असन्तोष था उसने अब स्पष्ट विरोध का रूप धारण कर लिया। निजामअली ने रघुनाथराव को दिया अपना वचन भंग कर दिया तथा सबाजी भोंसले से मैत्री कर ली। इसका समाचार रघुनाथराव को उस समय प्राप्त हुआ जब वह जनवरी, १७७४ ई० में तुंगभद्रा के समीप था। फिर भी वह रायदुर्ग की ओर बढ़ा और गुट्टी से मुराराव घोरपड़े को अपने पास बुलाया। उठने वाले तूफान का प्रथम गर्जन रघुनाथराव को यहीं पर सुनायी दिया। उसको उन गुप्त षड्यन्त्रों की सूचनाएँ प्राप्त होने लगीं जो उसके शिविर में कारभारी लोग कर रहे थे। मुख्य षड्यन्त्रकारी उस समय का एकमात्र कार्यकारी अधिकारी सखाराम बापू तथा निजाम के दरबार में स्थायी मराठा राजदूत कृष्णराव काले थे। इस प्रकार षड्यन्त्र का आरम्भकर्ता सखाराम बापू हुआ जिसने भारी व्यक्तिगत संकट उठाकर भी वीरतापूर्वक रघुनाथराव की सत्ता के उन्मूलन का नेतृत्व ग्रहण कर लिया। बापू तथा कृष्णराव ने मिलकर गुप्त रूप से लगभग दो महीनों तक निजामअली के साथ मैत्री सम्बन्धी वार्तालाप किया। बाह्य रूप से वे उसको रघुनाथराव के पक्ष में लाने का प्रयत्न कर रहे थे, परन्तु गुप्त रूप से उसे उच्छिन्न करने को प्रोत्साहित कर रहे थे। सबाजी भोंसले के

---

[1] पाठक को परामर्श है कि वह तंजौर के अपहरण तथा उसकी पुनः प्राप्ति के जटिल काण्ड का अध्ययन करे। १७ सितम्बर, १७७३ ई० को मुहम्मद अली ने इस पर अधिकार कर लिया था तथा ११ अप्रैल, १७७६ ई० को यह पुनः राजा तुलाजी के अधिकार में आ गया। इसके लिए इंगलैण्ड के अधिकारियों से विशेष आज्ञा प्राप्त हुई थी।

शिविर में भी यही चाल चली जा रही थी। उसको मिलाने के लिए त्रिम्बक-राव पेठे पहले से ही गुप्त रूप से प्रयत्नशील था। बापू का पूना के प्रशासन से घनिष्ठ सम्पर्क था, जहाँ पर सम्भवत: नाना फड़निस कार्यभार पर नियुक्त था। अत: दिवंगत पेशवा की मृत्यु के बाद दसवें दिन जो धीमा विचार उठा था, उसने शनै:-शनै: विशेष आकार धारण कर लिया तथा वर्ष के अन्त तक परिपक्व हो गया। सखाराम बापू ने परिस्थिति की सम्भावनाओं पर साव-धानी से विचार किया तथा संकट से गंगाबाई की रक्षा के लिए चतुरतापूर्वक एक योजना बनायी जिसके अनुसार यदि बालक का जन्म होगा तो समस्या सरल हो जायगी और यदि बालिका का जन्म हुआ तो पेशवा पद के लिए अलीबहादुर के नाम पर विचार किया जायेगा, क्योंकि वह वीर बाजीराव का सीधा वंशज था। अधिकांश मराठा सरदारों पर बापू का प्रभाव था जो ढिल-मिल थे। उन्हें उसने प्रोत्साहन दिया। उसने प्रत्येक साधन का कुशलतापूर्वक उपयोग किया तथा किसी भी प्रकार भीरु स्वामी के सन्देह को जाग्रत न होने दिया। सितम्बर तथा अक्टूबर के महीनों में रघुनाथराव के शिविर में रहकर बापू ने पूरी तैयारी कर ली। इसके बाद बीमारी का बहाना करके नवम्बर में किसी समय वह पूना वापस आ गया। यहाँ पर उसने धीरे-धीरे पटवर्धन परिवार तथा अन्य मुख्य सरदारों को अपनी ओर मिला लिया तथा एक संगठन स्थापित किया जिसे बाद में बार भाइयों की परिषद् कहा गया। नाना फड़निस, हरिपन्त फड़के, सखाराम बापू, त्रिम्बकराव पेठे, मोरोबा फड़निस, बाबूजी फड़निस, बाबूजी नायक, मालोजी घोरपड़े, भवनराव प्रतिनिधि, रस्ते एवं पटवर्धन परिवार—इस परिषद् के मूल सदस्य थे। बाद को महादजी शिन्दे तथा तुकोजी होल्कर भी इस परिषद् में सम्मिलित हो गये। उन सबसे राज-विप्लव को कार्यान्वित करने की प्रतिज्ञा करायी गयी। अधिकांश व्यक्ति तो नाममात्र के सदस्य थे। बापू तथा दोनों फड़निस बन्धु क्रियाशील सदस्य तथा कार्यवाहक नेता थे। कुछ वर्ष बाद जब मोरोबा फड़निस तथा सखाराम बापू कारागार में डाल दिये गये, तब शिशु रूप में पल रहे पेशवा के नाम से मराठा शासन के संचालन का कार्य केवल नाना फड़निस के हाथ में आ गया।

२. **हत्यारा भागा**—पूना में जो उपाय किये गये, उनकी समुचित सूचना कृष्णराव काले को भेज दी गयी जो उस समय रघुनाथराव के शिविर में था। वह तुरन्त कार्यरत हो गया, तथा शासनाध्यक्ष पेशवा रघुनाथराव के प्रति निष्ठा रखने वालों को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। ये परिवर्तन रघुनाथ-राव को तभी ज्ञात हो गये थे जब वह फरवरी के लगभग बेलारी के समीप था। उसने तुरन्त भवनराव प्रतिनिधि तथा रामचन्द्र गणेश को कारागार में डाल

दिया । कुछ ही समय बाद उसने सुना कि त्रिम्बकराव तथा हरिपन्त ५० हजार सेना सहित विभिन्न दिशाओं से उसके विरुद्ध शीघ्र गति से प्रयाण कर रहे हैं । इस सूचना पर रघुनाथराव भयभीत होकर मार्च के प्रारम्भ में मिरज की ओर लौट आया । मार्ग में उसने रस्ते, पटवर्धन परिवारों तथा उन अन्य सरदारों की जागीरों को विनष्ट कर दिया, जिनको वह अपने विरुद्ध समझता था । सम्भवत: रघुनाथराव का उद्देश्य उस समय यह था कि सतारा तथा छत्रपति पर अधिकार प्राप्त कर ले जिससे कि बार भाइयों के विरुद्ध उसकी स्थिति दृढ़ हो जाये । नाना फड़निस ने ३ फरवरी, १७७४ ई० के पत्र में सतारा स्थित अपने वकील बाबूराव आप्टे को इस प्रकार लिखा—"बापू, मोरोबा दादा तथा मैंने यह निश्चय कर लिया है कि हम उस स्वामी की सेवा करेंगे जिसका नमक हम चार पीढ़ियों से खा रहे हैं । हमको त्रिम्बकराव सबाजी भोंसले, वामनराव पटवर्धन तथा हजरत सेना का समर्थन प्राप्त हो गया है । हमारा उद्देश्य गंगाबाई के शरीर की रक्षा करना है । हम रक्षा के लिए उसको पुरन्दरगढ़ ले आये हैं, तथा हमारा विचार उसे शीघ्र ही सतारा ले जाने का है । सखाराम बापू हमारी योजना से सर्वथा सहमत है । उस पर आप कोई सन्देह न करें ।" १७ फरवरी को छत्रपति के नाम से यह घोषणा की गयी :

"रघुनाथ बाजीराव ने पेशवा नारायणराव की हत्या तथा हमसे बल-पूर्वक पेशवा पद के वस्त्र प्राप्त करने का जघन्य पाप किया है । अब वह पद उससे छीन लिया गया है, तथा त्रिम्बकराव पेठे के अधीन उसके विरुद्ध सेना भेज दी गयी है । प्रत्येक व्यक्ति को आह्वान है कि वह इस पवित्र कार्य में हमारा समर्थन करे ।" इसी प्रकार के पत्र समस्त प्रमुख मराठा सरदारों को लिखे गये ।[२]

बाबूराव आप्टे बहुत दिनों से सतारा में छत्रपति के साथ रहता था । इस समय उसने रघुनाथराव की उस प्रत्येक चाल का खण्डन कर दिया जो वह सतारा पहुँचकर छत्रपति के शरीर पर अधिकार प्राप्त करने के लिए चल रहा था । रघुनाथराव की योजनाओं का प्रतिकार करने के लिए बापू तथा पेठे दोनों सतारा गये । फरवरी से पुरन्दर का गढ़ मराठा परिषद् का केन्द्र घोषित किया गया । इसके पश्चात बार भाइयों ने शासन-सूत्र सँभाला । तभी नारायण-राव के हत्यारों को दण्ड देने की नीति प्रकाशित की गयी तथा रघुनाथराव के राज्यच्युत होने की घोषणा की गयी । मुख्य अपराधियों को पकड़ने में तो बहुत समय लग गया, परन्तु फरवरी तथा मार्च के महीने में छोटे-छोटे

---

२ पत्रेयादी, २३०

अपराधियों से शीघ्र ही निपट लिया गया। अपराधियों के परिवार तथा उनके सम्बन्धी अविलम्ब पकड़ लिये गये तथा बन्धन में रहने के लिए वे विभिन्न गढ़ों को भेज दिये गये। इस प्रकार बार भाइयों का प्रथम कार्य अपराधियों को दण्ड देना था। इस कार्य के सम्पादन के कारण मुख्य अपराधियों तथा उनके सहायकों के विरुद्ध लगातार युद्ध करना पड़ा।

आरम्भ में कई अर्थों में रघुनाथराव की स्थिति अपने शत्रुओं की अपेक्षा अधिक दृढ़ थी। वह असंदिग्ध रूप से अपना स्वामी आप ही था, तथा गार्दी सरदार उत्साहपूर्वक उसकी सेवा कर रहे थे। बार भाई परस्पर प्रायः बुरी तरह विभक्त थे तथा एक-दूसरे पर सन्देह करते थे। योजना का युद्ध-सम्बन्धी भाग त्रिम्बकराव तथा हरिपन्त के प्रबन्ध में था। वे दोनों अपने ढंग से योग्य तथा निष्ठावान थे, परन्तु पेठे का स्वभाव क्रूर था। वह सर्वसाधारण का प्रेमपात्र नहीं था, किन्तु हरिपन्त मधुरभाषी तथा उपकारक स्वभाव का था। उनका महत्तम कष्ट धनाभाव था। जो कुछ भी धन मिल सकता था, उसे रघुनाथराव ने झपट लिया था।

सबाजी भोंसले से दोनों दलों ने सम्पर्क स्थापित किया। रघुनाथराव बिना सोचे-समझे किन्हीं भी शर्तों को स्वीकार कर सकता था। सखाराम बापू ने देवाजी पन्त चोरघोड़े पर अपना पूर्ण प्रभाव डाला कि बार भाइयों के पक्ष में नागपुर राज्य का सम्पूर्ण बल उसको प्राप्त हो जाये। त्रिम्बकराव ३ मार्च को सबाजी तथा निजामअली से गुलबर्गा के समीप मिला। उन्होंने आग्रह किया कि जब तक बापू तथा नाना दोनों वहाँ पर अविलम्ब न आ जायेंगे, तथा उनके साथ शिविर में स्वयं निवास न करेंगे, तब तक न युद्ध का संचालन सफलतापूर्वक हो सकेगा, और न अधिकार तथा उत्तरदायित्व सहित नाना प्रकार के उपायों का उचित समन्वय हो सकेगा। इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया जा सकता था, यद्यपि प्रथम दृष्टि में यह कल्याणकारी प्रतीत हो रहा था। स्वयं पुरन्दर इस प्रकार अरक्षित था कि रघुनाथराव उस पर सहसा धावा कर सकता था। अतः जब तक बापू तथा नाना दोनों वहाँ पर स्वयं उपस्थित न रहें, सारा खेल कभी भी बिगड़ सकता था। पेठे तथा हरिपन्त जब गुलबर्गा के समीप पहुँचे तो उनको मालूम हुआ कि रघुनाथराव सतारा की ओर प्रयाण कर रहा है। उन्होंने अपनी सेना को तुरन्त एक पंक्ति में गुलबर्गा से सतारा तक फैला दिया, उनका उद्देश्य उसे छत्रपति तक जाने से रोकना था। इस प्रकार की चाल से रघुनाथराव चक्कर में पड़ गया, तथा अपनी स्वाभाविक भीरुतावश उसने पुरन्दर के पास अपने दूत भेजकर सन्धि की शर्तों की प्रार्थना की। किन्तु यह चाल केवल अपने को निकटवर्ती

संकट से मुक्त करने के लिए थी। अपने पीछे आने वालों को उसने चतुरता-पूर्वक बहकाकर सतारा पर आक्रमण कर दिया। पर पूना की सेना शीघ्र ही उसके समीप पहुँच गयी, तथा उसके आक्रमण का इस प्रकार विरोध किया कि वह पंढरपुर की ओर मुड़ने को विवश हो गया। त्रिम्बकराव पेठे उसके पीछे-पीछे वहाँ भी पहुँच गया। ठीक उसी समय ब्रिटिश दूत मोस्टिन ने, जो पूना में निवास करता था, नवीन संकट उपस्थित कर दिया।

३. **मोस्टिन की शरारत; थाना हस्तगत**—किसी को सन्देह भी नहीं था कि पूना में मोस्टिन की उपस्थिति किसी प्रकार हानिकारक है। माधवराव प्रथम के अन्तिम दिनों से वह पूना के घटना-चक्र का ध्यानपूर्वक अवलोकन कर रहा था। इसका एकमात्र उद्देश्य मराठा सत्ता को निर्बल करना था। इस विचार से वह बम्बई की कौंसिल को नित्य मूल्यवान सूचनाएँ भेज देता तथा अपने देशवासियों को मराठा शासन के संकटों से लाभ उठाने के लिए प्रोत्साहित करता था। उसने अपने स्वामियों को परामर्श दिया कि वे बम्बई के आसपास के उर्वर मराठा प्रदेशों पर अधिकार कर लें। इसी प्रयोजन से मोस्टिन पूना से अकस्मात् चल दिया तथा ८ दिसम्बर, १७७३ ई० को बम्बई पहुँचा। उस समय बम्बई की कौंसिल का अध्यक्ष हॉर्नबी था। वह भली-भाँति जानता था कि गम्भीर कष्टों के कारण पूना का प्रशासन विचलित है। अतः उसने मोस्टिन के परामर्श से थाना के गढ़ पर अविलम्ब आक्रमण की योजना तैयार की। यह गढ़ समस्त सालसेट क्षेत्र की रक्षा का मुख्य स्थान था। दोनों राज्यों के बीच घनिष्ठ मैत्री-सम्बन्ध वर्तमान होने से इंगलिश लोगों की ओर से इस आकस्मिक तथा अकारण आक्रमण के कारण मराठा मन्त्रि-मण्डल अत्यन्त व्यग्र हो उठा, तथा रघुनाथराव को तुरन्त बन्दी हो जाने की दशा से अपनी रक्षा करने का अनुकूल अवसर मिल गया। अपने इस अकारण तथा अकस्मात् कार्य का अंग्रेज लोगों ने कोई कारण नहीं बताया और न कोई चेतावनी ही दी। मराठा मन्त्रिमण्डल ने तुरन्त उनकी चुनौती स्वीकार कर ली, तथा शीघ्र ही थाना की रक्षा के लिए उपाय किये। २ दिसम्बर को अंग्रेजी सेनाएँ बम्बई से चलीं; कुछ स्थल मार्ग से तथा कुछ पोतों से। वे सर्वथा अरक्षित उस दुर्ग में स्थित छोटी-सी सेना पर टूट पड़ीं। बिसाजी कृष्ण पूना से तुरन्त भेजा गया, परन्तु वह समय पर सहायता न पहुँचा सका। थाना के सैनिक अधिकारी आनन्दराव बिवलकर ने साहस तथा विवेक सहित उस स्थान की रक्षा का यथाशक्ति प्रयास किया। अन्त में उसको पता चला कि अधिक प्रतिरोध व्यर्थ है। जब उसके अधिकांश सैनिक मर गये, तो उसने २८ दिसम्बर को वह स्थान समर्पित कर दिया। वह सैनिक

अधिकारी के पूर्ण सम्मान सहित बम्बई भेज दिया गया। उसके अधीन भवनराव कदम नामक किलेदार—अर्थात स्थानीय रक्षाधिकारी—था, जिसने अंग्रेज लोगों से घूस स्वीकार कर ली थी तथा प्रतिज्ञा की थी कि वह गढ़ उनको दे देगा। इस विश्वासघाती चाल का पता पहले ही चल गया था तथा कदम पकड़ लिया गया था। कुछ समय बाद जब गढ़ का विधिपूर्वक समर्पण कर दिया गया तो अंग्रेजों ने कदम की रक्षा करने के स्थान पर उसको तोप से उड़ा दिया। इस प्रकार, उन्होंने उसको वही दण्ड दिया, जिसके वह योग्य था।[३]

यद्यपि उस समय थाना अस्थायी रूप से हाथ से निकल गया था, पर मराठों ने अकारण आक्रमण के लिए अंग्रेजों का प्रतिकार करने में विलम्ब नहीं किया। उन्होंने अंग्रेजों का तट-व्यापार बन्द कर दिया तथा उस सामग्री को बम्बई पहुँचने से रोक दिया जो बाहर से आती थी। थोड़े ही दिनों में मराठा प्रवृत्तियों के कारण अंग्रेज इस प्रकार गतिशून्य हो गये कि उन्होंने न केवल युद्ध का त्याग कर दिया, अपितु शीघ्र ही पूना से पुनः मैत्री-सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया। भावी मराठा इतिहास के अनेक प्रसिद्ध व्यक्तियों—रघुजी आंग्रे, आनन्दराव धुलप, शिवाजी विट्ठल विचूरकर, विसाजी केशव लेले, विसाजी कृष्ण बिनिवले आदि—ने न केवल तट की ही रक्षा में सहयोग दिया अपितु स्थल पर भी मूल्यवान सेवा की। दुर्भाग्य है कि उन्होंने नौका-युद्ध में कुशलता का परिचय नहीं दिया। अंग्रेजों ने थाना पर अपने आक्रमण को इस आधार पर न्यायसंगत सिद्ध किया कि पुर्तगालियों ने उस स्थान पर प्रबल नाविक आक्रमण की योजना तैयार कर ली है। अंग्रेजों ने पुर्तगाली अधिकार हो जाने से पहले ही उस गढ़ को घेर लेने का बहाना किया। किन्तु यह काण्ड दो महीनों ही में समाप्त हो गया।

४. **कासेगाम की लड़ाई; पेठे का वध**—पूना के मन्त्री इस समय चारों ओर से पीड़ित हो रहे थे। प्रत्येक दृष्टि से इस बात की सम्भावना थी कि रघुनाथराव पुरन्दर में गंगाबाई पर सहसा धावा करेगा। निराश भगोड़े राघोबा से सतारा तथा पुरन्दर दोनों की रक्षा करने में हरिपन्त को बहुत कष्ट हुआ। पटवर्धन तथा रस्ते लोग पहले से ही उसके पीछे लगे हुए थे, तथा वे उसको

---

[३] पेशवा दफ्तर, जिल्द ३५, १२८ तथा आगामी पृष्ठ। फोरेस्ट, जिल्द १, पृष्ठ २०४; पेशवा दिनचर्या, जिल्द ६, पृष्ठ ४१६-४१७। आनन्दराव को अंग्रेजों ने बाद में मुक्त कर दिया। तुलाजी आंग्रे के समय के रामजी महादेव का वह पुत्र था।

घेरकर पकड़ने का प्रयास कर रहे थे। कुछ समय तक रघुनाथराव की स्थिति अनिश्चित रही।

पेठे को असावधान करने के लिए रघुनाथराव ने पत्र लिखकर प्रस्ताव किया कि वह वर्तमान कलह के शान्तिपूर्ण समझौते पर वार्तालाप करना चाहता है। इस चाल के बाद रघुनाथराव ने कासेगाम के समीप पेठे पर अकस्मात् आक्रमण कर दिया। यह स्थान पंढरपुर से ८ मील दक्षिण में है। पटवर्धन, रस्ते, नारो शंकर, विठ्ठल शिवदेव—सब ने अविलम्ब शीघ्रतापूर्वक प्रयाण किया कि विपत्तिग्रस्त अवस्था में पेठे की सहायता करें। परन्तु लम्बी यात्राओं के कारण वे थक गये थे, इसलिए समय पर न पहुँच सके। चैत्र शुक्ला प्रतिपदा—तदनुसार २६ मार्च, १७७४ ई०—को रघुनाथराव ने अपने तोपखाने को पेठे की छोटी-सी सेना पर केन्द्रित कर दिया। पेठे परास्त हुआ तथा निर्भयतापूर्वक युद्ध करता हुआ अत्यन्त घायल अवस्था में पकड़ लिया गया। एक सप्ताह के बाद इन घावों के कारण उसका देहान्त हो गया।[४] इसी प्रकार पटवर्धनों को परास्त कर दिया गया। कासेगाम पर अल्पकालीन किन्तु कठोर युद्ध हुआ था। इसके परिणाम किसी प्रकार निर्णायक सिद्ध न हुए। इससे केवल एक लाभ हुआ कि कुछ समय तक मन्त्रियों का दल हतोत्साह हो गया, तथा युद्ध की अवधि बढ़ गयी। पूना के सर्वोत्तम सेनानी को बन्दी बना लिया जाना ही बार भाइयों को आने वाले संकट के प्रति जाग्रत करने के लिए पर्याप्त था। हरिपन्त ने तुरन्त सतारा से शीघ्रतापूर्वक प्रयाण किया। परिस्थिति की रक्षा करने के लिए वह समय पर वहाँ पहुँच गया। उसने उत्साहहीन सेना में नवीन साहस फूँक दिया तथा उनको अभिनव युद्ध के लिए संगठित कर लिया। इसके पहले ही भोंसले तथा निजामअली की सेनाएँ शीघ्रतापूर्वक उसके साथ हो गयी थीं। रघुनाथ को साहस न हुआ कि इन सम्मिलित सेनाओं से मोर्चा ले। उसने पलायन के एकमात्र साधन का आश्रय ग्रहण किया जो उस समय उपलब्ध हो सकता था। जितनी जल्दी उससे बन सका, वह उत्तर की ओर भाग गया। पेठे पर विजय से उसको कोई भी लाभ न हुआ। पुरन्दर सुरक्षित रहा।

हरिपन्त ने तुरन्त परिस्थिति पर अधिकार करके बलपूर्वक रघुनाथराव का पीछा करना प्रारम्भ कर दिया। शीघ्र ही यह स्पष्ट हो गया कि देश की आशामय अपेक्षा के विपरीत यह संघर्ष दीर्घकालीन तथा दृढ़ सिद्ध होगा। बहुसंख्यक पीछा करने वालों के सामने से अपने गार्दी साथियों के साथ भाग निकलने में इस समय रघुनाथराव ने असाधारण तत्परता प्रदर्शित की, जिसके

---

४ पेशवा दफ्तर, जिल्द ५४३ में इसकी व्याख्या है कि पेठे को किस प्रकार सावधान रखा गया।

कारण उसको राघो भरारी—'राघो भगोड़े'—की उपाधि प्राप्त हो गयी। उसने अब नैतिक नियमों से विहीन षड्यन्त्र तथा विश्वासघात का आश्रय लिया। उसको राज्य के सम्मान या हित की कोई चिन्ता नहीं थी। उसने अपने विरोधियों के सेनानियों को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए विदेशी सत्ताओं से सम्पर्क स्थापित किया। इनमें उत्तर के राजपूत तथा मुसलमान शासक, पश्चिमी समुद्र-तट के सिद्दी तथा पुर्तगाली, दक्षिण के हैदरअली और मुहम्मदअली सम्मिलित थे। वास्तव में वे समस्त शत्रु इस संगठन में सम्मिलित हो गये जिनको परास्त करने में रघुनाथराव के पूर्वजों ने कई पीढ़ियों तक अपना रक्त बहाया था। अपने उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए रघुनाथराव ने समस्त भारत में अपने गुप्तचरों का जाल बिछा दिया। अप्रैल के मध्य में गोदावरी को पार कर वह बुरहानपुर के मार्ग से नर्मदा की ओर भाग गया। उसको आशा थी कि उसको सिन्धिया, होल्कर तथा गायकवाड़ की सहानुभूति प्राप्त हो जायेगी, क्योंकि उन लोगों ने बहुत समय तक सहकारियों के रूप में उसकी निजी सेवा की थी। उसे विश्वास था कि ये लोग स्वभावतः उसको हानि पहुँचाने की चेष्टा नहीं करेंगे।

५. **माधवराव नारायण का जन्म**—१८ अप्रैल, १७७४ ई० को पुरन्दर में गंगाबाई ने पुत्र को जन्म दिया। इसी के साथ रघुनाथ की वैध पेशवा बने रहने की आशा का अन्त हो गया। केवल इस सुखद घटना के कारण, जिसकी उत्सुकतापूर्वक आशा की जा रही थी, राजनीतिक परिस्थिति में परिवर्तन हो गया। इससे बार भाइयों के साथ राष्ट्र की आशाएँ उसी मात्रा में उन्नत हो गयीं जिस मात्रा में रघुनाथराव की शक्ति तथा योजनाएँ नष्ट हुई। समस्त देश में शान्ति तथा हर्ष की धारा अपूर्व रूप से प्रवाहित हो गयी। जनता में यह अन्धविश्वास फैल गया कि नवजात शिशु के रूप में दिवंगत पेशवा माधवराव ने नवीन जन्म धारण किया है, जिससे वह अपने कार्य के उस भाग को पूरा कर ले जिसको वह अपनी अकाल मृत्यु के कारण नहीं कर सका था। बापू तथा नाना राष्ट्र की दृष्टि में देवता हो गये। उनको सभी दिशाओं से असीम साधुवाद प्राप्त हुए। जनता ने विभिन्न मन्दिरों को उपहार तथा सुपात्रों को दान देकर ईश्वर के प्रति भी समान रूप से कृतज्ञता प्रकट की।

रघुनाथराव ने अपना यह सन्देह प्रकट करने में देर न की कि यह शिशु वास्तविक शिशु नहीं अपितु बदला हुआ है। परन्तु इस प्रकार के अनधिकृत प्रवादों का शीघ्र ही निराकरण हो गया। जब ब्रिटिश राजदूत कर्नल अपटन दो वर्ष बाद पुरन्दर आया और पूर्ण अन्वेषण के बाद उसे विश्वास हो गया कि नवजात वास्तविक शिशु ही है, बदला हुआ नहीं, तब उसने मन्त्रिमण्डल के

साथ इस आधार पर सन्धि सम्बन्धी वार्ता आरम्भ की। इस सम्बन्ध में नाना तथा बापू को पत्र लिखकर स्वयं आनन्दीबाई ने शिशु की औरसता को स्वीकार कर लिया। उसने उनको परामर्श दिया कि वे उसके पति के प्रति अपनी उग्रता कम कर दें, अन्यथा निराश हो जाने पर उसके राज्य का नाश कर देने पर भी उतारू हो जाने की आशा है। स्वयं छत्रपति ने इस दैवी घटना पर अपने हार्दिक साधुवाद भेजे तथा शिशु को तुरन्त पेशवा के वस्त्र भेज दिये। उसके जन्म के ४०वें दिन, २६ मई, १७७४ ई० को, पुरन्दर में एक विशेष दरबार के अवसर पर ये वस्त्र उसको पहना दिये गये।

६. अडास का युद्ध; सूरत की सन्धि—यदि हरिपन्त के दोनों मित्रों—सबाजी तथा निजामअली—के मन्द प्रयाण के कारण मार्ग में विघ्न उपस्थित न होता तो वह भूतपूर्व भगोड़े पेशवा को सुविधापूर्वक पकड़ सकता था। हरिपन्त ने बुरहानपुर को अपना आधार स्थान बनाया तथा रघुनाथराव के कुछ सहायकों को अपनी ओर मिला लिया। नवीन पेशवा के जन्म के बाद उन्होंने शीघ्र गति से उसका पक्ष-त्याग आरम्भ कर दिया था। अप्रैल के अन्तिम सप्ताह में रघुनाथराव करीब ३ हजार आदमियों के साथ इन्दौर पहुँचा। अब वह आक्रमणात्मक युद्ध नहीं कर सकता था। वह लाभ भी शीघ्र उसके हाथ से निकल गया जो उसको कासेगाम में प्राप्त हो गया था। इस समय उसको केवल यही एक चिन्ता थी कि वह किस प्रकार आत्मरक्षा करे। तुकोजी होल्कर तथा महादजी सिन्धिया उससे उज्जैन के समीप मिले, तथा उसकी प्रेरणा पर उन्होंने पुरन्दर के मन्त्रियों से सन्धि-वार्ता आरम्भ की।

होल्कर तथा सिन्धिया में परस्पर किसी प्रकार पूर्ण मैत्री न थी। अतः वे निर्णायकों का स्थान आसानी से ग्रहण कर सकते थे। वे व्यक्तिगत हितानुसार किसी भी पक्ष का साथ देने की धमकी दे सकते थे। इन शक्तिशाली सरदारों को विद्रोही राघोबा का साथ देने से रोकने के लिए मन्त्रियों ने अपने विश्वास-पात्र दूत महादजी बल्लाल गुरुजी को शीघ्र इन्दौर भेज दिया, तथा भगोड़े को घेर लेने के लिए उसको पर्याप्त अधिकार तथा पूर्ण निर्देश दिये। परन्तु यह सुयोग्य कूटनीतिज्ञ कुछ अधिक सफलता न प्राप्त कर सका। वह न युद्धकाल को कम कर सका, न भगोड़े को पकड़ सका। दोनों सरदारों से कहा गया कि वे उसको पकड़कर बन्दी के रूप में पूना भेज दें। स्पष्ट है कि वे शिष्टाचार के नाते उस व्यक्ति को हाथ न लगा सकते थे जिसको स्वामी मानकर उन्होंने दीर्घ समय तक सेवा की थी, तथा जो इस समय उनसे रक्षा की याचना कर रहा था। इसके अतिरिक्त सिन्धिया तथा होल्कर को अपने व्यक्तिगत कष्ट

भी थे। वे उसी समय दिल्ली के क्षेत्र में अपने कर्तव्य का पालन कर वापस आये थे, तथा उनके सिपाही अपने वेतन के लिए शोर मचा रहे थे।[५]

रघुनाथराव स्वभाव से सर्वथा निर्दय हो गया था, तथा प्रतिशोध के आवेश में वह कुछ भी कर सकता था। उसने अपने इन्दौर के मार्ग पर महादजी के दामाद देवजी तपकिर को सहसा पकड़कर बन्दी बना लिया जबकि वह दक्षिण की ओर अपने गाँव को जा रहा था। रघुनाथराव इस प्रकार लिखता तथा आचरण करता था मानो कि वह वास्तव में वैध पेशवा हो। वह बार भाइयों को विद्रोही तथा राज्य के शत्रु बताता था। मुराररराव घोरपड़े ने वास्तव में पुरन्दर के त्रिम्ब्रते को चेतावनी दी कि वे रघुनाथराव को अधिक रुष्ट न करें। उसने उनको क्षति न करने तथा समस्त शक्य उपायों द्वारा उससे मेल करने का परामर्श दिया। परन्तु इस प्रकार के मार्ग को नाना कभी स्वीकार नहीं कर सकता था, क्योंकि वह हत्यारे को दण्ड देने पर तुला हुआ था। अपेक्षाकृत उसके दोनों सहकारियों—बापू और मोरोबा—की भावनाएँ कुछ कोमल थीं। नाना ने अविराम गति से वास्तविक हत्यारों के साथ-साथ उन सब व्यक्तियों का पीछा करके दण्ड दिया, जिन्होंने विवश होकर या स्वार्थवश रघुनाथराव के पक्ष का समर्थन किया था। महादजी सिन्धिया प्रायः नाना का समर्थक था। तुकोजी विरोधी पक्ष की ओर झुका हुआ था। अब रघुनाथराव ने इन्दौर से अपने दूत कलकत्ता तथा सूरत को भेजकर अपनी छिनी हुई स्थिति को पुनः प्राप्त करने के लिए ब्रिटिश सहायता की याचना की। उसने यथासम्भव उत्तर भारत में भी अधिक से अधिक मित्र बनाने का प्रयत्न किया।

सिन्धिया तथा होल्कर ने यथाशक्ति रघुनाथराव को उस विद्रोही मार्ग से रोकने का प्रयत्न किया जिसका वह अनुसरण कर रहा था। उन्होंने यह तर्क किया : "आप पेशवा पद से अपना स्वत्व त्याग दें, नवजात शिशु को अपना स्वामी मान लें तथा जब तक वह वयस्क न हो जाये, उसके नाम से आप राज्य का प्रबन्ध करें। यदि आप युद्ध करना चाहते हैं तो आपको बाहर पर्याप्त क्षेत्र प्राप्त है; यदि आप हमारे परामर्श को स्वीकार करें, तो हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि बापू तथा नाना आपका समर्थन करेंगे तथा आपकी आज्ञा का पालन करेंगे।" परन्तु रघुनाथराव वज्र-तुल्य कठोर था। उसने कहा—"मैं सदैव प्रयत्न करता रहा हूँ कि पेशवा के रूप में शासन करूँ, इसी उद्देश्य से मैंने दिवंगत माधवराव से राज्य का अर्द्धभाग माँगा था। केवल

---

५ ऐ० पत्र व्यव०, नं० १४२ में महादजी बल्लाल का बोलता हुआ वृत्तान्त है।

इसी उद्देश्य से मैंने पुत्र को गोद लिया है। मैंने इसीलिए नारायणराव को उसके स्थान से हटाने का भी प्रयास किया था।" इस प्रकार मई तथा जून मास उज्जैन में समझौते के व्यर्थ वार्तालाप में नष्ट कर दिये गये जिसका प्रस्ताव सिन्धिया तथा होल्कर की ओर से होने को था। उनके लाभदायक परामर्श के विरुद्ध रघुनाथराव ने अपने दूत शुजाउद्दौला तथा वारेन हेस्टिंग्ज के पास भेजकर उनसे सहायता की प्रार्थना की। बहुत प्रयास के बाद सिन्धिया तथा होल्कर रघुनाथराव को इस बात के लिए राजी कर सके कि वह वापस लौट जाये और बुरहानपुर जाकर मन्त्रिमण्डल से व्यक्तिगत रूप से वार्तालाप करे। परन्तु वह चतुर वंचक था। उसने वापस जाकर मन्त्रियों से मिलने की प्रतिज्ञा की, परन्तु उत्तर में भूपाल की ओर प्रयाण कर गया। सिन्धिया तथा होल्कर उसका पीछा करके बलपूर्वक वापस ले आये। वे धीरे-धीरे साथ-साथ दक्षिण को वापस हो गये, तथा जुलाई के अन्त में उन्होंने नर्मदा को पार कर लिया।

धूलकोट के समीप अपना पड़ाव डालकर सरदारों ने मन्त्रियों को निमन्त्रण भेजा कि वे व्यक्तिगत वार्तालाप के लिए पुरन्दर से आ जायें। इस बीच में रघुनाथराव ने अपने सिपाहियों का वेतन चुकाने के लिए भारी धन माँगा, पर उसे गार्दी सरदारों को निकाल देने के लिए विवश कर दिया गया। हरिपन्त ने विवेक तथा दक्षता से कार्य किया। भूतपूर्व पेशवा का दत्तक पुत्र अमृतराव पूना में था, और वह नाना प्रकार के प्रवाद फैला रहा था जिससे बार भाइयों के पक्ष की हानि होती थी। पुरन्दर में भी कुशल मंगल नहीं था। वहाँ की आर्द्र जलवायु का प्रभाव शिशु पेशवा के स्वास्थ्य पर बुरा पड़ा; दूसरे, रघुनाथराव के गुप्त दूतों ने यहाँ उसके जीवन पर वार किया। अतः मन्त्रियों का विचार हुआ कि शिशु को अकेला छोड़कर रघुनाथराव से मिलने जाना संकटपूर्ण कार्य है। लम्बे तर्क-वितर्क के बाद बापू तथा नाना बड़े-बड़े दलों को अपने साथ लेकर नवम्बर के अन्तिम सप्ताह में बुरहानपुर के लिए चल पड़े। उन्होंने पुरन्दर तथा शिशु को पुरुषोत्तम दाजी पटवर्धन की सुरक्षा में रख दिया, जो अपने साहस तथा वीरता के कारण पूना के इतिहास में प्रसिद्ध हो गया था। बुरहानपुर में कुछ समय तक सन्धि प्रस्ताव सोत्साह चलते रहे। इस बीच में रघुनाथराव को सन्देह हुआ कि वह अविलम्ब पकड़ लिया जायेगा, अतः वह १० दिसम्बर की रात्रि को अकस्मात् शिविर से भाग कर गुजरात की ओर चला गया। वह इस जाल से नवीन संकट उत्पन्न करने के लिए भाग निकला था।

इस विपत्तिग्रस्त काल में उसके मित्र मोस्टिन ने सहायता की। भूतपूर्व

पेशवा की हत्या के समय से रघुनाथराव से मोस्टिन का सम्पर्क था। वह उसको ब्रिटिश सहायता प्राप्त कराने की तैयारी कर रहा था। अक्टूबर, १७७४ ई० में जब रघुनाथराव सन्धि-वार्ता के लिए बुरहानपुर आया, तभी उसने अपने दूतों को पूना में मोस्टिन तथा सूरत में राबर्ट गैम्बायर के पास भेज दिया था कि वे सशस्त्र सहायता के लिए शर्तें निश्चित कर लें। परन्तु इस कार्य की समाप्ति के पहले ही वह दिसम्बर में बुरहानपुर से भाग गया। वह पहले धार पहुँचा जहाँ पर अपनी पत्नी आनन्दीबाई को उसने खण्डेराव पवार की सुरक्षा में छोड़ दिया, तथा स्वयं ब्रिटिश रक्षा-दल के अधीन गोधरा होकर बड़ौदा की ओर चल पड़ा। वहाँ उसने गुप्त रूप से अंग्रेजों से सन्धि-वार्ता की। इस वार्ता का पता उसके मन्त्रियों तक को न चल पाया। सिन्धिया तथा होल्कर उसके पलायन को रोक सकते थे, परन्तु वे अपने ऊपर यह कलंक लगाना नहीं चाहते थे कि उन्होंने पेशवा परिवार के एक व्यक्ति पर हाथ डाला। उन्होंने जानबूझकर हरिपन्त को रघुनाथराव को घेर लेने से रोक दिया। उनका कहना था कि उसको अपने जीवन का भय है इस कारण हमें उसके साथ नम्र व्यवहार करना चाहिए। इस बहाने रघुनाथराव को पलायन का एक अवसर मिल गया, तथा बार भाइयों को दीर्घकालीन तथा अतिव्ययी युद्ध करना पड़ा। इसके लिए नाना फड़निस ने सदैव केवल इन दो सरदारों को उत्तरदायी समझा, तथा उनके साथ भविष्य में इसी दृष्टि से व्यवहार किया।

हरिपन्त ने अविलम्ब सिन्धिया तथा होल्कर के साथ भूतपूर्व भगोड़े पेशवा का पीछा बड़ौदा तक किया जहाँ हरगोविन्दराव गायकवाड़ ने उसको शरण दे रखी थी। बापू तथा नाना दुखी होकर वहाँ से पुरन्दर वापस आ गये। उन्होंने युद्ध तथा प्रशासन के कार्य सोत्साह ग्रहण कर लिये। उन्होंने दौलताबाद का गढ़ निजामअली को वापस देकर प्रसन्न कर लिया। यह एक महान हानि थी जो इस संकट-बेला में विवश होकर मन्त्रिमण्डल को सहन करनी पड़ी। यदि धार का पवार तथा बड़ौदा का गायकवाड़ रघुनाथराव का साथ न देते तो वह सुविधापूर्वक नियन्त्रण में लाया जा सकता था। मराठा राज्य के क्षय का महत्तम कारण यह था कि उसके विविध सदस्यों में एकता का अभाव था।

रघुनाथराव ३ जनवरी, १७७५ ई० को बड़ौदा पहुँचा जहाँ पर उसको मालूम हुआ कि सिन्धिया तथा होल्कर के साथ हरिपन्त उसका पीछा कर रहा है। वह गोविन्दराव गायकवाड़ की सहायता से तुरन्त उत्तर को भाग गया। माही के घाट पर वर्तमान वासद रेलवे स्टेशन के समीप उसका सामना मन्त्रियों की सेना से हो गया। करीब दो सप्ताह तक दोनों दल एक-दूसरे के

सम्मुख पड़े रहे, तथा सन्धि प्रस्ताव चलते रहे, जिनका इस धूर्त भगोड़े ने कभी विरोध नहीं किया। हरिपन्त तथा वामनराव पटवर्धन ने शत्रु पर तुरन्त आक्रमण नहीं किया, क्योंकि इस कार्य का शुभ मुहूर्त न था। हरिपन्त ने १७ फरवरी तक प्रतीक्षा की। बाद में घोर युद्ध हुआ, जिसमें ईश्वर की कृपा से हरिपन्त को विजय प्राप्त हुई। रघुनाथराव की सेना सर्वथा परास्त हो गयी। उसके साथियों में सखाराम हरि तथा नानाजी फड़के को गहरे घाव लगे। रघुनाथ-राव की अधिकांश सम्पत्ति, उसका समस्त तोपखाना, उसके हाथी-घोड़े और उसका अपना झण्डा भी विजेता के हाथ लगे।[६] केवल अन्धकार के कारण वह पकड़ा न जा सका। वह अपने थोड़े-से अनुचरों तथा बहुसंख्यक रखैलों को साथ लेकर तुरन्त कैम्बे (खम्भात) पहुँचा। वहाँ के नवाब ने उसको प्रवेश देने से इनकार कर दिया। उस बन्दरगाह में ब्रिटिश कारखाने का प्रतिनिधि मैलेट उपस्थित था। रघुनाथराव ने उससे शरण देने तथा वहाँ से सकुशल सूरत पहुँचा देने की प्रार्थना की।

मोस्टिन ने पहले ही आधारभूमि तैयार कर ली थी, तथा विभिन्न ब्रिटिश कार्यकर्ताओं को निर्देश दे दिये थे कि वे भगोड़े मराठा राजकुमार का सत्कार करें। मैलेट ने रघुनाथराव को भावनगर के बन्दरगाह तक स्थल मार्ग से यात्रा करने के योग्य कर दिया। यहाँ से अंग्रेजी पोतों द्वारा वह २३ फरवरी को सूरत पहुँच गया।

रघुनाथराव इस समस्त काल में मोस्टिन तथा गैम्बेयर के साथ उन शर्तों को निश्चित करता रहा जिनके अनुसार ब्रिटिश लोग उसको पूना में उसकी गद्दी पर पुनः स्थापित करते। ६ मार्च, १७७५ ई० को इन शर्तों पर दोनों दल अन्तिम रूप से सहमत हो गये। इसको सूरत की सन्धि कहते हैं। शर्तें ये थीं:

(१) २५०० सैनिकों की सेना रघुनाथराव की इच्छा पर नियुक्त कर दी जायेगी, जिनमें से पर्याप्त तोपखाने सहित कम से कम ७०० यूरोपीय होंगे।

(२) इस दल के व्यय के निमित्त डेढ़ लाख रुपये प्रति मास अग्रिम रूप से दिये जायेंगे।

(३) ६ लाख रुपये या उसके बराबर के आभूषण अंग्रेजों के पास न्यास रूप में रख दिये जायेंगे।

(४) इसके अतिरिक्त रघुनाथराव अंग्रेजों को सदा के लिए बम्बई के

---

[६] यह युद्ध अनेक नामों से प्रसिद्ध है। ये नाम उस क्षेत्र में कई गाँवों के नाम पर हैं—नापर, आनन्द, मोग्री तथा अडास। ये सब माही नदी के उत्तरीय तट पर वासद रेलवे स्टेशन के समीप हैं।

समस्त टापू दे देगा। इनमें थाना, बसई तथा सालसेट और सूरत के समीप जम्बूसार तथा औलपद के तालुके सम्मिलित होंगे।

रघुनाथराव ने कम्पनी के पास ६ लाख रुपये के आभूषण न्यास रूप में रख दिये जो अनेक परिवर्तनों के बाद जून, १७९८ ई० में उसके पुत्र को वापस कर दिये गये।

इस सहमति के अनुसार कर्नल कीटिंग के नेतृत्व में एक ब्रिटिश सेना बम्बई से चली और २८ फरवरी को सूरत पहुँच गयी अर्थात यह सेना रघुनाथराव के वहाँ पहुँचने के ५ दिन बाद पहुँची। जेम्स फोर्ब्स को असैनिक अधिकारी के रूप में इस सेना के साथ भेजा गया।[७]

ब्रिटिश सेना गुजरात में स्थित मन्त्रियों की सेना का दमन करने के विचार से रघुनाथराव को साथ लेकर १५ मार्च को जलमार्ग द्वारा सूरत से कैम्बे (खम्भात) के लिए चल दी। उसका विचार अन्त में पूना पहुँचने का था।

हरिपन्त ने इस बीच में भावी घटनाओं की पूर्व कल्पना से अपनी सेना तथा अपने साधनों का संगठन कर लिया, तथा अपने और महादजी सिन्धिया के मतभेदों को भी दूर कर लिया। शिन्दे को धनाभाव का कष्ट था और उसके सैनिकों का वेतन बहुत दिनों से शेष था। जब मन्त्रियों ने उससे अपने कर्तव्य की उपेक्षा का कारण पूछा तो वह रुष्ट हो गया तथा उज्जैन को वापस चला गया। इस प्रकार बढ़ते हुए शत्रु का सामना करने के लिए हरिपन्त अकेला रह गया। महादजी का अनुकरण करते हुए होल्कर ने भी हरिपन्त का साथ छोड़ दिया और वह मालवा को चला गया। इन दो सरदारों के वापस होने का अर्थ रघुनाथराव ने यह लगाया कि उन्होंने मन्त्रियों के पक्ष का त्याग कर दिया है, तथा उसके पक्ष को स्वीकार कर लिया है। उसने अपना यह अनुमान अंग्रेजों को भी बताया। जब बाद को पता चला कि इन दोनों

---

[७] इसी के बाद उसने अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ 'ओरिएण्टल मेमॉयर्स' लिखा, जिसके चार खण्ड हैं। अन्य महत्त्वपूर्ण बातों के अतिरिक्त उसने इसमें अपने उन विचारों एवं अनुभवों को भी लेखबद्ध किया है जो उसको रघुनाथराव तथा उसके अनुयायियों के साथ लगभग ५ वर्षों के सहवास में व्यक्तिगत सम्पर्क द्वारा प्राप्त हुए थे। इनमें से कुछ का तत्कालीन इतिहास से गहरा सम्बन्ध है। उसके चरित्र और योग्यता के प्रशंसक जब फोर्ब्स द्वारा लिखित इस विवरण को पढ़ेंगे तो उनका भ्रम दूर हो जायेगा। उन्हें ज्ञात होगा कि रघुनाथराव अत्यन्त दूषित जीवन व्यतीत करने वाला था। उसका यह विवरण बिलकुल पक्षपात-रहित है।

सरदारों का अभिप्राय रघुनाथराव की सहायता करना नहीं था तो अंग्रेजों को अत्यधिक कष्ट हुआ।

कर्नल कीटिंग को अपना कार्य अत्यन्त कष्टसाध्य तथा द्वेषजनक मालूम हुआ। रघुनाथराव अपनी तथा अपने मित्रों की सेना को कभी भी नियमपूर्वक वेतन न दे सका। लगभग मार्च के अन्त में वे खम्भात पहुँचे, परन्तु वे उन सुविधाओं को नहीं छीन सके, जिन्हें हरिपन्त ने पहले ही प्राप्त कर लिया था। हरिपन्त ने गुरिल्ला युद्ध का आश्रय लिया जिससे अंग्रेज लोग बहुत पीड़ित हो गये। एक मास तक दोनों दलों ने माही नदी के उत्तरी क्षेत्र में कुछ निर्णायिक लाभ प्राप्त करने का प्रयत्न किया तथा उनके बीच में कुछ हलकी झड़पें भी हुईं। २८ मार्च को लगभग उसी स्थान पर जहाँ गत फरवरी में अडास का युद्ध हुआ था घोर युद्ध हुआ। हरिपन्त ने अंग्रेजों पर सहसा धावा किया और उनकी यूरोपीय सेना के लगभग ३०० सिपाहियों को मार गिराया। इनमें से ११ उच्च-पदस्थ अधिकारी भी थे। परन्तु यह संघर्ष किसी दल के लिए निर्णायिक सिद्ध नही हुआ। वर्षाऋतु के आगमन पर रघुनाथराव तथा उसके मित्रों ने अपना शिविर डमोई नामक स्थान में लगाया। हरिपन्त सोनगढ़ लौट गया। कर्नल कीटिंग को पता चला कि हरि भिडे, जो रघुनाथराव का एक विश्वस्त अधिकारी था, कुछ विश्वासघातक व्यवहार कर रहा है। इस कारण उसने रघुनाथराव के विरोध तथा निवारण करने पर भी उसे तोप से उड़ा दिया।

७. पूना में अपटन का दूतावास—इस प्रकार यह स्पष्ट हो गया कि मोस्टिन के परामर्श पर बम्बई के शासकों ने उत्साहपूर्वक जो युद्ध आरम्भ किया था, वह उनकी आशा के अनुकूल अल्पकालीन तथा सहज-साध्य नही था। कम्पनी के प्रशासकीय स्वरूप में परिवर्तन हो जाने से इस युद्ध के कारण अनेक अकल्पित समस्याएँ उठ खड़ी हुईं।

हेस्टिंग्ज पहले केवल बंगाल का गवर्नर था, परन्तु अब ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के नवीन रेगुलेटिंग ऐक्ट द्वारा वह तीनों प्रान्तों का गवर्नर-जनरल अर्थात सर्वोपरि मुख्य पुरुष हो गया था। २६ अक्टूबर, १७७४ ई० को उसने अपना नवीन पद ग्रहण कर लिया; परन्तु बम्बई के अध्यक्ष हार्नबी की इच्छा न थी कि वह हेस्टिंग्ज के अधिकार को अपने अधिकार से बढ़कर माने। इसलिए उसने स्वतन्त्र रूप से कार्य किया। गवर्नर-जनरल के कार्य का नियन्त्रण करने के लिए चार सदस्यों की परिषद् की नियुक्ति से और भी जटिल समस्याएँ उपस्थित हो गयीं। इन सदस्यों में से तीन इंगलैण्ड से प्रथम बार भारत आये थे। उनके और हेस्टिंग्ज के बीच गम्भीर मतभेद उपस्थित हो गये, जिनके कारण ब्रिटिश भारतीय इतिहास में अभूतपूर्व गड़बड़ी उत्पन्न हो गयी।

भोंसले बन्धुओं अर्थात मुधोजी तथा सबाजी में २६ जनवरी, १७७५ ई० को नागपुर से १० मील दक्षिण में पंचगाम के स्थान पर घोर युद्ध हुआ, जिसमें सबाजी की मृत्यु हो गयी। इस कारण पूना शासन को घोर क्षति पहुँची, क्योंकि सबाजी उनका समर्थक था। विजेता मुधोजी रघुनाथराव का पक्षपाती था। उसने हत्यारे राघोबा के पक्ष-पोषण में अपनी सम्पूर्ण शक्ति का उपयोग किया।

हेस्टिंग्ज ने कलकत्ते में सर्वोपरि सत्ता धारण करते ही इस परिवर्तन की सूचना बम्बई के शासकों को भेज दी, परन्तु संचार की तत्कालीन मन्द गति के कारण अप्रत्याशित कठिनाइयाँ उत्पन्न हो गयीं। हार्नबी को हेस्टिंग्ज के पत्र बम्बई में ७ दिसम्बर, १७७४ ई० को ठीक उस समय मिले जबकि थाना के विरुद्ध नौका-अभियान आरम्भ किया जा रहा था, तथा पूना के प्रशासन में घोर अवरोध उपस्थित था। २८ दिसम्बर को थाना पर अधिकार प्राप्त कर लिया गया। परन्तु इस घटना का कोई भी समाचार आगामी २१ मार्च अर्थात ३ मास बाद तक कलकत्ता को नहीं भेजा गया, और न उन परिवर्तनों की ओर कोई ध्यान दिया गया जो रेगुलेटिंग ऐक्ट के कारण उपस्थित हो गये थे। इनके अनुसार थाना पर अधिकार अनधिकृत था। परन्तु कलकत्ता के अधिकारी वारेन हेस्टिंग्ज के पास सूचना पहुँचने के पहले ही इस घटना तथा उस सेना का समाचार पहुँच गया था जो रघुनाथराव की सहायता को भेजी गयी थी। उसने ८ मार्च को बम्बई को कड़ा विरोध पत्र भेजा। उसने अध्यक्ष को पुनः स्मरण दिलाया कि मराठा शासन से वर्तमान सम्बन्धों को भंग करते हुए उसने सूरत की सन्धि के अनुसार अवैध रूप से कार्य किया है। उसने बम्बई के शासकों को आज्ञा दी कि वे अपनी सेनाओं को हटा लें, तथा उस युद्ध को बन्द कर दें जिसको उन्होंने आरम्भ कर रखा है। बम्बई में यह विरोध पत्र २१ मई को प्राप्त हुआ, जबकि परस्पर विरोधी दोनों सेनाएँ उत्तर गुजरात में घोर युद्ध में व्यस्त थीं। बम्बई के शासकों ने सर्वोपरि शासन की इन आज्ञाओं की ओर कोई ध्यान नहीं दिया तथा उनकी स्पष्ट अवहेलना करते हुए अपने उत्तरदायित्व पर युद्ध जारी रखा। अपनी आज्ञाओं की इस प्रकार घोर अवहेलना पर कलकत्ता की सभा को बहुत क्रोध आया। उसने ३१ मई को दूसरा कड़ा विरोध पत्र बम्बई भेजा। इसमें कहा गया : "कर्तव्य के कारण हमारे सम्मुख यह स्पष्ट करने की खेदजनक आवश्यकता आ पड़ी है कि हम उन कार्यों की सर्वथा निन्दा करते हैं जिन्हें आप कर रहे हैं। हम उस सन्धि को अप्रमाणिक मानते हैं जो आपने रघोबा से कर रखी है। आप मराठा राज्य से इस समय जो व्यवहार कर रहे हैं वह नीति-विरुद्ध, विपत्तिजनक, अनधिकृत

तथा अन्यायपूर्ण है। ये दोनों कार्य पार्लियामेण्ट के नवीन विधान के विरुद्ध हैं, जैसा कि स्पष्ट है। आपने अपने ऊपर समस्त मराठा साम्राज्य को विजय करने का भार लाद रखा है। यह कार्य आपने उस व्यक्ति के हित में ग्रहण कर रखा है जो आपको इस कार्य में कोई प्रभावशाली सहायता देने में असमर्थ मालूम होता है। जो योजना आपने बना रखी है, उसका उद्देश्य निर्णायक विजय नहीं है। यह अनिश्चित कष्टों की पूर्व सूचना है। आपके पास पर्याप्त दल, नौ-सेना तथा निश्चित साधन नहीं हैं जिनके द्वारा आप अपना पिण्ड छुड़ा सकें। जिस पक्ष को आपने शत्रु बना रखा है, उससे कोई क्षति होने का भी कारण आप नहीं बता सकते। आपने जिस व्यक्ति का पक्ष ले रखा है, उसकी रक्षा करने के लिए भी आप पहले से बाध्य नहीं हैं। हम गम्भीरतापूर्वक आपको समस्त परिणामों के प्रति चेतावनी देते हैं तथा अविलम्ब आज्ञा देते हैं कि आप कम्पनी की सेनाओं को अपने शिविर-स्थानों में वापस बुला लें—यदि उनकी वापसी से उनकी अपनी कुशलता संकट में न पड़ जाये। आपकी स्थिति चाहे जो कुछ भी हो, हम आशा करते हैं कि आप हमारी आज्ञाओं का तुरन्त पालन करेंगे। हमारा अभिप्राय यह है कि हम यथाशीघ्र पूना में मराठा राज्य के शासक-दल के साथ सन्धि प्रस्ताव आरम्भ करें।"[८]

१० जुलाई को हेस्टिंग्ज ने पूना के प्रशासन को अपने उस पत्र का सारांश लिख भेजा जो उसकी सभा ने बम्बई को भेजा था। उसने यह भी लिखा कि वह शीघ्र अपना एक विश्वस्त तथा योग्य दूत पूना भेज रहा है जो युद्ध को बन्द कर देगा तथा मराठों के साथ मैत्रीपूर्ण व्यवहार का प्रस्ताव करेगा। इस पर सखाराम बापू ने २६ जुलाई को वारेन हेस्टिंग्ज को अनुनयपूर्ण उत्तर भेजा। उसमें कहा गया था कि आपका जो पत्र प्राप्त हुआ है, उसकी भाषा मैत्रीपूर्ण है। उसमें बताया गया है कि रघुनाथराव विद्रोही है तथा उसने अपने भतीजे की हत्या करने का पाप किया है। दिवंगत पेशवा के न्यायसंगत उत्तराधिकारी का जन्म हो गया है। इस समय उसी के नाम से मराठा शासन का संगठन किया गया है। बापू ने अन्याय तथा बम्बई के शासकों के कार्य की गुरुता को पूर्णतः व्यक्त कर दिया।[९]

बम्बई में हार्नबी तथा उसकी सभा कलकत्ता के इस हस्तक्षेप पर बहुत अप्रसन्न हुए। उन्होंने स्थिति की व्याख्या करने के लिए अपने विशेष दूत टेलर

---

८ फोरेस्ट, मराठा सीरीज, पृ० २३८। नाटुकृत महादजी सिन्धिया, पृ० २८० गुप्त समिति का पंचम वृत्तान्त—पृ० ८०

९ फारसी पत्र—बी० आई० एस० एम० नं० १६

को व्यक्तिगत रूप से भेजा। वह अक्तूबर, १७७५ ई० को कलकत्ता पहुँचा तथा उसने व्यक्तिगत वार्तालाप द्वारा तथा लिखित रूप से भी पश्चिमी प्रान्त की वस्तुस्थिति को सर्वथा स्पष्ट कर दिया। बम्बई के शासकों ने कलकत्ता की आज्ञाओं का सर्वथा उल्लंघन किया तथा अपनी शिकायतों को इंगलैण्ड के गृहाधिकारियों के पास निर्णयार्थ भेज दिया। इस उपाय द्वारा और भी अधिक जटिलताएँ उत्पन्न हो गयीं। स्वयं कलकत्ता की सभा फूट तथा कलह का केन्द्र बन गयी।

वारेन हेस्टिंग्ज की आज्ञा पर अक्तूबर, १७७५ ई० में कर्नल अपटन कलकत्ता से चल दिया। उसके साथ लगभग डेढ़ हजार अनुचरों की पंक्ति के अतिरिक्त हाथी, पालकियाँ तथा ब्रिटिश सत्ता की महत्ता के अनुरूप अन्य उपकरण थे। सखाराम बापू ने उसको बुन्देलखण्ड तथा मालवा के मराठा प्रदेशों में होकर यात्रा करने के लिए आज्ञापत्र दे रखे थे। हेस्टिंग्ज ने उसको मार्ग स्थित विभिन्न सरदारों के नाम परिचयात्मक पत्र दिये थे। सखाराम बापू के पूछने पर हेस्टिंग्ज ने स्वीकार किया था कि कर्नल अपटन को शान्ति की शर्तों को निश्चित करने के सम्बन्ध में पूर्ण अधिकार दे दिये गये हैं। वह जो कुछ सन्धि करेगा, उसका बम्बई तथा कलकत्ता दोनों के द्वारा श्रद्धापूर्वक पालन किया जायेगा। इस समय पर रघुनाथराव ने भी कलकत्ता को अपने प्रतिनिधि भेजे। उन्होंने अपटन के आयोग का तीव्र विरोध किया तथा सूरत की सन्धि के पालन की माँग उपस्थित की।[१०] परस्पर विरोधी हितों का सामंजस्य करने तथा पश्चिमी तट पर बम्बई-मराठा सम्बन्धों को दूषित करने वाले कलह का शान्तिमय समझौता करने में हेस्टिंग्ज को बहुत कष्ट हुआ। बम्बई के शासकों ने अपटन से प्रार्थना की कि पूना जाने के पहले वह उनसे मिल ले, परन्तु उसने इस प्रस्ताव को न मानने में ही बुद्धिमत्ता समझी। अपटन ने नवम्बर में कालपी में यमुना को पार किया तथा २८ दिसम्बर को पूना पहुँचा। वहाँ पर पेशवा शासन द्वारा उसका भव्य रूप में स्वागत किया गया। ३१ दिसम्बर को पुरन्दरगढ़ में आयोजित पूरे दरबार में उसका स्वागत किया गया। इसका सभापति शिशु पेशवा था, जिसकी आयु उस समय लगभग २० मास की थी। इस समय रघुनाथराव तथा हरिपन्त के विरोधी दल सोनगढ़ के समीप गुजरात तथा काठियावाड़ की सीमा पर पड़ाव डाले पड़े हुए थे। अपटन के आगमन पर उनको अपनी सैनिक प्रवृत्ति को रोक देने की आज्ञा दी गयी।

---

[१०] इस विषय पर 'फारसी पंजिका', जिल्द ४ नं० १९१९-३०४१ में मुद्रित पत्र-व्यवहार देखो।

पूना के मन्त्रीगण बम्बई तथा कलकत्ता के बीच की नीति भिन्नता से इतने तंग आ गये कि उन्होंने सीधे रघुनाथराव से शान्तिपूर्ण निपटारे का प्रयास करना ही श्रेयस्कर समझा। परन्तु रघुनाथराव में इतनी बुद्धि नहीं थी। उसकी मनोदशा भी किसी प्रकार का समझौता स्वीकार करने योग्य नहीं थी। बम्बई के अधिकारियों को भी घटनाचक्र से कुछ कम चिन्ता नहीं थी। यद्यपि गुजरात पर व्यवहार रूप में उनका अधिकार था, परन्तु इस दीर्घकालीन अभियान का व्यय इस समय इतना बढ़ गया था कि वे इसको सहन नहीं कर सकते थे। हरिपन्त ने उनकी परिस्थिति को अधिक कष्टप्रद बना देने में विलम्ब नहीं किया। वर्षाऋतु के शीघ्र पश्चात उसने अपना आक्रमण आरम्भ कर दिया। इस प्रकार मराठों के दोनों दलों तथा अंग्रेजों को इस युद्ध के कारण घोर असुविधा सहन करनी पड़ी। केवल दो शासकों को इससे महत्त्व-पूर्ण लाभ पहुँचा—वे थे हैदराबाद का निजाम तथा मैसूर का हैदरअली। वे दोनों अपने-अपने क्षेत्रों में जिन प्रदेशों पर अधिकार कर सकते थे, उन पर उन्होंने अधिकार जमा लिया।

रघुनाथराव की मक्कारी के कारण पूना शासन को बहुत कष्ट हुआ। उसने खानदेश के कोलियों को विद्रोह की उत्तेजना दी; तथा उसी क्षेत्र में रणाला के गुलजारखाँ को मराठा शासन के विरुद्ध लूटमार करने के लिए प्रोत्साहित किया। इस प्रकार बार भाइयों को अनेक दिशाओं से असीम कष्ट सहना पड़ा। मानाजी फड़के, त्रिम्बक सूर्याजी तथा रघुनाथराव के अन्य पक्ष-पातियों ने पूना की सभा को पंगु कर देने के लिए अपकारक प्रवृत्तियों का आश्रय लिया। इस अकारण अपकार के परिणामस्वरूप भी रघुनाथराव को अपने उद्देश्य की प्राप्ति में किसी प्रकार की कोई सहायता प्राप्त न हुई। उल्टा वह घोरतम संकट में फँसा रहा। २३ जनवरी, १७७६ ई० को वह अंग्रेजी शिविर से इस प्रकार लिखता है: "मैं अपनी वर्तमान दशा पर भयानक रूप से दुखी हूँ। मैं भूखा मर रहा हूँ, मेरे पास धन नहीं है, मेरी सेना में विद्रोह फैल रहा है, मेरे अंग्रेज मित्रों की संख्या इतनी कम है कि उनके बनाये कुछ भी नहीं बन सकता। मुझे पहले उनकी शक्ति में प्रबल विश्वास था, परन्तु इस विषय में मुझे बहुत धोखा हुआ है। हरिपन्त किसी भी क्षण मुझे पकड़ सकता है।" रघुनाथराव के अत्यन्त उत्साही समर्थक सखाराम हरि ने भी उसी प्रकार शोकपूर्ण शब्दों में पत्र लिखा है।

८. पुरन्दर की सन्धि—पूना में अपटन के आगमन से भी किसी प्रकार परिस्थिति न सँभली। दीर्घकालीन वार्ता तथा चिन्तापूर्ण विवाद गतिरोध आ जाने से तीन मास तक ज्यों के त्यों बने रहे। सखाराम बापू, नाना तथा

कृष्णराव काले पूना की सभा के प्रमुख थे। गम्भीर शपथों द्वारा दोनों पक्ष गोपनीयता के लिए बाध्य थे। ये अधिवेशन पुरन्दरगढ़ के नीचे कोडिन गाँव के एक डेरे में प्रतिदिन तीसरे पहर को आरम्भ होकर प्राय: सायंकाल तक होते रहते थे। अपटन के पास एक सहायक के अतिरिक्त एक दुभाषिया भी रहता था। अत: वार्तालाप की गति बहुत मन्द रही। अपने आगमन के शीघ्र पश्चात ही अपटन ने शिशु पेशवा के जन्म के विषय में सूक्ष्म अन्वेषण किया तथा जब उसको पूर्ण विश्वास हो गया कि शिशु जाली नहीं है, तभी उसने पूना शासन को सन्धि-प्रस्ताव के निमित्त मान्यता प्रदान की।

अपने समस्त वार्तालाप में अपटन ने यथाशक्ति प्रयास किया कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी को कुछ ठोस लाभ प्राप्त हो जाये। उसने कहा कि वह रघुनाथराव के पक्ष से ब्रिटिश समर्थन को हटा लेने के लिए अपनी सहमति उसी समय देगा, जब बसई, साल्सेट (साष्टी) तथा भड़ौंच पर उसको स्थायी अधिकार दे दिया जायेगा। अंग्रेजों का यह पक्का निश्चय था कि जिस प्रकार कलकत्ता तथा मद्रास के समुद्रवर्ती क्षेत्रों पर उनका बहुत दिनों से अधिकार है, उसी प्रकार बम्बई के लम्बे समुद्रतट पर उनका विवादरहित अधिकार होना चाहिए। परन्तु मराठा शासन किसी भी आधार पर बसई को छोड़ने के लिए सहमत नहीं हो सकता था, क्योंकि बसई बम्बई का प्रतिद्वन्द्वी था तथा स्वतन्त्र सत्ता के रूप में उनके लिए यह मर्म स्थान था। पूना शासन के इस कड़े रुख पर अपटन को घोर निराशा हुई।

दोनों पक्षों के बीच घोर मतभेद का एक अन्य विषय रघुनाथराव की स्थिति तथा उसके भावी पालन-पोषण से सम्बन्धित मामला था। अपटन ने हठ किया कि रघुनाथराव को सर्व प्रबन्धाधिकार-प्राप्त संरक्षक नियुक्त कर दिया जाये, क्योंकि पेशवा अल्पवयस्क शिशु है। इस प्रस्ताव को स्वीकार करने से मन्त्रियों ने न्यायपूर्वक इनकार कर दिया। मन्त्रियों का यह आग्रह था कि रघुनाथराव हत्यारा तथा विद्रोही है, किसी कारण से भी उसको पूना लौटने की आज्ञा नहीं मिल सकती। उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता कि दिवंगत पेशवा का औरस शिशु उसकी रक्षा में सकुशल रह सकेगा। इसके विपरीत उन्होंने रघुनाथ-राव को पूर्णत: सौंप देने की माँग की। अपटन ने कहा कि रघुनाथराव उनका अतिथि है, बन्दी नहीं। उसके साथ वे केवल इतना कर सकते हैं कि उससे अपना समर्थन वापस ले लें, परन्तु वे उसको स्वयं समर्पित न करेंगे। जब अंग्रेज उसकी सहायता न करेंगे, तब पूना की परिषद उसके साथ जैसा चाहे वैसा व्यवहार कर सकती है। मन्त्रियों द्वारा प्रस्तावित स्वत्वों के औचित्य पर अपटन ने वाद-विवाद नहीं किया, परन्तु बम्बई के अधिकारी बसई तथा रघुनाथ-

राव के समर्पण के विषय पर सर्वथा दृढ़ थे। अपटन ने अपनी स्थिति को स्पष्ट करने के लिए अपने दूत बम्बई भेजे। इस कारण सन्धि-वार्ता में बहुत विलम्ब हो गया। रघुनाथराव ने बहुत ऋण कर लिया था। स्वयं अंग्रेजों का उसको भारी ऋण चुकाना था। अपटन ने यह ५० लाख का ऋण चुका देने की माँग प्रस्तुत की। मन्त्रियों ने यह ऋण चुकाने से इनकार कर दिया। इस प्रकार एक मास से भी अधिक समय के विचार-विनिमय के बाद सन्धि-वार्ता भंग हो गयी, तथा फरवरी के प्रथम सप्ताह में अपटन ने आगे वार्तालाप करने से इनकार कर दिया। उसने विदा होने की आज्ञा प्राप्त कर ली तथा वारेन हेस्टिंग्ज़ को भी लिख दिया कि पूना की सरकार के साथ शान्ति स्थापना नहीं हो सकती। हरिपन्त फड़के को तुरन्त युद्ध आरम्भ करने का आदेश दे दिया गया। इस प्रकार बार भाइयों को पूर्णरूप से यह ज्ञान हो गया कि अपटन या वारेन हेस्टिंग्ज की मधुर इच्छा पर निर्भर रहना व्यर्थ है। उन्होंने देख लिया कि केवल सैनिक-गति से ही कूटनीतिक प्रगति में सफलता प्राप्त हो सकती है। ७ मार्च को हेस्टिंग्ज ने युद्ध पुनः आरम्भ करने की नवीन आज्ञा दे दी।

इस संकटमय क्षण में एक ऐसी घटना घटित हो गयी जिसके कारण मन्त्रियों को अपनी शर्तें नम्र करने तथा किसी भी मूल्य पर शान्ति स्थापित करने के प्रलोभन ने घेर लिया। छद्मवेशी व्यक्ति जो अपने को सदाशिवराव भाऊ बताता था और १७६५ ई० से नजरबन्द था, अकस्मात् १६ फरवरी, १७७६ ई० को रत्नागिरि के गढ़ से भाग निकला तथा उसने विद्रोह खड़ा कर दिया। इस विद्रोह के कारण अभीष्ट स्थानों में इस प्रकार के कष्ट आरम्भ हो गये कि पूना की सभा ने अपनी पुरानी माँगों को शिथिल कर दिया। उन्होंने अपटन के साथ अपने प्रस्ताव पुनः आरम्भ कर दिये तथा १ मार्च को उन्होंने निम्नलिखित शर्तों पर सन्धि कर ली :

(१) थाना का गढ़ तथा साल्सेट का टापू अंग्रेजी अधिकार में रहेंगे।

(२) १२ लाख रुपये नकद अंग्रेजों को दिये जायेंगे। यह उस व्यय के निमित्त होंगे जो उन्होंने रघुनाथराव के कारण किया था।

(३) रघुनाथराव को अपने पालन-पोषण के निमित्त ३ लाख १५ हजार का वार्षिक भत्ता मिलेगा तथा वह अपने को राज्य-कार्य से सर्वथा दूर रखेगा।

(४) गुजरात में जो प्रदेश अंग्रेजों ने विजय कर लिया है, उसको वे अपने अधिकार में रखेंगे, तथा वे गायकवाड़ के कार्यों में हस्तक्षेप न करेंगे।

इस सन्धि को पुरन्दर की सन्धि कहते हैं। परिस्थिति जटिल होने के कारण इस सन्धि की व्यवस्था अत्यन्त शीघ्रता में की गयी थी। अपटन ने इसकी सूचना तुरन्त बम्बई तथा कलकत्ता को भेज दी, और बम्बई कहला

भेजा कि वे अपनी युद्ध प्रवृत्तियों को बन्द कर दें। वह पूना से जाने के लिए उत्सुक था, परन्तु मन्त्रियों की साग्रह प्रार्थना पर वह पूना में बहुत दिनों तक ठहरा रहा जिससे सन्धि की शर्तों को उचित रूप से कार्यान्वित करा सके। एक असत्य समाचार फैल गया कि अपटन को बलपूर्वक रोका जा रहा है।

पुरन्दर की यह सन्धि वास्तव में समझौतों की थेगली मात्र थी। यह इस प्रकार का करार न था जिसको दोनों पक्षों की हार्दिक स्वीकृति प्राप्त हो। इसकी अनेक मूलभूत धाराएँ अस्पष्ट थीं तथा इसके कारण अल्पकाल ही में दोनों पक्षों को इस प्रकार उत्तेजना हुई कि स्पष्टतः युद्ध का अन्त अभी नहीं हुआ है। सर्वप्रथम रघुनाथराव को इस समझौते पर क्रोध आया, क्योंकि वह इससे सहमत न था। शरारत करने की असीम शक्ति होने के कारण रघुनाथ-राव ने इसे किसी भी प्रकार स्वीकार नहीं किया। उसके समान ही बम्बई की सरकार को भी इस सन्धि-पत्र से घृणा थी, क्योंकि उनको उस समस्त व्यय के बदले में कुछ भी वास्तविक प्राप्ति नहीं हुई थी जो वे गत दो वर्षों में कर चुके थे। तात्कालिक समस्या यह थी कि रघुनाथराव का नियन्त्रण किस प्रकार किया जाये। उसने समस्त दिशाओं में अपना असाधारण प्रपंच आरम्भ कर दिया था। उसने बम्बई, कलकत्ता तथा लन्दन के ब्रिटिश अधिकारियों को पत्र लिखने, विरोध प्रदर्शन करने, तथा उनसे सहायता की याचना करने के अतिरिक्त सिन्धिया तथा होल्कर जैसे शक्तिशाली मराठा सरदारों की निष्ठा पूना शासन के प्रति विचलित करने का प्रयत्न किया। ऐसा मालूम हुआ कि समस्त भारतीय महाद्वीप सहसा अराजकता में फँस गया है। यदि बम्बई के अधिकारी चाहते तो इस परेशानी को सरलता से दूर कर सकते थे। परन्तु अपनी चिरवांछित योजनाओं में केन्द्रीय शासन के हस्तक्षेप पर वे अति क्रुद्ध हो रहे थे। अतः रघुनाथराव को नियन्त्रण में रखने तथा अपटन की सन्धि की शर्तों का पालन करने से उन्होंने इनकार कर दिया। इसके स्थान पर उन्होंने गवर्नर जनरल तथा उसकी कौंसिल की उपेक्षा करके इस सब झगड़े को लन्दन के अधिकारियों के पास भेज दिया। कर्नल कीटिंग ने जो सूरत के समीप ब्रिटिश सेना का कमान-अधिकारी था, रघुनाथराव की रक्षा की, जिससे पूना की सेनाएँ उसको पकड़ लेने का प्रयास न करें। रघुनाथराव ने छलपूर्वक कहा कि वह हरिपन्त फड़के के प्रति आत्मसमर्पण कर देगा तथा सन्धि की धाराओं की व्यवस्था के बहाने से उसने अपने दूत सखाराम हरि तथा नानाजी फड़के को उसके पास भेज दिया, परन्तु हरिपन्त ने इन दोनों दूतों को समझा-बुझाकर अपने पक्ष में मिला लिया। अब ऋतु युद्ध-योग्य न रह गयी थी और रघुनाथराव भी व्यवहार रूप से अनिष्टकारी

नहीं रह गया था। उसके पास न सेना थी, न साधन। अतः हरिपन्त ने पीछा करना छोड़ दिया तथा १८ जून को पुरन्दर वापस आ गया। उसको विश्वास हो गया था कि युद्ध अब समाप्त हो गया है। कर्नल कीटिंग युद्ध का विचार नहीं कर सकता था, क्योंकि वर्षा आरम्भ हो गयी थी। व्यवहार रूप में युद्ध प्रवृत्तियाँ बन्द हो गयीं। सभी ने रघुनाथराव का पक्ष त्याग दिया था। शिशु पेशवा इस समय दो वर्ष के ऊपर हो गया था तथा मराठा जाति के स्वामी के रूप में स्वीकार कर लिया गया था।

इस समय मन्त्रियों ने पुरन्दर के समीप एक विशेष योजना स्वीकार की। उन्होंने १९ जून को विशाल शामियाने में एक भव्य स्वागत समारोह किया। समस्त सरदारों तथा वेतनभोगियों को निमन्त्रण मिला तथा उनको आदेश दिया गया कि अपने नये स्वामी पेशवा के प्रति अपनी निष्ठा की शपथ ग्रहण करके, उसको नम्रतापूर्वक प्रणाम करें तथा प्रथानुसार उसके हाथों से पान ग्रहण करें। तीन घण्टे तक अल्पायु बालक ने इस प्रयास को विशेष धैर्यपूर्वक सहन किया तथा अपनी मधुर क्रीड़ाशीलता से प्रत्येक व्यक्ति को प्रभावित कर दिया। रघुनाथराव के समस्त उत्साही सहायकों मानाजी फड़के, सखाराम हरि तथा सदाशिव रामचन्द्र को भी इस समारोह में उपस्थित होने की आज्ञा दी गयी थी, परन्तु उनका स्वागत पृथक स्थान पर किया गया, क्योंकि साधारण सभा में उपस्थित होने पर उनके गुप्त रूप से कोई अहित कर बैठने की आशंका थी। मुधोजी भोंसले भी सुदूर नागपुर से इस समारोह में उपस्थित होने आया था। वृद्ध सखाराम बापू ने सभा के सन्मुख प्रभावशाली भाषण किया, उसने राज्य के प्रति पेशवा परिवार की सेवाओं का वर्णन किया तथा प्रत्येक व्यक्ति से आशा की गयी कि वह वर्तमान कठिन परीक्षा के समय पर राज्य के हित में अभूतपूर्व परिश्रम तथा प्राणवान प्रयास करेगा। इस प्रभावकारी घटना से दो उद्देश्य सिद्ध हुए—मराठों में उस समय एकता स्थापित हो गयी तथा रघुनाथराव एक हठी शत्रु के रूप में अकेला पड़ गया। अब उसके पास न सेना थी, न उसके पक्ष पर किसी को विश्वास था। उसके निरर्थक गर्व तथा साधनहीन स्थिति से उसके अंग्रेज मित्रों को भी पूरी घृणा हो गयी थी। मन्त्रिगण बम्बई के अधिकारियों से बराबर उसके समर्पण की माँग करते रहे। रघुनाथराव ने अंग्रेजों को इसका अर्थ यह बताया कि उस पर आरोपित हत्या के लिए वे उसको मृत्यु-दण्ड देना चाहते हैं, यह माँग उसी का संकेत-मात्र है। अंग्रेज इसको अच्छा समझते थे कि वे भगोड़े की रक्षा करते रहें। वे अपने शरणागत अतिथि का साथ छोड़ देना अपमान की बात समझते थे। उन्होंने पूना सरकार को उत्तर दिया कि उन्होंने पहले ही रघुनाथ-राव से अपना समर्थन हटा रखा है, पर पुरन्दर सन्धि की शर्तों के अनुसार

वे उसको समर्पित करने के लिए बाध्य नहीं हैं। यह मन्त्रियों का कार्य है कि जिस प्रकार उनकी इच्छा हो, वे उसको पकड़ लें। पूना प्रशासन में नाना फड़निस का प्रभाव निरन्तर बढ़ रहा था तथा रघुनाथराव को पकड़ लेने के उसके हठ के कारण नवीन कष्ट उपस्थित हो गया था।

६. **धोखेबाज का अन्त**—युद्ध-कार्य से छुटकारा मिलने पर पूना शासन को धोखेबाज सदाशिवराव भाऊ की प्रगतियों की ओर गम्भीरतापूर्वक ध्यान देना पड़ा। रत्नागिरि गढ़ के रक्षक रामचन्द्र नायक परांजपे ने, जो मराठा शासन का विश्वस्त अधिकारी था, अपने किसी निजी कारणवश फरवरी में बन्दी को मुक्त कर दिया। यद्यपि रघुनाथराव को अच्छी तरह मालूम था कि वह व्यक्ति धोखेबाज है, वास्तव में वह भाऊ नहीं है, फिर भी उसने धोखे-बाज की गतिविधियों से लाभ उठाकर मन्त्रियों को निर्बल कर देना चाहा। विद्रोही ने अनेक अनुचर एकत्र कर लिये थे। इनमें कुछ तो रघुनाथराव के अनुचर थे तथा कुछ वे व्यक्ति थे जो किसी न किसी कारणवश वर्तमान शासन के प्रति ईर्ष्यालु थे। वह स्वयं कोंकण से घाट तक के पहाड़ी भाग को कभी पार न कर सका, परन्तु उसके कुछ अनुचरों ने सिंहगढ़ तक पहुँच जाने का साहस किया। हरिपन्त ने इन अनुचरों को पूर्णतया परास्त कर दिया तथा इनके नेता रामचन्द्र परांजपे के पुत्र को मार डाला। महादजी सिन्धिया तथा भीमराव पन्से धोखेबाज के पीछे लगा दिये गये जो कोलाबा तथा पेन के मार्ग से बम्बई पहुँचने का प्रयत्न कर रहा था। नवम्बर के आरम्भ में रघुजी आंग्रे उसको पकड़ लेने में सफल हो गया तथा उसको महादजी सिन्धिया के सुपुर्द कर दिया गया जो उस समय कोलाबा पहुँच गया था। पन्से ने विद्रोही के अनुचरों को बोरघाट के नीचे सुविधापूर्वक तितर-बितर कर दिया। महादजी तथा रघुजी बन्दी को उसके सहायकों सहित कठोर पहरे में तालेगाम के मार्ग से पूना ले आये। पूना के प्रमुख नागरिकों की सभा ने, जिनमें रामशास्त्री, हरिपन्त, कृष्णराव काले, बाबूजी नायक तथा कुछ व्यापारी और साधारण-जन सम्मिलित थे, एक सप्ताह तक अपराधी की परीक्षा ली तथा समस्त वर्णनों को लेखबद्ध किया। उसने अपने आरम्भिक जीवन की कथा सुनायी तथा उन लोगों के नाम बताये जिन्होंने उसको इस दुष्ट योजना में फँसा दिया था। उसको दोषी घोषित किया गया तथा मृत्युदण्ड दिया गया। सब लोगों को भलीभाँति दिखाने के उद्देश्य से पूना की सड़कों पर उसका प्रदर्शन किया गया तथा १८ दिसम्बर, १७७६ ई० को तीसरे पहर उसका बध कर दिया गया। जिन्होंने उसके पक्ष का समर्थन किया था, उन्हें भी कुछ हल्के दण्ड दिये गये।

तिथिक्रम

अध्याय ३

१० जनवरी, १७७५	रघुनाथराव के पुत्र बाजीराव का जन्म।
१० जनवरी, १७५५	नेल्सन का बम्बई आना तथा पश्चिमी तट पर कुछ बन्दरगाहों का निरीक्षण करना।
४ जुलाई, १७७६	अमरीकी स्वतन्त्रता की घोषणा।
अगस्त, १७७६	रघुनाथराव का सूरत से भागना तथा पुर्तगाली शरण की प्रार्थना करना।
११ नवम्बर, १७७६	रघुनाथराव का एक ब्रिटिश पोत पर तारापुर से बम्बई को प्रस्थान करना।
जनवरी, १७७७	आनन्दीबाई तथा उसका पुत्र हस्तगत तथा मण्डलेश्वर में बन्दी।
जनवरी, १७७७	महादजी सिन्धिया द्वारा कोल्हापुर के विरुद्ध प्रयाण।
मार्च, १७७७	मोस्टिन का पूना पहुँचना तथा अपटन को मुक्त करना।
१५ मार्च, १७७७	सेण्ट लूबिन का चेउल में उतरना तथा पूना को जाना।
१५ मार्च, १७७७	हैदर द्वारा गुट्टी पर चढ़ाई तथा मुरारराव को बन्दी बनाकर ले जाना।
१२ जुलाई, १७७७	गंगाबाई की पुरन्दर में मृत्यु।
१५ सितम्बर, १७७७	रामराजा का साहू द्वितीय को गोद लेना।
६ दिसम्बर, १७७७	रामराजा की मृत्यु।
२३ मार्च, १७७८	हेस्टिंग्ज द्वारा पूना के विरुद्ध युद्ध-घोषणा।
२६ मार्च, १७७८	मोरोबा फड़निस द्वारा बलपूर्वक पूना में सत्ता हस्तगत।
३० मार्च, १७७८	महादजी द्वारा कोल्हापुर में कार्य समाप्त तथा पूना के लिए प्रस्थान।
मार्च, १७७८	कर्नल लेस्ली द्वारा कालपी पर अधिकार तथा बुन्देलखण्ड में प्रवेश।
१२ जून, १७७८	महादजी तथा सखाराम बापू का पूना के समीप मिलन।

१० जुलाई, १७७८	अंग्रेजों का चन्द्रनगर को हथियाना।
१० जुलाई, १७७८	मोरोबा फड़निस बन्दी तथा २० वर्ष तक नजरबन्द।
१२ जुलाई, १७७८	सेण्ट लूबिन पूना से अन्तिम रूप में विदा।
१६ अक्तूबर, १७७८	अंग्रेजों का पाण्डिचेरी हथियाना।
अक्तूबर, १७७८	कर्नल लेस्ली की मृत्यु तथा उसके स्थान पर गोडार्ड की नियुक्ति।
२४ नवम्बर, १७७८	रघुनाथराव का ब्रिटिश सेना सहित बम्बई से पूना को प्रस्थान।
दिसम्बर, १७७८	गोडार्ड का सम्पूर्ण सेना सहित नर्मदा को पार करना।
१ जनवरी, १७७९	मोस्टिन की मृत्यु।
४ जनवरी, १७७९	कार्ला में कैप्टिन स्टुअर्ट का बध।
८ जनवरी, १७७९	रघुनाथराव तथा अंग्रेजों का बड़गाँव पहुँचना।
९ जनवरी, १७७९	रघुनाथराव तथा अंग्रेज घेर लिये जाते हैं।
१४ जनवरी, १७७९	ब्रिटिश दूतों द्वारा आत्मसमर्पण की शर्तों की प्रार्थना।
१६ जनवरी, १७७९	बड़गाँव के समझौते पर हस्ताक्षर।
१७ जनवरी, १७७९	रघुनाथराव का अपनी समस्त मण्डली सहित महादजी को आत्मसमर्पण।
१४ फरवरी, १७६९	रघुनाथराव का झाँसी को प्रयाण।
२७ फरवरी, १७७९	सखाराम बापू राजद्रोह के कारण कैद में।
२१ अप्रैल, १७७९	पेशवा का यज्ञोपवीत संस्कार तथा पूना में आगमन।
अप्रैल, १७७९	रघुनाथराव द्वारा नर्मदा पर अपने रक्षकों की हत्या तथा सूरत को पलायन।
२ अगस्त, १७८१	सखाराम बापू की रायगढ़ में मृत्यु।

अध्याय ३

ब्रिटिश चुनौती

[१७७६-१७७९ ई०]

१. बार भाइयों की समस्याएँ।
२. भारतीय राजनीति में अन्तर-राष्ट्रीय तत्त्व।
३. मोरोबा फड़निस द्वारा विश्वासघात।
४. अंग्रेजों का तलेगाँव में पराभव।
५. महादजी घटनास्थल पर।
६. रघुनाथराव का नवीन प्रपंच।

१. **बार भाइयों की समस्याएँ**—रघुनाथराव के अंग्रेज संरक्षकों को उसके जीवन तथा आचरण से इस प्रकार घृणा हो गयी कि उन्होंने उसकी गतिविधि पर प्रतिबन्ध लगा दिया तथा नजरबन्द के रूप में उस पर पहरा बैठा दिया। एक बार सूरत में वह एक गुजराती व्यापारी की लड़की को भगा ले गया, जिसके कारण घोर उपद्रव उठ खड़ा हुआ तथा लोगों को अंग्रेजों से द्वेष हो गया। इस प्रकार रघुनाथराव को सूरत में अपना जीवन बहुत कष्टमय प्रतीत हुआ तथा उसको विश्वास हो गया कि उसके अंग्रेज मित्र किसी भी क्षण उसको पूना के मन्त्रियों के हाथों में दे देंगे। अतः उसने गोवा के पुर्तगाली शासन से सुरक्षा प्राप्त करने का प्रयत्न किया। इस उद्देश्य से वह अगस्त, १७७६ ई० में सूरत से चल दिया। वह दमन तथा तारापुर होकर आगे बढ़ रहा था। उसको अकस्मात् पता चला कि गणेश पन्त बेहेरे के अधीन पूना के एक दल ने उसका मार्ग रोक रखा है। अति विपत्तिग्रस्त दशा में उसने तुकोजी होल्कर को मध्यस्थ बनाकर पूना के मन्त्रियों को एक नम्रतापूर्ण पत्र लिखा, जिसमें उसने अपनी अधीनता का प्रस्ताव किया तथा उनसे दया याचना करते हुए नर्मदा तट पर अपने सुखपूर्ण निवास के प्रबन्ध का अनुरोध किया। इस समय महादजी सिन्धिया बम्बई के समीप था, क्योंकि वह धोखेबाज सदाशिवराव भाऊ का पीछा कर रहा था। उसने रघुनाथराव को भी पकड़ लेने का यत्न किया। अपने जीवन के लिए भयभीत होकर रघुनाथराव अपने पुत्र अमृतराव सहित ११ नवम्बर को एक ब्रिटिश पोत द्वारा तारापुर से बम्बई भाग गया। उस समय उसकी पत्नी आनन्दीबाई धार में घेरे में पड़ी हुई थी। वहाँ पर उसने पूना के शत्रुओं से वीरतापूर्वक अपनी रक्षा की। धार में १० जनवरी, १७७५ ई० को उसने एक पुत्र को जन्म दिया जिसने बाद में बाजीराव द्वितीय के नाम से पेशवा होकर मराठा राज्य के अन्तिम सर्वनाश को पूर्ण कर दिया। १७७७ ई०

के आरम्भ में धार के स्थान पर पूना की सेना ने आनन्दीबाई तथा उसके पुत्र को हस्तगत कर लिया, तथा अहल्याबाई के आश्वासन पर उनको मण्डलेश्वर में रहने की आज्ञा दे दी। स्वयं अहल्याबाई मण्डलेश्वर से लगभग १२ मील पश्चिम में स्थित महेश्वर में रहती थी। आनन्दीबाई अपने पति से १७७९ ई० में मिली, जब उसने तलेगाँव के स्थान पर मन्त्रिमण्डल के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया था।

पुरन्दर की सन्धि की रचना के बाद पूरे एक वर्ष तक कर्नल अपटन पूना में ठहरा रहा। मन्त्रिगण सन्धि की सब शर्तें पूरी न होने तक उसके जाने की आज्ञा नहीं देना चाहते थे। एक बार उसने धमकी दी कि वह अकस्मात् चल देगा, तब मन्त्रियों ने उसके स्थान पर दूसरा उत्तरदायी व्यक्ति भेजने की प्रार्थना की। इस पर बम्बई के अधिकारियों ने मार्च, १७७७ ई० में मोस्टिन को पुनः पूना भेज दिया। इस प्रकार मुक्त होकर अपटन हैदराबाद तथा मसुलीपाटन के मार्ग से कलकत्ते वापस चला गया।

पुरन्दर के सन्धि-पत्र पर स्पष्ट रूप से अल्पवयस्क पेशवा माधवराव नारायण के नाम से हस्ताक्षर किये गये थे। अतः उसके बाद रघुनाथराव वैधानिक रूप से उस सन्धि की उपेक्षा नहीं कर सकता था। ब्रिटिश तथा अन्य बाह्य शक्तियों के साथ पत्र-व्यवहार में वह कुछ समय तक अपने को पेशवा कहता रहा। १७७७ ई० के आरम्भ में मन्त्रिगण साधारण प्रशासन की ओर ध्यान देने के लिए निश्चिन्त थे तथा रघुनाथराव भी बम्बई में अंग्रेजों के अतिथि के रूप में शान्त था। आर्थिक कष्ट को दूर करने के लिए पूना के मन्त्रियों ने सर्वप्रथम कर-संग्रह के कार्य का संगठन किया, शान्तिमय जीवन के उपायों का आरम्भ किया तथा नवीन कर लगाये। उन्होंने हैदरअली की ओर भी ध्यान दिया, जिसने गत कुछ वर्षों से कर्नाटक में उपद्रव मचा रखा था। उसने गुट्टी के मुरारराव को अधीन कर लिया, जिसका अस्तित्व इस समय सर्वथा उसकी दया पर निर्भर था। १७७७ ई० के आरम्भ में हैदरअली ने गुट्टी को भूमिसात कर दिया, मुरारराव को पकड़ लिया तथा उसको काबुल दुर्ग के कठोर कारावास में डाल रखा था। जब यह समाचार पूना पहुँचा तो हरिपन्त को शीघ्रतापूर्वक मुरारराव की सहायता के निमित्त भेजा गया परन्तु इसमें अति विलम्ब हो गया था।

हमने पहले ही देख लिया है कि पूना के मन्त्रियों की सभा किस प्रकार अस्तित्व में आयी तथा घोर शत्रु-दल के समक्ष उसने किस प्रकार सफलता प्राप्त की। घटनाचक्र के शीघ्र परिवर्तन के कारण उस संख्या के मूल-संगठन में परिवर्तन हो गया, जिसके परिणामस्वरूप केवल बापू तथा नाना इसके स्थायी सदस्य रह गये। इन दोनों में भी बापू राज्य-कार्य पर अपना नियन्त्रण

शीघ्र गति से खो रहा था तथा सत्ता शीघ्र ही अकेले नाना के हाथों में एकत्र हो रही थी। बापू की नीति की टक्कर नाना के कठोर तथा दृढ़ आचरण से हुई—विशेषकर उन दण्डों के सम्बन्ध में जो वह रघुनाथराव के अनुचरों तथा साथियों को देना चाहता था। बापू ने क्षमा तथा दया के पक्ष का समर्थन किया। नाना उग्र तथा अडिग था। इसका परिणाम यह हुआ कि पुराने घाव बहते ही रहे। नाना ने अविराम गति से प्रत्येक अपराधी का पता लगाया और उसको परिवार तथा सम्बन्धियों सहित दण्ड दिया।

इसका एक उपयुक्त उदाहरण सखाराम हरि के साथ किया गया व्यवहार है। वह वीर तथा अनुभवी सरदार था। रघुनाथराव के प्रति उसकी निष्ठा थी, इसलिए उसने मन्त्रियों के सामने घुटने टेकने से इनकार कर दिया, यद्यपि जून, १७७६ ई० में वह विधिपूर्वक उनकी सेवा में वापस आ गया था। शीघ्र ही उस पर विश्वासघात का सन्देह हुआ तथा वह तीन वर्ष तक (अक्तूबर, १७७६ ई० से नवम्बर, १७७९ ई० तक) कारावास में रखा गया और उसकी स्वाधीनता पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिये गये। उसकी पत्नी तथा बच्चों का भी अपमान किया गया तथा उनको क्लेश दिया गया। उसकी मृत्यु कारागार में हुई। वह अपनी अन्तिम श्वास तक बन्दी बनाने वालों को शाप देता रहा तथा रघुनाथराव के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त करता रहा।

इस प्रकार के अनेक सन्देहास्पद व्यक्ति थे, जिनमें से कुछ प्रमुख थे—चिन्तो विट्ठल, मानाजी फड़के, आबाजी महादेव, तथा सदाशिव रामचन्द्र। मानाजी अपने प्राण बचाने में सफल हो गया, परन्तु रघुनाथराव तथा उसके परिवार के प्रति वह अपनी निष्ठा में अडिग रहा। इसी प्रकार गार्दी नेताओं का पता लगाया गया। रघुनाथराव के व्यक्तिगत सेवक तुलाजी पवार को हैदरअली ने शरण दे रखी थी। परन्तु जब १७७९ ई० में हैदरअली तथा नाना फड़निस के बीच मैत्री-सम्बन्ध हो गया तो उसने अपराधी मन्त्री को सौंप दिया, जहाँ शारीरिक यातनाएँ देने के बाद उसका बध कर दिया गया। खड़गसिंह सदैव सूरत तथा बम्बई में अपने स्वामी के साथ रहा था। १७७९ ई० में तलेगाँव में जब उसने आत्मसमर्पण कर दिया तो उसके साथ भी उसी प्रकार का व्यवहार किया गया।

इस सम्बन्ध में यह स्मरण रखना आवश्यक है कि नाना फड़निस ने अपने सहकारियों—बापू तथा मोरोबा को भी दण्ड देने से नहीं छोड़ा, क्योंकि उन्होंने मेल-मिलाप और समझौते द्वारा रघुनाथराव के साथ स्थायी सम्बन्ध स्थापित करने का यत्न किया था। न्याय-अन्याय की भावना को छोड़कर इस प्रकार के प्रतिशोधपूर्ण कार्यों के कारण भी राज्य के कई शक्तिशाली अंग उससे

विमुख हो गये तथा समस्त सत्ता एक व्यक्ति के हाथों में केन्द्रित हो गयी। यदि नाना की नीति में पुराने शत्रुओं के प्रति दया तथा क्षमा का पुट होता तो उसका मार्ग सम्भवतः निष्कण्टक हो जाता और वह राज्य की सेवा अधिक उत्तम रूप से कर सकता। आनन्दीबाई तथा रघुनाथराव को नाना की ओर से सदैव भयानक दण्ड की आशंका रही, इसीलिए उन्होंने यथाशक्ति प्रयत्न किया कि युद्ध निरन्तर होता रहे और पूना सरकार के लिए संकट उत्पन्न होते रहें। जब तक सत्ता बापू के हाथ में रही, तब तक विभिन्न विरोधी तत्त्वों का विवेकपूर्ण अनुरंजन तथा नियन्त्रण किया गया। यह कार्य प्रायः मैत्रीपूर्ण प्रोत्साहन, अनुनय-विनय तथा स्पष्टीकरण द्वारा सम्पन्न किया जाता था। लोगों को प्रेरणा दी जाती थी कि वे व्यक्तिगत हित का विचार न करके उच्च राष्ट्रीय आदर्श के निमित्त अपने-अपने कार्य में अग्रसर हों। नाना का स्वभाव गोपनीयता को पसन्द करने वाला, विरोधी तथा प्रतिशोधपूर्ण था। वह पीड़ाजनक तथा क्रूर उपायों का अवलम्बन करता था। उसका आग्रह तत्त्व की अपेक्षा शब्दों पर अधिक रहता था। इन कारणों से आगे चलकर मराठा राज्य के प्रशासकीय कार्यों में बहुत हानि पहुँची।

२. **भारतीय राजनीति में अन्तरराष्ट्रीय तत्त्व**—जब १७७६ ई० के नवम्बर मास में मन्त्रियों को मालूम हुआ कि बम्बई के अधिकारियों ने गम्भीर सन्धि को स्पष्टतया भंग करते हुए रघुनाथराव को अपना पूर्ण समर्थन दे दिया है तो उन्होंने पेशवा माधवराव नारायण के नाम के आधार पर कर्नल अपटन को प्रबल विरोध-पत्र लिखकर भेजा। इस पत्र में उन महत्त्वपूर्ण घटनाओं का स्पष्ट वर्णन है जहाँ पर बम्बई शासन ने पुरन्दर की सन्धि के अनुच्छेदों का तिरस्कार किया था और वह भी उस राजदूत की उपस्थिति में जिसके द्वारा इस सन्धि की रचना की गयी थी।[1] परन्तु इस प्रदर्शन तथा विरोध-पत्र से कुछ लाभ न हुआ। रघुनाथराव ने कहा कि दोनों शक्तिशाली सरदार, सिन्धिया तथा होल्कर, पूना शासन के शत्रु हैं, जिसके कारण बाह्य जगत में पूना शासन का गौरव घट गया। वास्तव में पुरन्दर की सन्धि द्वारा किसी प्रश्न का समाधान नहीं हुआ था। इसके कारण पूना की मन्त्रिपरिषद् पर भारी आर्थिक संकट आ पड़ा था तथा उसको अपने न्यायसंगत हितों का बलिदान करना पड़ा था। निजामअली का अनुरंजन करने के लिए उनको विशाल क्षेत्र छोड़ने पड़े थे। हैदरअली ने कर्नाटक के विस्तीर्ण भागों पर अधिकार कर लिया था। कोल्हापुर के राजा ने, खानदेश के कोलियों ने तथा मराठा राज्य के अन्य सामन्तों ने चारों दिशाओं में विद्रोह कर दिया था,

---

[1] फोरेस्ट, मराठा ग्रन्थमाला, जिल्द १, पृ० २८६

जिससे शासन की शक्ति को क्षति पहुँच रही थी तथा मन्त्रिपरिषद् की स्थिति संकटपूर्ण हो गयी थी। इस समय केवल महादजी सिन्धिया की निष्ठा अचल रही तथा उसने परिस्थिति के सुधरने में सहायता दी। अन्यथा इस संकटमय अवसर पर मराठा शासन विनाश की सीमा तक पहुँच गया था। इस प्रकार पुरन्दर की सन्धि के बाद के दो वर्ष उन भयानक प्रयत्नों का परिचय देते हैं जो रघुनाथराव ने पूना मन्त्रिमण्डल की शक्ति का सर्वनाश करने के लिए किये, पर उनसे उसको कोई लाभ नहीं हुआ। उसने वारेन हेस्टिंग्ज, ब्रिटेन के राजा तथा वहाँ के अधिकारियों को बारम्बार प्रबल पत्र लिखे। उसने मराठा सरदारों, पुर्तगाल जैसी विदेशी शक्तियों, उत्तरी राजपूत तथा अन्य शक्तियों की ईर्ष्यालु प्रवृत्तियों को उत्तेजना दी। स्वयं पूना में उसने बापू तथा मोरोबा फड़निस की भावनाओं पर इस प्रकार प्रभाव डाला कि मुख्य उद्देश्य के प्रति उनकी सहानुभूतियाँ शान्त होने लगीं।

१७७६ ई० की समाप्ति के लगभग रघुनाथराव बम्बई पहुँचा। बम्बई के अधिकारियों ने उसका स्वागत तथा समर्थन किया। सूरत की सन्धि की मूल भावनाओं के पालनार्थ उन्होंने एक निश्चित योजना की रचना की, चाहे उनको स्पष्ट युद्ध ही क्यों न करना पड़े। उन्होंने इंगलैण्ड की सरकार को पहले ही शक्तिशाली निवेदन पत्र भेज दिया था, जिसमें उन्होंने हेस्टिंग्ज तथा उसकी कौंसिल के हस्तक्षेप का विरोध किया था तथा सूरत की सन्धि के पालनार्थ निश्चित आदेशों की प्रार्थना की थी। पाठकों को ज्ञात है कि कलकत्ता की कौंसिल में व्यक्तिगत ईर्ष्याओं के कारण घोर मतभेद था, तथा अपने ही निर्णायक मत के बल पर हेस्टिंग्ज शासन चला रहा था।

इस समय भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की गतिविधि पर प्रभाव डालने वाले अन्तरराष्ट्रीय तत्त्व भी उपस्थित थे। इंगलैण्ड के अमरीकी उपनिवेशों ने ४ जुलाई, १७७६ ई० को अपनी स्वाधीनता की घोषणा करके युद्ध आरम्भ कर दिया था, जिसमें फ्रांस ने इंगलैण्ड के विरुद्ध उपनिवेशों का साथ दिया था। १७७७ ई० के अन्त के समीप इंगलैण्ड को घोर पराजय सहन करनी पड़ी और जनरल बर्गोइन को अमरीका के जनरल गेट के सामने अपने समस्त दल सहित आत्मसमर्पण करना पड़ा था। इन विपत्तियों के समाचार भारत में १७७८ ई० के आरम्भिक मासों में प्राप्त हुए तथा उनके कारण हेस्टिंग्ज की महत्त्वाकांक्षा जाग्रत हो गयी कि भारत में नवीन साम्राज्य की स्थापना द्वारा वह इंगलैण्ड की खोयी हुई समृद्धि की पूर्ति कर दे। इस बीच बम्बई कौंसिल का निवेदन प्राप्त करने के बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी के गृहाधिकारियों ने यह निश्चय कर लिया था कि कलकत्ता कौंसिल की आपत्तियों को रद्द कर दें

तथा भारत की मुख्य भूमि बम्बई के समीप कुछ मराठा प्रदेशों पर अधिकार कर सकने के अवसर से लाभ उठायें। ये प्रदेश उनके लिए अत्यन्त आवश्यक थे, क्योंकि उनके आवास को अन्न, पशु तथा ईंधन वहीं से प्राप्त होते थे।

पूना की सभा को इन घटनाओं की प्रवृत्ति का बोध हो गया तथा वह साहस तथा धैर्य द्वारा परिवर्तित परिस्थिति का सामना करने को तैयार हो गयी। इसका श्रेय फड़निस को है। ब्रिटिश नीति के कष्टप्रद स्वभाव, उनके द्वारा सन्धियों के प्रत्यक्ष गम्भीर उल्लंघन तथा उनकी दुष्ट महत्त्वाकांक्षा का उसने कठोरता से विरोध किया। नाना को पूरा पता था कि बम्बई तथा कलकत्ता में क्या हो रहा है। यह पता पाकर कि फ्रांस ने इंगलैण्ड के विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी है, उसने निश्चय कर लिया कि ब्रिटिश आक्रमण के सन्तुलन के रूप में वह फ्रेंच लोगों से मैत्री कर ले। सेण्ट ल्यूबिन नामक एक फ्रेंच व्यक्ति १५ मार्च, १७७७ ई० को बम्बई के निकट चेउल के स्थान पर उतरा। उसके पास बहुत-सी विक्रय सामग्री थी। उसने पूना जाकर व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने की सुविधाओं के लिए मराठा सरकार से प्रार्थना की। उसने अपने को फ्रांस के राजा का विश्वासपात्र दूत बताया। फ्रांस के साथ मैत्री स्थापित करने के इस अवसर का नाना फड़निस ने स्वागत किया, जैसा कि हैदरअली पहले ही कर चुका था। उसने स्वच्छन्द रूप से विपुल प्रदर्शन सहित सेण्ट ल्यूबिन का सत्कार किया। ठीक इसी क्षण पर (मार्च, १७७७ ई०) मोस्टिन पूना आ पहुँचा तथा उसने कर्नल अपटन को कार्यभार से मुक्त कर दिया। मोस्टिन के आगमन की ओर ध्यान नहीं दिया गया तथा उसका स्वागत इतना निष्प्राण रहा कि उसमें और फ्रेंच दूत के लिए किये गये सोत्साह स्वागत में विचित्र विषमता स्पष्ट थी। नाना फड़निस ने फ्रेंच पुरुष के स्वागतार्थ विशेष तैयारियाँ कीं। उसकी यात्रा के लिए आज्ञापत्र तुरन्त ही दे दिये गये, यात्रा की सुविधाएँ भी तुरन्त प्रस्तुत कर दी गयीं तथा जो सामग्री वह अपने साथ लाया था, उस पर सीमा शुल्क (चुंगी) भी नहीं लिया गया। बोरघाट पर अतिथि की अभ्यर्थना करने तथा उसे विशेष सम्मान सहित पूना ले आने के लिए एक हौदे सहित सुसज्जित हाथी, विपुल रक्षादल तथा कुछ मुख्य अधिकारी भेजे गये। वे उसको पुरन्दर ले गये, जहाँ खुले दरबार में बालक पेशवा ने उसका स्वागत किया। वहाँ पर सेण्ट ल्यूबिन ने एक विशाल चित्र दिखाया, जिसमें अन्तिम पेशवा की हत्या का दृश्य अंकित था। इस पर दुख की धारा उमड़ पड़ी तथा कुछ दर्शकों के आँसू भी निकल पड़े। यह चित्र फ्रांस में बनाया गया था तथा वह फ्रेंच पुरुष इतनी दूर से उसको यहाँ लाया था।

सेण्ट ल्यूबिन पूना में एक वर्ष से अधिक ठहरा तथा उसने प्रयास किया

कि चेउल अथवा दाण्डा का बन्दरगाह राजगढ़ तथा कोलोई के समीपस्थ दुर्गों सहित उसको दे दिया जाये। नाना फड़निस ने उससे फ्रांस के साथ रक्षात्मक मैत्री का प्रस्ताव किया तथा ब्रिटेन के विरुद्ध पूना मन्त्रिमण्डल द्वारा छेड़े गये युद्ध के लिए समर्थन चाहा। सेण्ट ल्यूबिन ने कहा कि वह ढाई हजार यूरोपीय सैनिक उपस्थित करेगा जो स्थल तथा जल सम्बन्धी अस्त्र-शस्त्रों तथा अन्य सैन्य-सामग्री से सुसज्जित होंगे। इनके अतिरिक्त वह दस हजार भारतीयों को पश्चिमी शैली पर युद्ध के लिए प्रशिक्षित कर देगा। नाना भलीभाँति जानता था कि ल्यूबिन प्रामाणिक राजदूत नहीं है, परन्तु ब्रिटेन को धमकी देने के लिए साधन के रूप में उसका उपयोग किया गया।

पूना में मोस्टिन के दीर्घकालीन निवास से मन्त्रियों को उसकी स्वाभाविक प्रवृत्तियों का पर्याप्त प्रमाण मिल गया था। इस समय जब वह अपटन को कार्य-भार से मुक्त करने आया तो उसको पुरन्दर की सन्धि अस्वीकृत करके रघुनाथ-राव को पूना में पुनः स्थापित करने की अपनी अपूर्ण योजना को पूर्ण करने की लगन थी। नाना फड़निस ने इस प्रवृत्ति को रोकना अपना कर्तव्य समझा तथा इस कार्य के लिए उसे अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के लिए सेण्ट ल्यूबिन से नवीन स्फूर्ति मिली। मोस्टिन ने जो अपने स्वागत पर जानबूझकर प्रदर्शित की गयी उपेक्षा पर रुष्ट था, किस मर्म-वेदना से इन घटनाओं का अवलोकन किया होगा, इसका सरलता से अनुमान किया जा सकता है। मोरोबा फड़निस को प्रलोभन देकर उसने नाना की योजना का काट तैयार कर लिया। १७७८ ई० की ग्रीष्मऋतु में इस संकट-बेला का पूर्ण विकास हो गया। पूना में सेण्ट ल्यूबिन के कार्यों तथा अमरीका में पराजय का वारेन हेस्टिंग्ज के विचारों तथा नीति पर यह प्रभाव पड़ा कि उसने पूना के मन्त्रियों के प्रति अपने पूर्व मैत्रीपूर्ण विचारों को त्याग दिया तथा उनके साथ खुले युद्ध की घोषणा करके एकदम विपरीत हो गया। उसने गृहाधिकारियों से प्राप्त निर्देशों का परित्याग कर दिया जिनमें कहा गया था कि वह रघुनाथराव के हित में नवीन युद्ध को स्वीकार न करे। ये निर्देश जिन पर लन्दन ४ जुलाई, १७७७ ई० की तिथि अंकित है, इस प्रकार हैं :

"जब तक राघोबा आपके साथ है, आप उसको पूना मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध किसी भी योजना की रचना कर सकने से अवश्य रोकें। हम इस निर्देश द्वारा आपको स्पष्ट आज्ञा देते हैं कि निर्देशकों की सभा की स्वीकृति के बिना आप उसको अपनी स्थिति पुनः प्राप्त करने की किसी भी योजना में साथ देने के

सम्बन्ध में कोई भी वचन न दें। इनके साथ ही आप आक्रमण से उसकी शरीर-रक्षा अवश्य करें।"[२]

इन आज्ञाओं के होते हुए भी वारेन हेस्टिंग्ज ने पुरन्दर की सन्धि का तिरस्कार कर दिया तथा २३ मार्च, १७७८ ई० को बम्बई कौंसिल को अधिकार दे दिया कि वह रघुनाथराव को पूना ले जाये तथा उसे अपने द्वारा नियोजित पुरुष के रूप में पेशवा की गद्दी पर बैठा दे एवं पश्चिम तटवर्ती मराठा प्रदेशों को हस्तगत कर ले। अपने सभासदों फ्रांसिस तथा ह्वेलर के परामर्श के विरुद्ध हेस्टिंग्ज ने बम्बई को आज्ञा दे दी कि पुरन्दर के सन्धि-पत्र द्वारा समाप्त युद्ध को वे पुनः आरम्भ कर दें। इस कार्य के लिए उसने तुरन्त एक विशेष सुसज्जित सेना को भेज दिया, जिसने इलाहाबाद से बुन्देलखण्ड होकर स्थलमार्ग द्वारा प्रयाण किया। इस दल का कमान अधिकारी कर्नल लेस्ली नियुक्त हुआ। २६ फरवरी, १७७८ ई० को हेस्टिंग्ज ने बम्बई को लिखा—"अपने सामर्थ्य के अनुसार आपको अत्यन्त प्रभावकारी सहायता देने के लिए हमने कालपी के समीप एक दल एकत्र कर लिया है तथा सुविधापूर्ण मार्ग से बम्बई को प्रयाण करने की उसे आज्ञा दे दी है। हम दूसरे लोगों के इन प्रयत्नों से अत्यन्त भयभीत हैं कि वे मराठा राज्य में राजनीतिक प्रभाव प्राप्त करने के लिए मलाबार समुद्रतट पर आवास-स्थान प्राप्त कर लेंगे। इसका उद्देश्य यही हो सकता है कि हमारा बम्बई का आवास नष्ट कर दिया जाये। चूंकि चेउल के गढ़ में हमारी कोई सम्पत्ति नहीं है, अतः हम आपको यह अधिकार नहीं दे सकते कि आप उस स्थान पर फ्रेंच लोगों के पैर न जमने दें। सीधा युद्ध आरम्भ करके आप किसी भी कारण आक्रान्ता न बन जायें।" हेस्टिंग्ज ने फ्रेंच अधिकृत प्रदेश चन्द्रनगर पर १० जुलाई, १७७८ ई० को तथा पाण्डिचेरी पर आगामी १६ अक्तूबर को अधिकार कर लिया। इस प्रकार मराठे तथा फ्रेंच दोनों के विरुद्ध युद्ध आरम्भ करने का सुलभ कारण उसको आंग्ल-फ्रेंच युद्ध में प्राप्त हो गया।[३]

यह देखने की बात है कि प्रथम आंग्ल-मराठा युद्ध (१७७४-१७८३ ई०) के समय का इतिहास पहले बम्बई में हार्नबी तथा मोस्टिन की, तत्पश्चात कलकत्ते में वारेन हेस्टिंग्ज की विकल महत्त्वाकांक्षा को पूर्णतः प्रकट करता है।

---

२ फोरेस्ट, जिल्द १, पृ० ३१४

३ प्लासी का रण, सप्तवर्षीय युद्ध, अमरीकी स्वाधीनता का युद्ध, लार्ड वेलेजली तथा उसके भाई की भारत में विजय—ये आंग्ल-फ्रेंच प्रतिद्वन्द्विता की लम्बी शृंखला की कड़ियाँ हैं। यूरोपीय राजनीति के दृष्टिकोण से उनका अध्ययन करना चाहिए।

राज्य हथियाने की महत्त्वाकांक्षा को तृप्त करने तथा भारत में नवीन प्रदेशों की प्राप्ति के द्वारा अमरीकी उपनिवेशों की क्षति को पूरा करने की इच्छा से ही ब्रिटिश अधिकारियों ने भगोड़े पेशवा रघुनाथराव को आश्रय दिया तथा उसका समर्थन किया। मराठों की पारिवारिक फूट पेशवा के परिवार तक ही सीमित न थी। नागपुर के भोंसले तथा बड़ौदा के गायकवाड़ परिवारों में भी उसी प्रकार की पारिवारिक कलह उपस्थित थी। इन राज्यों के कार्यों में हस्त-क्षेप करने में भी अंग्रेजों ने विलम्ब नहीं किया। अपने व्यापार के लिए उनको सूरत के क्षेत्र का लोभ था, जिस पर गायकवाड़ का अधिकार था। उनके दोनों पूर्वीय प्रान्तों को दो राज्य असुविधाजनक रूप में एक-दूसरे से अलग करते थे। उड़ीसा पर नागपुर का अधिकार था तथा गंजम पर निजाम का। ब्रिटिश संचार के लिए पूरबी समुद्रतट की समस्त पट्टी को जोड़ना आवश्यक था। अतः उन्होंने इन सरदारों के कार्यों में भी हस्तक्षेप करने के कारण ढूँढ़ निकाले। ब्रिटिश राजनीति ने सावधानी से प्रगति की तथा विस्तार के किसी भी अवसर को हाथ से न जाने दिया। शायद यह घटना सुविदित नहीं है कि बोनापार्ट के भावी प्रतिद्वन्द्वी होरेशियो नेल्सन ने १७७५ ई० में प्रथम मराठा युद्ध के समय बम्बई का दौरा किया तथा हार्नबी और मोस्टिन के परामर्श से कई महीनों तक वह पश्चिमी तट की नाविक सम्भावनाओं का निरीक्षण करता रहा। उसका उद्देश्य इस क्षेत्र में इंगलैण्ड की जलशक्ति को सुदृढ़ करना था।

३. **मोरोबा फड़निस द्वारा विश्वासघात**—पूना के मन्त्रिमण्डल में सर्व-प्रथम वे व्यक्ति सम्मिलित किये गये थे जो कूटनीति तथा युद्ध में योग्यतम हों, परन्तु उस मन्त्रिमण्डल ने सुसंगठित संस्था के रूप में कभी कार्य नहीं किया, क्योंकि उसका कोई व्यवस्थित संविधान न था। नाना तथा बापू ही केवल दो ऐसे सदस्य थे जो बहुत समय तक कार्य संचालन करते रहे। सभी आज्ञाएँ और सन्देश उन दोनों के सम्मिलित नामों से निकलते थे। नाना का चचेरा भाई मोरोबा लगभग उसी की आयु का था। उसने भूतपूर्व पेशवा माधवराव के विश्वस्त सचिव के रूप में लम्बे काल तक कार्य किया था। अब उसको प्रतीत हुआ कि उसकी उपेक्षा हो रही है। यह बात भी स्पष्ट थी कि वर्तमान प्रशासन से अपने बहिष्कार पर वह रुष्ट है और रघुनाथराव के प्रति उसकी सहानुभूति सुविदित है। उसको अपकार से रोकने के लिए कुछ समय पूर्व ही उसको मन्त्रिमण्डल में स्थान दिया गया था तथा दो के स्थान पर तीनों के नाम सरकारी पत्रों में प्रकट होने लगे थे। कलकत्ते को भी इस परिवर्तन की सूचना भेज दी गयी, जहाँ से आने वाले पत्र अब तीनों के नाम अलग-अलग आने लगे। परन्तु यह उपाय विनाशक सिद्ध हुआ। जब मोस्टिन दूसरी बार पूना आया तो उसने मोरोबा को पूरी तरह अपने पक्ष में कर लिया। उसने

आकर्षक युक्तियों द्वारा उसको विश्वास दिला दिया कि अनिष्टकारी नाना का मन्त्रिमण्डल से निराकरण करके युद्ध सरलतापूर्वक समाप्त किया जा सकता है। मोरोबा बिना गम्भीर विचार के यह सोचकर इस सुझाव से सहमत हो गया कि अंग्रेजों के उद्देश्य तथा उनके कथन सत्यपूर्ण तथा विशुद्ध हैं। रघुनाथराव को मनाने तथा नाना को आजीवन बन्दी बनाकर मन्त्रिमण्डल से उसके निराकरण के लिए उन दोनों ने एक गुप्त योजना की रचना की।

रघुनाथराव के उत्साही पक्षपाती चिन्तो विट्ठल, सदाशिव रामचन्द्र, नानाजी फड़के तथा तुकोजी होल्कर भी नाना के प्रति घृणा के कारण सत्ता पर अधिकार करने के लिए अति उत्सुक थे। नाना को अपनी निर्बलता का पता था कि वह सैनिक नहीं है, अतः उसने संकटमय परिस्थिति में उपयोग के लिए बुद्धिमत्तापूर्वक महादजी सिन्धिया का हार्दिक सहयोग प्राप्त कर लिया था। बापू तथा नाना बहुत दिनों से मोरोबा के षड्यन्त्रों से सुपरिचित थे। एक बार रघुनाथराव ने गुप्त रूप से नाना तथा बापू की हत्या करने के लिए कुछ व्यक्तियों का उपयोग किया। मोरोबा इस षड्यन्त्र को जानता था, परन्तु चूँकि उसके विरुद्ध कोई प्रमाण प्राप्त न हो सका, इसलिए उसको दण्ड नहीं दिया जा सकता था। यह सिद्ध हो गया कि मोरोबा को मन्त्रिमण्डल में स्थान देकर बापू तथा नाना ने भूल की है।

१७७७ ई० के वर्ष में पूना की सभा कोल्हापुर के राजा के षड्यन्त्रों तथा आक्रमणों के दमन में व्यस्त थी। उसने रघुनाथराव की प्रेरणा से हैदरअली के साथ पूना की सरकार के विरुद्ध अभियान का संचालन कर रखा था। १७७८ ई० के आरम्भ में पूना सर्वथा रक्षाहीन था। हरिपन्त उस समय पटवर्धन लोगों के साथ कर्नाटक में व्यस्त था। अपनी योजना को कार्यान्वित करने के लिए मोरोबा फड़निस को यह अवसर बहुत शुभ प्रतीत हुआ। जेजुरी जाकर वह तुकोजी होल्कर से मिला तथा उसको ५ लाख रुपये देकर अपने पक्ष में कर लिया। तुकोजी ने पूना सरकार तथा बालक पेशवा के शरीर को हस्तगत करने में मोरोबा को सहायता देने का वचन दिया। गत वर्ष (१२ जुलाई, १७७७ ई०) पुरन्दर में अल्पकालीन असाध्य ज्वर के कारण उसकी माता गंगाबाई का देहान्त हो गया था। केवल नाना फड़निस वहाँ पर था। संकट का सामना करने के लिए उसके साथ कोई अन्य व्यक्ति न था। सखाराम बापू को उस समय प्रशासन के प्रति कोई रुचि न रह गयी थी तथा नाना की सहायता करने की उसकी कोई इच्छा न थी। रघुनाथराव बम्बई से चल कर पूना में सत्ता पर अधिकार करने के लिए १७७८ ई० में पहुँचने वाला था, जहाँ पर मोरोबा तथा तुकोजी उसके स्वागतार्थ तैयार थे।

मोस्टिन शीघ्रतापूर्वक ब्रिटिश सैन्य सहित रघुनाथराव की वापसी का प्रबन्ध करने के लिए तुरन्त बम्बई गया। जब नाना को इस गुप्त योजना का सविस्तार पता चला तो वह बहुत घबड़ा उठा। उसने हरिपन्त तथा महादजी को अनुरोधपूर्वक सन्देश भेजे कि वे शीघ्र से शीघ्र पूना पहुँच जायें। सखाराम बापू ने उदासीन वृत्ति धारण कर ली। शायद वह विजयी पक्ष का साथ देने की प्रतीक्षा कर रहा था। नाना के निराकरण में वह मोरोबा का साथ देने के लिए सहमत हो गया परन्तु बम्बई से रघुनाथराव को लाने में वह उसका साथ देने को तैयार न था। बापू को भलीभाँति पता था कि यदि रघुनाथराव घटनास्थल पर प्रकट हो गया तो उसके प्रतिशोध का पहला शिकार वह (बापू) ही होगा। मोरोबा ने निश्चय किया कि वह स्वयं सर्वोपरि सत्ता पर अधिकार कर ले, बालक पेशवा को पकड़ ले तथा नाना का निराकरण कर दे। फरवरी में नाना को पुरन्दर से अनुपस्थित होना पड़ा, क्योंकि शिवरात्रि महोत्सव के लिए उसको अपने गाँव मेनावली जाना पड़ा। इसी समय मोरोबा ने पुरन्दर पर आक्रमण किया, परन्तु इसका कुछ परिणाम न हुआ, क्योंकि नाना शीघ्र वापस आ गया और उसने महादजी तथा हरिपन्त के वापस आने तक गढ़ की रक्षा करते रहने का उपाय कर लिया। रक्तपात से बचने के लिए उसने मोरोबा को अस्थायी विराम सन्धि पर राजी कर लिया। उसने प्रस्ताव किया कि यदि रघुनाथराव तथा अंग्रेजों को पूना में प्रवेश न करने दिया जाये तो वह राजनीति को सर्वथा त्याग देगा। इस प्रकार मोरोबा २६ मार्च को पुरन्दर के गढ़ में बापू, चिन्तो विट्ठल तथा बजावा पुरन्दरे की उपस्थिति में (अन्तिम दो रघुनाथराव के पक्षपाती थे) सत्तारूढ़ हो गया। गढ़ के नीचे दरबार किया गया, जहाँ पर नवीन व्यवस्था के प्रमाण में पेशवा को नजरें दी गयीं। पेशवा परिवार की ज्येष्ठ सदस्या के रूप में वहीं रहने वाली पार्वतीबाई इस अवसर पर उपस्थित थी। मोरोबा ने पूना में कोष तथा कार्यालय के पत्रों पर अधिकार कर लिया तथा अपना शासन प्रत्यक्ष सन्तोष एवं उत्साहपूर्वक आरम्भ किया।

इस कष्ट का मूल कारण, जिसके फलस्वरूप प्रशासन में यह परिवर्तन उपस्थित हुआ, वास्तव में नाना का फ्रेंच दूत सेण्ट ल्यूब्रिन को पूना में स्थान देने का कार्य था। महादजी तीक्ष्णबुद्धि था। उसने तुरन्त जान लिया कि इस मनुष्य की उपस्थिति के कारण ब्रिटेन का अनावश्यक प्रकोप हो रहा है। वह जानता था कि भारत में ब्रिटिश सत्ता दृढ़तापूर्वक स्थापित हो गयी है जिसको उखाड़ फेंकना सरल नहीं है और फ्रेंच सत्ता अपने पाँव जमाये रखने के लिए भी असमर्थ है। अतः महादजी ने नाना को परामर्श दिया कि वह फ्रेंच दूत

को निकालकर कष्ट के मूल कारण का निराकरण कर दे। नाना ने इस परामर्श के महत्त्व को स्वीकार कर लिया तथा मोरोबा को अनुमति दे दी कि वह सेण्ट ल्यूबिन को निकाल दे। उसने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की कि उसने फ्रेंच राष्ट्र के प्रति कोई प्रतिज्ञाएँ नहीं की थीं तथा भविष्य में वह कभी उनकी मित्रता प्राप्त करने का प्रयास नहीं करेगा। सेण्ट ल्यूबिन को २५ जून, १७७८ ई० को जाने की विधिपूर्वक आज्ञा दे दी गयी और वह १२ जुलाई, १७७८ ई० को पूना से चल दिया। उसके लिए गाड़ियों तथा मजदूरों का प्रबन्ध कर दिया गया था, जिससे वह दमन के पुर्तगाली बन्दरगाह तक पहुँच जाये।

मोरोबा ने पूना में सत्ता पर अधिकार करते ही बम्बई स्थित रघुनाथराव के पास शीघ्र तथा बारम्बार बुलावे भेजे कि वह तुरन्त आ जाये और पेशवा की गद्दी पर बैठ जाये। परन्तु बम्बई के अधिकारियों के पास उस समय पर्याप्त सेना न थी जो रघुनाथराव को सकुशल पूना पहुँचा सके। एक और अड़चन यह थी कि बम्बई के अध्यक्ष को इंगलैण्ड के अधिकारियों तथा गवर्नर जनरल हेस्टिंग्ज दोनों की ओर से आदेश प्राप्त थे कि उसको रघुनाथराव से किसी प्रकार की सन्धि करने का तब तक अधिकार नहीं है जब तक केवल प्रधान मन्त्री सखाराम बापू से या उसके साथ अन्य मन्त्रियों से उसको उस आशय का विधिपूर्वक लिखित निमन्त्रण न प्राप्त हो। सखाराम बापू ने स्पष्ट इनकार कर दिया कि बम्बई के इस प्रकार के निमन्त्रण पर वह कदापि हस्ताक्षर नहीं करेगा। उसका यह कार्य उसके द्वारा विश्वासघात का प्रत्यक्ष प्रमाण होता। केवल मोरोबा के निमन्त्रण को बम्बई के अधिकारी पर्याप्त नहीं समझते थे। कर्नल लेस्ली की सेना, जो बुन्देलखण्ड से आ रही थी, अभी तक नहीं पहुँची थी तथा ऋतु अनुकूल न रहने के कारण रघुनाथराव पूना पहुँचकर मोरोबा की योजना का समर्थन करने के लिए ठीक समय पर बम्बई से नहीं चल सका। इस अदृष्ट बाधा के कारण मोरोबा का सर्वनाश हो गया।

लगभग साढ़े तीन मास—२ मार्च से ११ जुलाई तक—मोरोबा फड़निस ने मराठा राज्य के प्रशासन की सम्पूर्ण सत्ता का उपयोग किया। इस समय बापू उदासीन था तथा नाना बालक पेशवा के साथ पुरन्दर में लगभग बन्दी था। नाना ने कोल्हापुर में महादजी को तथा कर्णाटक में हरिपन्त को बारम्बार मौखिक सन्देश भेजने का प्रबन्ध किया। उसने इन सन्देशों में पूना की परिस्थिति की व्याख्या की तथा उनसे आग्रह किया कि वे तुरन्त अल्पवयस्क पेशवा की सहायतार्थ आ जायें। यद्यपि रघुनाथराव घटनास्थल पर नहीं पहुँचा था, परन्तु बिना युद्ध का आश्रय ग्रहण किये हुए मोरोबा को मन्त्रिमण्डल से अलग कर सकने की कोई सम्भावना नहीं थी। युद्ध के आरम्भ होने पर उसका नियन्त्रण

कोई नहीं कर सकता था। सखाराम हरि तथा रघुनाथराव के अन्य अनुचरों को कारावास से मुक्त करके महत्त्वपूर्ण स्थानों पर नियुक्त कर दिया गया था किन्तु सामान्य मराठा भावना इसके अनुकूल न थी कि रघुनाथराव सत्ता ग्रहण करे।

अप्रैल के अन्त में महादजी ने कोल्हापुर के विरुद्ध अपने युद्ध को समाप्त कर दिया तथा पूना को प्रस्थान किया। वह सावधानी से अपना मार्ग टटोलता हुआ व्यक्तिगत भावनाओं का अध्ययन करता गया। उसने इस बात का लेशमात्र भी चिह्न प्रकट न होने दिया कि वह किस प्रकार कार्य करने वाला है। ऊपर से पूना प्रशासन के प्रति उसने सर्वथा उदासीन वृत्ति धारण कर ली। इस प्रकार उसने मोरोबा के सन्देह को जाग्रत न होने दिया, क्योंकि इस विषय में निर्णायक तत्त्व केवल उसकी शक्तिशाली भुजा थी। मोरोबा ने चिन्तो विट्ठल को बम्बई भेज दिया था कि वह अविलम्ब रघुनाथ-राव को पूना ले आये। जून के आरम्भ में महादजी पूना के समीप पहुँच गया तथा हरिपन्त फड़के और परशुराम भाऊ कर्नाटक से वापस आकर उसके साथ हो गये। पूना के अधिकांश सम्भ्रान्त जनों को महादजी से मिलने की इच्छा हुई। प्रत्येक ने उसका समर्थन प्राप्त करने का प्रयत्न किया। मोरोबा, बापू, तुकोजी आदि सबने यथाशक्ति बारी-बारी से मिलने तथा उसके कृपापात्र बनने का प्रयत्न किया। महादजी को परिस्थिति के प्रत्येक विषय का अच्छी तरह ज्ञान था, अतः उसने ध्यान रखा कि वह किसी व्यक्ति से भी न मिले। उसने पूना की ओर अपनी यात्रा के मार्ग को भी प्रकट न होने दिया। बापू के साथ मोरोबा जेजुरी को गया, जहाँ पर महादजी के पहुँचने की आशा थी। परन्तु महादजी मोरगाम को चला गया और मोरोबा उससे न मिल सका। बापू अकेले ही उससे १२ जून को मिला तथा क्षमायाचना की कि वह पेशवा के विरुद्ध मोरोबा के षड्यन्त्र में सम्मिलित हो गया है। बापू ने महादजी से प्रार्थना की कि वह मोरोबा के आगमन का स्वागत करे। महादजी ने पहले तो साफ इनकार कर दिया, परन्तु अगले दिन वह स्वयं शिष्टाचार के नाते मोरोबा से मिलने गया, किन्तु वह एक शब्द भी न बोला।

तुकोजी होल्कर ही एकमात्र सरदार था जिसके पास युद्ध की सामग्री थी तथा जो महादजी के प्रति बिलकुल भी मित्र-भाव न रखता था। महादजी बिना पूर्व सूचना के उससे मिलने पहुँच गया तथा बहुत देर तक उसको निजी तौर पर समझाता-बुझाता रहा। उसने उसके विचारों को जानने का प्रयत्न किया तथा यह स्पष्ट कर दिया कि बालक पेशवा के मुख्य सेवक होने के कारण वे दोनों सम्मिलित रूप से उसके प्रति उत्तरदायी हैं और किस प्रकार वर्षों तक भारी व्यक्तिगत हानि सहन कर तथा बलिदान करके उन्होंने रघुनाथराव

को दूर रखा है। यदि वह इस समय उनका स्वामी बन गया तो अंग्रेज लोग किस प्रकार समस्त सत्ता का अपहरण कर लेंगे। तुकोजी ने इस निवेदन की प्रबलता का अनुभव किया तथा वचन दिया कि जो कुछ भी उपाय महादजी करेगा उसमें वह अपना सम्पूर्ण हार्दिक सहयोग देगा। इसके बाद महादजी ने बापू तथा नाना को अपनी गुप्त बैठक में सम्मिलित होने के लिए एकत्र किया तथा एक विशिष्ट योजना का निश्चय किया, जिसमें बालक पेशवा के समर्थन के लिए वे सब अपना सहयोग निष्कपट रूप से देने को थे। महादजी ने तुरन्त समस्त योजना को लेखबद्ध करा लिया तथा बापू और नाना को गम्भीर शपथ ग्रहण कराकर उस पर हस्ताक्षर करने के लिए विवश कर दिया। जून के मध्य तक ये वैधानिक कार्रवाइयाँ सम्पूर्ण हो गयीं। महादजी की आज्ञा पर सखाराम बापू, हरिपन्त तथा परशुराम भाऊ के बीच भी निष्ठा तथा विश्वास की उसी प्रकार की शपथों का आदान-प्रदान हुआ। इस प्रकार उस अवसर पर निश्चेष्ट बार भाइयों की सभा के समस्त प्रमुख सदस्य परस्पर सम्बद्ध हो गये। उस योजना के समर्थन के लिए महादजी तथा तुकोजी दोनों सैनिक नेता अपने सैनिक-बल सहित उपस्थित थे। महादजी ने यह भी प्रबन्ध कर लिया कि चिन्तो विट्ठल, नारो गणेश (होल्कर का सचिव) तथा ऐसे अन्य दुष्टात्माओं को इस योजना से कठोरतापूर्वक अलग रखा जाये, जिनको रघुनाथराव के प्रति सहानुभूति थी। नीति के इस भव्य प्रकार का उपयोग महादजी ने गुप्त रूप से किया, जिससे रक्तमय गृहयुद्ध की भयानक सम्भावनाओं से परिपूर्ण परिस्थिति पर उसे नियन्त्रण प्राप्त हो सके। उसने मराठा राज्य के भविष्य के सम्बन्ध में निपुण परिज्ञान तथा अद्भुत दूरदृष्टि का परिचय दिया, जिसने रघुनाथराव को दूर रखकर ब्रिटिश महत्त्वाकांक्षा को समाप्त कर दिया।

अब मोरोबा भय के मारे काँपने लगा। उसके साथ कोई दल विशेष न था। केवल सत्ता धारण कर लेना ऐसा अपराध न था जो दण्डनीय हो। परन्तु उसे अपराधी सिद्ध करके दण्ड का भागी बनाने वाले अनेक अपराध सिद्ध हो गये थे। गत वर्ष मोरोबा ने षड्यन्त्र किया था कि महादजी को उसके सिन्धिया राज्य से पदच्युत कर दिया जाये तथा उसके स्थान पर मानाजी सिन्धिया को बैठा दिया जाये। इस उद्देश्य से उसने मानाजी को हस्तलिखित पत्र भेजा था जिसमें उसको हैदरअली की सेवा छोड़कर शीघ्र पूना आ जाने का निमन्त्रण दिया गया था। यह पत्र परशुराम भाऊ के हाथ पड़ गया और उसने महादजी को दे दिया। इस प्रकार मोरोबा के विरुद्ध कार्य करने के लिए महादजी का पक्ष सबसे सबल हो गया। उसके पास व्यक्तिगत प्रतिशोध प्राप्त करने का सुपुष्ट आधार था जिसको स्वयं मोरोबा ने अपने अल्पकालीन शासनकाल में असावधानी से उपस्थित कर दिया था। महादजी

की पैतृक सम्पत्ति का अपहरण करना इस प्रकार की कुचेष्टा थी जिसको वह क्षमा नहीं कर सकता था। इस प्रकार मोरोबा ने नाना तथा महादजी दोनों की ओर से अपने विरुद्ध कठोर प्रतिशोध को निमन्त्रण दिया था। अपनी भावी दुर्गति का उसको पहले ही स्पष्ट आभास हो गया था, तथा उसने अत्यन्त किंकर्तव्यविमूढ़ होकर तुकोजी से प्रार्थना की कि वह दण्ड से उसकी रक्षा करे। परन्तु तुकोजी अब उसका मित्र न था। मोरोबा अपनी रक्षार्थ गुप्त रूप से पूना भाग निकला। परन्तु उसका पीछा किया गया और ११ जुलाई को वह नारो गणेश, बजावा पुरन्दरे तथा अन्य व्यक्तियों सहित पकड़ लिया गया जो इस षड्यन्त्र में उसके साथ थे। मोरोबा तुरन्त कारागार में डाल दिया गया, तथा नाना ने बापू के साथ प्रशासन सम्बन्धी अपने पूर्व कार्य को सँभाल लिया। इस प्रकार राष्ट्र पर आयी घोर विपत्ति शीघ्रता तथा सरलता से टल गयी। इसका श्रेय महादजी को है, जिसने गम्भीर तथा संकटपूर्ण परिस्थिति में राज्य की रक्षा की। मोरोबा ने अपने जीवन के आगामी २२ वर्ष अनेक दुर्गों की काराओं में कष्टपूर्वक व्यतीत किये। नाना ने उसको व्यक्तिगत सुविधाएँ देने में कृपणता न की। १८०० ई० में नाना की मृत्यु के बाद ही वह कारावास से मुक्त हुआ, फिर भी वह अपने क्लेशों से मुक्त न हो सका।

४. **अंग्रेजों का तलेगाँव में पराभव**—मोरोबा की योजना असफल हो जाने के कारण रघुनाथराव का पूना में पुनः शक्ति प्राप्त करने का अवसर नष्ट हो चुका था, परन्तु वारेन हेस्टिंग्ज द्वारा उत्सुकतापूर्वक पुनः युद्ध छेड़ने से उसे दुबारा आशा बँधने लगी। उसने इस कार्य के लिए बंगाल से सेना, धन तथा सामग्री भेजी और मद्रास के अधिकारियों को भी इस प्रयास में हाथ बँटाने की आज्ञा दी। उसने बम्बई में हानबी को पूर्ण कार्याधिकार दे दिया। भारत में आंग्ल-फ्रेंच प्रतिस्पर्द्धा का फल तथा हेस्टिंग्ज के कार्यों का अभिप्राय केवल महादजी की समझ में आया।

वारेन हेस्टिंग्ज तत्परतापूर्वक प्रयत्न कर रहा था कि समस्त उपलब्ध साधनों द्वारा मराठों को पराजित कर दे। सतारा का छत्रपति रामराजा इस समय मृत्यु-शय्या पर था। वारेन हेस्टिंग्ज ने मराठा राज्य को किसी प्रकार वश में करने के उत्साह से प्रयत्न किया कि वह नागपुर के मुधोजी भोंसले को छत्रपति बना दे और इस प्रकार मराठा सत्ता के केन्द्र पर सीधा प्रभाव स्थापित कर ले। हेस्टिंग्ज के प्रयास के प्रतिकार रूप में बापू तथा नाना तुरन्त ही मुधोजी के अल्पवयस्क पुत्र रघुजी को पूना ले आये तथा ब्रिटिश हस्तक्षेप के विरुद्ध उसका समर्थन प्राप्त कर लिया। वह इस समय नागपुर राज्य का प्रमुख पुरुष था। साथ ही मन्त्रियों ने यह भी प्रबन्ध कर लिया कि वे अपने

नियोजित व्यक्ति बावी शाखा के त्रिम्बकजी के पुत्र बिठोजी भोंसले को रामराजा की गोद बैठा दें। वह १५ सितम्बर, १७७७ ई० को गोद ले लिया गया। इस नवीन अधिकारी का नाम शाहू रखा गया। इसके शीघ्र पश्चात ही ९ सितम्बर को रामराजा का देहान्त हो गया। हेस्टिंग्ज इस पर भी निरन्तर प्रयत्न करता रहा कि वह मुधोजी को ब्रिटिश रक्षा में सतारा जाने तथा गद्दी पर अपना स्वत्व उपस्थित करने को तैयार कर ले, परन्तु मुधोजी ने बुद्धिमत्तापूर्वक इस निरर्थक योजना को अस्वीकृत कर दिया।[४]

वारेन हेस्टिंग्ज ने यथाशक्ति यह भी प्रयत्न किया कि वह पूना के प्रति महादजी सिन्धिया की निष्ठा समाप्त कर दे। जिसकी विवेकहीन कूटनीति उस विशालकाय पत्र-व्यवहार से स्पष्ट है जो उसने इंगलैण्ड, बम्बई तथा मद्रास के अधिकारियों, पूना के मन्त्रियों, रघुनाथराव, मराठा राज्य के व्यक्तिगत सदस्यों, निजामअली तथा भारत के अन्य शासकों के साथ किया। इन प्रमाणों को एक साथ पढ़ने से सत्य, अर्द्धसत्य तथा असत्य का विचित्र सम्मिश्रण प्राप्त होता है।[५] बम्बई के अधिकारियों द्वारा रघुनाथराव को पूना में प्रतिष्ठित करने का अभियान सफल न होने की दशा में वारेन हेस्टिंग्ज ने पूना मन्त्रिमण्डल के साथ अनुकूल शान्ति का प्रबन्ध करने के लिए गोडार्ड को सम्पूर्ण अधिकार देकर दूसरा उपाय भी कर लिया था। गोडार्ड उस समय नर्मदा नदी पर था। गोडार्ड ने अपने व्यक्तिगत सहायक ले० वेदरस्टोन को नागपुर भेजा कि वह मुधोजी भोंसले को अंग्रेजों की ओर से पूना की मन्त्रिपरिषद् के साथ मध्यस्थता करने को तैयार कर ले। परन्तु किसी स्पष्ट परिणाम के प्राप्त होने से पहले ही मराठों ने ब्रिटिश सेना को तलेगाँव के स्थान पर बुरी तरह परास्त कर दिया,

---

४ नागपुर के भोंसले राजा की खुशामद करना तथा मराठा शासन के प्रति उसकी निष्ठा विचलित कर देना वास्तव में ब्रिटिश नीति का पुराना उद्देश्य था। इसका आरम्भ १७६६ ई० में क्लाइव द्वारा हुआ था, जब उसने अपने प्रतिनिधि स्काट को स्वतन्त्र मैत्री का प्रस्ताव करने नागपुर भेजा था। इसके या भावी दूत-मण्डलों के कोई वास्तविक परिणाम न निकले। इस समय उनके वृत्तान्तों का केवल ऐतिहासिक महत्त्व है तथा उनसे ब्रिटिश नीति की अनिष्ट वृत्तियाँ प्रकट होती हैं। विल कृत 'नागपुर' ईरानी पंजिका; नाना फड़निस के पत्र; राजवाड़े—१९७,१९९

५ अलेक्जाण्डर इलियट (१७७८ ई०) तथा डेविड ऐण्डरसन (१७८९ ई०) के उज्ज्वल वृत्तान्तों से प्रकट है कि किस लगन से हेस्टिंग्ज ने अपनी योजनाओं का अनुसरण किया। डाडवेल कृत 'वारेन हेस्टिंग्ज के पत्र'; 'भारतीय नीति' जिल्द १, पृष्ठ २ पर कीथ की व्याख्याओं तथा प्रमाणपत्रों में जनवरी, १७७७ ई० का अलेक्जाण्डर इलियट के नाम लिखा गया पूरा पत्र देखो। पृष्ठ ६६ पर लारेन्स सुलीवान का पत्र भी देखो।

जिससे हेस्टिंग्ज की योजनाएँ असफल रह गयीं। अन्त में भारत स्थित ब्रिटिश अधिकारियों को बोध हो गया कि रघुनाथराव का पक्ष समर्थन करके वे निकम्मे का साथ दे रहे हैं।[६] स्वयं हेस्टिंग्ज इलियट को इस प्रकार लिखता है :

"आप उस सामान्य नीति से पहले से ही परिचित हैं, जिसे मैं भारत में स्थिर करने का अधिकार चाहता हूँ—अर्थात् अपने इस प्रकार के पड़ोसियों की निष्ठा को स्वीकार कर लेना, जिनकी इच्छा अपना नाम ग्रेट ब्रिटेन के राजा के मित्रों तथा सहायकों की सूची में सम्मिलित कराने की हो। उन विभिन्न आज्ञाओं का समन्वय करना असम्भव है जो निर्देशक सभा ने भारतीय शक्तियों के प्रति हमारे आचरण के विषय में दी हैं। उनकी इच्छा है कि किसी भी कारण हम किसी युद्ध में प्रवेश न करें—चाहे उससे कम्पनी को लाभ ही क्यों न पहुँचता हो। वे यह भी निर्देश भेजते हैं कि हम बम्बई के प्रान्त से सहयोग करें, जिससे हमारा अधिकार उन टापुओं पर बना रहे जो राघोबा ने सन्धि-पत्र द्वारा हमको दे दिये हैं। पहली आज्ञा सर्वथा निषेधात्मक है कि हम भारत की राजनीति में हस्तक्षेप न करें। दूसरी आज्ञा सुस्पष्ट है कि हम हस्तक्षेप करें तथा भारत में सर्वशक्तिशाली सत्ता के विरुद्ध युद्ध में व्यस्त हो जायें।"

हेस्टिंग्ज के अनुसार शान्ति को स्थिर रखने का उत्तम उपाय युद्ध के लिए सदैव तैयार रहना था। इसी सिद्धान्त के अनुसार उसने कार्य भी किया। अहल्याबाई होल्कर ब्रिटिश नीति के उपायों को अच्छी तरह समझती थी। उसने उन उपायों की तुलना लोमावृत्त रीछ की चालों से की है जो सीधा वार न करके अपने शिकार को अति दृढ़ आलिंगन द्वारा मार डालता है।

अब हमको उस मार्ग का अनुसरण करना है जो रघुनाथराव को पूना पहुँचाने के लिए बम्बई के अधिकारियों ने अपनाया था। उसकी पत्नी आनन्दीबाई उस समय मण्डलेश्वर में रहती थी। वह अपने समस्त साधनों से अपने पति की योजनाओं में सहायता पहुँचाती थी। परन्तु वह पर्याप्त रूप से चतुर थी और

---

[६] रघुनाथराव की क्षमता तथा चरित्र के विषय में नाना प्रकार के विचार तथा सम्मतियाँ हैं, जिनका सम्भवतः कोई ठोस प्रमाण नहीं है। इस विषय पर किसी भी सन्देह का निराकरण उस सम्मति से हो जायगा जो रघुनाथराव के समकालीन निजामअली ने लिखित रूप में छोड़ी है। २३ जुलाई, १७७८ ई० को निजामअली ने वारेन हेस्टिंग्ज को इस प्रकार लिखा—

"हाल में कर्नल अपटन पुरन्दर से वापस होते समय मुझसे मिला। मैंने उसके साथ रघुनाथराव के विश्वासघात, उसकी दुष्टता तथा पण्डित प्रधान के साथ अपने सन्धि-पत्र के नवीनीकरण पर वार्तालाप किया।" देखो, ईरानी पंजिका, जिल्द ५, पृ० १०८०

नाना तथा बापू को अपने व्यक्तिगत पत्रों में उचित परामर्श दे सकती थी। उसने उनका ध्यान उन ब्रिटिश प्रयत्नों की ओर आकृष्ट किया जिन्हें वे रघुनाथराव का किसी भी प्रकार अनुरंजन न कर सकने की अवस्था में मराठा राज्य को नष्ट करने के लिए कर रहे थे। उसने बताया कि वे (अंग्रेज) राघोबा के अविवेकपूर्ण उपायों से उसी प्रकार सुपरिचित हैं जिस प्रकार कि वह (आनन्दीबाई) स्वयं है।[७] मोरोबा के पतन के बाद भी बम्बई में मोस्टिन अपने उच्चाधिकारियों से बराबर यह आग्रह कर रहा था कि यदि वर्षाऋतु के तुरन्त बाद रघुनाथराव यहाँ पहुँचा दिया जाये तथा निकट भविष्य में बंगाल दल के समयोचित आगमन तथा पूना पहुँचने के पहले उसके साथ मिल जाने के कारण अधिक बलशाली बनी हुई बम्बई की सेना यदि उसको कुशलतापूर्वक पूना ले जाये तो पूना में ब्रिटिश प्रभाव स्थापित होने का अब भी अवसर है।

इस संकट का सामना करने के लिए बापू तथा नाना ने सामयिक तैयारियाँ कीं। उन्होंने हेस्टिंग्ज को विरोध-पत्र लिखा कि ब्रिटिश सेनाएँ मराठा प्रदेश से होकर क्यों आ रही हैं, जबकि उनका साधारण क्रम कलकत्ता से बम्बई आने के लिए समुद्र मार्ग का आश्रय लेना था। जब बापू ने इन सेनाओं को प्रवेश-पत्र दिये थे तब हेस्टिंग्ज से उसकी मैत्री थी। मराठों ने कालपी में कर्नल लेस्ली का विरोध किया, परन्तु मई, १७७८ ई० में उसने उस स्थान पर अधिकार कर लिया। परन्तु जब वह दक्षिण की ओर बढ़ा तो उसको जल तथा अन्न के अभाव के कारण घोर कष्टों को सहन करना पड़ा। उसके अनेक सैनिक मृत्यु तथा निराहार के शिकार हो गये। अक्तूबर में स्वयं लेस्ली की मृत्यु हो गयी तथा उसका उत्तराधिकारी कर्नल गोडार्ड कष्टों तथा यातनाओं को वीरतापूर्वक सहन करता हुआ होशंगाबाद पहुँच गया। यहाँ पर नागपुर के भोंसले से उसका सामना हुआ। नदी पार करके मार्ग प्राप्त करने में उसके दो मास नष्ट हो गये। बम्बई सरकार की सेना इस समय रघुनाथराव को पूना ले जा रही थी। उनका साग्रह आह्वान था कि वह (गोडार्ड) दक्षिण की ओर बढ़े। उस आज्ञा के पालन के लिए वह दिसम्बर के आरम्भ तक ही समर्थ हो सका। परन्तु गोडार्ड को बुरहानपुर पहुँच सकने से पूर्व ही यह दुखद सूचना प्राप्त हो गयी कि जनवरी, १७७६ ई० में तलेगाँव के स्थान पर बम्बई की छोटी-सी ब्रिटिश सेना सर्वथा परास्त हो गयी है। रघुनाथराव ने बार भाइयों के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया था, मोस्टिन का देहान्त हो गया था तथा बम्बई के अधिकारियों की समस्त योजना मिट्टी में मिल गयी

---

७ देखो आनन्दीबाई के पत्र—इतिहास संग्रह—ऐतिहासिक टिप्पणी, जिल्द १-१६ तथा ३३

थी। अतः गोडार्ड बुद्धिमत्तापूर्वक बुरहानपुर से सूरत की ओर चल पड़ा। उसका विचार था कि बम्बई के अधिकारियों के साथ परामर्शपूर्वक वे समस्त उपाय करे, जिनसे गुजरात में मराठों की शक्ति नष्ट हो जाये। वह फरवरी के अन्त में सूरत पहुँचा। उसने सैनिक-प्रतिभा द्वारा एक महान कार्य किया था। वह तोपखाने से सुसज्जित अल्प सेना सहित विद्वेषी राज्यों से होकर भारतीय महाद्वीप को पार कर गया तथा मार्ग में सामने आने वाले समस्त विरोध को सफलतापूर्वक तिरस्कृत कर दिया। इसी समय से पाश्चात्य ढंग की सैनिक शिक्षा महादजी के हृदय में घर कर गयी, तथा उसका प्रथम ध्येय यह हो गया कि भारत में प्रभुता के निमित्त संघर्षशील ब्रिटिश प्रतिस्पर्द्धियों के विरुद्ध वह भारतीय युद्ध-प्रणाली में पश्चिमी शैली को प्रविष्ट करे।

७ हजार निजी सेना तथा बम्बई की सेना लेकर जिसमें ५०० यूरोपीय तथा लगभग २ हजार भारतीय थे, रघुनाथराव बम्बई से चलने के लिए तैयार हो गया। २४ नवम्बर, १७७८ ई० को उसने बम्बई के अध्यक्ष के साथ नया समझौता किया, जिसमें माधवराव नारायण को पेशवा तथा मराठा शासन का प्रमुख पुरुष स्वीकार किया गया था और पूना पहुँचने पर रघुनाथराव उसकी बाल्यावस्था में अभिभावक (रीजेण्ट) के रूप में कार्य करेगा। बालक को पुरन्दर तथा पूना में ब्रिटिश सन्तरियों के कठोर संरक्षण में रहना था। इस अभियान के कमान अधिकारी का स्थान कर्नल इजार्टन को दिया गया, जिसे राजनीतिक विषयों में दो असैनिक अधिकारियों—जॉन कार्नक तथा टॉमस मोस्टिन—के परामर्श के अनुसार कार्य करना था। ये उसके दल से सम्बन्धित कर दिये गये। वे उसी दिन २४ नवम्बर को बम्बई के बन्दरगाह से चल पड़े। उनको पनवेल के मार्ग से खण्डाला घाट की चोटी पर पहुँचने में एक मास लग गया। पूना के मन्त्री इस आक्रमण का सामना करने के लिए गुरिल्ला पद्धति द्वारा तैयार हो गये। वे शत्रु के चारों ओर चक्कर काटते तथा उसकी सामग्री को उस तक नहीं पहुँचने देते थे, परन्तु वे उसकी तोपों की मार के बाहर रहते थे। जब ब्रिटिश सेनाएँ घाटों पर चढ़ने लगी तो मराठा सैनिकों ने पीछे से उन पर आक्रमण करके सदैव ही सेना के पृष्ठभाग में रहने वाले रघुनाथराव को पकड़ लेने का प्रयत्न किया।[८]

---

८ मोस्टिन का सहायक लेविस इस पूरे समय में पूना में था। वह अंग्रेज कमाण्डर को समस्त महत्त्वशाली विषयों से सुपरिचित रखता था। मोस्टिन स्वयं अभियान के साथ था; परन्तु खण्डाला में वह बीमार हो गया। वह चिकित्सार्थ बम्बई वापस आया और वहाँ पर १ जनवरी, १७७९ को ४८ वर्ष की आयु में उसका देहान्त हो गया। यह क्षति ब्रिटिश योजनाओं के लिए भारी आघात सिद्ध हुई।

३० दिसम्बर को ब्रिटिश सेना खण्डाला से पूना की ओर बढ़ी। उसका मार्ग लगभग वर्तमान रेलपथ ही था—अर्थात् कार्ले तथा तलेगाँव होकर। मराठों ने प्रत्येक दिशा से सशस्त्र आक्रमण किया। उन्होंने मार्ग स्थित बाजारों तथा गाँवों को जला दिया। इनमें तलेगाँव की प्रसिद्ध गल्ला मण्डी शामिल थी। नाना फड़निस ने पूना के समस्त नगर को खाली कर दिया, तथा अधिकांश नागरिकों को अपने-अपने गाँवों को चले जाने के लिए विवश कर दिया। उसने बड़े-बड़े घरों को फूस तथा ज्वलनशील पदार्थों से भर दिया जिससे शत्रु को समर्पित करने की अपेक्षा वह सारे नगर को भस्म कर सके। ४ जनवरी, १७७९ ई० को कैप्टिन स्टुअर्ट कार्ला के समीप एक वृक्ष की चोटी से निरीक्षण कर रहा था, तभी उसके अचानक एक गोली लगी और वह मर गया। कर्नल के भी इसी प्रकार घायल होकर बम्बई को वापस चला गया। चीफ कमाण्डर कर्नल इमर्टन सख्त बीमार हो गया तथा कॉकबर्न को अपना कार्यभार देकर लौट गया। उच्च अधिकारी वर्ग सम्बन्धी इन क्षतियों के कारण छोटी-सी ब्रिटिश सेना बहुत हतोत्साह हो गयी। लगातार सताये जाने के कारण उसकी संख्या पहले ही कम हो गयी थी। कार्ला से चलने पर उनको मालूम हुआ कि पग-पग पर लड़ाई करनी पड़ रही है। मराठा तोपखाने के अध्यक्ष भीवराव पंसे ने अपने निपुण पुर्तगाली तोपची नोरोन्हा की सहायता से ब्रिटिश सेना को बहुत हानि पहुँचायी। वे ७ जनवरी को खडकला (वर्तमान कामशेट रेलवे स्टेशन) पहुँचे, आगामी दिवस वड़गाँव, तथा ९ जनवरी को तलेगाँव। यह यात्रा अंग्रेजों के लिए इतनी हानिकारक सिद्ध हुई कि उनको पूना पहुँचने की अपनी योजना केवल पागलपन मालूम पड़ने लगी। एक पत्ती या घास का तिनका भी मार्ग में देखने को न मिल सका। रघुनाथराव तथा मोस्टिन ने उन्हें झूठा विश्वास दिलाया था कि जब वे घाटों पर पहुँचेंगे तभी अधिकांश प्रमुख मराठा सरदार ब्रिटिश अभियान में सम्मिलित हो जायेंगे, परन्तु इस दल के एक भी प्राणी ने पक्षत्याग नहीं किया। इसके विपरीत अंग्रेजों को पता चला कि श्रमिकों, सामग्री तथा निवास सम्बन्धी सुविधाओं के अभाव के कारण स्वयं उनका जीवन दूभर हो गया है। पानी मिलना भी कठिन हो गया। तलेगाँव का बड़ा तालाब सर्वथा जलहीन मिला। इससे वड़गाँव तथा तलेगाँव के बीच में अंग्रेजों को अपनी स्थिति संकटग्रस्त प्रतीत हुई। १० तथा ११ जनवरी पूरे दो दिन तक तलेगाँव में उनकी युद्धसमिति का सम्मेलन हुआ तथा अपनी संकटग्रस्त परिस्थिति से छुटकारा पाने के लिए उन्होंने विभिन्न उपायों पर विचार-विनिमय किया। आगे चलकर वे चिचवाड़ में ठहरने को थे, परन्तु सूचना प्राप्त हुई कि वह स्थान आग लगाये जाने के लिए तैयार कर

लिया गया है।[६] अंग्रेजों ने निश्चय किया कि वे गुप्त रूप से वापस हो जायें तथा जो कुछ भी बच सके, बचा ले जायें; परन्तु यह कार्य भी असम्भव हो गया। जब वे वड़गाँव की ओर दो मील पीछे हटे तो उनको मालूम हुआ कि वे सब ओर से पूरी तरह घिर गये हैं। ब्रिटिश सेना की पाँच तोपें तथा दो हजार से अधिक बन्दूकें नष्ट हो चुकी थीं। इस समय पनवेल तथा पहाड़ियों के बीच वाले घाटों के नीचे मराठों की टोलियाँ वीरतापूर्वक आक्रमणशील हो गयी थीं। समस्त देश भभक उठा था, जिससे ब्रिटिश सेनाएँ वापस नहीं हो सकती थीं। नाना तथा महादजी ने पूर्ण सहयोग से कार्य किया तथा वड़गाँव के समीप एक पहाड़ी पर बने अपने अड्डे से उन्होंने प्रत्येक गतिविधि का निर्देशन किया। उन्होंने फँसी हुई ब्रिटिश सेना को भूखों रखकर उससे अधीनता स्वीकार करा ली। अत्यन्त कष्ट के कारण ब्रिटिश समिति सखाराम बापू से बम्बई लौटने के लिए सुरक्षित मार्ग का प्रस्ताव करने के लिए विवश हो गयी।

इस समय सर्वोपरि अधिकार महादजी सिन्धिया के हाथों में था। उसको सखाराम बापू पर कुछ विशेष विश्वास नहीं था। रघुनाथराव ने तुकोजी होल्कर से व्यक्तिगत रूप से प्रार्थना की कि वह उनकी तथा ब्रिटिश सेना की प्राण-रक्षा करे। महादजी ने तुकोजी की मध्यस्थता को स्वीकार न करके सन्धि-प्रस्ताव आरम्भ होने के पहले रघुनाथराव द्वारा बिना किसी शर्त के आत्मसमर्पण कर देने की माँग रखी। इस परिस्थिति से बचने का कोई उपाय न था। रघुनाथराव महादजी के हाथों में आत्मसमर्पण करने के लिए सहमत हो गया। समर्पण की शर्तों को निश्चित करने के लिए महादजी तथा नाना से भेंट करने फार्मर को भेजा गया। फार्मर की आँखों पर पट्टी बाँधकर तथा पालकी में बैठाकर १४ जनवरी को दोनों सरदारों के सम्मुख उपस्थित किया गया। उनकी ओर से यह माँग रखी गयी कि रघुनाथराव को समर्पित कर दिया जाये। इसके बदले में वे मराठा संरक्षण में ब्रिटिश सेना को बम्बई वापस होने की आज्ञा देने और उनकी भोजन सामग्री का प्रबन्ध करने के लिए सहमत हो गये। महादजी से कई बार मिलने के बाद अन्त में फार्मर को निम्नलिखित शर्तें प्राप्त हुईं :

१. रघुनाथराव का समर्पण।

---

६ रघुनाथराव को साहस न हुआ कि वह समिति के सम्मुख जाये। वह अपनी प्राण-रक्षार्थ घबड़ा उठा। ब्रिटिश सेना के भयानक कष्टों का अध्ययन 'ईरानी पंजिका' (पर्शियन कलेण्डर) जिल्द ५, नं० १४४६ आदि में किया जा सकता है।

२. साल्सेट, थाना तथा गुजरात के उस इलाके की वापसी जिस पर अंग्रेजों ने अधिकार कर लिया था।

३. बंगाल की सेना को वापस होने की आज्ञा।

४. दो अंग्रेज मराठों के पास उस समय तक नजरबन्द रहें जब तक शर्तों का पूर्णतः तथा सत्यतः पालन न हो जाये, क्योंकि वड़गाँव की इस सन्धि की अन्तिम स्वीकृति गवर्नर जनरल की ओर से होनी थी।

जब ये सन्धि-प्रस्ताव हो रहे थे तब अंग्रेजों ने अपने तोपखाने की रक्षा में गुप्त रूप से भाग जाने का प्रयत्न किया, किन्तु १४ जनवरी की प्रभात-बेला में चारों ओर से मराठा दल ने उन्हें रोक लिया। उस समय मुठभेड़ में ५० यूरोपियन तथा ४०० भारतीय मारे गये। १६ जनवरी को फार्मर एक सादा कागज लाया, जिस पर विधिपूर्वक हस्ताक्षर थे तथा मोहर लगी हुई थी कि विजेतागण उस पर अपनी आज्ञापूर्ण मनमानी शर्तें लिख दें। महादजी का आचरण संयत तथा शोभनीय रहा। उसने उत्तर दिया कि जब रघुनाथराव तथा नजरबन्द लोग पहुँच जायेंगे तब मैत्री भावना से सब व्यवस्था हो जायेगी तथा पराजितों के प्रति किसी कटुता का प्रदर्शन नहीं किया जायेगा। १७ जनवरी को सन्धि-पत्र की संयमित पाण्डुलिपियों का आदान-प्रदान हो गया। १८ जनवरी को रघुनाथराव तथा दोनों नजरबन्द—फार्मर और स्टुअर्ट—मराठा शिविर में पहुँच गये। तुरन्त ब्रिटिश-दल के लिए प्रचुर सामग्री उपलब्ध कर दी गयी तथा वे २० हजार मराठों के संरक्षण में बम्बई को वापस हो गये। बाद में स्वयं अंग्रेज लोगों ने पराजित शत्रु के प्रति इस विचित्र उदारता की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

वड़गाँव की इस सन्धि को बम्बई तथा कलकत्ता के ब्रिटिश अधिकारियों ने कभी स्वीकार नहीं किया। हेस्टिंग्ज ने इसकी शर्तों का पालन करने से इनकार कर दिया। उसने कहा कि जिन लोगों ने यह सन्धि की थी, उनको इसे करने का कोई अधिकार नहीं था। ब्रिटिश लेखक इस सन्धि को प्रतिज्ञा (कनवेंशन) कहना पसन्द करते हैं। महादजी ने अंग्रेजों के प्रति अपने व्यवहार में कोमल तथा उदार नीति का अनुसरण किया। उसने विपुल कष्ट और व्यय से बचने के लिए उस क्रूरता को बलपूर्वक रोक दिया जिसके समर्थक नाना तथा वड़गाँव में उपस्थित अन्य सरदार थे। महादजी का आग्रह था कि ब्रिटिश सत्ता की उपेक्षा नहीं की जा सकती और न उसको अकारण कोई कष्ट ही देना चाहिए। ब्रिटिश अनुशासन, उनके तोपखाने की कुशलता तथा उनके सुव्यवस्थित उपायों का उस पर भारी प्रभाव पड़ा था। युद्ध में मराठों का अव्यवस्थित व्यवहार इसके सर्वथा विपरीत था। महादजी ने वर्तमान युद्ध-

प्रवृत्तियों को समाप्त करने तथा ग्रहण की गयी शिक्षा को व्यवहार में लाने की तीव्र इच्छा प्रकट की।

वड़गाँव की सन्धि को स्थिर करने में फार्मर का भी हाथ था। उसने इस शोचनीय प्रकरण पर कुछ टिप्पणियाँ छोड़ी हैं जो उद्धृत करने योग्य हैं :

"बम्बई की सरकार को गोडार्ड की सेना के आगमन की प्रतीक्षा करनी चाहिए थी तथा उसके साथ मिलकर अपनी ही ओर से मराठा सरकार के विरुद्ध कार्य करना चाहिए था। रघुनाथराव के स्वत्व-प्रतिपादन से इसका कोई भी सम्बन्ध नहीं होना चाहिए था। इसके स्थान पर बम्बई की सरकार ने बेचारे मोस्टिन के उन आश्वासनों से पथभ्रष्ट होकर बिना किसी विचार के रघुनाथराव के अधिकारों का प्रतिपादन करने तथा समस्त जगत के प्रति उसको वे अधिकार पुनः दिला देने सम्बन्धी अंग्रेज विचारों की घोषणा करने की विचित्र योजनाओं को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार के प्रयास तथा इस प्रकार की नीति के कारण स्वभावतः मराठा साम्राज्य के समस्त प्रमुख सरदार तथा समस्त शक्तियाँ हमारे विरुद्ध संगठित हो गयीं, क्योंकि उनके पास हमारी महत्त्वाकांक्षा से भयभीत होने के कारण थे। उनकी (बम्बई सरकार की) इच्छा इस योजना का समस्त श्रेय स्वयं ही प्राप्त करने की थी और वे गोडार्ड की सहायता की प्रतीक्षा नहीं करना चाहते थे, इसलिए उनका प्रयास असफल हुआ जिसकी पहले ही आशंका हो सकती थी। उनकी कार्रवाई के प्रति निश्चय ही हेस्टिंग्ज उत्तरदायी नहीं है और न वह उस कार्रवाई के परिणाम-स्वरूप होने वाले भयानक अपमान का ही उत्तरदायी है जिसने हमारी सैनिक शक्ति के सम्बन्ध में दृढ़ धारणा को नष्ट कर उस संघ को स्थापित होने में सहायता दी जो भविष्य में हमारे विरुद्ध सक्रिय हो गया।"[10]

वड़गाँव के समर्पण पर ग्लीग की टिप्पणी इस प्रकार है : "जिस समय से अंग्रेज लोगों ने सर्वप्रथम अपने को पूर्व में शक्तिशाली सत्ता के रूप में स्थापित किया था, इस प्रकार की एक भी अपमानपूर्ण घटना घटित नहीं हुई थी। भारत की समस्त दिशाओं में इसके परिणाम तुरन्त दृष्टिगत हो गये। निजाम तथा हैदरअली की ओर से असन्तोष की भावना प्रकट होने लगी। बरार का राजा स्वयं आयोजित सन्धि-प्रस्ताव से पीछे हट गया। अंग्रेजों के विरुद्ध मराठा दल को नवीन साहस प्राप्त हो गया।"[11]

लायल लिखता है : "समस्त प्रकरण का सार यह है कि इस समय मराठे अत्यधिक शक्तिशाली तथा अति सुसंगठित थे, अतः वे उन दलों से परास्त

---

[10] डाडवेल, 'वारेन हेस्टिंग्ज', पत्र, पृ० १७६

[11] 'वारेन हेस्टिंग्ज के संस्मरण', जिल्द २, पृ० २२९

अथवा भयभीत नहीं किये जा सकते थे, जिनको अंग्रेज लोग उनके विरुद्ध एकत्र कर सकते थे या ला सकते थे।" खरडा के युद्ध तथा अल्पवयस्क पेशवा माधवराव द्वितीय की मृत्यु तक इस अपेक्षाकृत स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

तलेगाँव की पराजय से समस्त ब्रिटिश राष्ट्र क्रोधातुर हो उठा तथा सारे देश में दण्ड देने की प्रबल इच्छा व्यापक हो गयी। ऐसा पहले कभी किसी भी कारण से नहीं हुआ था। बम्बई में बहुत समय तक इस सम्बन्ध में जाँच होती रही। काकबर्न तथा इगर्टन को नौकरी से निकाल दिया गया, क्योंकि वे ही इस विपत्ति के कारण थे। वारेन हेस्टिंग्ज ने वड़गाँव की सन्धि का तीव्र विरोध किया तथा मराठों के विरुद्ध नवीन युद्ध आरम्भ करके इस कलंक को धो डालने के लिए यथाशक्ति प्रत्येक उपाय किया। मराठों ने भी ऐसी ही दृढ़ता से इस चुनौती को स्वीकार कर लिया। कूटनीति के लिए उपयुक्त नाना फड़निस की विलक्षण बुद्धि चमक उठी, जिसके परिणामस्वरूप चार शक्तियों का ब्रिटिश विरोधी संघ स्थापित हो गया।

५. महादजी प्रकाश में—तलेगाँव में मराठा विजय से देश का साहस इतना बढ़ गया, जितना पहले कभी नहीं बढ़ा था। बालक पेशवा की, उसके सौभाग्य पर, प्रत्येक स्थान में प्रशंसा होने लगी। महादजी सिन्धिया की निष्ठा, वीरता तथा दक्षता का गुणगान होने लगा। इस विजय में तुकोजी होलकर का भी अल्प परन्तु सन्तोषजनक भाग था। आत्मसमर्पण के समय रघुनाथराव के पास लगभग ३०० देशी सवार, लगभग १२०० गार्दी सिपाही, १३ तोपें तथा लगभग २०० व्यक्तियों की सेवक-मण्डली थी। उसका सचिव चिन्तो विठ्ठल और उसके दो अनुचर सदाशिव रामचन्द्र तथा खड्गसिंह इनके अतिरिक्त थे। ये सब १८ जनवरी, १७७९ को वड़गाँव के स्थान पर महादजी के शिविर में आ गये। रघुनाथराव की विशेष प्रार्थना पर उसके आत्मसमर्पण सम्बन्धी समस्त कार्य को नाना के हस्तक्षेप के बिना स्वयं महादजी ने नियन्त्रित किया। नाना तथा बापू शिष्टाचार के नाते भी रघुनाथराव से मिलने नहीं गये, क्योंकि वे हत्यारे का मुँह देखना भी पाप समझते थे। रघुनाथराव के भावी निवास-स्थान का प्रश्न वड़गाँव में लगभग डेढ़ मास तक विवादास्पद बना रहा। मार्च के आरम्भ में मराठा सरकार पुरन्दर को वापस हो गयी। इस प्रकार तीन वर्ष के युद्धकाल में अपने सफल नेतृत्व के कारण महादजी को मराठा शासन में सर्वोच्च सत्ता तथा अधिकार प्राप्त हो गये जो लगभग उसकी मृत्यु के समय तक उसके हाथ में रहे। कूटनीति की विजय उसी समय होती है, जब उसकी पीठ पर शस्त्र-बल होता है। महादजी को इसी प्रकार का अवसर मिल गया। नाना फड़निस निस्सन्देह इससे अप्रसन्न था,

परन्तु वह इसको रोक नहीं सकता था। इस समय से महादजी शक्तिसम्पन्न नेता माना जाने लगा, क्योंकि मध्य भारत के बहुत-से भाग पर पहले ही से उसका अधिकार था।

अन्त में रघुनाथराव ने निम्नलिखित समझौते पर शपथपूर्वक हस्ताक्षर कर दिये—(१) माधवराव नारायण को उसने न्यायोचित पेशवा स्वीकार किया है। (२) उसने उस पद से अपने स्वत्व का त्याग कर दिया है। (३) मराठा राज्य के विरुद्ध युद्ध करने के अपने पाप को उसने स्वीकार कर लिया है। (४) वह समस्त राजनीतिक कार्यों से अवकाश ग्रहण करने के लिए सहमत हो गया है तथा १० लाख की जागीर स्वीकार करके वह आजीवन झाँसी में निवास करेगा। (५) उसने प्रार्थना की कि उसके पुत्र बाजीराव को पेशवा के प्रशासन का संचालन करने की अनुमति दी जाये, जब वे दोनों—बाजीराव तथा माधवराव नारायण—वयस्क हो जायें। इसका पूर्व उदाहरण नाना-साहेब तथा भाऊसाहेब का प्रशासन है।[१२]

इन शर्तों के उचित अनुपालन के लिए महादजी तथा तुकोजी उत्तरदायी हुए। खड्गसिंह को तुरन्त प्राणदण्ड दे दिया गया, क्योंकि नारायणराव की हत्या में उसका हाथ था। चिन्तो विट्ठल सदृश अन्य सहायक कठोर कारागार में डाल दिये गये।

वड़गाँव में होने वाली सरदारों की सभा अनेक कारणों से उल्लेखनीय है, जिसके बाद २४ फरवरी को रघुनाथराव अपनी झाँसी की यात्रा पर चल पड़ा। उसके रक्षकों का अध्यक्ष हरिबाबाजी केतकर नामक महादजी का कुशल पदाधिकारी था।

वड़गाँव की विजय का एक दुखदायी परिणाम वयोवृद्ध अधिकारी सखाराम बापू का सर्वनाश था। वह पूना शासन का वरिष्ठ सदस्य था तथा उसने विवेक एवं साहस से दीर्घकाल तक पूना मन्त्रिमण्डल का नेतृत्व किया था। जब रघुनाथराव तथा उसके अनुचरों ने आत्मसमर्पण किया तब विशेषकर चिन्तो विट्ठल और सदाशिव रामचन्द्र को दण्ड देने के प्रश्न पर विचार किया गया। वृद्ध मन्त्री बापू के विरुद्ध प्रतिशोध की भावना से रघुनाथराव ने उसका एक हस्तलिखित पत्र उपस्थित कर दिया जो गत वर्ष मोरोबा फड़निस द्वारा सत्ता को हस्तगत करने के अवसर पर उसको बम्बई से निमन्त्रित करने के लिए लिखा गया था। बापू के संदिग्ध आचरण के कारण नाना तथा महादजी दोनों पहले से ही उसके विरुद्ध थे तथा उसके इस कार्य को राजद्रोह मानकर

---

[१२] इतिहास संग्रह ऐतिहासिक टिप्पणी १-७। पारसनिस कृत-सन्धियाँ तथा संविद, पृ० १३।

उसको २७ फरवरी को पकड़कर सिंहगढ़ में बन्द कर दिया और उसकी समस्त सम्पत्ति का हरण कर लिया। इस वृद्ध कूटनीतिज्ञ ने दीर्घ समय से पेशवा के परिवार की जो उत्कृष्ट सेवाएँ की थीं उनके बदले इस प्रकार का व्यवहार निश्चय ही कठोर था। आगामी मई में बापू प्रतापगढ़ भेज दिया गया, जहाँ पर लगातार दो वर्ष अधिक वृष्टि होने से आर्द्र जलवायु के कारण उसका स्वास्थ्य बिगड़ गया। इसके बाद उसे रायगढ़ को हटा दिया गया जहाँ पर २ अगस्त, १७६१ को उसकी मृत्यु हो गयी।

सखाराम बापू के निष्कासन से बार भाइयों की सभा का लगभग ६ वर्ष का जीवन समाप्त हो गया। इसके बाद महादजी शिन्दे की सहायता से पेशवा के शासन का एकमात्र प्रबन्धक नाना फड़निस हो गया तथा १७६५ में अल्प-वयस्क पेशवा की मृत्यु तक उसने सत्ता का पूर्ण उपभोग किया। महादजी अधिकतर उत्तर भारत में रहता था, इसलिए नाना फड़निस ने हरिपन्त फड़के को अपना विश्वस्त सहकारी बना लिया और वे सैनिक-कार्य दे दिये जिनके लिए वह अपनी शारीरिक अवस्था के कारण अयोग्य था। महादजी, तुकोजी तथा कृष्णराव काले भी प्रशासन में नाना के सतत सहायक बने रहे।

इस समय से नाना तथा महादजी मराठा सरकार के स्थायी सहकारी हो गये। उनका स्वभाव परस्पर विरुद्ध था तथा वे एक-दूसरे पर सन्देह करते थे, तथापि उनका सहयोग एक-दूसरे के लिए अनिवार्य था। दोनों सत्तालोलुप तथा स्वार्थपरायण थे। नाना लेखन-कला तथा षड्यन्त्र में निपुण था और महादजी युद्ध तथा कूटनीति में कुशल था। उन्होंने आगामी १५ वर्षों के इतिहास पर अपना प्रभाव डाला। वे प्राय: सम्बन्ध-विच्छेद की सीमा तक एक-दूसरे से घोर रूप से असहमत हो जाते थे तथा उनके निवास-स्थान भी एक-दूसरे से बहुत दूर थे। लेखपत्रों की विशाल राशि सुरक्षित है, जिससे उनके परस्पर दोषारोपण प्रकट हैं, और जो ऐतिहासिक अध्ययन की सामग्री प्रदान करती है।

नाना वास्तव में कठोर तथा नियमबद्ध कार्यकर्ता था, उसको जिह्वा की अपेक्षा लेखनी पर अधिक विश्वास था। महादजी उसके सर्वथा विपरीत था। वह बहुभाषी तथा वादविवादप्रिय था। वह आवश्यकतानुसार विषय-परिवर्तन तथा वाक्छल कर सकता था, परन्तु इस सबसे बढ़कर वह एक कार्यकुशल व्यक्ति था। एक के व्यक्तिगत प्रतिनिधि दूसरे के शिविर में उपस्थित रहते थे तथा जो कुछ भी कोई कहता या करता, उसकी सूचना वे अपने स्वामी को भेजते रहते थे। उनके स्वभाव के कारण उत्पन्न मतभेद शीघ्र ही दोनों सरदारों में कलह तथा अविश्वास की सीमा तक पहुँच गये। जब उनके

पारस्परिक सम्बन्ध विच्छेद की सीमा तक पहुँच गये तथा उनके कारण बाह्य जगत में भय उत्पन्न हो गया तो प्रशासन का निर्विघ्न संचालन असम्भव हो गया। सौभाग्यवश उनमें अपने मतभेदों के कुपरिणामों को समझने की सद्-बुद्धि थी। वे पारस्परिक अपकार से दूर रहने के लिए लिखित रूप से शपथों का आदान-प्रदान कर लेते थे तथा एक-दूसरे के प्रति भ्रातृवत् व्यवहार की प्रतिज्ञा करके अपने हितों को एक बना लेते थे। शपथों का यह आदान-प्रदान १५ मार्च को पुरन्दर के स्थान पर हुआ, जब वड़गाँव की सभा के विसर्जन के बाद दोनों दल अपने सामान्य अधिपति अल्पवयस्क पेशवा का अभिवादन करने उपस्थित हुए। परन्तु व्यावहारिक राजनीति पर इन प्रतिज्ञाओं तथा शपथों का कोई प्रभाव न पड़ा। महादजी ने मालवा को अपना कार्यक्षेत्र बना लिया तथा अपना ध्यान उत्तर के कार्यों तक सीमित रखा। इसी प्रकार नाना ने अपने को दक्षिण तक सीमित रखा। उनकी आयु की भारी असमानता ने भी उनके विवाद को बढ़ने न दिया, क्योंकि नाना महादजी से १५ वर्ष छोटा था।

२१ अप्रैल को पार्वती के मन्दिर में बालक पेशवा का यज्ञोपवीत संस्कार हुआ और तीसरे पहर में स्थित अपने पूर्वजों के राजभवन में उसने विधिपूर्वक प्रथम बार प्रवेश किया। यहाँ पूरे दरबार की योजना की गयी। महादजी, नाना तथा अन्य सरदारों ने मुजरे दिये और नवीन विजय पर उसको बधाई दी। परन्तु इसी अवसर पर समाचार प्राप्त हुआ कि रघुनाथराव सूरत को पुनः भाग गया है, जिससे हर्षोत्सव में विघ्न फैल गया और समाप्त मान लिया गया। युद्ध पुनः आरम्भ हो गया।

६. **रघुनाथराव का नवीन प्रपंच**—नर्मदा पर अपने शिविर में जनरल गोडार्ड को, जो वारेन हेस्टिंग्ज द्वारा प्रेषित बंगाल दल का आज्ञापक था, वड़गाँव में ब्रिटिश सेना की पराजय का समाचार प्राप्त हुआ। इस अशुभ समाचार पर बदले की भावना से जलकर गोडार्ड शीघ्र ही सूरत की ओर बढ़ा जो उस समय पश्चिम में ब्रिटिश सत्ता का मुख्य स्थान था। गुजरात के सभी साधन उसी की इच्छा के अधीन थे। वड़गाँव में हुए अपने पति के आत्मसमर्पण पर आनन्दीबाई बहुत दुखित थी। उस समय उसका निवास-स्थान मण्डलेश्वर था। उसने झाँसी की ओर जा रहे अपने पति के साथ होने के विचार से बुर-हानपुर की यात्रा में गोडार्ड से घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित कर लिया। रघुनाथ-राव अत्यन्त व्याकुल था। वह उस नियन्त्रण पर क्रुद्ध था जो उसे विवश होकर स्वीकार करना पड़ा था। उसने अपने कुछ उत्साही अनुचरों—मानाजी फड़के बाजीराव बर्वे, केशवकृष्ण दातार—तथा अन्य व्यक्तियों को प्रोत्साहन दिया कि वे उत्तर खानदेश में अपनी सेनाओं को एकत्र करें, जहाँ पर कुछ विद्रोही व्यक्ति

(जैसे कि स्थानीय कोली लोग, सुल्तानपुर का गुलजारखाँ, धार का खाण्डेराव पवार आदि) पहले से ही पूना सरकार के लिए कष्ट उत्पन्न कर रहे थे। १७७९ ई० की ग्रीष्मऋतु में इन प्रवृत्तियों को नवीन उत्तेजना प्राप्त हुई जब रघुनाथराव अप्रैल में बुरहानपुर के समीप तथा मई में नर्मदा तट पर पहुँचा। उसका संरक्षक हरिबाबाजी अपनी यात्रा में पर्याप्त रूप से सावधान था। वह अपने बन्दी की योजनाओं तथा कार्यों को देख रहा था। इस बन्दी के पास अपना ही सैनिक-दल, अपना तोपखाना, अपने अनुचर तथा यात्रा की सुसज्जा थी। इसका शिविर नर्मदा तट पर था। वे नदी को पार करने के लिए नावों के पहुँचने की प्रतीक्षा कर रहे थे। एक दिन हरिबाबाजी को ज्वर हो गया, जिसके कारण वह अपने डेरे से बाहर न निकल सका। रघुनाथराव की तोपों को बैल घसीट रहे थे। उसने उनको रक्षक-दल पर चला दिया। हरिबाबाजी को उसके डेरे में मार दिया गया तथा इस प्रकार होने वाली गड़बड़ी में वह अपनी प्राण-रक्षा के लिए नदी के दक्षिण तट के साथ-साथ भाग निकला। सूरत में गोडार्ड ने उसका स्वागत किया। मालूम होता है, इस योजना से वह गुप्त रूप से परिचित था। गोडार्ड ने बड़ौदा के शासक फतेहसिंह गायकवाड़ को अपनी ओर कर लिया और उन दोनों ने मिलकर गुजरात में नवीन युद्ध आरम्भ कर दिया। उनका उद्देश्य वड़गाँव की क्षति की पूर्ति करना था। इस प्रकार पूना के शासन को पुनः घोर संघर्ष में फँसना पड़ा और गत कई वर्षों का परिश्रम तथा व्यय निष्फल सिद्ध हो गया।

पूना में नाना तथा महादजी ने रघुनाथराव के पलायन का समाचार बड़े आश्चर्य के साथ सुना। नाना ने महादजी पर कर्तव्योपेक्षा तथा जानबूझकर लापरवाही करने का दोषारोपण किया। महादजी अपने उपार्जित विश्राम-काल को जामगाँव के अपने ग्रामीण निवास का परकोटा बनाने में तथा अपने और अपने अनुचरों के रहने के लिए विपुल स्थान सहित स्थायी विनोद-गृहों के निर्माण में व्यतीत कर रहा था।[१३] यहाँ पर उसने लादोजी शितोले देशमुख के साथ अपनी कन्या बालाबाई का भव्य विवाह संस्कार किया। इन आमोद-पूर्ण कार्यों के बीच उसको समाचार प्राप्त हुआ कि रघुनाथराव अपने रखवालों के बीच से भाग गया है। इस समय वर्षाऋतु आरम्भ होने वाली थी अतः अत्यन्त वेग से पीछा करना भी असफल सिद्ध होता। परन्तु नाना ने शीघ्र उपाय का आग्रह किया तथा सर्वथा अकारण ही सन्देह किया कि महादजी गुप्त रूप से इस काण्ड से परिचित था। इस कारण ने दोनों सरदारों में अपूर्व

---

[१३] इस महल का नाम माधवविलास है तथा महादजी के मुस्लिम गुरु शाह मन्सूर के नाम पर प्राचीर का नाम साहेबगढ़ है।

मतभेद तथा अविश्वास उत्पन्न कर दिया। महादजी ने नाना के सम्पर्क से हरिपन्त के निष्कासन की माँग रखी। इसके कारण पूना तथा जामगाँव के बीच कटु पत्र-व्यवहार तथा कठोर सन्देशों का आदान-प्रदान हुआ। महादजी तब तक गोडार्ड से युद्ध करने गुजरात नहीं जाना चाहता था जब तक कि पर्याप्त सेना तथा धन उपलब्ध न कर दिये जायें। इस प्रकार पूना के वातावरण में घोर उदासी तथा निराशा छा गयी, और पिछली गर्मियों का आमोद अदृश्य हो गया। काफी गरमागरम बहस तथा सन्देशों के आदान-प्रदान के बाद दोनों सरदारों ने अपने को अवसर के अनुसार सुधार लिया तथा गुजरात में मराठा शासन ने युद्ध करने की ब्रिटिश चुनौती को स्वीकार कर लिया। वास्तव में नाना ने अपने जीवन का अद्भुत कार्य एक बार और कर दिखाया। उसने ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध गुप्त रूप से अखिल भारतीय संघ संगठित कर लिया। परन्तु यह विषय हमारे आगामी अध्याय की सामग्री होगा।
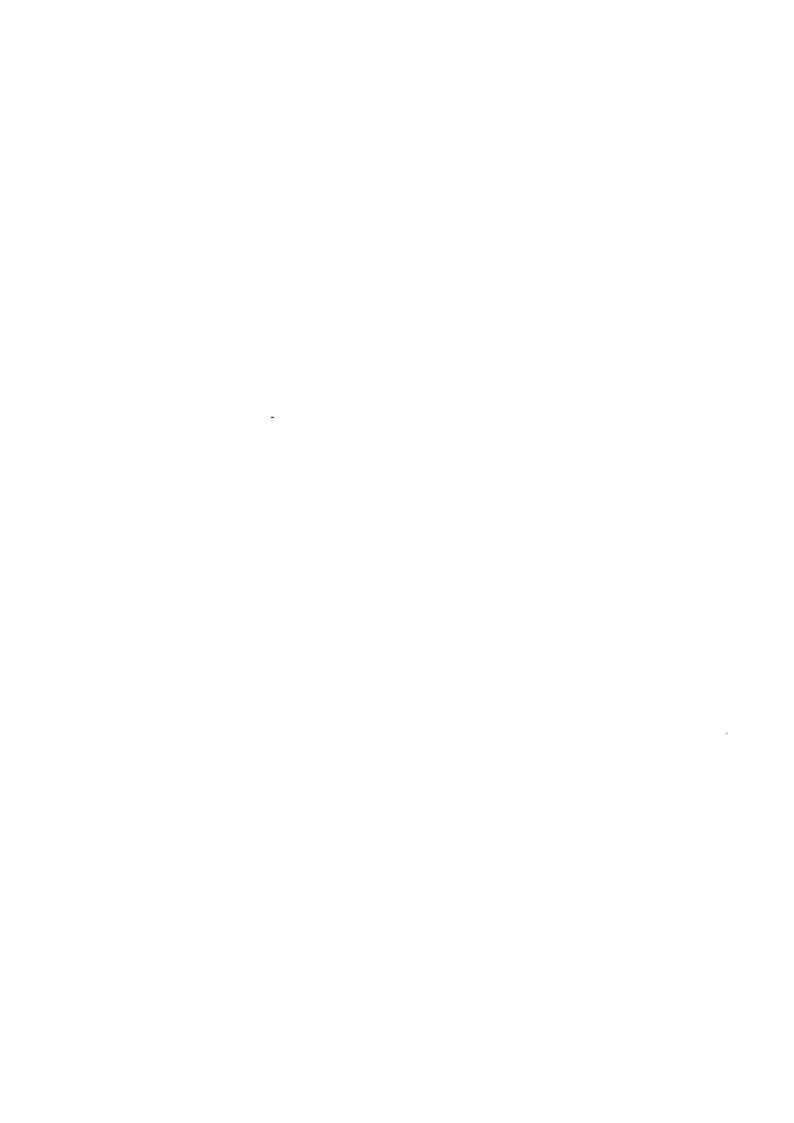
तिथिक्रम

अध्याय ४

फरवरी, १७७४	कल्याण दुर्ग में हैदरअली के साथ रघुनाथराव की सन्धि।
अप्रैल, १७७४	हैदरअली की शिरा पर विजय; बापूजी शिन्दे का आत्मसमर्पण।
१५ मार्च, १७७६	हैदरअली का गुट्टी पर आक्रमण; मुराररराव का बन्दी होना।
५ अप्रैल, १७७६	भगवन्तराव प्रतिनिधि की मृत्यु।
६ नवम्बर, १७७६	कर्णाटक में हैदरअली के विरुद्ध मराठों की फौजी कार्रवाई।
६ जनवरी, १७७७	हैदरअली द्वारा साँची में पटवर्धन-परिवार की पराजय —कोन्हेरराव की मृत्यु तथा कुछ व्यक्ति बन्दी।
३० अगस्त, १७७७	भवनराव प्रतिनिधि की मृत्यु; उसके पुत्र परशुराम का जन्म।
जनवरी-अप्रैल, १७७८	महादजी शिन्दे का कोल्हापुर के विरुद्ध युद्ध।
२३ अप्रैल, १७७८	महादजी शिन्दे का सन्धि द्वारा कोल्हापुर युद्ध को समाप्त करना।
१९ मार्च, १७७९	कर्नल ब्रेथवेट का माहिम पर अधिकार।
जून के बाद, १७७९	रघुनाथराव सूरत में अत्यन्त दुखित अवस्था में।
२६ जनवरी, १७८०	फतेहसिंह गायकवाड़ पृथक सन्धि द्वारा गोडार्ड के साथ।
७ फरवरी, १७८०	नाना फड़निस का हैदरअली को ब्रिटिश-विरोधी संघ में मिला लेना।
१३ फरवरी, १७८०	गोडार्ड तथा फतेहसिंह का अहमदाबाद पर अधिकार।
२० फरवरी, १७८०	चार शक्तियों का ब्रिटिश-विरोधी संघ स्थापित।
२४ फरवरी, १७८०	खाँडोजी भोंसले का कटक में कर्नल पियर्स को स्वतन्त्र मार्ग देना।
८ मार्च, १७८०	ब्रिटिश नजरबन्द फार्मर तथा स्टुअर्ट महादजी द्वारा मुक्त।

अप्रैल, १७८०	बड़ौदा के समीप गोडार्ड तथा महादजी में युद्ध आरम्भ ।
१५ अप्रैल, १७८०	जंजीरा का सिद्दी ब्रिटिश-विरोधी संघ में सम्मिलित ।
३ मई, १७८०	होल्कर की गोडार्ड पर विजय ।
११ मई, १७८०	अंग्रेजों का थाना पर अधिकार ।
२४ मई, १७८०	कल्याण के समीप मराठों की घोर पराजय ।
२४ मई, १७८०	पनवेल के समीप कर्नल हार्टले की पराजय ।
जून, १७८०	गुजरात में गोडार्ड तथा मराठा सेनाएँ क्रमशः डभई तथा मालवा को वापस ।
जून, १७८०—मार्च, १७८४	हैदरअली तथा टीपू द्वारा पूर्वी कर्णाटक पर विजय ।
अगस्त, १७८०	हैदरअली द्वारा मद्रास को भयभीत करना ।
४ अगस्त, १७८०	पोफम का ग्वालियर के गढ़ पर अधिकार ।
१२ दिसम्बर, १७८०	गोडार्ड का बसई पर अधिकार—रामचन्द्र गणेश का वध ।
आरम्भ, १७८१	सफ्रें का शक्तिशाली नौ-समूह सहित फ्रांस से प्रस्थान ।
जनवरी, १७८१	मराठों द्वारा उत्तर कोंकण में अंग्रेजों पर आक्रमण ।
९ फरवरी, १७८१	गोडार्ड खण्डाला में १५ अप्रैल तक स्थित, अन्त में बम्बई को वापस होने पर विवश ।
९ फरवरी, १७८१	कर्नल कामक का सिरोंज पहुँचना और महादजी की भर्त्सना करना ।
२४ मार्च, १७८१	कामक द्वारा महादजी परास्त ।
४ अप्रैल, १७८१	कर्नल म्यूर कामक के साथ ।
जून, १७८१	मैकार्टने मद्रास का गवर्नर ।
१ जुलाई, १७८१	महादजी द्वारा सीपरी के समीप कर्नल म्यूर परास्त ।
१६ जुलाई, १७८१	दिवाकर पण्डित की मृत्यु ।
अगस्त, १७८१	हेस्टिंग्ज द्वारा मराठों के साथ कई मार्गों में शान्ति-प्रस्ताव का उपक्रम ।
अगस्त, १७८१	हेस्टिंग्ज द्वारा चेतसिंह पर अत्याचार ।
११ सितम्बर, १७८१	मैकार्टने, मैक्फर्सन तथा ह्यूग्स द्वारा पूना से शान्ति की वार्ता ।
११ सितम्बर, १७८१	रघुनाथराव के दूत हनुमन्तराव तथा मनियार पार्सी का इंगलैण्ड जाना और एक वर्ष बाद वापस आना ।
१३ अक्तूबर, १७८१	म्यूर तथा महादजी के बीच अल्पकालीन युद्धविराम ।
१४ दिसम्बर, १७८१	चेतसिंह द्वारा महादजी से रक्षा की प्रार्थना ।

२१ दिसम्बर, १७८१	ऐण्डरसन का महादजी के शिविर में आगमन ।
१७८२	हेस्टिंग्ज द्वारा एक वर्ष तक अवध की बेगमों पर अत्याचार ।
आरम्भ, १७८२	सफ्रें तथा बुस्सी का पूर्वीय समुद्र-तट पर आगमन ।
जनवरी-मार्च, १७८२	ऐण्डरसन का महादजी से सन्धि-प्रस्ताव ।
१२ अप्रैल, १७८२	अंग्रेजों तथा फ्रांसीसियों में मद्रास के समुद्र-तट के समीप प्रबल नौका-युद्ध ।
१७ मई, १७८२	सालबई की सन्धि निश्चित ।
१३ सितम्बर, १७८२	सफ्रें द्वारा ऐडमिरल ह्यू्स की घोर पराजय ।
७ दिसम्बर, १७८२	हैदरअली की मृत्यु ।
११ जनवरी, १७८३	इंगलैण्ड के जार्ज तृतीय के नाम रघुनाथराव का पत्र ।
१० फरवरी, १७८३	पेशवा माधवराव द्वितीय का विवाह ।
२४ फरवरी, १७८३	नाना फड़निस का सालबई की सन्धि पर हस्ताक्षर करना ।
९ अप्रैल, १७८३	धुलप का ब्रिटिश पोत रेंजर पर आक्रमण करना ।
जून, १७८३	फ्रांस तथा इंगलैण्ड में शान्ति निश्चित—भारतीय समुद्र में युद्ध समाप्त ।
जुलाई, १७८३	रघुनाथराव का ढोडप के समीप हरिपन्त को आत्म-समर्पण—कोपरगाम में उसका निवास ।
४ अगस्त, १७८३	रघुनाथराव द्वारा प्रायश्चित्त करना—गोपिकाबाई से भेंट करना ।
११ दिसम्बर, १७८३	कोपरगाम में रघुनाथराव की मृत्यु ।
२३ मार्च, १७८४	आनन्दीबाई का चिमनाजी अप्पा को जन्म देना ।
७ जनवरी, १७८५	बुस्सी का भारत में देहान्त ।
१२ मार्च, १७८४	आनन्दीबाई का देहान्त ।
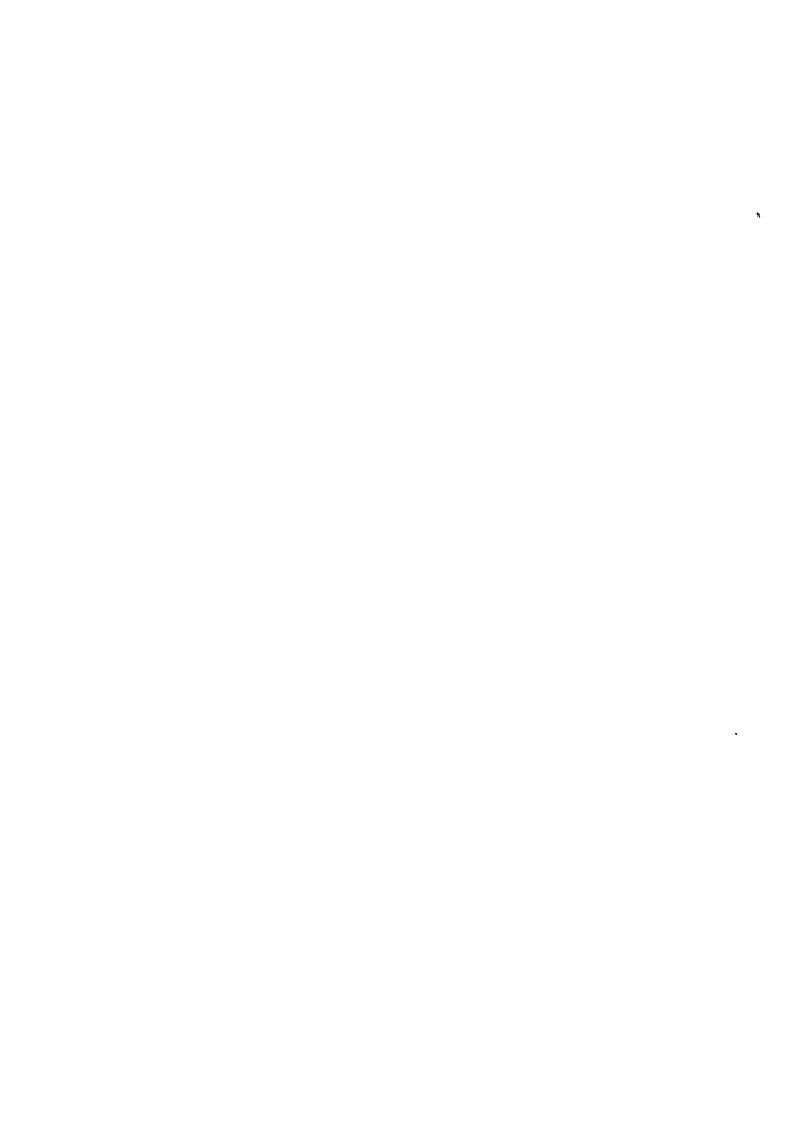
अध्याय ४

ब्रिटिश-मराठा युद्ध का अन्त

[१७७९-१७८३ ई०]

१. रघुनाथराव तथा गोडार्ड ।
२. ब्रिटिश विरोधी राज्य-संघ ।
३. नागपुर के भोंसले परिवार का प्रलोभन ।
४. गुजरात तथा मद्रास में युद्ध ।
५. गोडार्ड की विचित्र असफलता ।
६. मालवा में महादजी की स्थिति दृढ़ ।
७. सालबई की सन्धि ।
८. सालबई का निर्णय ।
९. रघुनाथराव का अन्त ।
१०. हैदरअली तथा अन्य व्यक्ति ।
११. अल्पवयस्क पेशवा का संवर्धन

१. **रघुनाथराव तथा गोडार्ड**—बंगाल से नवीन सेना सहित गोडार्ड के सामयिक आगमन के कारण बड़गाँव में ब्रिटिश पराजय की गम्भीरता बहुत कुछ मन्द पड़ गयी। उसके साथ परामर्श के बाद बम्बई के अधिकारियों ने निश्चय किया कि वे सन्धि का परित्याग कर दें तथा उन्होंने गवर्नर जनरल से आग्रह किया कि वह उनकी नीति का समर्थन करे।[1] हेस्टिंग्ज ने तुरन्त मराठा दरबार को सूचित किया कि वड़गाँव का समझौता स्वीकृत नहीं हो सकता; क्योंकि वह अनधिकृत है तथा ब्रिटिश ख्याति के लिए अपमानजनक है। उसने गोडार्ड को अधिकार दे दिया है कि पुरन्दर में अपटन द्वारा निश्चित सन्धि के आधार पर वह नवीन सन्धि की व्यवस्था करे। इसके तुरन्त बाद रघुनाथराव सूरत पहुँच गया तथा सम्पूर्ण स्थिति में सहसा परिवर्तन हो गया। नाना ने सन्धि प्रस्ताव को पुनः आरम्भ करने के पहले रघुनाथराव और थाना के गढ़ के समर्पण की स्पष्ट माँग रखी। गोडार्ड इस माँग के औचित्य को तो मान गया, परन्तु उसने स्वेच्छा से शरणागत अतिथि को वापस करना दृढ़तापूर्वक अस्वीकार कर दिया। इस भ्रान्त नीति के कारण बम्बई की सरकार अतिव्ययी युद्ध में फँस गयी तथा उनके अवांछित अतिथि ने उन पर अपने निर्वाह के लिए १० हजार मासिक वृत्ति का भी भार डाल दिया। उस दरिद्र भगोड़े के शरीर तथा मन में शक्ति का एक भी चिह्न शेष नहीं रह गया था। उसकी असंयत तथा अव्यवस्थित

---

[1] देखो, फोरेस्ट, जिल्द १, १९ फरवरी तथा ३० मार्च के गोडार्ड के पत्र।

जीवनचर्या के कारण गोडार्ड तथा उसके साथियों के मन में घृणा उत्पन्न हो गयी थी। वह अत्यन्त विषाद और निराशा के लक्षण प्रकट करता तथा प्रायः असंगत बातें करता था। जब वह खुली वायु में प्रार्थना करने के लिए बाहर आता तो उसको तीन सेवकों की आवश्यकता पड़ती थी। अर्द्धरात्रि में थोड़े-से चावलों के अतिरिक्त वह कुछ खाता न था। उसकी पत्नी आनन्दीबाई उसकी रखैलों की विपुल संख्या पर अपने क्रोध को छिपाने में असमर्थ होने के कारण मुश्किल से सप्ताह में एक बार उससे मिलती थी। पति-पत्नी परस्पर प्रायः कटु आक्षेप करते थे। पति अपने दुर्भाग्य का दोषी अपनी पत्नी को समझकर अपने अल्पवयस्क पुत्र बाजीराव को अपनी माता के पास रहने देता था। उसको यह निराशा अत्यन्त पीड़ा दे रही थी कि वह अपने जन्म-स्थान के २० मील समीप तक पहुँचकर भी उसके दर्शन न कर सका। सूरत में उसको उपदंश रोग हो गया तथा स्वास्थ्य-लाभ के लिए उसे बहुत समय तक चिकित्सा करानी पड़ी। अब उसका एकमात्र कार्य भारत तथा बाहर की विभिन्न शक्तियों को पत्र और दूत भेजकर उनसे सहायता की प्रार्थना करना रह गया था।

बम्बई में एक बार पुनः परामर्श करके गोडार्ड सूरत वापस आ गया। उसने अभियान की योजना बनाकर फतेहसिंह गायकवाड़ को अपने साथ मिला लिया, ताकि वह अहमदाबाद तथा गुजरात में पेशवा द्वारा अधिकृत विभिन्न स्थानों पर सम्मिलित आक्रमण कर सके। इस बार गोडार्ड के साथ रघुनाथराव नहीं था, उसका दत्तक पुत्र अमृतराव था।

२. **ब्रिटिश-विरोधी राज्य संघ**—जबकि पूना सरकार का सरदार गायकवाड़ पहले से ही अंग्रेजों के साथ हो गया था और खानदेश उनके प्रति स्पष्ट विद्रोह कर रहा था; ऐसे में पूना सरकार के लिए सुदूर गुजरात में अंग्रेजों से युद्ध करना सरल कार्य नहीं था। इस संकटमय अवसर पर नाना फड़निस की राजनयिक प्रतिभा प्रकाश में आयी। वह अवसर के अनुकूल योग्य सिद्ध हुआ। उसने ब्रिटिश आक्रमण का विरोध करने के लिए चार शक्तियों का विशाल संघ स्थापित किया। ये चार शक्तियाँ थीं—पेशवा की सरकार, हैदराबाद का निजाम, मैसूर का हैदरअली और नागपुर का भोंसले। यद्यपि स्पष्ट रूप से ब्रिटिश-विरोधी संघ में सम्मिलित होने वाले सदस्य ये चार ही राज्य थे, परन्तु इस समय समस्त भारत में वारेन हेस्टिंग्ज की सर्वग्रासी नीति के विरुद्ध इसी प्रकार की भावना व्याप्त थी। अधिकांश भारतीय शक्तियों ने वर्तमान प्रयत्न का हृदय से स्वागत किया, क्योंकि ब्रिटिश महत्त्वाकांक्षा के कारण उनके हितों के साथ किसी न किसी रूप में अन्याय हुआ था तथा उनको अपने स्वतन्त्र अस्तित्व के प्रति भय का आभास होने लगा था। वाराणसी के राजा चेतसिंह,

अवध के नवाब वजीर, बंगाल के नवाब तथा दिल्ली के सम्राट के उदाहरणों के कारण भी ब्रिटिश नीति से सब सुपरिचित हो गये थे। ब्रिटिश-फ्रेंच युद्ध चल रहा था तथा पश्चिमी समुद्रतट पर स्थित माही के फ्रेंच बन्दरगाह पर १९ मार्च, १७७९ को कर्नल ब्रेथवेट के अधीन एक ब्रिटिश नौ-समूह ने अधिकार कर लिया था। इस महत्त्वशाली स्थान की हानि के कारण हैदरअली तुरन्त ब्रिटिश सत्ता का कट्टर शत्रु बन गया; क्योंकि उसे अस्त्र-शस्त्र तथा सैनिक रूप में स्वतन्त्र फ्रेंच सहायता इसी बन्दरगाह से प्राप्त होती थी। जब इस बात का पता पूना के मन्त्रियों को चला तो उन्होंने हैदरअली के विरुद्ध अपने युद्ध को बन्द करने तथा ब्रिटिश आक्रमण का सामना करने के लिए उसको अपने साथ मिलाने का निश्चय किया। नाना तथा महादजी ने अविलम्ब सुयोग्य दूत कृष्ण-राव जोशी को आक्रमण तथा रक्षा दोनों के लिए मैत्री का प्रस्ताव करने के लिए उसके पास भेजा। इसके बदले वे तुंगभद्रा के दक्षिण में समस्त नव-विस्तृत मराठा-प्रदेश उसको देने के लिए सहमत हो गये। इधर हैदरअली अर्काट तथा दक्षिण कर्णाटिक के प्रदेशों का विनाश करने के लिए प्रस्तुत हो गया जो उस समय मुहम्मद अली के अधिकार में थे और अंग्रेजों के आश्रित थे। मैत्रीपूर्ण सन्धि की शर्तों के उचित पालन के लिए महादजी शिन्दे तथा रस्ते मराठों की ओर से उत्तरदायी बने और २० फरवरी, १७८० को इस सन्धि की वैध स्थापना हो गयी। हैदरअली ने किस प्रकार शक्ति तथा उत्साहपूर्वक अपने हाथ में लिया हुआ कार्य पूरा किया, अंग्रेजों के विरुद्ध प्रतिशोध की प्रतिज्ञा की, मद्रास के समीप कई बार उनको घोर रूप से पराजित किया—तत्कालीन इतिहास की ये बातें सर्वविदित हैं, यहाँ पर इनके वर्णन की आवश्यकता नहीं है।[2]

इस विशाल ब्रिटिश-विरोधी संघ का विचार सर्वप्रथम निजामअली को सूझा। १७७९ की ग्रीष्मऋतु में उसने अनेक बार पूना के नाना तथा नागपुर के दिवाकर पण्डित को पत्र लिखकर प्रस्ताव किया कि यदि भारतीय शक्तियाँ अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखना चाहती हैं तो ब्रिटिश आक्रमण के बढ़ते हुए भय का दमन करने का यही उपयुक्त समय है। नाना ने निजामअली के इन पत्रों को प्राप्त करने के बाद अविलम्ब जामगाँव से महादजी तथा वफगाँव से तुकोजी को बुलाया और उनके साथ परामर्श के बाद एक विशाल योजना

---

[2] राजवाड़े, जिल्द १९ में सन्धि के इस विषय पर कृष्णराव जोशी के सम्पूर्ण पत्र हैं। 'सन्धियाँ तथा सहमतियाँ' भी देखो, पृ० ८५। सवाई माधवराव कृत 'पेशवा की दिनचर्या, नं० ३८६। राजवाड़े, जिल्द १०, पृ० २३५ आदि।

का निर्माण इतने गुप्त रूप से किया कि कई महीनों बाद तक भी वारेन हेस्टिंग्ज को इसका कुछ पता न पड़ा। इस शताब्दी के सप्तम दशक में अंग्रेज जब मद्रास तथा बंगाल के स्वामी बन चुके, तब उनको पता चला कि इन दो प्रान्तों के बीच उनके स्वतन्त्र संचार मार्ग के दो मध्य स्थित क्षेत्र बाधा बन रहे हैं—१. उडीसा, जिस पर नागपुर के भोंसले का अधिकार था; २. कृष्णा नदी के दक्षिण में गुण्टुर का जिला, जिस पर निजामअली का अधिकार था। गुण्टुर का जिला उस समय उत्तरी सरकार के नाम से प्रसिद्ध था और अंग्रेजों ने इसे पहले से ही हथिया रखा था; जबकि इस समय यह पूर्वी समुद्र-तटवर्ती रेखा ब्रिटिश सेनाओं के स्वच्छन्द प्रयाण के लिए रणकौशल की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वशाली हो गयी; क्योंकि उन्हें मराठों तथा फ्रांसीसियों के विरुद्ध एक साथ युद्ध करना पड़ रहा था। निजामअली ने गुण्टुर के इस जिले को अपने भाई बसालतजंग को दे दिया था, जिसे मद्रास के गवर्नर रम्बोल्ड ने अपनी ओर मिलाकर यह जिला अंग्रेजों को सौंपने पर विवश कर दिया। अंग्रेजों द्वारा फैलाये इस कपट-प्रपंच के कारण दोनों भाइयों—निजामअली तथा बसालतजंग—में शत्रुता उत्पन्न हो गयी। अपने राज्य के वास्तविक स्वामी के रूप में निजामअली गुण्टुर के इस समर्पण पर अत्यन्त खिन्न हुआ तथा उसने इस कार्य का घोर विरोध किया।

इस ब्रिटिश-विरोधी शक्तिशाली संघ द्वारा उपस्थित संकट को हेस्टिंग्ज समझ गया, उसने गवर्नर रम्बोल्ड को अपदस्थ कर दिया तथा गुण्टुर का जिला निजामअली को वापस कर दिया। इस प्रकार उसने इस संघ के कम से कम एक सदस्य को कम कर दिया, क्योंकि इसके बाद निजामअली सर्वथा उदासीन हो गया। संघ की प्रेरक शक्ति नाना फड़नीस था। केवल उसी को समस्त भारतीय दरबारों से विचित्र रूप से सच्ची खबरें प्राप्त होती थीं। इस कार्य के लिए उसने दिल्ली के सम्राट तथा उसके मन्त्री मिर्जा नजफखाँ की सहानुभूति प्राप्त कर ली थी। मराठों का परम्परागत शत्रु जंजीरा का नवाब सिद्दी भी १५ अप्रैल, १७८० को एक पृथक स्वीकृति द्वारा इस संघ में सम्मिलित हो गया। इसी प्रकार पुर्तगाली तथा फ्रेंच उपनिवेश भी इस संघ में सम्मिलित होने के लिए राजी कर लिये गये। भारत में डच कोठियों के अध्यक्ष वैण्डरग्राफ्ट ने मराठा सहयोग से सूरत पर अधिकार करने की योजना बनायी। इस योजना को प्रगतिशील बनाने के लिए नाना ने गोआ शासन के साथ एक गम्भीर सन्धि पर ३ जून, १७८० को हस्ताक्षर किये। इस संघ को पराजित करने के लिए वारेन हेस्टिंग्ज को जो युद्ध समूह स्वीकार करने पड़े, उनके कारण अंग्रेज लोगों पर आर्थिक

संकट आ पड़ा। इसी संकट ने वारेन हेस्टिग्ज को चेतसिंह तथा अवध की बेगमों पर अत्याचार करने के लिए विवश कर दिया।

७ फरवरी, १७८० को नाना ने हैदरअली को निम्नांकित पत्र लिखा : "अब तो अंग्रेज असह्य रूप से उत्तेजक हो गये हैं। इन पाँच वर्षों में अपने अन्ध आक्रमणों के कारण उन्होंने गम्भीर सहमतियों तथा प्रतिज्ञाओं का उल्लंघन किया है। पहले तो वे इतने आकर्षक स्वर में मधुर शब्दों का उच्चारण करते हैं कि मनुष्य को विश्वास हो जाता है कि इस संसार में वास्तविक आत्मीयता तथा सज्जनता केवल इन लोगों से ही मिल सकती है। परन्तु शीघ्र ही मनुष्य की आँखें खुल जाती हैं। शीघ्र ही उनकी दुष्ट वृत्ति का बोध हो जाता है। वे राज्य के असन्तुष्ट व्यक्ति को अपने पक्ष में करके उसके द्वारा राज्य को नष्ट कर देते हैं। उनका मुख्य नियम है—फूट डालो और अपना उद्देश्य सिद्ध करो। वे अपने स्वार्थ में इस प्रकार अन्धे हो गये हैं कि कभी भी लिखित सहमतियों तथा गम्भीर प्रतिज्ञाओं का पालन नहीं करते। केवल ईश्वर ही उनके नीच षड्यन्त्रों को जान सकता है। उनका संकल्प एक-एक करके पूना, नागपुर, मैसूर तथा हैदराबाद के राज्यों को अपने अधीन कर लेने का है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए उनके पास यही साधन है कि वे एक की सहानुभूति प्राप्त करके दूसरे का दमन कर दें। वे यह अच्छी तरह जानते हैं कि किस उत्तम रूप से भारतीय संगठन का नाश कर सकते है। सकपट भेदभावों को उत्पन्न करने की तथा राज्य की एकता को नष्ट करने की विद्या में वे पारंगत हैं।"[3]

३. नागपुर के भोंसले परिवार का प्रलोभन—निजामअली ने पहले नागपुर के मन्त्री दिवाकर पण्डित को नाना के संघ की योजना स्वीकार करने तथा सहयोग देने के लिए सहमत कर लिया। बाद में नाना तथा महादजी ने आकर भूमि को तैयार करके भोंसले से अपना कार्य शीघ्रतापूर्वक करने तथा ब्रिटिश समृद्धि को पंगु बनाने के लिए बंगाल पर वीरतापूर्वक आक्रमण करने को कहा। भोंसले परिवार ने बंगाल को बहुत पहले ही पददलित करके उस पर चौथ लगा दी थी। परन्तु जब क्लाइव ने सम्राट से उस प्रान्त की दीवानी प्राप्त कर ली तो अंग्रेजों ने भोंसले को चौथ देना बन्द कर दिया। जानोजी तथा उसके भाइयों ने बहुत दिनों तक ब्रिटिश गवर्नरों का ध्यान अपने स्वत्वों की ओर आकृष्ट किया था, परन्तु उनके समस्त प्रयास व्यर्थ सिद्ध हुए थे।[4] मराठा साम्राज्य की अखण्डता के लिए समस्त सदस्य राज्यों के समान रूप से

---

३ राजवाड़े, जिल्द ५६

४ भोंसले-ब्रिटिश सम्बन्धों के इस दुखद अध्याय का सर्वोत्तम अध्ययन ईरानी पंजिका के ग्रन्थों में किया जा सकता है।

प्रयत्न तथा केन्द्रीय शासन के सहयोग से कार्य करने की अपेक्षा थी। पेशवा माधवराव ने भोंसले परिवार को यह शिक्षा एक अतिव्ययी भयानक युद्ध के द्वारा दी तथा कंकपुर की सन्धि द्वारा उनको पूना के राष्ट्रीय शासन की सेवा करने के लिए विवश कर दिया। इस शिक्षा के रचयिताओं—जानोजी तथा माधवराव—का देहान्त होते ही यह शिक्षा भुला दी गयी। बाद में मुधोजी इस सीमा तक बढ़ गया कि उसने वारेन हेस्टिंग्ज से प्रस्ताव किया कि वह उसको इंगलैण्ड के राजा का वशंवद सामन्त स्वीकार कर ले, तो वह पूना शासन के प्रति अपनी निष्ठा त्याग देगा।[४] ब्रिटिश-मराठा युद्ध के प्रथम चरण में वारेन हेस्टिंग्ज ने मुधोजी को विशाल धनराशि तथा दिखावटी प्रतिज्ञाओं द्वारा अपनी ओर मिला लिया। धूर्ततापूर्ण ब्रिटिश कूटनीति के कारण भारतीय शक्तियों के बिखरने का युग आरम्भ हो गया। वारेन हेस्टिंग्ज के प्रति भोंसले परिवार का हृदय सदैव करुणापूर्ण रहा।[५]

नाना फड़निस ने ब्रिटिश-विरोधी संघ का संगठन करके उसके प्रत्येक सदस्य को विभिन्न कार्य सौंप दिये। भोंसले का कार्य बंगाल में अंग्रेजों पर आक्रमण करना था; हैदरअली को मद्रास पर चढ़ाई करनी थी; पूना की सेनाओं का कर्तव्य गुजरात तथा बम्बई के कोंकण प्रान्त में उनका विरोध करना था तथा निजाम पूर्वी समुद्रतट पर उन्हें डराने-धमकाने को नियुक्त किया गया था। तदनुसार एक विशाल तथा सुसज्जित सेना संगठित की गयी और उसने नागपुर से उड़ीसा की ओर प्रयाण किया। इस सेना का नेता मुधोजी का छोटा पुत्र खण्डोजी भोंसले था, जिसको जनसाधारण चिमनाजी कहते थे। वह वीर तथा साहसी पुरुष था। उसको स्पष्ट निर्देश थे कि वह बंगाल पर आक्रमण करे तथा बलपूर्वक पिछली बकाया सहित चौथ वसूल करे परन्तु इस योजना के कार्यान्वित होने से पहले चिमनाजी का बड़ा भाई रघुजी भोंसले, जो नागपुर शासन का नेता था, तथा उसका मायावी मन्त्री दिवाकर पण्डित वारेन हेस्टिंग्ज द्वारा प्रदत्त धन के लालच में आ गये। उन्होंने खण्डोजी को मुख्य उद्देश्य को कार्यान्वित करने से रोक दिया। कम से कम ५० लाख का धन इस हेतु दिया गया जो विभिन्न नामों से प्रसिद्ध है—इसे उपहार, दान, ऋण, सेना-व्यय, घूस चाहे जिस नाम से पुकार सकते हैं। इस प्रकार यह महत्त्वशाली सदस्य इस

बनारस में चेतसिंह के विद्रोह के समय नागपुर राज्य के दो ब्राह्मण राजदूतों—बेनीराम तथा विशम्भर—ने वारेन हेस्टिंग्ज की प्राण-रक्षा की थी। वे उसका भेष परिवर्तन करके अपनी पालकियों तथा नावों में कुशलपूर्वक चुनारगढ़ ले गये। देखो, फोरेस्ट कृत 'इम्पीरियल रेकार्ड्स' (राजकीय पत्र-संग्रह), जिल्द ३१।

संकट-बेला में संघ से हट गया। भोंसले-हेस्टिंग्स सम्बन्धों की कई वर्षों तक चलने वाली कहानी लम्बी है। १७७८ के लगभग अन्त में गोडार्ड नर्मदा के समीप पहुँचा। उसका मुधोजी से प्राय: विचार-विमर्श होता रहा और इस प्रकार वह नदी पार वाले भोंसले प्रदेश में होकर गुजरात का मार्ग प्राप्त करने में सफल हो गया। बदले में मुधोजी को क्या पुरस्कार प्राप्त हुआ, इसका उल्लेख कहीं पर नहीं है। मुधोजी के इस प्रकार के व्यवहार पर नाना बहुत रुष्ट हुआ। उसने रघुजी तथा दिवाकर पण्डित को पूना बुलाकर उनसे चार शक्तियों की मैत्री को अंगीकार तो करा लिया था[६] परन्तु इस प्रतिज्ञा का पालन कभी नहीं हुआ।

चार सदस्यों वाले प्रस्तावित मैत्री संघ से दो सदस्यों के निकलने में भी समय लग गया। इस बीच में जब इस प्रकार के अखिल भारतीय विद्रोह का समाचार प्रथम बार हेस्टिंग्ज को प्राप्त हुआ तो वह कुछ समय तक पूर्णत: किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। कलकत्ते में मराठा दूत लाला सेवकराम ने उस विभीषिका का चित्रोपम वर्णन किया है, जिसने हेस्टिंग्ज तथा उसके सलाहकारों को अभिभूत कर लिया था। सेवकराम लिखता है—"अति व्याकुल होकर हेस्टिंग्ज ने जनरल कूट को तुरन्त अपने सम्मुख बुलाया तथा अवध के नवाब वजीर से बलपूर्वक एक करोड़ अस्सी लाख रुपये छीन लिये। वजीर ने अपनी पगड़ी फर्श पर फेंक दी और तीन दिन तक निराहार रहा। तब हेस्टिंग्ज ने अपनी कौंसिल का अधिवेशन बुलाया तथा उनके सामने सारी परिस्थिति स्पष्ट की। उसने कहा—'मराठा युद्ध में पहले ही पाँच करोड़ रुपये व्यय हो चुके हैं, साथ ही इस समय हमको और भी अधिक धन की आवश्यकता है।' तब उसने कलकत्ते के धनी व्यापारियों को बुलाकर व्यक्तिगत रूप से एक करोड़ रुपये देने के लिए स्वयं विवश किया। इस धन से उसने एक आक्रमणशील सेना को संगठित किया तथा उसे कूट के नेतृत्व में मद्रास भेज दिया। नवम्बर, १७७९ में उसने बेनीराम पण्डित तथा उसके भाई विश्वम्भर को बुलाकर कटक में खण्डोजी भोंसले के समीप निम्नलिखित प्रार्थनाएँ करने भेजा: १. कर्नल पियर्स के अधीन ब्रिटिश सेना को मद्रास जाने के लिए स्वतन्त्र मार्ग देना; २. नागपुर के राजा के साथ मैत्री सम्बन्ध; ३. बंगाल पर आक्रमण स्थगित करना। खण्डोजी के लिए असंख्य सुन्दर उपहार भेजे गये। इनमें एक लाख रुपयों के आभूषण, दो लाख के वस्त्र और चार लाख मोहरें नकद थीं। खण्डोजी को अपनी ओर कर लेने में हार्दिक सहयोग प्राप्त कर लेने के लिए

---

[६] ऐतिहासिक पत्रव्यवहार, पृ० १६८

दोनों दूतों को भी इसी प्रकार उपहार दिये गये। बेनीराम पर हेस्टिंग्ज को पूरा विश्वास था। वह अपने स्वामी तथा पूना सरकार के हितों के विरुद्ध तत्परता से कार्य करता था।"[७]

यदि खण्डोजी को इस प्रकार लुभाकर उसका आयोजित अभियान बीच ही में न रोक दिया जाता तो बंगाल सरलता से पददलित हो सकता था, क्योंकि उस समय वह प्रान्त सेनाविहीन था और आक्रमण करने पर उसे जीतना सहज था। २४ फरवरी, १७८० को खण्डोजी ने शेष धन बाद में चुकाने की प्रतिज्ञा पर विश्वास करके कर्नल पियर्स की सेना को उड़ीसा होकर जाने का स्वतन्त्र मार्ग दे दिया। स्वयं हेस्टिंग्ज लिखता है—"हमने कर्नल पियर्स को आज्ञा दी कि वह प्रयाण करे तथा बरार सरकार से सम्पर्क बनाये रखने के लिए विचारपूर्वक प्रत्येक सावधानी बरते। उसी समय ऐण्डरसन को कटक भेजा गया कि वह चिमनाजी भोंसले को इन आज्ञाओं की सूचना दे दे। कर्नल पियर्स ने सुवर्णरेखा नदी को सुगमतापूर्वक पार कर लिया। चिमनाजी ने मार्ग के विषय में तुरन्त अपनी स्वीकृति भेज दी। उसने कहलाया कि वह उसकी समस्त आवश्यकताओं को पूरा करेगा। यह कार्य उसने पर्याप्त रूप में किया। गंजाम तक अभियान शान्त तथा सुकर रहा। हम सहमत हो गये हैं कि १६ लाख का अनुदान देकर चिमनाजी की सेना के कष्टों को दूर कर दें। चिमनाजी दो हजार सवार देने के लिए सहमत हो गया है। ये कर्नल पियर्स के आज्ञाकारी रहेंगे। उनका वेतन एक लाख रुपये मासिक की दर से हम देंगे। मैंने प्रयत्न किया है कि (मराठा) राज्य की प्राप्ति के लिए मुधोजी की महत्त्वाकांक्षा को जाग्रत कर दिया जाये, परन्तु मुझको आशंका है कि वह अल्पवयस्क पेशवा के विरुद्ध किसी योजना को अंगीकार नहीं करेगा।"[८]

सेवकराम लिखता है—"भोंसले परिवार के दूत बेनीराम पण्डित तथा रघुनाथराव के दूत राजाराम पण्डित ने हेस्टिंग्ज को मराठा प्रदेशों के विजयार्थ युद्ध आरम्भ करने के लिए प्रोत्साहित किया। उसने तुरन्त गोडार्ड को गुजरात के तथा कर्नल पमार को बुन्देलखण्ड के विजयार्थ गोहद के राणा के पास भेज दिया। राणा के पास कर्नल कामक के अधीन एक और दल भी था। समाचार प्राप्त हुआ कि ३० हजार सेना सहित खण्डोजी भोंसले बंगाल आ रहा है। इस सेना द्वारा होने वाली हानि से बचने के लिए बेनीराम ने मुधोजी से खण्डोजी के बंगाल की ओर न बढ़ने के आदेश प्राप्त कर लिये।

७ ऐतिहासिक टिप्पणी, जिल्द २३, जिल्द २०। परराष्ट्रांच्या दरबारांतील मराठे वकील, पृ० ६३-६८

८ ग्लीग कृत 'वारेन हेस्टिंग्ज के संस्मरण', जिल्द २, पृ० ३५८

हैदरअली ने पहले से ही मद्रास में सर्वनाश कर रखा है। यदि इस अवसर पर खण्डोजी ने सहयोग से कार्य किया होता तो ब्रिटिश सत्ता सर्वनाश के समीप पहुँच गयी होती। हेस्टिंग्ज तुरन्त चौथ का शेष धन चुका देता तथा अपनी ओर से शर्तों की माँग करता। इस समय तक ४० लाख से अधिक रुपये भोंसले लोगों को दिये जा चुके थे।"[९] स्वयं मुधोजी ने, जो संघ का प्रतिज्ञा-बद्ध सदस्य था, सर्वप्रथम योजना की अशुभ सूचना हेस्टिंग्ज को दी थी।[१०]

कई योग्य तथा निष्पक्ष लेखकों ने वारेन हेस्टिंग्ज की नीति की कठोर आलोचना की है, परन्तु कुछ ऐसे भी लेखक हैं जो भारत में उसके ब्रिटिश साम्राज्य के प्रथम संस्थापक होने पर उसके साहस तथा उद्योग के अन्ध प्रशंसक हैं। प्रश्न यह है—क्या वही लक्ष्य अधिक सम्मानपूर्ण तथा कम वर्बरता वाले उपायों द्वारा अर्थात मराठों के प्रति ही नहीं, चेतसिंह और अवध के वजीर के प्रति भी वचनों तथा गम्भीर प्रतिज्ञाओं का निष्ठापूर्वक पालन करने के द्वारा प्राप्त नहीं हो सकता था? मराठे आत्मरक्षा के लिए युद्ध कर रहे थे। उनका युद्ध न्याससंगत था और उनका आधार नीतियुक्त था। कार्नवालिस ने, जो किसी प्रकार अपने राष्ट्र की सेवा में हेस्टिंग्ज से कम न था, हेस्टिंग्ज को इस दुष्ट नीति को प्रकट कर दिया। माल्कम तथा अन्य लेखकों ने भी वैसा ही किया है। पी० ई० राबर्ट्स लिखता है—"यह कहने में थार्नटन अधिक उग्र शब्दों का उपयोग नहीं करता है कि इस समय मद्रास के वातावरण में अनैतिकता का संक्रामक रोग प्रतीत होता है। सात वर्षों में दो गवर्नर पदच्युत किये जा चुके हैं तथा तीसरा गवर्नर जनरल द्वारा पदच्युत कर दिया गया है जिसकी मृत्यु कारागार में हुई है। इन स्पष्ट निन्दाओं तथा शासन के सतत परिवर्तनों का स्वाभाविक परिणाम तथा असम्बद्ध नियमहीन नीति है, जिसके कारण मद्रास प्रान्त हैदरअली के विरुद्ध युद्ध में फँस गया है। राघोबा के साथ हमारी मैत्री पर निजाम बहुत दिनों से अत्यन्त अप्रसन्न हो रहा था तथा उसने सक्रिय रूप में भारत की समस्त देशी शक्तियों का भारतीय संघ स्थापित कर लिया। मैसूर, हैदराबाद, पूना, नागपुर सब भारत के ब्रिटिश शासन पर जोरदार आक्रमण करने के विचार से इसमें सम्मिलित हो गये हैं।" लायेल कहता है—"यह हेस्टिंग्ज के ही आचरण थे जिनके कारण भारत में अंग्रेजों की दशा हीन स्थिति को पहुँच गयी थी। ये युद्ध केवल भारतीय शक्तियों की ओर से ही उपस्थित न थे, फ्रांस ने पहले से ही इंगलैण्ड के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी थी

---

[९] ऐतिहासिक टिप्पणी, जिल्द ३-२३

[१०] दिनांक ३० अप्रैल, १७८१ का 'निर्देशक सभा' को हेस्टिंग्ज का वृत्तान्त; फोरेस्ट कृत 'साम्राज्य संग्रह', जिल्द २; ग्लीग, जिल्द २, पृ० ३१४

तथा स्पेन, हॉलैण्ड और उत्तरी अमरीका के राज्यों को अपने साथ मिलाकर एक संघ स्थापित कर लिया था। हैदरअली मराठों के साथ मिल गया था तथा उसने निज़ाम को भी अंग्रेज-विरोधी संघ में घसीट लिया था। साथ ही उसने पश्चिमी समुद्रतट पर फ्रेंच सहयोग के वचन प्राप्त कर लिये थे।"[११]

४. **गुजरात तथा मद्रास में युद्ध**—मराठों के लिए १७८० का वर्ष मेघाच्छादित आकाश के रूप में आरम्भ हुआ। गत ग्रीष्मऋतु में गोडार्ड ने बम्बई के अधिकारियों के साथ परामर्श के बाद निश्चय किया कि वह पहले गुजरात में और उसके बाद उत्तर कोंकण में अभियान का आरम्भ करेगा। बड़ौदा के गायकवाड़ भाइयों के साथ गोडार्ड ने उन्हीं उपायों का उपयोग किया जिनका हेस्टिंग्ज ने मुधोजी भोंसले के साथ किया था। इन प्रयत्नों के सत्य समाचार नाना को प्राप्त हो गये थे तथा उसने महादजी और तुकोजी के साथ परामर्श करके अपनी योजनाओं का निर्माण कर लिया था।[१२] ये दोनों सरदार खानदेश होकर गुजरात की ओर बढ़े तथा उन्होंने मार्ग स्थित कष्टप्रद व्यक्तियों का दमन कर दिया, जैसे कोली, चन्द्रराव पवार तथा अन्य वे व्यक्ति जिनका उल्लेख पहले हो चुका है। नाना ने पेशवा के दो सेनानायकों—गणेश पन्त तथा विसाजी लयाजी अठावले—को होल्कर तथा शिन्दे की सहायता के लिए भेजा। ये पहले से खानदेश में कार्य कर रहे थे तथा वहाँ पर इन्होंने कई लड़ाइयाँ लड़ी थीं। इन्हीं में से एक युद्ध में ऊदाजी का कनिष्ठ पुत्र चन्द्रराव पवार दिसम्बर में मारा गया था। सुलतानपुर का गुलजारखाँ भी (रघुनाथराव का मित्र) पर्याप्त विवश तथा अपराध करने के अयोग्य कर दिया गया था।

दोनों गायकवाड़ बन्धुओं—गोविन्दराव तथा फतेहसिंह—के बीच कलह के कारण फतेहसिंह अंग्रेजों की शरण में चला गया। बड़ौदा की पैतृक सम्पत्ति पर दोनों अपना स्वत्व रखते थे। गोडार्ड ने पूना शासन के विरुद्ध अंग्रेजों का साथ देने पर फतेहसिंह के स्वत्व को मान्यता देने का प्रस्ताव किया। फतेहसिंह का सलाहकार गोविन्द गोपाल काम्टेकर नामक चतुर मनुष्य था। उसने गोडार्ड

---

[११] 'भारत में ब्रिटिश राज्य', पृ० १९५

[१२] इस समय नाना तथा महादजी के सम्बन्धों में घोर कटुता उपस्थित हो गयी थी, क्योंकि अनेक तुच्छ विषयों पर उनको एक-दूसरे पर सन्देह हो गया था। परन्तु सौभाग्यवश वह शीघ्र समाप्त हो गयी। फिर भी इस बीच अभियान योग्य कुछ मूल्यवान मास व्यर्थ नष्ट हो गये।

के साथ सन्धि निश्चित की, जिस पर २६ जनवरी, १७८० को हस्ताक्षर हो गये।[१३]

महादजी शिन्दे तथा नाना दोनों ने फतेहसिंह को उसके द्वारा अपनाये गये मार्ग के दुष्परिणामों की लिखित चेतावनी दी। पूना से नाना ने उसको कुछ कड़े विरोध पत्र भी लिखकर भेजे। इतने पर भी फतेहसिंह ने गोडार्ड का साथ देना ही निश्चित रखा। गोडार्ड ने सूरत से प्रस्थान किया और फतेहसिंह डभई के समीप उसके साथ हो गया। दोनों मिलकर अहमदाबाद की ओर बढ़े। अपने आगमन से तीन दिन के अन्दर ही उन्होंने उस महत्त्वपूर्ण स्थान पर अधिकार कर लिया (१३ फरवरी, १७८०)।

यह जानकर कि शिन्दे तथा होल्कर उनसे युद्ध करने के लिए वेग से बढ़ रहे हैं, गोडार्ड तथा फतेहसिंह ने अपने भारी सामान और तोपखाने को कुशलतापूर्वक सुरक्षा के उद्देश्य से खम्भात भेज दिया तथा पूना की सेना का सामना करने के लिए अहमदाबाद से हल्की तैयारी के साथ बड़ौदा की ओर बढ़े। ८ मार्च, १७८० को अकस्मात फार्मर तथा स्टुअर्ट से भेंट होने के कारण गोडार्ड को बहुत आश्चर्य हुआ। ये दोनों महादजी के स्थान से सहसा उसके शिविर में प्रकट हो गये। ठीक एक वर्ष पहले वे नजरबन्द के रूप में वड़गाँव के स्थान पर समर्पित कर दिये गये थे। इस समय अंग्रेजों को प्रसन्न करने के लिए बुद्धिसंगत उपाय के रूप में महादजी ने उन्हें स्वतन्त्रतापूर्वक वापस होने की आज्ञा दे दी थी। महादजी के इस कार्य से हरेक दिशा में हलचल उत्पन्न हो गयी। नाना को भी यह कष्टदायक सन्देह होने लगा कि कहीं स्वयं महादजी विरोधी पक्ष में सम्मिलित होने वाला तो नहीं है। महादजी ने यह सुचिन्तित तथा चातुर्यपूर्ण उपाय समय प्राप्त करने और यदि सम्भव हो सके तो शान्ति प्रस्तावों द्वारा युद्ध को समाप्त करने के उद्देश्य से किया था; क्योंकि वह तुरन्त शत्रु का सामना करने के लिए तैयार नहीं था। उसे आशा थी कि यदि अभियान किसी प्रकार वर्षाऋतु के आगमन तक खिंच जाये तो वह अन्त में गोडार्ड को पराजित कर देगा। होल्कर ने भी सम्पूर्ण हृदय से महादजी का साथ नहीं दिया। उसने जानबूझकर छल के साथ यह प्रसिद्ध कर दिया कि वह नाना की शक्ति का दमन करने पूना जा रहा है। महादजी को विश्वास हो गया था कि नजरबन्दों को अधिक रोके रखने से कोई लाभ नहीं हो सकता। उनके ही कारण पुराना घाव अब तक बह रह था। जब ये दोनों सज्जन गोडार्ड से मिले तो उन्होंने उसको बताया कि महादजी ने उनके साथ कैसा

---

[१३] फोरेस्ट कृत मराठा ग्रन्थमाला, पृ० ३९४

उत्तम व्यवहार किया था तथा वह अंग्रेज जाति के प्रति किस प्रकार की प्रेम और सम्मान की भावनाएँ रखता है। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि वड़गाँव के काण्ड में वह किस प्रकार उनके प्रति दयालु तथा उपयोगी रहा था। उन्होंने यह भी बताया कि यदि महादजी ने उनकी ओर से सिफारिश न की होती तो उन्हें कितना कठोर अपमान सहन करना पड़ता। महादजी ने गोडार्ड को अपनी सद्भावनाएँ भेजकर सूचित किया कि यदि रघुनाथराव उसके संरक्षण में वापस कर दिया जाये तो वह अविलम्ब युद्ध बन्द कर देगा तथा समस्त कष्ट का अन्त हो जायेगा। गोडार्ड इस प्रार्थना को स्वीकार न कर सका; क्योंकि अपने सम्मानित अतिथि को त्याग देने से अंग्रेजों की कीर्ति कलंकित हो सकती थी। महादजी की इस चाल से कुछ समय तक पूना में नाना क्षुब्ध रहा। जब वे बाद को एक-दूसरे से मिले और उन्होंने परिस्थिति पर स्वयं वार्तालाप किया तो तत्कालीन समस्त रोष दूर हो गया।

फरवरी तथा मार्च के दो महीने तक शान्ति प्रस्ताव चले, परन्तु वे असफल रहे और अप्रैल के आरम्भ में बड़ौदा के समीप लड़ाई शुरू हो गयी। मराठे यथापूर्व ब्रिटिश तोपखाने की मार के बाहर रहते और गुरिल्ला पद्धति के युद्ध की चालों को प्रभावकारी रूप से काम में लाते थे। ३ अप्रैल को ब्रिटिश सेना ने महादजी के शिविर पर अकस्मात धावा किया, परन्तु कोई निर्णायक युद्ध नहीं हुआ। एक मास बाद ३ मई को होल्कर ने घोर युद्ध किया तथा उसको कुछ लाभ भी प्राप्त हुआ। इससे गोडार्ड को विश्वास हो गया कि भागदौड़ की लड़ाई में अपने विरोधियों पर विजय प्राप्त करने की आशा करना व्यर्थ है, क्योंकि इस प्रकार के युद्ध में उसको अपने तोपखाने से प्रभावशाली काम लेने का अवसर नहीं मिल सकता। वर्षाऋतु के आगमन पर गोडार्ड सूरत की ओर वापस जाने को विवश हो गया। मार्ग में उसको घोर कष्ट सहन करना पड़ा। जून में महादजी और तुकोजी मालवा वापस आ गये। गोडार्ड ने अपना शिविर डभई में बनाया तथा पूना के आकस्मिक आक्रमण को रोकने के लिए उसने सोनगढ़ का मार्ग रोक लिया।

जब गुजरात में इस प्रकार का अभियान चल रहा था, मद्रास के समुद्रवर्ती मैदान में आग लगाने तथा जनसंहार करने के संकल्प से हैदरअली की सेनाएँ कर्नाटक के दर्रों से नीचे वाले प्रदेश पर टूट पड़ीं। वे दो वर्ष तक यह कार्य करती रहीं, जिससे आंग्ल-मराठा युद्ध को सर्वथा भिन्न रूप प्राप्त हो गया। महादजी घटना-स्थल पर था। उसको राजनीतिक परिस्थिति की सामान्य गतिविधियों का ज्ञान नाना की अपेक्षा अधिक था। नाना पूना में कार्य करता था और उसको बाह्य पुरुषों तथा घटनाओं का कोई व्यक्तिगत ज्ञान न था।

इस समय भारत में ब्रिटिश सत्ता का अस्तित्व ही संकट में पड़ गया था। हेस्टिंग्ज ने तुरन्त वीरतापूर्वक उपाय किये तथा संकट का सामना करने के लिए तैयार हो गया। युद्ध के समर्थन की आवश्यकता के कारण उस महान शासक को चेतसिंह तथा अवध की बेगमों पर अमानुषिक अत्याचार करने पड़े। नाना अपना ध्यान रघुनाथराव की गतिविधियों तथा षड्यन्त्रों तक ही सीमित रखता था। महादजी को राष्ट्रीय अस्तित्व के व्यापक रूप का बोध था तथा उसने युद्ध में विजय प्राप्त करने के निमित्त उत्तम उपायों की ओर अपने विचार प्रेरित किये।

हेस्टिंग्ज ने वयोवृद्ध सर आयर कूट के नेतृत्व में हैदरअली द्वारा किये जाने वाले सर्वनाश का प्रतिकार करने के लिए समुद्र मार्ग से मद्रास को भारी सैनिक सहायता (कुमुक) भेजी। उसने उसी समय बुन्देलखण्ड तथा मालवा होकर स्थल-मार्ग से नवीन सेनाएँ भेजीं—पहले कैप्टिन पोफम के नेतृत्व में, बाद को कर्नल कामक तथा कर्नल म्यूर के नेतृत्व में। नाना ने महादजी को परामर्श दिया कि वह अपना वर्षाकालीन शिविर बुरहानपुर तथा कोण्डाई के प्रसिद्ध घाट के बीच खानदेश में बनाये। यह घाट धूलिया के पश्चिम में करीब ५० मील पर है तथा इसकी स्थिति उस मार्ग पर है जिस पर सूरत तथा सोनगढ़ से चलकर रघुनाथराव महाराष्ट्र में प्रवेश कर सकता था। महादजी ने नाना के सुझाव का तिरस्कार करके मालवा में वास किया। इस पर नाना अत्यन्त क्रुद्ध हो गया तथा इसके कारण उन दोनों में दीर्घकालीन तथा कटु पत्रव्यवहार आरम्भ हो गया। महादजी ने बल देकर कहा कि वह पूना की रक्षा केवल मालवा से कर सकता है, क्योंकि वहाँ से दक्षिण पर टूट सकने वाली सेनाएँ उसी के प्रान्त में रहकर रोकी जा सकती हैं। उसका आग्रह था कि यदि मालवा हाथ से निकल गया तो मराठा राज्य का अन्त ही हो जायेगा। महादजी के रणकौशल के विस्तृत फन्दों को नाना कभी न समझ सका। महादजी ने नाना को बारम्बार सकेत किया कि इस समय ब्रिटिश नीति का केन्द्र स्थान रघुनाथराव नहीं है, अपितु उनका उद्देश्य सूरत तक बम्बई कोंकण को अधीन करना है, जिससे पश्चिमी समुद्रतट पर भी उनका उसी प्रकार अधिकार हो जाये, जिस प्रकार कि पूर्वी समुद्रतट पर है। उन्होंने पहले ही बड़ौदा के गायकवाड़ और नागपुर के भोंसले को लगभग अपना वशवर्ती शासक बना लिया था। इसी प्रकार सम्राट तथा उसकी राजधानी दिल्ली पर भी नियन्त्रण प्राप्त करने की योजना बना रहे थे। महादजी ने साग्रह कहा कि केवल मालवा में उसकी उपस्थिति से ही भारतीय उपद्वीप को आत्मसात् करने वाला ब्रिटिश घेरा रोका जा सकता है। यह घेरा मराठा स्वाधीनता का भी अन्त कर सकता

है। इस परिस्थिति को नाना के सम्मुख स्पष्ट करने तथा उसको यह विश्वास दिलाने में महादजी को बहुत कष्ट उठाना पड़ा कि यदि वह अपने वर्तमान स्थान को छोड़ देगा तो उसे शत्रु के हाथ की कठपुतली बनना पड़ेगा। उसने नाना को परामर्श दिया कि वह हैदरअली के वीरतापूर्वक डट जाने से साहस ग्रहण करे, भोंसले को पुनः अपने पक्ष में करने का प्रयत्न करे तथा उत्साहित करे और संघ की सफलता के लिए अपनी प्रतिज्ञाओं का पालन करने के लिए निजामअली को प्रोत्साहित करे।

इस समय महादजी ने एक अन्य उत्कृष्ट रूप अपनाया। गोविन्दराव गायकवाड़ उसका मित्र था, जिसको फतेहसिंह ने निकालकर बाहर कर दिया था। महादजी ने उसको धन तथा सेना दी और बड़ौदा पर अधिकार करने के लिए गुजरात भेज दिया। गोविन्दराव को उधर भेज देने से गोडार्ड की योजनाएँ लगभग अस्त-व्यस्त हो गयीं। महादजी ने मुधोजी भोंसले को भी बंगाल में प्रवेश करने की प्रेरणा दी। यदि उस सरदार ने अनुकूल उत्तर दिया होता तो अंग्रेजों के विरुद्ध महादजी की योजनाएँ सफल हो जाने की पूरी सम्भावनाएँ थीं। महादजी का सुझाव था कि यदि ब्रिटिश सत्ता के मूल स्थान कलकत्ता को भयभीत किया जा सके तो शत्रु विवश होकर शरण में आ जायेगा।[१४]

अगस्त में महादजी ने नाना को लिखा—"अपने आज्ञावर्ती दक्षिणी सरदारों की सहायता से आप गुजरात तथा कोंकण की रक्षा का प्रबन्ध अवश्य करें। होल्कर भी आपके साथ है। उसको खानदेश की रक्षा करनी चाहिए। हैदरअली तथा निजामअली को दक्षिण और पूर्व में अपना कार्य पूरा करने के लिए प्रलोभन दिया जाये। इधर मैं बुन्देला सरदारों, सम्राट तथा उसके मन्त्रियों के सहयोग से ब्रिटिश प्रगति का विरोध करूँगा। हम सबको यथाशक्ति प्रयास करना है तथा अपने कर्तव्यपालन में हमको प्रत्येक कष्ट सहन करना है। मुझे निश्चय है कि अपने सहायक बालक पेशवा के सौभाग्य से अन्त में हम इस युद्ध में विजयी होंगे। बहुत तर्क-वितर्क के बाद नाना ने महादजी की रण-योजना को स्वीकार कर लिया। तुकोजी होल्कर से उपयोगी कार्य कराना नाना को अत्यन्त दुष्कर था, क्योंकि स्वयं तुकोजी के सम्बन्ध अहल्याबाई से अच्छे नहीं थे। इस कलहपूर्ण होल्कर परिवार के कारण मराठों के ब्रिटिश-विरोधी प्रयास सदैव विफल होते रहे।

---

[१४] महादजी शिन्दे के ग्वालियर पत्र—विशेषकर जून से सितम्बर १७८० तक, क्रम-संख्या १०७ से ११७ तक।

महादजी तथा हैदरअली ही दो प्रमुख व्यक्ति थे जिन्होंने इस संकटग्रस्त क्षण में ब्रिटिश आक्रमण के विरुद्ध भारतीय परिस्थिति की रक्षा कर ली। १७८० के आरम्भ से ११ मार्च, १७८४ की मंगलोर की सन्धि तक मद्रास के समस्त कर्णाटक प्रदेश पर पहले हैदरअली का तथा ७ दिसम्बर, १७८२ को उसके देहान्त के पश्चात उसके पुत्र टीपू सुल्तान का व्यावहारिक रूप से अधिकार रहा। जून, १७८० में ७० हजार सेना तथा १०० तोपें लेकर हैदरअली अपनी राजधानी से चलकर मद्रास पर टूट पड़ा तथा काँची के मैदान में उसने अनेक प्रसिद्ध ब्रिटिश कमाण्डरों—जैसे मनरो, बेयली तथा फ्लेचर—का सर्वनाश कर दिया और लगभग ७० ब्रिटिश अधिकारियों, ३०० यूरोपीय सिपाहियों, तथा बहुसंख्यक भारतीय सैनिकों को तलवार के घाट उतार दिया। सर आयर कूट बंगाल से समुद्र मार्ग से आया। उसके पास १ करोड़ ३६ लाख रुपयों का विपुल धन था। कर्नल पियर्स स्थल मार्ग से आया। उन्होंने यथाशक्ति कुछ समय तक प्रयास किया कि हैदरअली से युद्ध करें और उसको भगा दें। कूट ने हैदरअली को रण में परास्त कर दिया, परन्तु उसके शीघ्र पश्चात ही उसकी मृत्यु हो जाने से अंग्रेज लोगों की स्थिति निर्बल हो गयी। लगभग चार वर्ष के लम्बे समय तक मैसूर के लोग पूर्वीय कर्णाटक को पददलित तथा भयभीत करते रहे, जिससे लोग वहाँ पर ब्रिटिश राज्य का अन्त समझने लगे। हैदरअली को अपने कार्यों पर इतना गर्व हुआ कि उसने श्रीरंगपट्टन में अपने राजभवन की दीवारों पर अपनी विजयों तथा शत्रुओं की दुर्गति के सुललित दृश्य चित्रित करा दिये जो आज भी देखे जा सकते हैं। जून, १७८१ में इंगलैण्ड से लार्ड मैकार्थे मद्रास का नवीन गवर्नर होकर आ गया तथा उसने खोई हुई स्थिति को शनैः-शनैः पुनः प्राप्त कर लिया।

५. **गोडार्ड की विचित्र असफलता**—१७८० की ग्रीष्मऋतु में जब गोडार्ड गुजरात में व्यस्त था, पूना की सेना की बड़ी-बड़ी टुकड़ियाँ घाटों से उतर आयीं और उन्होंने बम्बई के समीपवर्ती प्रदेश को इस प्रकार नष्ट कर दिया कि वहाँ के अधिकारी बहुत भयभीत हो गये। १७७४ में थाना पर अधिकार के समय से उनको आशा थी कि वे बसई तथा कल्याण सहित बम्बई के समस्त महत्त्वशाली टापुओं को सरलता से विजय कर लेंगे। परन्तु कोंकण के मराठा गवर्नर विसाजी पन्त लेले के समक्ष वे कुछ प्रगति न कर सके। उसने वीरतापूर्वक उन टापुओं की रक्षा की। बम्बई से भारी दबाव पड़ने पर गोडार्ड ने मराठा दबाव को कम करने के लिए ८ मई को बड़ौदा से कर्नल हार्टले को भेजा। पनवेल के समीप पन्से तथा बाजीपन्त जोशी ने हार्टले का विरोध करके उसे भगा दिया। उसे ५०० सैनिकों तथा ५ तोपों

की क्षति उठानी पड़ी। इस प्रकार उस वर्ष कुछ समय तक ब्रिटिश अभियान का कुछ प्रभाव न हुआ तो उनकी थाना स्थित सेना ने अकस्मात् १३ मील उत्तर में स्थित कल्याण के विरुद्ध धावा किया और कोई रक्षा सेना न होने से उस समृद्ध बाजार पर ११ मई को अधिकार कर लिया। यह अंग्रेजों की महान विजय थी। उन्होंने प्रतिशोध की भावना से वहाँ के धनी व्यापारियों को लूट लिया तथा बहुत प्रसन्नचित्त होकर वे लूट का माल बम्बई उठा ले गये। कल्याण की सहायता के लिए एक मराठा दल शीघ्र आ पहुँचा, परन्तु २४ मई को हार्टले ने इसको भी बुरी तरह पराजित कर दिया। अब वर्षा आ पहुँची और दोनों प्रतिद्वन्द्वियों को नयी योजना के लिए अवकाश मिल गया। उनमें किसी की इच्छा इस समय हार मानने अथवा युद्ध बन्द करने की नहीं थी।

अब बम्बई के अधिकारियों ने बसई के विरुद्ध प्रबल प्रयत्न करने का निश्चय किया। मराठों का यह अत्यन्त महत्त्वशाली स्थान बम्बई से उत्तर में मुख्य भूमि पर स्थित था। गोडार्ड को गुजरात से वापस बुलाकर उस स्थान पर धावा करने की आज्ञा दी गयी। वह १६ अक्तूबर को सूरत से चला और अगले मास उसने बसई पर घेरा डाल दिया। समय पर कोई सहायता प्राप्त न हो सकने से वहाँ की सेना पर इतना भारी दबाव पड़ा कि विसाजी पन्त ने १२ सितम्बर को बसई गोडार्ड को सौंप दी। मराठा गर्व पर यह कठोर प्रहार था, क्योंकि बसई उनके पूर्व पराक्रम का जीवित स्मारक था। उत्तर भारत में प्रसिद्धि-प्राप्त मराठा सरदार वीर रामचन्द्र गणेश को आज्ञा हुई कि वह सहायक सेना लेकर बसई पहुँचे। वह अविलम्ब पूना से चल दिया। परन्तु १२ दिसम्बर को प्रातःकालीन कुहरे में अकस्मात् शत्रु की एक गोली लगने से उसका देहान्त हो गया। उस समय उसका शिविर वज्रेश्वरी की पहाड़ी पर था और वह कर्नल हार्टले को जीवित पकड़ लेने का प्रयत्न कर रहा था। उसी दिन बसई का पतन हो गया।

इस घटना से न तो मराठों का साहस क्षीण हुआ और न युद्ध का अन्त ही समीप आया। इस समय भारत में ब्रिटिश-विरोधी प्रबल भावना व्याप्त थी; क्योंकि उन्होंने अधिकांश भारतीय शक्तियों के साथ अन्यायपूर्वक व्यवहार किया था। नाना फड़निस तथा महादजी ने बारम्बार नागपुर के भोंसले परिवार को कार्यशील होने की प्रेरणा दी, परन्तु ब्रिटिश धन ने उनको अकर्मण्य बना दिया। इस प्रकार एक स्वर्ण अवसर हाथ से जाता रहा, क्योंकि यदि भोंसले परिवार इस प्रकार का प्रयास करता तो महादजी स्वयं उनके समर्थन के लिए बुन्देलखण्ड से बंगाल में प्रवेश करने के लिए अधीर हो रहा था। परन्तु नागपुर

के मुख्य आधार दिवाकर पण्डित का १६ जुलाई, १७८१ को देहान्त हो गया तथा उस दिशा में समस्त कार्य स्तब्ध हो गया। भोंसले लोग अपनी पूर्व महत्ता पुनः कभी प्राप्त नहीं कर सके।

बसई पर अधिकार करने के बाद बम्बई के अधिकारियों ने दो वर्ष पहले के समान बोरघाट होकर मराठा राजधानी पर पुनः आक्रमण करने का निश्चय किया। इस कार्य के लिए उन्होंने अपने योग्यतम सेनापतियों गोडार्ड तथा हार्टले को चुना। हरिपन्त फड़के तथा पटवर्धन परिवार ने पूना से अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध के निमित्त प्रयाण किया। बंगाल दल को आगे बढ़ने से रोकने के लिए महादजी मालवा में रहा तथा उत्तर कोंकण में पूना की सेना की सहायतार्थ तुकोजी होल्कर ने खानदेश होकर प्रयाण किया। जनवरी के अन्त में वह खण्डाला के दर्रे से गोडार्ड का सामना करने के लिए बढ़ा। परशुराम भाऊ ने अविलम्ब उसका अनुसरण किया। ६ फरवरी, १७८१ को गोडार्ड घाटों के ऊपर पहुँच गया तथा १५ अप्रैल तक २ महीने बराबर खण्डाला में डटा रहा।

परशुराम भाऊ, हरिपन्त तथा तुकोजी ने समीपवर्ती भूमि तथा शत्रु-दल के स्थान की गवेषणा करके अपनी चिरअभ्यस्त गुरिल्ला पद्धति द्वारा शत्रु को निकालने की योजना बनायी। पूना तथा पनवेल के बीच का प्रदेश एक बार पुनः इस प्रकार विनष्ट कर दिया गया कि शत्रु को कोई सामग्री प्राप्त न हो सकी और गोडार्ड खण्डाला के आगे प्रगति न कर सका। फरवरी से अप्रैल तक घाटों के नीचे तीन महीने तक लगातार झड़पें होती रहीं जिनमें मराठों ने अनेक बार शत्रु को परास्त किया। उन्होंने शत्रु की बहुत हानि की और बहुत-सा माल लूट लिया। बम्बई से शीघ्रतापूर्वक सहायक सेनाएँ (कुमुक) भेजी गयीं; परन्तु वे पनवेल से आगे बढ़ते ही तितर-बितर कर दी गयीं। जब गोडार्ड को पता चला कि अन्य ब्रिटिश ठिकानों से उसका सम्बन्ध-विच्छेद हो गया है तो उसे पूना की ओर सफल प्रगति की आशा न रही। वह बम्बई को वापस हुआ तथा इस प्रतियात्रा में उसको भारी हानि एवं कष्टों का सामना करना पड़ा। १७७९ के पहले अभियान के समान इस अभियान में अंग्रेजों के १९ अधिकारी तथा ३ हजार सैनिक मारे गये अथवा घायल हो गये। उनकी ५ हजार बन्दूकों की भी हानि हुई। बम्बई का एक समाचार-पत्र ५ मई को लिखता है—"अंग्रेजों ने कभी पहले इस प्रकार के पराभव का अनुभव नहीं किया था। समस्त बम्बई प्रत्यक्ष उपहास द्वारा इस कृत्य की निन्दा करता है। वस्तुओं के दाम भयानक रूप से बढ़ गये हैं तथा समस्त प्रान्त में दुर्भिक्ष फैल गया है। अधिकांश साहूकारों और व्यापारियों का दिवाला

निकल गया है तथा देश लगभग जनहीन हो गया है। जो भी लोग बच गये हैं, उनके पास खाने को अन्न नहीं है। बम्बई की दशा अत्यन्त शोचनीय है तथा यहाँ के अधिकारी उन शर्तों की याचना कर रहे हैं जो मराठे उन पर लगाना चाहें।"[१५]

गोडार्ड के साहसिक कार्य की इस असफलता से अंग्रेज अत्यन्त हतोत्साह हो गये। वह उनका योग्यतम सेनापति था और गोला-बारूद, युद्ध-सामग्री तथा कार्यदक्ष तोपखाने द्वारा सुसज्जित था। उसके तीन वर्षों के अभियान पर कम्पनी को अपने कोष से सवा तीन करोड़ रुपये व्यय करने पड़े थे।

६. मालवा में महादजी की स्थिति दृढ़—गोडार्ड ने जब १७७८ में मध्य भारत से अपना प्रथम प्रयाण किया, तभी उसने हेस्टिंग्ज को इस प्रकार का वृत्तान्त भेजा था कि जब तक मालवा में मराठों का बल क्षीण नहीं कर दिया जायेगा, पश्चिमी भारत में युद्ध का अन्त नहीं होगा। इस सुझाव पर हेस्टिंग्ज ने पोफम को सुसज्जित तोपखाने सहित लगभग २५०० सैनिकों के साथ भेजा। गोहद के राणा को, जो बहुत दिनों से मराठों के अधीन था, अब हेस्टिंग्ज ने अपने पक्ष में कर लिया। पहले उसके अधिकार में ग्वालियर तथा गोहद के दो सामरिक महत्त्व के गढ़ थे जो मालवा तथा बुन्देलखण्ड में महादजी की शक्ति के आधार थे। जब महादजी का शिविर उज्जैन में था तो हेस्टिंग्ज ने पोफम को राणा की सहायता के लिए भेजा तथा दोनों ने ग्वालियर पर अकस्मात् धावा करके ४ अगस्त, १७८० को उस ऐतिहासिक गढ़ पर अधिकार कर लिया। महादजी इस गढ़ की रक्षा का कोई उपाय न कर सका। दुर्ग अजेय माना जाता था, परन्तु महादजी की सेवा में रहने वाले सरूपचन्द गुप्त नामक एक व्यक्ति ने विश्वासघात करके गोडार्ड को गढ़ के भीतर जाने वाला गुप्त मार्ग बता दिया, जिसमें होकर ब्रिटिश सेनाएँ बिना किसी कष्ट के उसमें प्रविष्ट हो गयीं। महादजी के विश्वस्त सेनापति अम्बूजी इंग्ले ने वीरतापूर्वक उस स्थान की रक्षा की, परन्तु किलेदार रघुनाथ रामचन्द्र मारा गया, उसके परिवार के अनेक व्यक्तियों ने अपने सम्मान की रक्षा के लिए आत्महत्या कर ली तथा अम्बूजी गढ़ का समर्पण करने पर विवश हो गया बदले में उसको तथा उसके परिवार को सकुशल जाने की आज्ञा मिल गयी। कुछ और सरदार, जो मराठा शासन से असन्तुष्ट थे, अंग्रेज लोगों के साथ हो

---

[१५] इतिहास संग्रह, ऐतिहासिक टिप्पणी, जिल्द ३-१८ तथा २८, पत्रे यादी ३२७; खरे, २६२०, २६२३, २६२५, २६३४ मराठों की क्षतियों की सविस्तार सूचियाँ देते हैं जिनसे सिद्ध होता है कि मराठा सरकार इस प्रकार के वृत्तान्तों की ओर ध्यान देती थी। डाडवेल, हेस्टिंग्ज के पत्र, पृ० १४२

गये। इस प्रकार शत्रु ने स्वयं महादजी पर आक्रमण करने के विचार से दक्षिण की ओर आन्तरी तथा सीपरी नामक स्थानों को प्रयाण किया। हेस्टिंग्ज ने तुरन्त कर्नल कामक को पोफम की सहायता के लिए भेज दिया। उसने कालपी पर यमुना को पार किया तथा फरवरी, १७८१ में सीधा सिरोंज पहुँच गया। इस स्थान पर भोपाल के नवाब का अधिकार था। वह मराठों का अधीनस्थ सामन्त तो था, परन्तु उनका पक्षत्याग कर अंग्रेजों से मिलने के लिए तैयार था। महादजी ने अम्बूजी इंग्ले तथा खाँडेराव हरि को बढ़ते हुए ब्रिटिश लोगों से युद्ध करने के लिए भेजा और वह स्वयं भेलसा के समीप कामक का सामना करने के लिए ठहर गया। थोड़े ही समय में उसने कामक के छोटे दल को इस प्रकार पीड़ित कर दिया कि वह महादपुर की ओर पीछे हट गया। वहाँ पर अपनी युद्ध-सामग्री को पूरा करके उसने २४ मार्च को सहसा महादजी पर आक्रमण करके उसे बुरी तरह परास्त कर दिया और कुछ समय तक महादजी की स्थिति अनिश्चित कर दी, क्योंकि ४ अप्रैल को कर्नल म्यूर की अधीनता में कामक के पास अधिक सहायक सेना (कुमुक) पहुँच गयी थी। ऐसा मालूम होता था कि मध्य भारत में मराठा शासन का अन्त होने वाला है।

इस प्रकार जब १७८१ के ग्रीष्म में पूना की सेनाएँ पनवेल तथा कल्याण के मध्यवर्ती क्षेत्र में गोडार्ड को परास्त कर रही थीं, तब महादजी मालवा में घोर युद्ध कर रहा था। उस समय वह उत्सुकतापूर्वक वर्षाऋतु के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा था जबकि युद्ध में विराम उपस्थित हो जाना अनिवार्य है। उसकी साग्रह प्रार्थना पर अहल्याबाई ने इन्दौर से उसको कुछ सहायता भेजी और बलवन्तराव ढोंडदेव के अधीन पूना से भी एक दल आ पहुँचा। इस प्रकार महादजी ने अपनी स्थिति सँभाल ली तथा नाना को लिखा कि किसी भी कारण से वह गोडार्ड से शान्ति की शर्तों की याचना न करे। अब उसने वीरतापूर्वक आक्रमणात्मक युद्ध आरम्भ किया और अन्न तथा विश्राम की साधारण सुविधाएँ प्राप्त किये बिना दिन-रात परिश्रम किया। १ जुलाई को सीपरी के समीप उसने कर्नल म्यूर को बुरी तरह पराजित कर दिया और अपना शिविर झाँसी के समीप उस स्थान पर स्थापित किया जिसको बूढ़ा पहाड़ कहते हैं। कर्नल म्यूर ने अपना शिविर सीपरी में डाला। इन दोनों स्थानों के बीच में ४० मील से अधिक अन्तर नहीं है।

ब्रिटिश परिस्थिति के विषय में वारेन हेस्टिंग्ज अत्यन्त भयभीत हो गया था। उसकी उत्कट इच्छा थी कि वह मराठा युद्ध को समाप्त करके अपनी समस्त शक्ति हैदरअली पर केन्द्रित कर दे। अपनी कौंसिल में हेस्टिंग्ज को कड़ा विरोध सहन करना पड़ता था। जब उसे सिरोंज के समीप कर्नल

कामक की पराजय का समाचार मिला तो उसने मराठों से सन्धि करने के लिए एक साथ अनेक दिशाओं में प्रयास किये। इसी उद्देश्य से उसने नागपुर के भोंसले से प्रार्थना की, पूना मन्त्रिमण्डल का रुख जानने के लिए गोडार्ड को आदेश दिया तथा बुन्देलखण्ड में कर्नल म्यूर से उसने कहा कि वह महादजी के विचारों का पता लगाये। इन एक साथ किये हुए प्रयासों की प्रतिक्रिया ब्रिटिश नीति के लिए दुःखजनक सिद्ध हुई। पूना की सरकार हैदरअली के साथ संघ की पवित्र प्रतिज्ञा द्वारा किसी भी कारणवश अलग सन्धि न करने के लिए और प्रत्येक प्रयास में सम्मिलित रूप से कार्य करने को बाध्य थी। वास्तव में यह प्रतिज्ञा शान्ति के मार्ग में मुख्य बाधा थी, अन्यथा इसके लिए मराठे भी उतने ही उत्सुक थे जितना कि स्वयं वारेन हेस्टिंग्ज।

७. **सालबई की सन्धि**—जब १७८१ की ग्रीष्मऋतु में हेस्टिंग्ज को ये समाचार प्राप्त हुए कि गोडार्ड कोंकण अभियान में बुरी तरह हार गया है और पेशवा के साथ बातचीत द्वारा शान्ति स्थापना में मुधोजी असफल हो गया है तो वह अत्यन्त व्याकुल हो उठा तथा उसको धनाभाव का बहुत कष्ट हुआ। वह अगस्त में दो उद्देश्यों से बनारस गया—चेतसिंह से बलपूर्वक कुछ धन प्राप्त करे तथा महादजी के साथ प्रत्यक्ष सन्धि प्रस्ताव प्रारम्भ करे अथवा यदि सम्भव हो सके तो स्वयं उससे भेंट करे। इसी उद्देश्य से उसने नागपुर से दिवाकर पण्डित को बनारस बुलाया, परन्तु वह यह जानकर हताश हो गया कि ठीक उसी समय दिवाकर का देहान्त हो गया।

चेतसिंह के विद्रोह से हेस्टिंग्ज की निराशा और भी बढ़ गयी। इसके कारण वह वैयक्तिक रूप से संकट में पड़ गया। अपनी घोर आवश्यकता में उसने कर्नल म्यूर को स्मरण किया, जिसका शिविर उस समय बुन्देलखण्ड में महादजी के समीप ही था। उसने कर्नल म्यूर से यह पता लगाने का प्रयत्न करने को कहा कि महादजी को समझौता करने का प्रलोभन दिया जा सकता है या नहीं। गत सात वर्षों के सतत कष्टप्रद अभियान तथा चिन्ताजनक युद्ध से बिना अपमान के मुक्त होने की चिन्ता महादजी को भी कुछ कम न थी। अगस्त में चतुर मध्यस्थों—सम्भवतः फार्मर तथा स्टुअर्ट—द्वारा कर्नल म्यूर को पता लग गया कि महादजी शान्ति प्रस्ताव के लिए इस शर्त पर तैयार है कि साल्सेट, बसई तथा बम्बई के समीप के अन्य टापू मराठा सरकार को वापस कर दिये जायें और गोहद के राणा को पुनः उसका विश्वासपात्र बनने पर विवश कर दिया जाये। म्यूर तुरन्त इस प्रस्ताव से सहमत हो गया, परन्तु उसने वचन लिया कि राणा के पिछले आचरण के कारण प्रतिशोध की भावना से उसके साथ दुर्व्यवहार न किया जाये। यह मामला बनारस में

गवर्नर जनरल के पास भेज दिया गया तथा म्यूर और महादजी के बीच १३ अक्तूबर, १७८१ को एक प्रकार की विराम सन्धि स्थापित हो गयी। शर्तें ये थीं :

१. म्यूर तथा महादजी दोनों युद्ध बन्द कर दें।

२. एक सप्ताह के भीतर दोनों प्रतिद्वन्द्वी अपने मुख्य स्थानों को वापस चले जायें—म्यूर यमुना पार तथा महादजी उज्जैन को।

३. महादजी पहले अंग्रेजों तथा पूना शासन के बीच और बाद को ब्रिटिश लोगों तथा हैदरअली के बीच मध्यस्थ बनकर शान्ति स्थापित करने का प्रयत्न करे।

४. बुन्देलखण्ड में अंग्रेजों द्वारा विजित प्रदेश, उन शासकों के साथ मराठों को वापस कर दिया जाये जो अंग्रेजों से मिल गये हैं।

इनके अतिरिक्त महादजी ने म्यूर तथा हेस्टिंग्ज को यह भी स्पष्ट कर दिया कि उत्तर भारत, विशेषकर सम्राट सम्बन्धी विषयों के प्रबन्ध का उसको सर्वथा स्वतन्त्र अधिकार प्राप्त है। हेस्टिंग्ज ने अविलम्ब उन सब धाराओं को स्वीकार कर लिया जो महादजी ने उपस्थित कीं। इस प्रकार स्थायी रूप से सन्धि के लिए मार्ग बन गया।

हेस्टिंग्ज जानबूझकर बनारस में बहुत दिनों तक ठहरा रहा तथा म्यूर ने उसको और बम्बई में गोडार्ड को सूचना भेज दी कि विराम सन्धि और उसकी शर्तें निश्चित हो गयी हैं तथा उस क्षेत्र में युद्ध बन्द हो गया है। इस समाचार से हेस्टिंग्ज का हृदय प्रफुल्लित हो गया। २० अक्तूबर को म्यूर ने हेस्टिंग्ज को लिखा कि अगले दिन विराम सन्धि के अनुसार वह यमुना पार करने जा रहा है। हेस्टिंग्ज ने यह समाचार कलकत्ता, बम्बई तथा यूरोप को भी भेज दिया। उसने विभिन्न अंग्रेज कमाण्डरों तथा प्रान्तों को आज्ञाएँ भेज दीं कि वे मराठों के विरुद्ध युद्ध की गतिविधि सर्वथा बन्द कर दें। इससे हैदरअली के सम्बन्ध में नाना फड़निस की स्थिति बिगड़ गयी, क्योंकि इस प्रकार चार शक्तियों के संघ की प्रथम धारा का उल्लंघन हो गया था। हैदरअली की मृत्यु के समय तक, जो ७ दिसम्बर, १७८२ को हुई, नाना ने सालबई की सन्धि पर हस्ताक्षर नहीं किये। वरन् नाना ने महादजी को परामर्श दिया कि वह अपनी सेना तथा तैयारियों को समाप्त न करे, क्योंकि किसी भी क्षण युद्ध पुनः आरम्भ हो सकता है। एक विशाल फ्रेंच नौ-समूह सुप्रसिद्ध ऐडमिरल सर्फ़ के अधीन यूरोप से १७८१ के आरम्भ में प्रस्थान कर चुका था। इसका उद्देश्य था कि वह हैदरअली की सहायता करे तथा उसके द्वारा कारोमण्डल तट पर अंग्रेजी शक्ति का सर्वनाश कर दे। सर्फ़ के आगमन

में विलम्ब तथा हैदरअली की आकस्मिक मृत्यु के कारण फ्रेंच लोगों का आक्रमण विफल हो गया। मद्रास की परिस्थिति उस समय किस प्रकार संकटग्रस्त थी, इसका ज्ञान मद्रास की सेलेक्ट कमेटी के उस पत्र से हो सकता है जो उसने २२ मार्च, १७८२ को हेस्टिंग्ज के पास भेजा था। इसमें कमेटी के सदस्यों ने कहा—"मराठों के साथ शान्ति हमारे लिये अत्यन्त आवश्यक हो गयी है। यदि इसका निश्चय शीघ्र नहीं हुआ तो इस समुद्रतट पर ब्रिटिश हितों के लिए घातक परिणामों की आशंका करने के पर्याप्त कारण हो जायेंगे।"[१६]

इस युद्ध की प्रगति के लिए एक अनपेक्षित दिशा से भी जटिलता उपस्थित हो गयी। जब ब्रिटिश सेनापति सर आयर कूट तथा भारत में ब्रिटिश नौ-समूह का अध्यक्ष उनका ऐडमिरल ह्यूग्स दक्षिणी प्रान्त में ब्रिटिश सत्ता की रक्षा का यथाशक्ति प्रयत्न कर रहे थे, तभी जून, १७८१ में लार्ड मैकार्टने का आगमन मद्रास में हुआ। वह मद्रास का नवनियुक्त गवर्नर था। उसके साथ ही सर जान मैक्फर्सन आया जो ठीक उसी समय गवर्नर जनरल की कौंसिल का सदस्य नियुक्त हुआ था। इन दोनों महत्वशाली अधिकारियों को यूरोप की राजनीतिक परिस्थिति तथा ब्रिटिश-फ्रेंच युद्ध का वास्तविक ज्ञान था। मद्रास आते ही इन्होंने अविलम्ब कूट तथा ह्यूग्स के साथ परामर्श किया और वे इस निश्चय पर पहुँचे कि वारेन हेस्टिंग्ज की भ्रान्त नीति के कारण भारत में ब्रिटिश सत्ता को धन, जन तथा गौरव की महान क्षति हुई है। उन्होंने निःशंक होकर साधारण वैधानिक रीति का त्याग करके सीधे पेशवा को पत्र लिखा और युद्ध को समाप्त करने का प्रस्ताव किया। यह पत्र मद्रास से ११ सितम्बर, १७८१ को लिखा गया। उसका आशय यह है :

"अभी-अभी आज्ञाएँ प्राप्त हुई हैं। ये केवल कम्पनी की ओर से नहीं, ग्रेट ब्रिटेन के राजा की ओर से हैं। ये उस समय दी गयी थीं जब इंगलैण्ड में जनरल गोडार्ड की विजयों के समाचार प्राप्त हुए थे और जब वकील लोग राजा तथा कम्पनी के पास रघुनाथराव के पत्र लाये थे जिनमें अनेक उपहारों के प्रस्ताव थे। इन आज्ञाओं का सार यह है कि भारत में उनके सेवकों का उद्देश्य नवीन विजय नहीं होना चाहिए। उनको भारत की समस्त शक्तियों के साथ शान्ति तथा प्रेमपूर्वक रहना चाहिए। इस बुद्धिसंगत नीति के उल्लंघन पर इस प्रकार प्रबल रोष प्रकट हुआ कि हम चारों को उक्त आज्ञाएँ स्पष्ट रूप से दी गयी हैं और हम सम्मिलित रूप से यह पत्र उन आज्ञाओं का पालन करने के उद्देश्य से लिख रहे हैं कि आपके शासन के साथ तुरन्त शान्ति

---

[१६] डाडवेल कृत 'वारेन हेस्टिंग्ज के पत्र', पृ० ११७

तथा मित्रता की सन्धि स्थापित की जाये। इंगलैण्ड का राजा तथा संसद इसे प्रमाणित करेगी। भारत स्थित कम्पनी का कोई भी सेवक इसमें परिवर्तन नहीं कर सकेगा। हमने जनरल गोडार्ड तथा बम्बई प्रान्त को कम्पनी की आज्ञाएँ भेज दी हैं कि आपके विरुद्ध युद्ध सम्बन्धी समस्त गतिविधि बन्द कर दी जाये। हमको सन्देह नहीं है कि आप अपने विरुद्ध युद्ध बन्द करने का आदेश देंगे। कृपया स्थायी मैत्री के निमित्त आप अपनी इच्छानुसार विशेष शर्तें गवर्नर जनरल तथा उसकी कौंसिल को अविलम्ब लिखें। इस पत्र द्वारा हम अपनी ही नहीं, कौंसिल स्थित गवर्नर जनरल, कम्पनी तथा राजा का भी सम्मान बन्धक रखते हैं कि सत्यतापूर्ण तथा दृढ़ सन्धि द्वारा आपको प्रत्येक न्यायसंगत सन्तोष दिया जायेगा। इन आश्वासनों के बाद आपको केवल शान्ति या युद्ध में से एक को चुनने की बात रह जाती है। यदि स्थायी शान्ति में आप हमारा साथ देते हैं तो आप उन समस्त लाभों का उपभोग करेंगे जो हमारी मित्रता इच्छा तथा सामर्थ्य के अनुसार आपको प्रस्तुत कर सकेगी। ईश्वर से प्रार्थना है कि वह आपको न्यायसंगत तथा उचित मार्ग अपनाने की प्रेरणा दे।"[१७]

इस प्रकार इस समय शान्ति का प्रयास करने वाले तीन-चार साधन उपलब्ध थे—१. कैप्टिन म्यूर तथा महादजी के द्वारा हेस्टिंग्ज; २. हेस्टिंग्ज की पुरानी आज्ञानुसार कार्यशील मुधोजी भोंसले; ३. जनरल गोडार्ड का विश्वस्त दूत कैप्टिन वाटरस्टोन जिसको उसने पूना भेजा था और जो सीधे नाना फड़निस से मिला था; ४. मद्रास का उक्त पत्र जिसकी मध्यस्थता अर्काट का नवाबअली कर रहा था। नाना इन समस्त प्रयासों का अभिप्राय अच्छी तरह समझता था। उसने अंग्रेजों की अव्यवस्थित परिस्थिति से अधिकतम लाभ उठाने का प्रयत्न किया, क्योंकि अंग्रेज लोग अधिक हानि से बचने के लिए अधीर हो उठे थे। उसने महादजी से कहा कि वह डटा रहे तथा इस आधार पर सन्धि प्रस्तावों को खींचता रहे कि हैदरअली के साथ परामर्श किये बिना कोई पृथक शान्ति स्थापित नहीं की जा सकती। मैसूर के इस शासक (हैदरअली) को शान्ति की कोई इच्छा नहीं थी। उसको आशा थी कि फ्रेंच नौ-सेना किसी क्षण पहुँच जायेगी तथा वह प्रायद्वीप से ब्रिटिश सत्ता का अन्तिम रूप से सर्वनाश कर देगा। उसके अधिकार में पहले से ही विशाल भू-क्षेत्र था जिसे वह छोड़ना नहीं चाहता था। बनारस में ठहरे हुए हेस्टिंग्ज को यह सब स्पष्ट था। इसीलिए उसने महादजी के साथ अपरिवर्तनीय सन्धि स्थापित करने में

[१७] फोरेस्ट कृत मराठा ग्रन्थमाला, पृ० ४६१; ऐतिहासिक टिप्पणी, जिल्द ३-४३, जिल्द ४-१६; इतिहास संग्रह, चिनापट्टनचीं राजकरणें।

एक क्षण का भी विलम्ब नहीं किया। इस कार्य के लिए वह बनारस में बहुत दिनों तक ठहरा रहा तथा उसने अपने व्यक्तिगत दूत डेविड ऐण्डर्सन को पूर्ण अधिकार सहित भेजा कि वह म्यूर की विराम सन्धि के आधार पर अविलम्ब शर्तों का निश्चय कर ले। स्वयं हेस्टिंग्ज व्यक्तिगत रूप में महादजी शिन्दे से भेंट करके अपने निपुण कूटनीतिक चातुर्य और प्रलोभन द्वारा उस शक्तिशाली सरदार को संघ से पृथक कर देना चाहता था, जिससे हैदरअली अकेला रह जाये। हेस्टिंग्ज ने ऐण्डर्सन से कहा कि वह दोआब में फर्रुखाबाद के समीप किसी स्थान पर महादजी के साथ उसकी भेंट का प्रबन्ध करे, क्योंकि बुन्देलखण्ड स्थित महादजी के शिविर में स्वयं जाना उसके लिए अपमानजनक होगा। महादजी इन सूत्रों के बल का अनुमान करते हुए व्यक्तिगत भेंट से कतराता रहा और उसने नाना के परामर्श से कार्य किया। १४ दिसम्बर, १७८१ को भगोड़ा चेतसिंह महादजी के पास आया। एक सप्ताह बाद उसे सूचना मिली कि गवर्नर जनरल के व्यक्तिगत दूत के रूप में ऐण्डर्सन का प्रतिनिधि मण्डल आ रहा है। ऐण्डर्सन के महादजी से मिलने के पहले ही ब्रिटिश दूत ने चेतसिंह को निकाल दिये जाने की माँग रखी, क्योंकि वह ब्रिटिश सरकार का शत्रु था। महादजी ने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया कि चेतसिंह को निकाला नहीं जा सकता; यदि किसी कारण ऐण्डर्सन उससे नहीं मिलना चाहता तो वह अपनी इच्छा से वापस जा सकता है और भेंट करना छोड़ सकता है। इस नम्र भर्त्सना का अभीष्ट परिणाम हुआ; क्योंकि ऐण्डर्सन के पास दूसरा कोई मार्ग नहीं था। वह २३ दिसम्बर, १७८१ को प्रथम बार महादजी से मिला।

हेस्टिंग्ज को निश्चय नहीं था कि ऐण्डर्सन अपने ध्येय में सफल हो सकेगा। उसको भय था कि नाना और हैदरअली उसकी शान्ति योजना भंग कर देंगे। अतः द्वितीय उपाय के रूप में उसने पहले से ही बेनीराम तथा विश्वम्भर दोनों भाइयों को बनारस बुला लिया था। ये नागपुर के वकील थे और हेस्टिंग्ज की आज्ञाओं के पालनार्थ सदैव प्रस्तुत रहते थे। हेस्टिंग्ज ने इन्हें एक लाख रुपया नकद तथा २५ हजार रुपया वार्षिक आय की स्थायी जागीर इनाम में दी।[१८] बाद में उन्हें पूना सरकार से सन्धि की प्रार्थना करने के लिए मुधोजी के पास नागपुर भेजा। इन दोनों के कार्य पर निगाह रखने के लिए उसने अपना व्यक्तिगत दूत चैपमैन नागपुर भेजा। बनारस, कलकत्ता, मद्रास, बम्बई

---

[१८] यह माना जाता है कि इस समय तक वही परिवार उस जागीर का उपयोग कर रहा है। सालबई की सन्धि के इस दीर्घ आख्यान में हेस्टिंग्ज के चरित्र के उजले तथा मैले पक्ष पूर्णतः विद्यमान हैं।

तथा पूना के बीच अनेक दूत विभिन्न दिशाओं में एक साथ कार्यरत होने के कारण अत्यन्त जटिलता, चिन्ता तथा विलम्ब उपस्थित हो गया। ऐण्डर्सन योग्य कूटनीतिज्ञ था। उसने १७८२ के आरम्भिक मासों में अपने प्रशंसनीय चातुर्य तथा सावधानीपूर्वक अपना ध्येय पूरा कर लिया। नाना ने सभी विषयों की चर्चा का स्थान पूना बदलने का प्रयत्न किया। पूना में वेदरस्टोन ने पहले ही कुछ शर्तों का प्रस्ताव कर दिया था। उसने महादजी को ऐण्डर्सन के साथ पूना आकर अल्पवयस्क पेशवा के विवाहोत्सव में भाग लेने को कहा। नाना ने इस समय इस संस्कार का प्रस्ताव समस्त प्रमुख मराठा सरदारों के अतिरिक्त निजामअली तथा हैदरअली को भी विशेष निमन्त्रण पर बुलाने और भरी सभा में सन्धि का निश्चय करने के विचार से किया। हैदरअली सदैव नाना को पृथक सन्धि के विरुद्ध चेतावनी देता रहता था। अतः नाना की योजना समस्त भारतीय शासकों पर उन्नतशील पेशवा की छत्रछाया में बढ़ रहे मराठा राज्य की शक्ति तथा वैभव का प्रभाव डालने की थी।

नाना की योजना में भी शक्ति थी, परन्तु महादजी ने एक भिन्न शक्तिशाली विचार रखा कि जब तक अन्तिम रूप से शान्ति का निश्चय न हो जाये, तब तक युद्ध के लिए एकत्र विशाल सेनाओं का विसर्जन न किया जाये। इलाहाबाद के समीप अंग्रेजों की स्थिति सुदृढ़ थी तथा उत्तर के अनेक सरदार मराठा स्थिति में किसी भी प्रकार की निर्बलता के प्रवेश से लाभ उठाने को तैयार थे। सन्धि प्रस्तावों के लिए वारेन हेस्टिंग्ज से बारम्बार निर्देश प्राप्त करना आवश्यक था। उसने बनारस के समीप अपने को सुदृढ़ कर लिया था तथा युद्ध या शान्ति का अन्तिम निर्णय इस समय भी उसके अधिकार में था। इस परिस्थिति में महादजी ने पूना जाने से इनकार कर दिया। उसने कहा कि सम्भवतः पूना के विवाह संस्कार के शान्ति तथा आमोद-प्रमोदपूर्ण वातावरण की अपेक्षा वह उत्तर के सैनिक वायुमण्डल में अन्तिम समझौते के लिए उत्तम शर्तें प्राप्त कर सकता है। पूना में हैदरअली उपस्थित नहीं हो सकता था; क्योंकि कर्णाटक से उसकी अनुपस्थिति उसकी स्थिति के लिए आपत्तिजनक थी। इस प्रकार सन्धि प्रस्ताव का विषय अन्त में महादजी के ही हाथों मे रह गया।

विराम सन्धि की आरम्भिक समस्याएँ तो शीघ्र सुलझ सकती थीं, परन्तु वास्तविक शर्तों के निश्चय की प्रक्रिया दीर्घकालीन तथा चिन्ताजनक लग रही थी, क्योंकि युद्ध का क्षेत्र विस्तृत होने के कारण अधिकांश भारतीय शक्तियों के साथ अन्तिम निश्चय का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्ध था। साथ ही महादजी और नाना के बीच सतत परामर्श भी आवश्यक थे। मैकार्टने तथा गोडार्ड

द्वारा प्रारम्भ किये गये शान्ति प्रयास शीघ्र शिथिल कर दिये गये तथा यह कार्य केवल डेविड ऐण्डर्सन तथा महादजी के अधिकार में रह गया जिनका हेस्टिंग्ज से सीधा सम्पर्क था।

नाना फड़निस की ओर से विवाद का मुख्य विषय उन प्रदेशों का लौटाना था जिन पर सात वर्षों के युद्ध में अंग्रेजों ने अधिकार कर लिया था—विशेषकर थाना, साल्सेट, बसई और गुजरात के प्रदेश अर्थात भड़ोंच और अहमदाबाद—क्योंकि युद्ध मराठों के कारण आरम्भ नहीं हुआ था। नाना ने इस विचार से महादजी को भी परिचित करा दिया था। ऐण्डर्सन के द्वारा जिन शर्तों का प्रस्ताव हेस्टिंग्ज ने प्रथम बार किया, वे ये थीं :

१. महादजी एक ओर अंग्रेजों और मराठों के बीच तथा दूसरी ओर अंग्रेजों एवं हैदरअली के बीच अनाक्रामक तथा रक्षात्मक सन्धि स्थापित करा देने का कार्य करना स्वीकार करे।

२. अंग्रेज बम्बई तथा गुजरात के जीते हुए प्रदेशों को अपने पास रखें।

३. रघुनाथराव को निर्वाह के पर्याप्त साधन दिये जायें।

४. इस सन्धि का प्रभाव उन प्रतिज्ञाओं पर न पड़ेगा जो अंग्रेजों ने नागपुर, बड़ौदा तथा हैदराबाद के साथ कर रखी हैं, और महादजी अपनी इच्छानुसार गोहद के राणा के साथ व्यवहार कर सकेगा।

५. मराठे अन्य यूरोपीय जातियों को अपनी सेवा में नहीं रखेंगे।

प्रस्तावों के आदान-प्रदान सहित इन तथा अन्य धाराओं पर पूरे चार महीनों तक घोर विवाद होता रहा। विजित प्रदेशों की वापसी समझौते का बहुत कठोर विषय सिद्ध हुआ। महादजी ने हठ किया कि समस्त स्थान वापस कर दिये जायें। ऐण्डर्सन तथा महादजी के बीच शीघ्र ही सद्भावना, सम्मान तथा मैत्री का विकास हो गया और कटुता बहुत कुछ दूर हो गयी। इस समस्त काल में नित्य उष्ण वाद-विवाद तथा वार्तालाप होते रहते थे, परन्तु इन दोनों सरदारों में प्रायः भोजों तथा आमोद-प्रमोदों का सभ्य आदान-प्रदान होता रहता था। महादजी को अपने पक्ष में करने के लिए ऐण्डर्सन को सभी साधन काम में लाने की पूर्ण स्वच्छन्दता देकर हेस्टिंग्ज फरवरी, १७८२ में फोर्ट विलियम को लौट गया।

जब महादजी ने कहा कि हैदरअली की स्वीकृति के बिना पृथक सन्धि का निश्चय नहीं हो सकता तो ऐण्डर्सन ने पूछा—"तब आप बतायें कि हैदरअली क्या शर्तें चाहता है।" महादजी ने कहा—मैंने अभी तक उससे परामर्श नहीं किया है। मैं उसे पत्र लिखकर पूछूंगा।" "इसमें तो कई मास और सम्भवतः कई वर्ष लग जायेंगे। हम इतनी देर तक कैसे प्रतीक्षा कर सकते हैं ?" ऐण्डर्सन

ने कहा और तब उन्होंने हेस्टिंग्ज द्वारा प्रेषित शर्तों पर विचार किया। १४ फरवरी, १७८२ को महादजी ने नाना को लिखा—"हेस्टिंग्ज की शर्तों को लेकर ऐण्डर्सन यहाँ आया है। कृपया मुझको बतायें कि मैं उसको पूना भेजूँ या नहीं। क्या यह सम्भव है कि मैं हैदरअली के साथ बिना परामर्श के सन्धि रचना कर लूँ? यदि हम इस समय कोई समझौता नहीं कर लेते, तो हमें दूसरे युद्ध का सामना करना पड़ेगा, जिसके लिए हमारे पास न धन है न सुसज्जा। यदि आप मुझको लगभग १५ लाख रुपये दें तो मैं बंगाल पर चढ़ाई कर सकता हूँ। यदि नहीं, तो हमको यह कार्य उन उत्तम शर्तों पर समाप्त कर देना चाहिए जो हम प्राप्त कर सकते हैं। ऐण्डर्सन की माँग है कि हम किसी यूरोपीय का समर्थन न करें, बदले में अंग्रेज भी हमारे किसी ऐसे भारतीय मित्र का समर्थन नहीं करेंगे जो अपनी इच्छा से हमारा पक्ष त्याग देगा। यदि भोंसले अंग्रेजों के विरुद्ध कार्य करने को तैयार नहीं है तो यह अच्छा होगा कि हम उनके साथ शर्तों का निश्चय कर लें और इस भारी सौदे को समाप्त कर दें।"

शान्ति स्थापन के लिए हेस्टिंग्ज किस प्रकार अधीर हो गया था, इसका ज्ञान ऐण्डर्सन को लिखे गये उसके पत्रों से हो सकता है। ६ अप्रैल, १७८२ को उसने ऐण्डर्सन को लिखा—"महादजी के प्रति व्यक्त किये गये अधिक सम्मान (शान्ति स्थापना के लिए) से निजामअलीखाँ तथा मुधोजी भोंसले मुझसे बहुत रुष्ट हो गये हैं। उनके पत्रों से प्रकट होता है कि महादजी उनकी ईर्ष्या का पात्र है तथा उनकी और नाना फड़निस की समान रूप से इच्छा है कि शान्ति स्थापना का श्रेय उसको प्राप्त न होने पाये। उस शैली तथा भाषा द्वारा, जिन पर आपको अधिकार है, आप ये बातें महादजी को बता दें तथा उससे आग्रह करें कि यदि यह कार्य उससे हो सके तभी वह अपना निश्चय करे।"[१६]

इस प्रकार महीनों के कष्टप्रद वार्तालाप तथा असीम पत्र-व्यवहार के बाद अन्तिम सन्धि का निश्चय हो गया। इस पर सालबई के स्थान पर १७ मई, १७८२ को महादजी तथा ऐण्डर्सन के हस्ताक्षर हो गये जो ग्वालियर के २० मील दक्षिण में है। इसकी १७ धाराओं में मुख्य ये हैं :

१. बसई सहित वे समस्त स्थान पेशवा को दे दिये जायेंगे जिन पर अंग्रेजों ने पुरन्दर की सन्धि के पश्चात युद्धकाल में अधिकार कर लिया है।

---

[१६] ऐण्डर्सन के साथ हेस्टिंग्ज का पत्र-व्यवहार, देखो, ग्लीग, जिल्द ८, पृ० ५२६-५५७

२. साल्सेट के टापू पर तथा बम्बई के समीप छोटे टापुओं पर अंग्रेजों का अधिकार बना रहेगा।

३. इसी प्रकार भड़ोंच नगर पर भी अंग्रेजों का अधिकार रहेगा।

४. गुजरात में अंग्रेजों द्वारा विजित वे प्रदेश पेशवा तथा गायकवाड़ को वापस कर दिये जायेंगे जिन पर पहले उनका अधिकार था।

५. इसके बाद अंग्रेज रघुनाथराव को धन या अन्य प्रकार से कोई सहायता नहीं देंगे। वह अपने निवास-स्थान को चुन लेगा तथा पेशवा की ओर से उसके निर्वाहार्थ २५ हजार रुपये मासिक मिला करेंगे।

६. फतेहसिंह गायकवाड़ अपने पूर्व के अधिकृत प्रदेश को अधिकार में रखेगा तथा यथापूर्व मराठा राज्य की सेवा करेगा।

७. पेशवा प्रतिज्ञा करता है कि हैदरअली से वह प्रदेश छीन लिया जायेगा जिस पर उसने हाल में अधिकार कर लिया है।

८. इस धारा में मराठों तथा अंग्रेजों के मित्रों का वर्णन था। दोनों पक्ष यह प्रतिज्ञा करते हैं कि वे एक-दूसरे के मित्रों को कष्ट नहीं देंगे।

९. अंग्रेज लोग यथापूर्व व्यापार के विशेष अधिकारों का उपभोग करते रहेंगे।

१०. पेशवा प्रतिज्ञा करता है कि वह किसी अन्य यूरोपीय राष्ट्र की सहायता नहीं करेगा।

११. ईस्ट इण्डिया कम्पनी तथा पेशवा माधवराव पण्डित प्रधान इस सन्धि की शर्तों के उचित पालनार्थ उभयपक्ष का उत्तरदायी बनने के लिए महाराजा माधवराव शिन्दे से प्रार्थना करते हैं। यदि उनमें से कोई भी शर्तों का उल्लंघन करे तो वह आक्रान्ता के दमन का प्रयास करेगा।

१२. कर्नल अपटन की सन्धि की शर्तों के अनुसार वे प्रदेश वापस कर दिये जायेंगे जो रघुनाथराव ने अंग्रेजों को दे दिये थे।

इस सन्धि का प्रमाणीकरण हेस्टिंग्ज ने आगामी ६ जून को फोर्ट विलियम में कर दिया, परन्तु नाना फड़निस ने बहुत बाद २४ फरवरी, १७८३ को इस पर हस्ताक्षर किये जबकि हैदरअली की मृत्यु हो गयी।

भारत के राजनीतिक इतिहास में यह सन्धि एक महत्त्वशाली सीमा चिह्न है। इसकी रूपरेखा निश्चय करने में एक वर्ष से अधिक समय लग गया था। अंग्रेजों ने मराठों के विरुद्ध अपनी क्षमता की परीक्षा की थी और वे परास्त हो गये थे। उनको पता चल गया कि इस क्षति के बादअपनी स्थिति पुनः प्राप्त करना कठिन कार्य है। नाना बहुत दिनों तक इस मूर्खतापूर्ण सन्धि की त्रुटियाँ और न्यूनताएँ महादजी को बताता रहा। उसने कहा कि अपटन की सन्धि तथा वड़गाँव के समझौते का पूर्णतया पालन होना चाहिए। परन्तु महादजी के

पास कोई उपाय न था। यह स्वीकार करना होगा कि उसने उत्तम लाभ प्राप्त करने का सच्चाई से यथाशक्ति प्रयत्न किया था। थाना का गढ़ तथा साल्सेट का उपजाऊ द्वीप अन्त में हाथ से निकल गये, जिसका मराठा राष्ट्र को सदैव दुख रहा। शर्तों के उचित पालनार्थ उत्तरदायित्व का पद स्वीकार करके महादजी ने अपना महत्त्व अवश्य बढ़ा लिया था। उससे व्यक्तिगत मित्रता करके तथा शाही कार्यों के प्रबन्ध में उसको स्वतन्त्रता देकर हेस्टिंग्ज ने उसको सम्मानित किया। इसके कारण ब्रिटिश कूटनीतिज्ञों ने हेस्टिंग्ज की निन्दा की तथा महादजी इसको अपनी भावी उन्नति का आधार बनाने में सफल हो गया। १७ दिसम्बर, १७८३ को हेस्टिंग्ज लिखता है—"निजामअलीखाँ आरम्भ से ही किसी भी ऐसी शान्ति के विरुद्ध रोष प्रकट करता रहा है, जिसका निर्माण उसके द्वारा न हुआ हो। मुधोजी भी अपनी शिकायत के साथ वही आपत्ति करता है। मैंने मुधोजी को सविस्तार पत्र लिखे हैं और उससे प्रार्थना की है कि वह शिन्दे को मित्र बना लेने सम्बन्धी अपने पिछले परामर्श पर ध्यान दे। वह महादजी शिन्दे के सम्बन्ध में अत्यन्त विनयपूर्वक लिखता है, परन्तु उसको शिकायत है कि वह स्वयं सन्धि के निर्माण में सम्मिलित नहीं किया गया।" वास्तव में भारतीय शासकों में शान्ति का रचयिता होने के लिए प्रतिस्पर्द्धा थी, और अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए हेस्टिंग्ज ने योग्यतम साधन का चयन किया था।

नाना ने महादजी का ध्यान सन्धि में इस प्रकार की एक स्पष्ट शर्त रखने की ओर आकृष्ट किया, जिसके द्वारा बंगाल की चौथ मराठों को मिलती रहे। परन्तु नागपुर का भोंसले परिवार अपने इस स्वत्व पर २५ वर्षों से भी अधिक समय से मौन था तथा उसने पतनशील साहसहीनता दिखायी। वैसे इस क्षति का मुख्य दुख उन्हीं को होना चाहिए था। अतः महादजी इस समय मराठों के इस लुप्तप्राय हित तथा मृतप्राय स्वत्व को पुनरुज्जीवित नहीं कर सकता था। उसने बुद्धिमत्तापूर्वक हेस्टिंग्ज के प्रति व्यावहारिक तथा अनुरंजनकारी वृत्ति धारण कर ली। अपनी चौथ की माँग उसने किसी अन्य अवसर के लिए सुरक्षित रहने दी। आरम्भिक पेशवाओं के समय में भारतीय राजनीति का केन्द्र दिल्ली से हटकर पूना आ गया था। अब वह पुनः उत्तर को वापस हो रहा था, जहाँ पर घटना-चक्र शीघ्र ही यह निश्चय करने वाले थे कि कौनसी सत्ता भारत में सर्वोपरि रहेगी।

यह महान राजनीतिक परिवर्तन सालबई में स्पष्ट हो गया तथा इस बात का केवल दुख ही मनाया जा सकता है कि मराठा राज्य का कूटनीतिज्ञ नाना फड़निस तथा योद्धा महादजी शिन्दे इस महत्त्वशाली लेखपत्र के निर्माण के

समय घटना-स्थल पर एकत्र न हो सके। यह अत्यन्त दुख की बात है कि पानीपत के समय अपने अल्पकालीन प्रथम अनुभव के बाद नाना फिर कभी उत्तर को नहीं गया। यद्यपि वे व्यक्तिगत रूप से नहीं मिले, परन्तु पत्र-व्यवहार द्वारा पूर्ण तथा निष्कपट विचार-विनिमय करते रहे। निम्न टिप्पणी द्वारा प्रतिपादित कीन का निर्णय तथ्यों के सामने असत्य सिद्ध होता है : "इस सन्धि ने इतिहास में एक नये युग का निर्माण किया। इसके द्वारा ही बिना एक वर्ग मील भूमि पर भी अधिकार किये ब्रिटिश सत्ता भारतीय प्राय-द्वीप के अधिकांश भाग में व्यावहारिक रूप से प्रधान हो गयी। केवल मैसूर को छोड़कर प्रत्येक प्रान्त उसे सबसे बड़ी शक्ति और सर्वत्र शान्ति निर्माता स्वीकार करता था।" पर वास्तव में शान्ति निर्माण का कर्तव्य अब कुछ समय के लिए महादजी को प्राप्त हो गया था।

८. **सालबई का निर्णय**—महादजी ने जिस प्रकार मराठा परिस्थिति की रक्षा की, स्वयं डेविड ऐण्डर्सन ने इसका स्पष्ट चित्रण किया है। वह लिखता है—"शिन्दे ने मुझे ऐसे स्पष्टीकरण दिये जो पूर्णतः सन्तोषजनक थे तथा मेरे मन में किसी प्रकार का कोई भी सन्देह नहीं रहा। मैंने उसको आश्वासन दिया कि मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि हमारी सरकार की ओर उसकी अनुकूल भावनाएँ उन भावनाओं से बढ़कर नहीं थीं जो हमारी सरकार उसकी ओर रखती है। मैंने शिन्दे को आश्वासन दिया कि मुझको उसकी मित्रता का पूर्ण विश्वास है तथा अंग्रेज लोगों को उसका पूरा भरोसा है। मुझे अपनी परिस्थिति के कारण असत्य वर्णन के प्रभावों से सावधान रहना अत्यन्त आवश्यक था तथा शिन्दे को भी यह ज्ञान अवश्य रहा होगा कि ऐसे अनेक व्यक्ति थे जो उस प्रत्येक शब्द को पकड़ने के लिए प्रस्तुत रहते थे जिसका प्रतिकूल अर्थ निकाला जा सके।"[२०] ऐण्डर्सन की यह दैनंदिनी या उसका यह वृत्तान्त सन्धि-पत्र सम्बन्धी अनेक सन्देहास्पद विषयों को स्पष्ट कर देता है।

स्वयं हेस्टिग्ज को महादजी की सत्यपरायणता में परम विश्वास था तथा ब्रिटिश हितों के लिए वह उसके साथ अपनी मित्रता को सर्वाधिक महत्त्व देता था। उसने यह एक सिद्धान्त बना दिया था कि किसी भी कारण ब्रिटिश लोग महादजी से शत्रुता मोल न लें। हेस्टिग्ज के उत्तराधिकारियों कार्नवालिस और शोर ने इस नियम का अत्यन्त सावधानी से पालन किया। अंग्रेजों के साथ महादजी की मित्रता तथा घनिष्ठता के कारण उसके मराठा हितों के विषय में निष्ठाहीन होने के अनेक निराधार सन्देह उत्पन्न हो गये,

---

[२०] फोरेस्ट कृत शाही पत्र, जिल्द ३, पृ० ९७८

परन्तु कोई बुद्धिमान समालोचक महादजी पर इस नीचता का आरोप नहीं कर सकता। वह मराठा राज्य का प्रमुख स्तम्भ था।[२१]

नाना फड़निस की आश्चर्यकारी प्रतिभा तथा योग्यता की विश्वव्यापी प्रशंसा न्यायसंगत है क्योंकि उसने ब्रिटिश सत्ता रूपी महान संकट से मराठा राज्य की रक्षा की, जबकि रघुनाथराव जैसा पेशवा परिवार का प्रमुख व्यक्ति अंग्रेजों का साथ दे रहा था। उसने तुकोजी होल्कर का सहयोग प्राप्त किया जो वीर होने के साथ-साथ एक असभ्य मराठा सरदार था और जिसकी राजनीति में कोई गति नहीं थी। इस प्रकार नाना ने महादजी को सहायता पहुँचायी। नाना ने बुद्धिमत्तापूर्वक मोरोबा तथा सखाराम बापू की दुष्ट महत्वाकांक्षाओं का नियन्त्रण किया। उसने रघुजी आंग्रे की सेवाओं का उत्तम उद्देश्य से उपयोग किया तथा रघुजी भोंसले एवं गायकवाड़ परिवार में समयोचित्त कर्तव्य ज्ञान जाग्रत कर दिया। उसने अहिल्याबाई तथा रामशास्त्री सदृश साधु व्यक्तियों की प्रशंसा भी प्राप्त कर ली तथा राज्य के लिए हरिपन्त फड़के, परशुराम भाऊ, कृष्णराव काले, महादजी बल्लाल गुरुजी, विसाजी कृष्ण तथा रामचन्द्र गणेश जैसे अनेक भक्त तथा योग्य सहायक प्राप्त कर लिये। उसने ब्रिटिश लोगों को झुकाने के लिए शक्तिशाली अखिल भारतीय संघ का संगठन किया। इस स्थायी अविस्मरणीय तथा उत्कृष्ट नीति के सम्पादन का श्रेय उसी को प्राप्त है।

इस दीर्घकालीन युद्ध की एक शाखा वह विचित्र पराक्रम है जो आनन्द-राव धुलप के नेतृत्व में मराठा नौ-समूह ने प्रदर्शित किया। इसने उस शान्ति को लगभग ध्वस्त कर दिया जिसका निर्माण सालबई में इस प्रकार परिश्रमपूर्वक हुआ था। पश्चिमी तट की इस घटना का वर्णन फोरेस्ट इस प्रकार करता है—"सालबई की सन्धि की रचना के कुछ समय बाद एक घटना घटित हो गयी, जिसके कारण शान्ति में विघ्न की आशंका उपस्थित हो गयी। १२ तोपों का छोटा-सा दल, जिसे रेंजर कहते हैं, लेफ्टीनेण्ट प्रुयेन के निर्देशन में कालीकट जा रहा था। रत्नगिरि तट के समीप ८ अप्रैल, १७८३ को मराठा नौ-समूह ने इस पर सहसा आक्रमण कर दिया। देर तक भयानक रूप से युद्ध होता रहा। गोलियों की भारी वर्षा की गयी। आक्रान्ता पोत में घुस आये। नौकापृष्ठ मृत तथा मृतप्राय अंग्रेजों से भर गया।[२२] अंग्रेजों के ५ अधिकारी तथा २८ व्यक्ति मारे गये। मराठों के ८ पराक्रमी सैनिक खेत रहे तथा लगभग ७५ घायल

---

[२१] देखो, २२ अप्रैल, १७८४ का लिखा हुआ व्हीलर के नाम हेस्टिंग्ज का पत्र। फोरेस्ट कृत शाही पत्र, जिल्द १, पृ० १०८७

[२२] फोरेस्ट कृत मराठा ग्रन्थमाला, प्रस्तावना।

हुए । धुलप ५ अंग्रेज पोतों को अपने अधिकार में करके अपने बन्दरगाह विजय-दुर्ग को ले गया । युद्ध के बलपूर्वक संचालन में वह ईमानदारी से अपने कर्तव्य का पालन कर रहा था । उसको ज्ञात नहीं था कि शान्ति की स्थापना पहले ही हो चुकी है । इस घटना से अंग्रेजों का क्रुद्ध होना स्वाभाविक था । उन्होंने तुरन्त महादजी के पास विरोध-पत्र भेजा । उसने नाना पर दोषारोपण किया और क्षति की पूर्ति करने के लिए कहा । नाना ने अविलम्ब कार्य किया । उसने अधिकार में किये गये पोतों को सामान सहित लौटाकर यह घटना समाप्त कर दी । निस्सन्देह इस घटना से बम्बई प्रान्त को उपयोगी शिक्षा प्राप्त हुई । उनको मालूम हो गया कि यदि शान्ति की स्थापना न हो गयी होती तो मराठा नौ-सेना क्या कुछ कर सकती थी ।

सफ्रें १७८२ के आरम्भ में शक्तिशाली फ्रेंच नौ-सेना सहित मद्रास के निकटवर्ती समुद्र में पहुँच गया था । उसको हैदरअली से प्रत्येक समर्थन प्राप्त हुआ । सफ्रें के पास अंग्रेजों के मद्रास बन्दरगाह के समान कोई उपयुक्त जहाजी अड्डा नहीं था, जहाँ वह अपने टूटे-फूटे जहाजों की मरम्मत करके उन्हें फिर काम में आने योग्य बना सके । यही उसके मार्ग में सबसे बड़ी बाधा थी । दोनों नौ-सेनापतियों सफ्रें तथा ह्यूग्स के बीच १२ अप्रैल, १७८२ को मद्रास तट के समीप घोर नौ-युद्ध हुआ जिसमें दोनों पक्षों की भारी क्षति हुई । जुलाई में गुडुलुर के स्थान पर सफ्रें ने स्वयं हैदरअली के साथ वार्ता की । इस सम्मेलन में उन्होंने ब्रिटिश-विरोधी अभियान की भव्य योजना का निश्चय किया । वृद्ध कमाण्डर बुस्सी के अधीन फ्रेंच स्थल सेनाएँ भी आ पहुँचीं । सफ्रें ने शीघ्र ही त्रिकोमाली पर आक्रमण करके उस पर अधिकार कर लिया । यह लंका में ब्रिटिश बन्दरगाह था । १३ सितम्बर को उसने ऐडमिरल ह्यूग्स को बुरी तरह परास्त कर दिया । बुस्सी ने पूना स्थित नाना फड़निस को अपने आने की सूचना भेजी और कहा कि वह अंग्रेजों के विरुद्ध सशक्त अभियान के लिए तैयार हो जाये । परन्तु सालबई की सन्धि पहले ही हो चुकने के कारण नाना अब नवीन युद्ध आरम्भ नहीं कर सकता था । फ्रांसीसियों ने मद्रास को समुद्र मार्ग से प्राप्त होने वाली सामग्री कठोरतापूर्वक रोक दी, जिसके परिणामस्वरूप ब्रिटिश उपनिवेश में कष्टदायक अकाल पड़ गया और बहुत-से लोगों की मृत्यु हो गयी । १७८३ के आरम्भिक मासों में ब्रिटिश सेना को बुस्सी के अधीन फ्रेंच सेना तथा टीपू सुल्तान के संयुक्त आक्रमणों का बहुत भय था । ब्रिटिश परिस्थिति की रक्षा केवल इस समाचार के सामयिक आगमन से हो गयी कि यूरोप में फ्रांस तथा इंगलैण्ड के बीच जून में शान्ति स्थापित हो गयी है । परिणाम यह हुआ कि भारत में दोनों राष्ट्रों के बीच

युद्ध स्वतः बन्द हो गया। दिसम्बर १७८२ में हैदरअली की मृत्यु से लगभग समस्त भारत में सामान्य राजनीतिक शान्ति उत्पन्न हो गयी। ऐडमिरल सफ्रें फ्रांस को वापस हो गया। वहाँ उसे अपूर्व सम्मान प्राप्त हुआ। बुस्सी की मृत्यु आगे चलकर ७ जनवरी, १७८५ को भारत में ही हुई। उसे कोई उपयोगी सफलता नहीं मिल सकी।

नारायणराव की हत्या से सालबई की सन्धि तक लगभग नौ वर्ष चलने वाला यह आंग्ल-मराठा युद्ध मराठा राज्य की जीवन-शक्ति का सबल परिचायक है, जिसका क्षय न तो पानीपत की विपत्ति से हुआ और न उनके महान् पेशवा माधवराव की मृत्यु से। मराठा कूटनीतिज्ञ तथा योद्धा यथापूर्व अपनी दृढ़ता का परिचय देते रहे। उन्होंने वारेन हेस्टिंग्ज की विचित्र सूझ-बूझ के विरुद्ध अपनी स्थिति की रक्षा की, जिसके सहायक हार्नबी, कूट, गोडार्ड, ह्यूग्स तथा मोस्टिन[23] जैसे योग्य व्यक्ति थे तथा जो महानतम ब्रिटिश शासकों में से एक था।

गुरिल्ला पद्धति की परम्परागत युद्ध-कला में परिवर्तन इस युद्ध का एक स्थायी परिणाम था। एक समय यह पद्धति बहुत उपयोगी थी, परन्तु इस समय वह अति प्राचीन समझी गयी। महान मराठा नेता महादजी को पश्चिमी शैली स्वीकार करने में पूर्ण श्रद्धा तथा विश्वास था, यद्यपि नाना, हरिपन्त तथा उसके अन्य सहकारी लोगों ने मराठा राज्य के स्वातन्त्र्य को सुरक्षित रखने में महादजी की इस इच्छा को तुरन्त व्यावहारिक रूप नहीं दिया।

९. रघुनाथराव का अन्त—यहाँ रघुनाथराव की शेष जीवन-कथा समाप्त कर देनी चाहिए। मई, १७७९ में महादजी की सुरक्षा से पलायन करके वह कुछ भी लाभ नहीं उठा सका। वैसे यह कार्य अत्यन्त चतुरता तथा दक्षतापूर्ण था। कष्ट, वेदना तथा अपमान के रूप में उसको अपने पापों का पर्याप्त दण्ड मिल गया जो अपने दरिद्रतापूर्ण निवास के जीवन में उसे कई वर्षों तक सहन करने पड़े। सालबई की सन्धि के बाद भी वह सूरत में रहता रहा तथा एक वर्ष से अधिक समय तक अंग्रेज उसके निर्वाह का भार सहन करते रहे, जबकि अपनी व्यर्थ तथा अव्यावहारिक इच्छाओं का पालन न होने के कारण वह

---

[23] मराठे इतने उदार थे कि उन्होंने अंग्रेज सज्जन कैप्टिन स्टुअर्ट को उसकी वीरता के लिए 'फकड़ा' की उपाधि देकर सदा सर्वदा के लिए स्मरणीय बना दिया। इसकी उपमा आधुनिक 'विक्टोरिया क्रास' से दी जा सकती है। इसी प्रकार रामचन्द्र गणेश को वज्रेश्वरी के स्थान पर वीर गति प्राप्त हुई थी। वह भी समान रूप से चिरस्मरणीय है। वारेन हेस्टिंग्ज की गर्वोक्ति, देखिए शाही संग्रह, जिल्द १, परिचय, पृ० ९१

अपने आश्रयदाताओं को शाप देता रहा। उसके ही कारण अपनी समस्त सत्ता तथा प्रतिष्ठा के नाश का खतरा उठाकर भी उन्होंने अतिव्ययी युद्ध किया था इसके लिए वह धन्यवाद देना भी भूल गया। अन्त में अंग्रेजों ने उससे ऊबकर उसका भत्ता बन्द कर दिया। नाना तथा महादजी कुछ समय तक उसके समर्पण की माँग करते रहे, परन्तु शीघ्र ही उन्हें उसकी कुछ भी चिन्ता नहीं रह गयी, क्योंकि अब उसमें अपकार की कोई क्षमता नहीं रह गयी थी। जब १७८१ की गर्मियों में जनरल गोडार्ड पूना की ओर अपनी प्रगति में असफल हो गया और इसके शीघ्र पश्चात ही बुन्देलखण्ड में कर्नल म्यूर के द्वारा हेस्टिंग्ज ने महादजी के साथ सन्धि प्रस्ताव प्रारम्भ कर दिये तो रघुनाथराव ने सीधे इंगलैण्ड प्रतिनिधि मण्डल भेजने की पागल योजना का आश्रय लिया, जिससे वह भारत स्थित ब्रिटिश अधिकारियों की उपेक्षा करके इंगलैण्ड के राजा तक पहुँच कर ले और अपने नष्टप्राय वैभव को पुनः प्राप्त करने के लिए उससे भारी सैनिक सहायता की प्रार्थना करे। इस कार्य के लिए उसने अपने विश्वस्त दूत हनुमन्तराव नामक ब्राह्मण (पश्चिमी तट पर राजापुर का निवासी) को चुना तथा मनियर नामक पारसी सज्जन को उसका सहायक नियुक्त कर दिया। वे ११ सितम्बर, १७८१ को बम्बई से एक जहाज में चल पड़े, तथा सम्भावना के अनुसार बिना कुछ लाभ प्राप्त किये हुए एक वर्ष बाद वापस आ गये। आधुनिक काल में हिन्दुओं की यह प्रथम समुद्र-यात्रा थी। यदि किसी जिज्ञासु पाठक की यह जानने की इच्छा हो कि वे इंगलैण्ड में किस प्रकार रहे तो एडमण्ड बर्क का निम्नांकित पत्र उनकी जिज्ञासा पर्याप्त शान्त कर देगा।

सम्माननीय एडमण्ड बर्क की ओर से रघुनाथराव की सेवा में

(दिनांक १७८२ का अन्त)

...आपने पत्र द्वारा मेरा जो सम्मान किया है, उसके लिए मैं आपका अत्यन्त आभारी हूँ। मुझे आपकी रीतियों का पर्याप्त परिचय नहीं है जो आप जैसे उच्च-पदस्थ तथा चरित्रवान व्यक्तियों को पत्र लिखने के लिए प्रचलित सम्बोधन का प्रयोग कर सकूँ। मुझे आशा है कि मेरी इस विवशता को आप उदारतापूर्वक क्षमा करने की कृपा करेंगे। मैं आपसे विश्वास करने की प्रार्थना करता हूँ कि मेरी इच्छा उस शैली के उपयोग की है जो आपकी सुप्रसिद्ध तथा पवित्र जाति, अभी तक चल रहे आपके उस उच्च पद, आपकी व्यक्तिगत योग्यता तथा आपके महान कष्टों के प्रति सफल रूप से यथाशक्य सम्मान प्रकट कर सके।

जो थोड़ी-सी सेवा मैं आपके दूत हनुमन्तराव तथा उसके सहायक मनियर

पारसी की कर सका हूँ, उसको आप बहुत अधिक महत्त्व देते हैं। यह केवल मेरा कर्तव्य था जो एक मनुष्य का दूसरे के प्रति होना चाहिए। थोड़े समय तक मेरा अतिथि बनकर हनुमन्तराव ने मुझे सम्मानित किया है। मैंने अपने स्थान को उसके लिए इतना सुखद बना देने का प्रयत्न किया है जितना मैं या कोई अन्य व्यक्ति बना सकता था जिससे उस जैसा व्यक्ति अपने जन्मजात धर्म की समस्त विधियों तथा रीतियों का पालन कर सके। वह अपने जीवन के प्रति स्पष्ट संकट होने पर भी कठोरता से उनका पालन करता था। इसका साक्षी मैं स्वयं हूँ। श्रीमान, कुछ भी हो आपकी जीवन-विधि के सम्बन्ध में जो निर्देश उसने दिये हैं, उनसे हमें लाभ हुआ है। अब जब कभी उचित सूचना देकर और अधिकारियों से वैध आज्ञा प्राप्त करके उच्च जाति के हिन्दुओं को इस राज्य में किसी कार्यवश भेजा जायेगा तो हम इस प्रकार का प्रबन्ध कर देंगे जिससे हमारे संसर्ग में उनको न्यूनतम कष्ट हो तथा यह देश उनके लिए यथासम्भव सह्य हो जाये, जहाँ वर्ष में कठिनाई से ६ अच्छे मास होते हैं। जो कष्ट इन सज्जन को यहाँ पर पहले हुआ, उसका कारण इस राष्ट्र की निर्दयता नहीं, अज्ञान है।

श्रीमन, यह सूचित करते हुए मुझे खेद होता है कि मैं यहाँ से सैनिक सहायता प्राप्त करने की किसी प्रकार की आशा आपको कभी नहीं दे सकता, जिसकी आपको आवश्यकता है। जब ऐसा कार्य करने का हमें अधिकार नहीं है तो स्पष्ट मना कर देना ही उत्तम है।

हनुमन्तराव आपका निष्ठापूर्ण तथा योग्य सेवक है, और मनियर पारसी ने उसका समर्थन करने का प्रत्येक प्रयास किया है। यह उनका दोष नहीं है कि आपको अपने कार्यों में इच्छानुसार सफलता प्राप्त नहीं हो सकी।"[२४]

---

[२४] (मूल टिप्पणी) इस पत्र की सामग्री पूर्ण नहीं है और बर्क के पत्रों में रघुनाथराव के उस पत्र का कोई पता नहीं लग सका है, जिसके उत्तर में यह पत्र लिखा गया है। इस पत्र-व्यवहार का उद्गम यह प्रतीत होता है—१७८१ ई० के आरम्भ में उच्चजातीय ब्राह्मण हनुमन्तराव तथा मनियर पारसी रघुनाथराव के दूतों के रूप में इंगलैण्ड पहुँचे। उनको ईस्ट इण्डिया कम्पनी के निर्देशकों तथा ब्रिटिश सरकार से कुछ कार्य था। श्री बर्क ने लन्दन में उनको बहुत दुखद परिस्थिति में पाया, जिसका कारण उनकी विचित्र जीवन-विधि तथा उनके आवश्यक धार्मिक कृत्य थे। बर्क अपरिचित व्यक्तियों के प्रति ध्यान देने के लिए प्रसिद्ध था। इस कारण वह उनको बेकन्स्फील्ड ले गया तथा उस समय ग्रीष्मऋतु होने के कारण उन्हें हरे रंग का एक बड़ा मकान दिया, जहाँ हर अपनी जाति के नियमों के अनुसार वे अपना भोजन बनाते, स्नान करते, अपने धर्म

हनुमन्तराव के शिष्टमण्डल की असफलता से रघुनाथराव की आँखें नहीं खुलीं। १८ जनवरी, १७८३ को इंगलैण्ड के राजा जॉर्ज तृतीय को एक अन्य दीनतापूर्ण पत्र लिखकर रघुनाथराव ने मूर्खता का दूसरा कार्य भी कर डाला। जब अंग्रेजों द्वारा सूरत में उसका भत्ता बन्द कर देने से वह बहुत भयभीत था, वह महादजी के पास जाने तथा अपने भावी निवास-स्थान के निमित्त उसके द्वारा प्रस्तावित किसी भी प्रबन्ध को स्वीकार करने के लिए तैयार हो गया। महादजी ने उसके साथ उदारता का व्यवहार किया। उसने रघुनाथराव को राजी कर लिया कि वह नासिक के समीप गोदावरी तट पर कोपरगाम में निवास करे। रघुनाथराव ने १७८३ की मध्य जुलाई के लगभग चन्दवाड़ के पास ढोडप नामक स्थान पर हरिपन्त फड़के के समक्ष अत्यन्त अनिच्छा तथा मानसिक वेदना के साथ सपरिवार आत्मसमर्पण कर दिया। वह अब जो पत्र लिखता था उनमें अपने को पन्त, प्रधान या पेशवा न कहकर अल्पवयस्क माधवराव को पेशवा स्वीकार करता था। अपने वार्तालाप तथा पत्र-व्यवहार में अब उसने अत्यन्त नम्र तथा दीन भाव धारण कर लिया तथा शीघ्र ही नाना फड़निस के प्रति उसने स्नेह तथा सम्मान प्रकट किया। उसने नाना को १९ जुलाई को निम्नांकित पत्र लिखा :

"आपके प्रति बहुत दिन से पल रही समस्त द्वेष तथा दुर्भावना अब मैंने अपने मन से निकाल दी है। आप भी मेरे प्रति शत्रुता की सम्पूर्ण भावनाएँ निकाल दें। हम आपकी उन्नति देखकर प्रसन्न होंगे तथा हम आपकी उस विधि का आदर करते हैं जिसके द्वारा आपने मराठा राज्य को सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया है।" परस्पर शपथ ग्रहण द्वारा उनके बीच में पहले ही स्पष्ट गम्भीर समझौता हो गया था। इसमें रघुनाथराव ने मराठा राज्य को हानि पहुँचाने की अपनी समस्त इच्छाओं का त्याग कर दिया था। जैसे ही वह कोपरगाम में पहुँचा, उसकी इच्छा हुई कि वह अपनी भाभी गोपिकाबाई को प्रणाम करने जाये। समस्त राष्ट्र उस महिला की पूजा करता

और रीतियों तथा अन्य कर्तव्यों का आवश्यकता और परिस्थिति की सुविधानुसार पालन करते थे। श्रीमान तथा श्रीमती बर्क की संगति में उनको बहुत सुख प्राप्त हुआ तथा उनके बेकन्स्फील्ड के निवास-काल में अनेक प्रसिद्ध व्यक्ति उनसे मिलने आये। शिशिर ऋतु में वे भारत की ओर लौट पड़े तथा उनके भारत आगमन पर रघुनाथराव ने अपने दूतों के प्रति दयालुता प्रदर्शित करने पर श्री बर्क को धन्यवाद का पत्र लिखा। बर्क के उत्तर का कुछ अंश जो यहाँ पर दिया गया है, सम्भवतः १७८२ के अन्त में लिखा गया था।

था तथा इस समय वह नासिक के समीप एकान्त में अपना धार्मिक जीवन व्यतीत कर रही थी। परन्तु गोपिकाबाई ने उस पापी रघुनाथराव से, जिसने उसके विश्वासानुसार उसके पुत्र की हत्या कर दी थी, तब तक मिलना स्वीकार नहीं किया जब तक गोदावरी नदी में उसके द्वारा नियुक्त ब्राह्मण समाज की उपस्थिति में विधानपूर्वक प्रायश्चित न कर ले। कुछ सोच-विचार के बाद रघुनाथराव आवश्यक रीति का पालन करने के लिए सहमत हो गया। यह प्रायश्चित उसने ४ अगस्त को किया और समस्त श्रोताओं के सम्मुख उच्च स्वर से घोषणा की कि उसने भतीजे को कैद करने के निमित्त अवश्य प्रेरणा दी थी किन्तु उसका वध करने की उसकी कोई इच्छा नहीं थी। इस संस्कार के तुरन्त बाद उसने गंगापुर में उस देवी के दर्शन किये तथा उससे अपने मोक्ष के निमित्त आशीर्वाद देने की प्रार्थना की। फिर रघुनाथराव कोपरगाम के समीप कचेश्वर नामक स्थान को वापस आ गया तथा ४८ वर्ष की आयु में ११ दिसम्बर, १७८३ को वहीं पर उसका देहान्त हो गया। उसका समस्त बल तथा जीवन-शक्ति पहले ही नष्ट हो चुकी थी। उसने कोपरगाम में भव्य भवन-निर्माण किये, जिनमें से कुछ आज तक देखे जा सकते हैं। यहाँ पर उसकी पत्नी आनन्दीबाई तथा उसका पुत्र बाजीराव रहने लगे। उसकी मृत्यु के बाद ३० मार्च, १७८४ को आनन्दीबाई ने एक पुत्र को जन्म दिया। माता की उपस्थिति में कोपरगाम में दोनों भाइयों का पालन-पोषण अवश्य हुआ, परन्तु नाना फड़निस ने कड़े पहरे का कठोर प्रबन्ध कर रखा था। विधान के अनुसार इनमें से ज्येष्ठ बाजीराव अन्तिम पेशवा होने वाला था। आनन्दीबाई का देहान्त १२ मार्च, १७९४ को हो गया। उसने अपने शेष जीवन में व्यावहारिक कारावास का भोग किया और उसका जीवन क्लेश तथा अपमानपूर्ण रहा।[२५]

रघुनाथराव के अनुचरों के साथ किस प्रकार व्यवहार किया गया, इसका वर्णन पहले हो चुका है। रघुनाथराव के योग्य तथा निष्ठावान सचिव चिन्तो विट्ठल को स्थान-स्थान पर कठोर कारावास में रखा गया। जून, १७८३ में उसका देहान्त हो गया तथा उसकी पत्नी और पुत्री ने विषपान द्वारा आत्म-हत्या कर ली। इसी प्रकार प्रसिद्ध रामचन्द्र बाबा के पुत्र सदाशिव रामचन्द्र का देहान्त अपनी पत्नी तथा अपने परिवार के अन्य व्यक्तियों के साथ कारावास में हो गया। बाजीराव गोविन्द बर्वे को कुछ समय तक अहिल्याबाई ने शरण दी। उसका भी देहान्त कष्ट में ही हुआ। केवल मानाजी फड़के

---

[२५] उसके शेष जीवन का विस्तारपूर्वक अध्ययन संक्षिप्त पेशवा दफ्तर, जिल्द ४ में हो सकता है।

वैयक्तिक वीरता तथा साहस द्वारा बहुत दिनों—अप्रैल १८०० में अपनी मृत्यु तक—सुखपूर्वक जीवित रहा।

१०. **हैदरअली तथा अन्य व्यक्ति**—युद्ध की मुख्य धारा की ओर ध्यान देने के कारण पूना सरकार को कुछ अन्य कार्य भी स्थगित रखने पड़े थे। केन्द्रीय प्रशासन में दो दल थे और यह रोग न्यूनाधिक मात्रा में व्यावहारिक रूप से समस्त मराठा सरदारों को लग गया था। उदाहरणार्थ, प्रतिनिधि परिवार में फूट थी, भवनराव तथा भगवन्तराव में खुला युद्ध था—भवनराव पूना के मन्त्रिमण्डल के साथ था और भगवन्तराव रघुनाथराव के पक्ष में था। पूना से रघुनाथराव के निकालने पर भवनराव ने उसका पीछा करने में हरिपन्त फड़के का साथ दिया, परन्तु १७७४ के अन्त के आसपास वह अपने मुख्य स्थान को वापस आ गया तथा अपने चचेरे भाई भगवन्तराव का विरोध करने लगा। यह वीर योद्धा था। इन दोनों ने अपने धावों तथा झड़पों से १७७५ में सतारा के जिले को नष्ट कर दिया। इस कलह का अन्त ५ अप्रैल, १७७६ को भगवन्तराव के देहान्त पर हुआ। अगले वर्ष ३० अगस्त, १७७७ को भवनराव का भी देहान्त हो गया। तभी परशुराम नामक उसके पुत्र का जन्म हुआ था। बाद को यह इस परिवार का प्रतिनिधि हुआ तथा उसका सुख-दुखमय जीवन अन्तिम पेशवा के समय में बीता।

कोल्हापुर का छत्रपति पेशवा सरकार के लिए सदैव काँटा ही सिद्ध हुआ। सिद्धान्त रूप से इस राजा का पद उसके सतारा वाले चचेरे भाई के समान ही था, परन्तु सतारा का राजा पेशवाओं का बन्दी था और उस पर कठोर पहरा लगा रहता था। कोल्हापुर का राजा पूर्णरूप से स्वतन्त्र था तथा पेशवाओं के कष्ट से लाभ उठाने के किसी अवसर को हाथ से नहीं जाने देता था। राजा शिवाजी को १७६२ में गोद लिया गया था। राजमाता जीजाबाई ने उसकी बाल्यावस्था में प्रशासन का संचालन किया। १७ फरवरी, १७७३ को रानी की मृत्यु हो जाने के पश्चात उसके भाई येसाजी शिन्दे ने, जो चतुर तथा साहसी प्रशासक था, पेशवा परिवार के गृहयुद्ध से पूर्ण लाभ उठाकर पूना सरकार को निर्बल बना देने के मुख्य उद्देश्य से कोल्हापुर राज्य का कार्य-संचालन किया। इचल करणजी का छोटा-सा राज्य, जिसकी शासक बाजीराव प्रथम की बहन रानी अनुबाई घोरपड़े थी, येसाजी की लूटमार का सुलभ शिकार हो गया। पूना की सरकार इचल करणजी को कोई सहायता न भेज सकी। दोनों पड़ोसियों की कठोर शत्रुता बहुत बाद तक बनी रही। येसाजी शिन्दे हैदरअली के साथ मिल गया तथा उसने दक्षिण के पेशवा द्वारा अधिकृत प्रदेशों को इस प्रकार भयभीत कर दिया कि पूना की सरकार को

कठोर उपाय करने पड़े। यह तभी सम्भव हो सका जब अपटन की सन्धि के कारण ब्रिटिश-मराठा युद्ध शान्त हो गया और पूना की सेनाएँ १७७६ में अपनी छावनियों को वापस आ गयीं। नकली भाऊ का दमन करने के बाद महादजी शिन्दे ने सशक्त तोपखाने सहित कोल्हापुर के विरुद्ध प्रयाण किया। १७७८ के आरम्भ में उसने कोल्हापुर पर घेरा डाल दिया। महादजी ने उस राज्य की सेनाओं को कई बार कठोर रूप से परास्त करके येसाजी शिन्दे को अधीनता स्वीकार करने पर विवश कर दिया। महादजी ने २३ अप्रैल, १७७८ को कोल्हापुर से सन्धि कर ली तथा इस बीच मोरोबा फड़निस द्वारा आरम्भ किये गये विद्रोह का दमन करने के लिए ठीक समय पर पूना वापस आ गया।

मराठा राज्य के हितों के लिए जो घटना अत्यन्त विनाशक सिद्ध हुई—वह थी मैसूर के हैदरअली का आक्रमण। उसने अंग्रेज तथा उस क्षेत्र की अन्य शक्तियों का उद्धत तिरस्कार करते हुए कर्णाटक के मराठा अधिकृत प्रदेश छीन लिये। जब १७७३ के अन्त में रघुनाथराव ने कर्णाटक की ओर प्रयाण किया तो उसने अपना उद्देश्य हैदरअली के आक्रमण का दमन प्रसिद्ध किया। परन्तु जब बार भाइयों की तैयारियों के कारण रघुनाथराव की स्थिति उसका दमन करने के लिए अनिश्चित हो गयी तो उसने फरवरी, १७७४ में हैदरअली के साथ गुप्त समझौता कर लिया जो कल्याण दुर्ग की सन्धि के नाम से प्रसिद्ध है। इसके अनुसार हैदरअली ने रघुनाथराव को न्यायसम्मत पेशवा स्वीकार कर लिया तथा आगामी ६ वर्षों तक वह उसका बराबर समर्थन करता रहा। वह उसकी इस प्रकार सेवा करता रहा कि उसके अपने हितों को कोई हानि न पहुँचे और कोई विशेष व्यय भी न हो। उसने नारायण-राव की हत्या के कारण छिपे हुए व्यक्तियों—तुलाजी पवार, बाजीराव बर्वे, मानाजी फड़के आदि—को शरण दी। इनकी सुरक्षा के लिए रघुनाथराव ने प्रार्थना की थी। हैदरअली को यह पता लगाने में देर न लगी कि रघुनाथराव का पक्ष अरक्षित हो गया है और पूना में वह अपनी स्थिति की रक्षा करने में अब समर्थ नहीं है। किसी पक्ष के साथ अपना सम्बन्ध जोड़े बिना हैदरअली ने मराठा राज्य को बुरी तरह नष्ट कर दिया। उसने केवल पेशवा माधवराव द्वारा अधीन किये गये प्रदेश पर ही पुनः अधिकार नहीं कर लिया, अपितु पटवर्धनों की शक्ति का सर्वनाश कर दिया। हैदरअली ने मुरारराव घोरपड़े का भी अन्त कर दिया जो गुट्टी में बहुत समय से कठिन परिस्थिति में पड़कर भी अपनी सत्ता की रक्षा कर रहा था। हैदरअली ने पेशवा के अधीनस्थ दो सरदारों—सावनूर के नवाब तथा मुरारराव—को अत्यन्त कष्ट दिया, क्योंकि पूना से उनको कोई सहायता प्राप्त न हो सकी।

अप्रैल, १७७४ में हैदरअली ने शिरा पर अधिकार कर लिया तथा इसके रक्षक मराठा वीर बापूजी शिन्दे को अधीनता स्वीकार करने पर विवश कर दिया। इसके बाद उसने बालापुर तथा मुदगिरि पर अधिकार कर लिया। १७७५ में जब पूना की सेनाएँ रघुनाथराव के विरुद्ध गुजरात में व्यस्त थीं, हैदरअली किट्टूर के देसाई तथा कोल्हापुर के राजा से मिल गया। कोन्हेरराव पटवर्धन ने कुछ समय तक उसकी प्रगति पर सशक्त अंकुश रखा। १७७६ के आरम्भ में हैदरअली ने मुरारराव की ओर ध्यान दिया; क्योंकि उसने बची-खुची मराठा शक्ति को उस क्षेत्र में बहुत दिनों से सुरक्षित कर रखा था। हैदरअली भारी सेना लेकर गुट्टी पर टूट पड़ा तथा वहाँ के वयोवृद्ध सरदार को आत्मसमर्पण की आज्ञा दी। उसने हैदरअली का आदेश वीरतापूर्वक अस्वीकार कर दिया तथा ६ माह तक अपनी राजधानी की रक्षा करता रहा। उसको पूना से सहायता पहुँचने की प्रतिक्षण आशा थी। गुट्टी दुर्ग में जल समाप्त हो जाने से १५ मार्च, १७७६ को मुरारराव विजेता के समक्ष अपने समस्त परिवार सहित आत्मसमर्पण करने के लिए विवश हो गया। मुरारराव द्वारा गुट्टी की रक्षा मराठा इतिहास का रोमांचकारी अध्याय है। इसमें अनेक आश्चर्यकारी घटनाएँ घटित हुईं जिनसे मराठा वीरता को गौरव प्राप्त होता है। हैदरअली ने मुरारराव पर दबाव डाला कि वह अपने बहुमूल्य पदार्थों का खजाना बता दे। जब उसने ऐसा करने से इनकार कर दिया तो हैदरअली ने उसे अकथनीय यातनाएँ दीं। वह निर्दयतापूर्वक काबलदुर्ग के बन्द कारागार में डाल दिया गया, जहाँ पर अत्यन्त अमानवीय व्यवहारों को सहन कर मुरारराव ने अपना जीवन समाप्त कर दिया। जनमत के अनुसार हैदरअली जैसे शत्रु को भी ऐसा व्यवहार करना अशोभनीय था। मुरारराव का देहान्त कहाँ और किस प्रकार हुआ, इसका उल्लेख नहीं है। बाद को प्रायश्चित्त के रूप में पेशवा की सरकार ने उसकी पत्नी और उसके परिवार के अन्य जीवित सदस्यों के लिए निर्वाह का प्रबन्ध कर दिया। उसके भाई के वंशज बेलारी के समीप सन्दूर में शासन करते रहे।

मुरारराव के दुखद अन्त पर समस्त राष्ट्र में असीम क्रोध तथा प्रतिशोध की भावना जाग्रत हो उठी। नाना फड़निस ने निजामअली को, जिसको हैदरअली के आक्रमण से समान हानि हुई थी, साथ लेकर तुरन्त कर्णाटक में मराठा स्थिति को पुनः प्राप्त करने का कार्य आरम्भ कर दिया। परन्तु इसके पहले कि कोई प्रभावोत्पादक कार्य किया जा सकता, हैदरअली उत्तर में बहुत दूर तक प्रवेश कर गया तथा हुबली और धारवाड़ पर अधिकार कर लिया। इन कारणों से उसकी स्थिति अत्यन्त शक्तिशाली हो गयी। हरिपन्त फड़के ने

पाण्डुरंगराव तथा कोन्हेरराव पटवर्धन के साथ १७७६ के अन्त के लगभग हैदरअली के विरुद्ध प्रयाण किया। ८ जनवरी, १७७७ को साँसी में (धारवाड़ के समीप) विकट तथा रक्तमय रण हुआ जिसमें भारी हानि के साथ पटवर्धन लोग परास्त हो गये। कोन्हेरराव मारा गया तथा कुछ घोरपड़े लोगों के साथ उसके तीन चचेर भाई घायल हो गये और पकड़ लिये गये। इस समय अन्य क्षेत्र में व्यस्त होने के कारण हरिपन्त इस रण में उपस्थित नहीं था। रघुनाथराव के दूत बाजीराव बर्वे ने, जो उस समय हैदरअली के शिविर में उपस्थित था, इन मराठा बन्दियों का कष्ट कम करने का यथाशक्ति प्रयास किया। पाण्डुरंगराव का देहान्त घावों के कारण शत्रु की कैद में ही हो गया। बाद में अन्य व्यक्ति छोड़ दिये गये।

१७७७ तथा १७७८ में हरिपन्त तथा परशुराम भाऊ ने यह प्रयास किया कि वे इन क्षेत्रों में खोई हुई स्थिति को पुनः प्राप्त कर लें। परन्तु वे इस कार्य को बिना समाप्त किये ही छोड़ने को विवश हो गये, क्योंकि नाना ने उनको साग्रह वापस बुला लिया। नाना चाहता था कि वे पहले मोरोबा फड़निस के विद्रोह से शासन की रक्षा करें और बाद में उस वर्ष की वर्षाऋतु के पश्चात पूना पर ब्रिटिश चढ़ाई का सामना करें। १७७७ की वर्षाऋतु में मानाजी फड़के पूना सरकार के सेवक के रूप में हरिपन्त के साथ था। परन्तु वह हृदय से रघुनाथराव का पक्षपाती था, इसलिए उसने एक कुत्सित कर्म किया। उसने विश्वासघातपूर्वक हैदरअली के साथ हरिपन्त तथा परशुराम भाऊ का नाश करने की गुप्त योजना बनायी। सौभाग्यवश उसके षड्यन्त्रों का समय पर पता चल गया। मानाजी पर आक्रमण किया गया और वह परास्त हो गया। यदि वह तत्काल पलायन द्वारा अपने जीवन की रक्षा न कर लेता तो तत्काल उसका बध कर दिया जाता। १७७८ के मध्य में कर्णाटक स्थित मराठा सेनाएँ पूना को वापस आ गयीं। महादजी शिन्दे ने पहले ही कोल्हापुर के राजा का दमन कर दिया था और हैदरअली शीघ्र ही नाना फड़निस द्वारा संगठित ब्रिटिश-विरोधी संघ में सम्मिलित हो गया था। सालबई की सन्धि तथा १७८२ में हैदरअली की मृत्यु से मराठों तथा मैसूर शासन के भावी सम्बन्धों का झुकाव भिन्न दिशा में हो गया।

११. **अल्पवयस्क पेशवा का संवर्धन**—संसार में पेशवा के प्रवेश की घोषणा ब्रिटिश-मराठा युद्ध के साथ की गयी। भाग्य के ऐसे उलट-फेर की छाया में सम्भवतः कभी किसी शिशु का जन्म नहीं हुआ होगा। १८ अप्रैल, १७७४ को पूना तथा बाह्य जगत में उसके जन्म का अत्यन्त हर्षपूर्वक स्वागत किया गया। जनता की यह धारणा थी कि दिवंगत पेशवा माधवराव ने ही उसके

रूप में अवतार ग्रहण किया है। इसी कारण शिशु का नाम वही रखा गया। नाना फड़निस तथा अन्य अभिभावकों ने पेशवा के स्वास्थ्य तथा सुरक्षा के सम्बन्ध में किसी भी पूर्व सावधानी की लेशमात्र भी उपेक्षा नहीं की। जब बालक की आयु तीन वर्ष की थी तभी अल्पकालीन ज्वर होने के कारण पुरन्दर में उसकी माता का देहान्त हो गया। उस गढ़ की अतिवृष्टि तथा शीत में उसने अपने प्रथम पाँच वर्ष व्यतीत किये। जिस कमरे में पेशवा निवास करता था उसके द्वार पर पुरुषोत्तमदाजी पटवर्धन सदैव रक्षक के रूप में उपस्थित रहता था। समस्त सार्वजनिक अवसरों पर—उदाहरणार्थ, दरबारों तथा स्वागतों के अवसरों पर—पुरुषोत्तमदाजी मुख्य स्थान ग्रहण करता और शिशु उसकी गोद में बैठता था। वह गर्वपूर्वक उसको मराठा राज्य के भावी शासक के रूप में प्रदर्शित करता। जब जनवरी, १७७४ में ब्रिटिश सेना वड़गाँव में बुरी तरह परास्त हो गयी तो प्रत्येक व्यक्ति उचित हर्ष से चिल्ला उठा कि यह सफलता बालक पेशवा के सौभाग्य के कारण प्राप्त हुई है।

नाना फड़निस ने पेशवा का विवाह-संस्कार १० फरवरी, १७८३ को थट्टे परिवार की रमाबाई नामक कन्या से पूना में कर दिया। पेशवा की आयु इस समय ९ वर्ष से कुछ कम थी। इस अवसर पर वैभव का विपुल प्रदर्शन किया गया। इस उत्सव में सतारा के छत्रपति तथा अधिकांश प्रमुख सरदारों ने भाग लिया। केवल महादजी सम्मिलित न हो सका, क्योंकि मालवा में उसकी उपस्थिति की अत्यन्त आवश्यकता थी। इस अवसर पर निजामअली का ज्येष्ठ पुत्र हैदराबाद से आया। नाना फड़निस की संगठनात्मक शक्तियाँ तथा इस अवसर को प्रत्येक प्रकार से सफल बनाने के लिए सूक्ष्म विवरण की ओर उसका नियमित ध्यान पर्याप्त रूप से प्रकट हुआ। समस्त अतिथियों और राज्य के सदस्यों ने इस बात को मुक्त-कण्ठ से स्वीकार किया। इस उत्सव की इस प्रकार की समाप्ति से समस्त राष्ट्र का उत्साह बहुत बढ़ गया तथा वे भविष्य में विश्वासपूर्वक महान कार्यों को अंगीकार करने के लिए समर्थ हो गये।

तिथिक्रम

अध्याय ५

८ मार्च, १७५१	दि बायने का जन्म ।
१७७८	दि बायने का मद्रास में आगमन तथा ब्रिटिश सेवा में प्रवेश ।
१६ अप्रैल, १७७८	जयपुर के पृथ्वीसिंह की मृत्यु, प्रतापसिंह उसका उत्तराधिकारी ।
१७८२	दि बायने का कलकत्ता जाना ।
६ अप्रैल, १७८२	मिर्जा नजफखाँ की मृत्यु ।
मार्च, १७८३	स्थायी ब्रिटिश प्रतिनिधि के रूप में जेम्स ब्राउन का दिल्ली में आगमन ।
ग्रीष्म, १७८३	मराठा राजदूत हिंगने का ग्वालियर में महादजी से मिलना ।
३० जून, १७८३	आगरा के समीप महादजी का जवाँबख्त से मिलना ।
२७ जुलाई, १७८३	महादजी द्वारा ग्वालियर पर अधिकार ।
२३ सितम्बर, १७८३	मिर्जा शफी की हत्या ।
दिसम्बर, १७८३	शिन्दे की रेजीडेन्सी से डेविड ऐण्डर्सन का अवकाश ग्रहण, उसका भाई जेम्स उसका उत्तराधिकारी ।
२६ फरवरी, १७८४	शिन्दे के समक्ष गोहद का आत्मसमर्पण ।
आरम्भ, १७८४	दि बायने शिन्दे की सेवा में ।
मार्च २७-अगस्त २७, १७८४	वारेन हेस्टिंग्ज लखनऊ में ।
अप्रैल, १७८४	मिर्जा जवाँबख्त का दिल्ली से पलायन तथा लखनऊ में हेस्टिंग्ज से मिलना ।
अगस्त, १७८४	अन्त में जवाँबख्त का ब्रिटिश वृत्ति पर बनारस में निवास ।
५ अक्तूबर, १७८४	महादजी का ग्वालियर से आगरा जाना ।
३ नवम्बर, १७८४	हमदानी द्वारा अफरासियाबखाँ की हत्या ।
१४ नवम्बर, १७८४	सम्राट द्वारा अपने दरबार में शिन्दे का स्वागत तथा उसे वकीले-मुतलक नियुक्त करना ।
५ फरवरी, १७८५	वारेन हेस्टिंग्ज भारत से बिदा ।

२१ फरवरी, १७८५	जाबिताखाँ की मृत्यु ।
२१ फरवरी, १७८५	ब्राउन का दिल्ली से वापस बुलाया जाना ।
२६ मार्च, १७८५	शिन्दे द्वारा आगरा का किला हस्तगत ।
जून, १७८५	शिन्दे द्वारा मथुरा में स्थायी शिविर स्थापित ।
जून, १७८५	शिन्दे द्वारा लाडोजी देशमुख सम्राट का प्रबन्धक नियुक्त ।
जून, १७८५	मचेरी के प्रतापसिंह से शिन्दे की मैत्री ।
अगस्त, १७८५	शिन्दे द्वारा राघोगढ़ का घेरा ।
२० नवम्बर, १७८५	शिन्दे द्वारा रामगढ़ उर्फ अलीगढ़ पर अधिकार ।
१७८६	शिन्दे द्वारा राघोगढ़ के राना को हस्तगत करके अपनी ओर मिलाना ।
१७८६	शिन्दे के विरुद्ध गोसाईं भाइयों का षड्यन्त्र ।
आरम्भ, १७८६	शिन्दे तथा सम्राट का बलपूर्वक कर प्राप्त करने के लिए जयपुर में प्रवेश—राजा का भुगतान करने से इनकार—रायजी पाटिल बलपूर्वक कर प्राप्त करने के लिए जयपुर में नियुक्त ।
१० मार्च, १७८७	डीग में सम्राट के राज्यारोहण का अनुरूप उत्सव, उसका तथा शिन्दे का जयपुर के विरुद्ध प्रयाण ।
ग्रीष्म, १७८७	तैमूरशाह का पेशावर में आगमन, उसके द्वारा भारत पर आक्रमण की तैयारी ।
जून, १७८७	हमदानी द्वारा शिन्दे का पक्ष त्याग तथा जयपुर के राजा से मिलना; शिन्दे के विरुद्ध राजा प्रतापसिंह का आक्रमण आरम्भ ।
२८, २९ जुलाई, १७८७	लालसोट के समीप दो लड़ाइयाँ—हमदानी का वध ।
३० जुलाई, १७८७	मुगल सैनिकों द्वारा शिन्दे का पक्ष त्याग तथा राजपूत संघ में सम्मिलित होना ।
अगस्त, १७८७	महादजी अलवर को वापस ।
२४ अगस्त, १७८७	लाडोजी देशमुख द्वारा आत्मरक्षार्थ दिल्ली का त्याग ।
२७ अगस्त, १७८७	अजमेर पर शिन्दे का अधिकार समाप्त ।
५ सितम्बर, १७८७	गुलाम कादिर का सम्राट से सत्ता छीन लेना ।
५ सितम्बर, १७८७	कार्नवालिस का लखनऊ आगमन ।
१६ सितम्बर, १७८७	इस्माइल बेग का आगरा नगर पर अधिकार । होलकर तथा अली बहादुर का उत्तर को प्रस्थान ।

१४ नवम्बर, १७८७	सम्राट के कष्ट निवारण में असमर्थ होकर अम्बूजी इंगले का लौटना।
८ दिसम्बर, १७८७	जवाँबख्त का दिल्ली आगमन।
फरवरी, १७८८	जवाँबख्त बनारस को वापस।
फरवरी, १७८८	शिन्दे चम्बल को वापस।
१७ फरवरी, १७८८	गुलाम कादिर का अलीगढ़ पर अधिकार।
२७ अप्रैल, १७८८	इस्माइल बेग तथा गुलाम कादिर चकसन में परास्त।
१ जून, १७८८	जवाँबख्त की बनारस में मृत्यु।
१८ जून, १७८८	इस्माइल बेग आगरा के समीप पददलित—शिन्दे की सत्ता पुनः स्थापित।
४ जुलाई, १७८८	शिन्दे का मथुरा पर अधिकार—रामसिंह जाट द्वारा उसका साथ देना।
४ जुलाई, १७८८	इस्माइल बेग शाहदरा में गुलाम कादिर के साथ—उनमें समझौता।
८ जुलाई, १७८८	रावलोजी पाटिल तथा भगीरथ शिन्दे द्वारा सम्राट को सहायता प्रस्तुत—उनका प्रस्ताव अस्वीकृत।
२४ जुलाई, १७८८	सम्राट द्वारा गुलाम कादिर की माँगें स्वीकार।
३० जुलाई, १७८८	गुलाम कादिर का दिल्ली पर अधिकार, सम्राट ६८ दिनों तक कारागार में।
३१ जुलाई, १७८८	सम्राट सिंहासनच्युत—बेदारबख्त सिंहासनारूढ़।
१० अगस्त, १७८८	शाहआलम का अन्धा किया जाना।
२३ अगस्त, १७८८	शाह निजामुद्दीन द्वारा गुलाम कादिर पर आक्रमण—शाह परास्त।
२६ अगस्त, १७८८	गुलाम कादिर का सम्राट से मिलना तथा मीर-बख्शी का पद माँगना।
५ सितम्बर, १७८८	गुलाम कादिर मीरबख्शी नियुक्त—आतंकपूर्ण शासन का आरम्भ—उसका निवासियों को भूखा मार डालना—राजभवनों तथा नगर-गृहों को खोद डालना।
२३ सितम्बर, १७८८	मंसूरअली नाजिर की तगड़ी पिटाई।
२८ सितम्बर, १७८८	रानाखाँ तथा जीवबा बख्शी का दिल्ली पर अधिकार।
२ अक्तूबर, १७८८	इस्माइल बेग द्वारा रानाखाँ का साथ दिया जाना।

१० अक्तूबर, १७८८	दिल्ली के गढ़ में बारूदखाने में विस्फोट—गुलाम कादिर द्वारा दिल्ली के गढ़ का त्याग।
११ अक्तूबर, १७८८	मराठों का दिल्ली के गढ़ में प्रवेश।
१२ अक्तूबर, १७८८	गुलाम कादिर का पीछा किया जाना।
१६ अक्तूबर, १७८८	शाहआलम अपने सिंहासन पर पुनः प्रतिष्ठित।
३ नवम्बर, १७८८	रानाखाँ द्वारा गुलाम कादिर का पीछा करना।
४ नवम्बर, १७८८	अली बहादुर का शिन्दे के शिविर में आगमन।
६ नवम्बर, १७८८	रानाखाँ का मेरठ में आगमन।
१७ नवम्बर, १७८८	अली बहादुर मेरठ में रानाखाँ के साथ।
१७ दिसम्बर, १७८८	गुलाम कादिर का मेरठ से पलायन।
१८ दिसम्बर, १७८८	गुलाम कादिर का पकड़ा जाना।
१४ फरवरी, १७८९	गुलाम कादिर का मथुरा लाया जाना।
३१ दिसम्बर, १७८९	अली बहादुर द्वारा गुलाम कादिर प्रकरण का पूर्ण वृत्तान्त नाना फड़निस को देना।
४ मार्च, १७८९	गुलाम कादिर तथा बेदारबख्त का वध—गौवध निषेधाज्ञा का प्रकाशन।
अप्रैल, १७८९	तुकोजी होल्कर का मथुरा पहुँचना।
दिसम्बर, १७८९	दि बायने द्वारा अवकाश ग्रहण।
१८३०	दि बायने की चम्बेरी में मृत्यु।

अध्याय ५

मराठों का दिल्ली में पुनरागमन

[१७८३-१७८८ ई०]

१. दो समकालीन व्यक्ति—नजफखाँ तथा महादजी । २. बेनौय दि बायने ।

३. दिल्ली में ब्रिटिश महत्वाकांक्षाएँ । ४. महादजी के लिए वकीले-मुतलकी ।

५. राजपूतों के विरुद्ध महादजी का युद्ध—लालसोट । ६. महादजी की स्थिति में सावधानी-पूर्वक सुधार ।

७. गुलाम कादिर मुगल प्रासाद में । ८. अली बहादुर मैदान में ।

१. दो समकालीन व्यक्ति—नजफखाँ तथा महादजी—ब्रिटिश-मराठा युद्ध से भारतीय शक्तियों की आँखें अच्छी तरह खुल गयीं । यदि भारतीय शक्तियाँ समय पर क्रियाशील नहीं हो जातीं तो यूरोप द्वारा भारत की विजय अब व्यावहारिक रूप से निश्चित हो गयी थी । क्लाइव के समय से ही भारत की युद्ध शैली में शनैः-शनैः क्रान्ति हो रही थी । अधिकांश भारतीय शक्तियों ने अपनी सेनाओं का संगठन पश्चिमी शैली पर आरम्भ कर दिया था, तथा वे इंगलिश, फ्रेंच तथा अन्य यूरोपीय लड़ाकों को अपनी सेवा में नियुक्त करने लगी थीं । इस समय ये लोग धाराप्रवाह रूप में झुण्ड के झुण्ड भारत आने लगे थे। सम्राट के कार्य इस समय मिर्जा नजफखाँ नामक एक योग्य सैनिक कूटनीतिज्ञ के प्रबन्ध में थे । बाबर के पतनोन्मुख वंश को सहायता देने की इच्छा वाला वह अन्तिम विलक्षण-बुद्धि महान मुस्लिम था । उसका पालन-पोषण ब्रिटिश लोगों के सम्पर्क में हुआ था । नजफखाँ ने अपने सभी बहुमूल्य अनुभव सम्राट के उपयोग के लिए प्रस्तुत कर दिये । सर यदुनाथ कहते हैं—"नजफखाँ ने रणक्षेत्र में ब्रिटिश सेनाओं का सामना किया तथा बाद में उन्हीं के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर युद्ध किया । वह नवीन युद्ध-शैली को जानता था तथा उसका आदर करता था । उसने शीघ्र ही अपने आप को परिवर्तन के अनुकूल बना लिया । उसने सफलतापूर्वक विदेशी तत्त्वों तथा विभिन्न यन्त्रों को अपनी सेना में सम्मिलित कर लिया । उसने अपना ध्यान आग्नेय अस्त्रों पर केन्द्रित किया तथा यूरोपीय ढंग पर प्रशिक्षित दस हजार पैदल बन्दूकची और विकसित

भारी तोपखाना एकत्र कर लिया। उसने इन दो सेनांगों में उस समय भारत में मिलने वाले उत्तम सवार तथा मुगल घोड़े सम्मिलित कर लिये।"[1] उसने सम्राट की सेवा कुछ योग्य फ्रांसीसियों—काउण्ट द मोडेव, ग्ने मेडेक—जर्मन वाल्टर रेनहार्ट (उपनाम समरू) तथा उसकी बेगम को नियुक्त कर दिया। समरू तथा उसकी बेगम बाद के इतिहास में बहुत प्रसिद्ध हुए। इनके अतिरिक्त उसकी सेवा में उसकी इच्छानुकूल योग्य मुसलमान भी थे; जैसे उसका दत्तक पुत्र अफरासियाबखाँ, उसकी बहन का पुत्र मिर्जा शफी तथा मुहम्मद बेग हमदानी नामक एक वीर योद्धा जिसको नजफखाँ ने आगरा के शाही गढ़ का संरक्षक नियुक्त किया। दो गोसाई बन्धु उमरावगिरि तथा अनूपगिरि भी शाही सेना में नियुक्त किये गये। उनके पास अपनी गोसाई सेनाएँ थीं।

प्रमुख रूप से महादजी शिन्दे के कारण १७७२ में शाहआलम अपनी दिल्ली की राजधानी में पुनः स्थापित हुआ था। वह उस कार्य के निमित्त ब्रिटिश समर्थन प्राप्त करने में असफल हो गया था। उसी समय से महादजी की यह महत्त्वाकांक्षा थी कि वह सम्राट् के कार्यों का नियन्त्रण प्राप्त कर ले, परन्तु पेशवा नारायणराव की हत्या के कारण महादजी को ब्रिटिश-मराठा युद्ध के संचालनार्थ वापस जाना पड़ा। इस युद्ध में १७७३ से लगभग १० वर्ष लग गये। उसकी अनुपस्थिति मिर्जा नजफखाँ के लिए लाभकारक सिद्ध हुई। परन्तु ६ अप्रैल, १७८२ को इस सरदार की मृत्यु तथा सालबई की सन्धि के कारण, जो एक मास बाद निश्चित हुई, महादजी पुनः सम्राट के कार्यों की ओर अपना ध्यान देने के लिए स्वतन्त्र हो गया। इस समय उसे नजफखाँ द्वारा रिक्त किया गया पद ग्रहण करना था।

जब मिर्जा नजफखाँ की मृत्यु हो गयी और महादजी ने मराठा परिस्थिति पर अधिकार प्राप्त कर लिया तो सम्राट ने तुरन्त उससे प्रार्थना की, क्योंकि वही राजनीतिक क्षितिज पर एकमात्र उदीयमान नक्षत्र था। अपने कार्यों को विश्वासपूर्वक महादजी के अधीन करने के लिए सम्राट इस प्रकार उत्सुक थे कि उन्होंने दिल्ली-स्थित मराठा राजदूत को भावी योजनाओं का पूर्ण निर्देश देकर महादजी के शिविर में भेजा। हिंगने ने महादजी को इस प्रकार लिखा—"इस अवसर पर आप केवल आर्थिक लाभ के अतिरिक्त अनेक अन्य ठोस लाभ भी प्राप्त कर सकते हैं। हो सकता है कि इस प्रकार का अवसर फिर कभी न आये। तत्कालीन सन्धि के कारण उत्पन्न अनेक कष्टप्रद परिणामों से मुक्त होने में महादजी को बहुत समय लग गया था। इसलिए हिंगने ने १७८३ के ग्रीष्म में दिल्ली से ग्वालियर की यात्रा की तथा व्यक्तिगत रूप से शाही परिस्थिति को

---

[1] मुगल-साम्राज्य का पतन, जिल्द २, पृष्ठ ४२

महादजी के सामने स्पष्ट किया, जिससे वह सम्राट का पक्ष ग्रहण करने के लिए उसको अविलम्ब राजी कर लें।

महादजी के पास बहुत समय तक झिझकने के लिए सबल कारण थे। वह जानता था कि उसे धन अथवा सेना किसी भी रूप में पूना से कोई सहायता नहीं मिलेगी, क्योंकि पूना-दरबार उस समय अपनी ही रक्षा नहीं कर सकता था। महादजी को यह भी अच्छी तरह पता था कि संकट के समय मुगल दरबार पर भरोसा नहीं किया जा सकता। दिल्ली का साहसिक काय स्वीकार करने के लिए उसे बुन्देलखण्ड में बहुत शक्तिशाली केन्द्र की तथा अपनी आज्ञा में रहने वाली बहुत ही सुसज्जित सेना की आवश्यकता थी। इस प्रकार के केन्द्र की सुरक्षा के निमित्त उसको अपने चिरकालीन शत्रु गोहद के राना को परास्त करना था। महादजी की निजी सेना विशाल अभियान के लिए किसी भी प्रकार संगठित न थी, क्योंकि इस समय पश्चिमी युद्ध-शैली तथा प्रशिक्षित तोपखाना नितान्त आवश्यक हो गये थे और एक क्षण की सूचना पर इनका किसी भी प्रकार प्रबन्ध नहीं हो सकता था। इस अन्धकारमय परिस्थिति में उसके लिए एकमात्र सहायक शक्ति डेविड ऐण्डर्सन के साथ घनिष्ठ मित्रता थी। ऐण्डर्सन का हेस्टिंग्ज को दृढ़ विश्वास था। जब तक हेस्टिंग्ज तथा ऐण्डर्सन अपनी निष्ठा का त्याग नहीं करते, तब तक महादजी की सुरक्षित स्थिति असंदिग्ध थी, यद्यपि अन्य—ब्राउन, मैक्फर्सन और कर्क पैट्रिक आदि—सब के सब अंग्रेज उत्सुक थे कि महादजी को दिल्ली के दरबार में अपना प्रभाव स्थापित न करने दें। महादजी की इच्छा थी कि वह ऐण्डर्सन को लाभदायक जागीर देकर उसके साथ अपनी घनिष्ठ मित्रता सुपुष्ट कर ले, क्योंकि इस शाही चक्र में महादजी अंग्रेजों की मित्रता के सहारे ही मनमानी कर सकता था। ऐण्डर्सन के लिए उक्त जागीर के विषय में जो उत्साहपूर्ण प्रयास महादजी ने किये, उसका यही कारण था। नाना फड़निस ने इन प्रयासों का तीव्र विरोध किया।

महादजी के साथ समझौता करने के विषय में अधीर होकर सम्राट ने अपने ज्येष्ठ पुत्र मिर्जा जवाँबख्त को अफरासियाबखाँ तथा मिर्जा शफी के साथ आगरा भेजा। वहाँ पर उन्होंने मराठा सरदार को साक्षात्कार के लिए निमन्त्रण दिया। शहजादा आगरा पहुँचा और उसने महादजी को लिखा—"हम आप से ग्वालियर में मिलने आ रहे हैं।" महादजी ने उत्तर दिया—"आप मेरे पास न आयें। मैं ही आपके पास आऊँगा।" तदनुसार उमरावगिरि गोसाईं मुगलों की ओर से महादजी को लेने तथा उनके सम्मिलन की विस्तृत योजना का प्रबन्ध करने के लिए आया। जून, १७८३ में ५ हजार हल्की सेना और

१० तोपें लेकर शिन्दे आगरा गया। वह पहले अफरासियाबखाँ से मिला और तब वे ऐण्डर्सन तथा चेतसिंह को साथ लेकर जवाँबख्त से मिलने आगे बढ़े। उनका स्वागत खड़े-खड़े किया गया। महादजी ने नजर पेश की। शहजादा ने उसको तथा शेष मण्डली का प्रथानुसार वस्त्र भेंट किये। दूसरे दिन शाहजादा ने महादजी से प्रार्थना की कि वह दिल्ली आकर प्रशासन का भार सँभाल लें। महादजी ने उत्तर दिया—"मैं अभी यह कार्य स्वीकार नहीं कर सकता। गोहद के राना का दमन कर चुकने के पश्चात वर्षाऋतु के बाद ऐसा हो सकेगा।" महादजी से कहा गया कि वह नजीबखाँ रुहेले के पुत्र जाबिताखाँ से मिल लें, परन्तु उसने यह बात नहीं मानी। वह शहजादा से विदा होकर ग्वालियर वापस आ गया।[२]

२. **बेनोय दि बायने**—सालबई की सन्धि के समय से महादजी गोहद के राना को दबाने में व्यस्त था। उसका राज्य आगरा तथा दोआब की सीमा पर बुन्देलखण्ड के उत्तर-पश्चिमी भाग में था। अपने राज्य की स्थिति के कारण वह महादजी के पार्श्व में काँटा-सा हो गया था तथा उस दिशा में मराठा राज्य की रक्षा के लिए उसका सर्वनाश आवश्यक हो गया था। ग्वालियर का सबलगढ़ उसके अधिकार में था और यद्यपि अंग्रेजों ने इस समय उसका साथ देना छोड़ दिया था, परन्तु वह महादजी के लिए प्रत्येक प्रकार का कष्ट उपस्थित करता रहता था। महादजी ने उसके दमनार्थ अपना शिविर सालबई में लगाया। वह वीरतापूर्ण प्रयास के बाद २७ जुलाई, १७८३ को ग्वालियर के गढ़ पर अधिकार करने में सफल हो गया। उसने राना को इस प्रकार निर्बल कर दिया कि उसने २६ फरवरी, १७८४ को गोहद भी समर्पित कर दिया। इस युद्ध की एक उल्लेखनीय घटना यह हुई कि महादजी की दृष्टि दि बायने की विलक्षण सैनिक-प्रतिभा पर पड़ी। भारत के युद्धप्रिय साहसिकों में सर्वाधिक प्रसिद्ध दि बायने का जन्म ८ मार्च, १७५१ को सेवाय में हुआ था। फ्रांस की प्रसिद्ध आयरिश ब्रिगेड में उसको एन्साइन का पद मिला। १७७४ में उसने त्यागपत्र दे दिया तथा ग्रीक टापुओं में वह रूसी कमाण्डर के साथ हो गया। रूस और तुर्की के बीच होने वाले एक अभियान में तुर्कों ने उसको

२　जवाँबख्त तथा महादजी का यह मिलन २७ जून, १७८३ से ५ दिन तक होता रहा। लखनऊ निवासी प्रतिनिधि विलियम पामर इस वार्तालाप में उपस्थित था। आगरा के गढ़ का रक्षक हमदानी गोहद के राना से मिला था। अत: वह महादजी का स्पष्ट शत्रु था। महादजी के संकेत पर उसको मिलने के अवसर पर उपस्थित होने की आज्ञा न मिली।
—सतारा समाज, जिल्द १, पृष्ठ ६६

बन्दी बनाकर कुस्तुन्तुनियाँ में बेच दिया। तब वह सेण्ट पीटर्सबर्ग गया, जहाँ रूसी दरबार में तत्कालीन ब्रिटिश राजदूत लार्ड मैकार्टने की कृपा से वह रूस की साम्राज्ञी कैथराइन की दृष्टि में आ गया। साम्राज्ञी की इच्छा भारतीय व्यापार का मौलिक ज्ञान प्राप्त करने की थी। अतः इस कार्य के लिए उसने दि बायने को नियुक्त कर दिया तथा मैकार्टने के अनुरोध पर दि बायने मिस्र से भारत आया। वह १७७८ में मद्रास पहुँचा। १७८० की शिशिर ऋतु में वह कर्नल बेली के दल के साथ था, जिसका सर्वनाश हैदरअली ने कांजीवरम् के समीप कर दिया था। उसका मित्र मैकार्टने उस समय उस उपनिवेश का गवर्नर होकर आ गया तथा उसके अनुरोध से १७८२ में दि बायने कलकत्ता चला गया और मध्य एशिया होकर रूस वापस पहुँच जाने तथा मार्ग में साम्राज्ञी कैथराइन के लिए व्यापार सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करने के अभिप्राय से वारेन हेस्टिंग्ज से मिला। वारेन हेस्टिंग्ज की सिफारिश लेकर वह लखनऊ गया। वहाँ पर नवाब वजीर आसफउद्दौला ने उसके साथ बहुत सम्मान का व्यवहार किया। यहाँ पर अपने ५ मास के निवास-काल में वह हिन्दुस्तानी बोलना सीख गया तथा स्थायी ब्रिटिश प्रतिनिधि के रूप में बादशाह के पास दिल्ली जा रहे मेजर ब्राउन के साथ हो लिया। मार्ग में ब्राउन ने उसका परिचय डेविड ऐण्डर्सन से करा दिया जो उस समय स्थायी ब्रिटिश प्रतिनिधि के रूप में महादजी शिन्दे के पास नियुक्त था। शिन्दे उस समय गोहद के राना के विरुद्ध अभियान का संचालन कर रहा था। दि बायने ने महादजी को परास्त करने के लिए गुप्त रूप से राना को एक रण-योजना का सुझाव दिया। शिन्दे ने इस षड्यन्त्र का पता लगा लिया तथा ब्रिटिश दूत के अतिथि को इस प्रकार गोहद के युद्ध में अपने विरुद्ध हस्तक्षेप करते देखकर उसे बहुत क्रोध आया। इसी कारण उसने दि बायने को कलकत्ता भिजवा दिया। परन्तु इस घटना से महादजी उस फ्रेंच सज्जन की विलक्षण बुद्धि को जान गया तथा उसने बाद में शीघ्र ही वारेन हेस्टिंग्ज द्वारा उसकी सेवाएँ प्राप्त कर लीं। इस प्रकार १७८४ के आरम्भ में शिन्दे की सेवा में उसका प्रवेश हो गया और उसने ११ वर्ष बाद १७९५ के अन्त में बीमारी के कारण अवकाश ग्रहण किया। सितम्बर, १७९६ में उसने इंगलैण्ड को प्रस्थान किया। भारत में एक मुस्लिम महिला से उसने विवाह कर लिया, जिससे उसके चार्ल्स अलेक्जैण्डर नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो १८३० में उसकी मृत्यु के पश्चात उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसका भव्य स्मारक सेवाय में शैम्बरी के स्थान पर है।[३]

---

३ उसने अपने भारतीय सेवाकाल में संगृहीत धन से शैम्बरी में एक विशाल भवन बनवाया और वह अपने अवकाश का दीर्घकालीन जीवन व्यतीत

महादजी ने उसको अपनी सेवा में नियुक्त करने पर सर्वप्रथम युद्धों के लिए पैदल सैनिकों के दो दल तैयार करने का काम दिया। उसने अपना कार्य इस निपुणता से किया कि वह शनैः-शनैः शिन्दे की दृष्टि में ऊँचा उठता गया। उसने सुन्दर सेना का एक नवीन रूप संगठित कर लिया और अन्त में उच्चतम पूर्णता तक पहुँचा दिया। इसी सुन्दर नवीन उपाय के द्वारा महादजी ने अपने जीवन की अधिकांश विजयों को प्राप्त किया।

३. **दिल्ली में ब्रिटिश महत्त्वाकांक्षाएँ**—यद्यपि वारेन हेस्टिंग्ज ऊपर से महादजी के साथ मित्रता का व्यवहार रखता था, परन्तु राजनीतिक दृष्टि से उसने दिल्ली में मराठा प्रवेश का प्रबल विरोध किया तथा मुगल दरबार में मेजर ब्राउन को ब्रिटिश रेजीडेण्ट नियुक्त कर दिया। वह मार्च, १७८३ को दिल्ली पहुँचा। इसके कारण केवल महादजी औरें नाना फड़निस को ही नहीं, उन समस्त भारतीय शासकों को वेदनामय अनुभव हुआ, जिनको ब्रिटिश आक्रमण का भय था। ५ फरवरी, १७८४ को इस विषय पर हिंगने अपने वृतान्त इस प्रकार भेजता है—"ब्राउन सम्राट से मिला जो धनाभाव के कारण क्षुधा-पीड़ित था। ब्राउन ने सम्राट से प्रस्ताव किया कि यदि आप ब्रिटिश सहायता स्वीकार कर लें तो मैं आपकी सब आर्थिक आवश्यकताएँ पूरी कर दूँगा। इस प्रकार ब्रिटिश आधिपत्य स्वयं-सिद्ध था।" कुछ समय तक सम्राट इस विकल्प में पड़ा रहा कि अंग्रेजों तथा मराठों में से वह किसकी सहायता स्वीकार करे।

आगरा के किले का रक्षक तथा अभिभावक मुहम्मद बेग अमदानी शक्तिशाली सरदार था। वह दिल्ली में मराठा प्रवेश का प्रबल विरोधी था। उसने बहुत दिनों से गोहद के राना का साथ दिया था। इस कारण वह महादजी का घातक शत्रु था। सम्राट द्वारा महादजी से किये गये प्रस्तावों तथा उसके साथ शहजादा जवाँबख्त की वार्ता पर बहुत चिढ़ा हुआ था, तथा सामान्य मुगल प्रथानुसार उसने २३ सितम्बर, १७८३ को महादजी के समर्थक तथा नजफखाँ के उत्तराधिकारी मिर्जा शफी की हत्या कर दी। इस घटना के कारण दोनों दलों के बीच खुला युद्ध आरम्भ हो गया। अफरासियाबखाँ तथा गोसाइयों ने महादजी को साग्रह आह्वान भेजे कि वह विद्रोही हमदानी के दमन में उनकी सहायता करे। महादजी ने तुरन्त अम्बूजी इंगले को भेज दिया तथा गोहद के सम्मुख अपने युद्ध-प्रयासों में से जो कुछ सेना बचा सका, वह उसके साथ कर दी।

किया। उसने नैपोलियन के युद्धों से अपना कोई सम्बन्ध नहीं रखा। फ्रेंच भाषा में उसकी दो जीवनियाँ प्राप्त हैं।

देखो हि० रे० क०, जिल्द ६, १९२६—बेनौय दि बायने पर पत्र

हेस्टिंग्ज तथा उसके सलाहकार कलकत्ते में इन गतिविधियों का उत्साहपूर्वक अवलोकन कर रहे थे। डेविड ऐण्डर्सन ने, जो महादजी का पक्का मित्र था, १७८३ के अन्त में अवकाश ग्रहण कर लिया। उसका भाई जेम्स उसका उत्तराधिकारी हुआ जो पहले उसके सहायक के रूप में कार्य कर रहा था और जो महादजी के प्रति प्रेमभावना नहीं रखता था। उत्तरदायी ब्रिटिश लोगों ने हेस्टिंग्ज की शिन्दे से मित्रता करने तथा राजधानी दिल्ली के कार्यों में उसको स्वतन्त्र अधिकार देने की नीति का अनुमोदन नहीं किया। हेस्टिंग्ज जानता था कि उसका सेवाकाल समाप्त हो रहा है तथा उसकी इच्छा कोई निर्णयात्मक कार्य करने की नहीं थी। तथापि वह कलकत्ता से चल पड़ा और २७ मार्च, १७८४ को लखनऊ पहुँचकर ठहर गया। वहाँ पर उसने जेम्स ऐण्डर्सन को दिल्ली के जटिल कार्यों के सम्बन्ध में परामर्श के लिए बुलाया, जिससे वे कम्पनी सरकार के लिए स्थायी लाभ का कोई मार्ग ढूँढ निकालें। अवध का वजीर पहले से ही अंग्रेजों का आश्रित था। अब हेस्टिंग्ज ने दिल्ली में बिना सशस्त्र संघर्ष के वहाँ के सम्राट को अपने अधीन करने का प्रयत्न आरम्भ किया। अनेक साधनों द्वारा प्रयत्न करता हुआ हेस्टिंग्ज लखनऊ में पूरे ५ मास अर्थात् २७ अगस्त तक ठहरा रहा। इस बीच में सम्राट के उत्तराधिकारी युवराज मिर्जा जवाँबख्त को हेस्टिंग्ज ने प्रलोभन देकर अपने पास बुला लिया। सम्राट अंग्रेजों से मैत्री करने के विरुद्ध नहीं था, परन्तु उसकी मुख्य शर्त यह थी कि उसकी रक्षार्थ ब्रिटिश सेनाएँ स्थायी रूप से दिल्ली में नियुक्त कर दी जायँ। भारी व्यय तथा शिन्दे के विरुद्ध अनावश्यक युद्ध की सम्भावना के कारण हेस्टिंग्ज इस साहसपूर्ण कार्य को अंगीकार नहीं कर सका और न शाहजादा की माँगों को ही सन्तुष्ट कर सका। वह उसको निर्वाह के लिए केवल चार लाख रुपये की वार्षिक वृत्ति ही दे सका। जब अगस्त, १७८४ को हेस्टिंग्ज कलकत्ता लौटा तो शहजादा भी उसके साथ बनारस तक गया और वहीं निवास करने लगा। यहाँ १ जून, १७८८ को उसका देहान्त हो गया।

अप्रैल, १७८४ की एक अन्धकारमय रात्रि में शहजादा के दिल्ली से लखनऊ पलायन से महादजी असीम शंकाओं से घिर गया। उसने अंग्रेजों के प्रलोभन पर हुए इस पलायन को दिखावटी हार्दिक मित्रता के बीच अमैत्रीपूर्ण कार्य समझा। महादजी चरित्र एवं सौजन्य के कारण अंग्रेजों का जो आदर करता था, उस पर इस समय नाना ने उपालम्भ देने में विलम्ब नहीं किया। महादजी को नाना की बात का खण्डन करने में दुख प्रतीत हुआ। उसने स्पष्ट स्वीकार किया कि अंग्रेज असत्यभाषी तथा विश्वासघातक हैं, वे अपना स्वार्थ आ जाने पर समस्त समझौतों तथा प्रतिज्ञाओं की कोई चिन्ता नहीं करते

हैं। इस विश्वास के कारण ही उसने दि बायने को अपनी सेवा में नियुक्त किया तथा अपनी सेना को उन्नत किया, क्योंकि राजनीति के समस्त विवादों का अन्तिम निर्णायक सैन्य-बल ही होता है। उसने तुरन्त अपने दूत सदाशिव मल्हार को हेस्टिंग्ज से मिलकर यह पूछने के लिए लखनऊ भेजा कि उसने सम्राट के कार्यों में हस्तक्षेप क्यों किया और मुझे (शिन्दे को) पूर्व सूचना दिये बिना युवराज को क्यों बुलाया ? इस सम्बन्ध में स्वयं हेस्टिंग्ज ३ मई, १७८४ को लिखता है :—"हमारी सरकार को दिल्ली के कार्यों में हस्तक्षेप करने सम्बन्धी मेरे प्रयत्न पर शिन्दे को अवश्य ही ईर्ष्या हुई होगी, क्योंकि वह दिल्ली को अपनी कानूनी सम्पत्ति समझता है। मुझको मालूम होता है कि शहजादा के आगमन का अभिप्राय अफरासियाबखाँ के विरुद्ध अपने पिता के पक्ष का समर्थन करने के लिए मुझे प्रस्तुत करना है। मेरा निश्चय है कि मैं इस विषय से कोई सम्बन्ध न रखूँ।"[४]

इस प्रकार सम्राट की घोर आवश्यकता में महादजी उसका अत्यन्त प्रबल समर्थक बन गया। अगस्त, १७८४ तक जबकि हेस्टिंग्ज तथा शहजादा लखनऊ में अपनी योजनाएँ बना रहे थे, महादजी को सम्राट के कार्यों की ओर ध्यान दे सकने का अवकाश मिल गया। उसने गोहद के राना को परास्त करके ग्वालियर में दृढ़ आधार प्राप्त कर लिया था तथा दि बायने को अपने लिये पैदल सेना तैयार करने के लिए नियुक्त कर दिया था। शिन्दे को यह आश्वासन देकर हेस्टिंग्स कलकत्ता चला गया कि दिल्ली में उसके कार्य में अंग्रेज किसी प्रकार की बाधा नहीं डालेंगे।

यह स्वीकार करना पड़ेगा कि हेस्टिंग्स को मनुष्य स्वभाव का गम्भीर ज्ञान था। "महादजी का चरित्र उसमें सम्मान की भावना जाग्रत करता था और उसी समय उसका उदार हृदय मन्दभाग्य सम्राट की सहायता के लिए सक्रिय उपाय करने के लिए उसे प्रबल रूप से उत्साहित करता था।" विलियम पामर ने हेस्टिंग्स के इस कार्य का समर्थन किया कि उसने सम्राट की अपेक्षा

---

४ डाडवेल कृत, 'हेस्टिंग्ज के पत्र', पृ० १९३। हेस्टिंग्ज का यह विचार वास्तव में निष्कपट प्रतीत होता है, क्योंकि बाद में महादजी शिन्दे की योजनाओं के प्रति आँख बन्द कर लेने सम्बन्धी आरोप के उत्तर में वह इस प्रकार लिखता है—"मैं घोषणा करता हूँ कि मुगल सम्राट को मराठों को वशीभूत करने के लिए मैंने महादजी से कोई समझौता नहीं किया। मुगल सम्राट ने अन्तिम साधन के रूप में स्वयं को शिन्दे के रक्षाधीन कर दिया था। केवल इसीलिए मैं यदि कम्पनी को मराठों के विरुद्ध युद्ध में फँसा देता तो यह पागलपन का काम होता।"—कीन कृत 'भारत के शासक' पुस्तकमाला में 'महादजी शिन्दे', पृ० १०३

जवाँबख्त को अपनी सुरक्षा में ले लिया। पिता और पुत्र में से ब्रिटिश लोग वृद्ध तथा विश्वासघातक पिता की अपेक्षा पुत्र को अधिक योग्य समझते थे। यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि उस पद पर हेस्टिंग्स का उत्तराधिकारी भी शिन्दे द्वारा किये गये शाही कार्यों के प्रबन्ध में हस्तक्षेप करने से उसी प्रकार दूर रहा। किन्तु मेजर ब्राउन ने सम्राट को तुरन्त ब्रिटिश सुरक्षा देने का समर्थन किया। "ब्राउन यथाशक्ति वारेन हेस्टिंग्स की परित्यक्त योजना को पुनरुज्जीवित करने और इसके द्वारा सम्राट को अंग्रेजों का वशवर्ती शासक बना दिये जाने का यथाशक्ति समर्थन करता रहा। वह चाहता था कि साम्राज्य पर किसी मुस्लिम राज-प्रतिनिधि द्वारा शासन किया जाय जो राजधानी में ब्रिटिश रेजीडेण्ट के इच्छाधीन उसी प्रकार रहे, जिस प्रकार अवध का नवाब पहले से था।"[४] महादजी ने लिखा है—"सम्राट ने मुझे अपने पास उपस्थित होने तथा उसके पुत्र जवाँबख्त की योजनाओं को विफल बना देने के लिए बार-बार निमन्त्रण भेजे हैं, जो लखनऊ में ब्रिटिश सुरक्षा प्राप्त करने को भाग गया था। अफ्रासियाबखाँ ने भी उसी प्रार्थना को दोहराया है। अतः मैं आगरा जा रहा हूँ, जहाँ सम्राट भी आ रहे हैं।" ५ अक्तूबर, १७८४ के लगभग महादजी ग्वालियर से आगरा की ओर बढ़ा, जहाँ इस समय सम्राट निवास कर रहे थे। अफ्रासियाबखाँ ने आगे बढ़कर २४ अक्तूबर को फतेहपुर सीकरी के पास महादजी का स्वागत किया। अफ्रासियाबखाँ के इस कार्य पर मुहम्मद बेग हमदानी बहुत रुष्ट हुआ तथा भावी प्रगति को रोकने के लिए हमदानी ने ३ नवम्बर को उसी के तम्बू में अफ्रासियाबखाँ की हत्या करा दी। इस प्रकार हमदानी ने मराठों के प्रति घृणा के कारण दो प्रमुख मुगल मन्त्रियों की अकारण हत्या कर दी। परन्तु इन हत्याओं से उसे कोई लाभ नहीं हुआ। सम्राट तथा समस्त दरबार ने इस कार्य की निन्दा को और हत्यारे को पर्याप्त दण्ड देने के लिए महादजी को प्रेरित किया। हमदानी को पकड़ने के लिए पीछा करने वालों की शक्तिशाली टोलियाँ तुरन्त भेज दी गयीं। उसने अम्बूजी इंगले के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया तथा वह कड़े पहरे में रख दिया गया। बाद में वह भाग निकला और उसने महादजी के लिए आगे भी कठिनाई उपस्थित की। अन्त में वह २८ जुलाई, १७८७ को लालसोट के प्रसिद्ध युद्ध में मारा गया। इससे महादजी को सम्राट का अत्यन्त उत्साही समर्थक बनने का अवसर मिल गया।

४. **वकील-ए-मुतलक**—जब महादजी ग्वालियर से बढ़ा, तभी सम्राट ने आगरा से प्रस्थान किया, जिसमें वह फतेहपुर सीकरी के समीप उसके शिविर

---

४ मुगल-साम्राज्य का पतन, जिल्द ३, पृष्ठ २६२

में उससे भेंट करे। यह स्थान लगभग वही था जहाँ अफ्रासियाबखाँ की हत्या की गयी थी। महादजी ने आकर स्वागतार्थ एक शामियाना लगाया, जहाँ उसने १४ नवम्बर, १७८४ को सर्वप्रथम सम्राट को प्रणाम किया। उसने अपना सिर सम्राट के पैरों पर रख दिया और उसको १०१ मुहरों की भेंट दी। सम्राट ने उसको अपने पास बैठा लिया तथा उसे समस्त प्रशासकीय कार्य सँभाल लेने की आज्ञा दी। हेस्टिंग्ज अन्तिम रूप से फरवरी, १७८५ में भारत से चल दिया और ब्राउन भी कुछ ही दिन बाद दिल्ली से वापस बुला लिया गया।

सम्राट ने अब मुगल राज्य के समस्त प्रशासन अधिकार महादजी को दे दिये। उसने महादजी को वकील-ए-मुतलक (सर्वाधिकार प्राप्त राज-प्रतिनिधि) की भव्य उपाधि दी। यह उच्चतम कार्याधिकारी का पद था। इसमें वजीर तथा मीरबख्शी दोनों के कर्तव्य सम्मिलित थे। भूतकाल में यह उपाधि केवल एक बार सम्राट मुहम्मद शाह द्वारा निजामुल्मुल्क को प्रदान की गयी थी। उस पद के परम्परागत वस्त्र तथा पदसूचक अनेक चिह्न—अर्थात् नालकी, माही मरातब, नगाड़े, घोड़े, हाथी आदि—महादजी को विधिपूर्वक भेंट किये गये। महादजी ने कहा कि सत्ता के ये चिह्न उसको पेशवा के नाम पर दिये जायँ, जिसका वह प्रतिनिधि है। परन्तु महादजी के प्रार्थना-पत्र के सम्बन्ध में दिये गये अपने लिखित उत्तर में सम्राट ने पेशवा का नाम न लिखकर महादजी का नाम ही लिखा। इस कारण यह था कि पेशवा बहुत दूर था तथा सम्राट घटना स्थल पर उपस्थित केवल महादजी को ही उत्तरदायी अधिकारी के रूप में मान्यता देना चाहता था। सम्राट के इस स्पष्टीकरण तथा इसके प्रति महादजी की सहमति से नाना फड़निस बहुत रुष्ट हुआ। उसने महादजी पर पेशवा से स्वतन्त्र होकर अपनी सत्ता स्थापित करने के लिए इच्छुक होने का आरोप लगाया। यह कलह बहुत दिनों तक कटुरूप से चलती रही तथा उत्तर भारत में मराठा हितों पर कुछ अंश तक इसका निस्सन्देह प्रभाव पड़ा।

महादजी का नवीन पद फूलों की सेज नहीं थी। उसका पहला काम बड़ी-बड़ी जागीरों का उपभोग करके भी बदले में कोई सेवा न करने वाले समस्त मुगल सरदारों को आज्ञाकारी बनाना था। महादजी के लिए यह कार्य अत्यन्त दुष्कर सिद्ध हुआ तथा इसी कारण नवीन प्रशासन में उसके अनेक शत्रु पैदा हो गये। शाहआलम संकुचित हृदय, कायर, किन्तु चालाक व्यक्ति था। उसने अपने कथन और प्रदर्शन के अनुसार महादजी को किसी कार्य में पूर्ण हार्दिक समर्थन नहीं दिया। खालसा भूमियों पर नियन्त्रण प्राप्त करना और कर-संग्रह को नियमित तथा सुनिश्चित रूप देना मुख्य कर्तव्य था, जिसको महादजी ने अपने हाथों में लिया। इसके अतिरिक्त, साम्राज्य के करद

सरदारों को आज्ञावश करने की समस्या थी। राजपूत राजे तथा स्थानीय सरदार जो गढ़ों तथा सुदृढ़ स्थानों के अधिकारी थे, इनकी न्यूनाधिक इच्छा महादजी के अधिकार का विरोध करने की थी। अफ़ासियाबखाँ का सम्बन्धी आगरा का रक्षक शुजाउद्दीन पठान, गढ़ को छोड़ना नहीं चाहता था। प्रबल प्रतिरोध के बाद वह रास्ते पर आ गया तथा २६ मार्च, १७८५ को गढ़ पर अधिकार हो गया। इस पर शिन्दे का झण्डा फहरा दिया गया जो लार्ड लेक द्वारा १८०३ में इस पर अधिकार किये जाने तक आगामी १८ वर्षों तक फहराता रहा। रामगढ़ नामक एक अन्य दुर्ग रुहेलों द्वारा अधिकृत मुख्य स्थान था तथा उस पर अफ़ासियाबखाँ के भाई जहाँगीरखाँ का अधिकार था। दीर्घ-कालीन अवरोध के बाद २० नवम्बर, १७८५ को रायजी पाटिल ने इस पर अधिकार कर लिया। आगरा तथा इस स्थान पर अधिकार प्राप्त कर लेने से महादजी की स्थिति में जान आ गयी। उसी वर्ष इसके पहले नजीबखाँ के पुत्र जाबिताखाँ का देहान्त हो गया (२१ जनवरी, १७८५) तथा उसका पुत्र गुलाम कादिर उत्तराधिकारी हुआ जो शीघ्र ही महादजी के लिए कठोर कण्टक सिद्ध हुआ।

१७८५ की वर्षाऋतु में पहली बार महादजी ने अपना शिविर मथुरा के समीप वृन्दावन में स्थापित किया। इस केन्द्रीय स्थान से वह वृत्ताकार रेखा में समस्त दिशाओं का सावधानी से निरीक्षण कर सकता था। तब सम्राट दिल्ली चला गया, क्योंकि उन दोनों ने सदैव साथ-साथ रहना न तो आवश्यक समझा और न रुचिकर ही। इसके बाद में शिन्दे ने मथुरा स्थित अपने इस स्थान से समस्त कार्यों का निर्देश किया। सम्राट के व्यय के लिए महादजी ने एक लाख मासिक का धन निश्चित कर दिया तथा अपने जामाता लाडोजी देशमुख सितोले को अपनी ओर से सदैव सम्राट के पास रहने के लिए नियुक्त कर दिया। उसके साथ सम्राट का व्यक्तिगत कृपापात्र शाह निजामुद्दीन था। इस प्रकार पदग्रहण के प्रथम वर्ष में महादजी का प्रशासन सफलता की पर्याप्त आशा से आरम्भ हुआ।

परन्तु महादजी के पद के भारी उत्तरदायित्व—उसके अनेकानेक कष्टों तथा उसके धनाभाव—को न उसके अपने मित्र समझे, न सहकारी और न पूना में पेशवा का शासन। लोगों ने केवल वकील-ए-मुतलक के उच्च पद के खाली बुलबुले को देखकर विश्वास कर लिया कि शिन्दे को खजाना भरने वाली सोने की खान मिल गयी है। "अब वह साम्राज्य का राज-प्रतिनिधि तथा सेनाओं का सर्वोच्च सेनापति था, परन्तु वास्तव में उसको कागज के दो पन्ने नियुक्ति-पत्र के रूप में मिले थे, जिन पर नाममात्र के सम्राट के हस्ताक्षर थे।

अपने शिविर के नीचे की भूमि को छोड़कर, शाही प्रदेश की एक अंगुल भूमि भी उसके अधिकार में नहीं थी। यदि वह केवल नाममात्र का नहीं, अपितु वास्तव में सम्राट का प्रतिनिधि था, तो शाही दुर्गों, सरकारी कोषों तथा सम्राट के अधीन भूमियों पर उसका अधिकार अवश्य होना चाहिए था। १७८४ के अन्त तक उस पर ८० लाख का ऋण हो गया था। तोपखाने सहित उसकी अपनी ३० हजार सेना पर ७ लाख रुपये मासिक व्यय होते थे तथा अपने अधिकार में ली गयी शाही सेनाओं के कारण यह व्यय लगभग ३ लाख रुपये मासिक बढ़ गया था।"[५] वास्तव में दिवालिये सम्राट द्वारा दिये गये इस रिक्त वैभव की अपेक्षा, मध्य भारत में उसके निजी ठोस प्रदेश अधिक लाभ-प्रद थे। अपनी सामयिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उसने मथुरा में अपनी टकसाल स्थापित करके नानाशाही रुपया ढाला।

महादजी ने भारी उत्तरदायित्व अंगीकार तो किया था, परन्तु उसके पास धन नहीं था। उस पर पहले से ही बहुत ऋण लदा हुआ था। इस संकटमय उद्योग के प्रति उसकी अपनी कोई तीव्र इच्छा न थी। वह नाना की सतत प्रेरणा से विश्वासघाती मित्रों तथा अचल शत्रुओं के बीच सम्राट की जटिल परिस्थिति को संभालने के लिए तैयार हो गया। जब उसको कष्टों में पेशवा की सरकार से सम्पूर्ण समर्थन तथा सहयोग की आवश्यकता हुई तो नाना फड़निस ने उस पर आज्ञा-भंग का सन्देह किया, क्लेशकारक पत्र लिखे और स्पष्टीकरण माँगे। इस कारण मराठा राज्य के दो प्रमुख व्यक्तियों के बीच सतत संघर्ष आरम्भ हो गया, जिसका अन्त महादजी की मृत्यु पर हुआ। सौभाग्य से उन्होंने अपने क्रोध को उचित सीमाओं का उल्लंघन न करने दिया, क्योंकि वे दोनों पेशवा वंश के निष्ठापूर्ण सेवक थे। महादजी ने अपनी घोर आवश्यकता में नाना, अहल्याबाई तथा अन्य व्यक्तियों से धन या ऋण देने की सविनय प्रार्थना की; परन्तु उसको कभी कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ।[६]

महादजी ने सौभाग्यवश आरम्भ में अपने पास अनुरक्त अनुचरों जैसे

५ मुगल-साम्राज्य का पतन, जिल्द ३, पृष्ठ २९६

६ एक अनुरूप उदाहरण से महादजी के साथ नाना फड़निस का व्यवहार स्पष्ट हो जाता है। १७८४ के अन्त पर नाना ने महादजी को पत्र लिख कर नवीन उद्योग से होने वाले लाभ-हानि सहित उसकी आर्थिक स्थिति का विस्तृत विवरण माँगा। महादजी की आज्ञा से सदाशिव दिनकर ने ५ जून, १७८५ को नाना के पास उत्तर के रूप में विस्तृत विवरण भेजा। यह लम्बा पत्र अध्ययन योग्य है तथा इससे वे संकट प्रकट हो जाते हैं, जिनमें महादजी फँस गया था। —ऐतिहासिक टिप्पणियाँ, जिल्द ५, पृष्ठ १०

रानाखाँ भाई, अम्बूजी इंगले, खांडेरावहरि, रायजी पाटिल, जीवबा दादा बख्शी, देवजी गाउली, लाडोजी देशमुख आदि की एक मण्डली संगठित कर ली थी। उसके नवीन सेवक दि बायने का भी उस पर पूर्ण अनुराग था। इन निष्ठापूर्ण सहायकों के सहयोग से ही महादजी सर्वनाश से बच सका। वह सम्राट के साथ की गयी नियमपूर्वक प्रतिमास वृत्ति देने की अपनी प्रतिज्ञा का पालन नहीं कर सका। इस विषय में उसकी असफलता से सम्राट और भी अप्रसन्न हो गया। उसे ऋण भी प्राप्त न हो सका। वह लिखता है—"कार्यक्षम व्यवस्था स्थापित करने में सफल होते ही, मेरी इच्छा इस असह्य कार्य से सर्वथा अवकाश ग्रहण करने की है। समस्त हिन्दुस्तानी लोग—चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान, ब्राह्मण हों या निम्नजातीय—दुष्ट, विश्वासघातक तथा सर्वथा अविश्वसनीय हैं। वे मित्र भावनाएँ तो प्रकट करते रहेंगे, परन्तु आपका गला काटने में शंका नहीं करेंगे। मुगल, कश्मीरी, पठान सभी दुष्ट और प्रतिज्ञा-भ्रष्ट हैं। मैं नहीं जानता कि कैसे कार्य करूँगा।"

महादजी सदैव शान्त, संयत तथा विचारशील रहा और घोर संकट काल में भी घबराया नहीं। अपने सर्वोपरि आत्म-विश्वास द्वारा वह निराशामय परिस्थिति में भी अन्त में विजय प्राप्त करने में सफल हो गया। वह अपने विरोधियों के प्रति भी न्यायशील तथा उदार था। हत्या के शिकार अफ्रासियाबखाँ के परिवार तथा नातेदारों की उसने सहायता की तथा हमदानी की वीरता तथा उत्साह का यथाशक्ति उपयोग करने का प्रयत्न किया।[७] उमरावगिरि तथा अनूपगिरि नामक गोसाईं बन्धुओं को उसने मित्र बना लिया। शूकरताल में दत्ताजी शिन्दे के युद्ध के समय से वह उनको अच्छी तरह जानता था। इस समय वे सम्राट की सेवा में थे। उसने उन्हें उपयोगी कार्य दिया। जब उन्होंने विद्रोही बनकर उसका साथ छोड़ दिया तो महादजी उनके साथ कठोर व्यवहार करने पर विवश हो गया। उसको कई बार पता चल गया कि उसके कार्यों के विरुद्ध सम्राट को भड़काने में अनूपगिरि गुप्त रूप से षड्यन्त्र तथा विश्वासघात कर रहा है। महादजी ने अपने प्रतिनिधि केशव पन्त को भेजा कि वह बुन्देलखण्ड तथा दोआब में गोसाइयों की जागीरों पर अधिकार कर ले। उमरावगिरि ने केशव पन्त की हत्या कर दी। तब दोनों गोसाईं बन्धुओं ने महादजी के विरुद्ध स्पष्ट रूप से युद्ध प्रारम्भ कर दिया। महादजी ने अप्रैल, १७८९ में देवजी गाउली को दण्ड देने के लिए भेजा। उन्हें परास्त करके, उनकी समस्त जागीरों पर अधिकार कर लिया गया और वे अवध के नवाब वजीर की शरण में चले गये। उस समय कार्नवालिस गवर्नर जनरल था।

---

७ मुगल-साम्राज्य का पतन, पृष्ठ २८९

उसने नवाब वजीर को महादजी से बैर करने की कड़ी चेतावनी दी। यह सम्राट के उन पूर्व सेवकों का केवल एक उदाहरण है जो जागीरों का उपभोग करते हुए भी कोई सेवा-कार्य नहीं करते थे।

महादजी ने प्रबल प्रयत्न किया कि सम्राट को नियमित रूप से निश्चित आय हो जाये तथा उसके अविवादग्रस्त शासन के लिए विशिष्ट क्षेत्र मिल जाये। इस कारण अज्ञात रूप से उसे अनेक अभियानों तथा गतिविधियों में व्यस्त होना पड़ा, जिनके लिए पहले से न योजना बनायी जा सकती थी और न पूर्वकल्पना की जा सकती थी। इनसे उसको निरन्तर कष्ट हुआ। उसने अनुपम धैर्य तथा क्षमता से सफलतापूर्वक अपना उद्देश्य प्राप्त कर लिया। शिविर के लिए मथुरा का चयन बुद्धिसंगत कार्य सिद्ध हुआ। उसने अपनी सम्पूर्ण शक्ति के उद्‌गम स्थान मालवा तथा बुन्देलखण्ड में अपने केन्द्र-स्थान दृढ़ रखे। आगरा शाही क्षेत्र में था, जिस पर उसे दिल्ली के साथ-साथ पूर्ण अधिकार रखना था। यहाँ से वह उत्तर-पश्चिम में सिखों, दोआब में पठानों तथा दक्षिण-पश्चिम में राजपूतों की प्रगतियों पर निगाह रख सकता था। आरम्भ से ही मचेरी का सरदार प्रतापसिंह उसका पक्का मित्र था। यह स्थान इस समय अलवर का भाग है। महादजी ने अम्बूजी इंगले तथा प्रतापसिंह को उत्तरी क्षेत्रों पर सम्राट का अधिकार स्थिर करने को भेजा। वे प्रदेश सिक्खों की लूटमार के शिकार थे। इंगले तथा प्रतापसिंह ने अपना कार्य शीघ्रता तथा सफलतापूर्वक पूरा कर लिया। मई मास में सिक्ख नेता महादजी से मिलने के लिए मथुरा लाये गये तथा उनके साथ समझौता हो गया जो भविष्य में पर्याप्त सफलतापूर्वक कार्यान्वित रहा। १७८५ के इसी वर्ष में महादजी कुछ अन्य अभियानों—अलीगढ़, जयपुर, राघोगढ़ अर्थात मालवा का खीची प्रदेश—में व्यस्त रहा।

ऊपर अन्त में गिनाये गये राघोगढ़ के प्रकरण को कुछ स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। वहाँ का खीची राना बहुत दिनों से मराठों का आश्रित था और होल्कर को कर देता था। तत्कालीन शासक बलवन्तसिंह ने अपनी स्वाधीनता की घोषणा की तथा कर देने से इनकार कर दिया। उत्तरी तथा मध्य भारत के बीच में मराठा संचार-मार्गों के केन्द्र पर उसका शासन था तथा अपने शक्तिशाली आधार स्थान से वह मराठा सेनाओं के प्रयाण में इच्छानुसार विघ्न उपस्थित कर सकता था। महादजी ने राघोगढ़ के विरुद्ध अम्बूजी इंगले के अधीन भारी सेना भेजी। उसने १७८५ की शिशिर ऋतु में गढ़ घेर लिया। यह प्रकरण एक वर्ष तक चलता रहा। अन्त में राना ने अधीनता स्वीकार कर ली और उसका राज्य जब्त कर लिया गया। बलवन्तसिंह बेड़ियाँ डालकर

ग्वालियर में बन्दी रखा गया। कुछ समय बाद मित्र बनाकर उसके साथ दयालुता का व्यवहार किया गया। कुछ अन्य सरदारों—जैसे बुन्देलखण्ड में बाँदा, कालिंजर तथा चरखारी के सरदार जिन्होंने कष्ट उत्पन्न कर रखा था—का शीघ्रतापूर्वक दमन किया गया। इन विद्रोहों के दमन में इंगले बन्धुओं, खांडेराव हरि तथा दि बायने ने विशेष सेवा की।

५. महादजी का राजपूतों के विरुद्ध युद्ध—लालसोट—१६ अप्रैल, १७७८ को जयपुर के राजा पृथ्वीसिंह का देहान्त हो गया तथा उसका १३ वर्षीय भाई प्रतापसिंह उत्तराधिकारी हुआ। वैसे मृतक राजा का ६ मास की अवस्था वाला मानसिंह नामक पुत्र भी था। जयपुर के भाई-बेटों तथा आश्रित सरदारों में से रावराजा प्रतापसिंह नरुका नामक एक व्यक्ति को अपनी वीरता तथा क्षमता के कारण हाल ही में प्रसिद्धि प्राप्त हो गयी थी। अलवर के समीप मचेरी के स्थान पर उसने अपने को जयपुर से स्वतन्त्र कर लिया था, इससे जयपुर राज्य की हानि हुई थी। यह प्रतापसिंह सम्राट का कृपापात्र हो गया था तथा इस समय प्रबन्ध-कार्य में महादजी का परम मित्र तथा साथी बन बैठा था। जयपुर को हानि पहुँचाकर प्रसिद्धि प्राप्त करने के कारण वह अपने ही नामराशी जयपुर के प्रतापसिंह का कठोर शत्रु हो गया था। जयपुर का प्रतापसिंह कुख्यात भ्रष्टाचारी शासक था। वह आन्तरिक तथा बाह्य शत्रुओं के बीच अपने राज्य का प्रबन्ध करने में अयोग्य था। वह मदिरापान तथा नृत्य में अपना समय व्यर्थ नष्ट करता था। अपने दुष्ट शराबी मित्रों के साथ वह कभी-कभी रात्रि में निकल पड़ता तथा सेठों, साहूकारों के घरों में घुस जाता। जो कुछ धन और बहुमूल्य वस्तुएँ हाथ लगतीं, ये लोग उठा ले जाते।

जयपुर का शासक सदैव सम्राट का आश्रित रहा था। वह सम्राट को वार्षिक कर देता था। इसके अतिरिक्त सवाई जयसिंह के समय से पेशवाओं ने राज्य पर चौथ लगा रखी थी। अतः महादजी ने शाही साम्राज्य का वकील-ए-मुतलक होते ही मराठा चौथ तथा सम्राट वाला कर दोनों के कारण बहुत समय से बकाया धन की माँग की। इससे जयपुर के राजा का क्रुद्ध होना स्वाभाविक था। उसने लम्बे चलने वाले शान्ति प्रस्तावों की आड़ में कपट तथा शत्रुता का खेल आरम्भ कर दिया। अपनी इस योजना में उसने मारवाड़ के राजा विजयसिंह तथा महादजी के घातक शत्रु हमदानी का समर्थन प्राप्त कर लिया।

जयपुर के राजा ने धन देने से साफ इनकार कर दिया। उसने स्वयं को धन देने तथा अपने दुराचारी प्रशासन में कोई उन्नति करने में असमर्थ बताया। तब महादजी कठोर कार्रवाई करने पर विवश हो गया। उसने पर्याप्त सेना

के साथ रायजी पाटिल को राजधानी में ठहरा दिया, जिससे वह बलपूर्वक धन प्राप्त करे तथा सम्राट से आधिपत्य को कार्यान्वित करे। उसने राजा को राजच्युत करके उसके भतीजे मानसिंह को गद्दी पर बैठा देने की धमकी दी। इसी कार्य के लिए मानसिंह कृष्णगढ़ से वृन्दावन लाया गया और उसके निर्वाह के लिए छोटी-सी जागीर दे दी गयी। इन कार्यों से अप्रसन्न होकर राजा ने जीवन-मृत्यु के संघर्ष की तैयारी आरम्भ कर दी। महादजी चुनौती को स्वीकार करने पर विवश हो गया और १७८६ के आरम्भ में उसने सम्राट के साथ जयपुर में प्रवेश किया। जयपुर से सात मील दक्षिण में सांगानेर के स्थान पर उसने अपना शिविर लगाया और सर्वनाश का भय दिखाकर राजा से तीन करोड़ रुपये माँगे। इस राशि के निश्चय के विषय में मध्यस्थों द्वारा सौदेबाजी आरम्भ हो गयी। अन्त में ६३ लाख पर समझौता हो गया, परन्तु यह धन भी प्राप्त नहीं हो सका। राजा के पास न तो नकद धन था, न हीरे जवाहरात। महादजी बलपूर्वक राजा के प्रदेश पर केवल अधिकार कर सकता था, परन्तु इससे स्थिति नहीं सँभल सकती थी, क्योंकि महादजी तथा सम्राट दोनों को नकद धन की अत्यन्त आवश्यकता थी। साधारण जीवन की शान्तिमय स्थिति पुन: स्थापित हो जाने से पहले मरुभूमि से कुछ भी तात्कालिक लाभ नहीं हो सकता था। इस प्रकार राजा तथा उसके मराठा आक्रान्ता दोनों की परिस्थिति गम्भीर हो गयी, जिससे कोई भी सम्मानपूर्वक बचकर नहीं निकल सकता था। शिन्दे ने बलपूर्वक धन-संग्रह करने के लिए अनेक स्थानों को सशस्त्र टुकड़ियाँ भेजीं। बहुत-से स्थान घेर लिये गये। जयपुर के साहूकार तथा व्यापारी पकड़ लिये गये। इस प्रकार संकट और भी बढ़ गया।

महादजी शिन्दे तथा सम्राट ने रायजी पाटिल को वहाँ राजा द्वारा स्वीकृत शर्तों को कार्यान्वित करने के लिए नियुक्त कर दिया। वे जून (१७८६) में डीग वापस चले गये। यहाँ से वे पृथक् हो गये। महादजी मथुरा गया और सम्राट दिल्ली। अत्यन्त वेदना तथा व्याकुलतायुक्त होकर जयपुर के राजा ने जोधपुर के विजयसिंह के पास अपने व्यक्तिगत दूत भेजकर अपने उद्धार के निमित्त सहस्त्र सहायता की प्रार्थना की। उसने लखनऊ में ब्रिटिश अधिकारियों के पास भी अपने दूत भेजे, जो महादजी की बढ़ती हुई शक्ति का दमन करने को इच्छुक थे। परन्तु इस समय ब्रिटिश शासन का अध्यक्ष धीर धुरीण राजनीतिज्ञ कार्नवालिस था। उसने भारतीय शक्तियों की कलहों में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया। किन्तु जोधपुर के राजा ने शिन्दे तथा सम्राट की माँगों का शस्त्र द्वारा प्रतिरोध करने का निश्चय करके

जयपुर के साथ रक्षात्मक मैत्री कर ली। इस प्रकार स्थिति बिगड़ने लगी और महारजी चुनौती को स्वीकार करने के लिए विवश हो गया। उसने बुन्देलखण्ड से खांडेराव हरि को अविलम्ब वापस बुला लिया। अम्बूजी इंगले को भी, जो सतलज के समीप सिखों के विरुद्ध अभियान कर रहा था, वापस बुला लिया गया। उसने १० मार्च, १७८७ को डीग में सम्राट के राज्यारोहण दिवस का उत्सव मानने के बाद स्वयं जयपुर के विरुद्ध पूर्ण उत्साह से प्रस्थान किया।

जयपुर के प्रतापसिंह के पास लगभग २० हजार सेना थी। इसके अतिरिक्त जोधपुर से भीमसिंह के अधीन १० हजार सवार उसके पास पहुँच गये थे। इस प्रकार शिन्दे की माँग स्वीकार न करके जयपुर तथा जोधपुर शस्त्रों द्वारा अन्तिम निर्णय के लिए तैयार हो गये। जयपुर का राजा अन्तिम क्षण तक शान्तिपूर्वक शर्तें निश्चित करने का ढोंग बनाये रहा। इस प्रकार उसको अप्रैल से जुलाई तक समस्त ग्रीष्म का समय षड्यन्त्र तथा तैयारी के लिए मिल गया। महादजी शान्त तथा चिन्तनशील था। वह धन-जन की विशेष हानि से बिना ही अपने विरोधियों को परास्त करने का अत्यन्त सावधानी से प्रयत्न करता रहा। इस कार्य के लिए उसने निपुण गुप्तचरों का जाल बिछा दिया। उसको निकट संघर्ष की पर्याप्त चेतावनी तथा लक्षण प्राप्त हो गये। किसी भी संकट का सामना करने के लिए वह शान्त भाव से तैयार हो गया। उसका मुख्य उद्देश्य केवल शक्ति-प्रदर्शन द्वारा उदयपुर, जयपुर तथा जोधपुर के राजपूत राजाओं के साथ मुख्य विवादग्रस्त विषयों का निपटारा करके जून में अपने वृन्दावन के शिविर में लौट जाना था। परन्तु समय व्यतीत होने पर राजपूतों का रुख कड़ा हो गया। महादजी को भयावह समाचार प्राप्त हुए। इधर सम्राट ने भी महादजी को युद्ध से दूर रहने तथा अपने आधार स्थान को तुरन्त वापस हो जाने की आज्ञा दी।

मई तथा जून में राजपूतों ने अपना प्रलोभन का खेल पूर्ण चतुराई से खेला। वे जानते थे कि महादजी के पास हिन्दुस्तानी तथा मुगलिया सैनिकों के बड़े-बड़े दल हैं जो पहले सम्राट की सेवा में थे और जिनके कमाण्डर शिन्दे के प्रति व्यक्तिगत निष्ठा नहीं रखते हैं। उल्टे वे मन ही मन उसके नाश की उत्कट इच्छा रखते हैं। मुहम्मद बेग हमदानी अन्य मुगलिया सरदारों के साथ २७ मई को मराठा शिविर छोड़ गया और स्पष्ट रूप से राजपूतों के साथ हो गया। वह पहले महादजी का विरोधी था, परन्तु अब उसकी सेना में पुनः प्रविष्ट हो गया था। हमदानी के विरोधी पक्ष में चले जाने से महादजी की आँखों ने उस संकट को स्पष्ट देख लिया, जिसमें वह फँसता जा

रहा था। हमदानी के आगमन से राजपूतों का उत्साह बहुत अधिक बढ़ गया। "उन्होंने संसार के समक्ष घोषित किया कि एक हिन्दू राज्य को जब्त करके मुस्लिम पक्ष को प्रबल बना देना शिन्दे जैसे हिन्दू भाई के लिए कलंक की बात है।" महादजी ने वीरतापूर्वक परिस्थिति का सामना किया तथा पूर्वविधान के रूप में बहुत-सी महिलाओं तथा असैनिकों को सुरक्षा के लिए दूर भेज दिया। विजयसिंह से उसको एक समाचार प्राप्त हुआ, जिसमें कहा गया था—"हम अपनी भूमि का बहुत दिनों से उपभोग कर रहे हैं। पहले मराठों ने हमारी रक्षा की है। जयपुर का प्रतापसिंह निरा मूर्ख है, वह आपके क्रोध का पात्र नहीं है। उस पर आपको अवश्य दया करनी चाहिए, आप उसके दोषों की ओर ध्यान न देकर उसकी रक्षा करें।" शिन्दे के कुछ निजी शुभचिन्तकों ने उसे परामर्श दिया कि वह शीघ्रतापूर्वक जयपुर से किसी सुरक्षित स्थान को वापस चला जाये। परन्तु उसने यह परामर्श अस्वीकार कर दिया, क्योंकि इस प्रकार उसकी शक्ति तथा गौरव का तुरन्त नाश हो जाना सम्भव था। प्रतापसिंह ने शिन्दे की स्थिति की निर्बलता को ठीक-ठीक समझ लिया। वह जून में वीरतापूर्वक अपनी राजधानी से बाहर आ गया, तथा उचित अवसर पाकर उसने सीधा आक्रमण कर दिया। उस समय शिन्दे के मार्ग में अनेक बाधाएँ उपस्थित थीं—उसके पास सामग्री का अभाव था, उसके शिविर में वस्तुओं के मूल्य बहुत बढ़े-चढ़े थे, बहुत दिनों से चलने वाला पक्षत्याग अधिक बढ़ गया था। जून के मध्य तक बुन्देलखण्ड से खांडेराव हरि तथा पटियाला से अम्बूजी इंगले महादजी के पास पहुँच गये। राजपूतों को दि बायने के नवीन पैदल सैनिकों का बहुत भय था। दोनों दलों ने एक मास तक कोई लाभप्रद अवसर प्राप्त करने का प्रयत्न किया। अन्त में २८ जुलाई को महादजी आगे बढ़ा तथा तुंगा के मैदान में उसने भयानक युद्ध किया, परन्तु कोई निर्णायक परिणाम प्राप्त नहीं हुआ। यह स्थान लालसोट के उत्तर-पश्चिम में लगभग १४ मील दूर है परन्तु इतिहास में यह रण इसी नाम से विख्यात है।[८] हमदानी इस रण को पीछे से देख रहा था; वह एक गोला लगने से मर गया।

राजपूत गर्व करते हैं कि इस रण में उनको विजय प्राप्त हुई, परन्तु वे महादजी की एक तोप पर भी अधिकार न कर सके और न उसकी सेना के एक भी व्यक्ति को बन्दी बन सके। उन्होंने महादजी के पीछे लौटने में विघ्न-बाधा उपस्थित न की, यद्यपि उसने अकथनीय कष्टों के बीच पीछे

---

८ लालसोट जयपुर से ३० मील दक्षिण-पूर्व में है।

लौटना आरम्भ किया था। वास्तव में हमदानी की आकस्मिक मृत्यु पर राजपूत निश्चेष्ट हो गये थे। वही उनकी प्रेरक शक्ति था। जब महादजी वापस हो गया तो उन्होंने इतनी सरलता से अपना पिंड महादजी से छूट जाने के लिए ईश्वर को धन्यवाद दिया। महादजी जयपुर की सेना को भंग करने निकला था। इस कार्य में वह असफल रहा। यद्यपि उसने कुशलतापूर्वक लौटकर अपनी सेना की रक्षा कर ली, परन्तु इस रण को द्वितीय पानीपत कहने वाले उसके सरदारों ने जिस बात का अनुभव किया, उससे महादजी के रण चातुर्य की पराजय ही सिद्ध होती है। यदि केवल रण के वास्तविक परिणाम से निर्णय किया जाये, तो यह युद्ध अनिर्णायक रहा। महादजी ने नाना फड़निस को इस रण के सम्बन्ध में निम्नलिखित विवरण भेजा :

"जब हमदानी हमारा पक्ष त्यागकर राजपूतों से मिल गया तो उनकी सेना की संख्या लगभग ५० हजार हो गयी। उसके पास ६० तोपें थीं। शनिवार २८ जुलाई को हमने आक्रमण किया। दोनों ओर से तोपों की मार हुई। रण के मध्य में हमारे तोपखाने के एक गोले से हमदानी मर गया तथा उनका वाम पक्ष पूर्णतः खदेड़ दिया गया। राजपूतों के पास तीन बड़ी तोपें थीं, जिन्होंने रानाखाँ को बहुत क्षति पहुँचायी, परन्तु वह अपने लगभग १०० सैनिकों के हताहत होने पर भी स्थिर रहा। प्रभात के ९ बजे से सूर्यास्त के एक घण्टा बाद तक बिना रुके बराबर अग्नि वर्षा होती रही। राठौड़ों के २० उच्च अधिकारी तथा एक हजार सिपाही खेत रहे। इनके अतिरिक्त करीब २ हजार सिपाही घायल हो गये। हमारे घोड़ों तथा सैनिकों को पीने के जल का कष्ट रहा, अन्यथा हम शत्रु को ऐसे पूर्णरूप से खदेड़ देते कि वे हमारे सामने फिर कभी आने का साहस नहीं करते। अगले दिन हमने उन पर पुनः आक्रमण करने का यत्न किया, परन्तु वे खुले मैदान में नहीं आये और हमारी दृष्टि से छिपे रहे।"

यद्यपि इस प्रकार यह रण मराठों के लिए सफल सिद्ध हुआ, परन्तु भावी घटनाओं के कारण उनकी स्थिति अनिश्चित होने लगी। शत्रुओं ने विश्वासघातपूर्वक रानाखाँ तथा अन्य प्रमुख सरदारों सहित महादजी की हत्या करने की योजना बनायी। परन्तु यह प्रयत्न सफलतापूर्वक व्यर्थ कर दिया गया। इस रण में दि बायने की पैदल सेना लगभग १३०० सैनिकों से अधिक न थी और उनके पास केवल ४ या ५ हल्की तोपें थीं। शिन्दे की शेष सेना में पुराने ढंग के सवार तथा भारी तोपें थीं। दि बायने की सेना में कोई भी पक्षत्यागी नहीं हुआ। परन्तु निराहार रहने तथा पिछला बकाया वेतन न मिलने के कारण शिन्दे के सवारों ने घृणापूर्वक उसको छोड़ दिया। वे शत्रु द्वारा दिये गये गुप्त

प्रलोभनों के प्रभाव में आ गये। अगले दिन (३० जुलाई) हिन्दुस्तानी सैनिकों ने, जिनकी संख्या लगभग ८ हजार थी, 'बैठे रहो' हड़ताल आरम्भ कर दी। उन्होंने अपना पिछला बाकी वेतन अविलम्ब चुकाने की माँग की। महादजी ने उनको नौकरी से निकाल दिया और उनकी सेना भंग कर दी। तब वे अपनी बन्दूकों सहित चले गये और शत्रु के साथ हो गये। कुछ समय तक महादजी के सम्मुख यह संकटग्रस्त परिस्थिति रही। शत्रु द्वारा होने वाली किसी भी कुचेष्टा की आशंका से रानाखाँ तथा उसके समस्त सरदार रात भर अपने घोड़ों की पीठों पर जागते रहे। इस पक्षत्याग से निस्सन्देह शत्रु का उत्साह बढ़ गया तथा १ अगस्त से ६ दिन तक महादजी को अपने ऊपर तात्कालिक आक्रमण तथा अपने सम्पूर्ण विनाश का भय रहा। परन्तु अपनी आश्चर्यकारी अविचल बुद्धि तथा सहनशक्ति के द्वारा वह इस परिस्थिति से मुक्त हो गया और रानाखाँ के परामर्श से उसने सकुशल मछेरी लौटने का प्रबन्ध कर लिया। कुछ विरोधियों ने उसकी बारूद के एक ढेर में आग लगा दी। लालसोट से पीछे हटकर महादजी ने यथासम्भव सावधानी तथा पूर्वोपाय सहित डीग की ओर प्रयाण किया। परन्तु इसके पहले उसने अपने समस्त सामान तथा उस शिविर-सज्जा को, जिसे ले जाना सम्भव नहीं था, नष्ट कर दिया, जिससे कि वह शत्रु के हाथ न पड़ जाय। महिलाएँ तथा असैनिक कुशलतापूर्वक ग्वालियर पहुँचा दिये गये। दिल्ली में भी उस समय इसी के समान कष्ट उपस्थित हो गया, परन्तु लाडोली देशमुख तथा शाह निजामुद्दीन ने शीघ्र ही उसका दमन कर दिया। कुछ समय तक राजपूत गर्व करते रहे कि उन्होंने अन्तिम रूप से शिन्दे को झुका दिया है, परन्तु जब वे उसका सकुशल प्रत्यागमन रोकने में असफल रहे तो उनके दावे की निस्सारता स्पष्ट हो गयी।

लालसोट की विपत्ति से स्वभावतः महादजी के समृद्ध जीवन में विघ्न उपस्थित हो गया। उसने तथा सम्राट ने अब तक जिस शक्ति और गौरव का उपभोग किया था, वे कुछ समय के लिए समाप्त हो गये। परन्तु महादजी कभी हिम्मत नहीं हारा और न उसने अपने राजकीय भार को त्यागने के विषय में स्वप्न में भी सोचा। १७८८ तक लगभग एक वर्ष यह सोचनीय दशा रही और इसका दिल्ली के राजवंश पर बहुत प्रभाव पड़ा। महादजी के मित्र मछेरी के राव राजा ने अलवर में उसे प्रसन्नतापूर्वक शरण दी तथा शिन्दे अगस्त से २ नवम्बर, १७८७ तक तीन मास अपने शेष शिविर सहित यहाँ ठहरा रहा। इस बीच में १६ सितम्बर को इस्माइल बेग ने आगरा नगर मराठों से छीन लिया, परन्तु उसके गढ़ पर अधिकार करने के प्रयास का लकबा दादा ने जोरदार प्रतिरोध किया। इसी प्रकार २७ अगस्त को जोधपुर के राजा ने अजमेर को महादजी के प्रतिनिधि से छीन लिया।

६. **महादजी द्वारा अपनी स्थिति में सावधानीपूर्वक सुधार**—अपनी अद्भुत स्थिर बुद्धि तथा असाधारण क्षमता के कारण ही महादजी अन्त में निर्णायक विजय प्राप्त करने में सफल हो सका, जबकि कुछ समय तक ऐसा मालूम होता रहा कि उसका पराभव उसके लिए सर्वग्रासी असफलता तथा निराशामय विनाश सिद्ध होगा। मराठों के शत्रुओं ने यकायक समस्त दिशाओं में विद्रोह कर दिया। विशेषकर गुलाम कादिर ने मराठा दुर्गस्थ सेनाओं को दोआब से निकालकर उस समस्त प्रदेश पर अधिकार कर लिया जो उससे हाल में छीन लिया गया था और वह महादजी के अधिकार को चुनौती देने के लिए सीधा दिल्ली आया। लाडोजी देशमुख तथा शाह निजामुद्दीन को अपनी स्थिति इतनी दुर्बल मालूम हुई कि २४ अगस्त, १७८७ की रात्रि को उन दोनों ने अपने-अपने स्थान त्याग दिये और दिल्ली से भाग निकले। मार्ग में उन्होंने बहुत कष्ट उठाये और लुटेरों ने उन्हें लूट लिया। गुलाम कादिर असहाय सम्राट के सम्मुख उपस्थित हुआ तथा दण्ड देने की धमकी देकर उससे वे समस्त पद तथा शक्तियाँ ले लीं जिन पर शिन्दे का अधिकार था (सितम्बर ५)। इस्माइल बेग तथा गुलाम कादिर ने परस्पर सहयोगपूर्वक दिल्ली तथा समीपवर्ती प्रदेश पर अपना शासन स्थापित कर लिया। सम्राट ने अत्यन्त व्याकुल होकर राजपूत राजाओं तथा अन्य सरदारों को सहायतार्थ प्रार्थनाएँ भेजीं। इस प्रकार के परिणाम की पूर्व सम्भावना से महादजी ने अम्बूजी इंगले को सम्राट से मिलकर उसको मराठा शिविर में लाने के लिए भेजा। परन्तु गुलाम कादिर की धमकियों से वह इस प्रकार भयभीत हो गया था कि उसने महादजी के सहायतार्थ नियन्त्रण को अस्वीकार कर दिया और अम्बूजी १४ नवम्बर को दिल्ली से असफल लौटने पर विवश हो गया। इसके बाद स्वभावतः महादजी सम्राट के कार्यों से विरक्त हो गया तथा उसने अपना ध्यान मुख्य रूप से अपनी रक्षा की योजनाओं पर लगा दिया। ८ दिसम्बर को शहजादा जवाँबख्त अपने पिता के आह्वान पर बनारस से दिल्ली आया। वहाँ पर वह ब्रिटिश वृत्ति से अपना निर्वाह कर रहा था। उसने अपने पिता का दमन करके राज्य पर अधिकार करने के लिए षड्यन्त्र अवश्य किया, पर वह परिस्थिति को सँभाल नहीं सका। सम्राट ने शहजादा को इस्माइल बेग से आगरा नगर छीनने का काम सौंपकर दिल्ली से हटा दिया। शहजादे पर इस्माइल बेग और गुलाम कादिर में से एक की भी कृपा नहीं रह सकी। वह लोगों की नितान्त घृणा के कारण ब्रिटिश सुरक्षा में पुनः वापस जाने को विवश हो गया (फरवरी, १७८८)।

इस राजनीतिक संकट वेला में अंग्रेजों का क्या अभिनय रहा? इसका

स्पष्टीकरण एक मराठा विवरण में इस प्रकार है—"लालसोट में महादजी के पराभव के समाचार से कार्नवालिस इतना घबड़ा गया कि वह तुरन्त कलकत्ते से चल दिया। उसने बनारस में जवाँबख्त से वार्तालाप किया तथा उसको अपने साथ लेकर लखनऊ गया। यहाँ पर जयपुर के राजा तथा महादजी दोनों के दूत उससे मिले तथा उन्होंने ब्रिटिश सैनिक सहायता की प्रार्थना की। कार्नवालिस का यह निश्चय अत्यन्त उचित ही था कि ब्रिटिश हितों की सिद्धि के लिए उसकी तटस्थता ही सर्वोत्तम मार्ग है। उसने समस्त भारतीय शक्तियों के प्रति स्पष्ट घोषणा की कि उसको इंगलैण्ड स्थित उच्चतर अधिकारियों से कठोर आज्ञा प्राप्त हुई है कि वह भारतीय सरदारों के आन्तरिक कलहों में किसी भी कारण हस्तक्षेप न करे। अतः वह किसी पक्ष का भी साथ नहीं देगा, परन्तु सबका मित्र होकर रहेगा। इसके पश्चात कार्नवालिस अपने साथ तीन दल लेकर वजीर आसफउद्दौला और जवाँबख्त के साथ फर्रुखाबाद गया। यहाँ से गवर्नर जनरल कानपुर वापस हो गया। उसके पहले उसने जवाँबख्त को दिल्ली भेज दिया था। मेजर पामर शहजादा के परामर्शदाता के रूप में साथ था।" अन्त में उचित समय पर कार्नवालिस बनारस होता हुआ कलकत्ते को चला गया।

महादजी अपनी योजनाओं के लिए कभी ब्रिटिश सहायता पर निर्भर नहीं रहा। २७ मई, १७८७ को हमदानी द्वारा पक्षत्याग से उसका कष्ट आरम्भ हुआ तथा इसका अन्त १७ जून, १७८८ को उसने इस्माइल बेग से आगरा छीनकर किया। इसके परिणामस्वरूप सबको मालूम हो गया कि शिन्दे यथा-पूर्ण सशक्त है। यह १३ मास का ग्रहण उसके लिए कटु अनुभव का काल था। १७ अगस्त, १७८७ को उसने नाना फड़निस को पत्र लिखकर अपनी परिस्थिति का विवरण भेजा तथा उससे सहायता की करुण प्रार्थना की। "मैं जयपुर से पीछे हट आया हूँ। मैंने भारी सामान तथा असैनिक व्यक्तियों को ग्वालियर भेज दिया है। इस समय शत्रु को तंग करने में मैं हल्के सवारों का उपयोग कर रहा हूँ। मेरी घोर आवश्यकता है—धन। इस समय ९ मास से सम्राट का भत्ता शेष है। उसको मेरा साथ देने की चिन्ता नहीं है तथा अपने शिविर में उसकी उपस्थिति के बिना मेरे पास न कोई शक्ति है और न गौरव। यदि आप कुछ निपुण सैनिक तथा कुछ धन भेजने का प्रबन्ध कर सकें तो मैं शीघ्र ही खोयी हुई स्थिति को पुनः प्राप्त करने में समर्थ हो जाऊँगा। विशेषकर पूना से इस प्रकार की सहायता मिलने के कारण यहाँ समस्त शत्रुओं की आँखें खुल जायेंगी। इस समय सारा वातावरण मराठा विरोधी हो उठा है। राजपूत ही नहीं, अपितु रुहेले, नवाब वजीर तथा अंग्रेज भी हमारे विरुद्ध अपना-अपना

प्रयत्न कर रहे हैं। लगभग पानीपत के दिनों की आवृत्ति हो रही है। हम लोगों द्वारा आज भी मराठा स्थिति के दृढ़ तथा ठोस होने की छाप सब पर लगाना आवश्यक है।''

महादजी की ये प्रार्थनाएँ पूना में अगस्त, १७८७ के अन्त में प्राप्त हुई। उससे कुछ ही दिन पहले मराठा सेनाएँ टीपू सुल्तान के विरुद्ध विफल अभियान से वापस लौटी थीं। नाना ने सहायता का प्रबन्ध करने में तथा महादजी के कष्ट को दूर करने में एक क्षण का भी विलम्ब नहीं किया। उसने ५ लाख रुपये भेजे और एक विशाल सेना को तुरन्त उत्तर की ओर प्रयाण करने की आज्ञा दी। इसके नेता तुकोजी होल्कर, अली बहादुर, मानाजी गायकवाड़, शाहजी भोंसले (अकलकोट का) तथा ओढेकर थे। ये लोग ८ सितम्बर को पूना से चले, परन्तु अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचने में इन्हें एक वर्ष से अधिक लग गया। अली बहादुर मथुरा में ६ नवम्बर, १७८८ को महादजी से मिला और तुकोजी ६ मास बाद (अप्रैल, १७८९ में)। नाना फड़निस ने यह नहीं समझा था कि तुकोजी जो सदा महादजी का विरोध करता रहा था, उसके लिए नवीन कष्ट उत्पन्न कर देगा। परन्तु दक्षिण में कोई अन्य सरदार नहीं था जो उत्तर के कार्यों से सुपरिचित हो और इन दोनों सरदारों के संयुक्त उत्तरदायित्व में रहा हो। पूना के मन्त्रियों को यह पक्का विश्वास था कि शिन्दे को दिल्ली में अपने अधिकार के कारण असीम धन प्राप्त हो गया है। उनको इसमें से कुछ भाग प्राप्त होने की आशा थी। परन्तु जब महादजी ने पूना से आर्थिक सहायता माँगी तो उनके लाभ के स्वप्नों पर घातक प्रहार हुआ। महादजी की साग्रह तथा सकरुण प्रार्थनाओं की ओर ध्यान देने से नाना फड़निस इनकार नहीं कर सकता था, परन्तु उसने रणक्षेत्र के लिए सर्वथा अयोग्य व्यक्ति तुकोजी होल्कर को भेजकर भूल की। उसे अपने कार्य के प्रति कोई उत्साह नहीं था और उसे महादजी से जन्मजात घृणा थी। कुछ मित्रों ने नाना से आग्रह किया कि वह तुकोजी के स्थान पर उत्तर में हरिपन्त फड़के को भेजे। परन्तु हरिपन्त ने महादजी के अधीन काम करने से इनकार कर दिया। परिणाम यह हुआ कि तुकोजी मराठा हितों के लिए विशेष रूप से बाधक सिद्ध हुआ। इसके बाद उसने महादजी के विरुद्ध षड्यन्त्र किया। वह उत्तर की ओर अपने मार्ग ही में नहीं, अपितु उस क्षेत्र में आगामी ७ वर्षों तक अपने पूरे निवास काल में बराबर षड्यन्त्र करता ही रहा।

दूसरी ओर महादजी की सहायतार्थ अली बहादुर का निर्वाचन उस समय सर्वथा उपयुक्त था। स्वयं महादजी शिन्दे ने इसका भारी स्वागत किया। अली बहादुर नवयुवक तथा उत्साही मुसलमान था। अतः मुगल दरबार में

उसके कृपापात्र हो जाने की आशा थी। विश्वासघाती अनूपगिरि गोसाईं को शरण देने के कारण दुर्भाग्यवश उससे भी शीघ्र ही महादजी का झगड़ा हो गया। उत्तर की ओर आते समय मार्ग में ही तुकोजी होल्कर ने महादजी के साथ परामर्श के बिना राजपूत-मराठा कलह का निपटारा करने के लिए शान्ति प्रस्ताव प्रारम्भ कर दिये। उसमें शिन्दे के प्रति एक प्रकार का रोष था, क्योंकि उसने उत्तर भारत में इस समय प्रथम स्थान प्राप्त कर लिया था। शिन्दे के अत्याचार के विषय में जो शिकायतें राजपूतों ने कीं, तुकोजी ने उनको सरलता से स्वीकार कर लिया और उसके प्रबन्ध को उलटने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया। इस पर शिन्दे को बहुत रोष हुआ। नाना ने तत्काल उत्तर दिया था कि वह शिन्दे को सैनिक सहायता भेजेगा। इससे अपनी अत्यन्त निराश अवस्था में महादजी का साहस बढ़ गया था। परन्तु होल्कर के हानिकारक कार्यों के कारण नाना का यह उत्तर केवल निस्सार शब्द सिद्ध हुए। महादजी ने प्रेमभरे शब्दों में उत्तर देते हुए नाना को धन्यवाद दिया था कि उसने डूबते हुए व्यक्ति की रक्षा कर ली है। राजपूत सरदारों ने अपने दूत पूना भेजे तथा हस्तक्षेप द्वारा अपने दुख दूर करने के लिए पेशवा से प्रार्थना की। इसके उत्तर में नाना ने अपने दूत लक्ष्मण सम्भाजी को सीधे जयपुर के प्रतापसिंह से शान्ति वार्तालाप करने की आज्ञा दी। स्पष्ट है कि यह कदम गलत था। इसके कारण महादजी और अधिक रुष्ट हो गया तथा उसकी स्थिति निर्बल हो गयी। सुव्यवस्थित सरकारें प्रायः घटना-स्थल पर उपस्थित व्यक्ति का समर्थन करती हैं। यदि नाना अल्पवयस्क पेशवा को अपने साथ लेकर स्वयं उत्तर की ओर जाता तथा इस प्रदेश में आन्दोलन उपस्थित करने वाली कुछ समस्याओं को हल कर देता तो वास्तव में इस अवसर पर मराठा राज्य के हितों की रक्षा हो सकती थी।

इस समय पठानों ने गुलाम कादिर के नेतृत्व में राजपूतों के सहयोग से पानीपत से पहले का अपना पुराना खेल पुनः आरम्भ कर दिया। उन्होंने उत्तर भारत से मराठों को खदेड़ने के लिए काबुल के शाह को निमन्त्रित किया। इस प्रयास में वृद्धा मलिका जमानी भी उनके साथ थी। अहमदशाह का पुत्र तैमूरशाह इस समय अफगानों का शासक था। वह १७८७ की ग्रीष्म ऋतु में पेशावर में ठहरा हुआ था। वह अटक पर सिन्धु को पार करके पंजाब में प्रवेश करने के लिए तैयार था। मारवाड़ के विजयसिंह ने उसको मराठों से युद्ध के लिए तैयार करके अफगान के शाह के पास अपना दूत भेजा। तैमूरशाह ने उत्तर दिया कि उसके अपने ही अनेक कष्ट हैं, भारतीय अभियान को स्वीकार करके वह अपने कष्टों की वृद्धि नहीं करना चाहेगा। महादजी ने इसका उपाय पहले ही कर लिया था। उसने पंजाब के सिक्खों की मैत्री प्राप्त

कर ली। ये सिक्ख अफगान के शाह के विख्यात शत्रु थे और उसे सिन्धु पार उतरने से रोके हुए थे। महादजी को अपने पानीपत के पुराने अनुभव से इस समय बहुत लाभ हुआ। उसने सम्राट की रक्षा का अपना कर्तव्य एक क्षण के लिए भी कभी नहीं छोड़ा। उसने सम्राट को रेवाड़ी में अपने शिविर पर ले जाने के लिए अम्बूजी इंगले को विशेष रूप से भेजा। अक्तूबर, १७८७ के अन्त में वह स्वयं अलवर से इस स्थान पर पहुँच गया। यदि शाहआलम ने हृदय से अपने को महादजी की रक्षा में रखने की समझदारी दिखायी होती तो वह उन अपमानों से बच जाता जो उसको आगामी वर्ष भोगने पड़े। परन्तु अब उसको महादजी की शक्ति भंग होने का विश्वास हो गया था, अतः गुलाम कादिर द्वारा त्रासग्रस्त होकर उसने दिल्ली छोड़ने से इनकार कर दिया। अपनी स्थिति दृढ़ करने के लिए अभागे सम्राट् को अपने साथ रहने के लिए राजी करने के प्रयत्न में असफल होकर महादजी सम्राट को अपने भाग्याधीन छोड़ कर दिल्ली के समस्त प्रदेश का त्याग करने के लिए विवश हो गया। दिसम्बर, १७८७ के लगभग वह स्वयं चम्बल के दक्षिण में वापस चला गया, जिससे अपने को सुरक्षित कर सके। इस समय इस नदी के उत्तर में आधार केवल आगरा तथा अलीगढ़ की रक्षा करने वाली दुर्गस्थ मराठा सेनाएँ रह गयी थीं।

१७८८ के प्रथम तीन मासों में शिन्दे को एक क्षण का भी विश्राम प्राप्त नहीं हुआ। अपनी सेनाओं को चम्बल तक वापस हटाकर उसने नवीन आक्रमण के लिए धुआँधार तैयारियाँ आरम्भ कर दीं जिससे कि वह अपनी खोई हुई स्थिति पुनः प्राप्त कर ले। नाना फड़निस द्वारा भेजी गयी सेनाओं के अतिरिक्त उसने अपनी जन्मभूमि जामगाँव से एक नवीन सेना पहुँचाने की पहले ही आज्ञा दे दी थी। नाना की सेनाएँ करीब १६ मार्च, १७८८ को पहुँच गयीं तथा अप्रैल के आरम्भ में उसने तुरन्त अपना आक्रमण आरम्भ कर दिया। रानाखाँ ने चम्बल को पार किया तथा रणजीतसिंह जाट और मछेरी के राव राजा के सहयोग से खोयी हुई स्थिति को पुनः प्राप्त करने के लिए प्रयत्न आरम्भ कर दिया। रानाखाँ ने भरतपुर के समीप इस्माइल बेग पर सहसा धावा किया। उसने यह प्रबन्ध भी किया कि किले में घिरी हुई सेना को सामग्री भेज दे, जिसके द्वारा लकबा दादा आगरा के गढ़ की रक्षा कर रहा था। स्वयं महादजी चम्बल पर ठहरा रहा। वह मोर्चे पर होने वाली गतिविधियों को सहायता भेजता और पीछे से सावधानी से रण प्रवृत्ति का निर्देश देता रहा। देवजी गउली, दि बायने तथा रायजी पाटिल एक-दूसरे के बाद आगे बढ़े। उन्होंने मथुरा जिले पर पुनः अधिकार कर लिया और यमुना को पार कर गुलाम कादिर का पीछा करते हुए दोआब में प्रवेश किया। उन्होंने उमराव-

गिरि गोसाईं को पकड़कर बन्दी बना लिया और महादजी के पास भेज दिया। पठानों ने आगरा के समीप डटकर सामना किया, परन्तु जीवबा बख्शी और खांडेराव हरि ने अपनी सेनाओं को संयुक्त करके सफलतापूर्वक उनका दमन कर दिया।

२२ अप्रैल को चकसन के समीप भयानक परन्तु अनिर्णायक युद्ध हुआ। गुलाम कादिर भाग गया, जिससे वह मराठों द्वारा भयभीत की जा रही अपनी रियासत की रक्षा कर सके। इस्माइल बेग अब अकेला रह गया और आगरा के उपनगर बाग देहरा में यमुना के तट पर १८ जून को बुरी तरह हार गया। इस रण में महादजी की ६ सेनाएँ जो उसका पक्ष त्यागकर शत्रु से मिल गयी थीं, काट डाली गयीं। उसके साथ इस्माइल बेग के लगभग २ हजार सैनिक भी नदी में डूबकर मर गये। वे चढ़ी हुई नदी तैरकर पार करने का प्रयास कर रहे थे। यह विजय दि बायने के रणचातुर्य से प्राप्त हुई थी। शिन्दे ने इसको पर्याप्त मान्यता दी। इस अद्‌भुत सफलता का महादजी के भाग्य पर जादू जैसा प्रभाव पड़ा। सिक्ख लोग, जिनके अधिकार में दिल्ली के उत्तर का प्रदेश था, पहले से ही महादजी के समर्थक थे। अब वह सतलज तथा चम्बल के बीच के प्रदेश का एकमात्र अधिकारी हो गया। गोसाईं बन्धु फिर से शिन्दे के साथ हो गये। यह आश्चर्य की बात थी कि महादजी ने अपनी खोयी हुई स्थिति पुनः प्राप्त कर ली। इतनी शीघ्रता से लाभ होने का कारण उसके नवीन सैनिकों की वीरता थी, जिन्हें उसने अपनी जन्मभूमि जामगाँव से विशेष रूप से बुलाया था। वे दक्षिणी टट्टुओं पर सवार थे, और उनका नेता देवजी गउली था।

जून, १७८८ के अन्त तक महादजी पुनः सशक्त हो गया। अब वह सरलता से सम्राट की रक्षा के लिए पहुँच सकता था। परन्तु शिन्दे को सम्राट के विश्वासघात तथा अनिश्चितता पर भारी क्रोध था। जब तक उसे दिल्ली आने और अपने पूर्व प्रबन्ध को स्वीकार करने का निमन्त्रण नहीं मिला, तब तक उसने अपनी ओर से कोई प्रयत्न नहीं किया। जुलाई से सितम्बर, १७८८ तक तीन मास के समय में सम्राट का कष्ट चरम सीमा पर पहुँच गया था, क्योंकि वह अपने ही राजभवन में कठोर कारागार में था। इसका कारण समझने के लिए हमको वापस होना पड़ेगा तथा १७८७ में सम्राट और उसके दरबार की प्रगतियों का पुनरावलोकन करना होगा जबकि लालसोट के अभियान की असफलता से शिन्दे सर्वथा बलहीन हो गया था। सम्राट के पास कोई स्थिर योजना नहीं थी। वह दृढ़संकल्प न होने के कारण अपने परम शत्रुओं के परामर्श पर प्रत्येक क्षणिक परिवर्तन स्वीकार कर लेता था। उत्साही बेगम समरू ने अपनी अल्प परन्तु सुसंचालित सेना तथा ८५ तोपों वाले निपुण

तोपखाने सहित शिन्दे का साथ देने तथा उसके शत्रुओं का वीरतापूर्वक विरोध करने का वचन दिया। किन्तु सम्राट ने उसकी योजना का अनुसरण नहीं किया। शाह निजामुद्दीन तथा लाडोजी देशमुख उसकी रक्षा के लिए अत्यन्त निर्बल थे। अन्तःपुर का सर्वशक्तिशाली अध्यक्ष मंसूर अलीखाँ नाजिर वास्तव में विश्वासघातक था। उसने गुप्त रूप से मराठा सत्ता का अन्त करने के लिए गुलाम कादिर तथा अन्य व्यक्तियों का उपयोग किया।

७. **गुलाम कादिर मुगल प्रासाद में**—१८ जून को बाग देहरा में अपनी निर्णायक विजय के बाद महादजी तुरन्त मथुरा गया तथा ४ जुलाई को अपने पुराने शिविर पर अधिकार कर लिया। यहाँ पर रणजीतसिंह जाट उससे आकर मिला। उसने अपनी पूर्व मैत्री को पुनः पुष्ट किया तथा उसकी भावी योजनाओं को कार्यान्वित करने में अपना सहयोग प्रस्तुत किया। मथुरा निवास के अपने प्रथम दो मासों में महादजी सेना की माँगों को सन्तुष्ट करने में व्यस्त रहा। सेना के एक भाग ने अपने शेष वेतन के तुरन्त भुगतान की माँग पर विद्रोह कर दिया था। अतः वह सम्राट के कार्यों की ओर ध्यान देने के लिए स्वतन्त्र नहीं था।

जुलाई, १७८७ में लालसोट के स्थान पर महादजी की पराजय के बाद से गुलाम कादिर मराठों के विनाश को पूर्ण बनाने में व्यस्त था। वह पहले अपने पूर्वजों के देश दोआब में और उसके बाद दिल्ली के क्षेत्र में अपनी स्थिति सशक्त बनाने में जुट गया। २१ अगस्त, १७८७ को गुलाम कादिर ससैन्य बागपत पहुँच गया तथा सम्राट से मिलने की सूचना भिजवा दी। २३ अगस्त को शाहदरा के स्थान पर शाह निजामुद्दीन ने गुलाम कादिर की सेना पर अकौशलपूर्ण आक्रमण किया और पूर्णतः परास्त हो गया। पराजय के पश्चात भयभीत सम्राट ने विद्रोही से मैत्री की बातचीत आरम्भ कर दी। २६ को वह महल में आया और नाजिर ने उसको सम्राट से मिलाया। उसने सम्राट से मीरबख्शी का पद माँगा तथा मराठों को दिल्ली से भगा देने की प्रतिज्ञा करके नदी के दूसरी पार अपने शिविर में चला गया। ५ सितम्बर को दो हजार सैनिकों को लेकर वह पुनः उपस्थित हुआ और सम्राट को मीर-बख्शी के पद के अतिरिक्त प्रथानुसार वस्त्र सहित अमीरुलउमरा तथा रुक्नुद्दौला बहादुर की उपाधियाँ भी देने पर विवश कर लिया। १७ फरवरी, १७८८ को उसने अलीगढ़ पर अधिकार कर लिया। इसके बाद वह मराठों द्वारा अधिकृत स्थानों को अधीन करने में व्यस्त हो गया।

शिन्दे की १८ जून की विजय पर गुलाम कादिर अत्यन्त क्रुद्ध हो गया। इस समय इस्माइल बेग उसके पास पहुँच गया था जो उस समय सर्वथा दुखित तथा दुरवस्थाग्रस्त था। केवल पारस्परिक मैत्री और सहयोग से ही

उनकी रक्षा हो सकती थी। वैसे उनके व्यक्तिगत उद्देश्य सर्वथा भिन्न थे। इस्माइल बेग सम्राट के विरुद्ध गुलाम कादिर के कठोर कार्यों तथा विवश सम्राट और उसके परिवार के घोर अपमान का हृदय से समर्थन नहीं करता था। इस तथ्य को अस्वीकृत नहीं किया जा सकता कि यदि इस्माइल बेग गुलाम कादिर का साथ न देता तो उसे पठानों के नाम पर सदा सर्वदा के लिए कलंक का टीका लगाने वाले अमानुषी अत्याचार करने का साहस नहीं हो सकता था। रुहेलों की कार्य-योजना का मुख्य समर्थक सम्राट का समीपवर्ती तथा विश्वस्त सेवक अन्तःपुर का अध्यक्ष तथा शिन्दे का घोर शत्रु मंसूर अली था। गुलाम कादिर द्वारा किये हुए अत्याचारों का समय २६ जुलाई से किले के बारूदखाने में आग लगने वाले दिन अर्थात १० अक्टूबर, १७८८ तक है। इसे अशुभ लक्षण समझकर रुहेला चिल्ला उठा—"अब स्वयं गढ़ मुझको शरण नहीं देना चाहता।" उसने लाल किले को छोड़ दिया। तुरन्त उसका पीछा किया गया और वह १६ दिसम्बर को पकड़ लिया गया। अपराधियों का विचार हुआ और ४ मार्च, १७८६ को उन्हें प्राणदण्ड दे दिया गया। उसने अत्याचार किये, उसका पीछा किया गया तथा उसके अपराधों पर विचार हुआ—इन तीन मुख्य विभागों में अब उसके समस्त कार्यों का विस्तृत अध्ययन किया जा सकता है।

गुलाम कादिर पठान वंश का था तथा उसमें एक पठान के स्वाभाविक गुण थे। दया, लज्जा या सत्यप्रियता के गुणों का उसमें सर्वथा अभाव था। अपने पितामह की षड्यन्त्रकारिणी प्रतिभा तो उसे उत्तराधिकार में मिली थी, परन्तु उसकी बुद्धि या पूर्वदृष्टि नहीं मिली थी। अपने पिता की रियासत पर अधिकार प्राप्त करते ही उसने अपने बड़े परिवार के अनेक व्यक्तियों को प्राणदण्ड दे दिया। मदिरा का अभ्यासी होने के कारण वह अपने कार्यों में असावधान हो गया। उसकी महत्त्वाकांक्षा राज-प्रतिनिधि होकर अपने पितामह का अनुकरण करने की थी। "उसको विश्वास था कि ईश्वर ने उसको अपने वीर अफगान-जाति भाइयों की सहायता द्वारा मुगल राजवंश से समस्त हिन्दू प्रभाव निकालकर उसको शुद्ध करने के लिए ही उत्पन्न किया है। जब तक वह साम्राज्यवादियों द्वारा अपने घर तथा राजधानी से अपहृत प्रत्येक वस्तु बलपूर्वक प्राप्त न कर ले, उसकी अफगानी प्रतिशोध भावना शान्त होने वाली नहीं थी। यही कारण है कि उसके द्वारा राजमहिलाओं के साथ की गयी बर्बरताओं, अकथनीय यातनाओं और अपमानों की समता करने वाली घटना इस्लाम के रक्तरंजित इतिहास में भी नहीं है।"

१ जुलाई, १७८८ को इस्माइल बेग अपनी समस्त मुगलिया सेना सहित

दिल्ली के सम्मुख यमुना के दूसरे तट पर स्थित शाहदरा में गुलाम कादिर के साथ हो गया। वहाँ राजकोष तथा सम्राट की भूमियों पर अधिकार करने और गुलाम कादिर के लिए दो भाग तथा इस्माइल बेग के लिए एक भाग के अनुपात से परस्पर विभाजन करने का निश्चय किया गया। तब वे अपना उद्देश्य सिद्ध करने के लिए उपाय सोचने लगे। यह जानकर कि कुछ दुष्टता होने को है, महादजी ने रावलोजी पाटिल तथा भगीरथराव शिन्दे को दो हजार सेना सहित सुव्यवस्था बनाये रखने के लिए भेजा। ८ जुलाई को उन्होंने सम्राट से सम्पर्क स्थापित किया, परन्तु अफगान सैनिकों का सामना करने में असमर्थ होने तथा सम्राट का समर्थन प्राप्त करने में असफल होने के कारण वे शीघ्रतापूर्वक दिल्ली से हटकर हिम्मत बहादुर के साथ फरीदाबाद चले गये और समस्त क्षेत्र धर्मान्ध रुहेलों के लिए स्वतन्त्र छोड़ दिया। गुलाम कादिर ने अपनी सेना सहित १४ जुलाई को नदी पार करके १८ जुलाई को नगर पर अधिकार कर लिया। मुहम्मदशाह की दो वृद्धा बेगमों—मलिका जमानी तथा साहिबा महल—ने पठान को उसके दुष्ट कृत्यों में सहायता दी। उनके महल गढ़ के बाहर थे। उन्होंने शाहआलम को राजच्युत करने और अपने पौत्र बेदारबख्त को गद्दी पर बैठाने के लिए गुलाम कादिर को १२ लाख नकद रुपये दिये। इस प्रकार धन प्राप्त करके गुलाम कादिर ने अपनी सभी प्रकार की अनुचित माँगें सामने रखते हुए सम्राट पर दबाव डालना आरम्भ कर दिया।

२४ जुलाई को शाहआलम रुहेले की समस्त माँगों को स्वीकार करने के लिए विवश किया गया। सम्राट ने वचन का पालन करने के लिए अपने पुत्र सुलेमान शिकोह को शरीर-बन्धक रूप में रख दिया। ३० जुलाई को गुलाम कादिर और इस्माइल बेग ने गढ़ तथा राजभवन पर अधिकार करके शाह-आलम को एक छोटी-सी मसजिद में बन्द कर दिया तथा राजकोष एवं हाथ पड़ने वाली मूल्यवान वस्तुओं को लूटना आरम्भ कर दिया। उसके बाद ६८ दिन तक यह काण्ड होता रहा, जब तक कि उन्हें राजभवन से निकाल नहीं दिया गया। ३१ जुलाई को गुलाम कादिर ने शाहआलम को राजच्युत करके बेदारबख्त को गद्दी पर बैठा दिया। इस प्रकार उसने मलिका जमानी से की गयी प्रतिज्ञा का पालन कर दिया। इसके बाद गुलाम कादिर ने राजवंश का सब प्रकार से अपमान किया तथा क्लेश दिया। अन्त में १० अगस्त को उसने शाहआलम की आँखें फोड़ दीं। नन्हें-नन्हें बच्चों तथा असहाय स्त्रियों को कई-कई दिनों तक अन्न-जल तक नहीं दिया गया और इस प्रकार उनको भूखा मार दिया गया। राजकुमारों को बेंत लगाये गये, राजकुमारियों के साथ

बलात्कार किया गया और नौकरों को तब तक पीटा गया जब तक कि वे मर न गये। गुप्त धन का पता लगाने के लिए राजभवन का सारा क्षेत्र तथा नगर में धनिकों के सब भवन खोद डाले गये। ६ सप्ताह तक सुन्दर राजधानी में नरक का दृश्य रहा। रुहेलों की कामपिपासा को तृप्त करने के लिए अल्प-वयस्क सुन्दरियों का बलिदान कर दिया गया। दासियों को यातनाएँ दी गयीं और हिजड़ों को मार डाला गया, क्योंकि उन्होंने गुप्त धन नहीं बताया था। जो मर गये, उनको गाड़ा तक नहीं गया। इस प्रकार २१ व्यक्तियों की मृत्यु हुई बतायी जाती है। मलिका जमानी तथा साहिबा महल के भवन भी खोद डाले गये तथा सर्वसाधारण के समक्ष उनका नग्न प्रदर्शन किया गया।

गुलाम कादिर का दुष्ट सलाहकार मंसूर अली नाजिर भी उस दुर्गति से न बच सका। गुलाम कादिर ने उसको फटकार लगायी और उस पर ७ लाख रुपये का जुर्माना कर दिया। उसने देने से इनकार कर दिया तो २३ सितम्बर को उसकी तगड़ी पिटाई हुई। इस प्रकार रुहेलों ने लूट का बहुत-सा माल प्राप्त किया, जिसके मूल्य का विशेष अनुमान नहीं किया जा सका है। गुलाम कादिर के भारी दबाव पर समस्त गुप्त कोषागार खोल दिये गये, जिनमें सिक्के, जवाहरात, सोना, चाँदी, बहुमूल्य वस्त्र तथा अन्य मूल्यवान वस्तुएँ भरी थीं। लूट के माल के विभाजन के पूर्व से ही इस्माइल तथा रुहेलों के बीच कटुता फैली हुई थी। इस्माइल ने सम्राट के साथ दुर्व्यवहार का तीव्र विरोध किया तथा इसी कारण अपने सहकारी गुलाम कादिर से अलग हो गया। उसने नगर के एक दूरस्थ भाग में अपना शिविर लगाया, जहाँ उन दोनों में स्पष्ट संघर्ष हो गया। इस अवसर पर गुलाम कादिर ने एकत्र किया हुआ समस्त धन अकेले ही हथिया लिया। इस्माइल की जानकारी एवं सहयोग के बिना उसने किले के अन्दर और भी बीभत्स कार्य किये। सितम्बर के अन्त के समीप जब महादजी अपनी सत्ता पुनः प्राप्त करने लगा तो इस्माइल बेग परिस्थितिवश महादजी के साथ हो गया और दिल्ली से गुलाम कादिर के निकालने में उसने जी-तोड़ प्रयत्न किया।

लाल किले के अन्दर राजमहल में जो बीभत्स दृश्य उपस्थित किये जा रहे थे, उनकी कुछ समय तक कोई सूचना बाहर के लोगों को नहीं मिली। सितम्बर में महादजी को कुछ अस्पष्ट समाचार प्राप्त हुए। उसने सहायतार्थ तुरन्त एक अभियान संगठित किया। उसने पूरी शक्ति से रानाखाँ को भेज दिया। शीघ्र ही जीवबा दादा ने उसका अनुसरण किया। मराठों ने २८ सितम्बर को पुरानी दिल्ली तथा २ अक्तूबर को मुख्य नगर पर अधिकार कर लिया। इस्माइल बेग तथा बेगम समरू ने रानाखाँ का साथ दिया और किले पर अग्निवर्षा

आरम्भ कर दी। अपनी पराजय के भय से गुलाम कादिर लूट का माल नदी पार भेजने लगा, जिससे वह उसके घौसगढ़ स्थित घर में सुरक्षित रख दिया जाये। १० अक्तूबर को रुहेले सिपाहियों की लापरवाही से किले के बारूद-खाने में विस्फोट हो गया। इसके बाद अपने शेष सिपाहियों तथा लूट के माल को लेकर गुलाम कादिर ने गढ़ को खाली कर दिया। अगले दिन ११ अक्तूबर को रानाखाँ, हिम्मत बहादुर गोसाईं तथा रानाजी शिन्दे ने गढ़ में प्रवेश किया। उन्होंने भूखे निवासियों को भोजन दिया तथा महल में रहने वालों के लिए यथाशक्ति शान्ति तथा सुविधा पहुँचाने का प्रबन्ध किया। १६ अक्तूबर को रानाखाँ अन्धे सम्राट के सम्मुख उपस्थित हुआ, उसको राजगद्दी पर बिठा दिया और उसके नाम से पुनः खुतबा पढ़वाया।

उन दुष्टों को पकड़ने को तथा उस माल को छीनने के लिए जिसको लेकर वे भाग रहे थे, तुरन्त पीछा किया गया। ११ अक्तूबर को रायजी पाटिल तथा देवजी गउली ने दोआब में प्रवेश किया। उनके पीछे १२ अक्तूबर को जीवबा दादा भी वहाँ पहुँचा। मराठों ने २० अक्तूबर को दुर्गस्थ सेना से छीनकर अलीगढ़ दुर्ग पर अधिकार कर लिया। रानाखाँ पुनः प्रथम व्यवस्था स्थापित करने तथा राजधानी के पीड़ित व्यक्तियों को सहायता पहुँचाने में व्यस्त हो गया। इस कार्य में उसको दो सप्ताह से अधिक लग गये। वह भगोड़े रुहेलों का सफलतापूर्वक पीछा करने के लिए ३ नवम्बर को दिल्ली से चल दिया। इसी बीच में अली बहादुर, जो पूना से महादजी के शिविर में पहुँच गया था, १७ नवम्बर को रानाखाँ के साथ हो गया। वह महादजी से अपने साथ विशेष निर्देश लाया था कि दिल्ली के लुटेरे को पकड़ने का श्रेय यथासम्भव अली बहादुर को दिया जाये।[९]

दोआब से भागता हुआ गुलाम कादिर ४ नवम्बर को मेरठ पहुँचा तथा वहाँ के गढ़ में शरण लेकर अत्यन्त साहस से अपनी रक्षा करने लगा। मेरठ के समस्त मार्ग रोक दिये गये और लगभग ६ सप्ताह तक उसने मराठा आक्रमणों का प्रतिरोध किया। अन्त में अपनी रक्षा करने में असमर्थ होकर गुलाम कादिर १७ दिसम्बर को चुपचाप गढ़ से भाग निकला तथा शामली के तीन मील दक्षिण-पश्चिम बमनौली में एक ब्राह्मण के घर अपने कुछ अनुचरों सहित छिप गया। गुलाम कादिर के दो साथी—मंसूर अलीखाँ नाजिर तथा उसकी अंगरक्षक सेना का कमाण्डर मनियारसिंह—मेरठ में पकड़ लिये

---

९ गुलाम कादिर के अत्याचारों के सम्पूर्ण विस्तार हिंगने के दिल्ली के पत्रों में प्राप्य हैं। पारसनिस ने इतिहास संग्रह, जीवबा बख्शी की जीवनी आदि में इनको प्रकाशित कर दिया है।

गये। ब्राह्मण ने गुलाम कादिर के गुप्त निवास का समाचार अली बहादुर को पहुँचा दिया। उसने गुलाम कादिर को १६ दिसम्बर को पकड़ लिया और अन्य बन्दियों के साथ ३१ दिसम्बर को मथुरा स्थित महादजी के शिविर में पहुँचा दिया। दो महीने तक महादजी ने प्रयत्न किया कि वह बन्दियों से बल-पूर्वक यथासम्भव धन तथा जानकारी प्राप्त कर ले। वह इस पूरे समय में उनके दण्ड के प्रश्न पर विचार करता रहा। महादजी की दयापूर्ण इच्छाओं के विरुद्ध, सम्राट की आज्ञा से उनकी आँखें निकाल ली गयीं। ४ मार्च, १७८९ को उन्हें प्राणदण्ड दे दिया गया और उनके शव जनसाधारण के समक्ष प्रदर्शित किये गये। सम्राट ने वेदारवख्त का वध कर दिया, जिसको गुलाम कादिर ने गद्दी पर बिठा दिया था। शाहआलम ने महादजी को हार्दिक धन्यवाद दिये, समस्त तैमूरी साम्राज्य में गोवध निषेध का फरमान निकालकर और मथुरा तथा वृन्दावन के दोनों तीर्थस्थानों का शासन देकर महादजी को पुरस्कृत किया। सम्राट को अपनी इस असमर्थता पर खेद रहा कि वह अपने नियन्त्रण में न हो सकने के कारण इसी प्रकार प्रयाग, बनारस तथा गया के तीन अन्य स्थानों का अधिकार महादजी को न दे सका।

उत्तर में स्थित मराठा दूतों तथा विशेषकर स्थायी ब्रिटिश राजदूत हिंगने और स्वयं महादजी शिन्दे ने इन घटनाओं के पूर्ण विवरण पूना को भेज दिये। इन घटनाओं को रोक न सकने पर उन्होंने बहुत खेद प्रकट किया। "मुगल-साम्राज्य का लोप हो गया है। ५०० वर्ष के मुस्लिम शासनकाल में इस प्रकार के अपमानों का पता नहीं मिलता।" यही इन वृत्तान्तों का सारांश है। इस दुखान्त कथा के मुख्य कारण सम्राट की निर्बलता तथा उसके कार्य-कर्ता मसूर अलीखाँ का विश्वासघात थे। शिन्दे ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया—"यदि दिल्ली प्रशासन पूना सरकार का समर्थन प्राप्त करने में असफल रहेगा तो मैं उत्तर की राजनीति से अवकाश ग्रहण कर लूँगा।"[१०]

८. अली बहादुर अग्रदल में—गुलाम कादिर की माता तथा उसके भाई लूट का माल लेकर सिक्खों की शरण प्राप्त करने की इच्छा से कुंजपुरा की ओर भाग गये थे। रायजी पाटिल तथा अली बहादुर ने शीघ्र ही उनका पीछा किया तथा लूट का माल बलपूर्वक छीन लिया। इसी प्रकार घौसगढ़, अलीगढ़ तथा सहारनपुर के रुहेला अधिकृत प्रदेशों पर अधिकार करके वहाँ मराठा सेनाएँ रख दी गयीं। गुलाम कादिर के विभिन्न सरदारों का पता लगाकर उन्हें दण्ड दिया गया। महादजी ने बुद्धिमत्तापूर्वक इन कार्यों तथा नियमित प्रशासन

---

[१०] ग्वालियर के पत्र, सं० ५३६ तथा ५३७

की स्थापना के निरीक्षण हेतु अली बहादुर को नियुक्त किया। उसका विचार इस नवयुवक उत्साही पुरुष को आवश्यक प्रशिक्षण देकर उत्तर में मराठा प्रगतियों के समस्त क्षेत्र का प्रबन्ध सौंपने का था। किन्तु शिन्दे को शीघ्र पता लग गया कि अली बहादुर उसकी नीति के प्रति पूर्ण निष्ठा नहीं रखता है। वह तुकोजी होल्कर के दुष्ट प्रभाव में आ गया है। उसने षड्यन्त्रपूर्ण आचरणों का वह मार्ग अपना लिया था जो महादजी को शीघ्र ही असह्य प्रतीत हुआ। शिन्दे का सचिव अप्पाजी राम नाना को लिखता है—"मालूम होता है कि अली बहादुर में दक्षिण से धन तथा जन की पर्याप्त सहायता प्राप्त किये बिना उत्तर के अशान्त क्षेत्र में शान्ति स्थापित करने और व्यवस्था बनाये रखने की क्षमता नहीं है। वह इस कार्य के संचालन का व्यय भी नहीं निकाल सकता।" नाना फड़निस ने उत्तर दिया—"आप पाटिल बाबा को समझा दें कि वह उत्तरी कार्यों के भार से मुक्त होने तथा अपने स्थान पर अली बहादुर को नियुक्त करने का विचार कभी न करें। यदि महादजी उस ओर से अवकाश ग्रहण करता है, तो अब तक जो परिणाम निकले हैं वे सब नष्ट हो जायेंगे।" महादजी इस विचार से सहमत नहीं था। किसी प्रकार की शान्ति और लाभ न मिलने से उसको अपना कार्य व्यर्थ तथा कष्टप्रद प्रतीत होता था। इसका मुख्य कारण पूना से सप्रेम समर्थन के स्थान पर कड़े विरोध की बौछारें थीं। वह नाना से बारम्बार कहता था—"यह सर्वथा अशक्य तथा व्यर्थ है। अपने पत्र-व्यवहार में आप जो धाराएँ तथा विवादग्रस्त विषय प्रस्तुत करते हैं, उनका उत्तर देना अथवा खण्डन करना सर्वथा अशक्य और व्यर्थ है। यदि मुझे कभी स्वदेश वापस होने की आज्ञा प्राप्त हुई तो मैं केवल व्यक्तिगत वार्तालाप द्वारा सन्तोषजनक स्पष्टीकरण दे सकूँगा। पत्र-व्यवहार की किसी भी मात्रा से यह उद्देश्य सिद्ध नहीं हो सकता।"

इसके शीघ्र पश्चात ही महादजी तथा अली बहादुर दोनों को मालूम हो गया कि वे परस्पर संघर्षरत हैं। अली बहादुर को व्यक्तिगत वार्तालाप के लिए मथुरा बुलाया गया। इस वार्ता का सारांश उसने नाना को इस प्रकार लिखा था—"१४ फरवरी, १७८९ को महादजी से मेरा वार्तालाप हुआ। उसकी इच्छा है कि मैं उत्तरीय कार्यों का प्रबन्ध स्वीकार कर लूँ और वह स्वयं दक्षिण वापस आ जाये। धनाभाव के कारण मैं इस उत्तरदायित्व को स्वीकार नहीं कर सकता। मेरे इनकार करने पर महादजी को असीम क्रोध आ गया। वह कहता है—"मैं नहीं जानता कि मैंने क्या अपराध किया है जो मुझको स्वदेश जाने तथा अपने स्वामी की स्वयं वन्दना करने की आज्ञा नहीं मिलती। मैं निश्चयपूर्वक कहता हूँ कि मैं आजीवन राज्य की सेवा के लिए तैयार हूँ।

ऐसा मालूम होता है कि यहाँ अपने कार्य के प्रति उसे कोई उत्साह नहीं है। आपने मुझको आज्ञा दी है कि पाटिल बाबा द्वारा प्रस्तावित उत्तरदायित्व को मैं स्वीकार न करूँ। कृपया आदेश दें कि मैं क्या करूँ।" केन्द्रीय शासन के प्रतिनिधि के रूप में नाना को साहसपूर्वक अपना निर्णय देना चाहिए था। किन्तु उसने महादजी के विरुद्ध अली बहादुर को और भी अधिक उत्तेजित करने का यत्न किया। उत्तर में उसने लिखा—"ध्यान रखिये कि आपको सदैव मेरा समर्थन प्राप्त है। महादजी के ढंग विचित्र हैं। जहाँ सन्देह न हो, वह वहाँ भी सन्देह उत्पन्न कर सकता है। वह दलबन्दी खड़ी करके सुचारु कार्य में विघ्न उपस्थित कर सकता है। आपकी बहुत समय से यह मिथ्या धारणा है कि महादजी आपका महान संरक्षक होना चाहता था। मुझे विश्वास है कि उसकी कभी भी ऐसी इच्छा नहीं रही। वह आपके सम्मुख कोई विशेष योजना रखेगा और उसके अनुसार कार्य करने का आदेश देगा। तब आप बिना किसी सन्देह के उस मार्ग पर चल पड़ेंगे। पर अन्त में वह सिद्ध कर देगा कि आप विश्वासघातक हैं। यदि वह कोई विषय आपके विवेक पर छोड़ देता है तो आप इसका विश्वासप्रद प्रमाण अवश्य सुरक्षित रखें जिससे वह बाद में अपनी मूल आज्ञा न बदल दे।" इस प्रकार शिन्दे तथा केन्द्रीय मराठा शासन के समस्त सम्बन्ध दूषित हो जाने से राज्य की बहुत हानि हुई। नाना ने स्पष्ट रूप से अली बहादुर तथा उत्तर भारत में कार्य करने वाले अन्य अधिकारियों को भी महादजी के विरुद्ध उत्तेजित कर दिया। यदि नाना शिन्दे की नीति गलत समझता था तो उसके लिए केवल एक मार्ग था। वह उसके स्थान पर किसी अन्य अधिक विश्वस्त कर्मचारी को नियुक्त कर देता। परन्तु नाना जानता था कि उत्तरी कार्यों का भार ग्रहण करने के लिए कोई अन्य व्यक्ति महादजी के समान योग्य नहीं है। साथ ही उसने कपटपूर्ण उपायों के द्वारा महादजी को पराभूत करने का भी प्रयत्न किया।

महादजी की दृष्टि में अली बहादुर के गिरने के अनेक गम्भीर कारण थे। अली बहादुर आर्थिक कष्ट पड़ने पर झूठी हुण्डियाँ लिखने लगा, जिसके कारण उसका समस्त गौरव नष्ट हो गया और किसी को उसका विश्वास नहीं रह गया। उसने अपनी सेना का वेतन चुकाने के लिए महादजी से धन माँगा, क्योंकि पूना के मन्त्रिमण्डल की आज्ञानुसार महादजी को ही उसका व्यय उठाना था। परन्तु महादजी ने कहा कि उत्तर में जिन भयानक कष्टों को सहन करने के कारण उसने मन्त्री नाना से धन और जन की सहायता के लिए प्रार्थना की थी, उसका अभिप्राय था कि जो सेना उसकी सहायता के लिए भेजी जाये, उसका व्यय पूना सरकार ही उठाये। यदि इस सेना का व्यय स्वयं महादजी

को वहन करना था तो वह उस धन से वहीं पर नवीन सेना क्यों न भरती कर लेता ? इस प्रकार शिन्दे तथा अली बहादुर के सम्बन्ध बिगड़ने लगे। स्वयं शिन्दे को वही आर्थिक कष्ट था। उसकी सेना को समय पर वेतन न मिला तो उसने विद्रोह कर दिया। एक अवसर पर उसका चिटनिस कृष्णोबा विद्रोहियों से बातचीत करते समय बहुत घायल हो गया। सुयोगवश रानाखाँ वहाँ था, इसलिए उसने कृष्णोबा के प्राणों की रक्षा कर ली। ये घटनाएँ आकस्मिक न होकर नित्य की थीं, जिनसे महादजी को निपटना पड़ता था।

सभी प्रकार के अपकारों तथा षड्यन्त्रों में निपुण होने के कारण गोसाईं बन्धु भी महादजी के लिए सतत कष्ट का कारण बने रहे। एक ओर महादजी और दूसरी ओर होल्कर तथा अली बहादुर के बीच चलने वाले वैमनस्य के लिए वे कुछ कम उत्तरदायी न थे। लालसोट के बाद महादजी के महान संकट में सहायता देने के लिए नाना ने होल्कर को भेजा था। वह सितम्बर, १७८७ को पूना से चलकर अप्रैल, १७८९ को मथुरा पहुँचा। इस प्रकार लगभग डेढ़ वर्ष का बहुमूल्य समय उसने मार्ग में ही नष्ट कर दिया था। मथुरा पहुँचकर उसने महादजी से उन प्रदेशों का आधा भाग माँगा, जिनको उसने हाल में ही अधीन किया था। महादजी इस माँग से सहमत हो गया, परन्तु यह शर्त रखी कि समान अनुपात में व्यय भी बाँट लिया जाये। तुकोजी को इस प्रत्युत्तर पर क्रोध आ गया। उसने कहा—"हम दोनों संयुक्त परिवार के समान सदस्य हैं। परिवार का एक व्यक्ति घर का प्रबन्ध करता है और दूसरा बाहर जाकर धन कमाता है, परन्तु सम्पत्ति में उन दोनों का बराबर का हिस्सा रहता है।" इस प्रकार उनका संघर्ष पुराने फोड़े की भाँति बढ़ता ही गया और अन्त में लखेरी के रणक्षेत्र में फूट पड़ा। आगे के अध्याय में हमें इसके विस्तृत उल्लेख का अवसर मिलेगा।

तिथिक्रम

अध्याय ६

१७५२	मैलेट का जन्म।
१७५३	टीपू का जन्म।
१७७०	बम्बई में कम्पनी की सेवा में मैलेट का प्रवेश।
१७७५	मैलेट खम्भात में नियुक्त।
१७ मई, १७८२	सालबई की सन्धि पर हस्ताक्षर।
१७८३	भारत में अंग्रेजों को कष्ट।
१७८३	बुसी तथा सर्फ़ पूर्वी समुद्रतट पर।
३० अप्रैल, १७८३	टीपू का बेदनूर पर पुनः अधिकार, उसके द्वारा चार हजारों अंग्रेजों को बन्दी बनाया जाना।
४ मई, १७८३	टीपू द्वारा बंगलौर का घेरा।
३० जनवरी, १७८४	टीपू का मंगलौर पर अधिकार।
११ मार्च, १७८४	अंग्रेजों द्वारा मंगलौर की सन्धि निश्चित।
६ मई, १७८४	यादगिरि में नाना फड़निस तथा निजामअली की भेंट।
२७ जनवरी, १७८५	मैलेट का बम्बई से उत्तर भारत को प्रस्थान।
२० मई, १७८५	मैलेट का मथुरा में महादजी से मिलना।
जून, १७८५	मैलेट का कलकत्ते को प्रस्थान।
२६ जुलाई, १७८५	टीपू का नरगुण्ड पर अधिकार।
सितम्बर, १७८५	टीपू का किट्टूर पर अधिकार।
७ नवम्बर, १७८५	मैलेट कलकत्ता में रेजीडेण्ट नियुक्त।
१५ फरवरी, १७८६	नाना फड़निस तथा निजामअली की भेंट। यादगिरि में टीपू के विरुद्ध युद्धोपाय संगठित।
३ मार्च, १७८६	मैलेट का पूना में आगमन।
१६ मई, १७८६	बादामी में मैलेट तथा नाना फड़निस की भेंट।
२१ मई, १७८६	मराठों का बादामी पर अधिकार।
८ जून, १७८६	मराठों का गजेन्द्रगढ़ पर अधिकार।
३० जून, १७८६	टीपू का अड़ोनी को निजाम से छीन लेना।
२२ सितम्बर, १७८६	कार्नवालिस का शासन की बागडोर सँभालना।

२ अक्तूबर, १७८६	टीपू का हरिपन्त पर अकस्मात आक्रमण ।
१० अक्तूबर, १७८६	टीपू का सावनूर पर अधिकार ।
मार्च, १७८७	मराठों तथा टीपू के बीच गजेन्द्रगढ़ की सन्धि निश्चित ।
१७८८	कार्नवालिस द्वारा भारत में कम्पनी के कार्य संगठित ।
१७८८	कैनेवे हैदराबाद में रेजीडेण्ट नियुक्त ।
१२ अक्तूबर, १७८८	मैलेट का बम्बई जाना ।
२६ मार्च—११ अप्रैल, १७८९	मैलेट पुनः बम्बई में ।
१ जून, १७९०	पूना में त्रिदलीय सन्धि निश्चित ।
४ जुलाई, १७९०	निजामअली द्वारा इस सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर ।
१२ दिसम्बर, १७९०	कार्नवालिस का मद्रास में आगमन तथा टीपू के विरुद्ध युद्ध-संचालन का भार ग्रहण करना ।
जनवरी, १७९१	टीपू के विरुद्ध युद्ध के लिए पूना से हरिपन्त का प्रस्थान ।
फरवरी, १७९१	कार्नवालिस तथा मेडाज का टीपू के विरुद्ध मद्रास से प्रस्थान ।
२१ मार्च, १७९१	कार्नवालिस का बंगलौर पर अधिकार ।
६ अप्रैल, १७९१	परशुराम भाऊ का धारवाड़ पर अधिकार ।
१३ अप्रैल, १७९१	फौलादजंग के अधीन निजाम की सेना बंगलौर के समीप कार्नवालिस के साथ ।
१४ अप्रैल, १७९१	अरिकेरे में टीपू का पराभव ।
२४ अप्रैल, १७९१	हरिपन्त तथा परशुराम भाऊ कार्नवालिस के साथ ।
२८ अप्रैल, १७९१	कार्नवालिस तथा मराठों का मोती तलाब के पास मिलन । वर्षाऋतु में युद्ध विराम ।
अक्तूबर, १७९१	परशुराम भाऊ का बेदनूर के विरुद्ध प्रयाण तथा शृंगेरी के हिन्दू मन्दिर की लूट ।
अक्तूबर, १७९१	चित्रकार वेल्स पूना में ।
५ फरवरी, १७९२	मित्रों का श्रीरंगपट्टन के विरुद्ध प्रयाण ।
११ फरवरी, १७९२	टीपू द्वारा अधीनता स्वीकार ।
२५ फरवरी, १७९२	टीपू के पुत्रों का शरीर-बन्धकों के रूप में मित्र-शिविर में आगमन । सन्धि निश्चित ।
२९ फरवरी, १७९२	मेडोज द्वारा आत्महत्या ।
मार्च, १७९२	हरिपन्त तथा कार्नवालिस में भाईचारा स्थापित ।

१०, अप्रैल, १७९२	मित्र दल विशृंखल ।
मई, १७९२	हरिपन्त का पूना पहुँचना ।
१७९३	चित्रकार डेनियल पूना में ।
२० अक्तूबर, १७९३	कार्नवालिस का अवकाश ग्रहण करना ।
२२ फरवरी, १७९७	मैलेट का पूना में अवकाश ग्रहण करना ।
२४ जनवरी, १८१५	इंगलैण्ड में मैलेट की मृत्यु ।

अध्याय ६

आन्तरिक शान्ति तथा वृद्धि के वर्ष

[१७८४–१७९२ ई०]

१. युद्ध के पश्चात मराठा राज्य की समस्याएँ। २. मित्रता की त्रिदलीय सन्धि। ३. मैसूर युद्ध की झड़पें। ४. टीपू की अधीनता। ५. सर चार्ल्स मैलेट पूना का रेजीडेण्ट।

१. **युद्ध के पश्चात मराठा राज्य की समस्याएँ**—अल्पवयस्क पेशवा ज्यों-ज्यों वयस्क हो रहा था, त्यों-त्यों मराठा राज्य के जटिल कार्यों के प्रबन्धार्थ योग्य शासक होने की आशा बलवती हो रही थी। दुर्भाग्यवश उसे प्रशिक्षण के लिए नाना फड़निस जैसा आत्मकेन्द्रित, संशयशील, उदासीन, अधीर तथा कठोर अनुशासक शिक्षक मिला, जिसकी दृष्टि संकीर्ण थी और अनुभव सीमित। इस समय नेताओं, सैनिकों और कूटनीतिज्ञों का पहले जैसा अभाव न था, परन्तु कार्य करने के लिए उनका मार्गदर्शन तथा नियन्त्रण करने में समर्थ सुयोग्य कर्णधार के अभाव में उन सबको ऐसा लगा कि वे संकटों की बाढ़ में फँसने वाले हैं। सम्भवत: इसका एकमात्र उपाय यह हो सकता था कि नाना तथा वयस्क पेशवा कुछ समय तक महादजी के साथ रहकर वर्तमान शासन में विचारों की एकता स्थापित करते। परन्तु कठोर आत्मप्रदर्शन तथा अन्य व्यक्तियों के साथ सत्ताभोग की अनिच्छा के कारण नाना प्रतिस्पर्द्धा को सहन नहीं कर सकता था। प्रसन्नचित्त सैनिक होने के कारण मराठों के भावी शासक के लिए महादजी शिन्दे अधिक उत्तम शिक्षक सिद्ध होता। वह नाना प्रकार के अनुभवों से युक्त तथा अन्य पुरुषों के साथ व्यवहार में असाधारण रूप से समन्वयशील था। परन्तु विधि की इच्छा यह न थी। इसका परिणाम यह हुआ कि उत्तर तथा दक्षिण के बीच एक प्रकार का दोहरा शासन स्थापित हो गया।

सालबई की सन्धि के कारण होने वाला टीपू सुल्तान के विरुद्ध युद्ध इसका उत्तम उदाहरण है जो कुछ समय तक भयानक रूप धारण किये रहा। नाना के महान कूटनीतिक कार्य अर्थात शक्तिशाली ब्रिटिश-विरोधी संघ के संगठन का वर्णन पहले हो चुका है। इस सन्धि की यह स्पष्ट शर्त थी कि संघ का

कोई भी सदस्य पृथक होकर शान्ति की सन्धि नहीं करेगा। इसी शर्त के कारण हैदरअली ब्रिटिश-विरोधी युद्ध में सम्मिलित हुआ था। यदि हैदरअली अंग्रेजों की शक्ति कर्नाटक में न खींच लेता तो मराठे उतनी सफलता तथा सालबई की अनुकूल शर्तें प्राप्त नही कर सकते थे। हैदरअली को बिना पूछे केवल सालबई की सन्धि ही निश्चित नहीं हुई, अपितु उसमें विशेष शर्त भी रखी गयी कि "पेशवा ६ महीने के अन्दर हैदरअली को कर्नाटक के उन समस्त प्रदेशों को छोड़ने के लिए विवश करने की प्रतिज्ञा करेगा, जिन पर उसने अधिकार कर लिया है।" मराठों के इस विश्वासघात पर हैदरअली का क्रुद्ध होना स्वाभाविक था। जैसे ही सन्धि का निश्चय हुआ, अंग्रेज लोग कर्नाटक से हैदर-अली को निकालने में साथ देने के लिए मराठों पर दबाव डालने लगे। महादजी द्वारा सन्धि इस प्रकार शीघ्र निश्चित कर लेने पर नाना फड़निस को अत्यन्त क्रोध हुआ और जहाँ तक उससे बन सका प्रमाणीकरण को टालता रहा। सर्व-प्रथम कर्नाटक में मुख्य ब्रिटिश सेनापति सर आयर कूट ने हैदरअली को इस सन्धि की शर्तों की सूचना दी तथा १२ जुलाई, १७८२ के एक पत्र में उससे ब्रिटिश प्रदेश त्यागकर तुरन्त अपनी सेना सहित वापस हो जाने को कहा। हैदरअली ने शान्तिपूर्वक कूट को बताया कि उसकी माँग निरर्थक है, क्योंकि उसका आधार एकपक्षीय समझौता है। साथ ही उसने शर्तों की एक प्रतिलिपि माँगी। इस पर कूट ने हैदरअली को पूर्ण प्रतिलिपि भेज दी। हैदरअली ने उसको निम्नांकित कटु उत्तर लिख भेजा—"मैंने गत दो वर्षों में इन प्रदेशों को इस अभिप्राय से अधिकृत नहीं किया है कि आप या अन्य किसी व्यक्ति को प्रसन्न करने के लिए त्याग दूँ। यदि आप में साहस हो तो अपने मित्रों मराठों और निजाम को साथ लेकर आयें और युद्ध करें। तब आपको मालूम हो जायेगा कि मैं क्या कर सकता हूँ। मैं क्या करूँ, इसके लिए मुझे आपकी आज्ञा की आवश्य-कता नहीं है। इस समय पर तो आपको इन प्रदेशों से एक कौड़ी भी नहीं मिल रही है। मैं ध्यान रखूँगा कि भविष्य में भी आपको यहाँ से कुछ न मिले।"[1]

१७ मई, १७८२ को सालबई की शर्तों पर हस्ताक्षर होते ही अंग्रेजों ने महादजी पर दबाव डाला कि हैदरअली के निकालने में उनको मराठा सहायता दी जाये। महादजी ने नाना से पूना की सेनाएँ हैदरअली के विरुद्ध भेजने के लिए कहा तथा उसे (हैदर को) धमकी भेजी, जिससे नाना तथा पूना की सरकार विषम स्थिति में फँस गये। इसी संकटमय स्थिति में ७ दिसम्बर,

---

[1] विद्यार्थियों को परामर्श है कि इस सम्बन्ध में वे ब्रिटिश दूत श्रीनिवास-राव के विस्तृत तथा रोचक वृत्तान्त का अध्ययन करें—फोरेस्ट कृत 'शाही संग्रह' (इम्पीरियल सिलेक्शन), जिल्द ३, पृ० ८८५-८९४

१७८२ को हैदरअली का देहान्त हो गया तथा उसका कार्य उसके धर्मान्ध पुत्र टीपू सुल्तान के हाथ में आ गया। आगे जो हुआ, उसका प्रतिबिम्ब ब्रिटिश लोगों की ओर से युद्ध, विवाद तथा कुप्रबन्धों के जाल में और टीपू की ओर से १७८३ में ब्रिटिश सेना तथा प्रदेशों पर किये गये सर्वनाश में झलकता है। मद्रास तथा बंगाल की सरकारों ने सहयोग का शोचनीय अभाव प्रदर्शित किया और बाद में एक-दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप लगाये, जिनसे इतिहास के पन्ने गन्दे हो रहे हैं।

जब वारेन हेस्टिंग्ज यथाशक्ति टीपू के विरुद्ध दृढ़ता से युद्ध-संचालन क. प्रयत्न कर रहा था तो मद्रास के लार्ड मैकार्टने ने अपनी ओर से उसके साथ शान्ति के प्रस्ताव आरम्भ कर दिये। इसके कारण टीपू को अपने पिता की मृत्यु के बाद अधिक बल से युद्ध करने का साहस हो गया। १७८३ में भारत में ब्रिटिश गौरव निकृष्टतम स्थिति को प्राप्त हो गया था। इस वर्ष के आरम्भ में वृद्ध फ्रेंच ऐडमिरल सफ्रें भारत में पहुँच गये, वयोवृद्ध जनरल कूट की मृत्यु हो गयी और उसका उत्तराधिकारी स्टुअर्ट सर्वथा अयोग्य सिद्ध हुआ। टीपू से शर्तों की प्रार्थना करने की मद्रास कौंसिल की कलंकित नीति का बम्बई तथा बंगाल में घोर विरोध किया गया। मद्रास सरकार का भार हल्का करने के लिए बम्बई के अधिकारियों ने जनरल मैथ्यूज के अधीन शक्तिशाली सेना समुद्री मार्ग से मलाबार समुद्रतट पर भेजी। यह सेना होनावर के बन्दरगाह पर उतरी और इस बन्दरगाह तथा मंगलौर को शीघ्र ही टीपू से छीन लिया। बाद में शीघ्र ही घाटों पर चढ़कर उन्होंने टीपू के शक्तिशाली स्थान बेदनूर पर अधिकार कर लिया। यहाँ मैथ्यूज को धन तथा सामग्री के रूप में लूट का बहुत-सा माल प्राप्त हुआ। अपनी पीठ पर इस आकस्मिक प्रहार से टीपू इस प्रकार क्रुद्ध हुआ कि उसने पूर्वी युद्धक्षेत्र को छोड़ दिया, तथा पश्चिम में मैथ्यूज पर इस शीघ्रता से टूट पड़ा कि उसे भागने का भी समय नहीं मिला। ३० अप्रैल को टीपू ने बेदनूर पर पुनः अधिकार कर लिया। उसने मैथ्यूज तथा उसकी उच्च पदाधिकारियों सहित लगभग ४ हजार की सम्पूर्ण सेना को बन्दी बना लिया। ये सब हथकड़ी-बेड़ी डालकर श्रीरंगपट्टन के कारागार में भेज दिये गये। अंग्रेजों पर यह महान विजय प्राप्त करने के बाद टीपू तुरन्त पश्चिमी समुद्रतट पर उतर आया तथा मंगलौर को घेर लिया, जो युद्ध की निर्णायक घटना सिद्ध हुई। मंगलौर का अवरोध ४ मई, १७८३ से ३० जनवरी, १७८४ तक चलता रहा। ब्रिटिश दुर्गस्थ सेना ने अन्त में क्षुधापीड़ित होकर आत्म-समर्पण कर दिया। गवर्नर मैकार्टने इतना निस्सहाय तथा भयभीत हो गया कि गवर्नर जनरल के विरोध करने पर भी उसने टीपू से शान्ति की सविनय

प्रार्थना करने के लिए एक प्रतिनिधि मण्डल भेज दिया। "जानबूझकर शान्ति प्रस्तावों को विलम्बित करते हुए टीपू ने प्रतिशोध की विचित्र भावना तथा अंग्रेजों को अपमानित करने में क्रूर हर्ष का परिचय दिया।" इस प्रकार टीपू प्रत्येक भारतीय दरबार से यह कह सकने में समर्थ हो गया कि ब्रिटिश सरकार ने मद्रास से उसके पास मंगलौर में प्रतिनिधि मण्डल भेजा है जो शान्ति की शर्तों की प्रार्थना कर रहा है। १८ दिसम्बर को मद्रास कौंसिल ने अपना अधिवेशन किया तथा अपनी परिस्थिति का ज्ञान प्राप्त किया कि उनकी आर्थिक स्थिति शोचनीय हो गयी है, साख नहीं रह गयी है तथा केन्द्रीय शासन का उन पर से विश्वास उठ गया है। इस समय हेस्टिंग्ज शक्तिहीन था; उसकी अपनी कौंसिल ने उसका साथ छोड़ दिया था। मैकार्टने ने उसका अपमान किया तथा टीपू के स्वर में स्वर मिलाया। इंगलिश शान्ति मिशन को देश में मन्द गति से घुमाया गया तथा प्रत्येक मंजिल पर सभी प्रकार से उनका अपमान किया गया। आयुक्तों ने अन्त में मंगलौर में अपने डेरों के सम्मुख तीन बलिवेदियों के निर्माण द्वारा पुनः अपमानित होकर विजयों के पारस्परिक प्रतिदान के आधार पर सन्धि पर हस्ताक्षर कर दिये (११ मार्च, १७८४)। उन बन्दियों में से जो हैदरअली और टीपू के हाथ पड़ गये थे, अधिकांश प्रसिद्ध व्यक्तियों की विष द्वारा हत्या कर दी गयी थी, या जंगल में काट-काटकर उनके टुकड़े कर दिये गये थे। परन्तु १९० अधिकारी तथा ९०० अन्य यूरोप निवासी, जो युद्ध के कई वर्षों में अपने प्रति बर्बर व्यवहार होते हुए भी अब तक जीवित थे, मुक्त कर दिये गये। स्वयं सन्धि-पत्र में भावी युद्ध के कुछ लक्षण थे। सन्धि पर हस्ताक्षर होने के अवसर पर इंगलिश प्रतिनिधियों को दो घण्टे तक नंगे सिर खड़ा रहना पड़ा। "पूना तथा हैदराबाद के वकीलों ने एक स्वर होकर अत्यन्त नम्र याचनाएँ कीं, तभी दैवी प्रतिनिधि महामहिम (टीपू) ने दयार्द्र होकर अन्त में अपनी स्वीकृति दी।"[२] स्पष्ट है कि इस विराम सन्धि को दोनों शक्तियों ने अनिच्छापूर्वक स्वीकार किया था। उनमें से कोई भी दूसरे का नाश नहीं कर सकता था, परन्तु दोनों को पूर्ण विश्वास हो गया था कि एक के सर्वनाश के बिना दूसरे की कुशल नहीं है।

टीपू दर्प तथा व्यक्तिगत वीरता में अपने पिता से बढ़ा-चढ़ा था, परन्तु उसमें अपने पिता की विचारपूर्ण अग्रदृष्टि का अभाव था, जिसके कारण पिता की उन्नति हुई तथा पुत्र का सर्वनाश हो गया। जब मंगलौर में अंग्रेजों पर इस प्रकार भारी दबाव पड़ रहा था, तब महादजी तथा नाना के बीच साल-

---

[२] मार्शमैन कृत, भारत का इतिहास, जिल्द १, पृ० ४१०

बई की शर्तों के अनुसार अंग्रेजों को सहायता देने के प्रश्न पर घोर विवाद चल रहा था। नाना इस बात पर अंग्रेजों से बिगड़ गया था कि पूना से पूछे बिना उन्होंने मंगलौर की सन्धि निश्चित कर ली थी, जबकि हरिपन्त फड़के के अधीन पूना की सेनाएँ टीपू से युद्ध करने के अभिप्राय से काफी दूर जा चुकी थीं। १७८५ के आरम्भ में हेस्टिंग्ज ने अवकाश ले लिया। आगामी वर्ष कार्नवालिस के आगमन के कारण कम्पनी के प्रदेशों में शनैः-शनैः सुव्यवस्थित शासन की स्थापना हो सकी।

निजामअली खाँ ने भी मराठों तथा अंग्रेजों के बीच होने वाले दीर्घकालीन युद्ध से लाभ उठाने में विलम्ब नहीं किया। नाना ने अब अपना ध्यान उन उपायों पर दिया, जिनसे वह निजामअली द्वारा छीने हुए प्रदेशों पर पुनः अधिकार कर सके। जब १७८४ के आरम्भ में मराठा सेनाएँ टीपू के विरुद्ध भेजी गयीं, नाना ने निजामअली से कहा कि इसके लिए वह भी निश्चित मात्रा में अपनी सेना भेजे। ब्रिटिश दबाव से मुक्ति पाकर तथा अपनी सफलता पर प्रफुल्लित होकर टीपू मराठों को दण्ड देने के कार्य में अग्रसर हुआ, क्योंकि मराठों ने उसके हित का विरोध किया था। उसकी धार्मिक मदान्धता नवीन रूप से प्रस्फुटित हो उठी। नाना को समाचार प्राप्त हुए कि टीपू ने एक दिन में ५० हजार हिन्दुओं को मुसलमान बना लिया है तथा उसको गर्व है कि इस अद्भुत कार्य को कोई भी मुसलमान शासक कभी पहले नहीं कर सका। तब वह दोआब स्थित रायचूर में मराठा अधिकृत स्थानों का विनाश करता हुआ सवेग आगे बढ़ा। नाना ने पहले ही हरिपन्त को उससे युद्ध करने के लिए भेज दिया था और अब उसने तुकोजी होल्कर को हरिपन्त की सहायता करने के लिए आज्ञा दी। इस प्रयास में नाना ने निजामअली को अपनी ओर मिलाना आवश्यक समझा तथा रायचूर जिले में यादगिरि के स्थान पर स्वयं उसके साथ व्यक्तिगत वार्तालाप करने का निश्चय किया। इस कार्य के लिए नाना ने पूना से राजसी ठाठ से यात्रा की। सम्मिलन १६ मई को आरम्भ होकर एक सप्ताह तक उचित रीतियों और स्वतन्त्र वार्तालाप सहित चलता रहा। २१ मई को निजामअली नाना के पास मिलने के लिए आया। उन्होंने टीपू के विरुद्ध मिलकर युद्ध करना निश्चित किया। उस समय ऋतु अनुकूल नही रह गयी थी, अतः वास्तविक युद्ध वर्षाऋतु के बाद आने वाली ऋतु के लिए स्थगित कर दिया गया। निजामअली दो वर्षों की शेष चौथ का भुगतान करने के लिए सहमत हो गया। अनेक जटिल प्रश्न अनिश्चित ही छोड़ दिये गये। अन्त में इन भड़कीले सम्मेलनों के बहु-विज्ञापित कार्य से मराठों को कोई ठोस लाभ नहीं हुआ तथा उत्तर में महादजी की सफलताओं की तुलना में यह

कार्य भ्रमात्मक तथा निस्सार प्रतीत हुआ—विशेषकर जब इसका ध्यान रखा जाता है कि राजनीति तलवार का समर्थन पाकर ही सफल होती है। अपनी सैन्य-शक्ति की उन्नति के लिए महादजी ने घोर परिश्रम किया था और नाना ने इस आवश्यक विषय की सदा उपेक्षा की थी।

इन मराठा-निजाम प्रदर्शनों के प्रति टीपू ने अविलम्ब तथा निश्चयात्मक उत्तर दिया। उसने सहधर्मी निजामअली के विरुद्ध प्रतिशोध की भावना से तप्त होकर टीपू ने उसको बीजापुर का समर्पण करने तथा वार्षिक कर देकर स्वयं को आश्रयभोगी स्वीकार करने की आज्ञा दी। धमकी के साथ ही उसने कृष्णा नदी के दक्षिण में निजामअली के जिलों पर आक्रमण कर दिया। साथ ही मराठा अधिकृत धारवाड़ की ओर भी प्रयाण कर दिया। मालाप्रभा के दक्षिण में स्थित किट्टूर तथा नरगुण्ड के दो हिन्दू राज्य मराठों के अधिकार में थे। टीपू की महत्त्वाकांक्षा का इन पर विशेष दाँत था। पूना से प्राप्त होने वाली सहायता के भरोसे पर उन्होंने टीपू का खुला विरोध किया। कुछ समय तक नरगुण्ड के दीवान कालोपन्त पेठे ने योग्यतापूर्वक राज्य की रक्षा की। दीनता के भ्रामक शब्दों से पूना सरकार का सन्देह शान्त करके टीपू ने इस छोटे-से राज्य की रक्षक सेना पर सहसा आक्रमण कर दिया और निर्दयता-पूर्वक नरगुण्ड का नाश कर दिया। वहाँ के ब्राह्मण शासक व्यंकटराव भावे तथा उसके दीवान कालोपन्त को बहुत-से सैनिकों तथा सुन्दर युवतियों के साथ बन्दी बना लिया। युवतियों के साथ अत्यन्त बर्बरता से बलात्कार किया गया (२९ जुलाई, १७८५)। जब बेड़ियाँ डालकर बन्दी श्रीरंगपट्टन ले जाये जा रहे थे, तब निराशा के कारण कालोपन्त की माता का देहान्त हो गया। ब्राह्मणों के साथ विशेष अपमानजनक व्यवहार किया गया। नरगुण्ड के सरदार की युवा महिलाओं में से एक को बलपूर्वक मुस्लिम अन्तःपुर में डाल दिया गया। अब टीपू का दल उत्तर की ओर बढ़ा और उसने किट्टूर पर अधिकार कर लिया। वहाँ के सरदार और उसके परिवार के साथ भी उसी बर्बरता का व्यवहार किया गया (सितम्बर, १७८५)। नगर के समस्त व्यापारियों तथा गृहस्थों का सारा सामान छीन लिया गया। उस प्रान्त के लिंगायतों के साथ उसी प्रकार का दुर्व्यवहार किया गया। टीपू ने मुस्लिम नवयुवकों का एक बड़ा दल बनाया था, जिनको वह अपना पुत्र कहता था। अब उसने उनको हिन्दू परिवारों की सुन्दर महिलाएँ दे दीं। ये अत्याचार १७८५ की वर्षाऋतु में किये गये। जब इन घटनाओं की सूचना नाना के पास पहुँची तो वह अत्यन्त व्याकुल हो उठा। उसने तुकोजी होल्कर तथा नागपुर के भोंसले को बुलाया तथा निजामअली को आग्रहपूर्ण याचनाएँ भेजीं। १५ फरवरी, १७८६ को

नाना और निजामअली यादगिरि में फिर मिले । नाना शिविर में ठहरकर युद्ध का संचालन करने के लिए विवश हो गया ।

मार्च के मध्य के समीप यह संगठन यादगिरि से चल पड़ा और पूर्वी मार्ग से बादामी की ओर बढ़ा । इधर मराठा सरदार बहेरे किट्टूर तथा बेलगाम होकर तुकोजी होल्कर के साथ पश्चिमी मार्ग से बढ़ा । तुकोजी अपने प्रयाण के समय किसी नियम तथा अनुशासन का पालन नहीं करता था । केवल धन प्राप्त करने के लिए उसने मार्ग में पड़ने वाले मराठा प्रदेशों को निश्चिन्त होकर लूट लिया और नष्ट कर दिया । आक्रान्ताओं ने १ मई को बादामी को घेर लिया । तीन सप्ताह के कठोर प्रतिरोध के बाद उस स्थान पर अधिकार कर लिया गया । इसमें मराठों को लगभग एक हजार सैनिकों की बलि देनी पड़ी । स्वयं नाना फड़निस दुर्ग में तोपखाने के निर्देशनार्थ उपस्थित था, क्योंकि उसके नेतृत्व के बिना सेना पर्याप्त प्रयास न करती ।[३]

नाना बादामी से पूना वापस आ गया । मराठा सेनाओं ने गजेन्द्रगढ़ की ओर प्रयाण किया और उस पर ८ जून को अधिकार कर लिया । इन क्षतियों को पूरा करने के लिए टीपू अविलम्ब अडोनी पर टूट पड़ा । यह निजामअली का शक्तिशाली गढ़ था । जून के अन्त में घोर युद्ध के बाद उसने इस स्थान पर अधिकार कर लिया । इस युद्धक्षेत्र में टीपू ने हरिपन्त तथा पटवर्धन परिवार को मुँहतोड़ जवाब दिये । उन पर लगभग इतना भारी दबाव डाला गया कि अपनी रक्षा करने के लिए उन्हें तुंगभद्रा नदी पुन: पार करनी पड़ी । टीपू ने अडोनी पर अधिकार करके वहाँ प्राचीरों को नष्ट कर दिया । तब वह क्रूरतापूर्वक सावनूर की ओर बढ़ा । यहाँ का शासक मराठों का मित्र था । उसकी रक्षा के लिए हरिपन्त को अनेकानेक विघ्न-बाधाएँ सहन करके अकस्मात् दौड़ना पड़ा । होल्कर तथा बहेरे भी सावनूर की रक्षार्थ पहुँच गये । टीपू ने वीरतापूर्वक चुनौती स्वीकार कर ली तथा अगस्त में भयानक युद्ध के लिए अपनी सेना की व्यूह-रचना कर ली । इस अवसर पर मराठा शिविर में केवल महादजी शिन्दे को छोड़कर प्राय: समस्त मराठा सरदार तथा काण्डर उपस्थित थे । इनकी संख्या लगभग ७५ हजार तक पहुँच गयी थी । उनको मालूम हुआ कि अपनी अनुशासित पैदल सेना तथा निपुण तोपखाने के कारण टीपू कितना शक्तिशाली बन गया है । मराठों का एकमात्र आलम्बन प्राचीन प्रथानुसार

---

३ ब्रिटिश रेजीडेण्ड मैलेट, जिसका आगमन पूना में ठीक इसी समय हुआ था और जो बादामी के शिविर में आमन्त्रित किया गया था, इस स्थान पर २० मई, १७८६ को पहली बार नाना से मिला । उसने उस युद्ध के विशद विवरण लिखे हैं ।

गुरिल्ला युद्ध था। वर्तमान अवसर पर दोनों प्रकार की युद्ध-कला के तुलनात्मक गुणों का वास्तविक प्रदर्शन हुआ। उसी पर राष्ट्रीय स्वाधीनता की रक्षा निर्भर थी। सावनूर के विस्तृत मैदान में विशाल मात्रा में इसका उपयोग किया गया। टीपू को पूर्ण विजय प्राप्त हुई। उसने १० अक्तूबर को सावनूर पर अधिकार कर लिया। पटवर्धनों ने स्पष्ट स्वीकार किया—"शत्रु के भारी तोपखाने के सम्मुख हमारी युद्ध-शैली काम नहीं देती।" विशाल संख्या तथा विपुल साधन होते हुए भी उत्तम मराठा सरदार अपनी व्यक्तिगत रक्षा के निमित्त चिन्ताग्रस्त रहे। २ अक्तूबर को टीपू ने अकस्मात् हरिपन्त पर आक्रमण कर दिया। सौभाग्यवश हरिपन्त ने भयानक द्रुत गति से अपनी रक्षा कर ली। परन्तु यह शिक्षा कभी हृदयंगम नहीं की गयी कि टीपू अपने उत्तम रणकौशल, आकस्मिक चालों, शत्रु के निर्बल स्थानों की शीघ्र उपलब्धि तथा उनसे लाभ उठाने की अपनी तत्परता के कारण सफल हुआ था। शान्ति प्रस्तावों का आडम्बर सतत बनाये रखकर उसने मराठों को भ्रम में डाल दिया।[४] होल्कर तथा कुछ अन्य सरदारों को गुप्त रूप से प्रलोभन दिया गया, जिनके समाचारों पर शिविर में स्वतन्त्रतापूर्वक वाद-विवाद हुआ। मराठों ने अनेक मास अनियत युद्ध में व्यर्थ खो दिये। हरिपन्त को युद्ध का संचालन करना कठिन मालूम हुआ।

बादामी में मैलेट की उपस्थिति तथा मराठों और अंग्रेजों के बीच बढ़ती हुई मैत्री ऐसे लक्षण थे, जिनकी उपेक्षा टीपू नहीं कर सकता था। वह अच्छी तरह जानता था कि मंगलौर का अपमान प्रत्येक अंग्रेज को पीड़ा दे रहा है। कम्पनी के शासन का अध्यक्ष इस समय वारेन हेस्टिंग्ज सदृश अवसरवादी व्यक्ति नहीं अपितु उच्च आदर्शवादी गम्भीर राजनीतिज्ञ कार्नवालिस था, जो टीपू की शक्ति को क्षीण करने तथा समस्त प्राप्त साधनों का संगठन करके उनकी सहायता से टीपू का मानमर्दन करके खोयी हुई स्थिति को पुनः प्राप्त करने के लिए शनैः-शनैः तैयार हो रहा था। अतः टीपू ने मराठों के साथ किसी प्रकार की सन्धि स्थापित करने के लिए अधिकाधिक चिन्ता व्यक्त की। नाना युद्ध से ऊब गया था। मराठा सरदारों के परस्पर विरोधी स्वत्वों तथा हितों से उसको घृणा हो गयी। इन्हीं के कारण उनकी ओर से कोई भी संगठित कार्य असम्भव हो जाता था। हरिपन्त ने परिस्थिति का वृत्तान्त भयानक शब्दों में नाना को भेजा तथा उसको स्वयं रणभूमि में आकर अवज्ञाकारी तथा घोर स्वार्थी सहयोगियों से बलपूर्वक काम लेने का निमन्त्रण दिया। परन्तु नाना

---

[४] प्रमाण के लिए देखो, राजवाड़े, जिल्द १०, पृ० २८६ तथा २८९

को शिविर जीवन में कोई रुचि नहीं थी, इसलिए उसने पूना छोड़ने से इनकार कर दिया। हरिपन्त अपनी परिस्थिति को समझ गया तथा उसने होल्कर द्वारा भेजा गया टीपू का शान्ति-प्रस्ताव अविलम्ब स्वीकार कर लिया। वाद-विवाद तथा वार्तालाप के बाद सन्धि-पत्र पर मार्च, १७८७ के आरम्भ में गजेन्द्रगढ़ में हस्ताक्षर हो गये। इनकी मुख्य शर्तें निम्नलिखित थीं :

१. पाँच वर्षों से नहीं चुकाये कर का शेष धन जो कुल मिलाकर ६५ लाख था और अब घटाकर ४८ लाख कर दिया गया था, टीपू मराठों को देगा—३२ लाख तुरन्त तथा शेष १६ लाख ६ महीने में।

२. बादामी, नरगुण्ड तथा किट्टूर मराठों को दे दिये जायें और अडोनी निजामअली को।

३. सावनूर मराठा नियन्त्रण में नवाब को पुनः वापस कर दिया जाय।

४. युद्ध काल में पकड़े हुए समस्त बन्दी मुक्त कर दिये जायें।

श्रीरंगपट्टन के कारावास में कालोपन्त पेठे का देहान्त हो गया था। यह समाचार जोरों पर फैला हुआ था कि तुकोजी ने टीपू के लिए लाभदायक शर्तें निश्चित कराने में भारी घूस खा ली है।

मराठों को इस युद्ध से कोई व्यावहारिक लाभ नहीं हुआ। अब उनकी सीमा का विस्तार तुंगभद्रा नदी तक हो गया, जहाँ वे १७५६ ही में पहुँच गये थे।

जब उत्तर में महादजी दिल्ली में मराठा गौरव बनाये रखने के लिए प्रयत्न कर रहा था, तब नाना को मालूम हुआ कि बाह्य सहायता के बिना वह दक्षिण में खोयी हुई स्थिति पुनः प्राप्त नहीं कर सकता। मैलेट शनैः-शनैः नाना के हृदय में प्रवेश कर गया कि मराठा राज्य की रक्षा के लिए वह ब्रिटिश मैत्री स्वीकार करने के सम्बन्ध में प्रलोभन दे सके। वास्तव में बादामी के स्थान पर निवास के समय नाना ने टीपू के आक्रमण के दमन के लिए ब्रिटिश सेना का प्रबन्ध करने के लिए मैलेट से प्रार्थना की। मैलेट ने चतुरतापूर्वक उत्तर दिया कि मराठों के सदृश टीपू भी उनका मित्र है, अतः अंग्रेज किसी का पक्ष लेना पसन्द नहीं करेंगे, वे तटस्थ रहेंगे। महादजी ने मराठा हितों के लिए हानिकारक समझकर ब्रिटिश मैत्री को प्रोत्साहन नहीं दिया।

यहाँ मराठा-मैसूर सम्बन्धों का विषय समाप्त कर देना उपयुक्त होगा। तभी उत्तर भारतीय कार्यों की कथा लेनी उचित रहेगी।

२. **त्रिदलीय संगठन की सन्धि**—सप्तवर्षीय युद्ध की समाप्ति (१७६३), जिसके द्वारा फ्रांस पर ब्रिटिश समुद्री प्रभुता निश्चित हो गयी, बंगाल की दीवानी का पट्टा (१७६५), तथा १७७३ का नियामक अधिनियम—ऐसी घटनाएँ हैं

जिनके कारण भारतीय राजनीति में अंग्रेजों के अनुकूल परिवर्तन उपस्थित हुए तथा भारत का भावी भाग्य निर्धारित हो गया। भारत में ब्रिटिश सत्ता के प्रथम महान शासक वारेन हेस्टिंग्ज ने तेरह वर्ष (१७७२-१७८५) तक घटनाओं को प्रभावित किया। १७८५ में वारेन हेस्टिंग्ज ने अवकाश ग्रहण किया और तब उससे सर्वथा भिन्न प्रकार का अन्य शक्तिशाली व्यक्ति लार्ड कार्नवालिस घटनास्थल पर प्रकट हुआ जो भारत में अपना कार्य १२ सितम्बर, १७८६ को आरम्भ करके ७ वर्ष तक करता रहा और जिसने २० अक्तूबर, १७९३ को अवकाश ग्रहण किया। इस काल में कार्नवालिस ने ब्रिटिश-भारतीय राजनीति तथा प्रशासन में आमूल परिवर्तन उपस्थित कर दिया। यूरोपीय इतिहास तथा राजनीति से सर्वथा अपरिचित होने के कारण भारतीय शासक इस समय भारतीय भाग्य को शान्तिपूर्वक सुनिश्चित करने वाली चालों को नहीं समझ सके। वारेन हेस्टिंग्ज के कार्यों के कारण इंगलैण्ड में उठ खड़े होने वाले आन्दोलन को कार्नवालिस अच्छी तरह समझता था। इसी आन्दोलन के कारण उस पर उसका प्रसिद्ध अभियोग चलाया गया था। वह सावधानीपूर्वक आक्रमणात्मक कार्यों से दूर रहा। उसने आते ही कोई निर्णायक कार्य-पद्धति आरम्भ करने के पहले अपने प्रथम दो वर्ष धीरतापूर्वक अध्ययन तथा अवलोकन में व्यतीत किये। उसने हेस्टिंग्ज की नीति में एक महान अवगुण यह देखा कि उसने प्रत्येक दिशा में अनेकानेक शत्रुओं को जन्म दे दिया था, जिनके कारण कम्पनी को घोर आर्थिक व्यय में फँस जाना पड़ा। दक्षिणी प्रान्त की कौंसिल सर्वथा निःसत्व थी। मंगलौर की सन्धि से अंग्रेजों के नाम पर धब्बा लग गया था और उनका गौरव घट गया था। उत्तर में शिन्दे मुगल दरबार में शक्तिशाली हो गया था और दक्षिण में टीपू ने ब्रिटिश सत्ता के लिए उद्धत वृत्ति धारण कर रखी थी। निजाम, अर्काट का नवाब, अवध का वजीर तथा स्वयं सम्राट सब व्याकुलता तथा अविश्वास के शिकार हो गये थे। अतः ब्रिटिश स्थिति संकटग्रस्त हो गयी थी—विशेषकर फ्रेंच जनों के पुनः आक्रमणशील होने तथा टीपू सुल्तान की सहायता से भारत में अपने मार्ग को प्रशस्त बनाने के लिए प्रयत्नशील होने से वास्तव में यही उपयुक्त अवसर था कि भारतीय रंगमंच पर भारतीय स्वाधीनता को सुरक्षित रखने में समर्थ शिवाजी या बाजीराव सदृश किसी विलक्षण पुरुष का उदय होता। मराठे, अंग्रेज तथा मैसूर का शासक—स्पष्ट रूप से ये तीन मुख्य शक्तियाँ ही भारत में प्रभुता के लिए स्पर्द्धा कर रही थीं। व्यावहारिक रूप से ये सब समान शक्तिशाली थे। अतः इनमें से कोई दो मिलकर तीसरे की अपेक्षा आसानी से अधिक शक्तिशाली हो सकते थे। निजाम स्वयं महत्त्वशाली नहीं था और उसका झुकाव सदैव विजयी पक्ष की ओर रहता था। टीपू को अपनी फ्रेंच

मैत्री से बहुत आशाएँ थीं। उस समय फ्रांस की महान क्रान्ति की कोई आशंका नहीं थी तथा इंगलैण्ड और फ्रांस के बीच परम्परागत वैमनस्य टीपू की स्थिति को शक्तिशाली बनाने के लिए अनुकूल समझा जाता था। इस परिस्थिति में टीपू ने मराठों से मैत्री सम्बन्ध बनाये रखने तथा अपने विरुद्ध उनको अंग्रेजों से न मिलने देने के लिए अथक प्रयत्न किया। कार्नवालिस भारत में ब्रिटिश प्रभुता स्थापित करने के लिए वारेन हेस्टिंग्ज की अपेक्षा कम उत्सुक न था, परन्तु वह ब्रिटेन की तात्कालिक आवश्यकता के अनुसार उच्च-कोटि का राजनीतिज्ञ था। वह इन गड्ढों से दूर रहा, जिनमें वारेन हेस्टिंग्ज फँस गया था। उस समय ईस्ट इण्डिया कम्पनी की आर्थिक स्थिति अत्यन्त संकटपूर्ण थी। कार्नवालिस उस भयावह स्थिति से परिचित था जो शिन्दे ने उत्तर भारतीय राजनीति में प्राप्त कर ली थी। इन सब तत्त्वों को ध्यान में रखकर कार्नवालिस किसी भारतीय शक्ति के साथ हस्तक्षेप करने से विचारपूर्वक दूर रहा। अपने शासनकाल के प्रथम दो वर्षों में उसने सावधानी से आर्थिक स्थिति को सँभाल लिया। इस कार्य के लिए उसने कम्पनी के प्रशासन की विभिन्न शाखाओं में भारी मितव्ययता से काम लिया। भ्रष्टाचार का दमन किया तथा औपचारिक साक्षात्कारों एवं अवसरों पर उपहार देने की प्रचलित प्रथा बन्द कर दी। १७८८ के अन्त में जब उसको परिस्थिति अपने अनुकूल प्रतीत हुई, तब उसने बाह्य कार्यों की ओर ध्यान दिया। इनमें से सर्वप्रथम टीपू सुल्तान की शक्ति को कुचल देना उसे आवश्यक जान पड़ा। इसी उद्देश्य से डेढ़ वर्ष तक घोर परिश्रम करके उसने निजाम और मराठों के साथ मित्रता स्थापित कर ली। वह सावधानीपूर्वक मन्द गति से गुप्त कूटनीति की टेढ़ी-मेढ़ी भूलभुलैयों में होकर अपने मार्ग पर अग्रसर हुआ। इस कार्य में उसके विश्वस्त प्रतिनिधियों—पूना में मैलेट तथा हैदराबाद में कैनेवे—ने सहायता दी। मैलेट ने नाना की भावनाओं पर अत्यन्त निपुणतापूर्वक प्रभाव डाला। उसकी प्रणाली मोस्टिन से सर्वथा विपरीत थी एवं उसके पत्र-व्यवहार में सरलता से देखी जा सकती है। मैलेट ने नाना की सद्भावना प्राप्त करके उसके तथा महादजी के बीच वैमनस्य उत्पन्न कर दिया।

दो वर्ष के कठिन परिश्रम के बाद कार्नवालिस ने टीपू की शक्ति का दमन करने का निश्चय कर लिया। इस निमित्त उसने पूना तथा हैदराबाद से मित्रता कर ली। उसका अभिप्राय इन शक्तियों से कोई ठोस सैनिक सहायता प्राप्त करना नहीं, अपितु उसका साथ देने से रोकना था। १७८८ में उसने मैलेट को पेशवा से मैत्री प्रस्ताव करने का आदेश दिया। इसी प्रकार का कार्य उसने अपने विश्वस्त प्रतिनिधि कैनेवे को सौंपकर प्रथम ब्रिटिश रेजीडेण्ट

के रूप में निजामअली के दरबार में भेजा तथा त्रिदलीय मैत्री संगठित करने का आदेश दिया। मैलेट ने पूना में अधिकांश मराठा भद्र पुरुषों से व्यक्तिगत मैत्री स्थापित की और इस प्रकार युद्ध में मैसूर के विरुद्ध पेशवा की शक्ति व्यस्त करने के लिए अनुकूल वातावरण उत्पन्न कर लिया। नाना द्वारा प्रोत्साहित इस ब्रिटिश प्रगति में महादजी शिन्दे को कोई रुचि नहीं थी।

१२ अक्तूबर, १७८८ को बम्बई के मराठा दूत ने नाना को लिखा—"मैलेट यहाँ दस दिन से है। गवर्नर के साथ उसकी लम्बी बातचीत चल रही है। वे टीपू के विरुद्ध प्रस्तावित युद्ध तथा उसको फ्रेंच सहायता प्राप्त होने की सम्भावना पर बातचीत कर रहे हैं।" वह आगामी वर्ष २९ मार्च से ११ अप्रैल तक उस योजना को परिपक्व करने के लिए फिर बम्बई में ठहरा। वापस होने पर वह पेशवा की सरकार के साथ मैत्री सन्धि करने में सफल हो गया। इसकी एक पाण्डुलिपि हैदराबाद को भेजी गयी। एक वर्ष से भी अधिक समय तक यह विषय विचाराधीन रहा।

अंग्रेजों के साथ रहकर युद्ध संचालनार्थ नेता के निर्वाचन के लिए नाना ने परशुराम भाऊ तथा हरिपन्त के साथ परामर्श किया। उन दोनों ने उत्तरदायित्व ग्रहण करने से इनकार कर दिया। पूना के एक संवाददाता ने लिखा है—"परशुराम भाऊ कहता है, 'अब मैं निर्बल हो गया हूँ, अतः इस कठिन कार्य को अंगीकार करके असफलता को निमन्त्रण नहीं दे सकता।' हरिपन्त को पेट की बीमारी हो गयी है, अतः वह युद्ध में मराठा सेनाओं का नेतृत्व करने से इनकार करता है। शासन का अध्यक्ष नाना आजीवन भय तथा कायरता के वशीभूत रहा है। वह नहीं जानता कि क्या करे। यहाँ पर सेना को वेतन नहीं मिला है। यहाँ के सैनिक दक्ष भी नहीं हैं। पेशवा के सम्बन्ध में यह है कि अपने हरिण समूह के अतिरिक्त वह किसी बात की ओर ध्यान नहीं देता। परिणाम की कल्पना आप कर सकते हैं।"[५]

यद्यपि मराठे और निजामअलीखाँ दोनों टीपू सुल्तान के आक्रमणों का दमन करने के लिए उत्सुक थे, परन्तु इस समय भारतीय राजनीति का स्वरूप सर्वथा भिन्न दिशा में घूम गया था। ब्रिटिश शक्ति शीघ्रतापूर्वक उन्नति कर रही थी तथा इस समय भारत की सुरक्षा तथा स्वतन्त्रता के लिए भय उपस्थित कर रही थी। अतः अन्य भारतीय शक्तियों को टीपू के विनाश के विषय में स्वभावतः कोई उत्साह नही था। भारत के हित में उसका अस्तित्व आवश्यक समझा जाता था। उसे फ्रेंच शक्ति का समर्थन प्राप्त था और आशा थी कि

५ खरे, ३१८८

यह समर्थन अंग्रेजों के लिए प्रतिबन्ध सिद्ध होगा। कार्नवालिस के योग्य निर्देशन में मैलेट तथा कैनेवे ने लगभग दो वर्ष के सतत परिश्रम के बाद तीनों शक्तियों के बीच ठोस संगठन स्थापित करने का सफल प्रबन्ध कर लिया। मराठा सन्देह को दूर करने के लिए कार्नवालिस युद्ध काल में बम्बई की सेना को मराठा अधिकार में दे देने की सीमा तक बढ़ गया।

मैलेट ने नाना को सूचना दी कि कार्नवालिस वास्तविक युद्ध के कमाण्डर का पद स्वयं सँभालना चाहता है तथा उसने सुझाव दिया कि अल्पवयस्क पेशवा भी स्वयं रणक्षेत्र में सेनाओं के साथ जाकर आवश्यक अनुभव तथा प्रशिक्षण प्राप्त करे। पेशवा की आयु उस समय १६ वर्ष की थी तथा पेशवा वंश की सैनिक परम्पराओं के अनुसार वह यह मार्ग ग्रहण करने के लिए सर्वथा योग्य था। नाना फड़निस ने मैलेट का सुझाव स्वीकार नहीं किया। उसको युद्ध के विषय में अधिक उत्साह नहीं था, पर वह मैलेट की प्रेरणा से अनिच्छा-पूर्वक सहमत हो गया। १४ धाराओं वाली सन्धि १ जून, १७९० को निश्चित हो गयी। दस हजार सवारों के मराठा दल को पूना से पूरा व्यय मिलना निश्चित था और यह दल ब्रिटिश सेना के साथ जाने वाला था। युद्ध में अधिकृत प्रदेशों तथा गढ़ों का बँटवारा मित्रों के बीच समान रूप से होना निश्चय था।[६] निजाम ने सन्धि में विशेष शर्त का प्रस्ताव किया कि ब्रिटिश लोग किसी भी भावी मराठा आक्रमण से उसकी रक्षा करने की प्रतिज्ञा करें। परन्तु बार-बार उपस्थित की जाने पर भी यह शर्त स्वीकार नहीं की गयी। इसी प्रकार नाना फड़निस ने कार्नवालिस से कहा कि बनारस का तीर्थ-स्थान मराठों को दे दिया जाय। उसकी इच्छा थी कि औरंगजेब द्वारा भूमिसात किये गये विश्वेश्वर के प्राचीन हिन्दू मन्दिर की पुनः स्थापना की जाये। वह प्रार्थना भी स्वीकार नहीं की गयी।

दक्षिण की तीनों शक्तियों में निजाम निर्बलतम था। वह अच्छी तरह जानता था कि टीपू की शक्ति भंग होते ही मराठों से सन्धि का प्रतिबन्ध हट जायेगा। ऐसी दशा में सर्वप्रथम उसी पर आक्रमण किया जायेगा, क्योंकि उसने अनेक वर्षों से चौथ का भारी शेष धन नहीं दिया था। अतः उसने सन्धि के प्रमाणीकरण में विलम्ब किया। वह प्रयास कर रहा था कि कार्नवालिस वर्तमान युद्ध की समाप्ति के बाद मराठा स्वत्वों के विरुद्ध उसके लिए ब्रिटिश सुरक्षा देने की प्रतिज्ञा कर ले। अपने मराठा मित्रों को अप्रसन्न

---

६ देखो, पूना रेजीडेन्सी करेस्पोण्डेन्स, जिल्द ३। पूर्ण सन्धि के लिए देखो, पारसनिस कृत 'मैलेट की जीवनी', पृ० ४०, तथा इ० सं० ऐतिहासिक टिप्पणी, जिल्द ५, पृष्ठ ३६

किये बिना कार्नवालिस इस प्रकार का प्रस्ताव स्वीकार नहीं कर सकता था। कार्नवालिस इस समय भारतीय शक्तियों की नवीन राजनीतिक व्यवस्था सम्बन्धी आज्ञा देने को तैयार नहीं था। उसने निजाम के साथ कैसी भी प्रतिज्ञा करने से इनकार कर दिया; किन्तु उसने यह आश्वासन दिया कि विवाद उत्पन्न होने पर वह उसके समाधान के लिए एक मित्र का-सा व्यवहार करेगा, परन्तु उसका यह व्यवहार वर्तमान प्रतिज्ञाओं के अनुरूप ही होगा। बहुत तर्क-वितर्क के बाद ४ जुलाई, १७६० को निजामअली ने पूना की सन्धि पर हस्ताक्षर कर दिये, परन्तु वह पूरे युद्ध काल में मराठों के विरुद्ध ब्रिटिश समर्थन का आश्वासन प्राप्त करने के लिए कार्नवालिस पर दबाव डालता रहा।

३. **मैसूर युद्ध की झड़पें**—युद्ध की कथा कहने से पहले टीपू के पिछले जीवन का कुछ वर्णन कर देना आवश्यक है। उसकी आयु इस समय (१७६० में) ३७ वर्ष की थी। उसका जन्म १७५३ में देवानहल्ली के स्थान पर फखरुन्निसा नामक उच्चकुलोत्पन्न महिला से हुआ था। उसके पिता ने उसको पढ़ने, लिखने, हिसाब-किताब तथा सैनिक-कला की अच्छी शिक्षा दी थी। परन्तु अपने पिता का विवेक तथा सावधानी उसे उत्तराधिकार में नहीं मिले। उसके विशेष गुण घोर साहस, आत्म महत्त्व और सर्वज्ञता की तीव्र चेतना थे। वह धर्मान्ध भी था। अपने धर्म की संख्या वृद्धि द्वारा इस्लाम के गौरव के लिए वह तलवार के उपयोग की प्रतिज्ञा वाला प्रजापीड़क भी था। मलाबार में उसने एक ही अभियान में एक लाख हिन्दुओं को मुसलमान बना लिया था। १७८६ में उसने अपने को सम्राट घोषित कर दिया तथा अपने राज्य की सभी मस्जिदों में अपने नाम का खुतबा पढ़वाया। ब्रिटिश सत्ता से उसको घोर घृणा थी तथा उन्हें भारत से निकाल बाहर करना उसके जीवन की मुख्य प्रेरणा थी। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने सब प्रकार की सैनिक तैयारी की तथा अपने ही प्रदेश का बंगलौर नगर निर्जन कर दिया, जिससे आक्रमणकारी अंग्रेजों को अन्न-जल के अभाव के कारण वहीं रुक जाना पड़े। ४ अगस्त, १७८८ को उसने दो व्यक्तिगत यूरोपीय कार्यकर्ताओं को फ्रांस के राजा के पास पत्र लेकर भेजा और सेना सहित भारत पर आक्रमण करने का निमन्त्रण दिया। ये तैयारियाँ तथा प्रगतियाँ गुप्त नहीं रह सकती थीं, अतः कार्नवालिस उनका सामना करने के लिए तैयार हो गया।

इस समय हमारा सम्बन्ध युद्ध के केवल मराठा सम्बन्धी भाग से है। अन्य विवरण दूसरी जगह मिल सकते हैं। कार्नवालिस पहले से ही मद्रास प्रान्त में ब्रिटिश कार्यों के भयानक कुप्रबन्ध से परिचित था। गवर्नर कैम्पबेल

ने बीमार होकर १७८८ में अवकाश ग्रहण कर लिया था। उसका उत्तराधिकारी हालैण्ड हुआ जो टीपू से युद्ध करने के लिए किसी प्रकार इच्छुक नहीं था। उसने कार्नवालिस के पास इस प्रगति के विरुद्ध अपना कड़ा विरोध-पत्र भेजा। अतः कार्नवालिस ने उसको त्यागपत्र देने को विवश करके उसके स्थान पर सर विलियम मेडोज को नियुक्त कर दिया। मेडोज बम्बई का वीर सैनिक था। १७८० में मद्रास पर हैदरअली के प्रथम आक्रमण के समय उसने घोर अपमानों को सहन किया था। इस कारण वह प्रतिशोध की ज्वाला से व्याकुल हो रहा था। परन्तु मेडोज प्रशासन के अन्य कार्यों के प्रबन्ध के लिए सर्वथा अयोग्य था। बम्बई की सेना मई, १७६० में जलमार्ग से मलाबार समुद्रतट पर पहुँच गयी। मेडोज ने उसी समय पूर्व से पश्चिम की ओर धावा किया। इन आरम्भिक प्रगतियों में टीपू मेडोज को परास्त करके मद्रास की ओर पीछे ढकेलने में सफल हो गया। इस पराभव का कार्नवालिस के मन पर यह प्रभाव पड़ा कि उसने युद्ध का भार स्वयं सँभालने का निश्चय किया तथा टीपू के विरुद्ध सेनाओं का नेतृत्व स्वयं सँभाला। १२ दिसम्बर, १७६० को कार्नवालिस मद्रास पहुँच गया तथा अभियान की सम्पूर्ण योजना बनाने के बाद उसने जनवरी, १७६१ में कमाण्डर का पद ग्रहण कर लिया। इस बीच में मराठे क्या कर रहे थे?

१ जून, १७६० को पूना में सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर हो जाने के बाद परशुराम भाऊ ने धारवाड़ के विरुद्ध प्रयाण किया। उसके साथ जाने वाली ब्रिटिश सेना कैप्टिन लिटिल के अधीन थी। भाऊ २२ सितम्बर को वहाँ पहुँच गया। टीपू के अधिकारी बदीउज्जमाखाँ ने अक्तूबर से अप्रैल तक छह मास घोर अवरोध काल में वीरतापूर्वक इस स्थान की रक्षा की। कैप्टिन मूर के विशद विवरण में इस युद्ध के अनेक रोचक वृत्तान्तों का वर्णन है। ६ अप्रैल को धारवाड़ पर अधिकार हो गया और मराठा ध्वज फहराने लगा। यदि परशुराम भाऊ तुरन्त आगे बढ़कर कार्नवालिस से मिल जाता, जो उस समय बंगलौर पर अधिकार करने के बाद श्रीरंगपट्टन के विरुद्ध प्रयाण कर रहा था, तो शायद एक ही अभियान में युद्ध समाप्त हो जाता। परन्तु दोनों मित्रों के उद्देश्य पृथक थे, अतः भाऊ हृदय से कार्नवालिस की योजना के साथ न था। टीपू मराठों को तटस्थ करने के लिए पूना सरकार से यथाशक्ति प्रयास करता रहा। प्रगतियो के विलम्ब में इसका कम प्रभाव नहीं पड़ा।

मैडोज को सेना में द्वितीय पद देकर कार्नवालिस ने फरवरी में मद्रास से प्रस्थान किया तथा तीव्र वेग से बंगलौर के विरुद्ध बढ़ा। बंगलौर पर २१ मार्च को अधिकार कर लिया गया। इस आश्चर्यकारी कौशल पर उसके मित्र

भी अवाक रह गये। बंगलौर पर अधिकार करने के बाद कार्नवालिस ने तुरन्त श्रीरंगपट्टन के विरुद्ध प्रयाण कर दिया। श्रीरंगपट्टन के पतन से युद्ध एक धावे में ही समाप्त हो जाता। कुछ समय बाद १३ अप्रैल को निजामअली की सेना कार्नवालिस के साथ हो गयी। इसका कमाण्डर निजाम का पुत्र फौलाद जंग था। दो मन्त्री मुशीरुल्मुल्क तथा मीर आलम उसके सहायक थे। उन सबने कार्नवालिस से प्रथानुसार औपचारिक भेंट की। हरिपन्त फड़के, जिसकी इच्छा सन्धि की शर्तों को अविलम्ब पालन करने की नहीं थीं, १७९१ के आरम्भ में पूना से चला। कुछ दूर तक नाना और मैलेट उसके साथ रहे, परन्तु वे वापस चले गये, क्योंकि उनकी उपस्थिति आवश्यक नहीं समझी गयी। हरिपन्त निजामअली से मिलने तथा स्वतन्त्र योजना का निर्माण करने के विचार से पूर्व की ओर चला। वे रायचूर से लगभग ५० मील पूर्व में पंगल के स्थान पर मिले और हरिपन्त निजामअली के दल के साथ मन्द गति से बंगलौर की ओर बढ़ा। परशुराम भाऊ तथा हरिपन्त यदि शीघ्रता से प्रयाण करते तो सम्भवत: अप्रैल में कार्नवालिस के साथ हो सकते थे। परन्तु दोनों मराठा सरदारों ने अपना मूल्यवान समय मैसूर के उत्तरी जिलों को अधीन करने में नष्ट कर दिया। कार्नवालिस अधीर हो गया और अधिक प्रतीक्षा किये बिना वह बलपूर्वक श्रीरंगपट्टन के विरुद्ध बढ़ा। अरिकेरा के स्थान पर १४ मई को टीपू से उसका भयानक युद्ध हुआ। लार्ड कार्नवालिस जब टीपू की राजधानी पर अन्तिम प्रहार के लिए प्रयाण करने की तैयारी कर रहा था, तभी उसके सामग्री विभाग ने सूचना दी कि भोजन सामग्री समाप्त हो जाने के कारण एक पग भी आगे बढ़ना असम्भव है; भारवाहक पशु सूखकर काँटा हो गये हैं तथा समस्त शिविर क्षुधा तथा रोग का शिकार हो रहा है। गवर्नर जनरल समझ गया कि उसकी मुक्ति अविलम्ब प्रत्यागमन पर निर्भर है। उसने २६ मई को लौटना आरम्भ कर दिया।

इस बीच में २४ मई को परस्पर संयुक्त होकर दोनों मराठा सेनाओं ने श्रीरंगपट्टन की ओर शीघ्रता से प्रयाण किया। एक सेना धारवाड़ से परशुराम भाऊ के नेतृत्व में आयी थी और दूसरी पूर्व से हरिपन्त के नेतृत्व में। ब्रिटिश सेना की शीघ्र प्रगति तथा कार्नवालिस द्वारा एक ही धावे में युद्ध समाप्त कर लेने की सम्भावना से उन्हें बहुत क्लेश हो रहा था। इस प्रकार सम्भव था कि मित्रों को युद्ध का अवसर ही न मिले और वे लूट में कुछ भी हिस्सा न ले पायें। टीपू की राजधानी से लगभग २० मील उत्तर में मेलकोटा के समीप वापस होते हुए ब्रिटिश लोगों ने सहसा इन सेनाओं को देखा। टीपू के निपुण गुप्तचरों ने तीनों मित्रों की पृथक-पृथक गतिविधियों का

समाचार एक-दूसरे तक न पहुँचने देने का सफल प्रबन्ध कर लिया था। इस विषय में ब्रिटिश वर्णन से प्रकट होता है कि यदि कार्नवालिस को मराठा सेनाओं के निकटागमन का समाचार एक सप्ताह पूर्व प्राप्त हो जाता तो वह कभी पीछे न हटता। धनाभाव के कठोर कष्ट के कारण हरिपन्त की प्रगति में विलम्ब हो गया। परन्तु जो कुछ भी हुआ वह सबके लिए स्वस्थ एवं सहायक लग रहा था। मराठों के पास विशाल भोजन सामग्री थी, जिससे ब्रिटिश सेना का आहार सम्बन्धी कष्ट दूर हो गया। "नाना प्रकार की वस्तुएँ—इंगलिश लंकलाट, कलम बनाने वाले बर्मिंघम के चाकू, कश्मीर के उत्तम शाल, दुष्प्राप्य तथा बहुमूल्य आभूषण और साथ-साथ बैल, भेड़, पक्षी एवं अत्यन्त समृद्ध नगर में प्राप्य सामग्री उपस्थित थी।"[७]

हरिपन्त ने क्षुधापीड़ित अंग्रेजों को भोजन सामग्री बेची। उसकी सेना का वेतन बहुत दिनों से शेष था इसलिए उसने कार्नवालिस से १२ लाख रुपये का ऋण माँगा। कार्नवालिस ने अविलम्ब यह ऋण दे दिया। उसने इस कार्य में कम्पनी के व्यापार के लिए चीन जाने वाले सोने का उपयोग किया और यह धन युद्ध के व्यय में डाल दिया। कार्नवालिस, परशुराम भाऊ तथा हरिपन्त २८ मई को मोती तालाब पर प्रेमपूर्वक मिले। इसके बाद टीपू सुल्तान के विरुद्ध उत्तम योजना बनाने के लिए वार्तालाप तथा विचार-विनिमय हुआ। सबको इसी योजना के अनुसार काम करना था। अभियान की ऋतु लगभग समाप्त हो गयी थी। वर्षा आरम्भ हो गयी थी और कावेरी में बाढ़ आ गयी थी। अतः यह निश्चय किया गया कि श्रीरंगपट्टन पर आक्रमण वर्षाऋतु के समाप्त होने तक स्थगित कर दिया जाये तथा इस अवकाश में सफल आक्रमण के लिए तैयारी की जाये। कार्नवालिस और हरिपन्त को बंगलौर के समीप तीन मास तक परस्पर भाईचारा स्थापित करने की सुविधाएँ मिलना इसी सहवास का महत्त्वपूर्ण परिणाम था। ७ जुलाई को कार्नवालिस ने अपनी अनुशासित सेना का शानदार प्रदर्शन किया, जिसकी अनुपम निपुणता का दोनों मराठा सरदारों तथा उनके अनुचरों पर बहुत प्रभाव पड़ा। तीन मास तक दो अपरिचित राष्ट्रों के उत्तम तथा परम बुद्धिमान व्यक्ति साथ-साथ रहे और निकट सम्पर्क से उन्होंने बहुमूल्य शिक्षाएँ तथा लाभ प्राप्त किये। निजाम की सेना भी समस्त काल में समीप ही उपस्थित रही तथा पारस्परिक तुलना द्वारा इसकी अकुशलता और दुर्व्यवस्था अधिक स्पष्ट हो गयी। "विलासी अश्वारोही उन लोगों की रक्षा करने में भी समर्थ नहीं थे जो उनके लिए खाद्य सामग्री जुटाने का काम करते थे। इस प्रकार ये लोग रणक्षेत्र की दृष्टि

---

७ मार्शमैन, जिल्द २, पृष्ठ २०

से सर्वथा अनुपयुक्त थे। अतः उन्होंने अंग्रेजी रक्षा टुकड़ियों से दूर जाना शीघ्र ही बन्द कर दिया।"[८]

टीपू ३० वर्षों से भी अधिक समय से परशुराम भाऊ के परिवार के साथ अन्याय कर रहा था। उसका प्रतिशोध स्वतन्त्र रूप से लेने का अवसर हाथ से निकल गया। इस कारण उसे अत्यन्त खेद हुआ। अक्तूबर में भाऊ ने बेदनूर के जिले की ओर प्रयाण किया। इसकी विजय के लिए नाना साहब के समय से ही वीर प्रयास किये जा रहे थे। रघुनाथराव पटवर्धन ने टीपू के विरुद्ध प्रतिशोध की भावना से उत्तेजित होकर शृंगेरी के शंकराचार्य का पवित्र मठ इस समय अकारण ही नष्ट कर दिया। हिन्दू धर्म पर यह प्रहार सवर्ण हिन्दुओं की ओर से ही किया गया। मराठा इतिहास में यह दुखद संस्मरण बहुत दिनों जीवित रहा।

टीपू को कार्नवालिस की ओर से ऐसे शीघ्र प्रहारों की आशंका नहीं थी। संकट द्वारा सब दिशाओं से घिर जाने तथा अपनी ही राजधानी में ढकेल दिये जाने पर उसने क्रूरतापूर्ण धर्मान्धता को नियन्त्रित कर लिया और अपने मन्त्री पुर्नैया को कार्नवालिस से मिलकर शर्तें प्राप्त करने भेजा। उसने आग्रह किया—"संयम तथा सज्जनता के लिए प्रसिद्ध अंग्रेज स्वयं को कलंकित न करें। मैं प्राचीन तथा प्रतिष्ठा प्राप्त शासक नहीं हूँ, अतः दुर्गति सहन करने को तैयार हूँ। मैं बिना कष्ट के उस सम्पत्ति की हानि सह सकता हूँ जो मेरे पिता तथा मैंने केवल बाहुबल से प्राप्त की है।" टीपू ने अपने बन्धन में पड़े अनेक अधिकारियों को आगामी युद्ध बन्द करने की शर्त पर मुक्त करने का वचन दिया। इस समय वह कंची के हिन्दू मन्दिरों में गया। यहाँ हैदरअली द्वारा प्रारम्भ किये गये मुख्य मन्दिर के प्रधान द्वार का निर्माण अधूरा पड़ा था। टीपू ने यह कार्य शीघ्र समाप्त करने तथा इसका धन स्वयं देने को कहा। उसने विस्तृत हिन्दू रथयात्रा का स्वयं नेतृत्व किया और अपने ही हाथों से विशाल आतिशबाजी छोड़ी। उसका अभिप्राय यह प्रकट करना था कि उसे हिन्दू धर्म के हितों की बहुत चिन्ता है। उसने अनेक ब्राह्मणों को हिन्दू धर्म के अनुसार अनुष्ठान करने तथा उसकी सेना की सफलता के लिए प्रार्थना करने के कार्य पर नियुक्त किया। अनेक ब्राह्मण कुछ दिनों तक जलमग्न रहकर विशेष तपस्या करने के लिए नियत किये गये। उसने शृंगेरी मठ के शंकराचार्य को पूजाविधि के निरीक्षण के लिए उपस्थित रहने का निमन्त्रण दिया, जिससे युद्ध में उसकी सफलता निश्चित हो जाये। उसने हिन्दू मन्दिरों में नवीन स्वर्ण प्रतिमाओं की स्थापना पर बड़ी मात्रा में धन व्यय किया। ४० हजार ब्राह्मणों

---

८ मार्शमैन, जिल्द २, पृष्ठ १७

को भिक्षा तथा भोजन दिया गया। इस प्रकार उसने संसार को यह बताया कि वह मुसलमान होते हुए भी हिन्दू हितों की रक्षा करता है, जबकि इसके वितरीत हिन्दू पटवर्धन परिवार ने शंकराचार्य के मठ को नष्ट कर दिया। इस प्रकार, संक्षेपतः विवशतापूर्ण अकर्मण्यता के समय में टीपू ने शान्ति स्थापित करने का यथाशक्ति प्रयत्न किया। उसने पूना को द्रुतगामी दूत भेजे तथा नाना फड़निस से मध्यस्थ बनने की प्रार्थना की। हरिपन्त तथा निजाम अली के शिविरों में भी टीपू के दूतों ने यही कार्य अधिकाधिक मात्रा में किया। उसने फ्रेंच सहायता के लिए भी साग्रह प्रार्थनाएँ भेजीं।[६]

४. **टीपू की अधीनता**—कार्नवालिस टीपू की इन तूफानी गतिविधियों के साथ-साथ अपने दोनों मित्रों के जटिल आन्तरिक षड्यन्त्रों से भी सुपरिचित था। उसने शान्ति के निश्चय करने का प्रबन्ध इस प्रकार किया कि बाह्य हस्त-क्षेप के लिए किसी को कोई अवसर नहीं मिल पाया तथा नाना प्रकार की समस्याओं के निपटाने में उसने अपने को कूटनीति का पूर्ण अधिकारी सिद्ध कर दिया। इस समय उसमें तथा उसकी सेना में उच्चतम उत्साह का भाव था। उन्होंने फरवरी, १७६२ के आरम्भ में आगे बढ़ना आरम्भ कर दिया। जैसे ही सेनाओं ने श्रीरंगपट्टन पर आक्रमण आरम्भ किया, हरिपन्त ने कार्न-वालिस पर अपने व्यक्तिगत प्रभाव का उपयोग किया तथा उसको टीपू का अधीनता प्रस्ताव स्वीकार करने और युद्ध बन्द करने के लिए सहमत कर लिया। हरिपन्त लिखता है—"५ फरवरी को अंग्रेजी सेनाएँ पट्टन से ५ मील की दूरी पर पहुँच गयीं। उनके पीछे मराठा सेनाएँ थीं और बाद में नवाब की सेनाएँ। उसी रात्रि को भारी तोपों ने टीपू की सेना की पंक्तियों पर अग्नि-वर्षा आरम्भ कर दी। टीपू शत्रु के प्रतिरोध के लिए सावधानीपूर्वक तैयार था, परन्तु अंग्रेजी वीरता ने समस्त विघ्न-बाधाओं को पार कर लिया। उनकी भारी क्षति हुई—लगभग ७०० गोरे तथा १ हजार भारतीय सिपाही मारे गये। दूसरे दिन भी रण होता रहा, जिससे थककर दोनों दल पूरे तीसरे दिन विश्राम करते रहे। चौथे दिन अंग्रेजों ने अपना आक्रमण इस उग्रता तथा निश्चय से आरम्भ किया कि हमने इस प्रकार का दृश्य पहले कभी नहीं देखा था। टीपू ने भी समान धैर्य से उत्तर दिया। टीपू ने उस समय तक जो महान क्षति सहन की उससे कार्नवालिस को विश्वास हो गया कि श्रीरंगपट्टन पर

---

[६] पारसनिस ने इ० सं० में १७ पत्र छापे हैं जो हरिपन्त फड़के ने नाना फड़निस को ६ फरवरी से ७ मार्च, १७६२ तक लिखे थे। इनका शीर्षक 'विभिन्न कार्य' है। ये टीपू की प्रवृत्तियों तथा मित्रों की राजनीति को अन्य पत्रों की अपेक्षा उत्तम रूप से प्रकट करते हैं।

सरलता से अधिकार होना सम्भव नहीं है। ११ फरवरी को लार्ड कार्नवालिस तथा मुझको टीपू के पत्र मिले, जिनमें उसने अपने राजपूत भेजने की बात कह कर उत्तर की प्रार्थना की थी। कठिन परिस्थिति का सामना करते हुए भी सज्जन लार्ड ने राजदूत को शिविर में बुलाने की इच्छा व्यक्त की। साथ ही उसने कहा कि यदि हमें स्थिति असन्तोषजनक प्रतीत होगी तो युद्ध पुनः आरम्भ कर देंगे। तब टीपू का राजदूत आया और मेरी मध्यस्थता से समझौता हो गया। इसका तात्पर्य था, टीपू अपना आधा राज्य और तीन करोड़ का नकद दण्ड दे। जब तक भुगतान न हो जाये, वह अपने दो पुत्रों का शरीर-बन्धक रूप में समर्पण कर दे। टीपू ने शर्त स्वीकार कर ली और हस्ताक्षर कर दिये। उसके दोनों पुत्र जिनकी आयु १० तथा ८ वर्ष की थी, २५ फरवरी को अंग्रेजी शिविर में पहुँच गये। वे अपने साथ टीपू के इस आशय के व्यक्तिगत पत्र लाये कि सज्जन लार्ड उनको अपना पुत्र समझे। कैनेवे, दौला (मुशीरुल्मुल्क) और मैंने परामर्श किया। हमने गोविन्दराव काले, बचाजी मेहेण्डाले और अप्पा बलवन्त को भी बुला लिया था। मिलकर शर्तों का प्रस्ताव किया गया, जिनको टीपू ने स्वीकार कर लिया और युद्ध समाप्त हो गया। टीपू के दोनों पुत्रों का तीनों शिविरों में अलग-अलग सत्कार किया गया। मेरे डेरे में आकर उन्होंने बताया कि वे भूखे हैं। मैंने अलग डेरे में उनको भोजन दिया। टीपू ने अपने दीवान पुर्नैया को शर्तों के पालनार्थ भेजा। मेडोज तथा कार्नवालिस ने २९ फरवरी को वार्तालाप किया। बाद में मेडोज अपने डेरे को वापस चला गया। वहाँ उसने गोली मारकर आत्महत्या कर ली। मालूम होता है कि वह शर्तों का अनुमोदन करने को तैयार नहीं था। कार्नवालिस ने कृपापूर्वक बंगलौर का गढ़ टीपू को वापस कर दिया। सब बातों को ध्यान में रखते हुए हमको भयानक रण का अनुभव हुआ और हमने अपने श्रीमन्त के अहोभाग्य से महान सफलता प्राप्त की। मेरी इच्छा तुरन्त वापस आने की है, परन्तु लार्ड का आग्रह है कि पृथक होने के स्थान तक मैं उसके साथ यात्रा करूँ।"

टीपू के साथ युद्ध बन्द करने के लिए सहमत होने में कार्नवालिस का उद्देश्य बाद को कुछ भिन्न मालूम हुआ। वारेन हेस्टिंग्ज पर चलने वाले अभियोग के कारण इंगलैण्ड का वातावरण इस समय विषम हो रहा था। कार्नवालिस ने पहले ही बहुत धन व्यय कर दिया था। अब उसने वह नकद धन भी युद्ध में झोंक दिया जो चीन में व्यापार पर लगाया जाने वाला था। अतः डाइरेक्टरों ने उसको तुरन्त युद्ध बन्द करने और अधिक व्यय रोक देने की आज्ञा भेजी। इस परिस्थिति में कार्नवालिस हानिकारक कार्य से बच

गया तथा शत्रु का अन्तिम रूप में नाश कर देने के स्थान पर उसने इस प्रकार की उदार शर्तों को पाकर युद्ध बन्द कर दिया।

१७९१ की ग्रीष्मऋतु में टीपू के विरुद्ध कार्नवालिस के असफल अभियान के सम्बन्ध में महादजी शिन्दे पर होने वाली प्रतिक्रिया का उल्लेख रोचक होगा। उस समय वह राजपूत संघ के विरुद्ध युद्ध का संचालन कर रहा था और उसने अंग्रेजों से प्रस्ताव किया था कि यदि गवर्नर जनरल इलाहाबाद से आने वाले दो ब्रिटिश दलों को राजस्थान के युद्ध में उसकी सहायता करने की आज्ञा दे दें तो वह स्वयं सेना सहित अंग्रेजों का साथ देने को प्रस्तुत है। पर इस प्रस्ताव का घृणापूर्वक तिरस्कार कर दिया गया।[10]

श्रीरंगपट्टन से हरिपन्त की वापसी से पहले ही टीपू सुल्तान स्वयं कुछ समय के लिए उससे गुप्त रूप से मिला। इस घटना का इतिहास में शायद कोई उल्लेख नहीं है। इस अवसर पर टीपू ने हरिपन्त को अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण चेतावनी दी। उसने कहा—"यह आप अवश्य जान लें कि मैं सर्वथा आपका शत्रु नहीं हूँ। आपके वास्तविक शत्रु अंग्रेज लोग हैं, जिनसे आप सावधान रहने का प्रयत्न करें।"[11] उसकी यह भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई। टीपू केवल हार गया था, उसका सर्वथा अन्त नहीं हुआ था। उसको कुछ पता नहीं था कि इस समय उसके मित्र फ्रेंच लोगों की यूरोप में क्या दशा है। टीपू को उनसे भारत की भावी राजनीति में बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं। उसको विश्वास था कि उनकी सहायता से वह एक दिन अपनी स्थिति पुनः प्राप्त कर लेगा। स्वयं कार्नवालिस भी समझता था कि वह दिन शीघ्र आ जायेगा जब उसको अन्तिम रूप से टीपू का नाश करना पड़ेगा। हरिपन्त इस परिस्थिति के गूढ़ अर्थों को कहाँ तक समझता था, हमारे पास इसे जानने का कोई साधन नहीं है। वह बंगलौर के समीप फरवरी और मार्च के ६ सप्ताहों में कार्नवालिस से मित्र की भाँति बातचीत करता रहा था। हरिपन्त के वास्तविक तथा सरल व्यवहार का कार्नवालिस पर बहुत अनुकूल प्रभाव पड़ा, क्योंकि यह व्यवहार वास्तविक योद्धा के सर्वथा उपयुक्त था। उनके बीच प्रत्येक प्रकार के शिष्टाचार का स्वतन्त्रतापूर्वक आदान-प्रदान हुआ। भोज दिये गये, आमोद-प्रमोद का प्रबन्ध हुआ और इनमें मुशीरुल्मुल्क ने भी भाग लिया। निजाम की सेना तथा उसके प्रशासन के विषय में कार्नवालिस की धारणा अत्यन्त निम्न-कोटि की थी, जबकि मराठों की सेना तथा उनका प्रशासन उसको बहुत अच्छा मालूम हुआ। वह लिखता है—"ये सेनाएँ सुस्त तथा बेकार हैं। ये केवल

---

[10] देखो कीन कृत, 'महादजी सिन्धिया', पृ० १९१

[11] इतिहास संग्रह, ऐतिहासिक किर्कोल प्रकरणे, भाग २

बहुमूल्य भोजन-सामग्री को खा-पीकर समाप्त करने में ही समर्थ हैं। ये निश्चय रूप से किसी भी उपयोगी कार्य में विघ्न-बाधा हैं।"[१२]

यह मूल्यांकन समस्त पर्यवेक्षकों को असंदिग्ध रूप से स्पष्ट हो गया होगा। कैप्टिन लिटिल के अधीन बम्बई के दल को परशुराम भाऊ के साथ वापस होने की आज्ञा मिल गयी, क्योंकि वह उसी के साथ आया था। नाना फड़निस ने उन्हें पूना पहुँचने की आज्ञा दी थी, जिससे वह (नाना) महादजी शिन्दे के आशंकित आक्रमण के सम्भावित संकट का सामना कर सके। परन्तु कार्नवालिस ने इस आज्ञा के पालन से साफ इनकार कर दिया। हरिपन्त ने लार्ड कार्नवालिस के उच्च तथा वीरपुरुषोचित आचरण और स्पष्ट, सभ्य तथा आत्मीयतापूर्ण स्वभाव का परिचय नाना को प्रशंसापूर्ण ढंग से दिया। हरिपन्त लिखता है—"आकृति से सौम्य लार्ड ६० वर्ष से ऊपर की आयु का प्रतीत होता है। उसके सब बाल सफेद हैं। बंगाल में कुछ मास ठहरकर वह अवकाश ग्रहण करने वाला है।" १० अप्रैल को मित्र सामन्त एक-दूसरे से विदा हो गये। हरिपन्त तथा लार्ड कार्नवालिस के बीच जो स्पष्ट एवं घनिष्ठ मैत्री हो गयी, उसे मुशीरुल्मुल्क सहन नहीं कर सका। वह अपने स्वामी के राज्य के भविष्य के विषय में बहुत चिन्तित हो उठा। मुशीरुल्मुल्क ने कार्नवालिस से यह आश्वासन प्राप्त करने का यथाशक्ति प्रयास किया कि भविष्य में निजाम पर होने वाली मराठा माँगों के विरुद्ध उसे ब्रिटिश सुरक्षा मिलेगी। परन्तु कैनेवे और कार्नवालिस ने परस्पर ऐसी कोई भी प्रतिज्ञा न करने का निश्चय कर लिया था, जिसके कारण कम्पनी सरकार दोनों पड़ोसियों के बीच होने वाले भावी युद्ध में फँस जाये। हरिपन्त तथा मुशीरुल्मुल्क ने बंगलौर से रायदुर्ग तक साथ-साथ यात्रा की। यहाँ वे अलग-अलग हो गये। हरिपन्त पूना को चल दिया और मुशीरुल्मुल्क हैदराबाद को। नाना के कई विश्वस्त मराठा कूटनीतिज्ञ जैसे गोविन्दराव काले, चिन्तोपन्त देशमुख, त्रिम्बकराव परचुरे, बजाबा शिरोलकर तथा अन्य व्यक्ति इस समस्त अभियान में मराठा सेनाओं के साथ उपस्थित रहे। इन सब ने भावी इतिहास में प्रसिद्धि प्राप्त की। इनको इस अभियान में भावी भारतीय राजनीति का बहुमूल्य अनुभव प्राप्त हुआ। आगे चलकर इसी अनुभव का उपयोग राज्य की सेवा में किया गया।

इस अल्पकालीन युद्ध का भारतीय राजनीतिक सन्तुलन पर क्या प्रभाव पड़ा? यह प्रश्न जिज्ञासु विद्यार्थी के मन में स्वभावतः आ जाता है। जून, १७९० में जब मैत्री की सन्धि का निश्चय हुआ था, मराठे तथा अंग्रेज दोनों

---

[१२] देखो कीन कृत, 'महादजी सिन्धिया', पृ० ११०

की शक्तियाँ समान थीं। दो वर्ष बाद जब युद्ध समाप्त हुआ, तब निस्सन्देह अंग्रेजों ने श्रेष्ठता प्राप्त कर ली थी, क्योंकि कार्नवालिस ने अपने दोनों मित्रों के साथ इस प्रकार व्यवहार किया कि उनको आज्ञा शिरोधार्य करनी पड़ी। मराठा राज्य में नाना तथा महादजी के बीच की फूट स्पष्ट हो गयी। ब्रिटिश भय से अपनी रक्षा किस प्रकार की जाये? इसके बाद मराठों की चिन्ता का मुख्य विषय यही हो गया।

इस प्रकार हम १७९२ की ग्रीष्मऋतु में पहुँच जाते हैं। तभी हरिपन्त को शीघ्रतापूर्वक पूना बुलाया गया, क्योंकि किसी क्षण महादजी के अपेक्षित आगमन की सम्भावना से नाना फड़निस अत्यन्त भयभीत हो गया था। नाना इस प्रकार असाधारण रूप से क्यों भयभीत हो गया? इसकी व्याख्या केवल इस मान्यता के आधार पर की जा सकती है कि नाना शिन्दे को अपना प्रतिस्पर्द्धी समझता था। नाना की धारणा थी कि महादजी पूना दरबार में उसका प्रभाव नष्ट करके अल्पवयस्क पेशवा को अपनी रक्षा में लेने का निश्चय कर चुका है। इस प्रकार की योजना यदि वास्तव में पूर्ण हो जाती, तब भी किसी प्रकार मराठा हितों का अनिष्ट नहीं होता। हरिपन्त २५ मई को पूना पहुँचा और महादजी १२ जून को।

५. **सर चार्ल्स मैलेट—पूना का रेजीडेण्ट**—पूना दरबार में प्रथम ब्रिटिश रेजीडेण्ट के रूप में सर चार्ल्स मैलेट की नियुक्ति स्वयमेव मराठा राजनीति में कम्पनी सरकार की बढ़ती हुई रुचि का प्रमाण है। सालबई की सन्धि पर हस्ताक्षर होते समय इस क्रम का आरम्भ हुआ था। पेशवा माधवराव प्रथम के समय से ही ब्रिटिश दूत कभी-कभी पूना आता रहता था। इस प्रकार की नियुक्तियों में मराठा सरकार को कोई विशेष रुचि नहीं थी। यह दूत मराठों की कोई सेवा नहीं करता था। उसका कार्य ब्रिटिश हितों पर प्रभाव डालने वाली मराठा योजनाओं तथा प्रगतियों सम्बन्धी आवश्यक गुप्त समाचार अपनी सरकार को भेजना था। नाना फड़निस उस महान अपकार को कभी न भूल सकता था जो ब्रिटिश रेजीडेण्ट मोस्टिन ने पेशवा नारायणराव की हत्या के बाद पूना में किया। सालबई की सन्धि से महादजी की प्रतिष्ठा बढ़ गयी थी और वह मराठा राज्य का प्रमुख सामन्त हो गया था। डेविड ऐण्डर्सन उसी समय से महादजी शिन्दे के पास ब्रिटिश राजदूत के रूप में निवास करता रहा। इसका प्रभाव यह हुआ कि पश्चिम भारत सम्बन्धी विषयों में भी ब्रिटिश शासन के साथ सीधे व्यवहार करने का अधिकार पूना की केन्द्रीय सरकार के हाथ से निकल गया।

महादजी जब सम्राट का एकमात्र प्रतिनिधि नियुक्त हो गया तो भारत स्थित समस्त ब्रिटिश कूटनीतिज्ञ उसकी कुशल प्रतिभा से ईर्ष्या करने लगे।

मैल्कम लिखता है—"महादजी शिन्दे के समीप नियुक्त चतुर ब्रिटिश रेजीडेण्ट जेम्स ऐण्डर्सन ने स्थानापन्न गवर्नर जनरल मैक्फर्सन को उसकी बढ़ती हुई शक्ति के विरुद्ध पत्र लिखकर कहा है कि यदि उस पर यथासमय प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया तो वह निश्चय ही ब्रिटिश हितों के लिए संकटजनक सिद्ध होगा।"[13]

नाना फड़निस ने बम्बई सरकार को प्रस्ताव भेजा कि बिना शिन्दे की मध्यस्थता के सीधे व्यवहार के लिए पूना में पृथक रेजीडेण्ट नियुक्त किया जाय। इस प्रस्ताव को बम्बई सरकार तथा स्थानापन्न गवर्नर जनरल मैक्फर्सन ने तुरन्त स्वीकार कर लिया, क्योंकि इसका परिणाम शिन्दे के बढ़ते हुए गौरव को न्यूनतम करना हो सकता था। इसके परिणामस्वरूप पूना में प्रथम ब्रिटिश रेजीडेण्ट के रूप में चार्ल्स मैलेट की नियुक्ति हुई। उसको पश्चिमी प्रान्त में मराठा-ब्रिटिश सम्बन्धों का दीर्घकालीन तथा विविध अनुभव था। उसका जन्म १७५२ में हुआ था और वह १७७० में बम्बई में क्लर्क के रूप में कम्पनी की सेवा में लिया गया था। १७७५ में वह कैम्बे के कारखाने में नियुक्त हुआ। वहाँ उसने हरिपन्त की सेनाओं के पहरे से भागने वाले रघुनाथराव की इस प्रकार सहायता की कि वह ब्रिटिश पोतों में बैठकर सूरत पहुँच गया और वहाँ जाकर प्रथम मराठा युद्ध का कारण बनने वाली प्रसिद्ध सन्धि को निश्चित कर सका। मैलेट ने फारसी तथा हिन्दुस्तानी का अध्ययन किया था। १० वर्ष के लम्बे आवासकाल में मराठा सरकार के साथ वह अपने सूक्ष्म तथा परिपूर्ण सामाजिक और कूटनीतिक संसर्ग के द्वारा मराठा

---

[13] मैल्कम कृत भारत का राजनीतिक इतिहास, जिल्द १०, पृ० ८७-९०। जिन ब्रिटिश रेजीडेण्टों से महादजी को निपटना पड़ा, उनके नाम स्मरण रखना साहाय्यप्रद होगा :—

(१) अपने भाई जेम्स को सहायक के रूप में अपने साथ लेकर डेविड ऐण्डर्सन—५ नवम्बर, १७८१ से १७८३ के अन्त तक।

(२) सम्राट के पास ब्रिटिश दूत मेजर ब्राउन—मार्च, १७८३—अप्रैल, १७८५

(३) जेम्स ऐण्डर्सन—अप्रैल, १७८४—मार्च, १७८७।

(४) कर्कपैट्रिक—२० दिसम्बर, १७८६—अक्तूबर, १७८७। उसके साम्राज्यवादी विश्वासों के कारण कार्नवालिस ने उसे हटा दिया। देखो, परिचय पूना रेजीडेन्सी करेसपोण्डेन्स, जिल्द १। वहाँ कर्कपैट्रिक के कार्य की अच्छी व्याख्या है।

(५) मेजर विलियम पामर—२० अक्तूबर, १७८७ से १७९४, महादजी की मृत्युपर्यन्त।

संगठन की शक्ति को निर्बल करने में सफल हो गया। उसने इसी अनुपात में ब्रिटिश गौरव और शक्ति को उन्नत कर दिया। मैलेट वह प्रथम ब्रिटिश राजनीतिज्ञ है, जिसने मराठों को सर्वतोमुखी ब्रिटिश-प्रवेश के ज्ञान का रसास्वादन कराया।

पूना की रेजीडेन्सी का काम स्वयं गवर्नर जनरल देखता था, इसलिए मैलेट को आज्ञा हुई कि वह बम्बई से कलकत्ता जाये और वहाँ अपने पूना सम्बन्धी कार्यों के विषय में व्यक्तिगत निर्देश प्राप्त करे। इस कार्य के लिए उसको गुजरात तथा मध्य भारत होकर स्थलमार्ग से यात्रा करनी पड़ी और राजनीति तथा व्यापार विषयक उपयोगी जानकारी प्राप्त करने का अवसर मिल गया। इस कार्य के लिए उसके साथ एक वैद्य, एक पर्यवेक्षक तथा उपयुक्त सेवक समूह था। यह भय था कि पूना में पृथक ब्रिटिश रेजीडेन्सी खुलने से महादजी अप्रसन्न हो जायेगा, अतः मैलेट को आज्ञा दी गयी कि वह मार्ग में शिन्दे से मिल ले तथा व्यक्तिगत स्पष्टीकरण द्वारा वह उसकी आपत्तियों का निराकरण कर दे। एक मराठा राज्य के लिए दो ब्रिटिश रेजीडेण्ट नियुक्त हों—इस अशुभ लक्षण पर प्रसन्न होने के लिए महादजी के पास कोई कारण नहीं था।

२७ जनवरी, १७८५ को मैलेट बम्बई से चला और उज्जैन, ग्वालियर तथा आगरा के मार्ग से यात्रा करता हुआ मई के मध्य में महादजी के मथुरा वाले शिविर में पहुँच गया।[१४] जेम्स ऐण्डर्सन ने उसे २० मई को महादजी से मिलाया। यह मिलन केवल औपचारिक तथा प्रभावहीन सिद्ध हुआ। महादजी मैलेट से उसकी नियुक्ति के विषय पर एक शब्द भी न बोला। मैलेट वहाँ पर लगभग एक महीने तक ठहरा रहा, पर महादजी ने उसे जाने की आज्ञा नहीं दी। उसने सम्राट के दर्शन किये और अन्त में विधिपूर्वक होने वाली विदाई का नमस्कार किये बिना ही महादजी के शिविर में चला आया। कीन लिखता है—"जब पूना दरबार के लिए दूत रूप में मैलेट को भेजने पर विचार हो रहा था, तभी महादजी ने इसका प्रबल विरोध किया था, क्योंकि वह इस नियुक्ति को संकटजनक हस्तक्षेप समझता था। उसने निवेदन किया कि यह आयोग अनावश्यक है, क्योंकि ब्रिटिश हितों से सम्पर्क रखने के लिए वह मराठा संघ का एकमात्र वास्तविक प्रतिनिधि है।"[१५] मराठा संसद में यह अकारण फूट डालने पर महादजी ने नाना को कभी क्षमा नहीं किया। २३ मई को मैलेट ने मथुरा से मैक्फर्सन के पास महादजी की बढ़ती हुई

---

[१४] देखो मैलेट की डायरी, फोरेस्ट कृत, मराठा माला।

[१५] महादजी शिन्दे, पृ० ६६

शक्ति तथा महत्त्वाकांक्षाओं के विरुद्ध प्रभावशाली रिपोर्ट भेजी। उसने कहा—"मुझे खेद है कि अब मैं अपनी परिस्थिति से आपको परिचित कराने में विलम्ब नहीं कर सकता—साथ ही उस दुर्दशा को भी नहीं छिपा सकता जो मुझे पूना से अपनी नियुक्ति के विषय में पटेल के विरोध के कारण भुगतनी पड़ रही है। पूना के साथ कम्पनी के सम्बन्धों को वह अपने ही व्यक्तित्व तक क्यों सीमित रखना चाहता है ? आपको पूना के दरबार में व्यक्तिगत प्रतिनिधि रखने का असंदिग्ध अधिकार प्राप्त है। क्या आपको हमारे हितों के प्रति संकट की आशंका नहीं है, जबकि वह मराठा राज्य के एकमात्र अधिकारी का स्थान प्राप्त कर चुका है ? एक ही व्यक्ति के हाथों में इस प्रकार शक्ति तथा अधिकार की एकाग्रता से कम्पनी के अधिकृत प्रदेशों पर चिन्ताजनक माँगें उपस्थित होने के साथ-साथ हमारे मित्रों—अवध के वजीर तथा अर्काट के नवाब—की सुरक्षा भी संकट में पड़ जायेगी। उसकी स्वार्थपूर्ण महत्त्वाकांक्षा का प्रभाव निश्चय ही कम्पनी के सम्मान, गौरव तथा अधिकार पर पड़ेगा। जब उसने मुगल सरदारों को पूर्णत: अधीन करके दिल्ली में उत्तराधिकार की समस्या का समाधान कर लिया है तो उसकी शक्ति निश्चय ही भयानक हो गयी है। इस समय वह किसी भी क्षण संकट में डालने वाली विचित्र स्थिति में है। इसी कारण उसकी इच्छा कम्पनी के साथ सहमत होने की नहीं है। अब उसने वकील-ए-मुतलक का पद प्राप्त कर लिया है। अत: वह अपने राज्य का विस्तार करने के लिए अवश्य राजा के अधिकार का उपयोग करके अपनी महत्त्वाकांक्षा को तृप्त करेगा। इस प्रकार का विस्तार हमारे अपने हितों तथा प्रदेशों की जड़ पर अविलम्ब कुठाराघात होने के साथ-साथ हमारे मित्रों और आश्रयभोगियों के प्रतिकूल हस्तक्षेप भी है।

मैलेट ने जो कुछ लिखा, वह उस समय उत्तर भारत में उपस्थित ब्रिटिश कूटनीतिज्ञों के सामान्य विचार को प्रकट करता है। ये विचार हेस्टिंग्ज के जाने के तीन महीने के बाद ही प्रकट किये गये, अत: इनसे प्रकट होता है कि हेस्टिंग्ज की शिन्दे के साथ मैत्री करने की नीति दूसरों को किस प्रकार अप्रिय थी। नाना के लोभग्रस्त होने तथा अपनी प्रगति को निर्बल बना देने पर महादजी को सदैव दुख रहा। अन्त में सैनिक-बल ही स्वतन्त्र राज्य का परमालम्बन होता है और इस समय यह बल केवल शिन्दे को ही प्राप्त था। नाना की एकमात्र आशा केवल बालक पेशवा पर केन्द्रित थी, जिसका भावी चरित्र उस समय किसी को ज्ञात न था। दिसम्बर, १७८४ में महादजी ने नाना को इन शब्दों में चेतावनी दी—"सम्राट की शक्ति तथा साधनों को संगठित करने सम्बन्धी मेरे प्रयासों तथा उसके अधिकार में उच्चतम पद पर

मुझे स्थित कर दिये जाने से अंग्रेज अत्यन्त अप्रसन्न हो गये हैं। दिल्ली में ब्राउन शाही-सामन्तों को खुले आम घूस दे रहा है कि वे मुझको इस पद से हटा दें। आप यह अवश्य ध्यान रखें कि ये अंग्रेज लोग पक्के विश्वास-घातक हैं।"

शिन्दे के पास रहने वाले ब्रिटिश रेजीडेण्ट तथा पूना स्थित मैलेट की स्थिति में जो अन्तर था, उसका वर्णन करना रोचक होगा। शिन्दे के पास ब्रिटिश रेजीडेण्ट दीन याचक भाव में कार्य करता था, जबकि मैलेट का भाव शनैः-शनैः अत्यन्त प्रगल्भ हो गया, यह भाव धृष्ट चाहे न हो, पर उद्धृत अवश्य था। महादजी ने साधारण संघर्ष के कारण जेम्स ऐण्डर्सन को अपने यहाँ से हटवा दिया। इसी प्रकार अपनी स्थिति की सीमाओं का अतिक्रमण करने पर उसने कर्कपैट्रिक को अपने पास नहीं रहने दिया था। इसके विपरीत, मैलेट ने नाना की कायर प्रकृति पर इस प्रकार अधिकार प्राप्त कर लिया कि नाना को उसे अपने से दूर रखने का कार्य अशक्य प्रतीत हुआ। शिन्दे के आवासियों को उसकी योजनाओं तथा इरादों का कुछ भी ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता था, जबकि मैलेट नाना की सभा की एक-एक बात जानता था।[१६]

जून, १७८५ में मैलेट महादजी के शिविर से चल दिया। वह आगरा, कानपुर तथा बनारस होता हुआ १८ अक्तूबर को कलकत्ता पहुँचा। ७ नवम्बर को मैक्फर्सन से उसे अपनी नियुक्ति का विधिसम्मत अधिकार-पत्र प्राप्त हुआ। कलकत्ता से १३ नवम्बर को अपनी यात्रा आरम्भ करके वह समुद्री मार्ग द्वारा जनवरी में बम्बई पहुँच गया। ३ मार्च, १७८६ को उसने पूना में अपना पद ग्रहण कर लिया। २२ फरवरी, १७९७ तक पूरे ११ वर्ष इस पद पर उसका अधिकार रहा। गत दिसम्बर में पेशवा पद पर बाजीराव द्वितीय के आसीन हो जाने के बाद ही वह पूना से अन्तिम रूप में विदा हुआ।

अपने नवीन पद पर अधिकार करने के लिए मैलेट पूना पहुँचा। वहाँ गत तीन वर्षों से मान्टिनी नामक फ्रेंच दूत रह रहा था। इस फ्रेंच व्यक्ति को मैलेट ने निकालने का प्रबन्ध किया।[१७] सैयद नूरुद्दीन हुसैन खाँ[१८] जो फारसी

---

[१६] 'महादजी सिन्धिया के ग्वालियर के पत्र', पृ० ३४३। पूना रेजीडेन्सी कारेसपोण्डेन्स परिचय, जिल्द १ और २

[१७] देखो, 'ऐतिहासिक पत्र-व्यवहार'—नं० २२३

[१८] यह सैयद परिवार उत्तर मराठा इतिहास में प्रसिद्ध हो गया। नूरुद्दीन कृत नजीबुद्दौला की जीवनी बहुमूल्य ऐतिहासिक ग्रन्थ है, क्योंकि नजीबुद्दौला तथा उसके विरोधी गाजीउद्दीन कनिष्ठ दोनों से लेखक का व्यक्तिगत सम्पर्क था।

का विद्वान मुंशी था और बहुत दिनों से मैलेट की सेवा कर रहा था, पूना की रेजीडेण्सी में उसका सहायक नियुक्त किया गया और कूटनीतिक व्यवहार के संचालन के लिए बहिरो रघुनाथ मेहेण्डले को पेशवा का दूत नियुक्त किया गया। जिस सत्ता का पूना में वह प्रतिनिधित्व करता था उसके गौरव को सुरक्षित रखने के लिए समस्त परम्परागत व्यवहारों के प्रति मैलेट अतिनियम-निष्ठ था। फ्रेंच दूत मान्टिनी के साथ जो व्यवहार हो रहा था उसकी अपेक्षा उत्तम व्यवहार पर उसने अपना स्वत्व उपस्थित किया। मैलेट के पास करीब एक हजार कार्यकर्ताओं की मण्डली थी। इनमें से दो सौ सैनिक कार्य पर नियुक्त थे एक सौ व्यक्तिगत नौकर थे तथा ४२५ महार जाति के रक्षक थे। मैलेट तथा उसके दोनों सहायक पालकियों में बैठकर निकलते थे। उसके पास एक मुस्लिम रखैल भी थी। पहले उसको नगर में भारतीय वातावरण के अनुकूल निवास-स्थान दिया गया जो उसको अनुपयुक्त मालूम हुआ। तब उसने अपने लिये एक नया मकान बनाने का प्रस्ताव किया। नाना फड़निस ने उसको मूला तथा मूठा नदियों के संगम पर एक स्थान दे दिया, जहाँ शीघ्र ही प्रेसीडेण्सी का निर्माण हो गया। अन्तिम पेशवा की सेना ने ५ नवम्बर, १८१७ को इन भवनों को भस्म कर डाला।

मैलेट चपल पुरुष था। स्वयं को किशोर पेशवा का प्रिय बनाने में उसने कोई उपाय उठा नहीं रखा। पेशवा की रुचियों तथा आमोद-प्रमोद के निर्माण में उसने अपने लम्बे उपस्थिति-काल में बहुत भाग लिया। बालक के विचारों तथा मनोरंजनों में उसका स्वतन्त्र प्रवेश हो गया था। दोनों प्रायः साथ-साथ शिकार खेलने जाते और एक-दूसरे को भोज तथा पार्टियाँ देते। परम्परागत अवसरों पर पुरस्कार भी वितरण किये जाते। जब रेजीडेण्सी में पेशवा का प्रथम अभ्यागमन हुआ तो मैलेट ने उस पर एक हजार रुपये निछावर किये। उन्हें बटोरने के लिए पेशवा के नौकर झपट पड़े। खरदा के अभियान में मैलेट पेशवा के साथ गया। उसने उस युद्ध का मूल्यवान वर्णन लिखा है।

तिथिक्रम

अध्याय ७

१७८४	निजामअली के दूत बाबाराव गोविन्द का महादजी की बहन आनन्दीबाई निम्बालकर को साथ लेकर उत्तर में जाना ।
१७८५	आनन्दीबाई निम्बालकर की ग्वालियर में मृत्यु ।
१७८५	महादजी द्वारा उठायी गयी बंगाल पर चौथ की माँग गवर्नर जनरल द्वारा अस्वीकृत ।
१७८८	शिन्दे की बढ़ती हुई शक्ति के प्रति होल्कर परिवार की ईर्ष्या ।
१७८९-१७९५	मराठा सहायता की प्रार्थनार्थ शहजादा मिर्जा मुजफ्फरबख्त पूना में । दक्षिण में उसकी मृत्यु ।
४ जुलाई, १७८९	महादजी के विरुद्ध गोसाईं बन्धुओं के जादू-टोने का पता ।
१७९०-१७९१	राजपूत संघ के विरुद्ध महादजी द्वारा सैनिक कार्रवाई ।
फरवरी, १७९०	जयपुर के प्रतापसिंह द्वारा महादजी के साथ पृथक सन्धि ।
२० जून, १७९०	प्रतापसिंह तथा इस्माइल बेग पाटन में परास्त । प्राण रक्षार्थ इस्माइल बेग का पलायन ।
७ अगस्त, १७९०	महादजी को मथुरा तथा वृन्दाबन पर अपने अधिकार के सम्बन्ध में सम्राट का फरमान प्राप्त ।
१९ अगस्त, १७९०	महादजी तथा तुकोजी होल्कर के बीच मैत्रीपूर्ण विवाद ।
२१ अगस्त, १७९०	अजमेर पर महादजी का अधिकार ।
१० सितम्बर, १७९०	मेड़ता का रण—विजयसिंह पददलित ।
अक्तूबर, १७९०	महादजी तथा अलीबहादुर के बीच मनोमालिन्य ।
१७९०-९१	तुकोजी के पुत्र मल्हारराव होल्कर द्वारा उपद्रव खड़ा किया गया ।
६ जनवरी, १७९१	विजयसिंह द्वारा महादजी की शर्तें स्वीकृत—युद्ध समाप्त ।

१७६१	बाबाराव गोविन्द दक्षिण को वापस ।
६ जनवरी, १७६१	तैमूरशाह तथा सिक्खों के साथ पंजाब के विषय में महादजी द्वारा त्रिदलीय समझौते का प्रबन्ध तथा सतलज को मराठा प्रभाव की सीमा स्थिर करना ।
मई, १७६१	महादजी से झगड़ने के बाद अलीबहादुर का बुन्देलखण्ड को जाना और बाँदा को बसाना ।
जुलाई, १७६१	नाना के दूत तम्बे द्वारा महादजी की परिस्थिति का पूर्ण वृत्तान्त देना ।
३ सितम्बर, १७६१	महादजी चित्तौड़ के विपक्ष में ।
१७ नवम्बर, १७६१	चित्तौड़ राणा को वापस ।
४ दिसम्बर, १७६१	इस्माइल बेग परास्त—महादजी द्वारा उसका उत्तरी कार्य पूर्ण ।
दिसम्बर, १७६१	अहल्याबाई के दामाद का देहान्त—उसकी पुत्री का सती होना ।
१७६१-१७६२	मल्हारराव होल्कर द्वारा दक्षिण तथा मालवा में उपद्रव ।
५ जनवरी, १७६२	उदयपुर के राणा का महादजी से मिलना, उसका दक्षिण को जाना ।
जनवरी, १७६२	महादजी के सैनिकों तथा अहल्याबाई के अधिकारियों में सन्तवास में झगड़ा
अप्रैल, १७६२	इस्माइल बेग का पकड़ा जाना तथा अन्तिम रूप से आगरा में बन्दी होना ।
८ अक्तूबर, १७६२	सुरावली में होल्कर के शिविर की समाप्ति ।
१ जून, १७६३	शिन्दे की सेनाओं द्वारा लखेरी में होल्कर की शक्ति समाप्त ।
८ जुलाई, १७६३	जोधपुर के विजयसिंह की मृत्यु ।

अध्याय ७

उत्तर में शिन्दे का कार्य समाप्त

[१७८९–१७९१ ई०]

१. महादजी को अंग्रेजों की फटकार। २. अलीबहादुर तथा महादजी में वैमनस्य।
३. होल्कर परिवार की निराशापूर्ण अवनति। ४. बाबाराव गोविन्द—महादजी का परामर्शदाता।
५. राजपूतों का नाश।

१. महादजी को अंग्रेजों की फटकार—मार्च, १७८९ में गुलाम कादिर को पकड़कर दण्ड दिये जाने और अन्धे सम्राट की अपने सिंहासन पर पुन: स्थापना के बाद अब हमें उत्तर की कथा पुन: आरम्भ करनी है। महादजी की इस सफलता के कारण अंग्रेज उसके कार्यों का अधिकाधिक विरोध करने लगे। कम्पनी के अधिकारियों ने सर्वसम्मति से महादजी के साथ मैत्री करने की वारेन हेस्टिंग्ज की नीति में हृदय से भाग नहीं लिया था और न उसको अपना समर्थन दिया था। ब्राउन, मैलेट, कर्कपैट्रिक, जेम्स ऐण्डर्सन तथा अन्य कूटनीतिक प्रतिनिधि महादजी की बढ़ती हुई शक्ति से न्यूनाधिक ईर्ष्यालु थे। वास्तव में उनके भयभीत होने का कोई कारण नहीं था। महादजी ने गवर्नर जनरल मैक्फर्सन से माँग की कि दीवानी के लिए बंगाल तथा सूरत और अन्य स्थानों से कर का शेष धन उसको दिया जाये जो सम्राट को दिया जाना था। उसी समय नागपुर के भोंसले परिवार ने भी अंग्रेजों पर यह दबाव डाला कि बंगाल की चौथ, जिस पर उनका स्वत्व है, चुकायी जाये; क्योंकि अंग्रेज पहले नवाबों के उत्तराधिकारी हैं। मीरजाफर तथा मीरकासिम के समय से अब तक लगभग २५ वर्ष से जानोजी, मुधोजी तथा रघुजी बराबर अपने स्वत्व के भुगतान के लिए प्रार्थनाएँ कर रहे थे। भोंसले परिवार की सद्भावना प्राप्त करने की इच्छा से वारेन हेस्टिंग्ज ने उस विषय पर कभी निर्णायक उत्तर नहीं दिया। अनिश्चय की स्थिति में वह अनुकूल समय की प्रतीक्षा करता रहा। जब १७८४-१७८५ में शाही कार्यों के प्रधान प्रशासक के रूप में महादजी ने दिल्ली में सत्ता स्थापित कर ली तो सम्राट तथा भोंसले परिवार ने उस पर दबाव डाला कि वह उनके पिछले बकाया भुगतान प्राप्त

कर ले। हैदराबाद के निजाम ने भी उसके पास अपना विशेष राजदूत भेजकर प्रार्थना की कि वह ब्रिटिश कोष से शेष कर का एक करोड़ से भी अधिक रुपया वसूल कर ले। यह रुपया उत्तरी सरकार के उस प्रदेश के कारण निजाम को मिलता था, जिस पर अंग्रेजों ने बलपूर्वक अधिकार कर लिया था। महादजी अच्छी तरह जानता था कि अंग्रेज यह माँग कभी स्वीकार नहीं करेंगे। अत: कलकत्ते के शासकों को यह माँग भेजकर वह सन्तुष्ट हो गया। इस समय हेस्टिंग्ज विदा हो गया था और मैक्फर्सन कार्यवाहक गवर्नर जनरल था।

"बंगाल प्रान्त से सम्बन्धित कर की माँगें—जिनमें भोंसले की चौथ तथा सम्राट की कर सम्बन्धी माँग थी—सम्राट तथा महादजी दोनों की मुद्राओं सहित मेजर ब्राउन के द्वारा कार्यवाहक गवर्नर जनरल के पास भेज दी गयी। इसके उत्तर में महादजी के पास स्थायी रेजीडेण्ट जेम्स ऐण्डर्सन को आदेश हुआ कि वह शिन्दे को सूचित कर दे कि इस प्रकार की माँगों में उसका हस्त-क्षेप स्पष्ट युद्ध तथा मराठों के साथ हमारी सन्धि का भंग समझा जायेगा। साथ ही वह शाहआलम को यह सूचित करे कि उसके महामहिम वंश के प्रति अंग्रेजों की न्याय-भावना अन्य शक्तियों के हस्तक्षेप या अनुरोध को कभी सहन नहीं कर सकती, वह अपनी स्वेच्छापूर्ण उदारता से ही प्रवाहित हो सकती है। कुछ ब्रिटिश दूतों ने भी अन्याय तथा अपमानपूर्वक प्रस्तुत किये गये इन स्वत्वों के खण्डन का आग्रह किया। उनकी मन्त्रणा पर मई, १७८५ में मैक्फर्सन ने यही घोषित कर दिया। इसके पहले ही जेम्स ऐण्डर्सन अपने उत्तरदायित्व पर माँगों के सम्बन्ध में अपना विरोध महादजी तथा सम्राट को भेज चुका था।" १२ मई, १७८५ को इस विषय की विज्ञप्ति कलकत्ता गजट में जानबूझकर निकाल दी गयी। उसी समय गवर्नर जनरल ने मुधोजी को उड़ीसा पर आक्रमण करने की धमकी दी।

महादजी परिस्थिति को समझ गया और उसने कुछ गोलमोल स्पष्टीकरण देकर यह काण्ड समाप्त कर दिया, क्योंकि वह उस समय अपने अंग्रेज मित्रों से विग्रह के लिए तैयार नहीं था। इसके बाद टीपू सुल्तान से त्रिदलीय युद्ध हुआ। इस युद्ध के परिणामस्वरूप कार्नवालिस के नेतृत्व में ब्रिटिश सत्ता ने पूना सरकार के प्रति सर्वाधिकारी की स्थिति प्राप्त कर ली। परन्तु महादजी भी उस समय उत्तर में समस्त राजपूत तथा मुस्लिम विरोध का अन्तिम दमन करके अंग्रेजों के समान ही शक्तिशाली बन गया था। जुलाई, १७९२ में महादजी ने जानबूझकर यह समाचार फैलाया कि दिल्ली के सम्राट ने पेशवा तथा शिन्दे (उस समय पूना में) को इस प्रकार लिखकर सूचित किया है—"मुझे आशा है कि आप लोग अपने प्रयासों द्वारा बंगाल से कुछ कर प्राप्त

कर लेंगे।" लार्ड कार्नवालिस इस स्पष्ट समाचार की उपेक्षा कैसे कर सकता था? अगस्त, १७९२ में उसने शिन्दे के दरबार में स्थित अपने रेजीडेण्ट को निर्देश भेजे कि वह यह स्पष्ट कर दे कि "मुगल सम्राट की वर्तमान स्थिति (शिन्दे का बन्दी) में उसके नाम से लिखे हुए समस्त पत्रों को वह केवल शिन्दे की शक्ति तथा अधिकार से लिखे हुए समझता है। इस प्रकार के नियमों को स्थापित करने के प्रयासों का यह सरकार तीव्र विरोध करेगी, चाहे वे किसी भी शक्ति द्वारा किये जायें।" आगे चलकर उसने अपने राजनीतिक रेजीडेण्ट को यह निर्देश दिया—"आप ध्यानपूर्वक शिन्दे को अत्यन्त प्रभावकारी ढंग से यह याद दिलायें कि यह सरकार उस समस्त लम्बे काल में संयम तथा सहनशीलता की भावना प्रकट करती रही है, जिसमें शिन्दे उत्तर भारत में अपनी विजयों का प्रसार करने में व्यस्त रहा है।"[1]

इससे प्रकट हो जाता है कि ब्रिटिश सत्ता के साथ महादजी का क्या सम्बन्ध था। उसने बल-परीक्षा के निमित्त वास्तविक तैयारी आरम्भ की। इस कार्य के लिए उसने सिक्खों, अफगानों, टीपू सुल्तान तथा अन्य भारतीय शक्तियों का संघ बनाने का प्रयत्न किया। जब १७९९ ई० में टीपू मारा गया, तब श्रीरंगपट्टन के राजभवन में महादजी एवं उसके गुप्त पत्र-व्यवहार का पता चला। दुर्भाग्यवश इसी समय महादजी का देहान्त हो गया तथा परिस्थितिवश बल-परीक्षा १८०३ तक स्थगित रही।

२. **अलीबहादुर तथा महादजी में वैमनस्य**—जब से अलीबहादुर तथा तुकोजी होल्कर उत्तर में आये, तभी से मन्त्रणा तथा आज्ञा की एकता में बाधाएँ उपस्थित होने लगीं, जिन पर अब तक महादजी का एकाधिकार था। १७८० में तुकोजी तथा महादजी एक-दूसरे से पृथक हुए। उस समय से महादजी ने राजनीतिक क्षेत्र में शीघ्र भारी उन्नति कर ली थी और तुकोजी का स्थान बहुत नीचा हो गया था। तुकोजी में विवेक नहीं था। वह अपने अधीन व्यक्तियों तथा सचिवों के हाथों का खिलौना था। तुकोजी अहल्याबाई का मुख्य कार्यवाहक था, परन्तु वह उसका अधिक विश्वास नहीं करती थी। जब लालसोट की विपत्ति के बाद महादजी ने पूना से सैनिक सहायता माँगी तो नाना ने तुकोजी को उसकी सहायता के लिए भेजा। उस समय उत्तरी समस्याओं से सुपरिचित वही एकमात्र व्यक्ति था। सन्तुलन के विचार से अलीबहादुर को तुकोजी के साथ जाने की आज्ञा हुई। नाना ने महादजी को सूचना दे दी थी कि वह अलीबहादुर की सेनाओं का व्यय स्वयं चुकाये परन्तु

---

[1] विल्के कृत 'मैसूर का इतिहास', जिल्द २, पृ० ३१७। पूना रेजीडेन्सी पत्र-व्यवहार, जिल्द २, पृ० २४६-२४७

महादजी स्वयं घोर कष्ट में था और अलीबहादुर का व्यय सहन करने में असमर्थ था। इसका परिणाम यह हुआ कि दोनों में भयानक संघर्ष उत्पन्न हो गया। महादजी समझता था कि यदि उसी को अलीबहादुर के दल का वेतन देना था तो वह इस धन से क्या नये सैनिक नहीं रख सकता था? यदि नाना ने पूना से सहायता भेजी थी तो उसका कर्तव्य था कि सेना का व्यय स्वयं सहन करता। नाना ने अलीबहादुर को निर्देश दिया कि महादजी का कार्य सम्पन्न करने के बाद वह बुन्देलखण्ड चला जाये और वहाँ उन मराठा प्रदेशों पर पुनः अधिकार कर ले जिनको कुछ विद्रोहियों ने हस्तगत कर लिया है। तुकोजी तथा अलीबहादुर किसी को यह आज्ञा नहीं थी कि वे अपने को महादजी के अधीन समझें, क्योंकि ऐसा करना उनके पद का अपमान होता। वे स्वयं को स्वतन्त्र कहते थे। इससे मन्त्रणा में भेद उपस्थित हुआ तथा मूल संघर्ष बढ़ गया। महादजी ने पूना से आने वाले इन सरदारों के साथ कभी कृपापूर्वक व्यवहार नहीं किया। ये उसकी सहायता के लिए आये थे और नाना के मार्गदर्शन का अनुसरण करते थे। उसने विजय के परिणामस्वरूप हाल ही में जो नये देश जीते थे, तुकोजी ने उनमें हिस्सा माँगा। महादजी ने कहा कि हिस्सा माँगने से पहले तुकोजी को वह धन चुकाना चाहिए जो इन विजयों पर व्यय हुआ है। लगभग डेढ़ वर्ष तक इसी प्रकार के प्रश्नों पर घोर तर्क-वितर्क चलता रहा, जिसको वाग्युद्ध कह सकते हैं। जून तथा जुलाई, १७८९ के महीनों में महादजी के सहसा बीमार हो जाने पर यह क्लेश अत्यन्त उग्र रूप धारण कर गया था। उस समय कुछ सप्ताहों तक उसके जीवन की कोई आशा नहीं रह गयी थी तथा समस्त राजनीतिक गतिविधियाँ एकदम बन्द हो गयी थीं।

अन्धविश्वास के उस काल में इस प्रकार के आकस्मिक रोग विरोधियों की ओर से प्रयुक्त जादू-टोने का प्रभाव समझे जाते थे। जैसे ही महादजी बीमार पड़ा, जाँच-पड़ताल शुरू हो गयी और इससे प्रकट हुआ कि दोनों गोसाईं बन्धुओं ने महादजी का सर्वनाश करने के लिए जादू-टोने का प्रयोग किया है।[२] यह प्रसिद्ध था कि ये गोसाईं अवसरवादी हैं। उनकी निष्ठा स्थिर नहीं है। उन्हें अपने स्वामी के प्रति भक्तिहीन होने एवं विश्वासघात करने की दुष्प्रकृति प्राप्त है। एक समय वे नवाब वजीर के सेवक थे। उसके बाद उन्होंने सम्राट की सेवा में प्रवेश किया। बाद में वे महादजी के अधीन हुए, क्योंकि वह सम्राट के कार्यों का एकमात्र नियन्त्रणकर्ता था। महादजी के ध्यान

---

२ पूर्ण वर्णन के लिए देखो, सर यदुनाथ सरकार का लेख, माडर्न रिव्यू, मार्च, १९४४

में उनका दोगलापन तभी आ गया था, जब उन्होंने कुछ घूस लेकर महादजी की योजनाएँ उसके विरोधी राजपूतों पर प्रकट कर दी थीं। बाद को पता चला कि इस योजना में अलीवहादुर के साथ उनका गुप्त समझौता था कि सम्राट के दरबार वाले पद से महादजी को हटा दिया जाये और उसके स्थान पर अलीबहादुर को बैठा दिया जाये। होल्कर तथा महादजी के बीच स्पष्ट वैमनस्य से गोसाइयों को अवसर मिल गया और अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए उन्होंने महादजी का सर्वनाश करने में विलम्ब नहीं किया। १७८९ की वर्षाऋतु में अपनी बीमारी के समय महादजी को ध्यान हुआ कि उसके कष्ट का कारण किसी गुप्त शत्रु का प्रयास तो नहीं है। अन्वेषण की आज्ञा दी गयी। १४ जुलाई को गुप्तचर समाचार लाये कि वृन्दावन में एक स्त्री महादजी के जीवन पर जादू-टोना कर रही है। अगले दिन वह स्त्री महादजी के सम्मुख लायी गयी। उसने स्वीकार किया कि गोसाइयों ने दो व्यक्तियों को इस जादू की सामग्री तथा मदिरा मेरे पास पहुँचाने के लिए नियुक्त किया था, जिससे महादजी का सर्वनाश किया जा सके। इस प्रमाण पर महादजी ने गोसाई बन्धुओं का शिविर घेरकर हिम्मत बहादुर को पकड़ लिया। जब हिम्मत बहादुर महादजी के शिविर में पहुँचाया जा रहा था, वह सहसा भाग निकला तथा उसने अलीबहादुर के शिविर में घुसकर पेशवा के ध्वज के नीचे शरण ली। इस पर महादजी ने अलीबहादुर से कहा कि हिम्मत बहादुर उसके पास भेज दिया जाये। अलीबहादुर ने ऐसा करने से इनकार करते हुए यह मामला पूना भेज दिया। महादजी के क्रोध की सीमा न रही तथा कुछ समय तक दोनों में इस प्रकार का वैमनस्य रहा कि प्रत्येक क्षण गृह-युद्ध छिड़ जाने की आशंका बनी रही। महादजी ने गोसाईं की पत्नी तथा बच्चों को पकड़ लिया। दोनों पक्षों के अधिकांश सरदारों ने मध्यस्थता द्वारा कामचलाऊ समझौता स्थापित कराने का प्रयत्न किया, परन्तु ये समस्त प्रयास असफल सिद्ध हुए। पूना पहुँचकर इस कलह ने शिन्दे-विरोधी भावनाओं को प्रज्ज्वलित कर दिया। तुकोजी होल्कर ने इस कार्य में अलीबहादुर को अपना शक्तिशाली समर्थन दिया और सलाह दी कि गोसाईं को महादजी के सुपुर्द न किया जाये। उसने कहा कि यह पेशवा के गौरव का प्रश्न है, क्योंकि गोसाईं ने उसके ध्वज का आश्रय लिया है। कुछ समय तक मथुरा तथा पूना के सम्बन्ध दुष्ट प्रवादों द्वारा विषाक्त हो गये, तथा महादजी के विरुद्ध पूना में अतिशयोक्ति-पूर्ण समाचार बड़ी मात्रा में प्राप्त होने लगे। महादजी ने इस प्रकार की अफवाहों के विरुद्ध जोरदार विरोध-पत्र लिख भेजा तथा प्रार्थना की कि वह उत्तर भारत से अपने कार्य से सर्वथा मुक्त कर दिया जाये। स्वयं अलीबहादुर

ने महादजी के विरुद्ध नाना को इस प्रकार के कटूक्तिपूर्ण पत्र लिखे कि अली-बहादुर की माता ने पूना से उसको कठोर चेतावनी भेजी कि वह अपने पत्रों में महादजी सदृश शक्तिशाली सरदार के विरुद्ध इस प्रकार की कठोर भाषा का प्रयोग न करे। सम्भव है कि पत्र मार्ग में पकड़कर खोल लिये जायें और इस प्रकार गम्भीर परिणाम उपस्थित हो जायें।

नाना ने पूना से पहले तो अलीबहादुर का समर्थन किया, परन्तु वह शीघ्र ही महादजी के तर्क का बल समझ गया। उसने अलीबहादुर को लिखा—"आप गोसाईं को महादजी के सुपुर्द करके इस प्रकरण को अवश्य समाप्त कर दें। आप अपने धन या सेना से उसका समर्थन न करें। जब तक केवल महादजी उत्तरी कार्यों के समस्त प्रबन्ध के लिए उत्तरदायी है, आप राजपूतों या अन्य सरदारों के साथ स्वतन्त्र रूप से कोई शान्ति-प्रस्ताव न करें। आप उसकी पीठ पीछे कुछ भी न करें।" नाना ने तुकोजी को भी महादजी का नेतृत्व स्वीकार करने की सलाह दी। परन्तु इस समय भी नाना ने महादजी के विरुद्ध अपना स्थायी सन्देह नहीं छोड़ा। इस समय दी गयी नाना की विभिन्न अस्पष्ट आज्ञाओं में उत्तर भारत की परिस्थिति के सम्बन्ध में उसके विचारों में कोई संगति नहीं मिलती। एक पत्र में उसने अलीबहादुर को स्पष्ट सूचना दी थी कि महादजी उसको स्वतन्त्र कार्यक्षेत्र कभी नहीं देगा तथा उसे संकट में फँसाने को सदैव प्रयत्नशील रहेगा। एक अन्य अवसर पर उसने लिखा कि अलीबहादुर पूर्णरूपेण महादजी की आज्ञाओं का पालन करे। वहुत-से पत्र-व्यवहार के बाद गोसाईं को बुन्देलखण्ड में कार्य करने की आज्ञा देना निश्चित किया गया। मित्रों तथा मध्यस्थों के भारी दबाव के कारण महादजी ने अलीबहादुर की गम्भीर शपथों का विश्वास कर लिया। सदाचार के विषय में अलीबहादुर द्वारा उत्तरदायित्व लेने पर महादजी ने गोसाईं परिवार को वापस कर दिया। इस प्रकार यह झगड़ा कुछ समय के लिए शान्त हो गया।

कुछ समय वाद महादजी को यह पता चला कि अलीबहादुर इस्माइल बेग तथा जयपुर और जोधपुर के राजाओं के साथ षड्यन्त्र कर रहा है। इस कारण दोनों के बीच में नवीन वैमनस्य उत्पन्न हो गया। जब महादजी ने १७६० में राजपूतों के विरुद्ध पुनः अभियान आरम्भ किया तो अलीबहादुर उसका साथ देने में हिचकिचाया तथा केवल एक छोटा-सा दल अपनी ओर से कार्य करने के लिए भेजा। वह सर्वथा गोसाईं के प्रभाव तथा परामर्श के वशीभूत था। उसने तुकोजी होल्कर को भी प्रलोभन दिया कि वह महादजी के नेतृत्व का विरोध करे तथा महादजी का समर्थक होने के कारण मुख्य सचिव नारो गणेश को अपने कैद में डाल दे। अपने इन दो मुख्य सहायकों की विश्वास-

घातक प्रगतियों से भयभीत होकर महादजी ने राजपूत राजाओं के विरुद्ध अपने अभियान का स्वयं संचालन किया तथा यह काण्ड सफलतापूर्वक शीघ्र समाप्त कर दिया। महादजी ने इस समस्त अपकार का मूल कारण नाना फड़निस को बताया। जनसाधारण के समक्ष यह घोषणा की कि अपने भरोसे अलीबहादुर इतनी दूर नहीं बढ़ सकता था, उसने नाना से प्राप्त समर्थन के आधार पर जान-बूझकर यह कार्य किया है। दो वर्ष तक अलीबहादुर ने गोसाईं की रक्षा की जबकि नाना ने उसको इस कार्य के विरुद्ध स्पष्ट आज्ञा दी थी और तुकोजी होल्कर इस विषय में उसे प्रायः स्वस्थ परामर्श देता रहता था। तंग होकर महादजी ने अन्त में नाना से माँग की कि वह दोनों—तुकोजी तथा अलीबहादुर—को पूना वापस बुला ले। नाना ने इस प्रस्ताव को भी स्वीकार नहीं किया। इस प्रकार शिन्दे तथा होल्कर के बीच में बढ़ते हुए घाव को खुला छोड़ दिया।

इस चिन्ताजनक दीर्घकालीन काण्ड से उत्तर भारत में मराठा शक्ति के सामान्य हितों को बहुत हानि पहुँची। स्वयं नाना फड़निस ने इस प्रकार के परिणामों से आकुल होकर अपने विशेष विश्वासपात्र प्रतिनिधि विट्ठल गोपाल ताम्बे को महादजी के कार्यक्षेत्र में भेजा और अलीबहादुर तथा गोसाई बन्धुओं के प्रसंग सहित महादजी की परिस्थिति पर पूर्ण तथा गुप्त रिपोर्ट भेजने का आदेश दिया। २५ जुलाई, १७९१ को जयपुर से भेजी हुई ताम्बे की यह रिपोर्ट तथा उसी सम्बन्ध में हिंगने की चेतावनी, वे मूल्यवान पत्र हैं जो उस क्षेत्र में मराठा प्रशासन के कुप्रबन्ध तथा गड़बड़ी पर पूर्ण प्रकाश डालते हैं।[3]

इस शोचनीय प्रकरण से, मराठा प्रशासन की प्रतिष्ठा तथा कार्यकुशलता की नींव किस प्रकार खोखली हो गयी, इसकी कल्पना सरलता से की जा सकती है। गुलाम कादिर के पतन के समय शाही कार्यों में शिन्दे ने पूर्ण प्रभुता प्राप्त कर ली थी। यदि उस समय होल्कर और अलीबहादुर उसका इच्छापूर्वक समर्थन करते तो राजपूत राजा, इस्माइल बेग तथा गोसाइयों सदृश मराठा विरोधी तत्काल समाप्त हो जाते और महादजी १७९० में दक्षिण को चला जाता। वहाँ पर वह टीपू सुल्तान के विरुद्ध त्रिदलीय सन्धि के प्रसंग में नाना के साथ शक्तिशाली नीति संगठित कर सकता था। इस संकट-काल में दृढ़ संयुक्त मोर्चे की आवश्यकता थी। उत्तरदायी स्थानों पर नियुक्त पुरुषों ने यह बात उसी समय स्पष्ट कर दी थी। उस समय उत्तर में उपस्थित विट्ठल शिवदेव के पुत्र शिवाजीपन्त बापू ने सदैव यथाशक्ति प्रयत्न किया कि

---

३ इतिहास संग्रह, ऐतिहासिक टिप्पणी, जिल्द ६, पृ० ३३। दिल्ली—वाई, परिपूरक नं० ४७-५२

महादजी तथा अलीबहादुर के बीच पुनः मैत्री स्थापित हो जाये, परन्तु उसके प्रयासों से कुछ लाभ नहीं हुआ।[४]

मराठा सरदारों के बीच का तनाव निरन्तर बढ़ता ही गया। अन्त में अलीबहादुर ने बुन्देलखण्ड जाने का निश्चय किया। उसके मित्रों ने सलाह दी कि वह महादजी से मिलकर विधिपूर्वक आज्ञा प्राप्त कर ले। मिलने का प्रबन्ध हो गया। अलीबहादुर ने हठ किया कि वह मिलन स्थान पर अपने साथ बहुत-से सशस्त्र सैनिक ले जायेगा, इसलिए महादजी ने भी पूर्व सावधानी के लिए एक शक्तिशाली रक्षक दल एकत्र कर लिया। जब अलीबहादुर को इस बात का पता चला तो उसने मिलन का विचार त्याग दिया और अत्यन्त क्रुद्ध होकर चल दिया। इस प्रकार १७९० के दशहरे का दिन शोकयुक्त परिणामजनक सिद्ध हुआ।[५]

अलीबहादुर बुन्देलखण्ड को तुरन्त न जा सका। वह अक्तूबर, १७९० से मई, १७९१ तक जयपुर में घूमता रहा तथा अपने भावी उद्देश्यों को कार्यान्वित करने के लिए धन-संग्रह का प्रयत्न करता रहा। इस समय वह अकिंचन भिखारी था। उस पर किसी को विश्वास नहीं था। इस समय वह अपने छद्मवेशी नवीन मित्र गोसाईं बन्धुओं द्वारा की गयी अपार प्रतिज्ञाओं के सहारे जीवन व्यतीत कर रहा था। निरुद्देश्य प्रयाणों में लगभग १ वर्ष व्यर्थ व्यतीत करके उसने तुकोजी होल्कर से ऋण देने के लिए दीन प्रार्थना की। होल्कर की स्थिति भी कुछ अच्छी नहीं थी, परन्तु उसने अपनी साख पर अलीबहादुर को साढ़े तीन लाख रुपये दिला दिये। इस प्रकार अलीबहादुर गोसाइयों के साथ बुन्देलखण्ड जाने में समर्थ हो गया और वहाँ पर १७९१ के अन्त के समीप पहुँच गया। यहाँ उसने गोसाईं दल की सहायता से पुराने अधीन बुन्देला सरदारों से कर प्राप्त करने का प्रयत्न किया। परन्तु प्राचीन मराठा सरदारों जैसे पानीपत काल के गोविन्दपन्त के दो पुत्रों ने अलीबहादुर की इन नवीन महत्त्वाकांक्षाओं का विरोध किया। बुन्देलखण्ड में स्वयं महादजी द्वारा रक्षित अनेक स्थान थे। ग्वालियर तथा गोहद यहीं थे, जिनको उसने भारी बलिदान देकर अपनी आज्ञावश किया था। अपने हितों की सुरक्षा करने के लिए महादजी उस क्षेत्र में अपनी सेनाएँ भेजने के लिए विवश हो गया। इस प्रकार बुन्देलखण्ड में निकट भविष्य में टक्कर होने की सम्भावना उपस्थित हो गयी। अतः अलीबहादुर को यहाँ अत्यन्त व्याकुलता का अनुभव हुआ। यह

---

४ महादजी शिन्दे के पत्र, ग्वालियर नं० ५८२-५९०

५ भावे कृत, रूमल, जिल्द ३, पृष्ठ १५९

महादजी के कार्यों के प्रति उसके अकारण विरोध का परिणाम था। इस प्रकार होने वाली अराजकता के कारण बुन्देलखण्ड में मराठा शासन का व्यावहारिक रूप से अन्त हो गया और पूना में निरुपाय अकर्मण्य नाना फड़निस को यह क्षति सहन करनी पड़ी।

अलीबहादुर ने महादजी के साथ सहयोग से इनकार करके इस समस्त संकट को स्वयं निमन्त्रण दिया था। बुन्देलखण्ड में उसके बाद के कार्यों का वर्णन संक्षेप में किया जा सकता है। वर्षों के व्यर्थ संघर्ष के बाद उसने बाँदा में अपने लिये एक छोटे राज्य का निर्माण कर लिया। उसने कालिंजर को घेर लिया तथा वहाँ युद्ध में २८ अगस्त, १८०२ को मारा गया। उसके मित्र गोसाई बन्धुओं ने १८०४ में अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार कर अपने लिये अलग जागीर प्राप्त कर ली। अलीबहादुर के उत्तराधिकारी बाँदा में १८५७ के महान विद्रोह के समय तक राज्य करते रहे। विद्रोह के पश्चात बाँदा की जागीर जब्त कर ली गयी।

३. **होल्कर परिवार की निराशापूर्ण अवनति**—नाना फड़निस द्वारा तुकोजी होल्कर को १७८७ में महादजी की सहायतार्थ भेजा जाना सर्वथा व्यर्थ सिद्ध हुआ। बाजीराव प्रथम के समय से शिन्दे तथा होल्कर मराठा राज्य के दो प्रमुख आधार स्तम्भ थे, परन्तु प्रकृति के नियमानुसार इन दोनों आधार स्तम्भों की आगे वाली पीढ़ियों में भी समान योग्यता तथा क्षमता से कार्य करना किसी के वश की बात नहीं थी। रानोजी के पुत्र शिन्दे बन्धु सबके सब योग्य पुरुष थे। मल्हारराव प्रथम के उत्तराधिकारी ऐसे नहीं थे। उस सरदार की मृत्यु के बाद उसके परिवार में दोहरा शासन हो गया। राजधानी में नाममात्र की सरदार अहल्याबाई कोष पर अपना कठोर नियन्त्रण रखती थी। तुकोजी होल्कर कार्यवाहक अधिकारी के रूप में उनकी इच्छाओं तथा आदेशों के पालनार्थ बाह्य जगत में अभियानों तथा अन्य कार्यों का संचालन करता था। इस प्रकार इस समय मराठों के भाग्य विधाताओं के रूप में महादजी तथा तुकोजी रंगमंच पर आये।

मल्हारराव के देहान्त के बाद होल्कर परिवार का इतिहास षड्यन्त्र, कलह, कुप्रबन्ध तथा कुचेष्टा की दुःखपूर्ण गाथा है। साध्वी अहल्याबाई अपने परिवार की दुर्व्यवस्था तथा बाह्य राजनीति का नियन्त्रण करने में अशक्त थी। इस कार्य में इस समय शिन्दे ने प्रमुखता प्राप्त कर ली थी। मराठा राज्य पर ब्रिटिश दबाव की शक्ति का ज्ञान अहल्याबाई को नहीं था। वह महेश्वर के एकान्तवास में अपने धार्मिक अनुष्ठानों में व्यस्त रहती थी। वह दान करने में तो अति उदार थी, पर परिस्थिति के अनुकूल शैली के आधार

पर अपनी सेनाओं को उन्नत करने की आवश्यकता एवं महादजी के साथ उसके युद्धों और उपायों में सहयोग देने का महत्त्व वह नहीं समझ सकी। परिणाम यह हुआ कि मराठा राज्य के इस द्वितीय आधार स्तम्भ का शनैः-शनैः ह्रास होता गया। तुकोजी महादजी के साथ समान अधिकार चाहता था, परन्तु उसी सीमा तक उत्तरदायित्व में हाथ बँटाने में उसने सदा उपेक्षा की। राजपूत संघ द्वारा उत्पन्न महादजी के कष्टों को दूर करने के स्थान पर तुकोजी ने उसके शत्रुओं का पक्ष लिया तथा उसके प्रयासों को बहुत निर्बल बना दिया। तुकोजी मदिराव्यसनी सैनिक मात्र था। अतः प्रशासन के विषयों में वह अपने स्वार्थी तथा षड्यन्त्रकारी सचिव नारो गणेश के हाथों का खिलौना बन गया था। अहल्याबाई तथा तुकोजी, जिनकी आयु लगभग समान थी, अपने विचारों तथा कार्य-पद्धतियों में कभी सहमत नहीं हो सके। उस महिला ने तुकोजी को उसके पद से हटाने का प्रयत्न भी किया, परन्तु परिवार में कोई अन्य व्यक्ति ऐसा नहीं था जो सेनाओं के नेता के रूप में उसका स्थान ले सकता। नाना फड़निस ने भी यत्न किया कि होल्कर परिवार के इस दोहरे शासन का अन्त कर दे, पर सफल नहीं हो सका। उसने प्रस्ताव किया कि सम्पूर्ण प्रबन्ध तुकोजी को दे दिया जाये और अहल्याबाई के हाथ में कोई सत्ता न रहे। उसके व्यक्तिगत व्यय तथा धार्मिक कृत्यों के लिए धन का प्रबन्ध कर दिया जाये। परन्तु न तो उस वीर महिला ने इस प्रबन्ध को स्वीकार किया और न नाना ही उस महिला की प्रबल इच्छा के विरुद्ध इसे कार्यान्वित कर सका क्योंकि उसे समाज में व्यापक सम्मान प्राप्त था। महादजी ने भी होल्कर परिवार की समस्याओं का समाधान करने का यत्न किया, परन्तु कुछ अधिक सफलता नहीं प्राप्त हुई। परिणाम यह हुआ कि महिला का कोष पर कठोर नियन्त्रण बना रहा और तुकोजी को बाहर अभियानों पर जाते समय अपनी सेनाओं को प्रायः निराहार रखना पड़ा।

यह केवल एक अनुरूप उदाहरण है जो समस्त मराठा राज्य की सामान्य दुर्दशा को प्रकट करता है। इसकी रक्षा केवल सर्वथा परिवर्तन से ही हो सकती थी। इस परिस्थिति में महादजी को निस्सहाय होकर सावधानी तथा विवेक सहित अपने मार्ग पर अग्रसर होना पड़ा। उसने अपने योग्य सहायकों की एक मण्डली संगठित करके उन्हें प्रशिक्षण दिया और होल्कर परिवार तथा पूना के केन्द्रीय शासन से सहयोग की प्रार्थना की। परन्तु उसकी उदीयमान शक्ति को देखकर दोनों में ईर्ष्या उत्पन्न हो गयी। तुकोजी का परिवार कुचेष्टाओं में व्यस्त था। उसके चारों पुत्र या तो निर्बल थे या अभिमानी और आत्मश्लाघी। वे मदिरापान करके उन्मत्त लोगों की भाँति चिल्लाते और एक-

दूसरे का गला पकड़ लेते थे। उन उत्पातियों को केवल धन की भूख थी, जिससे राज्य की कोई उपयोगी सेवा किये बिना वे अपनी कुचेष्टाओं को तृप्त कर सकें। तुकोजी की पत्नी रुक्माबाई तथा योग्य परन्तु भ्रष्ट मुख्य प्रबन्धक नारो गणेश ने वर्षों तक इन पुत्रों को अपकार से दूर रखने की स्थायी समस्या का सामना किया। इस समस्या ने साध्वी अहल्याबाई को भी समान रूप से चिन्तित कर दिया। इन सबने महादजी की उदीयमान शक्ति को ईर्ष्यालु नेत्रों से देखा, परन्तु उसके परिश्रम तथा व्यय में भाग लेने से इनकार कर दिया। महादजी राजपूतों के सम्बन्ध में एक नियत प्रोग्राम का अनुसरण कर रहा था। तुकोजी कहता था कि उसके पास अपनी स्वतन्त्र योजना है। अहल्याबाई ने तुकोजी को शिन्दे के समानाधिकार के लिए बढ़ावा देकर सदैव संभ्रम को बढ़ाया। महादजी होल्कर की माँगों को सन्तुष्ट करने में असमर्थ था। लालसोट में महादजी के पराभव के बाद तुकोजी को विशेष रूप से उसके साथ सहयोग करने भेजा गया था। परन्तु सहयोग मिलने के स्थान पर शिन्दे को प्रत्येक पग पर उसकी ओर से इस प्रकार का विरोध प्राप्त हुआ कि उसने निराश होकर पूना के मन्त्रियों से स्वयं को उत्तरी कार्यों से मुक्त कर देने की प्रार्थना की।

अन्त में महादजी ने अपना उत्तरी कार्य १७९१ में सफलतापूर्वक समाप्त कर लिया। सफलता और वैभव के शिखर पर आसीन होकर वह दक्षिण को वापस लौटा। होल्कर के उपभोग के लिए वह कोई वास्तविक सत्ता या कार्य-क्षेत्र नहीं छोड़ गया था। तुकोजी, अहल्याबाई तथा उसके पुत्रों को स्पष्ट रूप से असह्य वेदना हुई, क्योंकि इसके बाद उन्हें शिन्दे की अपेक्षा नीचा स्थान स्वीकार करना होगा, जबकि एक समय दोनों सरदार सर्वथा समान आधार पर थे। वे यह ही समझ सके कि इस तथ्य-प्रधान जगत में पूर्वजों के यश तथा परिवार की परम्परा से बहुत कम लाभ प्राप्त होता है। राज्य-कार्य अपनी सफलता के लिए चरित्र तथा क्षमता पर निर्भर रहते हैं। जब १७८८ में तुकोजी उत्तर भारत में पहुँचा तो अहल्याबाई ने उसको विशेष रूप से उपदेश दिया कि वह शिन्दे के समान आधार पर अपना व्यक्तित्व बनाये रखे जैसा कि बाजीराव प्रथम के समय में मल्हारराव ने किया था। होल्कर के क्षेत्र से सम्बन्धित उदयपुर के राणा का झगड़ा महादजी ने नवम्बर, १७९१ में समाप्त कर दिया, क्योंकि उसने चित्तौड़ के प्रसिद्ध गढ़ पर अधिकार कर लिया और उसको राणा को वापस दे दिया। अहल्याबाई ने इस कार्य को अपने परिवार के प्रादेशिक अधिकारों का उल्लंघन तथा अपने शासन के प्रति अप-मान समझा। उधर महादजी को होल्कर परिवार के किसी भी सदस्य के

प्रति कोई श्रद्धा नहीं रह गयी थी, क्योंकि यह परिवार इस समय कुचेष्टा तथा मिथ्या अभिमान में व्यस्त था और उन संकटों को सर्वथा विस्मृत कर चुका था, जिन्होंने बाहर की ओर से मराठा राज्य को भयभीत करना आरम्भ कर दिया था। जब इस उग्र वातावरण में जनवरी, १७९२ को महादजी ने उज्जैन से पूना के लिए प्रस्थान किया तो शिष्टाचार के नाते भी अहल्याबाई से मिलने की चिन्ता नहीं की। गत दिसम्बर में अहल्याबाई के दामाद का देहान्त हो गया था, अतः कम से कम शोक प्रदर्शित करने के निमित्त उससे मिलना आवश्यक था। दक्षिण की यात्रा में नर्मदा घाट पर महादजी के लिए अनपेक्षित कष्ट उपस्थित हुआ तो यह वैमनस्य अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया। इससे दोनों परिवारों के सम्बन्ध और भी कटु हो गये। अहल्याबाई ने संत-बास के गाँव में नदी पार करने वाले मनुष्यों तथा पशुओं से चुंगी लेने के लिए चौकीदारों की एक टोली नियुक्त कर दी थी। महादजी के साथ विशाल अनुचर दल था। होल्कर के अधिकारी चुंगी माँगते थे, उसे देना महादजी ने अस्वीकार कर दिया। यह घटना स्वयं तुच्छ थी, परन्तु वृद्ध महिला इस पर बहुत कुपित हो गयी। कहते हैं उसने शाप दिया कि वापस आने के लिए पटेल जीवित ही न रहेगा। यह शाप सत्य सिद्ध हुआ।

दोनों शक्तिशाली सरदारों के बीच बढ़ती हुई ईर्ष्या तथा शत्रुता के कारण अग्नि प्रज्ज्वलित हो गयी, जिसकी लपटों से केवल शिन्दे तथा होल्कर के दोनों परिवार ही नष्ट नहीं हुए, मराठा संघ का समस्त भवन ही भस्म हो गया। इस अन्त का आरम्भ लखेरी में हो गया था। पूना पर यशवन्तराव होल्कर का आक्रमण तथा १८०२ में पेशवा का बसई को पलायन, इसके परिशिष्ट थे। जो बुद्धिमान मनुष्य उस समय मराठा राज्य में निवास करते थे, उनको शिन्दे-होल्कर प्रतिस्पर्धा के विनाशक लक्षण पूर्णतः स्पष्ट थे। होल्कर रूपी आधार-स्तम्भ प्रत्यक्ष ही चटक रहा था। अहल्याबाई की संयत बुद्धि भी इसकी रक्षा नहीं कर सकी। तुकोजी का पुत्र मल्हारराव द्वितीय (जन्म लगभग १७७०) न केवल होल्कर परिवार का, अपितु समस्त मराठा राज्य का महान कण्टक हो गया। उसे गर्व था कि वह दि बायने द्वारा संगठित निपुण तोपखाने तथा सेनाओं को नष्ट कर देगा। कोई भी उसका नियन्त्रण नहीं कर सकता था। उसने आवारा लोगों के दल एकत्र कर लिये जो पिण्डारियों के पूर्व रूप सिद्ध हुए। उनके द्वारा मल्हारराव ने समस्त मराठा भूमि में बिना किसी विवेक के लूटमार आरम्भ कर दी। मल्हारराव को पकड़ने और उस पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए पूना को प्रार्थना भेजी गयी। परन्तु होल्कर को कौन हाथ लगा सकता था? नाना फड़निस ने उसको पूना

बुलाया, परन्तु उसके नियन्त्रण का कोई ठीक उपाय नहीं कर सका। पूना में मल्हारराव ने सदाचरण की झूठी प्रतिज्ञाएँ कीं। उसको सम्मानपूर्वक इन्दौर वापस होने की आज्ञा दे दी गयी। वहाँ पहुँचकर उसने तुरन्त अपने दुष्ट कार्य पुन: आरम्भ कर दिये। वह धावे बोलने, किसानों को लूटने और मालवा की सुन्दर भूमि को नष्ट करने लगा। तुकोजी उसके विरुद्ध कोई कार्य नहीं करना चाहता था और अहल्याबाई उसे रोकने का साहस नहीं कर सकती थी। वर्ष बीतते गये और कुकृत्य बढ़ते गये। अहल्याबाई के वृद्ध राजनिष्ठ सेवक पाराशर दादाजी ने उससे स्पष्ट रूप में कहा—"इस शनितुल्य राक्षस को तुरन्त पकड़कर कारागार में डाल दिया जाये।" अन्त में उसने फ्रेंच सज्जन डुड्रेनेक को अपनी सहायता के लिए बुलाया और मल्हारराव को वन्दी बना कर लाने की आज्ञा दी। डुड्रेनेक ने इस कार्य को वीरतापूर्वक पूरा किया। उपद्रवी नवयुवक बेड़ियाँ डालकर अहल्याबाई के सम्मुख लाया गया तथा कुशलगढ़ में दृढ़तापूर्वक बन्द कर दिया गया। निर्बल पिता इस परिणाम पर इतना कुपित हुआ कि उसने इस सपूत को अपने से न मिलने देने पर आत्म-हत्या करने की धमकी दी। अत: शान्तिभंगकर्ता को मुक्त करना ही पड़ा। लखेरी के मैदान में होने वाले इस गृहयुद्ध (४ जून, १७९३) से पूना का सन्तोषी नाना फड़निस भी इस प्रकार उग्र हो उठा कि होल्कर परिवार के कार्यों की अधिक उपेक्षा करना उसके लिए अशक्य हो गया। उसने वही उपाय किया, जिसे करने का वह इस प्रकार की परिस्थिति में अभ्यस्त था—अर्थात उसने इन्दौर को कूटनीतिक दूतमण्डल भेजा। हिंगने बन्धुओं में कनिष्ठ देवराव हिंगने को बलवन्तराम काशी कात्रै के साथ आज्ञा दी गयी कि वे इन्दौर जाकर अनुनय-विनयपूर्ण उपायों से कष्ट निवारण करें। पर यह व्यर्थ की आशा थी। अगस्त, १७९३ में दूतमण्डल इन्दौर पहुँचा और वहाँ १८ मास का लम्बा समय व्यतीत करने के बाद दिसम्बर, १७९४ में तुकोजी होल्कर के साथ पूना वापस आ गया। वे कागज पर एक लम्बी रिपोर्ट उपस्थित करने के अतिरिक्त कोई कार्य नहीं कर सके थे। यह रिपोर्ट हिंगने ने लिखी थी। अब पारसनिस ने इसे अपने 'इतिहास संग्रह' में मुद्रित कर दिया है।[६]

---

६ महेश्वर दरबार लैटर्स, हिंगने एम्बैसी दि होल्कर कैफियत तथा नव प्रकाशित, दी सोर्सेज ऑव होल्कर हिस्ट्री, जिल्द १ व २ में समाविष्ट विस्तृत वाङ्मय का अध्ययन कर सकते हैं।

हिंगने का सुझाव था कि इस रोग की एकमात्र चिकित्सा सर्वथा परिवर्तन अर्थात अयोग्यता तथा कुप्रबन्ध के कारण होल्कर राज्य का सर्व दमन है। परन्तु इस प्रकार का अमोघ उपाय नाना फड़निस की शक्ति के बाहर था। प्रशासन में अपने वर्ग के छोटे और बड़े व्यक्तियों सहित उसको इस कहावत पर सन्तोष करना पड़ा—आप मरे जग प्रलय।

अपकर्ष के अनेक उदाहरणों में से होल्कर परिवार केवल एक है। इन उदाहरणों में केवल व्यक्तियों और विवरणों का भेद है, वैसे वे सब उसी सर्व-व्यापक नैतिक ह्रास के उदाहरण हैं। पेशवा बाजीराव द्वितीय, दौलतराव शिन्दे, सरजाराव घाटगे, जिनका मराठा इतिहास के रंगमंच पर शीघ्र ही प्रवेश होने वाला था, उसी दुखान्त कथा के परिचायक हैं।

४. बाबाराव गोविन्द—महादजी का परामर्शदाता—मुगल-साम्राज्य के राज-प्रतिनिधि पद पर महादजी शिन्दे के आरोहण से भारतीय शक्तियों को प्रेरणा हुई कि अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उससे प्रार्थना करें। उदाहरणार्थ, हैदराबाद के निजामअली ने अपने विश्वस्त दूत बाबाराव गोविन्द करमालेकर को १७८४ के अन्त में उसके पास भेजा। यह कई वर्ष तक शिन्दे के शिविर में रहकर उसको महत्त्वशाली कार्यों में परामर्श देता रहा और अनेक दिशाओं में उसकी विशेष सेवा करता रहा। उसमें चिन्ताजनक कलहों का मधुर युक्तियुक्तता तथा चतुर तर्क-वितर्क द्वारा समाधान करने की अद्भुत क्षमता थी। बाबाराव गोविन्द के साथ दूतमण्डल में महादजी की बहन आनन्दीबाई भी आयी थी, जिसका विवाह राव रम्भा निम्बालकर के परिवार में हुआ था। यह निजामअली का अधीन जागीरदार था। उसको आर्थिक कष्ट था और वह महादजी से कुछ आर्थिक सहायता प्राप्त करना चाहती थी। निजामअली ने उससे महादजी के पास अपनी प्रार्थना का समर्थन करने को कहा। इस प्रार्थना में निम्नलिखित धाराएँ थीं :

१. साम्राज्य के वजीर की परम्परागत उपाधि का दान—जिस पर आसफजाह प्रथम, उसके पुत्र तथा पौत्र का क्रमशः अधिकार रहा था।

२. हैदराबाद राज्य के शासक पद पर निजामअली का असंदिग्ध पुष्टीकरण, इस पद के लिए गृहहीन घुमक्कड़ गाजीउद्दीन कनिष्ठ भी अपने हित में प्रार्थना कर रहा था।

३. दिल्ली तथा उसके समीप की भूमि और जागीरों के रूप में बहुत-सी सम्पत्ति थी, जिस पर एक समय आसफजाह का अधिकार था। इस समय उन पर निजामअली ने अपना स्वत्व उपस्थित कर रखा था।

४. दिल्ली की प्राचीन यमुना नहर की दशा बिगड़ रही थी और इसकी मरम्मत की आवश्यकता थी। वह नहर जनता के उपयोग के लिए खोल दिये जाने पर निजामअली ने इसकी मरम्मत तथा रक्षा के लिए इस समय दो लाख रुपये देने का प्रस्ताव किया।

५. उत्तरी सरकार का जो प्रदेश अंग्रेजों को दे दिया गया था इस सम्बन्ध में निजामअली ने अंग्रेजों से शेष कर के रूप में एक करोड़ से अधिक धन

स्वत्व प्रस्तुत किया। महादजी से प्रार्थना की गयी थी कि वह अंग्रेजों से यह धन भी उस धन के साथ वसूल कर ले जो वह सम्राट तथा नागपुर के भोंसले के लिए माँग रहा था।

यह दूतमण्डल सर्वथा व्यर्थ सिद्ध हुआ। १७८५ में ग्वालियर के स्थान पर महादजी की बहन का देहान्त हो गया। वह वृद्धा थी। निजामअली ने उसको विचारपूर्वक पारिवारिक शृंखला के रूप में चुना था। परन्तु बाबाराव ५ वर्ष से अधिक समय तक महादजी के पास ठहरा रहा, क्योंकि वह अपनी आत्मीयता तथा निस्वार्थ सेवा के लिए प्रसिद्ध था। उसके द्वारा महादजी को निजामअली से दस या बीस लाख का ऋण मिल गया। निजामअली उत्सुकता-पूर्ण रुचि से नाना तथा महादजी के बीच पूना में बढ़ती हुई खाई का अवलोकन कर रहा था। वह महादजी की मैत्री को नाना के लोभ से श्रेयस्कर समझता था। जब १७९१ में महादजी ने दक्षिण को प्रयाण करने का निश्चय किया, बाबाराव भी उसके साथ अपने स्वामी के पास वापस आ गया। १७९३ में वह अपने स्वामी के कार्य से पूना में पुनः महादजी से मिला। इन दिनों गाजीउद्दीन दिल्ली के सिंहासन पर एक नये शाहजादा को बैठाकर अपने भाग्य की परीक्षा कर रहा था। परन्तु गाजीउद्दीन के प्रयास कभी सफल सिद्ध नहीं हुए, क्योंकि महादजी ने उसको अपनी सहायता नहीं दी। नाना के हृदय में पानीपत के समय से ही गाजीउद्दीन के प्रति दयाभाव था। अतः इस समय उसको कालपी के समीप एक छोटी-सी जागीर दे दी गयी।[७]

इसी बीच जवाँबख्त के पुत्र मिर्जा मुजफ्फरबख्त नामक व्यक्ति ने दावा किया कि वह सम्राट का युवराज (अलीअहद) है। वह १७८९ में पूना आया और उसने स्वयं को दिल्ली में प्रतिष्ठित करने के लिए पेशवा से सहायता की प्रार्थना की। वह कई वर्षों तक पूना तथा अन्य स्थानों में रहा। वह महादजी का समर्थन प्राप्त करने में असफल हो गया, अतः एकाकी नाना फड़निस उसके प्रयासों में सहायता न दे सका और १७९५ में किसी समय दरिद्रावस्था में ही उसका देहान्त हो गया। इस प्रकार की घटनाओं से महादजी राजपूतों के विरुद्ध चल रहे युद्ध के समय कितना व्याकुल हुआ होगा, यह आसानी से समझा जा सकता है।

५. राजपूतों का नाश—१७९० तथा १७९१ में महादजी के सामन्त देश के प्रबन्ध तथा उपद्रवों के दमन में अनेक स्थानों पर व्यस्त रहे। खाँडेराव हरि ने कानौड़ को घेर लिया। यहाँ नजफ कुली की पत्नी ने इस्माइलखाँ तथा जयपुर और जोधपुर के राजाओं की सहायता से महादजी की शक्ति का

---

७ हिंगने दफ्तर, जिल्द १, पृष्ठ ८४

अनादर किया था। उसे उस समय शिन्दे तथा होल्कर के बीच चलने वाली आन्तरिक कलह का पता था। विजयसिंह ने महादजी के अन्यायपूर्ण प्रवेश के विरुद्ध न्याय की प्रार्थना करने के लिए अपने दूत पूना भेजे। कुछ व्यक्तियों को महादजी की हत्या करने के लिए भी नियुक्त किया गया। जोधपुर के मराठा दूत ने लिखा : "विजयसिंह को कठोर तथा चिरस्मरणीय शिक्षा की आवश्यकता है।" फरवरी, १७९१ में महादजी ने जयपुर के प्रतापसिंह के साथ पृथक सन्धि करने का प्रबन्ध कर लिया जो १५ लाख रुपये का वार्षिक कर नियमपूर्वक देने पर सहमत हो गया। उसने १८०३ में अपनी मृत्यु तक अपनी प्रतिज्ञा का निष्ठापूर्वक पालन किया।

इस प्रकार महादजी उत्तर भारत में सतलज तक पूर्ण मराठा शक्ति को शनैः-शनैः पुनः स्थापित करने में सफल हो गया। अफगानिस्तान के दुर्रानी शाह तैमूर के साथ भी उसका समझौता हो गया। उस समय सिख उस पर भारी दबाव डाल रहे थे। उसको भी अपने पिता अहमदशाह की भाँति पंजाब का लोभ था। मराठों, सिखों तथा अफगानों के बीच पंजाब के प्रश्न पर त्रिदलीय समझौता हो गया। लाहौर तथा अटक के बीच का प्रदेश शाह को दिया गया; लाहौर तथा सतलज के बीच में सिखों का शासन रहा और उस नदी के दक्षिण में मराठों का राज्य रहा। इस प्रकार कलह का मुख्य विषय अन्तिम रूप से हट गया, जो बहुत दिनों से मराठा-अफगान सम्बन्धों पर प्रभाव डाल रहा था। महादजी के निपटने के लिए अब केवल दो विरोधी रह गये— जोधपुर का राजा विजयसिंह तथा इस्माइलखाँ। गोपालराव रघुनाथ अपने अधिकृत स्थान अजमेर से विजयसिंह पर भारी प्रहार कर रहा था। इस समय विजयसिंह तथा इस्माइलखाँ में मेल हो गया। उन्होंने १७९० की ग्रीष्मऋतु में जयपुर के तोंवरवाटी जिले में महादजी के विरुद्ध अपना युद्ध पुनः आरम्भ कर दिया। जयपुर से ८० मील उत्तर में पाटन के स्थान पर उन्होंने स्थिति दृढ़ कर ली। महादजी ने चुनौती स्वीकार कर ली तथा संगठित आक्रमण में उसने अपने उत्तम सरदारों को नियुक्त किया। गोपालराव रघुनाथ, जीवबा बख्शी, अम्बूजी इंगले, मछेरी का प्रतापसिंह तथा दि बायने के शक्तिशाली दल पाटन की ओर बढ़े और वे शत्रु पर आक्रमण करने के लिए उपयुक्त स्थान ढूँढ़ने में व्यस्त हो गये। इस समय सौभाग्यवश महादजी ने तुकोजी होल्कर का पूर्ण सहयोग प्राप्त कर लिया था। उसने उदारतापूर्वक अपनी नवीन विजयों में उसको आधा हिस्सा दे दिया था। २४ मई से २० जून, १७९० तक पाटन के सम्मुख लगभग एक मास तक लड़ाई चलती रही। अन्तिम दिन रक्तमय तथा निर्णायक युद्ध हुआ। दोनों ओर से तोपों की मार हुई जो सवेरे से काफी

रात तक होती रही। दि बायने के दलों ने भयानक नाश किया। बहुत-से हाथी तथा सौ तोपें लूट में मिलीं। महादजी ने इस विजय के सम्बन्ध में चमत्कार-पूर्ण वृत्तान्त पूना भेजा। इस्माइल बेग ने अकस्मात जयपुर भागकर अपनी प्राण-रक्षा कर ली।[८]

परन्तु पाटन की इस विजय से राजपूत युद्ध समाप्त नहीं हुआ। शिन्दे के शत्रुओं ने अपना आक्रमणात्मक युद्ध पुनः आरम्भ कर दिया तथा अधीनता स्वीकार करने के कोई लक्षण प्रकट नहीं किये। महादजी ने अपने सामन्तों को राठौर प्रदेश का नाश करने की आज्ञा दी। विजयसिंह ने तुकोजी होल्कर के साथ पृथक शान्ति-प्रस्ताव पुनः आरम्भ कर दिये। उसने पुनः दोनों मराठा सरदारों के बीच फूट डालने का यत्न किया। इन चिन्ताओं के बीच जब महादजी को सम्राट का यह विधिसम्मत फर्मान प्राप्त हुआ कि वह नायब वकील मुतलक नियुक्त कर दिया गया है और मथुरा तथा वृन्दावन के दोनों हिन्दू तीर्थ-स्थान मराठा अधिकार में दे दिये गये हैं तो उसका उत्साह बढ़ गया। महादजी ने ७ अगस्त, १७९० को विशेष दरबार करके उपयुक्त विधि से फर्मान स्वीकार किया। इस घटना से बाह्य जगत को यह मालूम हो गया कि मुगल शासन में महादजी का स्थान शक्तिशाली है और उसकी क्षमता तथा प्रबन्ध में सम्राट को बहुत विश्वास है। अब शिन्दे की प्रतिष्ठा उत्तर भारत में पुनः पूर्णतः स्थापित हो गयी।

दि बायने के अनुशासित दलों की शक्ति के कारण ही पाटन में विजय प्राप्त हुई थी। इससे उस प्रयोग की बुद्धिमत्ता पुष्ट हो गयी जो महादजी ने ५ वर्ष पहले डरते-डरते आरम्भ किया था। अपनी सेना के नियमित वेतन वितरण के प्रति दि बायने का विशेष ध्यान था। महादजी को अपनी आर्थिक व्याकुलताओं के कारण प्रायः कष्ट होता था। अतः दि बायने ने अपनी सेना के नियमित वेतन वितरण का सन्तोषजनक प्रबन्ध करने के लिए स्पष्ट आग्रह किया, जिससे सेना निष्ठापूर्वक सदैव सेवा करती रहे। जब उसकी नियुक्ति प्रथम बार हुई तो उसको ४ हजार रुपये मासिक मिलते थे। बाद को यह वेतन बढ़ाकर ६ हजार कर दिया गया। वेतन में विलम्ब से बचने के लिए महादजी ने सेनापति को अलीगढ़ के समीप अपने समृद्ध जिले दे दिये। उनकी अनुमानित आय १२ लाख वार्षिक थी जो उसके तथा उसकी सेना के वेतन के भुगतान के लिए पर्याप्त थी। दि बायने ने बहुत योग्यता से जागीर का प्रबन्ध किया तथ अपनी वार्षिक आय इस प्रकार बढ़ा ली कि वह अपनी नवीन सेना के लिए

---

८ मई, १९४३ के माडर्न रिव्यू में सर यदुनाथ सरकार का लेख देखो।

उच्चतम कौशल का प्रबन्ध कर सके। यह प्रयोग भविष्य में ब्रिटिश प्रशासकों के लिए भी एक अनुकरणीय उदाहरण हो गया।

पाटन के युद्ध के बाद विजयसिंह ने फ्रेंच जनरल को महादजी के प्रति निष्ठा से विचलित करने के लिए अनेक उपाय किये। दि बायने ने उसको उत्तर दिया—"आप मुझको क्या कुछ अधिक दे सकते हैं ? जयपुर तथा जोधपुर के दोनों राज्यों पर पहले से ही मेरा पूर्ण अधिकार है।" जनरल को राजपूत संघ पर अपनी विजय का इतना विश्वास था कि उसने तुरन्त ही अजमेर नगर तथा तारागढ़ के शक्तिशाली गढ़ पर अधिकार कर लिया (२१ अगस्त, १७९०)। पाटन पर विजय प्राप्त करने में महादजी तथा तुकोजी के संयुक्त प्रयास से दोनों सरदारों के बीच पुनः अस्थायी मेल हो गया। १९ अगस्त को वे सप्रेम मिले और उन्होंने भूतकालीन घटनाओं तथा भावी योजनाओं के विषय में निष्कपट वार्तालाप किया। वे समस्त विजय तथा लूट के आधे-आधे बँटवारे पर सहमत हो गये। ऐसा प्रतीत होता है कि महादजी ने प्रदेशों तथा उनके प्रशासन पर अपने विशेष अधिकार का त्याग नहीं किया। इसी कारण संघर्ष पुनः आरम्भ हो गया।

राजपूत-विरोध को समाप्त करने के निमित्त नवीन अभियान के लिए महादजी २७ अगस्त को पुनः शिविर में चला गया, और श्रीकृष्ण का जन्म-दिवसोत्सव (२ सितम्बर) यथापूर्व मनाया। उसने लाडोजी देशमुख को विजयसिंह के विरुद्ध पहले ही भेज दिया था। गोपालराव चिटनिस, जीवबा दादा तथा काशीराव होल्कर (तुकोजी का पुत्र) ने जोधपुर प्रदेश में प्रवेश किया। उनका निश्चय समस्त विरोध को चूर्ण करके साँभर, रूपनगर और अन्य स्थानों पर अधिकार कर लेने का था। विजयसिंह ने मेड़ता के मैदान में अपना पड़ाव डाला तथा १४ और ६० वर्ष के बीच आयु वाली अपनी समस्त पुरुष जनता को बलपूर्वक सेना में भरती कर लिया, जिससे वह मराठा घेरे के विरुद्ध अपना अन्तिम विनाशकारी प्रयास कर सके। राजपूत प्रतीक्षा कर रहे थे कि इस्माइल बेग का दल आकर उनके साथ सम्मिलित हो जायेगा, तभी दि बायने ने १० सितम्बर को प्रातः राजपूत सवारों पर अग्निवर्षा आरम्भ कर दी। चार हजार राठौरों ने उन्मत्त होकर दि बायने के आक्रमण का उत्तर दिय और सबके सब काट डाले गये। अपने समस्त सामान सहित शत्रु का शिविर मराठों के हाथ लग गया। विजयसिंह का मुख्य सेनापति भीमराव सिन्धर्व नागौर भाग गया और जहर खाकर मर गया। मेड़ता का रणक्षेत्र मृत तथ घायल राठौर वीरों से पट गया। जो जीवित पाये गये, उनको मराठों ने साव धानी से उठा लिया और चिकित्सा की। सर यदुनाथ लिखते हैं—"दि बाय

के जीवन में यह सबसे भयंकर युद्ध था। इसने उसकी विलक्षण सैनिक बुद्धि को उत्तम रूप से प्रकट कर दिया। अनुशासन के विरुद्ध केवल साहस तथा गोलियों के विरुद्ध तलवारों की नितान्त निरर्थकता के श्रेष्ठ उदाहरण के रूप में यह युद्ध अनन्त काल तक स्मरण रहेगा। मेड़ता की लड़ाई से प्राचीन भारतीय रण-प्रणाली पर यूरोपीय रण-प्रणाली की श्रेष्ठता असन्दिग्ध रूप से सिद्ध हो गयी।"[९]

महादजी ने तुरन्त राठौरों की राजधानी जोधपुर पर अधिकार करने के लिए अनेक टुकड़ियाँ भेज दीं। विजयसिंह ने अपनी स्थिति निराशापूर्ण देखकर अधीनता की शर्तें प्राप्त करने के लिए दूत भेजे। ये दूत अजमेर में महादजी से मिले। यह सन्धि वार्ता विलम्ब तथा छल के कारण असाधारण रूप से दीर्घकालीन हो गयी। अन्त में ६ जनवरी, १७९१ को निम्नलिखित शर्तों पर समझौता हो गया। ४५ वर्ष पहले दत्ताजी शिन्दे के साथ अभिनीत दृश्य की यह पुनरावृत्ति थी।

१. विजयसिंह एक वर्ष के अन्दर किश्तों द्वारा ४० लाख रुपये दे और इसके बाद ५ लाख रुपये का वार्षिक कर देता रहे।

२. अजमेर का नगर तथा गढ़ उनके अधीन गाँवों सहित सदा के लिए शिन्दे को दे दिये जायँ।

३. साँभर तथा कुछ अन्य जिले स्थायी रूप से मराठों को दे दिये जायँ।

जयप्पा के समय से अजमेर पर शिन्दे परिवार का अधिकार था। लालसोट के बाद वह उनके हाथ से निकल गया था। अब वह पुनः उनके अधिकार में आ गया। पुष्कर के तीर्थ स्थान पर भी अब मराठों का अधिकार हो गया। यहाँ पर महादजी ने एक भव्य नवीन मन्दिर बनवाया। लखबा दादा विजित प्रदेश की व्यवस्था करने के लिए नियुक्त किया गया। युद्ध के शीघ्र पश्चात ही जुलाई, १७९३ को विजयसिंह का देहान्त हो गया। जिस प्रकार पाटन का रणक्षेत्र जयपुर के वीरों का श्मशान बन गया था उसी प्रकार मेड़ता के रण से जोधपुर के राठौरों की शक्ति भंग हो गयी। अप्पाजी राम ने एक स्थान पर संयोगवश लिखा है—"पाटिल बाबा बहुत सौभाग्यशाली है। मनुष्यों तथा कार्यों के प्रबन्ध के लिए उसमें आश्चर्यजनक क्षमता है। जिन दूसरे व्यक्तियों ने उसके उपायों के अनुकरण का प्रयत्न किया, वे असफल हुए।"

उत्तर भारत में महादजी को अपने समस्त प्रतिद्वन्द्वियों में से अब केवल इस्माइल बेग से निपटना रह गया था। उसकी कथा पढ़ने में पाठकों को देर

---

९ माडर्न रिव्यू, जनवरी, १९४४

नहीं लगेगी। उसका अब कोई समर्थक नहीं था और उसने महादजी के समस्त शान्ति-प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया था। अब वह घुमक्कड़ का जीवन व्यतीत करने लगा। एक अन्य शाही सरदार नजफकुलीखाँ उसी जैसी परिस्थिति में था। वह कभी महादजी का मित्र हो जाता और कभी शत्रु। कानौड़ पर अधिकार करने की व्यस्तता में ४ सितम्बर, १७९० को नजफकुलीखाँ का देहान्त हो गया। उसके बाद इस्माइल बेग ने कानौड़ पर अधिकार कर लिया और विजयसिंह के साथ हो गया। जब विजयसिंह ने संघर्ष त्याग दिया तो इस्माइल बेग अकेला रह गया और महादजी के लोगों ने एक स्थान से दूसरे स्थान पर उसका पीछा शुरू कर दिया। १७९१ के आरम्भ में वह दक्षिणी राजस्थान की ओर गया और सहायता की खोज में उसने सिरोही तथा पालनपुर पर धावा किया। जुलाई में वह अहमदाबाद के पास पहुँच गया और उसने समीपवर्ती प्रदेश को लूट लिया। गुजरात से भगाये जाने पर वह जयपुर वापस आ गया, परन्तु उसको कहीं पर शरण न मिल सकी। खाँडेराव हरि उसको ढूंढता हुआ पहुँच गया और ४ दिसम्बर, १७९१ को उसे परास्त कर दिया। तब कानौड़ के गढ़ में नजफकुली की पत्नी ने उसको शरण दी। उस समय इस गढ़ पर उसी का अधिकार था। खाँडेराव ने कानौड़ को घेर लिया। उसने मथुरा से भारी तोपें मँगा लीं और अग्निवर्षा द्वारा उस स्थान पर अधिकार कर लिया। इस्माइल बेग अप्रैल, १७९२ में पकड़ लिया गया। महादजी इसके पहले ही पूना के लिए प्रस्थान कर गया था। मोती बेगम की याचना पर जो नजफकुली की सम्बन्धिनी थी और जिसने दि बायने के साथ विवाह कर लिया था, दि बायने ने इस्माइल बेग को अपने पास शरण दी। मासिक व्यय के लिए ५०० रुपये भत्ते सहित इस्माइल बेग आगरा में बन्दी कर दिया गया। उसने ८ वर्ष निरोध में व्यतीत किये और १७९९ में उसका देहान्त हो गया। वह मुगल सेना का अन्तिम जीवित सदस्य था।

इस प्रकार १७९१ के अन्त तक नर्मदा से सतलज तक समस्त उत्तर भारत पर कहने मात्र को शिन्दे का अधिकार हो गया तथा वहाँ एक प्रकार की सुनिश्चित राजनीतिक व्यवस्था स्थापित हो गयी। दक्षिणी राजस्थान में उदयपुर के शासक राणा भीमसिंह के सम्मुख आन्तरिक क्रान्ति थी। यह क्रान्ति उसके नामराशि सलूम्बर के भीमसिंह ने खड़ी कर दी थी। उसने बलपूर्वक चित्तौड़गढ़ पर अधिकार कर लिया था जहाँ से उसे निकालना सम्भव नहीं था। चित्तौड़ उदयपुर का बहुमूल्य अधिकृत स्थान था। वहाँ का शासक उसकी हानि सहन नहीं कर सकता था। मार्च, १७९१ में जब महादजी वसन्तोत्सव के लिए पुष्कर गया, तब राणा ने चित्तौड़ को पुनः प्राप्त करने के लिए उससे सहा-

यता की प्रार्थना की। उस समय महादजी को पूना जाने की जल्दी थी। अतः वह राणा के आह्वान को तुरन्त स्वीकार न कर सका। परन्तु अपने अनुमान से अधिक समय तक उसको राजपूतों के कार्यों में व्यस्त रहना पड़ा। वह चित्तौड़ के समीप पहुँचा। वहाँ राणा उससे मिलने के लिए आया। ५ सितम्बर को उनकी भेंट हुई। चित्तौड़ तुरन्त घेर लिया गया और १७ नवम्बर को महादजी की सेना के सामने दुर्गस्थ लोगों ने आत्मसमर्पण कर दिया। चित्तौड़ राणा के अधिकार में वापस दे दिया गया। उदयपुर का कर अन्तिम रूप से निश्चित हो गया और महादजी दक्षिण को चल दिया। ४ दिसम्बर, १७९१ को पेशवा को इस प्रकार लिखा :

"इतने लम्बे समय के बाद पूना में आपके दर्शनों की उत्कट इच्छा से मैंने मारवाड़ क्षेत्र के मार्ग में मथुरा से प्रस्थान किया। मार्ग में मुझको उदयपुर के राणा की प्रार्थना प्राप्त हुई कि मैं उसके प्राचीन स्थान चित्तौड़गढ़ पर उसके हितार्थ अधिकार कर लूँ। इस पर उसके विद्रोही सरदार भीमसिंह का अधिकार था। मैं गढ़ के सम्मुख पहुँच गया और थोड़े-से समय में उस पर अधिकार कर लिया। आपके आशीर्वाद से इस प्रसिद्ध गढ़ पर मैंने कुछ ही दिनों में अधिकार कर लिया, जबकि अकबर महान को इस पर अधिकार करने में १२ वर्ष लग गये थे। मैंने उदयपुर का प्रबन्ध कर दिया है और राजपूत प्रदेश की रक्षा के लिए अम्बूजी इंगले नियुक्त हो गया है। अब मैं शीघ्र ही पूना पहुँचकर श्रीमान के दर्शन करने वाला हूँ।" जब महादजी चित्तौड़ से प्रस्थान कर रहा था तो राणा तथा विद्रोही भीमसिंह दोनों ५ जनवरी, १७९२ को उससे मिलने आये। जोधपुर तथा अन्य राज्यों के वकील भी उसी भाँति मिलने आये। उन्होंने अपनी सप्रेम आज्ञाकारिता को प्रमाणित करके पारस्परिक विचार-विनिमय द्वारा मुख्य विवादों का निपटारा कर लिया। महादजी ६ जनवरी को मेवाड़ से विदा हुआ। अम्बूजी इंगले तथा समरू के दल कुछ दूर तक उसको विदा करने गये। जब निकट भविष्य में महादजी दक्षिण में था तब अम्बूजी इंगले ने अपने कर्तव्यों का इतनी उत्तम योग्यता से पालन किया कि इतिहासकार टॉड ने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

तिथिक्रम

अध्याय ८

८ फरवरी, १७७७	घासीराम पूना का कोतवाल नियुक्त।
अगस्त, १७८६	नाना फड़निस द्वारा बनारस में भवन-निर्माण आरम्भ।
२६ अगस्त, १७६१	घासीराम ब्राह्मण का अपराधियों को निरोध में रखना।
३१ अगस्त, १७६१	घासीराम की पत्थर मारकर हत्या।
फरवरी, १७६२	महादजी का गोदावरी तट पर पहुँचना।
मार्च-मई, १७६२	महादजी तुलजापुर में।
११ मई, १७६२	पेशवा द्वारा हिसाब की देखभाल।
१२ जून, १७६२	महादजी का पूना में आगमन।
२२ जून, १७६२	महादजी द्वारा वनावड़ी में दरबार।
६ अगस्त, १७६२	महादजी का पेशवा को भोज देना।
६ अगस्त, १७६२	पूना में शिन्दे के दावों की परीक्षा।
८ अक्तूबर, १७६२	सुरावली में होल्कर का शिविर भंग।
१३ मार्च, १७६३	पूना में होली।
२३ मार्च, १७६३	सचिव के प्रति दुर्व्यवहार।
अप्रैल, १७६३	शिन्दे तथा नाना के बीच वैर-शान्ति का प्रयास।
अप्रैल-मई, १७६३	सचिव के कार्य की जाँच।
१ जून, १७६३	लाखेरी में होल्कर का पराभव।
२३ जुलाई, १७६३	शिन्दे तथा नाना के बीच वैर-शान्ति की सूचना।
१२ फरवरी, १७६३	महादजी शिन्दे का पूना में देहान्त।

अध्याय ८

शिन्दे पूना में

[१७९२–१७९४ ई०]

१. शिन्दे का दक्षिण आने का उद्देश्य। २. २२ जून, १७९२ का दरबार। ३. पूना मन्त्रिमण्डल से शिन्दे का विरोध। ४. लाखेरी में होल्कर का पराभव। ५. पूना में शिन्दे की विजय। ६. सचिव के प्रति दुर्व्यवहार। ७. घासीराम कोतवाल का दुःखपूर्ण अन्त।

१. शिन्दे का दक्षिण आने का उद्देश्य—जिस समय महादजी शिन्दे का दक्षिण में आगमन हुआ, उसी समय टीपू सुल्तान के विरुद्ध मित्रों का युद्ध समाप्त हुआ था। क्रान्तदर्शी पर्यवेक्षकों की सम्मति में इस युद्ध का अप्रत्यक्ष परिणाम यह हुआ कि भारत की राजनीति में ब्रिटिश सत्ता ने प्रमुखता प्राप्त कर ली तथा उसी अनुपात में मराठा प्रतिष्ठा कम हो गयी। इस समय शिन्दे के सम्मुख प्रमुख उद्देश्य उचित अवसर पर इसका प्रतिकार करना था। इस समय वह भारतीय शासकों में सर्वाधिक शक्तिशाली था। भारतीय स्वराज्य के हित में वही सर्वाधिक प्रयत्नशील योद्धा था। वह पेशवाओं की शक्ति था—अर्थात वह उन सरदारों में से था जिन्होंने महान शिवाजी द्वारा स्थापित अल्प सफलताओं से मराठा सत्ता को उस स्थिति पर पहुँचा दिया था, जहाँ संस्थापक का हिन्दूपद-पादशाही का स्वप्न लगभग पूर्ण हो गया था क्योंकि १७७२ के आरम्भ में इसी शिन्दे ने योग्य पेशवा माधवराव प्रथम के निर्देश से सम्राट को ब्रिटिश नियन्त्रण से हटाकर दिल्ली पहुँचाया और उसको पूर्वजों की गद्दी पर बिठा दिया। इस उद्धार-काल को २० वर्ष हो गये थे और इस समय भारतीय राजनीति में महत्त्वशाली परिवर्तन हो चुके थे—विशेषकर यह कि मराठा सत्ता के लिए एक नवीन प्रतिद्वन्द्वी का आगमन हो चुका था जो सिन्धुपार अफगान प्रदेशों से नहीं, अपितु समुद्रपार यूरोप के प्रदेशों से आया था। क्या इस नवीन सत्ता को सर्वोच्च स्थान तक पहुँचने के लिए निष्कण्टक मार्ग दे देना और वैभवशाली संस्मरणों के इस विशाल प्राचीन महाद्वीप के लिए स्वराज्य की समस्त आशा को नष्ट कर देना उचित था? क्या इस देश के पुत्रों को भावी दासता से बचने के लिए यथाशक्ति प्रयास नहीं करना

चाहिए था ? जयपाल, जयचन्द, पृथ्वीराज, देवगिरि के रामदेव, विजयनगर के रामराय तथा अन्य व्यक्तियों ने मुस्लिम अधीनता से भारत की रक्षा के प्रयास में अपने प्राणों का बलिदान कर दिया था। हम नहीं कह सकते कि वे सर्वथा असफल रहे, क्योंकि समयान्तर में विजेता इस देश में बस गये, जिन्होंने इसके जीवन तथा संस्कृति को स्वीकार कर लिया और वे जनता के साथ हिलमिल गये। यही प्रक्रिया इस समय अधिक उग्ररूप में पुनरावृत्ति का भय दिखा रही थी। शिन्दे ने इसकी छाया शनैः-शनैः अग्रसर होती हुई देख ली तथा वह ब्रिटिश प्रभुत्व के प्रतिरोध के लिए कटिबद्ध हो गया। उस समय थोड़े-से ही व्यक्ति इस संकट की गम्भीरता समझ सके थे। पूना में नाना फड़निस तथा दिल्ली में शिन्दे को इसका पूर्ण ज्ञान था, क्योंकि ब्रिटिश कूट-नीतिज्ञों से उनका नित्य का सम्पर्क था। अध्ययन के लिए उपलब्ध इस समय के पत्रों में उनके व्यवहार का पर्याप्त प्रतिबिम्ब है। यही मुख्य उद्देश्य शिन्दे को पूना लाया था तथा इसी उद्देश्य ने उस समय के अनेक राजनीतिज्ञों को चक्कर में डाल दिया था। विदेशी शासन की एक शताब्दी का हमको अनुभव है। इस शताब्दी ने मराठों के पश्चात होने वाली भारतीय इतिहास की प्रगति को अत्यन्त विकृत कर दिया है। आरम्भिक स्थितियों को उनकी उचित स्थिति के साथ देखने का यही उचित समय है।

अपनी जन्म-भूमि में शिन्दे के आगमन से केवल महाराष्ट्र में ही नहीं, समस्त भारत में कोलाहल-सा मच गया। थोड़े-से मित्रों ने उसका स्वागत किया, परन्तु अधिकांश व्यक्तियों को इस घटना में व्यक्तिगत अथवा राष्ट्रीय संकट के दर्शन हुए। सब में अभूतपूर्व जिज्ञासा जाग्रत हो उठी। पूना में उसके आगमन से बहुत पहले ही लोग इस विषय में विचार बनाने लगे थे कि शिन्दे के आगमन का क्या कारण हो सकता है तथा उसके सम्भावित परिणाम क्या होंगे ? उसकी शक्ति के प्रकाश में लोगों को यह स्मरण ही न रहा कि वह १२ वर्ष की लम्बी अनुपस्थिति के बाद अपने घर वापस आ रहा है। एक समय तो समस्त मराठा सरदारों को वर्ष में एक बार राजधानी में अपने स्वामी के दर्शन करना आवश्यक था। परन्तु उसकी १२ वर्ष की अनुपस्थिति तथा बीच में घटित होने वाली महत्त्वपूर्ण घटनाओं के कारण समस्त भूतकालीन संस्मरण नष्ट हो गये थे और स्वयं शिन्दे पूना तथा पेशवा के दरबार में अपरिचित व्यक्ति हो गया था। पूना, जहाँ उसके नवयुवक स्वामी का पालन हो रहा था और उसके देशवासियों की नयी पीढ़ी की उत्पत्ति हो रही थी। अधिकांश मनुष्यों को विश्वास था कि शिन्दे ने अपने लिए उत्तर में स्वतन्त्र राज्य का निर्माण कर लिया है तथा दक्षिण के साथ सम्बन्ध रखने का उसके

पास कोई कारण नहीं है। मान्यता यह थी कि उसने विशाल धनराशि का संग्रह कर लिया है तथा फ्रेंच-प्रशिक्षण प्राप्त अपने दलों के कारण वह अजेय हो गया है। इन दलों द्वारा सम्राट पर नियन्त्रण प्राप्त करने में समर्थ महादजी क्या उसी प्रकार पेशवा को परास्त नहीं कर सकता था ? जब १२ जून के तप्त वातावरण में शिन्दे राजधानी के समीप पहुँचा तो पूना के लोगों में इसी प्रकार की अनियन्त्रित तथा भ्रान्त धारणाएँ व्याप्त थीं। वहाँ उसकी स्थिति लकड़-बग्घों के बीच में सिंह के समान थी और सभी को उसका सामना करना था।

स्वयं महादजी को यह देखकर बहुत आश्चर्य हुआ कि उस घटना के सम्बन्ध में असाधारण हलचल हो रही है, जिसे वह साधारण परम्परागत बात समझता था। सामान्य भय को शान्त करने का अधिक से अधिक प्रयत्न करते हुए उसने धीरे-धीरे और सावधानी से पदार्पण किया। इन अनिष्ट सन्देहों के निराकरण के लिए उसने अपने साथ आने वाले कुछ दल बुरहानपुर से वापस भेज दिये। विश्वस्त सचिव बालाराव गोविन्द बहुत दिनों से दक्षिण के सम्पूर्ण समाचार उसके पास भेजने के लिए नियुक्त था। वह आगे बढ़कर फरवरी के आरम्भ में गोदावरी पर टोका में महादजी से मिला तथा राजधानी के राज-नीतिक क्षेत्रों को आन्दोलित करने वाले त्रास तथा अभिन्न भावनाओं से उसे सूचित किया। इस पर महादजी ने बुद्धिमत्तापूर्वक अपना मार्ग बदल दिया। वह अपने मुस्लिम गुरु के दर्शन करने तथा आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए टोका से बीड़ चला गया। बीड़ से अपने इष्टदेव की पूजा के लिए वह तुलजा-पुर पहुँचा। यहाँ पर उसने अपने पुत्र तथा उत्तराधिकारी के जन्म लेने की आशा से दूसरा विवाह किया। इसके बाद वह अपने पूर्वजों के निवास-स्थान जामगाँव में रहने लगा। इस प्रकार पूना के वातावरण से दूर रहकर उसने चार लम्बे मास व्यतीत कर दिये। इस बीच वह सब प्रकार की सम्मति तथा भावनाओं के लोगों से मिलकर बातचीत करता रहा और उनके निराधार सन्देहों को शान्त करता रहा। इस प्रकार आरम्भिक झंझावात शान्त कर दिया गया।

रामचन्द्र नामक समकालीन चारण ने खरदा के रण पर एक गीतिकाव्य लिखा, जिसके प्रत्येक पद में निम्नलिखित टेक है[1] :

---

[1] हिन्दुस्तान गुजरात सोडुन सिंदा दक्खनेत आला ॥
हुकूम केला बादशहा ने त्याला।

शाहआलम अवसरवादी था। एक ओर तो उसने शिन्दे को अपना समर्थन दिया, और दूसरी ओर दिल्ली में ब्रिटिश दूतों के साथ षड्यन्त्र किया। देखो—पूना रेजीडेन्सी करस्पौण्डेन्स, जिल्द १, पृ० २७६, तथा जिल्द २, पृ० १२८-१३२

"शिन्दे ने हिन्दुस्तान तथा गुजरात को छोड़ दिया है। अब वह सम्राट की प्रेरणा से दक्षिण का भ्रमण कर रहा है।"

एक दृष्टिकोण से यह शायद शिन्दे के आगमन का वास्तविक उद्देश्य था। उसने निश्चय ही अपने भावी कार्य की योजना बना ली थी और वह भारत के एकमात्र स्वामी सम्राट की आज्ञा पर अपनी योजना कार्यान्वित करने अर्थात अधिक विस्तार से अंग्रेजों की रोकथाम करने दक्षिण आया था। कार्नवालिस द्वारा किया गया तिरस्कार काँटे की भाँति उसके हृदय में कसक रहा था। क्लाइव के समय से ही अंग्रेज प्रत्येक प्रकार से सम्राट का अपमान तथा उपेक्षा कर रहे थे। उसके प्रदेश छीन लिये गये, उसके लिए देय कर बन्द कर दिया गया तथा दीवानी के बदले में उसके निर्वाह के लिए स्वीकृत भत्ता रोक दिया गया। शाहआलम ने ब्रिटिश आक्रमण के विरुद्ध सिराजुद्दौला, मीरकासिम तथा मीरजाफर, शुजाउद्दौला, नजीबखाँ, चेतसिंह तथा रुहेलों और अवध की दीन बेगमों का संघर्ष देखा था। क्लाइव, ऐण्डर्सन, ब्राउन, मैलेट, कर्क पैट्रिक—इन सबने एक-दूसरे के बाद अधिकाधिक मात्रा में सम्राट को धोखा दिया था। उसको यह दुखदायक अनुभव हो गया कि उसकी शक्ति उसके हाथों से शीघ्रतापूर्वक निकली जा रही है। केवल महादजी ने उसकी रक्षा करके असह्य अपमानों से बचा लिया था। केवल वही समझता था कि ब्रिटिश लोगों की ओर से भारतीय शासकों—उदाहरणार्थ अवध के नवाब वजीर, नागपुर के भोंसले परिवार, हैदराबाद के निजामअली तथा अर्काट के नवाव मुहम्मद अली—को कितना कष्ट था। इनमें मुहम्मद अली अंग्रेजों द्वारा ही शासक बना था और इस समय कुशासन तथा भारी ऋण का कष्ट भोग रहा था।

इस समय भारतीय राजनीति का यह भयावह रूप समस्त भारत को स्पष्ट हो गया था। शिन्दे ने सम्राट के संरक्षक का कर्तव्य सँभाल लिया था और राजपूत तथा मुस्लिम विरोध को सफलतापूर्वक दमन करके अपनी क्षमता सिद्ध कर दी थी। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति उसे उद्धारकर्ता के रूप में देखने लगा। उसने सिखों तथा सिन्धु पार के अफगानों की मैत्री प्राप्त कर ली थी। निजामअली तथा टीपू सुल्तान उसकी सद्भावना के इच्छुक थे। उच्च कोटि का कूटनीतिज्ञ बाबाराव गोविन्द भारतीय स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए भारतीय शक्तियों का सर्वसम्मत संघ संगठित करने के लिए प्रयत्नशील था। इस प्रयोग की सफलता के लिए यूरोपीय प्रथानुसार प्रशिक्षित सेना की नितान्त आवश्यकता थी। शिन्दे ने एक फ्रेंच विशेषज्ञ की सहायता से यह आवश्यकता पूर्ण कर ली थी। अब दक्षिण के मराठा जागीरदारों को यह

निश्चय कराना था कि उन्हें भी अपने अस्त्र-शस्त्रों को उन्नत करने की इसी प्रकार महती आवश्यकता है। इस प्रकार महादजी सबकी दृष्टि में विदेशी आक्रमण के विरुद्ध भारतीय स्वातन्त्र्य का समर्थन करने के लिए अत्यन्त उपयुक्त स्थिति में पहुँच गया था। इस प्रकार के प्रयास के लिए केन्द्रीय मराठा शासन का समर्थन आवश्यक था। इसी उद्देश्य के लिए अल्पवयस्क पेशवा का पालन-पोषण किया जा रहा था। अतः अन्य घोषित उद्देश्यों के अतिरिक्त मराठा शक्ति को नवीन रूप देने और उसके संगठन में नवीन प्राण फूंकने के लिए शिन्दे पूना आया। ऐसा करने से दिल्ली तथा पूना की संयुक्त शक्ति प्रभावशाली सिद्ध होने की आशा थी। गीतिकार ने इसी आन्तरिक उद्देश्य को उचित रूप से प्रकट किया है।

इसके साथ-साथ महादजी अपनी इस योजना की त्रुटियों को भी भलीभाँति समझता था। उसने ब्रिटिश शस्त्रों के बल को तथा उनकी कूटनीति की शाखाओं को अच्छी तरह समझा था। लार्ड कार्नवालिस के इशारे से पूना में मैलेट तथा हैदराबाद में केन्नवे इसी नीति का संचालन कर रहे थे। अतः उसने बहुत सावधानी से प्रगति की। उसने नाना फड़निस के समक्ष अपनी परेशानियाँ रखीं और उनका समाधान प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की। अनेक ब्रिटिश रेजीडेंटों ने शिन्दे के आन्तरिक उद्देश्यों को जानने का यत्न किया। शिन्दे की योजनाओं के विषय में वे जो कुछ जान सके अथवा संग्रह कर सके, उसका समाचार प्रत्येक ने अपने ढंग से भेज दिया। साथ ही उन्होंने शिन्दे की बढ़ती हुई शक्ति को रोकने के लिए गतिविधियों के सुझाव भी दिये। शिन्दे ने अपने निम्न प्रत्यक्ष उद्देश्य घोषित किये—(१) उसने पेशवा की आज्ञा से १७७७ से उत्तर भारत में अनेक युद्धों पर बहुत-सा व्यय किया है। इस व्यय से सम्बन्धित कई करोड़ रुपये की माँग का निपटारा करना है। (२) वह यह सिद्ध करने के लिए तैयार था कि उसने दिल्ली पर अपने अधिकार के कारण न तो विशाल धनराशि का संग्रह कर लिया है और न वह इस धन को अपने स्वामी को देने के स्थान पर स्वयं खा गया है। (३) वह अलीबहादुर तथा तुकोजी होल्कर के साथ अपने चिन्ताजनक विवादों का प्रामाणिक रूप से निर्णय भी चाहता था। ये तथा अन्य बातें उसके आगमन के स्पष्ट उद्देश्यों के रूप में प्रकट की गयीं, परन्तु उसका वास्तविक उद्देश्य, जो उस समय के विशाल साहित्य से प्रकट होता है, यह था कि मराठा शक्ति को चारों ओर विद्यमान भयावह संकटों के प्रतिरोध के विचार से पुनरुज्जीवित किया जाये।

कुछ भी हो, महादजी इतना चतुर था कि उसने अपने सहकारी सामन्तों

और बाह्य शक्तियों के प्रतिनिधियों में विरोधी भावना जाग्रत नहीं होने दी। वह सावधानीपूर्वक युद्ध से दूर रहा। उसने नर्मदा तट पर पहुँचते ही रघुजी तथा निजामअली के विचारों का पता लगाने के लिए उनके पास विशेष दूत भेजे। महादजी ने स्वयं सीधे नागपुर जाने का प्रस्ताव किया, परन्तु अनेक कारणों से यह विचार छोड़ दिया। पूना तथा हैदराबाद के ब्रिटिश रेजीडेण्टों को ऐसा जान पड़ा कि कोई महत्त्वशाली राजनीतिक प्रयत्न हो रहा है, अतः प्रत्येक ने अपने ढंग से इसका प्रतिकार करने का प्रयास किया। शिन्दे की ओर से होने वाले किसी भी अपकार के विरुद्ध नाना को मैलेट से हार्दिक समर्थन प्राप्त हुआ।[२]

---

२ निम्नांकित पत्र-व्यवहार से अच्छी तरह प्रकट होता है कि नाना किस प्रकार गुप्त रूप से अंग्रेजों के हृदय में प्रवेश प्राप्त कर रहा था।

२९ जून, १७८९ को लार्ड कार्नवालिस मैलेट को लिखता है: "आप मन्त्री (नाना) को यह सूचना दे सकते हैं कि मैंने अत्यन्त तत्परता तथा हर्ष से बनारस में अपने रेजीडेंट को नाना फड़निस के दीवान का अत्यन्त शिष्टता से स्वागत करने के निर्देश दे दिये हैं। रेजीडेंट उसकी इच्छानुसार ऐसी प्रत्येक सहायता देगा, जिससे वह उस नगर में अपना भवन निर्माण करने में समर्थ हो सके। यदि नाना अपनी काशी दर्शन की इच्छा को कार्यान्वित करना चाहता है तो आप उसे आश्वासन दे सकते हैं। मराठा राज्य में अपने पद तथा प्रतिष्ठा के कारण वह जिस सावधानी तथा मान का अधिकारी है, मैं उसे प्रकट करने का अपनी ओर से पूर्ण उद्योग करूँगा। मैं उसके व्यक्तिगत चरित्र के सम्बन्ध में जो विचार तथा उच्च सम्मान भावना रखता हूँ, वह भी मुझे प्रेरित करेगी।" (पी० आर० सी०, जिल्द २, पृ० १४८)

२ अगस्त, १७८९ को कार्नवालिस अपनी निर्देशक सभा को लिखता है: "पड़ोसी शक्तियों के मन पर श्री डंकन के उचित प्रभाव रूपी अनुकूल परिणामों का विश्वस्त प्रमाण अभी-अभी प्राप्त हुआ है। इससे मैं अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ हूँ। मराठा राज्य के प्रथम मन्त्री नाना फड़निस का प्रार्थना-पत्र मेरे सामने है। वह बनारस नगर में अपने लिए एक भवन का निर्माण कराना चाहता है। साथ ही वह काशी में अपने धार्मिक कृत्यों के सम्पादनार्थ कभी-कभी निवास करने की अनुमति भी चाहता है। यह प्रार्थना-पत्र देने का निश्चय उसके गार्हस्थ दीवान महादजी बल्लाल पण्डित की रिपोर्ट पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने के पश्चात किया गया, इसलिए मुझे और भी प्रसन्नता है। इस दीवान को उसने गत वर्ष व्यक्तिगत रूप से सहस्रों यात्रियों सहित देखभाल करने भेजा था। मालूम होता है कि उसने ब्रिटिश सरकार की सौम्यता तथा नियमितता की अत्यन्त अनुकूल रिपोर्ट दी है।"

मैलेट अत्यन्त सावधान और चतुर व्यक्ति था। उसने अपने उच्च अधिकारियों को परामर्श दिया कि वे मराठों के साथ प्रतीक्षात्मक वृत्ति का कठोरता से पालन करें तथा उन दोनों शक्तिशाली सरदारों के जीवनकाल में मराठों को अप्रसन्न होने का कोई अवसर न दें। इस परामर्श की कार्नवालिस तथा उसके उत्तराधिकारी शौर दोनों ने सर्वथा पुष्टि की और हैदराबाद में नियुक्त केन्नवे के सुझाव के विरुद्ध, इसी के अनुसार कार्य किया।

महादजी की मृत्यु के एक मास पूर्व मैलेट लिखता है—"मैं आपका ध्यान इस ओर आकृष्ट करने की कृपापूर्ण अनुज्ञा चाहता हूँ कि पूना सरकार की सम्भावित स्थिति किसी शक्तिशाली व्यक्ति के प्रशासनाधीश हो जाने की है। वह व्यक्ति चाहे पेशवा हो, चाहे महादजी शिन्दे के रूप में महत्त्वाकांक्षी मन्त्री।"[3]

इस प्रकार शान्तिपूर्वक अपना मार्ग टटोलता हुआ महादजी पूना में आया। वह उत्सुकतापूर्वक यह पता लगाने का प्रयत्न करता रहा कि अल्पवयस्क पेशवा का विकास किस प्रकार के शासक के रूप में हो रहा है। वह उसमें वीरभाव तथा बाह्य जगत का ज्ञान जाग्रत कर सकता है या नहीं, क्योंकि वह पूना के सीमित तथा संकीर्ण राजभवन में आजीवन बन्द रहा था। वह रणप्रिय उद्योगों की अपेक्षा बच्चों के खेलों तथा पालतू जानवरों से अपना मन बहलाता रहा था, कायर राजनीतिज्ञ उसको सदैव घेरे रहते थे और खुली वायु में भ्रमण करने की आज्ञा नहीं देते थे। वर्षों से महादजी अपने घर से दूर उत्तरी भारत में अभियान कर रहा था। उसने पूना के मन्त्री से बारम्बार प्रार्थना की थी कि उसको वहाँ के निष्फल कार्य से मुक्त कर दिया जाये। नाना ने महादजी की प्रार्थना को कभी स्वीकार नहीं किया तथा कहता रहा

---

२३ अक्तूबर, १७८९ को मैलेट ने कार्नवालिस को इस प्रकार लिखा : "बहिरो पन्त कहता है कि मन्त्री की इच्छा भविष्य में पेशवा के वयस्क हो जाने और उसको अभिभावक की रक्षा की कोई आवश्यकता न रह जाने पर बनारस जाने की है। बहिरो पन्त ने मुझसे यह भी पूछा कि क्या आपको पूना दरबार के लिए यह वचन देने पर राजी किया जा सकता है कि कभी-कभी सहायतार्थ अपनी सेना के एक दल को यहाँ (पूना) भेज सकें। इस राज्य का वर्तमान गृह-प्रबन्ध अस्थिर है। मेरा विचार है कि जो लाभ आप अपनी सरकार के हितों और गौरव के लिए सुसंगत समझें वह पूना सरकार से उठा सकते हैं। हिन्दुस्तान के इन सरदारों के बीच स्थायी कलह की सम्भावना से मुझे कोई दुःख नहीं है।"

3 पूना रेजीडेन्सी करस्पौण्डेन्स, जिल्द २, नं० २०४, पृ० ३११

कि उसका स्थान लेने के लिए कोई योग्य व्यक्ति प्राप्य नहीं है। इस प्रकार महादजी अपनी मातृभूमि के दर्शनों से वंचित रखा गया। उसने कई बार स्पष्ट रूप से पूछा भी कि किस अपराध के कारण उसको इतने वर्षों से अपने स्वामी के दर्शन करने का अवसर नहीं दिया गया। जब वह दक्षिण से दूर रहता था तो उस पर यह लांछन लगाया गया कि उसकी इच्छा अपने लिये स्वतन्त्र राज्य के निर्माण की है और जब वह पूना आया तो उस पर यह दोष लगाया गया कि वह मराठा सरकार के अपहरण का प्रयास कर रहा है। वह इस दोनों ओर के फन्दे से किस प्रकार मुक्त हो? होल्कर तथा अलीबहादुर के साथ होने वाले विवाद में उसका धैर्य टूट गया था। क्या वह स्वयं वार्तालाप करके इन विषयों को स्पष्ट नहीं कर सकता? क्या वह केन्द्रीय शासन का संगठन इस प्रकार नहीं कर सकता कि समस्त व्यक्तियों से विश्वस्त समर्थन प्राप्त कर सके? क्या वह सैनिक अवस्था को नवीन रूप नहीं दे सकता और विशेष रूप से क्या वह ऐसे उपाय नहीं कर सकता कि राज्य के प्रति शीघ्र बढ़ते हुए संकटों का निराकरण हो जाये? इस न्यायोचित कार्य को केवल महादजी ही पूरा कर सकता था। १२ जून, १७९२ से अपने मृत्यु दिवस १२ फरवरी, १७९४ तक महादजी ने २० मास पूना में व्यतीत किये किन्तु वह कोई ठोस सफलता प्राप्त नहीं कर सका और उसकी उच्च आकांक्षाएँ मुरझा गयीं।

पूना में अपने आगमन के समय उसको वास्तव में धक्का लगा। उसको मालूम हुआ कि उसका अपना सहकारी तथा प्रतिज्ञाबद्ध बन्धु नाना फड़निस उसके आगमन पर अत्यन्त भयभीत हो गया है और उसने कार्नवालिस से बम्बई की सेनाएँ पट्टे पर देने की प्रार्थना की है। ये सेनाएँ उस समय मैसूर से अपने शिविर को वापस हो रही थीं। इससे प्रकट था कि नाना फड़निस की इच्छा उस व्यक्ति (शिन्दे) के दमन के लिए गृहयुद्ध आरम्भ कराने की थी. जो महान संकट काल में राज्य की रक्षा कर सकता था। पूना सरकार द्वारा अपनी सत्ता बनाये रखने के लिए विदेशी सेनाएँ बुलाने की दुखद प्रवृत्ति पर महादजी को अत्यन्त क्रोध हुआ। उसके प्रतिकार का उसने यथाशक्ति प्रयास भी किया। पी० ई० राबर्ट्स कहता है—"शिन्दे ने पेशवा से अनुनय की कि गत युद्ध में टीपू के विरुद्ध ब्रिटिश सत्ता का समर्थन करने के रूप में महान भूल हो गयी है। उसने टीपू के साथ भविष्य में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने की प्रार्थना की।"[४]

डफ लिखता है—"जब शिन्दे पूना की ओर बढ़ा तो उसके विषय में अनेक प्रकार की कल्पनाएँ की जाने लगीं। कुछ लोगों का अनुमान अंग्रेजों की बढ़ती

---

४ राबर्ट्स कृत 'ब्रिटिश भारत का इतिहास' पृष्ठ २४०

हुई शक्ति तथा पूना और हैदराबाद में उनके प्रभाव के प्रति ईर्ष्याग्रस्त होकर महादजी का विचार ब्रिटिश प्रभुत्व को रोकने के लिए पूना पर अधिकार स्थापित करने का हुआ। दूसरों की मान्यता थी कि उसकी निगाह निजाम-अली के प्रदेश पर है और कुछ लोगों को विश्वास था कि उसका एकमात्र उद्देश्य उत्तर भारत में अपने नवविजित प्रदेशों में होल्कर का हस्तक्षेप रोक देना है।"

कीन जब निम्नलिखित बात कहता है तो विचित्र रूप से पूर्वोद्धृत गीतिकार की कल्पनाओं को प्रमाणित करता है कि शिन्दे सम्राट की आज्ञा से पूना आया—"जुलाई, १७९२ में शिन्दे ने कहा कि बंगाल के ब्रिटिश शासकों से कर एकत्र करने के लिए उसको दिल्ली दरबार से आज्ञा मिली है। यह समझना कठिन है कि कार्नवालिस की धैर्य-परीक्षा के लिए नवीन प्रयोग क्यों किया गया। २ अगस्त के राजपत्र में कार्नवालिस ने इस विषय का अत्यन्त गम्भीरता से निरूपण किया है।"[५]

मैलेसन कहता है—"दि बायने द्वारा संगठित तथा अनुशासित सेनाओं ने शिन्दे के समस्त मुसलमान तथा हिन्दू विरोधियों का अन्त कर दिया था। उन सेनाओं से शिन्दे को इस समय भी बड़ी आशाएँ थीं। अंग्रेजों के विरुद्ध भारत की समस्त देशी शक्तियों को संयुक्त करना महादजी के जीवन का महान स्वप्न था। इस विषय में वह सर्वाधिक दूरदर्शी राजनीतिज्ञ था। ऐसा व्यक्ति भारत में कभी नहीं जन्मा। इस महान संकल्प को एकमात्र महादजी कार्यान्वित कर सकता था। यदि महादजी की मृत्यु न हो जाती तो यह संकल्प पूर्ण होकर रहता। महादजी के उत्तराधिकारी दौलतराव का भी कुछ समय तक यही स्वप्न रहा।" मराठों के स्वप्न कभी साकार नहीं हुए, पर इतिहास उस महान प्रयोग को कभी विस्मरण नहीं कर सकता, जो महादजी शिन्दे ने मराठा राज्य को स्वाधीन बनाये रखने के निमित्त किया।

पूना के राजनीतिज्ञ दुराग्रहवश परिस्थिति से अपरिचित रहे। ब्रिटिश उद्देश्यों के विषय में उनकी कोई वैसी स्पष्ट धारणा नहीं थी, जैसी कि उनके साथ व्यवहार के कारण महादजी की बन गयी थी। शिन्दे की योजना थी कि अल्पवयस्क पेशवा को उसके अधिकार दे दिये जायें जिससे वह मराठा सरकार का भार सँभालने योग्य हो सके। पेशवा द्वारा शक्तिशाली केन्द्रीय शासन का निर्माण किया जाये जो समस्त जनता से बलपूर्वक निश्चित आज्ञापालन प्राप्त कर सके। परन्तु नाना फड़निस अपने व्यक्तिगत अनियन्त्रित शासन से चिपटा

---

५ पूर्व-उद्धृत, देखो, पी० आर० सी०, जिल्द २, नं० १४१—कार्नवालिस का पत्र।

रहा। ईर्ष्यालु नाना शिन्दे से घृणा करता था तथा महादजी की छाया से बचने के लिए सर्वाधिक चिन्तित था। परिणाम यह हुआ कि शिन्दे मराठा राज्य के संगठन में इच्छा तथा सहानुभूतिपूर्वक समर्थन प्राप्त करने में असफल रहा। इस प्रकार की मूर्खता के कारण मराठा राज्य के पुनरुज्जीवन का अन्तिम अवसर हाथ से जाता रहा। इस समय नागपुर तथा हैदराबाद के दरबार पूना में महादजी की प्रवृत्तियों से समान रूप में आन्दोलित हो उठे। परिस्थिति को सँभालने तथा ब्रिटिश सत्ता का वीरतापूर्वक प्रतिकार करने में महादजी अपने को समर्थ मानता था। उसे केवल उपयुक्त अवसर की अभिलाषा थी। ब्रिटिश लोगों को मराठा शक्ति से भयभीत रखने के लिए महादजी की उपस्थिति मात्र ही पर्याप्त थी। मैलेट ने अपने उच्च अधिकारियों को बारम्बार अपनी निष्कपट सम्मति तथा चेतावनी भेजी कि मराठों के विरुद्ध युद्ध का संकट मोल न लिया जाय।[६]

महादजी शिन्दे को बीड़ के जिले पर अधिकार प्राप्त करने की चिन्ता थी। वहाँ उसका आध्यात्मिक पथप्रदर्शक मुसलमान सन्त मंसूरशाह निवास करता था। यह जिला निजामअली के अधिकार में था। महादजी को इस सन्त से प्राप्त होने वाले आशीर्वाद में पूर्ण आस्था थी। महादजी ने उसे ग्वालियर में निवास करने का निमन्त्रण दिया, परन्तु सन्त ने यह प्रस्ताव स्वीकार करने से इनकार कर दिया और बीड़ को छोड़ने पर तैयार नहीं हुआ। अतः महादजी ने प्रयास किया कि सन्त को स्थायी रूप से बीड़ का जिला दान कर दिया जाय। परन्तु निजामअली की इच्छा इस प्रदेश को छोड़ने की नहीं थी, क्योंकि पूना तथा अहमदनगर के मराठा स्थान उसकी मार के अन्दर थे। यह समस्या हल करने के लिए शिन्दे ने सम्राट से निजाम के नाम स्पष्ट आज्ञा प्राप्त कर ली कि वह अपेक्षित स्थान दे दे या बदला कर ले। यह कार्य करने के लिए शिन्दे गोदावरी से बीड़ गया, परन्तु उस स्थान पर एकाधिकार प्राप्त करने के उद्देश्य से सफल न हो सका।

२. २२ जून, १७९२ का दरबार—पूर्व अन्वेषण में चार मास व्यतीत करने के बाद जून के आरम्भ में शिन्दे पूना के समीप पहुँच गया। उसने पहले ही आज्ञा दे दी थी कि वनवाड़ी में, जिसके समीप ही ब्रिटिश रेजीडेण्ट की सैनिक छावनी थी, उसके लिए निवास-स्थान तैयार कर लिया जाये। १३ जून सायंकाल को स्वयं पेशवा शिन्दे के स्वागतार्थ गया और वे गणेश खिण्ड के समीप परस्पर स्नेह व्यक्त करते हुए मिले। अल्पवयस्क पेशवा इसके पहले व्यावहारिक रूप में महादजी से कभी नहीं मिला था। यह सत्य है कि तले-

---

६ पूना रेजीडेन्सी करस्पौण्डेन्स, भूमिका, जिल्द २, पृष्ठ २२-२४

गाँव में ब्रिटिश आत्मसमर्पण के अवसर पर उसने इस सेनापति को सर्वप्रथम देखा था, परन्तु उस समय वह ५ वर्ष का शिशु था और शायद ही कोई चीज समझ सकता हो। उसने तुकोजी होल्कर, अलीबहादुर तथा अन्य सरदारों को देखा था, परन्तु वह महादजी के विषय में उन मौखिक विवरणों के ही आधार पर जानता था जो उसे प्राप्त हुए थे। इस सम्मेलन के अवसर पर पेशवा पूरे १८ वर्ष का हो चुका था और उसने अपनी शक्ति तथा व्यक्तित्व का प्रदर्शन आरम्भ कर दिया था। यह बात सितम्बर, १७९१ में घासीराम के दुराचारी पुलिस प्रशासन के विरुद्ध दी गयी जाँच-पड़ताल की आज्ञा से स्पष्ट है। महादजी उत्तर से पेशवा को उपहार तथा अद्भुत वस्तुएँ भेजता रहता था—जैसे शक्तिशाली गेंड़ों की जोड़ी, वन्य पशु तथा दुष्प्राप्य पक्षी। महादजी को ज्ञात था कि अल्पवयस्क शिशु को इनसे प्रेम है। किशोर पेशवा स्फूर्तिमान तथा ग्रहणशील था, अतः महादजी ने राजधानी में आकर शीघ्र ही उसकी घनिष्ठता तथा विश्वास प्राप्त कर लिया। एक लेख से प्रकट होता है कि पेशवा ने राजभवन के अन्दर एक पृथक कार्यालय स्थापित कर लिया था और ११ मई से व्यवहार निरीक्षण, आज्ञाएँ लिखने तथा बहियों पर हस्ताक्षर करने का कार्य नियमित रूप में आरम्भ कर दिया था—अर्थात शिन्दे के आगमन के एक मास पूर्व वह ये कार्य करने लगा था। महादजी पन्त गुरुजी ने पेशवा को कार्यालय के काम में दीक्षा दी थी। निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि यह पद्धति महादजी के आगमन के कारण लागू की गयी थी या स्वयं पेशवा की इच्छा से।

१३ जून को पूना के राजभवन में शिन्दे प्रथम बार विधिपूर्वक पेशवा से मिला। शिन्दे ने अत्यन्त नम्रता तथा सम्मान से अपना मस्तक पेशवा के चरणों पर रख दिया। सेवक की ओर से स्वामी के प्रति ऐसा ही व्यवहार उचित था। पेशवा ने इस अवसर पर अपनी मुक्तामाला उतारकर शिन्दे के गले में पहना दी। १४ को शिन्दे पुनः पेशवा के राजभवन में आया और उसने सम्राट द्वारा प्रेषित उपाधियों तथा वस्त्रों को विधिपूर्वक स्वीकार करने की प्रार्थना की। ये वस्त्र शिन्दे अपने साथ लाया था। इस बीच में महादजी ने नाना फड़निस से भेंट की। उसने भी उचित समय पर इस अभिनन्दन का उत्तर दिया। उन्होंने शाही चिह्नों के स्वीकारार्थ होने वाले भव्य दरबार के कार्यक्रम पर स्वतन्त्रतापूर्वक वार्तालाप तथा विचार-विनिमय किया। इस विषय पर आरम्भ से ही नाना के अपने विचार थे तथा इस कार्य के प्रति अपनी आपत्ति उसने कभी गुप्त नहीं रखी। एक तो सम्राट द्वारा प्रेषित उपहार सात वर्षों से उज्जैन में पड़े हुए थे। दूसरे लिखित फर्मान में पेशवा के

लिए 'महाराजाधिराज' तथा शिन्दे के लिए महाराज की उपाधियाँ थीं। इस विषय में नाना ने आपत्ति की कि उनका प्रयोग केवल छत्रपति के लिए हो सकता था। परन्तु इस विषय में महादजी का दृष्टिकोण स्वीकार किया गया। महादजी ने यह प्रश्न सतारा के छत्रपति को भेज दिया जो शायद इस प्रश्न की जटिलताओं का निश्चय करने में असमर्थ था। ये जटिलताएँ वास्तव में वाक्छल थीं और सम्राट, छत्रपति तथा पेशवा किसी के पास भी इस समय वह शक्ति नहीं रह गयी थी जो किसी समय उनके पूर्वजों के पास थी। शिन्दे की शक्ति इस समय असंदिग्ध थी। जब महादजी ने विषय को सतारा के छत्रपति के पास भेजकर उसकी आवश्यक अनुमति प्राप्त कर ली तो नाना की आपत्ति का खण्डन हो गया। गारपीर में (पूना के जिलाधीश के वर्तमान कार्यालय के पास) विविध रूप से सुसज्जित एक भव्य शामियाना लगाया गया, इसी के नीचे दरबार हुआ। इसका वर्णन निम्न प्रकार किया गया है :

२१ जून, १७९२ को शिन्दे पेशवा को दरबार में मुजरा करने गया। वह अपने साथ उपहार में उत्तर भारत के नाना प्रकार के बहुमूल्य अद्भुत पदार्थ तथा उत्पादित वस्तुएँ लाया था। इस देश का शर्वशक्ति-सम्पन्न वास्तविक शासक, कूटनीति तथा युद्ध में अपने समस्त विरोधियों का विजेता, विशाल प्रान्तों तथा अजेय सेनाओं का स्वामी, महादजी राजद्वार पर पैदल पहुँचा। उसने अपना हाथी तथा अपने सामन्तों का अंगरक्षक दल यूरोपीय अधिकारियों के अधीन अपने शिविर की सीमा पर छोड़ दिया था। शामियानों में प्रवेश करने पर वह समस्त उपस्थित अधिकारियों से नीचे बैठ गया। जब पेशवा प्रकट हुआ तो शिन्दे ने समस्त जनता के साथ उसको प्रणाम किया। बैठ जाने की आज्ञा स्वीकार न करके उसने एक पोटली निकाली, जिसमें उसने नयी जूतियों का एक जोड़ा लपेट रखा था। उसने मन्द स्वर से कहा—"यह मेरे पिता का कार्य था, और मेरा कार्य भी अवश्य होना चाहिए।" फिर कपड़े में लपेटकर लायी गयी नयी जूतियाँ पेशवा के सम्मुख रख दीं और उसकी पहनी हुई जूतियाँ उतारकर उस कपड़े में लपेट लीं। महादजी ने इसके बाद ही बार-बार दी गयी बैठ जाने की आज्ञा स्वीकार की। पेशवा की पुरानी जूतियों को वह अभी तक अपनी बगल में दबाये हुए था।

"आगामी दिवस २२ जून को उसी स्थान पर दूसरा तथा अधिक शालीन दरबार हुआ। इसका कार्यक्रम तथा प्रबन्ध महादजी ने स्वयं पहले ही बना रखा था। चोबदारों के बारम्बार आह्वान तथा निमन्त्रण पर पूना के अधिकांश सज्जन उपस्थित थे।"

ब्रिटिश रेजीडेण्ट मैलेट ने इस कार्य का विवरण इस प्रकार भेजा :

"करीब बारह बजे दोपहर को शिन्दे फरमान-बाड़ी पहुँचा। उसने अपनी पैदल सेना को पड़ोस में उत्तम स्थान पर नियुक्त करने और पेशवा के लिए अभीष्ट फरमानों, वस्त्रों तथा पदार्थों को खाली मसनद पर रखने के बाद, जो राजा की गद्दी मानी जाती थी, घोषणा की कि एक हाथी पर पेशवा का आगमन हो रहा है। शिन्दे उसके स्वागतार्थ आगे बढ़ा तथा शामियाने की दरियों के छोर पर उसने पेशवा का स्वागत किया। जब पेशवा सलामगाह में पहुँच गया तो उसने झुककर तीन बार मसनद को प्रणाम किया और आगे बढ़कर १०१ मोहरें उस पर नजर के रूप में रख दीं। उसने पुनः प्रणाम किया और मसनद की बायीं ओर बैठ गया।

"दरबार आरम्भ होने पर शिन्दे के मुंशी ने सम्राट का पत्र पेशवा के हाथों में रख दिया। यह पत्र सादर अपने मस्तक तक उठाने के बाद पेशवा ने अपने मुंशी को दे दिया। मुंशी ने पत्र में लिखी बातें स्पष्ट कीं। उसने एक या दो और पत्र भी पढ़कर सुनाये। उनमें से एक में समस्त तैमूर साम्राज्य में गोवध निषेध की आज्ञा थी।[७] तत्पश्चात निम्नलिखित वस्तुएँ भेंट की गयीं—अनेक वस्त्र तथा आभूषण, तलवार, घोड़ा, नालकी,[८] पालकी, दो मुरछल, तथा फरमानों के तीन डिब्बे। तब शाही वस्त्र धारण करने के लिए पेशवा समीपस्थ डेरे में गया और वापस होने पर खाली मसनद को पुनः प्रणाम करने के बाद वह इसकी दाहिनी ओर बैठ गया। बाद में महादजी तथा उसके सरदारों ने अपनी नजरें पेश कीं।

"इसके शीघ्र पश्चात पेशवा उठ खड़ा हुआ, महादजी तथा हरिपन्त हाथों में नव-उपहृत मुरछल लेकर उसके पीछे हो लिये। वह नालकी के पास गया और उसमें बैठकर सूर्यास्त के एक घण्टे बाद जिस दिशा मे आया था उसी ओर अपने राजभवन को वापस चला गया। शिन्दे उसके साथ था।

"पेशवा के राजभवन में प्रवेश करने के बाद नाना फड़निस तथा राज्य के अन्य सैनिक एवं असैनिक अधिकारियों ने अपनी नजरें भेंट कीं। कुछ असन्तुष्ट मराठाओं ने अपनी पूर्व घोषणा के अनुसार ऐसा नहीं किया।

'अब महादजी को वकील-ए-मुतलक की नौबत का अधिकार दिया गया और पेशवा ने भेंट में उसको स्वयं धारण करने की एक सम्पूर्ण वेशभूषा दी। साथ ही एक तलवार, एक छोटी ढाल, घोड़ा, हाथी, मुद्रा तथा कमलदल दिया और नौबत, नालकी एवं एक जोड़ा मुरछल भी प्रदान किये।" इस घटना की

---

७ लेखक कृत 'मुसलमान रियासत', जिल्द २ के पृष्ठ ४३१ पर प्रकाशित।

८ पर्दे सहित हौदा, जिसको दो दण्डों पर कहार उठाते हैं। यह उस समय की एक सम्माननीय सवारी थी।

घोषणा तोपें चलाकर की गयी। दरबार के बाद शिन्दे अपने डेरे में वापस आ गया। ऐसा मालूम होता है कि नाना फड़निस तथा उसके पक्षपातियों ने इन दरबारों में स्वतन्त्रतापूर्वक भाग लिया।[९]

ये दरबार पेशवा के साथ शिन्दे के संसर्ग का आरम्भ-मात्र सिद्ध हुए। यह संसर्ग निरन्तर बढ़ता ही गया। नालकी विचित्र सवारी थी जो इस समय पूना में सर्वप्रथम लायी गयी थी। जब पेशवा शिन्दे के साथ पार्वती मन्दिर के दर्शन करने गया तो उसने महादजी की प्रार्थना पर नालकी का एक बार पुनः उपयोग किया। इसके बाद पेशवा ने उस सवारी का कभी उपयोग नहीं किया। वर्ष में एक बार दशहरा के दिन उसका प्रदर्शन किया जाता था। पेशवा और शिन्दे मिलते रहे और स्वतन्त्रतापूर्वक प्रायः वार्तालाप करते रहे। एक-दूसरे के यहाँ उनके आगमन तथा भोज होते थे। वे साथ-साथ शिकार खेलने और चिड़िया मारने जाते थे। ९ अगस्त, १७९२ को महादजी ने पेशवा को अपने डेरे में भोज दिया तथा दो वर्ष कृष्णजन्माष्टमी के उत्सवों में (१२ अगस्त, १७९२ तथा ३० अगस्त, १७९३) निमन्त्रण पर पेशवा ने शिन्दे के शिविर में दर्शन दिये। पेशवा ने उस अवसर के गायन तथा प्रार्थनाओं में भी भाग लिया।

३. **पूना मन्त्रिमण्डल से शिन्दे का विरोध**—इस प्रकार हम अनुमान कर सकते हैं कि महादजी को पूना आने पर अनेक अवसर प्राप्त हुए, जब वह पेशवा के सामने मराठा राज्य के कार्यों तथा आवश्यकताओं की व्याख्या कर सकता था। शिन्दे यह भी स्पष्ट कर सकता था कि मराठा राज्य के उत्तरदायी स्वामी के रूप में उसका क्या कर्तव्य है। पेशवा के सरल तथा कोमल हृदय पर पड़ने वाले महादजी के इस प्रभाव को शीघ्र ही नाना और उसके दल ने देख लिया। यह बात उनके लिए इतनी चिन्ता तथा ईर्ष्या का विषय हो गयी कि भावी राजनीति में स्पष्ट संघर्ष से बचने के लिए नाना ने सार्वजनिक जीवन से अवकाश ग्रहण करके काशीवास करने का प्रस्ताव किया। काशी में वह अपना जीवन पूजा तथा प्रार्थना में व्यतीत करना चाहता था।[१०] इस घटना का कुछ अधिक स्पष्टीकरण आवश्यक है। पूना में महादजी के निवास-

---

९ पूना रेजीडेन्सी करस्पोण्डेन्स, जिल्द २, पृ० १४०। पारसनिस के मराठी इतिहास संग्रह में, ऐति० टिप्प०, जिल्द १, पृ० ९ में, उसके द्वारा प्रकाशित 'बैजाबाई की जीवनी', पृ० ११ में तथा खारे नं० ३४८२ आदि में अधिक विवरण प्राप्त हो सकते हैं।

१० देखो पूर्व पृष्ठ १८९—बनारस में निवास-स्थान के लिए गवर्नर-जनरल से उसकी प्रार्थना।

काल के प्रथम दो मास प्राय: व्यावहारिक कार्यों तथा प्रदर्शनों में व्यतीत हुए। इन्हीं सबका अप्रत्यक्ष परिणाम हुआ कि पेशवा तथा पूना की जनता को महादजी के व्यक्तित्व के उद्देश्य तथा कर्तव्य के विषय में स्पष्ट अनुमान हो गया था। लोगों ने समझ लिया कि महादजी भविष्य में क्या करना चाहता है। इस आरम्भिक अवस्था में स्वभावत: शिन्दे तथा पूना के सभ्य वर्ग के छोटे-बड़े लोगों के बीच अनेकानेक साक्षात्कार, भोज तथा गोष्ठियाँ हुईं। किन्तु शीघ्र ही बाद में गम्भीर कार्य भी हुआ। इस प्रकार आरम्भ होने वाले विचार-विनिमय से नाना और शिन्दे के बीच में विचारों तथा नीति का विस्तृत भेद प्रकट हो गया और प्राय: कटु वादविवाद होने लगे। क्या प्रश्न पूछे गये तथा क्या उत्तर दिये गये—इन दैनिक विवरणों की कोई लिखित रिपोर्ट उपलब्ध नहीं है। पटवर्धनों तथा अन्य क्लर्कों की रिपोर्टों में मिलने वाले विवरण इन विवादों की यथार्थ प्रकृति के निर्णय करने में हमारे मार्ग-दर्शक हो सकते हैं।

उदाहरणार्थ अक्तूबर, १७९२ की एक रिपोर्ट प्रस्तुत है—"शिन्दे द्वारा प्रस्तुत बहीखातों की परीक्षा के लिए परशुराम भाऊ, हरिपन्त तथा नाना की नित्य बैठक हुई। वह पेशवा से व्यय के निमित्त सात करोड़ रुपये माँगता है और अपनी माँग पर दृढ़ है। वह पूना से जाने की बात ही नहीं करता। उसकी माँग है कि नाना का चचेरा भाई मोरोबा मुक्त कर दिया जाये जो १७७८ से कारागार में सड़ रहा है। शिन्दे के विरोध तथा स्पष्टीकरण विषयक माँगों से नाना बहुत क्रुद्ध हो गया है और उसने बनारस जाने का प्रस्ताव किया है। इस कार्य के लिए उसने पेशवा की आज्ञा भी प्राप्त कर ली है। परशुराम भाऊ का कहना है कि यदि नाना पूना छोड़ देगा तो वह उसके पहले ही चल देगा। शिन्दे तथा हरिपन्त से मित्रता हो गयी है तथा हरिपन्त नाना के अवकाश ग्रहण के बाद प्रशासन का संचालन करने के लिए सहमत हो गया है। शिन्दे प्राय: इस प्रकार की उद्धत वृत्ति धारण कर लेता है कि पूना दल के लोग अपनी सुरक्षा के विषय में भयभीत हो उठते हैं। वे लोग संकटकालीन स्थिति का सामना करने के लिए अपने सैनिक एकत्र कर रहे हैं।"

शिन्दे के शिविर में लिखा गया १० फरवरी, १७९३ का एक पत्र पूना के तनावपूर्ण वातावरण तथा अन्धकारमय स्थिति का इन मार्मिक शब्दों में वर्णन करता है: "एक समय था, जब अनुकरणीय आदर्श के रूप में मराठा शासन का उदाहरण दिया जाता था। अब समस्त दिशाओं में घोर अन्धकार फैला हुआ है। न्याय तथा पूछताछ का अभाव है। प्रत्येक व्यक्ति हृदय से दुखित है। न्याय प्राप्त करने के स्थान पर दुष्ट मन्त्रिमण्डल से सहमत न होने के

लिए प्रत्येक व्यक्ति पर अत्याचार किया जाता है। शिकायत सुनने के लिए कोई तैयार नहीं है। हमारे महाराजा (शिन्दे) को अन्याय दूर करने के लिए अनेक प्रार्थनाएँ प्राप्त होती हैं, परन्तु वह उनकी ओर ध्यान नहीं दे पाता है। उसके ध्यान देने के लिए अन्य महत्त्वशाली विषय हैं। हम उसके प्रयासों का परिणाम देखने के लिए प्रतीक्षा कर रहे हैं। उसके तथा पूना के मन्त्रिमण्डल के बीच स्पष्ट दुर्भावना विद्यमान है। न्याय तथा अन्याय के बीच विवेक करने की किसी को चिन्ता नहीं है। दक्षिण के लोग दृढ़तापूर्वक महाराजा के साथ हैं तथा इस संघर्ष में उसके शुभेच्छु हैं। उनको आशा है कि उसके इस प्रदेश में आने से कुछ सुधार तथा उन्नति अवश्य होगी। कह नहीं सकते हैं कि ईश्वर की इच्छा क्या है। आने वाला समय दुर्भाग्यपूर्ण तथा कष्टजनक मालूम होता है। यहाँ का अधिकारी वर्ग पटेल (शिन्दे) की प्रभुता से प्रसन्न नहीं है। उसके प्रति स्वयं पेशवा की कृपापूर्ण भावनाएँ, जनसाधारण का आशीर्वाद तथा पटेल का अपना चरित्र उसको जीवित रखे हुए हैं। वह शासन के पुन: संगठन में सफल होगा, इसकी सब भाँति आशा है। यदि वह अपनी योजनाओं को कार्यान्वित करने में सफल हो गया, तभी केवल राज्य की रक्षा हो सकेगी, अन्यथा भविष्य अन्धकारमय है। ईश्वर की इच्छा पूर्ण होगी। वर्तमान घटनाओं पर स्वतन्त्रतापूर्वक लिखना विपत्तिजनक है। अन्ततोगत्वा हम सब ईश्वर के हाथों के कठपुतले भर हैं।"

जब राजस्थान में शिन्दे तथा होल्कर के बीच भयानक संघर्ष चल रहा था, ठीक उसी समय मराठा शासन में फूट की सम्भावनाएँ प्रकट हुईं। बुद्धिमान पेशवा यथाशक्ति प्रयत्न करता रहा कि विरोधी दलों में समझौता होकर शान्ति बनी रहे। इसी उद्देश्य से वह एक ओर शिन्दे तथा दूसरी ओर नाना, तात्या और परशुराम भाऊ के बीच सतत विचार-विनिमय का प्रबन्ध करता था। एक संवाददाता कहता है—"जनवरी (१७९३) के आरम्भ में शिन्दे ने एक दुष्ट योजना प्रकट की है। निजामअली से उसको ३२ लाख रुपये प्राप्त हुए हैं। निजामअली सहमत हो गया है कि बीदर की चौथ के बदले में वह बीड़ का नगर महादजी को दे देगा।" शिन्दे तथा निजामअली के बीच गम्भीर योजना बन रही थी। स्पष्ट रूप से पूना को भर्त्सना देता हुआ निजामअली शक्तिशाली सेनाएँ लेकर बीदर पहुँच गया। पूना में अपने आगमन का बहाना निकाल लेना कठिन न था। ३१ जनवरी को पेशवा की पत्नी का देहान्त हो गया तथा ३ मार्च को उसका दूसरा विवाह होने को था। इस विवाहोत्सव में सम्मिलित होने के लिए समस्त राजाओं को पहले से ही निमन्त्रण भेजे जा चुके थे। निजामअली भी इन निमन्त्रितों में था। उत्तर में

निजामअली ने यह लिखा कि वह १७८३ में पेशवा के प्रथम विवाह में सम्मिलित न हो सका था, अतः इस अवसर पर अवश्य ही उपस्थित होगा। परन्तु यह सूचना अत्यन्त विलम्ब से प्राप्त हुई और निजामअली के आगमन के लिए प्रबन्ध समाप्त होने के पूर्व ही संस्कार सम्पन्न हो गया। निजामअली ने इस पर आग्रह किया कि पेशवा एक और विवाह करे, जिसमें उसका आगमन हो सके। परन्तु किसी ने इस सुझाव पर गम्भीरतापूर्वक ध्यान नहीं दिया और निजामअली पूना दरबार में अपने आगमन के लिए निरन्तर आग्रह करता रहा। इसमें उसका क्या गुप्त उद्देश्य है, इसका अनुमान कोई नहीं कर सका।"[११] शिन्दे ने पेशवा तथा अन्य लोगों का भय तो इस घोषणा द्वारा शान्त कर दिया कि यदि निजामअली का अभिप्राय मराठों से युद्ध करने का है तो वह अकेला ही उसका सामना कर सकता है। इस वीरतापूर्ण दृढ़ता से भयावह परिस्थिति शीघ्र शान्त हो गयी। जनता ने पेशवा के प्रति शिन्दे की निष्ठा तथा भक्ति की प्रशंसा की। इस प्रकार उसकी निष्ठाहीन वृत्ति से सम्बन्धित पूर्व सन्देहों का शनैः-शनैः निराकरण हो गया।

१३ मार्च को रंग पंचमी अथवा वार्षिक वसन्तोत्सव का दिवस था। शिन्दे ने यह उत्सव इस प्रकार क्रीड़ा तथा आमोद-प्रमोद से मनाया कि उसकी अस्फुट प्रतिध्वनि इस समय तक शेष है। उसका अभिप्राय था कि यह उत्सव पेशवा के नूतन विवाह-कार्य की सुखद समाप्ति बन सके। इस अवसर पर शिन्दे ने आतिशबाजी का विशेष प्रबन्ध किया जो उस समय उत्तर भारत में प्रचलित थी तथा दक्षिण में अज्ञात थी। मथुरा तथा अन्य स्थानों में राम और कृष्ण के उत्सव अत्यन्त शोभा तथा हर्ष से मनाये जाते थे। महादजी को इनसे प्रेम हो गया था, उसने उत्तर भारत में प्रचलित आतिशबाजी तथा रंग की पिचकारियों से इस समय अल्पवयस्क पेशवा का ध्यान आमोद के इन विचित्र रूपों की ओर आकृष्ट करने का प्रयास किया। पेशवा के राजभवन तथा बनवाड़ी में शिन्दे के शिविर के बीच का मार्ग सुसज्जित किया गया तथा अनेक सरदारों और नगर-निवासियों के निवास-स्थानों पर रंग खेलने का व्यापक प्रबन्ध किया गया। १३ मार्च को शिन्दे जुलूस के साथ शनिवार को राजभवन आया और पेशवा को हाथी पर बैठाकर जुलूस में ले गया, जिसमें गायन और नृत्य हो रहा था। अनेक रंगों की पिचकारियाँ चल रही थीं और लाल चूर्ण (गुलाल) की वर्षा हो रही थी। दोपहर से लेकर देर रात गये तक समस्त नगर इस उत्सव को देखता रहा तथा इसमें भाग लेता रहा। इसका लिखित वर्णन तक इस समय हमको विचित्र तथा रोचक प्रतीत होता है।

---

[११] पूना रेजीडेन्सी करस्पोण्डेन्स, जिल्द २, पृ० १७७

कहा जाता है कि वनवाड़ी से नगर तक का मार्ग घुटने-घुटने गुलाल से पट गया था।

लगभग एक वर्ष चलने वाले नाना-शिन्दे विवाद के अनेक स्थलों का वर्णन करना रोचक होगा। पहले नाना ने अनेक छल-कपटों का आश्रय लिया। इस पर शिन्दे ने भर्त्सना की तथा उसके प्रयत्नों का प्रतिरोध किया। जब विवाद सम्बन्ध-विच्छेद की अवस्था को प्राप्त हो गया तो हरिपन्त फड़के तथा पेशवा ने हस्तक्षेप किया और अन्त में वे मैत्री-सम्बन्ध स्थापित कराने में सफल हो गये। उल्लिखित प्रमाण इस प्रकार बताते हैं :

२९ सितम्बर, १७९२ को डब्ल्यू० पामर ने कार्नवालिस को इस प्रकार सूचना दी : "पूना से प्राप्त समस्त वृत्तान्त इस विषय में एकमत हैं कि दशहरा (२५ सितम्बर) के बाद पेशवा से विदा लेने का शिन्दे ने पूर्ण निश्चय कर लिया है। मुझे विश्वस्त अधिकारियों से व्यक्तिगत सूचना प्राप्त हुई है कि मन्त्री (नाना) ने उसको हताश कर दिया है और धोखा दिया है। उसने मन्त्री पर दोगलेपन का लांछन लगाया है और कहा है कि उसने उत्तर भारत में मेरे प्रतिद्वन्द्वियों को मेरा विरोध करने के लिए प्रोत्साहन दिया है, जबकि वह इसके विपरीत भाव का मुझे समर्थन दे चुका है। शिन्दे ने अलीबहादुर को लिखा हुआ नाना का एक पत्र पकड़ लिया है, जिसमें वचन दिया गया है कि महादजी का प्रतिकार करने में उसको पेशवा का अधिकार तथा समर्थन प्राप्त हो जायेगा। महादजी ने मन्त्री से स्पष्ट कह दिया है कि मैं उसका अधिक विश्वास नहीं कर सकता और तुरन्त उत्तर भारत को वापस चला जाऊँगा तथा अपनी ही शक्ति से अपने अधिकार की रक्षा करूँगा।"

९ फरवरी, १७९२ को केन्नवे ने यह वृत्तान्त भेजा : "मुझको पूना से सूचना प्राप्त हुई है कि हरिपन्त के साथ वैर-शांति के परिणामस्वरूप नाना फड़निस ने बनारस जाने का अपना इरादा सर्वथा त्याग दिया है। (हरिपन्त के साथ उसकी अनबन उसके अवकाश ग्रहण करने के विचार का मुख्य कारण था।) शिन्दे ने उसको सूचना दी है कि जिस योजना के कारण वह दक्षिण आया था, उसकी सफलता की कोई आशा नहीं है तथापि उसका निश्चय है कि वह कुछ समय तक और ठहरकर देखेगा कि क्या कर सकता है, क्योंकि उसने समय तथा धन के विपुल व्यय पर यात्रा का कष्ट सहन किया है।"

इससे प्रकट होता है कि फरवरी, १७९३ तक विवाद के समझौते में कोई प्रगति नहीं हुई थी। इस सम्बन्ध में प्रकटित आश्चर्यकारी तथ्य नाना तथा हरिपन्त फड़के के बीच उत्पन्न होने वाली अनबन है। ऐसा मालूम होता है कि हरिपन्त ने शिन्दे के पत्र का समर्थन तथा नाना के प्रयत्नों का विरोध किया होगा।

२४ अप्रैल, १७६३ की एक अन्य सूचना इस प्रकार है : "कल तथा उसके पहले दिनों में हरिपन्त महादजी से मिलने गया और वार्तालाप किया जिसके परिणाम से महादजी सन्तुष्ट है। अब यह समाचार निजामअली के पास पहुँचेगा तथा निश्चय ही उसको पूना पर अपने प्रयाण की योजना का त्याग करने के लिए विवश करेगा।" १ मई को एक अन्य लेखक कहता है—"अगले दिन पाँच सैनिकों सहित हरिपन्त महादजी से मिलने गया और दो घण्टे तक वार्तालाप किया। इस प्रकार कई दिनों तक वह निरन्तर उसके पास आता रहा और उसके साथ लम्बे समय तक वार्तालाप करता रहा। महादजी को मालूम हो गया कि यह वार्तालाप केवल मन बहलाने की बात है, अत: उसने अन्त में उत्तर दिया—"जो कुछ भी आप इस समय कहते हैं, वह भविष्य में आपको अपने कार्य द्वारा सिद्ध करना है। मैं एक वर्ष से यहाँ ठहरा हुआ हूँ और कुछ भी उन्नति नहीं हुई है। हम वहीं हैं जहाँ आरम्भ में थे। मैं असाधारण अर्थ-संकट सहन कर रहा हूँ। मुझ पर पहले ही करोड़ों रुपयों का ऋण हो गया है। अब मैं आपका मतलब समझ गया हूँ। आप पेशवा के सेवक हैं और मैं भी उसी मात्रा में उसका सेवक हूँ। होल्कर भी इसी प्रकार उसका सेवक है। वह एक समय मेरा साथी था और यह साथी मेरी सहायतार्थ उत्तर को भेजा गया था। उसने उस कार्य में किस प्रकार व्यवहार किया है, यह आप स्वयं निर्णय करें और तब मुझे बतायें कि मेरा दोष है या नहीं। हमारा स्वामी इस समय तक अल्पवयस्क है। वह आज्ञा देने तथा बलपूर्वक उसका पालन कराने में असमर्थ है। कोई भी होल्कर को दण्ड नहीं दे सकता। इस समय वह उत्तर में मेरे प्रान्तों का नाश कर रहा है। आप यह जानते हैं, पर उसको नहीं रोकते हैं। इसको आप कोई महत्त्व नहीं देते हैं। हानि तो केवल मेरी ही हो रही है।" हरिपन्त ने उत्तर दिया—"आप भलीभाँति जानते हैं कि कितनी बार पूना से होल्कर को स्पष्ट आज्ञाएँ भेजी गयी हैं। उसे रोकने के लिए विशेष दूत भी भेजे गये, परन्तु उसने उनकी एक न सुनी।" इस पर शिन्दे ने जानना चाहा कि यदि होल्कर सरकार की आज्ञाओं का तिरस्कार करता है तो वह अधिक समय तक पेशवा का सेवक कैसे बना रह सकता है ? निश्चय ही उसकी रियासत का अपहरण होना चाहिए। शिन्दे ने यह भी कहा कि वह होल्कर को ऐसी शिक्षा देने के लिए तैयार है, जिसे वह कभी न भुला सके। शिन्दे ने कहा—

"एक अन्य विषय—अलीबहादुर के विषय—को लीजिए। मेरे घोषित शत्रु गोसाईं को वह अभी तक अपनी रक्षा में रखे हुए है। क्या आप इस आचरण का अनुमोदन करते हैं ? यदि पेशवा के सेवक के रूप में आप उसको

रोक नहीं सकते तो मुझको आज्ञा दें। मैं भी उसी के समान पेशवा का सेवक हूँ तथा उसकी आज्ञा को मैं कार्यान्वित कर दूँगा। यदि अलीबहादुर सेवक है तो उसको अवश्य आज्ञा का पालन करना चाहिए। यदि मैं स्वामी का निष्ठावान सेवक हूँ तो निश्चय ही उसके आशीर्वाद से मुझमें उचित कार्य करने की शक्ति है।"

इस प्रकार हरिपन्त तथा शिन्दे के बीच प्रायः लम्बे वार्तालाप होते रहे। उस समय शिन्दे तथा होल्कर की सेनाएँ लाखेरी के मैदान पर एक-दूसरे के सम्मुख पंक्तिबद्ध खड़ी थीं। इस वार्तालाप के बाद महादजी ने तुरन्त अपने सरदारों को यह आज्ञा लिखकर भेज दी—'होल्कर पर टूट पड़ो, अधिक तर्क-वितर्क मत करो। मैंने बहुत प्रतीक्षा कर ली है, अब मुझमें धैर्य नहीं रह गया है। उसको सदा-सर्वदा के लिए समाप्त कर दो।" इस प्रकार उस घातक प्रथम जून, १७९३ को होल्कर के पराभव की दुखद घटना हुई।

पूना से १५ मई की सूचना है: "पाटिल बाबा तथा पूना प्रशासन के बीच विकट कलह उत्पन्न हो गयी थी तथा यह अग्नि भभक उठने को ही थी। अतः हरिपन्त कई बार पाटिल के पास आया और उसने स्वयं निजी रूप से मतभेद दूर कर दिये। तब नाना तथा हरिपन्त साथ-साथ पुनः शिन्दे के पास आये और उनके स्पष्टीकरणों से क्षुब्ध परिस्थिति बहुत हद तक शान्त हो गयी है। इतने पर भी पारस्परिक सन्देहों के कारण दोनों दल अपनी रक्षा के लिए सतर्क हैं। इस वैमनस्य का मुख्य कारण शिन्दे-होल्कर कलह है। यदि यह न रोकी जा सकी तो वही विपत्ति यहाँ पर भी उपस्थित हो जायगी। यदि उत्तर में होल्कर की विजय हुई तो शिन्दे स्वयं वहाँ जायेगा। यदि शिन्दे की विजय हुई तो वह तुरन्त अपनी समस्त सेना उत्तरी भारत से यहाँ पर बुला लेगा तथा पूना के दल से बलपूर्वक अपनी शर्तें मनवा लेगा। यदि होल्कर की विजय हुई तो पूना के दल का विचार शिन्दे के विरुद्ध महान संकट उपस्थित कर देने का है, इसके लिए वह अलीबहादुर, राजपूतों, उत्तर के अन्य शासकों, भोंसले, निजामअली तथा दक्षिण के अंग्रेजों को शिन्दे की शक्ति के विरुद्ध प्रेरणा देगा। इस प्रकार शिन्दे की शक्ति का विभाजन हो सकता है तथा दोनों युद्धक्षेत्रों में उसको छिन्न-भिन्न किया जा सकता है। इस प्रकार वर्तमान विकट गतिरोध का निर्णय राजस्थान में चल रहे शिन्दे-होल्कर संघर्ष के परिणाम पर निर्भर है। यदि महादजी की विजय हुई तो वह निश्चय ही पूना के सरदारों से पूर्ण बलपूर्वक पूरा बदला चुका लेगा।" कितनी मिथ्या धारणा फैलायी गयी थी, इसे वास्तविक परिणाम से ही जाना जा सकता है।

शिन्दे ने लाखेरी में पूर्ण विजय प्राप्त की तथा उसने असाधारण माँगें प्रस्तुत न कीं और न कोई बलपूर्वक बदला ही लिया ।

४. लाखेरी में होल्कर का पराभव (१ जून, १७९३)—होल्कर-शिन्दे प्रतिद्वन्द्विता का आरम्भ १८वीं शताब्दी के मध्य में हुआ, जबकि उन दोनों सरकारों ने जयपुर के उत्तराधिकार सम्बन्धी युद्ध में परस्पर विरोधी पक्षों का साथ दिया। रानोजी शिन्दे तथा मल्हारराव होल्कर दोनों ने बाजीराव प्रथम के अधीन अपने जीवन साथ-साथ आरम्भ किये थे। मल्हारराव ने १७६६ में अपनी मृत्यु के बाद कोई योग्य पुत्र नहीं छोड़ा। रानोजी शिन्दे के १७४५ में मृत्यु के समय पाँच तेजस्वी पुत्र थे, जिन सब ने मराठा राज्य की सेवा में अपने प्राण न्यौछावर कर दिये। इन पुत्रों में से चार पुत्रों तथा एक पौत्र का देहान्त रणक्षेत्रों में हुआ था और पंचम पुत्र महादजी पानीपत के विनाशकारी दिवस पर घायल होकर शेष जीवन के लिए लँगड़ा हो गया था। युद्ध में मल्हारराव की-सी नेतृत्व शक्ति तथा कूटनीति में उसका-सा विवेक महादजी के व्यक्तित्व का अंग था, पर महादजी की-सी व्यापक दृष्टि शायद किसी मराठा सरदार के पास नहीं थी। अपने जीवन के आरम्भ में महादजी के पास होल्कर की अपेक्षा न पर्याप्त धन था, न सेना। मल्हारराव की गद्दी पर उसकी उत्तराधिकारिणी धार्मिक तथा साधु स्वभाव वाली उसकी पुत्रवधू अहल्याबाई हुई, जिसने स्त्री होने के कारण अपने पुरुष सम्बन्धी तुकोजी को युद्धों में अपनी सेनाओं के प्रतिनिधि के रूप में नेतृत्व करने की आज्ञा दी। यह दोहरा शासन होल्कर के वंश का अभिशाप सिद्ध हुआ। सालबई की सन्धि के बाद मराठा संघ में इस वंश का स्थान निरन्तर गिरता ही गया और दूसरी ओर मुगल-साम्राज्य के राजप्रतिनिधि के रूप में महादजी का उदय होता गया। महादजी की उन्नति से नाना फड़निस की ईर्ष्या जाग्रत हो उठी। शिन्दे की महत्त्वाकांक्षी योजनाओं का विरोध करने के लिए असन्तुष्ट होल्कर नाना फड़निस के हाथ की कठपुतली बन गया। शिन्दे के सन्तुलन के रूप में नाना ने होल्कर का समर्थन किया।

होल्कर के वंश का भविष्य मदिरापान के अभिशाप ने नष्ट कर दिया। तुकोजी तथा उसके पुत्र इसके प्रति असाधारण रूप से आसक्त थे। अहल्याबाई के पति खाण्डेराव को भी यह कुटेव थी। तुकोजी के पुत्र मल्हारराव तथा यशवन्तराव भी इस दुर्व्यसन के शिकार थे। अहल्याबाई ने उनका जीवन सुधारने का बहुत प्रयास किया—पर सब व्यर्थ रहा। जब होल्कर-वंश का पाला महादजी शिन्दे जैसे जन्मजात नेता से पड़ा, तब यह असमानता सर्वथा प्रत्यक्ष हो गयी। होल्कर के मन्त्री अपने पक्ष की इस मूलभूत निर्बलता को

जानते थे, अतः वे सावधानीपूर्वक स्पष्ट कलह से दूर रहे। लालसोट की विपत्ति के कारण शिन्दे संकटग्रस्त हो गया था, परन्तु इस आघात के प्रभाव से वह शीघ्र मुक्त होकर पहले की अपेक्षा अत्यधिक शक्तिसम्पन्न हो गया। जब बाह्य रूप से शिन्दे की सहायता के लिए घटना-स्थल पर तुकोजी का आगमन हुआ, तब परिस्थिति शीघ्र ही तनावपूर्ण हो गयी। इसका वर्णन पहले ही किया जा चुका है। नाना फड़निस ने बहुत दिनों से तुकोजी को दक्षिण में व्यस्त कर रखा था। इसके दो अभिप्राय थे—उत्तर में दोनों प्रतिद्वन्द्वी सरदारों के बीच संघर्ष को टालना तथा शिन्दे की बढ़ती हुई शक्ति के साथ सन्तुलन बनाये रखना। इस समय होल्कर ने शिन्दे के उत्तरी प्रशासन में हस्तक्षेप करके उसका क्रोध जाग्रत कर दिया तथा प्रतिद्वन्द्विता की पुरानी चिनगारियों ने प्रदीप्त ज्वाला का रूप धारण कर लिया। शिन्दे ने यथाशक्ति पूर्ण उग्रता से नाना के कार्य की निन्दा की। उसने कहा : "नाना ने होल्कर को मेरी छाती पर बैठा दिया है।"

जब तुकोजी तथा अलीबहादुर उत्तर में शिन्दे की विजयों में हिस्सा बँटाने आये, कष्टों में नहीं, तो दूरदर्शियों को निकट भविष्य में स्पष्ट संघर्ष होता प्रतीत हुआ। विश्वासघाती गोसाईं ने अपने स्वार्थपूर्ण उद्देश्य सिद्ध करने के लिए परिस्थिति से दुष्टतापूर्वक लाभ उठाया। इससे महादजी का क्रोध और भी बढ़ गया। अगस्त, १७९० में महादजी ने मथुरा में विधिपूर्वक उस शाही फरमान को ग्रहण करने के लिए उत्सव किया, जिसके द्वारा वह साम्राज्य का सर्व-सत्ता-प्राप्त एकमात्र राजप्रतिनिधि नियुक्त किया गया था। भव्य दरबार का प्रबन्ध किया गया। तुकोजी को छोड़कर इस दरबार में समस्त सामन्त उपस्थित हुए। तुकोजी ने इस दरबार में भाग लेना अस्वीकार करके एक प्रकार से महादजी का सार्वजनिक अपमान किया। समय की गति के साथ-साथ दोनों सरदारों के बीच की खाई चौड़ी होती गयी। तुकोजी ने शिन्दे के प्रत्येक विरोधी का समर्थन तथा उसके द्वारा प्रस्तावित प्रत्येक उपाय का विरोध आरम्भ कर दिया। जब अलीबहादुर बुन्देलखण्ड गया तो उसने उस क्षेत्र में शिन्दे के प्रति उसी प्रकार का विरोध आरम्भ कर दिया। जब महादजी राजपूतों के विरुद्ध जीवन-मरण के संघर्ष में व्यस्त था और उसका शत्रु इस्माइल बेग भी उनके साथ मिला हुआ था, तब १७९० में तुकोजी ने अपने शिविर में शिन्दे के विरोधियों के दूतों का स्वागत किया। उसका बहाना था कि वह शान्ति का प्रयत्न कर रहा है, परन्तु वास्तव में वह शिन्दे को पीड़ा देना चाहता था। इस प्रकार दोनों सामन्तों के बीच असह्य परिस्थिति विकसित हो गयी। विवश होकर उन दोनों ने अपनी कलह पूना में

नाना फड़निस के समक्ष उपस्थित की। परन्तु नाना होल्कर के समर्थन के लिए प्रतिज्ञाबद्ध था। उसने वास्तव में गुप्तरूप से होल्कर को शिन्दे की योजनाओं का विरोध करने के लिए प्रेरित किया था, अतः वह सच्चे निर्णायक का कार्य नहीं कर सका। महादजी ने पूना में अपना मार्ग शीघ्रता से प्रशस्त करके समस्त विरोध दबा दिये। इस बीच में भी शिन्दे की भावना होल्कर द्वारा किये अन्यायपूर्ण विरोध के लिए न्याय प्राप्त करने की बनी रही। उसने पूना में आकर होल्कर का अन्याय रोकने के लिए प्रार्थना की। किन्तु होल्कर इस समय भी उत्तर में था, जहाँ वह दिखाने के लिए कर-संग्रह में व्यस्त था, परन्तु वास्तव में वह शिन्दे की शक्ति भंग करने में समर्थ योजनाओं का गठन कर रहा था। शिन्दे की इच्छा होल्कर से खुला युद्ध करने की कभी नहीं थी। तुकोजी के उत्तरदायी मन्त्री नारो गणेश तथा चचेरे भाई बापू होल्कर ने उसे दृढ़तापूर्वक परामर्श दिया कि वह शान्तिमय समझौते का यत्न करे और युद्ध से दूर रहे।

महादजी ने दक्षिण को वापस होते समय अपनी सेना का अधिकांश भाग विरोधी तत्त्वों पर नियन्त्रण रखने के लिए उत्तर भारत के विभिन्न स्थानों में नियुक्त कर दिया था। इस उत्तरी सेना का सर्वोच्च नेता जीवबा बख्शी जैसा शान्त व्यक्ति था। दि बायने के अधिकार में वह भाग था, जिसे कम्पू कहते थे। सामान्य प्रशासन अबाजी रघुनाथ चिटनिस तथा उसके भाई गोपालराव के हाथों में था। अम्बूजी इंगले बुन्देलखण्ड में नियुक्त था। खाण्डेराव हरि दिल्ली में सम्राट और दिल्ली के आगे सिखों के कार्यों की देखभाल करता था। लकवा बहुत समय से आगरा के गढ़ का अधिकारी था। बन्दी इस्माइल बेग इसी स्थान पर कारागार में था। तुकोजी होल्कर ने महादजी के इस समस्त प्रबन्ध को अत्यन्त ईर्ष्या से देखा और घटना-स्थल से अपने प्रतिद्वन्द्वी के अनुपस्थिति-काल में बदला लेने का प्रयास किया। महादजी की सेनाएँ विस्तृत क्षेत्र में बिखरी हुई थीं, इसलिए तुकोजी ने उनको अलग-अलग नष्ट करने की योजना बनायी। उसने शिन्दे के अनुकरण पर कुछ समय पहले अपनी सेना को पश्चिमी शैली पर प्रशिक्षित करने का प्रयोग किया था और इस कार्य के लिए फ्रेंच सेनापति डुड्रेनेक नियुक्त किया गया था। तुकोजी के पुत्र मल्हारराव ने मदिरा के नशे में सगर्व कहा—"मैं शिन्दे का कम्पू धूल में मिला दूँगा। मैं खुले युद्ध में शिन्दे का सामना करने का साहस रखता हूँ तथा अपने वंश के हित में पुनः नेतृत्व प्राप्त कर लूँगा।" होल्कर के दरबार में कुछ वर्षों से इस प्रकार की गर्वोक्तियाँ हो रही थीं। उन्मत्त मल्हारराव ने नारो गणेश तथा पाराशर दादाजी सदृश वरिष्ठ परामर्शकों के शान्त उपदेश की स्पष्ट निन्दा

करते हुए उन्हें कायर कहा। अपनी निर्बल अवस्था में तुकोजी तथा अहल्याबाई इन दोनों अत्युत्साही नवयुवकों—मल्हारराव तथा यशवन्तराव (जो अब लगभग १४ वर्ष का था)—को नहीं रोक सके तथा इन्हें अपनी स्वतन्त्र योजना बनाने का अधिकार दे दिया।[१२]

दूसरी ओर महादजी के उत्तरी कार्यों का अधिकारी गोपालराव भाऊ होल्कर परिवार की इन विरोधी प्रगतियों का सावधानी से निरीक्षण करता रहा तथा किसी भी संकटकालीन स्थिति का सामना करने के लिए तैयार था। तुकोजी ने अलवर के समीप शिन्दे के प्रदेश पर अधिकार करना आरम्भ करके गोपालराव भाऊ को सितम्बर, १७९२ में रण निमित्त प्रयाण करने के लिए उत्तेजित किया। इस समय स्वाभाविक शिष्टाचार के पहले दौर के बाद शिन्दे पूना में मन्त्रियों के साथ अपनी शिकायतों पर वार्तालाप आरम्भ ही कर पाया था। गोपालराव भाऊ इस प्रकार का मनुष्य न था जो चुपचाप घटनाओं को सहन कर जाता। बनास नदी के दक्षिण में सवाई माधोपुर प्रदेश में, जहाँ सुरावली, लाखेरी, भगवन्तगढ़ तथा इन्द्रगढ़ ने वर्तमान संघर्ष के कारण ऐतिहासिक प्रसिद्धि प्राप्त कर ली है, गोपालराव होल्कर के विरुद्ध संघर्ष में जुट गया। तुकोजी ने भगवन्तगढ़ में आसन जमा लिया था। जयपुर के दीवान दौलतराम हलदिया के साथ उसका गुप्त समझौता हो गया था कि यह जयपुर की एक सेना की सहायता से गोपालराव भाऊ पर अकस्मात् आक्रमण करेगा। शिन्दे के सरदारों को इस षड्यन्त्र की यथासमय सूचना मिल गयी। उन्होंने निश्चय किया कि जयपुर का दल होल्कर से मिल जाये, इससे पहले ही वे होल्कर के शिविर पर अचानक टूट पड़ेंगे और इस प्रकार पहल करके शत्रु को असफल कर देंगे। ८ अक्तूबर, १७९२ की प्रभातवेला में जब तुकोजी अपना शिविर अन्य स्थान पर हटा रहा था, तभी गोपालराव भाऊ ने सुरावली पर सहसा आकस्मिक आक्रमण कर दिया। इसमें होल्कर के कुछ सिपाही मारे गये। स्वयं तुकोजी को उसके अंगरक्षकों ने सुरक्षित दूरी पर पहुँचा दिया था। इस प्रकार वह बन्दी होने से बच गया। तब बापू होल्कर तथा पाराशर दादाजी ने गोपालराव भाऊ से प्रार्थना की और संघर्ष के कारणों पर परस्पर समझौते द्वारा यह प्रकरण बुद्धिमत्तापूर्वक समाप्त कर दिया। इस हल्की भिड़न्त के साथ युद्ध प्रकरण अस्थायी रूप में समाप्त हो गया।

जब सुरावली के इस काण्ड तथा बापू होल्कर और पाराशर पन्त द्वारा

---

[१२] होल्कर राजपत्रों की जिल्द १ की सं० ३८४ तथा ३८७ को विशेष रूप से देखो।

कराये हुए समझौते का समाचार इन्दौर में अहल्याबाई तथा मल्हारराव को प्राप्त हुआ तो उन्होंने सोचा कि रण से विमुख होकर होल्कर सरदारों ने अपने ऊपर कायरता के कलंक का टीटा लगा लिया है। इसके साथ ही उन्होंने समझौते की शर्तें तोड़ने की माँग प्रस्तुत की। सुरावली की झड़प के पूरे ८ मास बाद तक इन्दौर तथा तुकोजी के शिविर में यह प्रकरण आन्दोलन का विषय बना रहा। दोनों सेनाएँ निरन्तर एक-दूसरे पर निगाह रखे रहीं तथा उन्होंने गुप्त रूप से अनुकूल स्थिति प्राप्त करने का प्रयत्न किया। शिन्दे के सरदारों ने पूना में महादजी के पास इस स्थिति की सूचना भेज दी। वह उस समय मन्त्रियों के साथ वादविवाद में व्यस्त था। इस काण्ड के बाद उसको इस तर्क के लिए अधिक बल प्राप्त हो गया कि उत्तर में होल्कर की चालें उसने लिए विघ्नकारक हैं। महादजी ने पूना में समस्त शक्तिसम्पन्न व्यक्तियों से प्रार्थना की कि वे गृहकलह का यह भद्दा दृश्य समाप्त करा दें। पूना का मन्त्रिमण्डल या तो परिस्थिति की गम्भीरता को नहीं समझा या उसने जान-बूझकर होल्कर को नहीं रोका। शायद शिन्दे के अपमान का उन्होने मन ही मन स्वागत भी किया। इस तनाव का अधिक दिन तक दूर न किया जाना दूरदर्शियों को मराठा राज्य के निकटवर्ती पतन का असंदिग्ध लक्षण प्रतीत हुआ।

इस परिस्थिति में मल्हारराव को अपनी उच्छृंखल योजना में अग्रसर होने का सुलभ अवसर प्राप्त हो गया। उसने हठ किया कि उसको रणस्थल में भेज दिया जाये और अपने पिता के सावधान परामर्शदाताओं का उल्लंघन करने का अधिकार दिया जाये। उसने सगर्व कहा कि वह अपने हल्के अश्वा-रोही दल के केवल एक जोरदार आक्रमण से शिन्दे की सेना के नवीन संगठन को चकित करके चूर्ण-चूर्ण कर देगा। मल्हारराव में आधुनिक रणकौशल को सीखने का धैर्य नहीं था। अहल्याबाई अपने भवन की चहारदीवारी के भीतर धार्मिक चिन्तन में तल्लीन थी, परन्तु सभी व्यक्तियों के समान उसको भी यह पारिवारिक कलंक सदा-सर्वदा के लिए मिटा देने की चिन्ता थी। वह बाह्य जगत में होने वाली घटनाओं की प्रगति से सर्वथा अपरिचित थी, इसलिए वह मल्हारराव की गर्वीली उक्तियों से पथभ्रष्ट हो गयी और उसने मल्हारराव को राजस्थान में सिन्धिया के विरुद्ध प्रयाण करने का अधिकार दे दिया। उसने जितनी सेनाएँ और धन माँगा, उतना उसे मिल गया। उसने अपने पिता के शिविर में पहुँचकर शीघ्र ही बापू होल्कर और पाराशर पन्त के बुद्धिसंगत परामर्श को ठुकरा दिया तथा शिन्दे की बिखरी हुई अश्वारोही टोलियों पर आक्रमण आरम्भ कर दिया। पाराशर पन्त केवल शिन्दे की सेना के चारों ओर झड़पें करके अशुभ दिन को आगे बढ़ाने के अतिरिक्त कुछ नहीं कर सका।

गोपालराव ने पूना स्थित महादजी को निर्देशार्थ परिस्थिति का समाचार भेज दिया। महादजी ने अप्रैल में उत्तर दिया—"इस समय होल्कर मैत्रीपूर्ण परामर्श की अवहेलना कर रहा है और उसकी उत्कट इच्छा युद्ध करने की है, अतः युद्ध होने दो। उसको भविष्य की चिन्ता नहीं है। उसने समझौते के लिए कोई जगह नहीं छोड़ी है। तुरन्त आक्रमण आरम्भ करके इस प्रकरण को समाप्त कर दो।" इस उत्तर के प्राप्त होते ही गोपालराव ने होल्कर पर टूट पड़ने और शक्ति द्वारा निर्णय करने का निश्चय कर लिया।

मल्हारराव को रोका नहीं जा सकता था, अतः युद्ध प्रवृत्ति नवीन रूप से आरम्भ हो गयी। तुकोजी ने अपने उच्छृंखल पुत्र को स्वतन्त्र अधिकार दे दिया। इस प्रकार उसे अपने परिवार की सम्पूर्ण सेनाओं का अधिकार प्राप्त हो गया। गोपालराव भाऊ तथा दि बायने ने निकटवर्ती संघर्ष के लिए सावधानी से तैयारी की। वे घूमने-फिरने योग्य एक हल्के दल की रचना करके लाखेरी के समीप होल्कर के शिविर की ओर बढ़े।[१३]

इतना जोरदार युद्ध उत्तर भारत में पहले कभी नहीं हुआ था। होल्कर के अश्वारोही दल की संख्या लगभग २५ हजार थी। उनके साथ लगभग २ हजार डुड्रेनेक की प्रशिक्षित पैदल सेना थी, जिसके पास ३८ तोपें थीं। गोपालराव २० हजार अश्वारोही दल, ६ हजार प्रशिक्षित पैदल दल तथा फ्रेंच शैली की उन्नत ८० हल्की तोपें लेकर होल्कर के सामने डट गया। जीवबा बख्शी के अनुभव सिद्ध प्रबन्ध एवं दि बायने की चतुर रणशैली के कारण विजय प्राप्त हुई। होल्कर की समस्त सेना का लगभग सर्वनाश कर दिया गया। डुड्रेनेक अन्त तक लड़ता रहा। उसे आत्मसमर्पण का आह्वान किया गया, पर उसने ऐसा करना स्वीकार नहीं किया। वह घायल अवस्था में पकड़ा गया। मल्हारराव को अपने उत्साह से कुछ भी लाभ नहीं हुआ। वह सड़क के पास एक तालाब के किनारे मदिरा के नशे में अचेत पड़ा हुआ पकड़ लिया गया। होल्कर का यह पराभव अन्तिम था। इस रण से उत्तर भारत की शिन्दे-होल्कर प्रतिद्वन्द्विता का निर्णय हो गया।

होल्कर की सेनाएँ अत्यन्त तीव्र वेग से भाग निकलीं। रणक्षेत्र में प्राण देने वालों की अपेक्षा प्यास तथा थकावट के कारण मार्ग में मरने वालों की

---

[१३] प्रथम टक्कर २७ मई को पंचिलास के स्थान पर हुई, परन्तु निर्णायक रण प्रथम जून, १७९३ को हुआ। देखो फरवरी, १९४४ के माडर्न रिव्यू में सर यदुनाथ सरकार द्वारा इस रण का वर्णन। इन्द्रगढ़ तथा लाखेरी इस समय सवाई माधोपुर के दक्षिण में पश्चिम रेलवे की मुख्य लाइन पर रेलवे स्टेशन है।

संख्या अधिक थी। गोपालराव को होल्कर द्वारा छोड़े हुए शिविर में लूट का बहुमूल्य माल प्राप्त हुआ। होल्कर की पराजय का कारण उसकी सेना के विभिन्न अंगों का उद्धत आचरण था। उनकी योजना संगठित नहीं थी और न उनकी आक्रमण शैली ही संयुक्त थी। दि बायने ने उनको सकुशल नहीं भागने दिया, क्योंकि उन्होंने अकारण आक्रमण किया था। उसने इस अवसर से पूर्ण लाभ उठाया तथा अपने विरोधियों को कठोर दण्ड दिया। बाद को उसने स्वयं लिखा, "जितने रण मैंने लड़े थे, उन सबमें लाखेरी के स्थान पर डुड्रेनेक के विरुद्ध यह संघर्ष अत्यन्त प्रबल था। जब तक परिणाम ज्ञात नहीं हुआ, तब तक इसके कारण मुझको अति तीव्र चिन्ता रही।" लाखेरी से उसने जयपुर को प्रयाण किया तथा वहाँ के शासक प्रतापसिंह से बलपूर्वक ७० लाख का कर ग्रहण किया। यह कर अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार उसने अब तक नहीं दिया था। भग्नदर्प तुकोजी होल्कर इस घातक युद्ध से इन्दौर वापस आया। मार्ग में उसने शिन्दे की राजधानी उज्जैन को निर्दयतापूर्वक लूटकर अपनी प्रतिशोध भावना को तृप्त किया। इस प्रकार शिन्दे-होल्कर वैमनस्य जो पानीपत के पूर्वकाल में आरम्भ हुआ था, लाखेरी में अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गया। इसने बढ़कर मराठा राज्य का सर्वनाश ही कर दिया।[१४]

५. पूना में शिन्दे की विजय—लाखेरी का समाचार विद्युत गति से मराठा जगत में फैल गया तथा इससे अनेक प्रकार की प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न हुईं। महादजी को व्यक्तिगत रूप में यह प्रसन्नता हुई कि उसकी अनुपस्थिति में भी उसकी सेना ने गौरवपूर्ण रूप से व्यवहार किया। साथ ही उसको यह दुख भी हुआ कि राज्य के दो प्रमुख सरदारों के बीच स्थिति इस सीमा को पहुँच गयी। कहा जाता है कि जब उसके अधीन सरदारों ने इस विजय के सम्मान में तोपें छोड़े जाने का सुझाव दिया तो उसने इस कार्य का सर्वथा निषेध कर दिया। शिन्दे ने इस अवसर को शोकदिवस कहना अधिक उपयुक्त समझा।[१५]

---

१४ दोनों परिवारों का वैमनस्य आगामी पीढ़ियों में भी अधिक कटुतापूर्वक चलता रहा। सैनिक विद्रोह में प्रसिद्धि प्राप्त दो विश्रुत शासक तुकोजी होल्कर तथा जयाजी शिन्दे अपने जीवन-काल में मृत्यु के समीप एक बार के अतिरिक्त कभी परस्पर नहीं मिले।

१५ यह समाचार फैल गया कि उसने अपने राजप्रतिनिधि गोपालराव भाऊ को पदच्युति तथा कारागार का दण्ड दिया है। यह हो सकता है कि शिन्दे ने इस प्रकार का संकेत दिया हो परन्तु उसने कभी इस आज्ञा का पालन नहीं किया, क्योंकि वह जानता था कि गोपालराव ने केवल महादजी की आज्ञा से ही यह कार्य किया है। महादजी की मृत्यु के बाद भी गोपालराव बहुत दिनों तक अपने पद पर बना रहा।

पूना के मन्त्रियों को भय हुआ कि आगे चलकर शिन्दे उनसे अपना बदला लेगा, क्योंकि उसकी शक्ति पर एकमात्र होल्कर का अंकुश अब समाप्त हो गया है। अब वह उनको उनके भूतकालीन अपराधों के लिए कठोर दण्ड देगा—चाहे ये अपराध उपेक्षा में किये गये हों या इच्छापूर्वक। उन्होंने तुरन्त उन बातों को स्वीकार कर लिया, जिनकी माँग शिन्दे बहुत दिनों से कर रहा था। उन्होंने अपनी पहले वाली अवज्ञा की वृत्ति छोड़कर शिन्दे से तुरन्त सामंजस्य स्थापित कर लिया। हरिपन्त ने, जिसका वर्णन पहले हो चुका है, मध्यस्थ का महत्वपूर्ण कार्य किया। केन्द्रीय शासन के विचारों की एकता स्थापित करने के लिए महादजी ने मन्त्रियों द्वारा प्रस्तावित मैत्री बुद्धिमत्ता-पूर्वक स्वीकार कर ली। इससे यह भी स्पष्ट हो गया कि पूना शासन-सत्ता पर अधिकार करने का विचार उसमें कभी उत्पन्न नहीं हुआ था। अल्पवयस्क पेशवा शीघ्र प्रौढ़ता को प्राप्त हो रहा था तथा आशा थी कि वह समर्थ अधिकारी की भाँति कार्य करेगा। अतः इस समय सभी लोगों का कर्तव्य हो गया कि उसको अपना पूर्ण समर्थन दें। महादजी को मराठा बन्धुओं के विरुद्ध सैनिक शक्ति के उपयोग से घृणा थी। अपने जीवन में पहले केवल एक बार कोल्हापुर के राजा के विरुद्ध युद्ध में (१७७८) उसने इस उपाय का आश्रय लिया था। परन्तु एक तो यह कार्य उसने अनिच्छापूर्वक स्वीकार किया था, दूसरे इस कार्य में उसने यथाशक्ति नम्रता बरती थी। उसने अन्य समस्त युद्ध तथा संघर्ष मराठा राज्य के शत्रुओं के विरुद्ध किये थे। अपने हिन्दू भाई राजपूतों के विरुद्ध घेराबन्दी का उसे सदैव दुख रहा। गोहद का राना तथा राघोगढ़ का सरदार विद्रोही होने के कारण दण्ड के पात्र थे। अब उसने सोच-विचारकर पेशवा की गौरव-रक्षा के लिए पूना के मन्त्रिमण्डल से मैत्री कर ली।

अपने निष्कपट तथा स्पष्ट व्यवहार, घर बाहर की क्रीड़ाओं के प्रति अपने प्रेम तथा मराठा राज्य के कल्याण के प्रति अपनी सतत चिन्ता से महादजी ने पहले ही अपने स्वामी का हृदय जीत लिया था। पूना प्रशासन में विद्यमान अन्याय प्रकट करने तथा न्याय योग्य कई अभियोगों की ओर पेशवा का ध्यान आकृष्ट करने में उसने नेतृत्व ग्रहण कर रखा था। घासीराम के भ्रष्ट पुलिस प्रशासन, भोर के सचिव के दुर्व्यवहार, सतारा के राजा की शोचनीय अवस्था तथा अन्य कार्यों को महादजी ने प्रमुख रूप से पेशवा के सम्मुख उपस्थित कर दिया था। अपराधों की उचित रूप से जाँच करके अपराधियों को पर्याप्त दण्ड दिया गया। महादजी द्वारा एक वर्ष के शिक्षण तथा मार्गदर्शन के बाद पेशवा के दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन हो गया। पेशवा को अनुभव हुआ कि उसका

पालन-पोषण संकीर्ण तथा दुरावपूर्ण वातावरण में हो रहा था, जिससे अब वह मुक्त हो गया है। वह अपने अधिकारों तथा उत्तरदायित्व को समझने लगा। जैसे ही लाखेरी के शोचनीय काण्ड का समाचार प्राप्त हुआ, वैसे ही पेशवा ने नेतृत्व ग्रहण कर लिया तथा वह शिन्दे और नाना के बीच बैर-शान्ति कराने के व्यक्तिगत प्रयास में सफल हो गया।

अनेक मास तक महादजी ने मन्त्रियों को परिस्थिति की गम्भीरता का बोध कराने के लिए व्यर्थ परिश्रम किया, परन्तु वाद-विवाद तथा स्पष्टीकरण के अतिरिक्त कुछ उन्नति न हो सकी। पेशवा का विवाह अभी हाल में हुआ था। वह उन क्रीड़ाओं और आमोद-प्रमोदों से बहुत प्रसन्न होता था, जिनका प्रबन्ध शिन्दे करता था। हरिपन्त फड़के ने शिन्दे का विश्वास प्राप्त कर लिया तथा शिन्दे और नाना में स्थायी मैत्री कराने के लिए सचाई से प्रयत्न किया। हरिपन्त स्वभाव से विनयपूर्ण व्यक्ति था। उसमें कर्तव्य के प्रति गम्भीर चेतना थी। उसका कोई व्यक्तिगत स्वार्थपूर्ण उद्देश्य नहीं था। अतः वह उत्तम तथा अत्यन्त उपयुक्त शान्ति स्थापक सिद्ध हुआ। उसने शिन्दे से उसके शिविर में निर्भयतापूर्वक मिलना तथा उससे अनेक प्रश्नों की मौलिक व्याख्या प्राप्त करना स्वीकार कर लिया। इसके विपरीत शिन्दे से मिलने के लिए अकेले जाने में नाना को सदैव भय रहता था। शिन्दे फड़के की योजनाओं को समझता था। उसने अपनी सहानुभूति तथा सहयोग उदारतापूर्वक प्रस्तुत किया। उसके द्वारा शिन्दे को यह ज्ञान हुआ कि अपनी समस्त निर्बलताओं के होते हुए भी नाना प्रशासन चलाने के लिए एकमात्र समर्थ व्यक्ति है। कोई अन्य व्यक्ति उसका स्थान ग्रहण नहीं कर सकता। इसी प्रकार नाना से सविनय निवेदन किया गया कि वह शिन्दे की योग्यता को समझें तथा उसके कष्टों का अनुमान करे। नाना ने पूना प्रशासन की कमजोरियों को स्वीकार कर लिया तथा उनके सुधार के प्रति अपनी तत्परता प्रकट की।

लाखेरी के समाचार से कार्यों को द्रुतगति प्राप्त हो गयी। पेशवा ने नाना, शिन्दे तथा अन्य व्यक्तियों को तुरन्त अपने सामने बुलाकर उन दोनों (नाना तथा शिन्दे) से राज्य की निःस्वार्थ सेवा करने को कहा। उसने स्पष्ट शब्दों में कहा कि नाना तथा महादजी उसके दायें-बायें हाथ हैं तथा दोनों हाथों का परस्पर मिलकर कार्य न करना अपराध होगा। इस भाषण का चमत्कार-पूर्ण प्रभाव हुआ। २१ जुलाई, १७९३ को फतेहगढ़ से पामर ने कार्नवालिस को इस प्रकार लिखा : "पूना से आये विशेष समाचार द्वारा मुझको मालूम हुआ है कि पेशवा की विशेष आज्ञा से उसकी उपस्थिति में अभी-अभी होने वाले एक सम्मेलन में महादजी, नाना, हरिपन्त, तीनों सरदारों ने परस्पर

प्रतिज्ञा कर ली है कि वे अपने भेदभाव दूर कर देंगे, पेशवा के प्रशासन का समर्थन करेंगे, उत्तर भारत में शिन्दे की प्रामाणिकता पुष्ट कर देंगे, उसके तथा तुकोजी के बीच में कलह का समाधान कर देंगे तथा निजामअलीखाँ पर मराठा राज्य के दावों को बलपूर्वक लागू करेंगे। ये प्रतिज्ञाएँ एक मन्दिर में उनके धर्म की अत्यन्त गम्भीर विधि के अनुसार शपथपूर्वक धारणा की गयी हैं, जिससे वे पवित्र तथा अपरिवर्तनीय समझी जायें।"

निजामअली के दूत कल्याणराव तथा रघूत्तमराव ने जो पूना में निवास करते थे. २७ सितम्बर, १७९३ को निम्नलिखित समाचार भेजा : "शिन्दे ने पूना में अपने समस्त कार्य का इच्छानुकूल प्रबन्ध कर लिया है; उसकी बहियों पर पेशवा ने हस्ताक्षर कर दिये हैं। पेशवा ने स्वीकार कर लिया है कि शिन्दे को ५ करोड़ बाकी दिया जायेगा। उसे उत्तर भारत में कार्य प्रबन्ध का एकमात्र अधिकार मिलेगा, युद्धों में आवश्यकता पड़ने पर उसे पूना से सब प्रकार की सैनिक सहायता दी जायेगी तथा वह अपनी इच्छानुसार हिम्मत बहादुर गोसाईं के साथ व्यवहार कर सकता है।"[१६]

१ अक्तूबर, १७९३ को निजामअली ने केन्नेवे को सूचना दी : "मुझ को पूना से इस आशय का समाचार प्राप्त हुआ है कि महादजी की समस्त माँगों के प्रति मन्त्रिगण सहमत हो गये हैं। इनमें ५ करोड़ के व्यय का भुगतान भी शामिल है। यह विशाल धनराशि तत्क्षण प्राप्त न हो सकी। अतः शिन्दे को यह अनुमति दे दी गयी कि वह उत्तर में नवप्राप्त प्रदेश का प्रशासन उस समय तक करता रहे, जब तक समस्त धन प्राप्त न हो जाये। उसके बाद वह धन पेशवा को देता रहे। मन्त्रिमण्डल ने यह भी अंगीकार कर लिया है कि इस नवीन प्रदेश की रक्षा के लिए महादजी के निरीक्षणाधीन पेशवा की सेना का व्यय वे स्वयं सहन करेंगे।" शिन्दे के विवाद का मुख्य विषय आर्थिक संकट था, जिसका निर्णय अन्त में उसके पक्ष में ही हुआ। यह दूसरी बात है कि इससे वह अपने जीवन में लाभ नहीं उठा सका।

६. सचिव के साथ दुर्व्यवहार—यहाँ विवादग्रस्त कुछ अन्य विषयों का उल्लेख होना परमावश्यक है, जिनका सम्बन्ध महादजी के पक्ष समर्थन से है। सचिव के साथ दुर्व्यवहार इसी प्रकार का एक दुखद विषय था, जिसके विषय में जाँच होनी थी। लोगों को मालूम था कि महादजी कर्मठ पुरुष है और निर्भीक तथा निष्पक्ष भाव से मराठा प्रशासन में न्याय, औचित्य तथा निर्दोषिता लाने के लिए प्रयत्नशील है। जब महादजी ने पूना आकर प्रशासन

---

[१६] पूना रेजीडेन्सी करस्पौण्डेन्स, जिल्द १, पृ० २८३; तथा जिल्द २, पृ० १९४

पर अपना स्वस्थ नियन्त्रण आरम्भ कर दिया तो जनसाधारण ने अत्यन्त शान्ति का अनुभव किया। इस प्रशासन में बहुत-से दोष प्रवेश कर गये थे। जब महादजी ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन आरम्भ किया तो अनेक दिशाओं से पीड़ा तथा यातना की सहस्रों शिकायतें पहुँचने लगीं। दरिद्र तथा पीड़ित जनता में साहस हो गया कि वह आगे बढ़कर पूना के भ्रष्ट तथा अत्याचारी प्रशासन की निन्दा करे। राज्य के उत्तरदायी सदस्य के रूप में महादजी ने उनका अन्वेषण करके उनके प्रति न्याय करना तथा इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से पेशवा को प्रशिक्षण देना अपना कर्तव्य समझा। सचिव का प्रश्न इसी प्रकार का एक अनुपम अभियोग था। सचिव शिवाजी के संविधान के अष्ट प्रधानों में से एक जीवित सदस्य था। समय के परिवर्तन के साथ उन प्रधानों ने अपनी शक्ति तथा प्रभाव नष्ट कर दिया था। वे उस पैतृक सम्पत्ति पर अनिश्चित जीवन व्यतीत कर रहे थे, जिसको उत्तराधिकार में प्राप्त करने की अनुमति पेशवा देता आया था।

रघुनाथ शंकरजी सचिव का देहान्त ११ जुलाई, १७६१ को हो गया और उसका वयस्क पुत्र शंकरजी उत्तराधिकारी हुआ। इस शंकरजी के तीन पत्नियाँ थीं। बड़ी पत्नी सखाराम बापू की पुत्री थी और दूसरी रामशास्त्री की। अपनी रियासत के प्रबन्ध के लिए शंकरजी में आवश्यक चरित्र तथा योग्यता नहीं थी। उनके सम्बन्धी पूना में उच्च स्थानों पर आसीन थे, इसलिए दोनों पत्नियों की बहुत चलती थी। शंकरजी की विमाता परिवार में विरोध उत्पन्न करने वाली तीसरी नारी थी। इस उत्साहशील युवती विधवा ने परिवार के कार्यों को सँभालने के लिए निपुण प्रबन्धक की नियुक्ति के लिए नाना फड़निस से प्रार्थना की। इसके लिए बाजी मोरेश्वर की सेवाएँ प्राप्त हो गयीं। इससे सचिव के परिवार में दो दल हो गये—एक ओर स्वयं शंकरजी और उसकी पत्नी, दूसरी ओर उसकी विमाता, जिसका मार्गदर्शक नाना फड़निस द्वारा नियुक्त व्यक्ति था। प्रत्येक दल प्रबन्ध का अधिकार प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील था। इससे गतिरोध उपस्थित हो गया तथा स्थिति ने गम्भीर रूप धारण कर लिया। सचिव और उसकी पत्नियों को अन्न तक का कष्ट आ पड़ा और उनको घर में अपनी दैनिक पूजा से रोक दिया गया। शिकायतें पूना पहुँचीं और हरिपन्त फड़के ने जाँच करके नाना को परामर्श दिया कि बाजी मोरेश्वर को वापस बुला लिया जाये। नाना ने इस परामर्श को स्वीकार नहीं किया तथा अपने कर्मचारी को प्रबन्ध से हटाना अस्वीकार कर दिया।

कारभारी (प्रबन्धक) तथा अपनी विमाता के शासन से सचिव बहुत

अप्रसन्न था। नाना द्वारा नियुक्त प्रबन्धक तथा विमाता दोनों ने मिलकर गढ़ों पर अधिकार कर लिया तथा न्यायपूर्ण अधिकारी शंकर को कुछ नहीं समझा। उन्होंने सूचना भेज दी कि शंकर का दिमाग बिगड़ गया है। अपने इष्टदेव के रामनवमी उत्सव के लिए (२५ मार्च, १७९३) सचिव जेजूरी यथापूर्व गया। रामनवमी का यह उत्सव रंगपंचमी उत्सव के १२ दिन के बाद पड़ा था, जिसको शिन्दे ने पेशवा के लिए भव्य रूप से मनाया था। वहाँ पर स्वर्ण-प्रतिमा की पूजा के अधिकार पर उपद्रव हो गया। कारभारी बाजी ने यह अधिकार देने से इनकार कर दिया था। उसने कुछ सैनिक नियुक्त कर दिये कि सचिव इस स्वर्ण-प्रतिमा की पूजा न करने पाये। जब वह प्रार्थना में व्यस्त था, तभी इन लोगों ने उसके ऊपर आक्रमण कर दिया। परिणामस्वरूप वह तथा उसकी पत्नी (सखाराम बापू की पुत्री) घायल हो गये और लगभग सात सेवक मारे गये। जेजूरी की इन घटनाओं का समाचार पूना में महादजी के पास पहुँचा। उसने तुरन्त पेशवा के भवन में जाकर उससे प्रार्थना की कि वह किसी शक्तिशाली सेवक द्वारा सचिव के विरुद्ध इस अत्याचारपूर्ण कार्रवाई को रोके। महादजी ने अपने कुछ सैनिक जेजूरी भेजकर सविच को अपने वनवाड़ी के शिविर में बुला लिया तथा बाजी मोरेश्वर और उसके अनुचरों को पकड़वा लिया। इस कार्रवाई के कारण समस्त नगर में हलचल-सी मच गयी तथा मन्त्रियों का दल परिणामों के विषय में भयभीत हो गया। पेशवा ने जाँच की आज्ञा दी। जाँच से पता चला कि सविच को विष देने के लिए षड्यन्त्र रचा जा रहा था। इस काण्ड में नाना का व्यवहार गम्भीर रूप से संदिग्ध प्रतीत हुआ। एक बयान इस आशय का भी हुआ कि वर्तमान सचिव के विरुद्ध यह अत्याचार उसने इच्छापूर्वक आरम्भ किया था, क्योंकि वह सचिव के दिवंगत पिता से प्रतिशोध लेना चाहता था। यह भी कहा गया कि नाना का विचार शिवाजी के मन्त्रियों की समस्त जागीरें जब्त कर लेने का था। बाजी मोरेश्वर नाना की आज्ञा से कार्य करता था तथा वास्तविक तथ्यों को नाना के कानों तक नहीं पहुँचने देता था। नाना के प्रशासन का पक्षपात तथा भ्रष्टाचार प्रकट करने के लिए केवल यही उदाहरण पर्याप्त था। सचिव की महिलाओं ने महादजी से शिकायत करके हस्तक्षेप की प्रार्थना की। महादजी ने उनका पक्ष लेकर नाना फड़निस से स्पष्टीकरण की माँग की। नाना ने इसको अपने पद के प्रति हस्तक्षेप तथा अपमान समझा। इस पर महादजी ने अपना सचिव नाना के पास भेजकर कहलाया कि वह अन्यायों को दूर करे और खुले रूप में न्यायपूर्ण जाँच के बाद सचिव के प्रति अत्याचार बन्द कर दे।

कुछ समय तक महादजी तथा नाना के पारस्परिक सम्बन्ध बहुत बिगड़े रहे। पेशवा को इस अभियोग में बहुत रुचि थी। महादजी के दृढ़ समर्थन से उसे पता चला कि वह अपने राजप्रतिनिधि से स्वतन्त्र होकर कार्य करने में समर्थ नहीं है। महादजी ने उसे साहस दिलाया तथा मन्त्री का उल्लंघन करके अपनी सत्ता स्थापित करने में समर्थ बनाया। इस निमित्त विशेष व्यक्तियों का ध्यान रखे बिना उसे प्रशासन की न्यूनताओं का निराकरण करने की सलाह दी। कुशासन के अन्य अनेक प्रत्यक्ष उदाहरण भी प्रकाश में आ गये और महादजी ने उनकी जाँच की माँग की। जब नाना ने उत्तर दिया कि वह शीघ्र ही सचिव के अभियोग में जाँच आरम्भ करेगा तो महादजी ने कहा, "इस प्रकार की बहानेबाजी में मुझे कोई विश्वास नहीं रह गया है।" उसने यह भी कहा—"हाँ, मैं जानता हूँ आप किस प्रकार जाँच करेंगे। मैंने भी इस काण्ड की जाँच की है। मैं बिना जाँच के कुछ भी नहीं कह रहा हूँ। इस विषय में अपने स्वामी पेशवा से शिकायत करना व्यर्थ है, क्योंकि वह आपके हाथों की कठपुतली है। उसे कोई स्वतन्त्र अधिकार नहीं है। मैं पूना में एक वर्ष नष्ट कर चुका हूँ, पर कोई भी उन्नति नहीं हुई है। मैंने गत वर्ष आपसे कहा था कि सावन्तवाड़ी तथा बड़ौदा के गायकवाड़ों के प्रति न्याय करें। परन्तु आपने इस विषय में कोई कार्य नहीं किया। उत्तर भारत में जब मैंने अपना शासन स्थापित करने का प्रयत्न किया तो आपने मेरे प्रयासों को असफल करने और प्रत्येक दिशा में मेरी प्रगति रोकने के लिए होल्कर तथा अलीबहादुर को नियुक्त कर दिया। इस परिस्थिति में हमारी समस्त आशाएँ इस नन्हें-से पौधे अल्पवयस्क पेशवा पर केन्द्रित हैं, जिसकी शक्ति पर मराठा राज्य का भाग्य पूर्णतः निर्भर है। परन्तु इसका पालन आप इस प्रकार नहीं कर रहे हैं कि वह पूर्ण शक्ति को प्राप्त हो सके। आप उसे अपनी इच्छाशक्ति तथा स्वाधीनता का उपयोग करने का अवसर ही नहीं देते। मुझको तो इस समस्त व्यवहार में निश्चय तथा द्रुत विनाश दीख रहा है। क्या मैं पेशवा का आप ही के समान सुसेवक नहीं हूँ कि जाँच की आज्ञा दे सकूँ तथा जहाँ पर न्याय न होता हो, वहाँ न्याय कर सकूँ? इस विषय में मैं आपके समान स्वाधीनता से क्यों न कार्य करूँ? मैं स्वयं जाँच क्यों नहीं कर सकता?"

अनेक उल्लिखित अभियोगों में से यह केवल एक उदाहरण है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि पूना का प्रशासन केवल एक व्यक्ति के प्रभाव एवं अधिकार से चलता था तथा न्याय और निष्पक्ष व्यवहार का खुलेआम गला घोंट दिया गया था। महादजी इस विषय में नाना को प्रायः समझाता रहता था। सचिव के विषय में जब उसकी प्रार्थना पर कोई ध्यान नहीं दिया गया

तो महादजी पेशवा के पास गया तथा खुली सभा में उसने वे ही आरोप अत्यन्त उग्रता से लगाये। अन्त में पेशवा मान गया कि सचिव के प्रकरण ने इस प्रकार का गम्भीर रूप धारण कर लिया है। यह मुझे नहीं मालूम था। हरिपन्त ने उत्तर दिया कि अन्वेषण किया ही जाने वाला था। महादजी ने साग्रह कहा—"हाँ, आप ऐसा करने जा रहे हैं ? अब तो स्वामी स्वयं यह कार्य करेंगे तथा आप और हम परिणाम देखेंगे। इस प्रकार के अन्याय तथा अत्याचारपूर्ण व्यवहार से मुझको अपने पूर्वजों द्वारा प्राणों की बलि देकर स्थापित किये गये राज्य की भावी दशा के विषय में अत्यन्त भय तथा चिन्ता है। मेरा धैर्य समाप्त हो गया है। आपकी तथाकथित जाँच के लिए मैं अब एक क्षण भी प्रतीक्षा नहीं कर सकता। मैं भलीभाँति जानता हूँ कि इस प्रकार की जाँच किस तरह की जाती है तथा इसका फल क्या होता है। हे स्वामिन् ! मैं आपसे इसी क्षण स्पष्ट न्याय चाहता हूँ।"

भरी सभा में इस निष्कपट तथा स्पष्ट भाषण से व्याकुल होकर हरिपन्त ने सुझाव रखा कि इस प्रकार के वाद-विवाद खुले दरबार में न होकर व्यक्तिगत वार्तालाप में होने चाहिए। बात मान ली गयी और पेशवा नाना, हरिपन्त, महादजी तथा महादजी के चिटनिस कृष्णो बा को साथ लेकर तुरन्त एक निकटवर्ती कमरे में चला गया। वहाँ वे ही गरम शब्द दोहराये गये। नाना उत्तर में एक शब्द भी नहीं बोला। सभा विसर्जित हो गयी। महादजी ने अपने शिविर में वापस आकर पेशवा को तुरन्त निम्नांकित व्यक्तिगत पत्र भेजा :

"आप अपने योग्य सेवकों से भयभीत हैं। मैं इस अपमान को अधिक सहन नहीं कर सकता। ऐसा मालूम होता है कि इस विवाद में मेरे वास्तविक उद्देश्य को लोग नहीं समझ रहे हैं। अतः मैं उचित समझता हूँ कि आपकी सेवा से अलग होकर इस विशाल जगत् में अन्यत्र अपनी आजीविका खोजूँ।" महादजी के व्यक्तिगत सचिव रामजी पाटिल ने यह पत्र नाना तथा हरिपन्त की उपस्थिति में पेशवा को दिया। पेशवा ने निम्नलिखित उत्तर दिया : "हम आपकी सच्चाई तथा तत्परता का मान करते हैं। हमारी हार्दिक इच्छा है कि आपके विचारों का समर्थन किया जाये तथा प्रशासन में अविलम्ब आवश्यक सुधार किये जायें। हम सचिव को पूरा हरजाना देंगे।" इस पर महादजी कुछ दिनों तक दरबार से सर्वथा दूर रहा और पेशवा से नहीं मिला। पेशवा ने सन्देश भेजकर महादजी से मिलने आने की प्रार्थना की। महादजी ने इसका उचित उत्तर दिया और शनैः-शनैः प्रशासन को नवीन स्फूर्ति दे डाली। साथ ही पेशवा को अपने अधिकारों के प्रयोग में समर्थ बना दिया। सचिव के दुखों

को शीघ्र दूर किया गया। बाजी मोरेश्वर तथा उसके पुत्र को बेड़ियाँ डालकर कारावास का दण्ड दिया गया और उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली गयी। नाना के विश्वासपात्र एवं बाजी मोरेश्वर को प्रोत्साहन देने वाले अनेक लोगों को भी दण्ड दिया गया। सचिव को अपनी शक्ति तथा पद पुनः प्राप्त हो गया और उसे अपनी रियासत का यथापूर्व प्रबन्ध करने की अनुमति दे दी गयी।

इसी प्रकार के अन्याय तथा अत्याचार से सम्बन्धित अन्य मामले भी प्रकाश में आ गये। कुछ समय तक महादजी ने अपनी इच्छानुसार कार्य किया और अपने समक्ष आने वाले अनेक अन्याय सम्बन्धी मामलों में न्याय किया। यह घटना १७९३ के अप्रैल तथा मई मास में घटित हुई थी। इसके बाद महादजी का स्वास्थ्य धीरे-धीरे बिगड़ने लगा तथा आगामी वर्ष के आरम्भ में उसका देहावसान हो गया। कुछ ही दिनों बाद हरिपन्त फड़के की भी मृत्यु हो गयी। प्रशासन पुनः अपने पुराने ढर्रे पर चलने लगा। इसका जो परिणाम हुआ वह इतिहास में सदा सर्वदा के लिए अंकित है। "यह महत्त्वशाली कथा अत्यन्त दुखान्त है कि नाना जैसे गौरव प्राप्त कूटनीतिज्ञ ने, जिसने एक समय समस्त मराठा राज्य को विदेशी आक्रान्ता के विरुद्ध दृढ़ प्रतिरोध के लिए कटिबद्ध कर दिया था, अपनी वृद्धावस्था में इस प्रकार के संकीर्ण स्वार्थी उपायों का आश्रय लिया जिनके कारण मराठा राज्य का अन्त शीघ्र आ गया।"[१७]

७. घासीराम कोतवाल का दुखद अन्त—पूना मन्त्रिमण्डल के तत्कालीन कुशासन का यह एक अन्य ज्वलन्त उदाहरण है। यह घटना राजधानी में शिन्दे के आगमन के कुछ ही दिनों पूर्व घटित हुई। मराठों का पुलिस प्रशासन आजकल की परिपाटी से सर्वथा भिन्न था। नियमानुसार समस्त ग्राम्य प्रशासन ग्राम सभाओं के हाथों में था। पूना सदृश थोड़े-से ही नगरों को विशेष पुलिस प्रबन्ध की आवश्यकता थी, जिससे व्यापार का नियमन, जीवन तथा सम्पत्ति की रक्षा, और चोरी, व्यभिचार, मदिरापान, जुआ, हत्या आदि अपराधों की जाँच हो सके। थोड़े-से हाटों को छोड़कर, जहाँ जनसमुदाय क्रय-विक्रय के लिए सप्ताह में एक बार एकत्र होता था, कोई अन्य बड़े नगर नहीं थे। राजधानी पूना में नारो अप्पाजी दीर्घकाल से शासक रूप में नियुक्त था। नारो अप्पाजी ने अर्द्ध शताब्दी से निपुणता, न्याय तथा शान्ति के लिए अपूर्व ख्याति प्राप्त कर ली थी। उसकी सहायता के लिए पुलिस का कोतवाल भी

---

[१७] देखो बी० आर० नाटू कृत 'महादजी सिन्धिया की जीवनी', पृ० २५३-५६

हुआ करता था। पेशवा माधवराव के शासनकाल में पूना को बहुत महत्त्व प्राप्त हो गया था। उस समय प्रशासन सम्बन्धी पूर्णता के आदर्श के लिए सारा भारत इसी नगर की ओर देखता था। बाद में औरंगाबाद का निवासी घासीराम नामक उत्तर भारतीय ब्राह्मण ८ फरवरी, १७७७ को पूना का पुलिस कोतवाल नियुक्त किया गया। वह इस पद पर अपनी मृत्यु पर्यन्त बना रहा। उसकी मृत्यु ३१ अगस्त, १७९१ को विषम परिस्थिति में हुई। पेशवा नारायणराव की हत्या के बाद संकटापन्न समय में अपनी श्रद्धापूर्ण सेवा के द्वारा उसने नाना का विश्वास प्राप्त कर लिया था।

सार्वजनिक निन्दा से रहित निपुण पुलिस प्रशासन सर्वदा प्रत्येक शासन का दुष्प्राप्य गुण रहा है। आनन्दराव काशी तथा उसके उत्तराधिकारी घासीराम को नाना फड़निस का पूर्ण विश्वास प्राप्त था, क्योंकि इस मन्त्री (नाना) को मराठा शासन के संचालन के लिए गुप्तचरों की आदर्श व्यवस्था पर भरोसा था तथा इस प्रकार से प्राप्त समाचारों का उपयोग वह अपनी सैनिक निर्बलता की पूर्ति के लिए करता था। आनन्दराव तथा घासीराम दोनों ने नगर के प्रशासन में अनेक स्वस्थ सुधार किये। आनन्दराव काशी के विरुद्ध नाना के कानों तक पहुँचने वाली अनेक शिकायतें लेखबद्ध हैं। घासीराम का प्रशासन उसके पूर्वाधिकारी की अपेक्षा कुख्यात एवं निकृष्ट था। उसकी नियुक्ति रघुनाथराव तथा उसके परिवार की गतिविधि एवं योजनाओं पर ध्यान रखने और नाना को ऐसे समाचार भेजने के अभिप्राय से हुई थी जो उसके कार्य में उपयोगी हों। उसके अधीन निःशंक गुप्तचरों की विशाल संख्या थी। इनमें से प्रत्येक व्यक्ति के पास निर्दोष जनता को पीड़ित करने के लिए पर्याप्त साधन थे। इनके फलस्वरूप 'घासीराम' शब्द स्थायी रूप से अत्याचार तथा दुराचार का समानार्थक हो गया।

एक वास्तविक घटना की रिपोर्ट जिससे इस अधिकारी का आकस्मिक तथा दुखद अन्त हो गया, मैलेट इस प्रकार देता है—"कोतवाल के अधिकारियों द्वारा २४ ब्राह्मणों को एक तंग जगह में दम घोंटकर मार देने से पूना में अपूर्व हलचल उपस्थित हो गयी। इस हलचल का अन्त उस समय हुआ, जब सरकार ने स्वयं कोतवाल को उस जाति के ब्राह्मणों को दे दिया, जिनको दम घोंटकर मार दिया गया था। इन ब्राह्मणों ने ३१ अगस्त, १७९१ को अत्यन्त निष्ठुरता तथा निर्दयता से उसको पत्थरों द्वारा मार डाला।" इस विचित्र घटना की समकालीन रिपोर्ट भी पर्याप्त रूप से प्राप्य हैं। वे इस शोचनीय काण्ड के विशद विवरण का काम देती हैं। श्रावण मास में भारत के समस्त भागों के ब्राह्मण वार्षिक दान में भाग लेने के लिए पूना में एकत्र होते

थे। एक बार पूर्वी समुद्रतट के तेलगू प्रदेश के ३५ ब्राह्मण पूना में अपना कार्य समाप्त करके २९ अगस्त को तीसरे पहर अपनी वापसी यात्रा पर चल पड़े। वे अपनी यात्रा आरम्भ करने वाले ही थे कि उनको पुलिस अधिकारियों ने पूना छावनी में स्थित सेण्ट मेरी के गिरजाघर के पास पकड़ लिया तथा भवानी पेठ की चौकी के एक छोटे कमरे में रात भर बन्द रखा। कमरे में कोई खिड़की या रोशनदान न होने के कारण उनमें से अधिकांश दम घुटकर मर गये। दूसरे दिन प्रातः मानाजी फड़के नामक मराठा सरदार उधर से जा रहा था। जो लोग अब तक जीवित थे, उनके चीत्कारों से उसका ध्यान आकृष्ट हुआ। वह ताला तोड़कर अन्दर गया। वहाँ २४ लाशें मिलीं। ११ व्यक्ति जो अब तक जीवित थे, मुक्त कर दिये गये। फड़के ने तुरन्त राजभवन में जाकर स्वयं पेशवा को यह समाचार दिया। पेशवा ने जाँच के लिए अपने कुछ व्यक्ति भेजे। इस बीच घासीराम ने नाना फड़निस से मिल कर बताया कि ब्राह्मण अपनी कुटेवदश अफीम खाकर मर गये हैं। साथ ही उसने उनके दाह-संस्कार की आज्ञा के लिए प्रार्थना की। जब घासीराम तथा नाना इस विषय पर वार्तालाप कर रहे थे, तभी नाना को पेशवा से साग्रह आह्वान प्राप्त हुआ। पेशवा से मिलने पर नाना से पूछा गया कि उस विषय में वह क्या कर रहा है ? नाना ने उत्तर दिया कि वह उस विषय में जाँच करने जा रहा है और यदि घासीराम अपराधी पाया गया तो उसको दण्ड दिया जायेगा। नाना ने जाँच करने के लिए तुरन्त एक विश्वसनीय अधिकारी को भेजा। घासीराम ने प्रश्नों के उत्तर में कहा कि उन ब्राह्मणों को चोरी करने के कारण पकड़ा गया था और उन्होंने अफीम खाकर आत्महत्या कर ली है। इस प्रकार जाँच चल ही रही थी कि ३० अगस्त को ब्राह्मणों की मृत्यु का समाचार सारे शहर में फैल गया तथा पूना की ब्राह्मण जाति अपूर्व क्रोध के आवेश में भर गयी। हजारों व्यक्ति नाना के घर के सामने एकत्र हो गये और घासीराम को दण्ड देने के लिए चिल्लपुकार करने लगे। तीसरे पहर कोतवाल को पकड़कर बेड़ियाँ डाल दी गयीं। इससे जनसमूह को सन्तोष न हुआ। उन्होंने यह माँग रखी कि ब्रह्महत्या का पाप करने वाले कोतवाल को शास्त्रीय विधान के अनुसार हाथी के पैरों से कुचलवा दिया जाय। अय्या शास्त्री उस समय न्यायाधीश था। नाना ने उससे कहा कि वह जनसमूह को सम्बोधित करके परिस्थिति स्पष्ट करने तथा बिखरने की आज्ञा दे। परन्तु जैसे ही न्यायाधीश ने अपना व्याख्यान आरम्भ किया वैसे ही जनसमूह ने उस पर आक्रमण करके उसके साथ दुर्व्यवहार किया। इस पर स्वयं पेशवा ने कोतवाल को उचित दण्ड देने की आज्ञा दी। ३० अगस्त को रात्रि के

प्रथम पहर में घासीराम हाथी पर बैठाकर सड़कों पर निकाला गया तथा पार्वती पहाड़ी के नीचे वाले हाते में बन्द कर दिया गया। आगामी ३१ अगस्त को प्रातः नगर के ब्राह्मण पुनः नाना के घर के सामने इकट्ठे हो गये और उन्होंने माँग की कि कोतवाल हमारे सुपुर्द कर दिया जाये। इस बीच में नाना तथा पेशवा दोनों इस निश्चय पर पहुँच चुके थे कि घासीराम ही इतने निर्दोष ब्राह्मणों की अकारण मृत्यु के लिए उत्तरदायी है। उन्होंने उसको उसकी कोठरी से निकालकर ऊँट पर बैठाया और जनसमूह के सुपुर्द कर दिया। उन्होंने उसी तीसरे पहर को गारपीर के समीप उसको पत्थरों से मार डाला। घासीराम के घर और सम्पत्ति को सरकार ने जब्त कर लिया। नाना फड़निस ने इस काण्ड की सूचना छत्रपति को इन शब्दों में दी कि कोतवाल के अपराध बहुत बढ़ गये थे तथा जो दण्ड उसको दिया गया वह सर्वथा उसका पात्र था। इस प्रकार यह नहीं मालूम होता कि अपराध की पूर्ण रिपोर्ट मालूम होने पर भी नाना ने कोतवाल की रक्षा का प्रयत्न किया। उसने उस आज्ञा का तुरन्त पालन किया जो पेशवा ने संक्षिप्त अन्वेषण के बाद दी।

इस काण्ड का सम्बन्ध उस प्रथम सार्वजनिक कार्य से है, जिसकी ओर पेशवा ने अपना व्यक्तिगत ध्यान दिया और जहाँ उसने अपनी ही इच्छा से अपनी सत्ता प्रकट की। यह सर्वप्रथम अवसर था, जब से सर्वशक्ति-सम्पन्न नाना फड़निस का प्रभाव नष्ट होने लगा। कुछ महीनों में ही महादजी घटना-स्थल पर आ गया और अन्याय तथा भ्रष्टाचार के ऐसे ही अनेक अभियोगों का उत्तर देने में नाना हतबुद्धि हो गया। यह शिन्दे के शक्तिशाली प्रभाव का प्रत्यक्ष फल है, जिसका उपयोग उसने अन्तिम समय मराठा राज्य की दशा को उन्नत करने में किया। दुर्भाग्यवश महादजी शिन्दे की आकस्मिक मृत्यु से यह समस्त शुभ कार्य बीच ही में रुक गया।

अध्याय ६

तिथिक्रम

५ अक्तूबर, १७६३	रेन्हार्ट द्वारा पटना में अंग्रेजों का कत्लेआम।
४ मई, १७७८	रेन्हार्ट की मृत्यु—बेगम समरू द्वारा कार्यभार ग्रहण।
१७८०	दौलतराव शिन्दे का जन्म।
१७८५	रेमण्ड का टीपू सुल्तान के अधीन सेवा स्वीकार करना।
१७९१	डुड्रेनेक होल्कर की सेवा में नियुक्त।
२२ दिसम्बर, १७९१	रानाखाँ की मृत्यु।
५ जून, १७९३	महादजी की बीमारी का प्रथम समाचार।
जुलाई, १७९३	पूना सरकार के विरुद्ध महादजी की पूर्ण विजय।
१२ फरवरी, १७९४	महादजी शिन्दे की मृत्यु।
१० मई, १७९४	दौलतराव शिन्दे गद्दी पर।
११ मार्च, १७९५	खरदा का रण।
सितम्बर, १७९५	निजामअली के पुत्र आलीजाह द्वारा विष खाकर आत्महत्या।
२५ मार्च, १७९८	रेमण्ड की मृत्यु।
२७ जनवरी, १८३६	बेगम समरू की मृत्यु।

अध्याय ६

अन्तिम महान मराठा सरदार

[१७६४ ई०]

१. महादजी शिन्दे की मृत्यु । २. चरित्र तथा कार्य ।
३. भारत में यूरोपीय साहसिक । ४. महादजी के मुख्य अनुयायी ।

१. महादजी शिन्दे की मृत्यु—१ जून, १७६३ को लाखेरी के स्थान पर महादजी ने होल्कर के विरुद्ध निर्णायक विजय प्राप्त की । इसके कारण महादजी के पूना स्थित प्रतिद्वन्द्वी उन सभी बातों को स्वीकार करने के लिए विवश हो गये, जिनके लिए वह एक वर्ष से आग्रह कर रहा था । यह परिश्रम उसके जीवन का तीव्र गति से शोषण कर लेगा, इसमें उसे कोई सन्देह नहीं था । उसकी बीमारी का प्रथम समाचार ५ जून, १७६३ को पूना के एक समाचार पत्र में इस प्रकार प्रकाशित हुआ—"महादजी को ८ दिन से ज्वर आ रहा है । पेशवा तथा नाना फड़निस उसका स्वास्थ्य जानने के लिए मिलने आये । हरिपन्त भी प्रत्येक तीसरे दिन आता है ।"[१] यह रोग की केवल आरम्भिक अवस्था थी, जिसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया । किसी को यह सन्देह नहीं था कि यह किसी प्रकार से गम्भीर रोग है । यह महत्त्व की बात है कि रोग के इस प्रथम लक्षण के बाद महादजी की व्यक्तिगत रुचि के अनुकूल कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं हुआ । यद्यपि जुलाई, १७६३ में उसने व्यावहारिक रूप से पूना के मन्त्रिमण्डल से समस्त विवादग्रस्त विषय स्वीकृत करा लिये थे, फिर भी उसकी मृत्यु के पूर्व कुछ मासों में किसी कार्य का उल्लेख नहीं मिलता । उसके अन्तिम दिनों के सर्वथा विश्वसनीय वृत्तान्तों को ध्यान में रखते हुए उसको विष दिये जाने के सम्बन्ध में प्रचलित कल्पनापूर्ण दन्तकथाओं का सर्वथा तिरस्कार करना पड़ता है । पूना में स्वयं महादजी के व्यक्तिगत क्लर्क ने उत्तर भारत में नियुक्त उसके अधिकारियों के पास इस आशय के समाचार भेजे—"महादजी को जुकाम तथा ज्वर था । ५-७ दिनों तक ऐसा मालूम हुआ कि बीमारी भयंकर नहीं है और जल्दी ही दूर हो जायेगी क्योंकि गत दो मासों से वह कभी-कभी इसी प्रकार से शीत तथा ज्वरग्रस्त हो जाते थे । यह

---

[१] खरे, ३५१४

बीमारी ४-५ दिन तक रहती थी। उसके बाद उनकी दशा यथापूर्व ठीक हो जाती थी। १७९३-९४ में विकट शीत पड़ा, परन्तु महाराज नित्य अपने शिकार पर जाते रहे। उनको रहने वाला मन्द ज्वर कुछ समय तक गम्भीर नहीं समझा गया तथा चिकित्सक उसको साधारण औषधियाँ देते रहे। मंगलवार ११ फरवरी की प्रात: उनकी दशा सहसा बहुत बिगड़ गयी। ५-७ विशेषज्ञ परामर्श के लिए बुलाये गये। उन्होंने कुछ औषधियाँ दीं, परन्तु उनसे कुछ लाभ नहीं हुआ। व्याधि सहसा अपनी चरम सीमा को पहुँच गयी और रोगी का बोल बन्द हो गया। आगामी बुधवार १२ फरवरी की प्रात: नाना फड़निस उनसे मिलने आये, परन्तु कुछ वार्तालाप न हो सका। नाना ने तुरन्त वापस जाकर पेशवा को महादजी की दशा बतायी। दोनों शीघ्र ही पुन: आये, परन्तु उन्होंने महाराजा को मरणोन्मुख पाया। पेशवा ने अबा चिटनिस से कहा—"मैं सोना भेज रहा हूँ। आप तुरन्त तुलादान करा दें।" अबा ने उत्तर दिया—"सोना यहाँ भी है।" सायंकाल के समीप पेशवा अपने भवन को वापस गया। उसको शीघ्र ही महादजी की मृत्यु का समाचार मिला। पेशवा तथा उसके अधिकारी शीघ्र ही शिविर में पहुँच गये। बहुत बड़ा जुलूस बनाकर उसका शव निकाला गया तथा उसी रात्रि के प्रथम प्रहर में दाह-संस्कार हो गया। समस्त शिविर, नगर तथा देश में अत्यन्त दुखदायी अन्धकार छा गया है। भगीरथीबाई तथा दौलतराव बाबा तुलजापुर गये हुए हैं। शेष क्रियाएँ उनके आगमन पर ही होंगी।"

इस प्रकार १२ फरवरी, १७९४ को पूना के समीप वनवाड़ी के शिविर में ६७ वर्ष की आयु में महादजी का देहान्त हो गया। उसको अपनी मृत्यु निकट होने की ओई आशंका नहीं थी, अत: उसने अपनी मृत्यु के बाद की कोई व्यवस्था नहीं बनायी थी। उसकी इच्छा पुत्र-रत्न प्राप्त करने की थी; परन्तु यह आशा पूरी न हुई। उसने अपनी मृत्यु के कुछ मास पूर्व अपने चचेरे भाई आनन्दराव के १४ वर्षीय पुत्र दौलतराव को गोद लेने का निश्चय किया। उसका जन्म १७८० में हुआ था। इसी वर्ष उसके समकालीन रणजीतसिंह का जन्म हुआ।[२]

---

२ महादजी के भाई तुकोजी के (उन दोनों की माता रानोजी की द्वितीय पत्नी चिमाबाई थी) तीन पुत्र थे—कादरजी, रावलोजी तथा आनन्दराव। आनन्दराव का विवाह कोलाबा के येसाजी आंग्रे की पुत्री तथा बाबूराव (जिसको ब्राउटन प्राय: मामा साहब कहता था) की बहन मैनाबाई से हुआ। दौलतराव आनन्दराव तथा मैनाबाई का पुत्र था। कहा जाता है कि महादजी की माता चिमाबाई राजपूत महिला थी। उनका विवाह स्वाभाविक विधि के अनुसार न होकर उस समय के क्षत्रियों के

दौलतराव को नियमानुसार गोद लेने की विधि अप्रैल में सम्पन्न हुई और १० मई, १७९४ को यह बालक अधिकृत रूप से महादजी का उत्तराधिकारी स्वीकार कर लिया गया। महादजी के ९ पत्नियाँ थीं जिनमें से ५ का देहान्त उससे पहले ही हो गया था और तीन—अर्थात भागीरथीबाई, यमुनाबाई तथा लक्ष्मीबाई—बाद में भी जीवित रहीं। इनमें से लक्ष्मीबाई ने बाद में दौलतराव के विरुद्ध युद्ध में ख्याति प्राप्त की। इसमें सन्देह है कि उसकी एक पत्नी सती हुई या नहीं। महादजी की पुत्री बालाबाई का विवाह लाडोजी शितोले देशमुख से हुआ, जिसने बहुत दिनों तक अभिभावक के रूप में दिल्ली के शाह-आलम की सेवा की।

२. **चरित्र तथा कार्य**—महादजी का जीवनकाल उत्साहपूर्ण कार्यशीलता का लम्बा समय है। आधुनिक इतिहासकारों और उसके समकालीन मराठा, फारसी तथा अंग्रेज लेखकों ने इसकी सूक्ष्म विवेचना की है। इनके विशाल लेख इस समय हमें अध्ययन के लिए प्राप्य हैं। इस विचित्र पुरुष की अनेक जीवनियाँ भी प्रकाशित हो चुकी हैं, परन्तु उनमें विस्तृत तथा प्रामाणिक कुछ ही हैं।[२]

महादजी शिन्दे तथा नाना फड़निस दो प्रमुख व्यक्ति हैं, जिन्होंने मराठा इतिहास के पानीपत पश्चात काल में प्रायः परस्पर सहयोग भावना और कभी-कभी विरोध भावना में भी शासन किया है। उनके चरित्र तथा कार्य के यथार्थ

व्यवहारानुसार तलवार की सहायता से हुआ था। इस कारण उस समय की सामाजिक व्यवस्था के अनुसार महादजी का कुल नीच समझा जाता था। इस लांछन पर महादजी को सदैव बहुत दुख रहा तथा उसने उच्च-कुलीन परिवारों जैसे फालटन के निम्बालकर तथा वाड़ी के सावन्त लोगों से सम्बन्ध स्थापित करने का यथाशक्ति प्रयास किया। कुछ सीमा तक यह लांछन दौलतराव पर भी लगाया गया होगा। हमारे पास ऐसे पत्र हैं, जिनमें उल्लेख है कि महादजी तथा दौलतराव ने अपने कुल को उन्नत करने के प्रयत्न किये। कहा जाता है कि इस प्रकार का लांछन परिवार की तीसरी पीढ़ी में सर्वथा समाप्त हो जाता है।

महादजी के जीवन का सम्पूर्ण तथा विवेचनात्मक निरीक्षण प्रकाण्ड विद्वा बी० आर० नाटू द्वारा मराठी में प्रकाशित किया गया है। अर्द्ध शताब्दि पूर्व इसकी रचना हुई थी (१८९४) परन्तु विशुद्ध अनुमान के रूप में यः ग्रन्थ अब भी प्रामाणिक है। "भारतीय शासक माला" (रूलर्स ऑव इण्डिया सीरीज) में उस विषय पर कीन का ग्रन्थ केवल वर्णनात्मक प्रयास है। इसकी रचना ४० वर्ष पूर्व हुई थी। यह मूल ग्रन्थों के अनु-सन्धान से सर्वथा अपरिचित है।

अनुमान के विषय में कटुतापूर्ण विवाद होता रहा है। पूर्व प्रस्तुत वर्णन के सहारे पाठक इस विषय पर अपना निर्णय करने में समर्थ हो सकेंगे।

महादजी का व्यक्तिगत जीवन शुद्ध तथा दोषरहित था। उसकी पत्नियों की लम्बी सूची इसका प्रमाण मानी जा सकती है कि उसने अपना प्रेम शास्त्र-विहित सीमाओं के भीतर ही रखा। तुलजापुर में पुरोहित की सुन्दरी कन्या पर उसकी दृष्टि पड़ी तथा अविलम्ब विवाह करके उसको अपनी पत्नी बना लिया। धन, सत्ता तथा कीर्ति के विषय में सांसारिक समृद्धि की पराकोटि को प्राप्त होकर भी उसने सर्वथा निर्दोष तथा विवेकपूर्वक विशुद्ध जीवन व्यतीत किया। वह भक्तस्वभाव का पुरुष था। वह प्रार्थना के लिए नित्य कुछ न कुछ समय अवश्य निकाल लेता था। इस प्रार्थना में वह बाह्य जगत को भूल जाता था। उसने अनेक भक्तिपूर्ण गीत लिखे हैं, जिनमें से कुछ प्राप्त हुए हैं और हाल में प्रकाशित हो गये हैं। वह अपने धर्म का सच्चा अनुयायी था, परन्तु मुसलमानों तथा ईसाइयों से उसे कोई द्वेष नहीं था। बीड़ का बाबा मन्सूर-शाह मुसलमान होते हुए भी उसका गुरु था। महादजी उसका बहुत सम्मान करता था तथा दुख-सुख में उससे परामर्श लेता था। उस स्थान पर बाबा मन्सूर की समाधि को इस समय तक ग्वालियर राज्य से वृत्ति मिलती रही है। दत्तनाथ नामक हिन्दू सन्त महादजी द्वारा अपने शिविर में निवास के लिए प्रायः निमन्त्रित किया जाता था। वह कवियों, गायकों, ज्योतिषियों तथा प्रकाण्ड विद्वानों का आदर-सत्कार करता था, इससे सम्बन्धित उल्लेख प्राप्त हैं। एक स्थान पर वर्णन मिलता है कि वह मथुरा के समीप विचित्र शक्ति प्राप्त एक साधु से मिलने गया और उसके साथ बहुत समय तक एक कमरे में अकेला रहा। श्रावण मास में वह नित्य पवित्र भागवत पुराण की कथा सुनता था। ऐसा मालूम होता है कि वह संस्कृत भी अच्छी तरह जानता था।

रानोजी शिन्दे के समस्त पुत्र दृढ़ इच्छाशक्ति-सम्पन्न, क्रियाशील तथा उत्साही थे। केवल महादजी को छोड़कर शेष सबका देहान्त राष्ट्र की सेवा करते हुए युवावस्था में ही हो गया। महादजी के व्यक्तित्व का विकास विचित्र रूप से हुआ।

शिवाजी तथा बाजीराव के नामों की चमक महादजी द्वारा की गयी मराठा साम्राज्य की सेवाओं को धूमिल नहीं बना सकती। महादजी के सम-कालीन मुख्य व्यक्तियों का ध्यान करते ही आप स्वीकार कर लेंगे कि वह उनसे प्रत्येक क्षेत्र में आगे था। नाना फड़निस अपने व्यक्तिगत जीवन में पवित्रता के लिए प्रसिद्ध नहीं था। हरिपन्त फड़के सज्जन प्रकृति का आज्ञाकारी सहनशील पुरुष था, परन्तु उसके विशेष व्यक्तित्व का विकास ठीक से

नहीं हुआ था। होल्कर परिवार के नैतिक पतन को केवल अहल्याबाई का साधु चरित्र कुछ अंश तक साध लेता है। शिन्दे की कूटनीतिक सेवा सदैव पुरस्कृत हुई। यह सेवा दरिद्रता और अभाव की उन करुण कथाओं से सर्वथा भिन्न है जो विदेशी दरबारों में स्थित नाना फड़निस के दूत अपने पत्रों में प्रकट करते रहे। बनारस के चेतसिंह, राघोगढ़ के खीची सरदार, मछेरी तथा अलवर के प्रतापसिंह, वजीर गाजीउद्दीन और शाहजादा इस्माइल बेग तथा उसके अनुरूप अन्य प्रतिद्वन्द्वी, गोसाई बन्धु तथा स्वयं सम्राट ने महादजी से उदार तथा कोमल व्यवहार प्राप्त किया। निश्चय ही महादजी ने बहुत-सा धन कमाया, परन्तु तुकोजी होल्कर से सर्वथा विपरीत राजा की भाँति उसका व्यय भी किया। तुकोजी होल्कर ने अपने ही स्वामिभक्त सचिव नारो गणेश पर इस विचार से भयानक अत्याचार किया कि वह विवश होकर अपना गुप्त धन बता दे। घासीराम, बाजी मोरेश्वर या बलवन्तराव नागनाथ के काण्डों में प्रकट हुए अत्याचार तथा भ्रष्टाचार और इसी प्रकार प्रभु जाति को दिये अकारण कष्ट महादजी के प्रशासन में कभी भी नहीं सुनायी पड़े। वह बुद्धिमत्तापूर्वक मुसलमानों तथा अंग्रेजों से टक्कर लेने से बचता रहा। उसने मथुरा तथा वृन्दावन को मुस्लिम नियन्त्रण से मुक्त करा लिया तथा समस्त भारत में गोवध निषेध के लिए आज्ञा प्राप्त कर ली। १७८९ में बालाजी विश्वनाथ तथा शाहू ने सिद्धान्त रूप से जो योजना बनायी थी, उसे महादजी ने लगभग अर्द्ध शताब्दी के सतत परिश्रम द्वारा व्यावहारिक रूप से पूर्ण किया। मुस्लिम शासकों में शिवाजी तथा उसके कार्य के सम्बन्ध में जो विरोध भावना थी, वह औरंगजेब की मृत्यु के बाद की शताब्दी में पूर्णतः नष्ट हो गयी और उसका स्थान पारस्परिक विश्वास तथा प्रेम ने ले लिया था। महादजी द्वारा सम्राट के कार्यों का प्रबन्ध यही प्रकट करता है।[४]

महादजी के चरित्र का एक उल्लेखनीय रूप उसका जाति तथा धर्म के पक्षपात से मुक्त होना था। मुसलमान और हिन्दू समान रूप से उसका आदर करते थे। उसकी सेवा में ब्राह्मण, प्रभु, मराठे, महारे, साहूकार, व्यापारी सभी

---

४ नीचे, लगभग अज्ञात परन्तु सुस्पष्ट उदाहरण दिया जाता है। लखनऊ में आसफउद्दौला के शासन-काल में चमड़े से बनी वस्तुओं के मुसलमान दूकानदारों ने एक ब्राह्मण साहूकार को मार डाला। इस पर नगर के ब्राह्मणों को बहुत क्रोध आया तथा दोनों जातियों के बीच दंगे और खून होने लगे। क्रोधोन्मत्त मुसलमानों ने मन्त्री हैदरबेगखाँ तथा उसके हिन्दू मुनीम टिकैतसिंह के घरों पर आक्रमण कर दिया। आसफउद्दौला ने तुरन्त आक्रमणकारी मुसलमानों को दण्ड दिया तथा जुर्माने के रूप में उन पर भारी कर लगा दिया। आई० एस० दिल्ली ये० दो० '६३

प्रकार के लोग थे। इन पर उसको पूरा विश्वास था और इन्हें योग्यतानुसार उन्नति करने के समान अवसर प्राप्त थे। सैनिकों तथा कूटनीतिज्ञों के रूप में महादजी की सेवा में सारस्वत ब्राह्मणों ने विशेष गौरव प्राप्त किया। जीवबा दादा बख्शी, लकबा लाड़, बालाजी अनन्त पिंगे, जगन्नाथ राम उर्फ जगोबा बापू, कोटा का लालाजी बल्लाल—कुछ ऐसे सारस्वत ब्राह्मणों के नाम हैं जो उस समय के इतिहास में स्थान प्राप्त कर चुके हैं।

महादजी शिन्दे तथा नाना फड़निस के जीवनकाल में उत्तर तथा दक्षिण की लम्बी दूरी के बीच मराठा राज्य के कार्यों का संचालन पत्र-व्यवहार द्वारा होता था, इसलिए पत्रलेखन-कला तथा राजकीय पत्रों के आकार निर्धारण में विशेष पूर्णता प्राप्त की गयी। इस सम्बन्ध में नारोशंकर, सदाशिव दिनकर, बालाजी जनार्दन तथा इसी प्रकार के अन्य व्यक्तियों के नामों का उल्लेख उस समय के इतिहास में विशेष रूप से है। नाना तथा महादजी दोनों सख्त काम लेने वाले स्वामी थे। सदाशिव दिनकर में दोनों सरदारों के बीच होने वाले लम्बे तथा कटु विवाद को अत्यन्त संक्षिप्त रूप में लिखने तथा उसी आधार पर रिपोर्ट भेजने की अद्भुत क्षमता थी। वास्तव में सदाशिव के पत्र १८वीं शताब्दी के मराठी गद्य के आदर्श उदाहरण मालूम होते हैं। उनसे प्रकट होता है कि सचिवों तथा अधीनस्थ अधिकारियों के लिए महादजी सदृश स्वभाव के व्यक्ति के साथ व्यवहार करना कितना कठिन कार्य था। वह बहुत अंश तक भावुक तथा प्राय: प्रतिशोध लेने वाले स्वभाव का था और अपने विरोधियों को अनेक प्रकार से हतबुद्धि कर सकता था। मनुष्यों तथा समस्याओं से निपटने का उसका अपना ढंग था। शिन्दे से किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए, यह वारेन हेस्टिंग्ज भी नहीं जानता था। उसका यह नियम-सा था कि वह अपने सेवकों को कभी नहीं निकालता था। जब तक उसके ज्ञान में वे ईमानदार रहते थे, तब तक वह उन पर पूरा विश्वास करता था।

पेशवा परिवार के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करने में महादजी कभी नहीं चूकता था। वह प्राय: कहा करता था कि उसने जीवन का प्रत्येक सुख प्राप्त कर लिया है और उसके पास किसी सांसारिक वैभव का अभाव नहीं है। नाना फड़निस के साथ कठोर मतभेद होते हुए भी उसने कोई ऐसा कार्य नहीं किया, जिससे मराठा राज्य के हितों को किसी प्रकार की हानि पहुँचे। उसने अनेक गम्भीर समस्याओं तथा परिस्थितियों का सामना किया और बाह्य जगत के असाधारण पुरुषों—उदाहरणार्थ हैदरअली, टीपू सुल्तान, शाहआलम, वारेन हेस्टिंग्ज, रघुनाथराव, मोरोबा तथा नाना फडनिस—से सफलतापूर्वक व्यवहार किया। नाना महादजी से १५ वर्ष छोटा था, परन्तु वह विशेष आदर सहित

नाना का सम्मान करता था। पूना में महादजी के अन्तिम आगमन के अवसर पर नाना प्राय: उसके शिविर में मिलने आता था। महादजी सदैव उसके बराबर बैठने से इनकार कर देता और आदरपूर्वक उससे दूर बैठता था, मानो अपने से बड़े व्यक्ति के सामने बैठा हो। नागपुर के भोंसले परिवार के समान उसने केन्द्रीय शासन से पृथकत्व की भावना को कभी प्रोत्साहन नहीं दिया, क्योंकि बढ़ती हुई ब्रिटिश सत्ता की ओर से होने वाले संकट के सम्मुख इस प्रकार की वृत्ति सबके लिए समान रूप से घातक थी। महादजी को उन्नतशील अल्पवयस्क पेशवा से बहुत आशाएँ थीं। महादजी ने उसे मराठा राज्य का योग्य अधिपति बनाने के लिए यथाशक्ति बहुत प्रयास किया।

महादजी शिन्दे तथा उसके चरित्र पर सर यदुनाथ सरकार की टिप्पणी इस प्रकार है[५] : "अपने समय के उत्तर भारतीय इतिहास पर महादजी शिन्दे का वीरतापूर्ण व्यक्तित्व एक विशालकाय दानव की भाँति छाया हुआ है। उसके पास साधनों की कमी थी और उसके सहायक तथा मित्र उसे प्राय: धोखा देते रहे। उसे अनेक चिन्ताजनक संकटों का सामना करना पड़ा। जेम्स ऐण्डर्सन तथा विलियम पामर सदृश सहानुभूतिपूर्ण रेजीडेण्टों ने भी उसके निश्चित पतन की भविष्यवाणी की थी। तथापि अन्त में उसने सब पर विजय प्राप्त कर ली। हम जानते हैं कि बलवती धार्मिक भावना उसके जीवन का सम्बल थी। आधुनिक राष्ट्रवादी इसे अन्धविश्वास कहें, यह बात अलग रही। हम देखते हैं कि इस कार्यव्यस्त शक्तिशाली पुरुष ने अपने सांसारिक वैभव की पराकाष्ठा प्राप्त करने पर भी प्रगाढ़ पारिवारिक प्रेम, स्वाभाविक आध्यात्मिक सौम्यता तथा पूजनीय व्यक्तियों के प्रति सम्मान में कमी नहीं आने दी।

"दिल्ली के शाही शासन पर मराठा नियन्त्रण स्थापित करने तथा पानीपत के कलंक को मिटाने के लिए निस्सहाय महादजी ने पूना दरबार के गुप्त विरोध तथा छेड़छाड़ के होते हुए भी परिश्रम किया। महादजी ने वकीले-मुतलक, बख्शी उलमुमालिक, अमीरुलउमरा, आलीजाह, राजपुत्र उपाधियों सहित दिल्ली के साम्राज्य के एकमात्र राजप्रतिनिधि का जो प्रधान वैभव प्राप्त किया, वह उसके लिए केवल काँटों का ताज था। पतनशील दिल्ली राज्य के मुस्लिम सामन्त तथा भूतपूर्व सरदार और उनके उत्तर भारतीय हिन्दू सहायक, अधीन राजपूत राजा-महाराजा और कुछ ब्रिटिश रेजीडेण्ट भी उसकी प्रत्येक विपत्ति तथा पराजय पर हर्ष मनाते हुए उसके अवश्यम्भावी सर्वनाश की प्रतीक्षा करते थे। पूना की सरकार ने उसकी विषम आवश्यकता के समय धन तथा सेना

---

५ ग्वालियर के ऐतिहासिक पत्रों की भूमिका देखो।

की सहायता देने से इनकार करके उसका सार्वजनिक अपमान किया। उसने पेशवा के लिए सम्राट से (दिसम्बर, १७८० में) जो खिलअतें और बहुमूल्य उपहार प्राप्त किये थे, वे अस्वीकृत कर दिये गये तथा वर्षों तक उज्जैन में पड़े सड़ते रहे। वे उपहार उस समय स्वामी द्वारा जीवित मराठा सरदारों में सबसे महान तथा सफल व्यक्ति (महादजी) के प्रति प्रदर्शित सार्वजनिक अपमान के सूचक बन गये। पूना मन्त्रिमण्डल के पत्रों में कहा गया कि वह धूर्त तथा निष्ठाहीन सेवक है। वह दिल्ली की अतुल सम्पदा से अपने पूजनीय ब्राह्मण श्रीमन्त को वंचित रखकर अपने उत्कर्ष पर तुला हुआ स्वार्थी है।

"महादजी ने इन सबको असीम धैर्य से सहन किया तथा अपने विदेशी शत्रुओं और नाममात्र के सहायकों द्वारा अपने चारों ओर शनैः-शनैः ताने हुए षड्यन्त्रों के जाल को काटने के कार्य में व्यस्त रहा। अन्त में उसकी विजय हुई। यह विजय वर्षों की असफलता, भाग्य-चक्र के परिवर्तन तथा घोर व्यक्तिगत क्लेश सहन के भारी मूल्य पर प्राप्त की गयी थी। वह मित्रहीन तथा दलहीन भारतीय शासक के रूप में मराठा इतिहास का अद्वितीय शोभाशाली उत्तुंग शिखर है। उसने अपने प्रति निष्ठावान सरदारों का दल बनाया और अन्त में उसने निस्सन्देह विजयी होकर अपने शत्रुओं तथा निष्कपट मित्रों को आश्चर्यान्वित कर दिया। परन्तु यह विजय मूल्यवान समय की भयानक क्षति तथा साधनों की अनिवार्य हानि के बाद प्राप्त हुई थी। यदि नाना फड़निस आरम्भ में महादजी की सहायता करता तो शिन्दे जनवरी, १७८९ में प्राप्त हुई मराठा जाति की अजेय स्थिति चार वर्ष पूर्व ही प्राप्त कर लेता। यदि यह आरम्भिक लाभ अपने स्वाभाविक परिणाम के रूप में महादजी का जीवनकाल बढ़ा देता तो मराठा इतिहास का समस्त मार्ग भिन्न ही होता, क्योंकि इस प्रकार वह संघर्ष तथा पराभव से भरे चार वर्षों के अनावश्यक कष्टों से बच जाता।"

पूना रेजीडेन्सी पत्र-व्यवहार के प्रथम खण्ड में प्रकाशित इंगलिश पत्रों से "इस ऐतिहासिक काल के गूढ़ अर्थ प्रकट होते हैं। इनमें हम महादजी के मास प्रतिमास के कष्टों को देखते हैं, जिनसे उसको संघर्ष करना पड़ा। उसके विभिन्न उपायों तथा दृढ़ निश्चय देखते हैं, जिनको घटनास्थल पर उपस्थित अंग्रेज पर्यवेक्षकों ने गलती से मूर्खतापूर्ण दुराग्रह समझा। अन्त में इन्हीं पत्रों में हमें उसकी सफलता भी प्रतिध्वनित होती है। इन्हीं पत्रों में उसकी नम्रता संयम, इंगलिश मैत्री के प्रति दृढ़ता, दूसरों के चरित्र को परखने और अपने लिए उत्तम सहायक प्राप्त करने की तथा निराशा एवं विह्वलता के समय स्पष्ट नीति पथानुसरण की क्षमता का भी ज्ञान हो जाता है। इस दशक में महादजी

के पास क्रमशः आने वाले ब्रिटिश रेजीडेण्टों के कार्यकलाप से ब्रिटिश नीति पूर्णतः झलकने लगती है।"[६]

लालसोट के समय बहुत दिनों तक महादजी के शिविर में रहने वाला आदरणीय हिन्दू साहूकार अबाजी नायक वनवले बाद को १७६० में अहल्या-बाई से मिला। उस महिला द्वारा किये गये प्रश्नों के उत्तर में अबाजी ने उत्तर भारत में शान्ति तथा व्यवस्था स्थापित करने एवं विरोधी राजपूत संघ को भंग करने के लिए महादजी द्वारा कृत शुभ कार्य की उत्तम शब्दों में प्रशंसा की। साथ ही साहूकार ने तुकोजी होल्कर तथा अलीबहादुर की अत्यन्त निन्दा भी की।[७]

कीन लिखता है—"महादजी सहज ही क्रुद्ध हो जाता था, पर सरलता से शान्त नहीं होता था। वह दूसरों का अपकार यदा-कदा ही क्षमा करता था, परन्तु उपकार को कभी नहीं भूलता था। वह आवश्यक होने पर कठोर दण्ड देता था। उसका दण्ड किसी को असन्तोषजनक नहीं होता था। उसे किसी को अनावश्यक कष्ट देने का अभ्यास नहीं था। प्रस्तुत सेवा के लिए पुरस्कार देते समय उसकी असीमित कृतज्ञता कुछ भी नही भूलती थी। इसी कारण लोगों ने श्रद्धा तथा प्रेम से उसकी सेवा की। यह देखे बिना दि बायने के संस्मरणों को पढ़ना असम्भव है कि शिन्दे की सफलता बहुत अंश तक उसके नैतिक चरित्र द्वारा प्राप्त प्रशंसा के कारण थी, महादजी की सफलता में उसके आचरण की स्थिरता, सत्य प्रतिज्ञता तथा उद्देश्य की निश्चलता के प्रति उसके अधीन कर्मचारियों की निष्ठा भी कारण थी। वह वास्तव में मनमौजी न होते हुए भी प्रसन्नचित्त रहता था। असाधारण काले रंग का होते हुए भी उसकी मुखाकृति से प्रेम तथा बुद्धिमानी झलकती थी। एक नववयस्क इटैलियन चित्रकार (वेल्स) ने सौभाग्यवश उसकी यथार्थ मुखाकृति ग्रहण कर ली थी। उसने पूना में मृत्यु के कुछ ही पूर्व उसका चित्र बनाया था। वह सरल स्वभाव तथा मिताहारी था। अपनी श्रेणी के साधारण व्यक्तियों की अपेक्षा वह अधिक शिक्षित था। वह पढ़ना-लिखना जानने के अतिरिक्त अच्छा मुनीम भी था। उसको फारसी तथा उर्दू का कामचलाऊ ज्ञान था। वह व्यापार में कुशल था तथा युद्ध या नागरिक प्रशासन के सूक्ष्म विवरणों की चिन्ता किये बिना अच्छे कार्यकर्ता चुन सकता था। उन पर वह पूर्ण विश्वास करता था और वे उस विश्वास के लिए योग्य सेवा करते थे। जिन अधिकारियों को उसने

---

६ पूना रेजीडेन्सी करस्पौण्डेन्स, भाग ६ का परिचय।

७ महेश्वर दरबार के पत्र, जिल्द २, पृ० २०५। कीन कृत 'महादजी शिन्दे', पृष्ठ १६२

उज्जैन तथा ग्वालियर में नियुक्त किया, वे उसकी लड़ाइयों तथा कार्यों के प्रबन्ध में कम सफल नहीं हुए। वह अपूर्व कष्ट के समय सफल होने वाला क्षमताशाली भारतीय शासक था। प्राचीन मराठा युद्ध-शैली के परित्याग, अपने मुख्य परामर्शदाता रानाखाँ तथा अपने धर्मपथ-प्रदर्शक मंसूरशाह सदृश मुसलमानों का पक्ष लेने के कारण उसकी ओर उत्साहपूर्वक ध्यान नहीं दिया गया। यह बात दूसरी है कि उसके साथ स्पष्ट घृणा न की गयी हो।"

महादजी के जीवन के चार स्पष्ट विभाग हैं। प्रथम का विस्तार पानीपत पूर्व समय तक है। इस समय वह सर्वथा अज्ञात व्यक्ति था और अपने तेजस्वी बन्धुओं की छाया द्वारा आवृत्त था। दूसरे विभाग का विस्तार पानीपत के आरम्भ से दिल्ली में सम्राट की पुनः स्थापना तक है। यह उसका प्रयास काल है। इसी में उसने वह प्रधान योग्यता प्राप्त की, जिसके द्वारा वह ब्रिटिश सत्ता से युद्ध करने और नाना फड़निस तथा पूना के मन्त्रियों से सहयोग पाने में समर्थ हो सका। तृतीय काल में उसने अपने आप युद्ध तथा कूटनीति का अमूल्य अनुभव प्राप्त किया। इस अनुभव की वास्तविक परीक्षा सालबई की सन्धि से आरम्भ होने वाले उसके जीवन के चतुर्थ काल में हुई। इसका अन्त उत्तर भारत में प्राप्त महान सफलताओं में होता है। यदि किसी व्यक्ति को हिन्दू-पद-पादशाही के मराठा स्वप्न को पूर्णरूप से कार्यान्वित करने का श्रेय दिया जा सकता है तो वह अवश्य ही महादजी शिन्दे है। महादजी की मृत्यु पर मेलेसन की निम्न टिप्पणी है—"महादजी शिन्दे की मृत्यु से मराठों का योग्यतम योद्धा तथा सर्वोपरि भविष्य द्रष्टा राजनीतिज्ञ जाता रहा। अपने जीवन में उसके दो मुख्य उद्देश्य थे—पहला भारत में एक राज्य की स्थापना और दूसरा अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष की तैयारी। कहा जा सकता है कि वह दोनों में सफल हुआ। महादजी द्वारा स्थापित राज्य बहुत दिन बाद तक जीवित रहा। महादजी के कुशल मार्गदर्शन के अभाव मे उसकी मृत्यु के ८ वर्ष पीछे लेक तथा वेलेजली ने उसकी सेना का सर्वनाश कर दिया। यदि वह जीवित रहता तो टीपू के अश्वारोही तथा फ्रेंच दल को, निजाम के शक्ति-सम्पन्न तोपखाने को, राजपूतों के समस्त बल को तथा इन्दौर, बड़ौदा और नागपुर से संगठित होने वाले प्रत्येक मराठा सैनिक प्रभाव को एक ध्वज के नीचे एकत्र कर सकता था। अन्तिम सफलता चाहे प्राप्त न होती, पर संयुक्त भारत तथा अंग्रेजों के बीच संघर्ष की महान समस्या के निमित्त भयानक युद्ध हो सकता था। उसकी मृत्यु से इसका निपटारा हो गया। महादजी की मृत्यु के बाद इस अशुभ परिणाम के लिए केवल समय का प्रश्न रह गया।[८]

---

८ मैलेसन कृत 'भारत के देशी राज्य', पृ० १४५

दक्षिण में महादजी की पैतृक सम्पत्ति अहमदनगर जिले के जामगाँव में थी। यहाँ उसने भवन तथा गढ़ बनवाये। यहाँ पर निवास करने को वह प्रायः इच्छुक रहता था। उसने अपने राजभवन का नाम अपने मुसलमान गुरु के नाम पर साहेबगढ़ रखा। स्वयं उसके द्वारा प्रशिक्षित कुछ विशेष भारतीय अधिकारियों के अतिरिक्त उसकी नवीन आदर्श सेना में लगभग दो सौ यूरोप निवासी सेवा करते थे। कानपुर में ब्रिटिश शिविर से पाश्चात्य विज्ञान तथा सैनिक-सज्जा के उपयोगी विवरण उसने सावधानीपूर्वक प्राप्त किये और अपनी सेना को उन्नत करने के लिए इनका उपयोग किया।

एक मराठी पत्र में महादजी की सम्पत्ति के वास्तविक मूल्य की तालिका इस प्रकार है :

	नकद रुपये, आभूषण आदि
गोहद के राना से	३२ लाख
मिर्जा शफीखाँ से	३३ लाख
अफरासियाबखाँ से	४० लाख
जहाँगीरखाँ आदि से	४ लाख
नारायणदास से	३ लाख
मुहम्मद बेग हमदानी से	६ लाख
रणजीतसिंह जाट द्वारा सिक्ख प्रशासन से	१२ लाख
जयनगर के राजा से—दो बार	८५ लाख
पटियाला प्रशासन से	६ लाख
दतिया तथा भदावर से	८ लाख
शाही भूमि से	३ लाख
मछेरी के प्रतापसिंह से	४ लाख
गुलाम कादिर से	६० लाख
	कुल जोड़ २९६ लाख रुपये
	दो करोड़ तथा छियानवे लाख रुपये।

इनके अतिरिक्त ८१५ तोपें छीने जाने का उल्लेख है। ऊपर लिखी नकद सम्पत्ति के अतिरिक्त महादजी द्वारा २ करोड़ ८५ लाख वार्षिक आय का प्रदेश जीते जाने का वर्णन है।

सम्राट की रियासतें, जिनमें नजफखाँ तथा गुलाम कादिर की रियासतें भी सम्मिलित हैं :	२ करोड़ २५ लाख
गोहद के राना का प्रदेश	४२ लाख
भदावर, कछवाघर-भंडेर	१८ लाख
	कुल २ करोड़ ८५ लाख[९]

९ पारसनिस की 'बैजाबाई की जीवनी', पृ० १३

कुछ लेखकों—विशेषकर अंग्रेज लेखकों—ने कहा है कि महादजी की इच्छा पेशवा के शासन से स्वतन्त्र हो जाने की थी। यह सर्वथा गलत धारणा है और इसके खण्डन की आवश्यकता नहीं है। मराठा राज्य के टुकड़े करने के लिए ब्रिटिश नीति ने अथक प्रयास किया। महादजी संयुक्त मोर्चे का मूल्य अच्छी तरह समझता था। उसका उद्देश्य मराठा राज्य का संगठन इस प्रकार करने का था कि भारत में ब्रिटिश सत्ता की वृद्धि रोकी जा सके। अतः पूना के मन्त्रिमण्डल की ओर मैत्रीपूर्ण आश्रयदाता की वृत्ति प्रकट करना उसके लिए स्वाभाविक था। इस प्रकार वे शिन्दे का नियन्त्रण करना चाहते थे, क्योंकि उन्हें उससे ईर्ष्या थी।

३. **भारत में यूरोपीय साहसिक**—महादजी का पानीपत के बाद का जीवन भारतीय इतिहास में कई क्रान्तिकारी परिवर्तनों के कारण महत्त्वशाली है। इन परिवर्तनों में अनेक प्रसिद्ध भारतीयों तथा यूरोपीयों का हाथ है। किसी राष्ट्र के भाग्य का अन्तिम निर्णायक तत्त्व उसकी सैनिक-शक्ति होती है। बाबर द्वारा दिल्ली में प्रभुता स्थापित करने के समय भारतीय जगत तोपखाने के आगमन से चकित हो उठा था। बाद में मलिक अम्बर तथा उसके सहायक शाहजी की विलक्षण बुद्धि के कारण यह शक्ति भी प्रभावहीन हो गयी, क्योंकि उन्होंने महाराष्ट्र सदृश दुर्गम पर्वतीय प्रदेश के लिए उपयुक्त एक अन्य युद्ध-शैली का आविष्कार कर लिया था। इस शैली को गुरिल्ला युद्ध कहते हैं। अपनी दुर्ग-पंक्तियों के साथ-साथ शिवाजी ने इसका विकास किया। लगभग एक शताब्दी तक (१६५०-१७५०) भारत में इसका प्राधान्य रहा। १८वीं शताब्दी के मध्य में डुप्ले तथा बुसी ने तोपखाने की सहायता के लिए यूरोपीय शैली द्वारा प्रशिक्षित पैदल सेना का समावेश किया।[१०] इस परिवर्तन को पूरी तरह अपनाने में कुछ समय लग गया। यद्यपि सदाशिवराव भाऊ अपनी तोपों की सहायता से पानीपत में विजय प्राप्त करने में असफल रहा, तथापि यह स्पष्ट हो गया कि भारत की भावी राजनीति पर शासन करने वाले एक नवीन युग का आरम्भ हो गया है। इस प्रकार पानीपत के पश्चात लगभग समस्त भारतीय शक्तियों में अस्त्र-शस्त्रों के लिए तीव्र स्पर्धा आरम्भ हो गयी। प्रत्येक ने अपने सामर्थ्य तथा अवसर के अनुसार एक या अधिक यूरोपीय कप्तानों को नियुक्त किया। इस समय इस स्वर्ण-भूमि भारत में शीघ्र अभ्युदय प्राप्त होने के लिए ये लोग पर्याप्त संख्या में आते थे। पुर्तगाली, फ्रेंच,

---

[१०] विद्यार्थियों को परामर्श है कि वे भूतपूर्व प्रो. एच. जी. लिमये कृत 'गनिमी काका आणि कवाइती कम्पू' नामक पुस्तक में गुरिल्ला युद्ध की सफलता तथा असफलता का उत्तम विश्लेषण देखें।

इटैलियन, ब्रिटिश, जर्मन तथा यूरोप के अन्य राष्ट्रों के लोग १८वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत की ओर दौड़ पड़े। उन्होंने भारत की भावी राजनीति के निर्माण में सहायता की। विद्यार्थियों को प्रायः कुछ प्रसिद्ध नामों से परिचय है—जैसे दि बायने, पेरों, रेमाण्ड तथा डुड्रेनेक—परन्तु रेने मैडक, वाल्टर रेनहार्ट तथा उसकी पत्नी बेगम समरू, जार्ज टामस, स्किन्नर, विकर्स, बूरक्वीं, हेस्टिंग्ज सदृश अनेक अन्य व्यक्ति तथा बाद में रणजीतसिंह द्वारा अपनी सेवा में नियुक्त फ्रेंच जन भी इसी श्रेणी में आते हैं। महादजी शिन्दे तथा दि बायने के बीच लगभग ८ वर्षों तक सौभाग्यपूर्ण शक्ति सहयोग रहा। दि बायने बीमार हो गया तथा दिसम्बर, १७९५ में उसने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। सितम्बर १७९६ में वह भारत से चल दिया।

इन विदेशी कप्तानों की क्षमता को समझकर उनमें परस्पर भेद करना भारतीय शासकों के लिए कठिन कार्य था। भारत आने वाला प्रत्येक यूरोपीय अपने को प्रशिक्षित सेनापति बताता था। वह साधारण समाज के निम्न-वर्ग से निर्वाह के साधनों से रहित सौ से हजार तक भारतीय एकत्र कर लेता था। इनको सैनिक वस्त्र पहनाकर कुछ ही मासों में सैनिक सेवा के लिए प्रशिक्षित कर लिया जाता था। इन यूरोपीय साहसिकों की निष्ठा अविचल नहीं थी, वे लोग केवल धन के दास होते थे। अपने हितानुसार वे स्वामी का भी परिवर्तन कर लेते थे। कभी वे हैदरअली की सेवा करते, कभी निजामअली की, कभी वे अर्काट के नवाब के सेवक बन जाते और कभी जाट राजा अथवा सम्राट के। इस प्रकार वे विदेशी प्रभुत्व के अग्रगामी प्रतीत होते हैं, क्योंकि भारतीय शासक अपनी कुशल तथा रक्षा के लिए अधिकाधिक उन पर निर्भर होते गये। जिन सेनाओं को उन्होंने प्रशिक्षित किया, वे केवल लाभ-परायण थीं। उनको राष्ट्रीय नहीं कहा जा सकता। उत्साहशील, वीर, निर्भय, प्रकृति तथा सतर्क अग्र दृष्टि—ये इन साहसिकों की सम्पत्ति तथा उनके विशेष गुण थे। इन नवीन प्रतिस्पर्धियों के सामने भारतीय शासकों की स्वदेशी सेनाएँ शीघ्र ही निःशक्त तथा असन्तुष्ट हो गयीं, क्योंकि उनको कम वेतन मिलता था और यह कम वेतन वर्षों तक शेष रहता था।

इन विदेशी कप्तानों में से कुछ के साथ मराठा इतिहास का घनिष्ठ सम्बन्ध है। उदाहरणार्थ, वाल्टर रीनहार्ट जर्मन सैनिक फ्रेंच उपनिवेश चन्द्रनगर की सेवा में था। १७५७ में क्लाइव द्वारा उस स्थान पर अधिकार होते ही रीनहार्ट निकाल दिया गया और उसने मीरकासिम के अधीन नौकरी कर ली। अपनी अत्यधिक गम्भीर मुखाकृति के कारण उसे 'सोम्रे' (गम्भीर) की उपाधि मिल गयी। यही शब्द बिगड़कर हिन्दी में समरू हो गया है। उसकी वेषभूषा

मुसलमानों जैसी थी तथा वह धाराप्रवाह उर्दू बोलता था। मीरकासिम की सेवा में रहते समय उसके साथ ब्रिटिश सत्ता की कठोर शत्रुता हो गयी, क्योंकि ५ अक्तूबर, १७६३ को पटना में ५१ अंग्रेजों के संहार में उसका हाथ था। मीरकासिम के पतन के बाद समरू ने जवाहरसिंह जाट की सेवा में प्रवेश किया। उसकी मृत्यु के बाद समरू ने शाहआलम के मन्त्री मिर्जा नजफखाँ के अधीन नौकरी कर ली। समरू के पास ५ तोपों सहित २ हजार प्रशिक्षित पैदल सैनिक थे। इनके व्यय के लिए सम्राट ने मेरठ के समीप सरधना का जिला दे रखा था, जिसकी वार्षिक आय ८ लाख रुपये थी। समरू का देहान्त ४ मई, १७७८ को हो गया। बाद में उसकी बेगम ने सेवा में नियुक्त यूरोपीय अधिकारियों सहित उसके दल का भार सँभाल लिया। उसने ३० वर्षों तक पूर्ण चातुर्य से इस दल का प्रबन्ध किया और पूर्ण निष्ठा तथा निपुणता से सम्राट की सेवा की। सम्राट उसकी भक्ति, वीरता तथा सचाई पर इस प्रकार प्रसन्न था कि उसको जेबुन्निसा बेगम की उपाधि दे दी। शाही कार्यों के प्रबन्ध में उसने महादजी शिन्दे को सहायता दी। अपने पति की मृत्यु के तीन वर्ष बाद उसने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया और लेवस्सोल्त नामक एक फ्रेंच व्यक्ति से विवाह कर लिया। यह विवाह सफल सिद्ध नहीं हुआ तथा लेवस्सोल्त ने आत्महत्या कर ली। बेगम ने सरधना नगर का विस्तार करके नवीन भवनों तथा उद्यानों से विभूषित किया। १८०३ में अंग्रेजों द्वारा दिल्ली पर अधिकार होने के पश्चात बेगम ने उनकी अधीनता स्वीकृत कर ली तथा सरधना की जागीर उसके लिए आजीवन प्रमाणित कर दी गयी। इसके बाद वह शान्ति, भक्ति तथा उदारतापूर्ण जीवन व्यतीत करने लगी। २७ जनवरी, १८३६ को उसका देहान्त हो गया। उसने बहुत-सा धन एकत्र कर लिया था। इसका कुछ भाग उसने अपने सौतेले पुत्र को दिया और १६ लाख रुपये रोम के पोप के पास उदार कार्यों के लिए भेज दिये।

४. महादजी के मुख्य अनुचर—पानीपत के घातक रणक्षेत्र में महादजी की प्राणरक्षा करने वाला रानाखाँ उसका अचल सहचर तथा परामर्शदाता था। सच्चरित्र होने के कारण खान बहुत दिनों तक समस्त मराठा राज्य में शक्तिसम्पन्न तथा सार्वजनिक निर्णयकर्ता बना रहा था। वह योग्य सेनापति भी था। उसने महादजी के अनेक कठिन अभियानों में भाग लिया। उसका शान्त प्रभाव महादजी के दुराग्रह तथा प्रतिशोध भावना में सुधार करता रहा था। नाना फड़निस सहित अनेक छोटे-बड़े आदमी महादजी के साथ व्यवहार में उससे मध्यस्थता की प्रार्थना करते थे। रानाखाँ को पालकी का सम्मान दिया गया था। २२ दिसम्बर, १७९२ को उसकी मृत्यु हो गयी। उसका पुत्र

हसतखाँ उच्च सैनिक अधिकारी के रूप में फूला फला तथा उसके परिवार के पास इस समय तक शिन्दे राज्य में जागीरें रहीं। रानाखाँ का जमाई साहेबखाँ टोका भी उच्च सैनिक अधिकारी था।

महादजी का विश्वस्त सचिव अबाजी रघुनाथ कुलकर्णी सतारा के समीप निगड़ी देशवासी ब्राह्मण था। उसके बन्धुओं, कृष्णोबा तथा गोपालराव का भी महादजी के अधिकारियों में विशेष स्थान था। गोपालराव वीर सैनिक था। वह सवाय-निवासी दि बायने के दल का निरीक्षण करता तथा उसके सहयोगी अधिकारियों से योग्य सेवा लेता था। महादजी का वैदेशिक सचिव सदाशिव मल्हार अंग्रेजों के साथ उसके सम्बन्धों का प्रबन्ध करता था। उसको भाऊ बख्शी भी कहते हैं और वह बावले उपनाम का देशस्थ ब्राह्मण था। उसके दो भाई बापूजी मल्हार तथा राघव मल्हार सेना के अधिकारियों में थे। खांडेराव हरि उर्फ अप्पा खांडेराव, अम्बूजी इंगले, रायजी पाटिल, रामजी पाटिल जाधव तथा देवजी जाउली महादजी के अधीन कार्य करने वाले अन्य प्रसिद्ध पुरुष हैं। बालाराव गोविन्द तथा लालाजी बल्लाल पण्डित गुलगुले दोनों सारस्वत ब्राह्मण थे। वे बहुत दिनों तक महादजी के विश्वासपात्र रहे और उन्होंने प्रशंसनीय सेवा की। बालाराव गोविन्द पूना के दरबार में शिन्दे का दूत था तथा गुलगुले उसका कर-संग्राहक था। कोटा में प्राप्त उसके पत्रों का ऐतिहासिक मूल्य बहुत अधिक है।

अध्याय १०

तिथिक्रम

१८ अप्रैल, १७७४	सवाई माधवराव का जन्म ।
१७७५	रुक्नुद्दौला की हत्या । मुशीरुल्मुल्क निजामअली का मन्त्री नियुक्त ।
मार्च, १७८६-फरवरी १७९७	मैलेट पूना में ।
१३ सितम्बर, १७८६	कृष्णराव काले की मृत्यु । उसका पुत्र गोविन्दराव उसका स्थानापन्न ।
१९ मई, १७८८	मुधोजी भोंसले की मृत्यु ।
२० अक्तूबर, १७८९	रामशास्त्री की मृत्यु ।
१२ फरवरी, १७९०	प्रभु लोगों पर प्रतिबन्ध लागू ।
१७९१	चित्रकार वेलन पूना में ।
२७ मार्च, १७९३	रघुजी आंग्रे की मृत्यु ।
२३ अप्रैल, १७९३	बीदर में निजामअली का शिविर ।
२३ अक्तूबर, १७९३	कार्नवालिस द्वारा अवकाश ग्रहण—शोर गवर्नर जनरल नियुक्त ।
१२ फरवरी, १७९४	महादजी शिन्दे की मृत्यु ।
अप्रैल, १७९४	हैदराबाद में सिकन्दरशाह का विवाह ।
जुलाई, १७९४	मीरआलम का पूना पहुँचना ।
२० नवम्बर, १७९४	मीरआलम का पूना से वापस होना ।
जनवरी, १७९५	मराठा सेनाओं का पूना से प्रस्थान ।
२ मार्च, १७९५	मराठा-निजाम विवाद पर शोर की सूक्ष्म टिप्पणी।
६ मार्च, १७९५	परशुराम भाऊ निजाम के विरुद्ध सेना का मुख्य सेनापति नियुक्त ।
११ मार्च, १७९५	खरडा का रण ।
१३ मार्च, १७९५	निजामअली द्वारा शान्ति की याचना ।
१ मई, १७९५	मुशीरुल्मुल्क का पूना पहुँचना ।
१७ सितम्बर, १७९५	पेशवा के ज्वर का प्रथम लक्षण ।

२२ अक्तूबर, १७६५	पेशवा का दशहरा सम्बन्धी जलूस।
२५ अक्तूबर, १७६५	पेशवा का गोख से गिरना।
२७ अक्तूबर, १७६५	पेशवा की मृत्यु।
१३ नवम्बर, १७६५	चित्रकार वेल्स की मृत्यु।
५ जून, १७६६	मुशीरुल्मुल्क कारागार से मुक्त।

अध्याय १०

टिमटिमाती ज्योति

[१७९५ ई०]

१. अल्पवयस्क पेशवा का पालन-पोषण । २. पूना समाज पर ब्रिटिश प्रभाव । ३. मराठा-निजाम वैमनस्य का आरम्भ । ४. मुशीरुल्मुल्क नहीं झुका । ५. खरडा का रण । ६. निजामअली द्वारा नाना तथा काले ठगे गये । ७. स्वर्णिम आशा समाप्त ।

१. **अल्पवयस्क पेशवा का पालन-पोषण**—अब हम पूना के कार्यों की ओर ध्यान देते हैं, जहाँ महान पेशवा माधवराव प्रथम तथा उसके बन्धु नारायणराव के देहान्त के बाद मराठा राज्य के अल्पवयस्क स्वामी का पालन-पोषण हो रहा था। इन दुखद घटनाओं को २० वर्ष व्यतीत हो गये थे। इन दिनों में राष्ट्र अनेक उत्थान-पतन देख चुका था। इस समय देश का भाग्य माधवराव नारायण के व्यक्तित्व पर निर्भर था। इसको जनसाधारण सवाई माधवराव कहते थे। उसका जन्म १८ अप्रैल, १७७४ को हुआ था। इस संसार में किसी अन्य शिशु का जन्म नारायणराव की मृत्यु के पश्चात उत्पन्न इस पुत्र की अपेक्षा अधिक शुभ लग्न में नहीं हुआ होगा, क्योंकि मराठा राष्ट्र की आशाएँ उसी पर केन्द्रित थीं। यथार्थरूप में प्रसिद्ध अपने चाचा के अवतार रूप में जनता ने उसका स्वागत किया। उसी के नाम पर उसका नाम रखा गया। अपने प्रारम्भिक वर्षों में वह लाड़ला शिशु था। कोई ऐसा सुख नहीं था जो उसके लिए प्रस्तुत न किया गया हो। यह बात दूसरी है कि वह स्वल्प मात्रा में ही रहा हो। शिशु को पुष्ट करने के उद्देश्य से आवश्यक दूध के लिए बहुत से अन्वेषण के बाद बकरियों की एक विशेष जाति एकत्र की गयी। उस समय प्रशिक्षण के आधुनिक वैज्ञानिक उपाय ज्ञात नहीं थे। हमारे वर्तमान विचारों के अनुसार उसकी शिक्षा में अन्धविश्वास तथा अज्ञान के कारण भयंकर भूलें की गयीं। जब शिशु की आयु तीन वर्ष की थी, तभी उसकी माता का देहान्त हो गया। इसके पश्चात वह ऐसे सेवकों तथा अधिकारियों की देखरेख में जा पड़ा, जिनका वंश उसके सगे-सम्बन्धियों से किसी भी प्रकार निम्न न था। पेशवा को एकमात्र प्रधान शासक नाना फड़निस के अधिकार में रखा गया। उसकी जानकारी या अनुमति के बिना कुछ भी नहीं हो सकता था। अभिभावक नाना के चरित्र के दो प्रमुख लक्षणों—सन्देह तथा

कायरता—ने उसके कार्यों पर प्रभाव डाला। ८ मार्च, १७८६ को ठीक अपने आगमन के समय मैलेट लिखता है—"पेशवा माधवराव सवाई लगभग ११ वर्ष का बालक है। वह दुबला-पतला है तथा उसकी आयु को देखते हुए उसका डील छोटा है। उसकी मुखाकृति न तो सुन्दर है, न उसमें कोई विशेषता लक्षित होती है, परन्तु उसमें अपने चरित्र के अनुरूप बुद्धिमत्ता तथा क्रियाशीलता है।[1]

अल्पवयस्क बालक साधारण खेलों तथा क्रीड़ाओं में स्वतन्त्रतापूर्वक भाग लेता था। उसकी देखरेख के लिए अध्यापक तथा परिपालक नियुक्त किये गये थे। पढ़ने, लिखने, बोलने तथा हिसाब के अतिरिक्त वह मुड़िया लिपि अच्छी तरह लिख सकता था। उसने एक निश्चित सीमा तक सवारी तथा कसरत का भी अभ्यास किया था। चाटुकारों तथा सेवकों से हर समय घिरे रहने के कारण उसे अपने अन्य पूर्वजों के समान विस्तृत बाह्य जगत से परिचित तथा निजी प्रयासों से जीवन का अनुभव प्राप्त करने का अधिक अवसर नहीं मिल सका। उसने पूना से लगभग १०० मील के बाहर कभी यात्रा नहीं की थी। इसकी दूरतम सीमाएँ नासिक, बाई तथा सतारा थीं। वह अपनी मृत्यु के कुछ ही मास पूर्व खरडा के रणस्थल पर उपस्थित हुआ था। दक्षिण या उत्तर के तत्कालीन बहुसंख्यक सैनिक अभियानों में से एक में भी वह नहीं ले जाया गया। ब्रिटिश रेजीडेण्ट ने नाना से अनेक बार आग्रह कि किया वह अल्पवयस्क पेशवा को १७६१ में टीपू के विरुद्ध प्रयाण करने वाली सेनाओं के साथ जाने दे। परन्तु इस प्रस्ताव से वह सहमत नहीं हुआ। पेशवा बम्बई जैसे स्थान को कभी नहीं भेजा गया, जहाँ पाश्चात्य जीवन तथा शैली का प्रभाव देख सकता। स्वाधीनता तथा साहस के स्पष्ट लाभों की अपेक्षा नाना फड़निस को सदैव उसके जीवन के संकट का निराधार सन्देह बना रहता था। नाना सदा इसी भावना से प्रेरित होकर काम करता था। महादजी शिन्दे, हरिपन्त फड़के तथा परशुराम भाऊ—सबका अंग्रेजों तथा उनके जीवन से सीधा सम्पर्क था। परन्तु पूना रेजीडेन्सी में मिलने वाले अफसरों के अतिरिक्त बढ़ते हुए बुद्धिमान पेशवा को कोई अवसर प्राप्त नहीं था।

इलाहाबाद में इंगलिश शिविर के सम्पर्क में रहने के कारण झाँसी के रघुनाथ हरि नवलकर में आधुनिक यूरोपीय विद्या के प्रति बालसुलभ कौतूहल जाग्रत हो उठा। उसने अपनी राजधानी में इंगलिश पुस्तकों के एक पुस्तकालय तथा वैज्ञानिक प्रयोगों के लिए एक प्रयोगशाला का निर्माण किया। हमारे पेशवा से केवल तीन वर्ष छोटे तंजौर के राजा शरफोजी ने स्वार्ट्ज नामक जर्मन

---

[1] पूना रेजीडेन्सी कॉरेसपौण्डेन्स, जिल्द २, पृष्ठ ३

धर्म-प्रचारक की देखरेख में अध्ययन किया। वह इंगलिश में उत्तम पत्र लिख सकता था। जब नाना फड़निस के लिए पूना का जीवन अपेक्षाकृत स्वतन्त्र तथा सरल हो गया तब, और विशेषकर लालसोट प्रकरण के बाद, पेशवा उत्तर भारत में महादजी शिन्दे के कार्यक्षेत्रों को सुविधापूर्वक देख सकता था। उस समय यह सहज कल्पना की बात थी कि ब्रिटिशजन शीघ्र ही भारत का प्रभुत्व प्राप्त कर लेंगे। इस प्रकार के दैवयोग को ध्यान में रखकर नाना पाश्चात्य शैलियों तथा उनकी शक्ति के रहस्य का अध्ययन करने की ओर विशेष ध्यान दे सकता था। जब १७९२ में ताजा हवा के झोंके की भाँति पूना में महादजी का आगमन हुआ, उस समय पेशवा की आयु १८ वर्ष की थी। उसने महादजी की संगति में एक नवीन दृष्टि तथा मनोवृत्ति प्राप्त की। वे परस्पर मिलते तथा अनेक विषयों पर वार्तालाप करते रहते थे। उनका भोजन और शिकार भी प्रायः साथ-साथ ही होता था। इससे ओजस्वी नवयुवक में शिन्दे के प्रति उच्च सम्मान उत्पन्न हो गया और वह नाना के गम्भीर तथा गोपनशील व्यवहार के विपरीत शिन्दे के स्पष्ट एवं निष्कपट व्यवहार की प्रशंसा करने लगा। २५ वर्षों में पूना का दरबार नाना के साँचे में ढल गया था। महादजी के आगमन से यह प्रवाहहीन वातावरण शीघ्र ही परिवर्तित हो गया। मालूम होता है, जब महादजी ने राजधानी में भोग-विलास तथा आमोद-प्रमोद के संकीर्ण मण्डल में पंजरस्थ पक्षी की भाँति पड़े बालक को नवीन शासक बनाने का प्रयास किया तो पेशवा को अपनी स्थिति तथा उत्तरदायित्व का ज्ञान हो गया।

पेशवा को अपने समकालीन पुरुषों—निजामअली जो उससे मिलने को अत्यन्त इच्छुक था, टीपू सुलतान अथवा कोई अन्य राजपूत राजा या सम्राट से मिलने की आज्ञा नहीं दी गयी। पूर्व पेशवाओं ने भारत के प्रसिद्ध योग्य व्यक्तियों से मिलने का विशेष ध्यान रखा था, क्योंकि उनको इन्हीं से निपटना था। वास्तव में इस पेशवा को अपना हृदय तथा दृष्टिकोण विशाल बनाने का अवसर ही नहीं मिला। पेशवा से मिलने तथा बातचीत करने वाले व्यक्तियों की सूची की स्वीकृति तथा निश्चय नाना द्वारा किया जाता था। इनके अतिरिक्त वह किसी से नहीं मिल सकता था। वह कभी-कभी नासिक जाता तथा अपनी दादी से भेंट करता था। १७८८ में जब वह उससे मिलने गया था तो उसने पेशवा में यह त्रुटि तुरन्त भाँप ली तथा नाना फड़निस और हरिपन्त फड़के दोनों का ध्यान विशेष रूप से इस ओर आकृष्ट किया। उसने कहा—"नीच पुरुष, कर्णिक तथा नौकर-चाकर उसको सदैव घेरे रहते हैं। वह बाहर के लोगों से स्वतन्त्रतापूर्वक नहीं मिल सकता और न अपने आप कोई अनुभव

ही प्राप्त कर सकता है। तब आप उसके विवेकशील होने की किस प्रकार आशा करते हैं।"

पेशवा को अधिकांश समय तक जो एकमात्र विषय व्यस्त रखता था, उसे हम धर्म या अन्धविश्वास कुछ भी कह सकते हैं। गणपति उत्सव तथा अन्य त्योहारों, श्रावण के दानों, दैनिक प्रार्थनाओं तथा कर्मकाण्ड में भाग लेना उसका आवश्यक कर्तव्य था। इस प्रकार वह भिक्षोपजीवी पुरोहित वर्ग के सम्पर्क में जीवन व्यतीत करता था, जिनकी एकमात्र चिन्ता अत्युत्तम भोजन प्राप्त करना थी। शरद ऋतु में पूना नगर ब्राह्मणों की भ्रमणशील मण्डलियों से भर जाता था। ये लोग दूर-दूर स्थानों से आते थे और भिक्षा माँगते एवं दान लेते हुए घूमा करते थे। विभिन्न यूरोपीय दर्शकों द्वारा किये गये वर्णनों से मुख्य दान-शाला (रमना) में भीड़ की कल्पना की जा सकती है।

अपने समकक्ष पुरुषों के साथ विस्तृत तथा उपयुक्त संसर्ग के अभाव में पेशवा ने पालतू जानवरों के प्रति विकसित गाढ़ प्रेम ही अपने मन का आधार बनाया। उसके पास एक स्थायी पशुशाला थी। पार्वती पहाड़ी के नीचे उसकी हरिणशाला भी थी। यहाँ एक खुले मैदान में बहुसंख्यक हिरन सुरक्षित रखे जाते थे। पेशवा को यहाँ शिकार खेलना पसन्द था।[२]

१७९० में पूना के ब्राह्मणों ने प्रभु जाति के विरुद्ध अपना प्राचीन आन्दोलन पुनः आरम्भ कर दिया तथा लिखित शिकायत उपस्थित की कि वे गत पेशवा द्वारा लगाये हुए प्रतिबन्धों का उल्लंघन करते हैं। १२ फरवरी, १७९० को प्राचीन आज्ञा पुनः प्रकाशित की गयी। प्रभु लोगों का इसके विरुद्ध आचरण निषिद्ध ठहराया गया। रामशास्त्री का देहान्त हो चुका था। उसके उत्तराधिकारी अय्या शास्त्री ने सम्भवतः नाना फड़निस के शासन के अधीन यह नवीन आज्ञा दी थी। इससे पूना में एक बार पुनः व्यापक क्षोभ फैल गया। अल्पवयस्क पेशवा से प्रार्थना की गयी। अपने मृत पिता की आज्ञा का समर्थन करने के अतिरिक्त वह अज्ञानी बालक कर ही क्या सकता था? उसके बाद घासीराम द्वारा पुलिस अत्याचारों का काण्ड घटित हुआ। इस समय महादजी घटना-स्थल पर आ गया था और पेशवा के निर्णयों पर अपना प्रभाव डालने लगा था। महादजी शिन्दे की मृत्यु के बाद शीघ्र ही घटनाचक्र विपरीत दिशा की ओर घूम गया। एकान्त तथा अन्धविश्वास के वातावरण से दूषित पेशवा उच्छृंखल बालक की भाँति व्यवहार करने लगा। उसकी प्रिय चेष्टाओं तथा दुष्कृत्यों के जो वर्णन पाये जाते हैं, उनसे स्पष्ट है कि अब उस पर अनुशासन या नियन्त्रण का कोई प्रभाव नहीं था।

---

२ पारसनीस कृत 'पूना बीते दिनों में', पृष्ठ १२८-३१

२. **पूना समाज पर ब्रिटिश प्रभाव**— ब्रिटिश सत्ता के दो महान शासकों—क्लाइव तथा वारेन हेस्टिंग्ज—ने भारत के भाग्य पर व्यापक प्रभाव डाला। निपुण राजनीतिज्ञ कार्नवालिस ने उनकी परिवर्तनशील तथा असंगत नीति का शनैः-शनैः परन्तु निश्चित ढंग से समन्वय किया। उसके समय में अनेक भारतीय दरबारों में नियमित रेजीडेण्ट सेवा की स्थापना हुई। इसके द्वारा सुनिश्चित अधिकार का मार्ग खुल गया, जिसको वेलेजली बन्धुओं ने नियोजित तथा निष्पन्न किया। जहाँ तक पूना तथा पश्चिमी भारत का सम्बन्ध है, मैलेट के १२ वर्षों के रेजीडेण्ट काल में केवल मराठा राजनीति की दिशा पर ही नहीं, राष्ट्र के सामाजिक जीवन पर भी अनेक रूपों में महत्त्वशाली प्रभाव पड़ा। क्रीड़ाओं, मनोरंजनों, व्यायामों, अश्वारोहणों, सम्मेलनों, भोजों तथा आतिशबाजियों के जो मनोहर वर्णन मैलेट ने अपने पत्र-व्यवहार में दिये हैं, उनसे पेशवा दरबार में केन्द्रित मराठा जीवन पर महत्त्वपूर्ण ब्रिटिश प्रभाव प्रकट होता है।[3]

शल्य चिकित्सक क्रूसो तथा फिण्डले, भूमापक रेनाल्ड्स, चित्रकार वेल्स तथा डैनियल, सहायक रेजीडेण्ट यूथाफ, हेर्न तथा वार्ड उस समय पूना में रहने तथा वहाँ के जीवन पर प्रभाव डालने वाले अनेक यूरोपीयों में से कुछ हैं। मैलेट स्वयं मानव चरित्र का महान ज्ञाता था। उसके पास मेधावी तथा कार्यकुशल पुरुषों की चुनी हुई मण्डली थी। उसका अपना सचिव तथा फारसी का दुभाषिया नूरुद्दीन हुसैनखाँ, प्रकाण्ड विद्वान तथा सच्चरित्र व्यक्ति था। यह एक समय कनिष्ठ गाजीउद्दीन का मित्र तथा परामर्शदाता भी रह चुका था। उसके ऐतिहासिक ग्रन्थों का भारतीय साहित्य में उच्च स्थान है। उसके चार योग्य पुत्र थे—कमालुद्दीन, फखरुद्दीन, नसीरुद्दीन तथा कमरुद्दीन। उन सबने विभिन्न दरबारों में सेवा द्वारा तत्कालीन इतिहास में नाम पैदा किया। मैलेट ने कैम्बे में फारसी के हस्तलिखित ग्रन्थों का संग्रह किया था। बाद में उसने यह संग्रह लन्दन की रॉयल एशियाटिक सोसाइटी को भेंट कर दिया।

पूना में चेचक के टीके का प्रथम प्रवेश मैलेट के समय ही हुआ था। रेजीडेन्सी के डॉक्टरों द्वारा प्रस्तुत शल्य तथा औषधि सहायता का भारतीयों

---

3 भोजों, दरबारों, शिविर जीवन, सामाजिक रीतियों तथा तत्सदृश विषयों के मैलेट कृत वर्णन बहुत रोचक हैं। उनका अध्ययन पूना रेजीडेन्सी कॉरस्पौण्डेन्स जिल्द २ में किया जा सकता है। शिष्टाचार, मिथ्या विश्वास, षड्यन्त्रों तथा प्रतिद्वन्द्विताओं सहित वे तत्कालीन मराठा जीवन तथा समाज के पूर्ण आदर्श हैं। उनमें मराठों की निर्बलताओं के विशद वर्णन हैं, जिनके कारण राज्य का पतन हो गया। पारसनीस कृत 'पूना इन बाईगौन डेज' (पूना बीते दिनों में) पृ० ५३ भी देखो।

ने स्वतन्त्रतापूर्वक स्वागत किया, क्योंकि उस समय प्रचलित अपरिष्कृत भारतीय चिकित्सा से वे उत्तम पायी गयीं। चित्रकार वेल्स १७६१ में भारत आया। उसने पूना के अनेक प्रसिद्ध व्यक्तियों के रेखाचित्र बनाये थे। डैनियल ने उनमें रंग भरे। इस समय वे अपनी प्रतिलिपियों द्वारा बहुत प्रचलित हो गये हैं— उदाहरणार्थ, सवाई माधवराव के दरबार का दृश्य, तथा नाना और महादजी सदृश कई प्रसिद्ध व्यक्तियों के पूरे आकार के चित्र ले सकते हैं। ये चित्र फोटोग्राफी के अभाव में इस समय प्राप्य एकमात्र प्रामाणिक चित्र हैं। मैलेट की प्रेरणा से दो इंगलिश चित्रकारों के निरीक्षण में पेशवा ने राजभवन में आलेखन तथा चित्रकारी का एक विद्यालय स्थापित किया। यहाँ अनेक भारतीयों ने उस विषय में प्रशिक्षण प्राप्त किया, इनमें से गंगाराम टम्बट का नाम अब तक चला आ रहा है। कान्हेरी की गुफाओं में रेखाचित्र बनाते समय वेल्स को ज्वर आ गया और १३ नवम्बर, १७६५ को ४८ वर्ष की आयु में उसका देहान्त हो गया। उसकी कन्या सुजा जो उसी के साथ आयी थी, मैलेट के साथ इंगलैण्ड वापस गयी और वहाँ उसी के साथ विवाह कर लिया। उनके ८ पुत्र हुए। वे सब आंग्ल-भारतीय सेवा में प्रसिद्ध हुए। सर चार्ल्स मैलेट का देहान्त २४ जनवरी, १८१५ को हुआ। मैलेट तथा उसके साथियों ने पेशवा को यूरोप में निर्मित नाना प्रकार के पदार्थ जैसे भूगोल (ग्लोब), दीवार की घड़ियाँ, जेबी घड़ियाँ, दूरदर्शक यन्त्र, शीशे, चाकू, कैंची आदि उपहार में दिये। फिण्डले पेशवा को ज्योतिष तथा भूगोल की शिक्षा देता था। बदले में उसे सुन्दर पुरस्कार प्राप्त होते थे। मैलेट स्वतन्त्रतापूर्वक पेशवा के भवन में अनेक उत्सवों जैसे दशहरा तथा गणपति की शोभा यात्रा, होली के उत्सव तथा अन्य त्यौहारों पर उपस्थित होता था। उसने इन त्यौहारों के विशद वर्णन किये हैं। ऐसे अवसरों पर निमन्त्रण पाकर वह पूना के अन्य सरदारों के घर भी उपस्थित होता था। मैलेट के २ लम्बे वर्षों के राग तथा सम्पर्क ने पूना के समाज में मौन क्रान्ति कर दी। उसके कारण उपस्थित राजनीतिक परिवर्तन उसके पत्र-व्यवहार के प्रत्येक पृष्ठ में देखा जा सकता है। इसमें मराठा कूटनीतिज्ञ, सेनानी तथा सामन्तगण अपेक्षाकृत बौने-से प्रतीत होते हैं। मैलेट के पत्र-व्यवहार में दर्शकों को पर्याप्त रूप से स्पष्ट पतनोन्मुख पूना शासन की गतिविधि प्रत्यक्ष हो जाती है। पूना के मन्त्रियों की ओर से उन्नति तथा उत्कर्ष का विरोध किये जाने पर महादजी शिन्दे ने जिस अनुताप का अनुभव किया, उसका मूल कारण यही था। मराठा पतन शनैः-शनैः व्यक्त हो रहा था।

३. **मराठा-निजाम वैमनस्य का आरम्भ**—खरडा की विजय मराठा सेनाओं को प्राप्त होने वाली अन्तिम विजय थी तथा वह पानीपत की विपत्ति

के समान इस समय तक मराठों की स्मृति में नवीन थी। खरडा की कीर्ति पानीपत की समता करने के लिए होनहार पेशवा की मृत्यु के रूप में आकस्मिक विपत्ति द्वारा नष्ट हो गयी। उस विजय के सात मास के भीतर ही यह विपत्ति टूट पड़ी और इसने अपेक्षित समस्त भव्य परिणामों को समाप्त कर दिया।[४] उन घटनाओं की लम्बी शृंखला का सूक्ष्म अनुसरण तथा यथार्थ अध्ययन किया जा सकता है, जिनका अन्तिम परिणाम वह प्रसिद्ध रण हुआ। विरोधी सेनाओं के प्रयाण के कारण आरम्भ होने वाले अभियान में दो मास से अधिक समय नहीं लगा। वास्तव में कोई रण हुआ ही नहीं, कोई सैनिक कौशलपूर्ण चाल नहीं चली गयी, जिसमें सैनिक निपुणता या व्यक्तिगत वीरता प्रकट की गयी हो। खरडा पूना के ठेठ पूर्व में केवल १२५ मील पर स्थित है। इस विषय के महत्त्व की खोज भिन्न दिशा में होनी चाहिए। दक्षिण में मराठा प्रभुत्व की परीक्षा करने वाली यह प्रामाणिक घटना थी। इस प्रभुत्व के सम्बन्ध में अंग्रेजों से संघर्ष होने की आशा थी। अतः भारतीय शक्तियाँ उत्सुकतापूर्वक परिणाम की प्रतीक्षा कर रही थीं। उन्हें यह जानने की उत्कट इच्छा थी कि निजाम के समर्थन में अंग्रेज हथियार उठायेंगे या नहीं, वे अन्तिम रूप से मराठों की महत्त्वाकांक्षाओं का अन्त कर सकेंगे या नहीं। मैलेट, कार्नवालिस तथा शोर ने मराठा निजाम संघर्ष में भाग लेने की अपेक्षा प्रतीक्षात्मक खेल खेलने का निश्चय किया। जो कुछ १८०३ में हुआ, उसकी सम्भावना आठ वर्ष पूर्व ही की जा रही थी। इस अल्पकालीन संघर्ष में समस्त भारत की रुचि का यही कारण है। तात्कालिक परिणाम से निजाम तथा वे लोग अत्यन्त हताश हो गये जिनको मराठों के पतन से लाभ उठाने की इच्छा थी। ब्रिटिश लोगों की सचाई तथा भारतीय कलहों में हस्तक्षेप न करने की नीति के प्रति नाना फड़निस की विशेष रूप से श्रद्धा हो गयी।

जब दो शक्तियाँ एक ही भू-भाग पर अधिकार प्राप्त करने का प्रयत्न करती हैं तो उनके बीच सतत शत्रुता आवश्यक हो जाती है। मराठों ने अपने देश महाराष्ट्र के स्वामी होने तथा उसको शताब्दियों से चले आ रहे मुस्लिम प्रभुत्व से मुक्त करने के विचार से प्रयास आरम्भ किया था। अनेक लोग मूर्खतापूर्वक प्रश्न करते हैं कि अपने इस निकट पड़ोसी को पूर्णतः समाप्त कर देने से पहले मराठे अटक, बर्दवान तथा तिरुचिरापल्लि सदृश दूरस्थ स्थानों को क्यों गये ? इसका उत्तर मुख्य निर्माताओं के साथ बदलने वाली मराठा

---

४ विजय तथा मृत्यु का यह संयोग ग्रामीण गीतों का प्रिय विषय बन गया था। खरडा के विषय का वर्णन करते हुए कम से कम इस प्रकार के दस गीत छप चुके हैं।

राजनीति की विचित्र प्रगति में मिलेगा। प्रथम अंग्रेज-मराठा युद्ध समाप्त होने पर पूना तथा हैदराबाद के बीच तनाव उपस्थित हो गया। इस तनाव का मुख्य कारण चौथ का भुगतान था जो बाजीराव प्रथम ने निजाम के राज्य पर लगायी थी। यह चौथ सालबई की सन्धि तक एकत्र होकर विपुल राशि में परिवर्तित हो गयी थी। मराठा शासन ने अन्य कष्टों से मुक्त होते ही निजाम से आग्रहपूर्वक इस धन की माँग की।

निजामअली दृढ़ साहसी अथवा न्यायप्रेमी शासक कभी नहीं रहा। स्वार्थ के प्रति तीव्र चिन्ता तथा परिस्थिति की आवश्यकताएँ ही उसकी एकमात्र पथप्रदर्शक थीं। नाना फड़निस बराबर अपनी माँगें रखता रहा और निजामअली उनको टालता रहा। १७६२ की ग्रीष्म ऋतु में पूना में महादजी शिन्दे के आगमन तक दोनों दरबारों में इस प्रकार का विवाद रहा। इस आगमन से मराठा शक्ति तथा प्रतिष्ठा की वृद्धि हो गयी, जिससे अधिकांश भारतीय शासक भयभीत हो गये। शिन्दे का समर्थन पाकर अब नाना फड़निस ने निजामअली से समस्त शेष चौथ का अविलम्ब भुगतान करने की माँग की। उस समय निजामअली के कार्यों का प्रबन्ध उसका निपुण मन्त्री गुलाम सैयदखाँ करता था। यह पुरुष इतिहास में मिलने वाली समय-समय पर अनेक उपाधियों से विख्यात है। उदाहरणार्थ मुईनुद्दौला, अजीमुलुमरा, अरस्तूजाह तथा मुशीरुल्मुल्क। मराठा सरकार समस्त उत्पन्न कष्टों के लिए इसी व्यक्ति को उत्तरदायी समझती थी। मुशीरुल्मुल्क ईरान से आया था तथा लगभग ४० वर्ष पूर्व उसने सलाबतजंग के अधीन नौकरी कर ली थी। सलाबतजंग के दमन में उसने निजामअली की सहायता की। इस कारण वह निजाम का कृपापात्र बन गया। उसको अनेक उपाधियाँ प्राप्त हुई, जिनका वर्णन हो चुका है। १७७५ में निजामअली के प्रधान मन्त्री मीर मुगल रुक्नुद्दौला की हत्या कर दी गयी। यह मुशीरुल्मुल्क का छोटा भाई था। अब निजामअली ने मुशीरुल्मुल्क को अपना मन्त्री बना लिया। इस पद पर वह अपनी मृत्युपर्यन्त लगभग ४० वर्ष तक रहा। पूना तथा हैदराबाद में चलने वाले वैमनस्य का सम्बन्ध दोनों राज्यों के प्रधान मन्त्रियों—नाना फड़निस तथा मुशीरुल्मुल्क—से था। खरडा के रण के पहले बहुत समय तक ये दोनों व्यक्ति दक्षिण की राजनीति के प्रतिनिधि बने रहे। मुशीरुल्मुल्क की नीति का मुख्य आधार ब्रिटिश मैत्री के द्वारा मराठा प्रभुत्व को कुचल देना था।

निजामअली की सेवा में मीरआलम नामक एक अन्य व्यक्ति भी था। उसने भी तत्कालीन राजनीति में महत्त्वपूर्ण भाग लिया। वह निजामअली के दूत के रूप में कई वर्ष तक वारेन हेस्टिंग्ज के पास कलकत्ता रह चुका था।

इन्हीं दिनों उसने मराठा हितों के विरुद्ध ब्रिटिश हितों की साधना का यत्न किया था। मन्त्री मुशीरुल्मुल्क की अपेक्षा मीरआलम की प्रकृति नम्र थी। उसकी क्षमता भी उससे कम थी, परन्तु उसकी साहित्यिक योग्यताएँ मुशीरुल्मुल्क से अधिक थीं। चौथ के भुगतान पर दोनों दरबारों के बीच बढ़ते हुए विवाद का शान्तिपूर्वक उपायों से समाधान करने के लिए मीरआलम को १७६५ में पूना भेजा गया। मीरआलम अपने कार्य में असफल रहा तथा विवाद का निपटारा तलवार के बल से हुआ।

यह घटना पेशवा माधवराव द्वितीय की बाल्यावस्था में घटित हुई थी। पूना में नाना फड़निस उसकी ओर से पूर्ण अधिकार से कार्य करता था। पूना सरकार की ओर से योग्य मराठा कूटनीतिज्ञ कृष्णाराव काले महान पेशवा माधवराव प्रथम के समय से हैदराबाद में निवास कर रहा था। उसने बीस वर्ष से अधिक समय तक दोनों शक्तियों के बीच मैत्री सम्वन्ध बनाये रखने का यत्न किया था। १३ सितम्बर, १७८६ को कृष्णाराव का देहान्त हो गया। उसका पुत्र गोविन्दराव बापू उसका उत्तराधिकारी हुआ। इसका विशाल पत्र-समूह अब प्रकाशित हो गया है और अध्ययन के लिए प्राप्य है।

निजामअली हृदय से शान्तिप्रिय था। उसकी इच्छा युद्ध का संकट मोल लेने की नहीं थी। उसने अन्तिम क्षण तक मराठा सरकार से मैत्री बनाये रखने का प्रयास किया। महादजी ने कुछ समय तक अंग्रेजों के विरुद्ध भारतीय शक्तियों का विरोधी संघ बनाने के लिए निजामअली की मैत्री प्राप्त करने का यत्न किया था। परन्तु चौथ का शेष धन प्राप्त करने के विषय में उसने नाना फड़निस को दृढ़ पाया। उस समय यह धन तीन करोड़ की महान राशि तक पहुँच चुका था। शिन्दे तथा नाना के वैमनस्य को शान्त होने में एक वर्ष लग गया। इसके बाद नाना तथा महादजी के नाम से हैदराबाद दरबार से धन का भुगतान करने की संयुक्त माँग की गयी। साथ ही यह संकेत भी कर दिया गया कि इसका विकल्प युद्ध ही होगा। इसके अतिरिक्त महादजी ने बीड़ पर अधिकार की माँग भी रखी जहाँ उसके गुरु का स्थान था। अपनी स्थिति शक्तिशाली बनाने के विचार से महादजी ने आगरा से अपने प्रशिक्षित दलों को दक्षिण बुला लिया। निजामअली ने चुनौती स्वीकार करने का निश्चय किया तथा युद्ध करने के विचार से वह २३ अप्रैल, १७६३ को बीदर पहुँच गया। इस समय उसने प्रस्ताव किया कि वह पूना में अल्पवयस्क पेशवा के विवाहोत्सव में सम्मिलित होकर उससे मिलना चाहता है। सम्भवत: उसकी उत्कट इच्छा व्यक्तिगत भेंट द्वारा इस विवाद को शान्त करने की थी। किन्तु पूना के मन्त्रियों ने इस प्रयास का अर्थ लगाया कि वह पूना पर आक्रमण करना चाहता

है। एक समाचार इस प्रकार है—"बीदर में युद्ध की अविलम्ब तैयारियाँ होती रहीं। निजामअली के गुप्तचरों का पता लग गया तथा वे पूना में मराठा सरदारों को प्रलोभन देते हुए पकड़ लिये गये। घूस में दिये गये धन की मात्रा का भी पता लग गया।" निजामअली बरार से संग्रह करने वाले कर का कुछ अंश नागपुर के भोंसले परिवार को देता था। अब उसने वह भुगतान करने से भी इनकार कर दिया और घोषणा की कि वह नागपुर के समस्त मराठा अधिकारों का पूर्ण निषेध करता है।

इस समय ब्रिटिश गवर्नर जनरल लार्ड कार्नवालिस अवकाश ग्रहण करने वाला था। उसने ब्रिटिश सत्ता को मराठों के विरुद्ध युद्ध में फँसाना उचित नहीं समझा। तथापि निजामअली तथा उसके मन्त्री ने भावी संघर्ष में अपने समर्थन के लिए ब्रिटिश सहायता प्राप्त करने के लिए आग्रहपूर्ण प्रार्थनाएँ कीं। हैदराबाद में ब्रिटिश रेजीडेण्ट कैनैवे ने गवर्नर जनरल से निजामअली को सक्रिय ब्रिटिश सहायता देने अथवा कम से कम मध्यस्थ का कार्य करने के लिए अत्यन्त प्रलोभनात्मक रूप से प्रार्थना की। पूना स्थित रेजीडेण्ट मैलेट निश्चित रूप से इस प्रकार के प्रयास के विरुद्ध था। उसका दृढ़ आग्रह था कि मराठों के विरुद्ध युद्ध में कूद पड़ना मूर्खता होगी, जबकि वे अभूतपूर्व रूप से संयुक्त तथा शक्तिशाली हैं। कार्नवालिस ने मैलेट के परामर्शानुसार कार्य किया तथा कैनैवे के सशस्त्र हस्तक्षेप विषयक प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया।

४. **मुशीरुमुल्क नहीं झुका**—१७९३ की शरद ऋतु में सौभाग्य से नाना तथा महादजी के बीच का वैमनस्य पूर्णतः शान्त हो जाने पर चौथ के भुगतान के लिए निजाम से दृढ़तापूर्वक माँग की गयी। हैदराबाद ने विवाद का निपटारा युद्ध द्वारा करने का निश्चय किया। फलस्वरूप बीदर में अविलम्ब युद्ध की तैयारियाँ होनी लगीं। इसके अधिकाधिक समाचार पूना में नित्य पहुँचते रहे। लार्ड कार्नवालिस ने २८ अक्तूबर १७९३ को अवकाश ग्रहण कर लिया तथा अपने वरिष्ठ परामर्शदाता सर जॉन शोर को कार्यभार सौंप दिया। अगले दिसम्बर में ब्रिटिश रेजीडेण्ट कैनैवे ने भी अवकाश ग्रहण कर लिया। उसने अपना भार कर्क पैट्रिक को सौंपा। दोनों के बीच कुछ समय तक कैप्टिन स्टुअर्ट स्थानापन्न रहा। १२ फरवरी, १७९४ को महादजी शिन्दे की मृत्यु से पूना दरबार की प्रगति कुछ समय के लिए रुक गयी। अवकाश ग्रहण करने के पहले कार्नवालिस ने अपने दोनों प्रतिनिधियों से आग्रह किया कि वे दोनों प्रतिद्वन्द्वियों के बीच शान्तिपूर्ण बातचीत से विवाद का निपटारा करने का यथाशक्ति प्रयत्न करें तथा अन्तिम परामर्श दें कि ब्रिटिश सरकार को किस मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। इस सुझाव के अनुसार कार्य करते हुए पूना

से मैलेट तथा हैदराबाद से स्टुअर्ट मई, १७६४ में इलौरा की गुफाओं के समीप एक दूसरे से मिले। उन्होंने दोनों प्रतिद्वन्द्वियों की परिस्थिति पर वार्तालाप करके अन्तिम रूप से निश्चय किया कि निकटवर्ती युद्ध में ब्रिटिश सत्ता को किसी कारण भी नहीं फँसना चाहिए तथा उन्हें अपना परामर्श केवल मैत्री-पूर्ण मध्यस्थता तक ही सीमित रखना चाहिए। ब्रिटिश सरकार इस मार्ग पर दृढ़तापूर्वक डटी रही। यदि नाना फड़निस तथा अजीमुलुमरा के बीच व्यक्तिगत दृढ़ शत्रुता बाधक न होती तो अंग्रेजों की मध्यस्थता प्रभावकारी हो सकती थी। कर्क पैट्रिक ने गवर्नर जनरल को सूचना दी[५]—"नाना फड़निस दृढ़तापूर्वक कहता है कि जब तक निजामअली अपने मन्त्री को उसके पद से नहीं हटा देता, तब तक विवाद का निपटारा नहीं हो सकता। परन्तु इस प्रकार के परिवर्तन से हमारी सरकार को कोई लाभ नहीं हो सकता। मन्त्री के अनेक अवगुणों की जानकारी मुझको है, परन्तु उसकी जगह लेने के लिए उससे अच्छा कोई अन्य व्यक्ति नहीं मिल सकता। यदि यह मान भी लिया जाय कि योग्य उत्तराधिकारी मिल सकता है, तो यह तथ्य कि पूना सरकार निजामअली को अपने मन्त्री के निराकरण की आज्ञा दे सकती है, निजामअली की स्थिति को अपमानपूर्ण बना देता है। कोई नवीन आगन्तुक पुरुष क्या अच्छी सफलता प्राप्त कर सकता है ? और यदि नवीन मन्त्री पूना के आदेश पर कार्य करने लगा तो हैदराबाद की स्वतन्त्रता कहाँ रह सकेगी तथा उस सन्तुलन का क्या होगा जो इस समय दक्षिण की राजनीति में विद्यमान है ? इस प्रकार की अवनति को निजामअली कभी स्वीकार नहीं करेगा। यह बात नहीं है कि वर्तमान कलह अपने आप समाधान से परे है, वास्तविक कठिनाई अजीमुलुमरा को निकालने के सम्बन्ध में नाना का हठ है। पेशवा इस समय सम्राट का वकीलेमुतलक है तथा वह अपने मन्त्री को पदच्युत करने के लिए निजामअली को विवश करने में अपनी इस शक्ति का प्रयोग कर सकता है। अपनी पूर्ण सैनिक शक्ति को एकत्र करने में पूना के मन्त्री का यही वास्तविक उद्देश्य प्रतीत होता है।" मुशीरुल्मुल्क के हटाने की स्पष्ट माँग नाना ने कभी नहीं रखी थी, क्योंकि इस प्रकार की धृष्ट माँग कूटनीतिक प्रथा के विरुद्ध होती, परन्तु सारे विवाद की जड़ यही प्रकरण था।

मराठा-निजाम तनाव को बढ़ाने में टीपू सुल्तान का भी हाथ था। जब भारत में सामान्य राजनीतिक परिस्थिति पर नाना का महादजी शिन्दे से वार्तालाप हुआ, तब नाना समझ गया कि टीपू सुल्तान के विरुद्ध अंग्रेजों के साथ मैत्री से उसको कुछ लाभ नहीं हुआ तथा मैसूर के शासक की शक्ति नष्ट

---

५ फरवरी, १७६४ में उसने अपने पद का भार सँभाल लिया था।

करना मराठा हितों के लिए हानिकारक है । स्वयं टीपू ने स्पष्ट शब्दों में यह स्थिति नाना के सम्मुख उपस्थित कर दी । उसको निजामअली से बहुत घृणा थी । उसने नाना को चेतावनी दी कि वह अंग्रेजों के हाथों का यन्त्र न बने । पूना की स्पष्ट ८ माँगें थीं जो १७६४ में निजामअली के पास भेज दी गयीं । इनकी सूचना कर्क पैट्रिक ने सर जॉन शोर को दे दी थी । शोर ने निजाम-अली को परामर्श दिया कि वह शान्तिपूर्ण उपायों से झगड़े का निपटारा कर ले । उसने स्पष्ट कर दिया कि यदि दोनों में निजी कारणों से युद्ध हो गया तो उसे सशस्त्र ब्रिटिश सहायता की आशा नहीं करनी चाहिए ।

हेस्टिंग्ज फ्रेजर कहता है कि मराठा सरकार का संचालन निजामअली के प्रशासन से सर्वथा भिन्न रूप में न्याय तथा नीति के दृढ़ आधार पर होता था और नाना की समस्त माँगें युक्तियुक्त थीं । इन दोनों बातों को स्वयं शोर ने स्वीकार कर लिया तथा निजामअली को सहायता का कोई वचन नहीं दिया । उसने उसी समय मैलेट द्वारा पेशवा सरकार को सूचना दी कि वह बिना पूर्व सूचना के आकस्मिक आक्रमण द्वारा जल्दबाजी से संघर्ष आरम्भ न कर दे । शोर ने रेजीडेण्टों को यह भी आदेश दिया कि वास्तविक युद्ध आरम्भ होने की दशा में वे ब्रिटिश हितों की सुरक्षा के निमित्त जो आवश्यक समझें, वे उपाय करें । शोर इन शब्दों में मुशीरुलमुल्क को कठोर चेतावनी देना न भूला—"आप मराठा पत्रों की ओर उचित ध्यान न दें तथा अपने उत्तरों में अशिष्ट भाषा का उपयोग करें, यह ठीक नहीं है । भाषा नम्र तथा आदरपूर्ण होनी चाहिए । अनादरपूर्ण तथा उत्तेजनाभरी भाषा से कठिनाई बढ़ जायेगी । मुझे मालूम हुआ है कि विवादास्पद विषयों में दोनों पक्ष मैत्रीपूर्ण निश्चय चाहते हैं । यह सबके लिए शोभनीय है कि हम तीन शक्तियों में बहुत दिनों से चली आ रही मैत्री को सुरक्षित रखने के लिए प्रत्येक उपाय किया जाये ।"[६]

गवर्नर जनरल के परामर्श की सार्थकता को स्वीकार करते हुए मुशीरुलमुल्क ने उत्तर दिया—"विवादास्पद विषयों का समाधान शान्तिपूर्वक उपायों से हो सकता है, परन्तु पूना के पत्रों का स्वर हाल में असह्य हो उठा है तथा उनकी माँगें नितान्त गर्वपूर्ण हो गयी हैं । इस पद पर मुझसे पूर्वाधिष्ठित अधिकारियों ने पूना सरकार की ओर अपने व्यवहार में नम्र भाषा का प्रयोग किया था । मैंने जानबूझकर इस मार्ग को बदल दिया है तथा सावधानी से

---

६ १४ मई, १७६४ का पत्र फ्रेजर ने अपनी पुस्तक—'अवर फैथफुल ऐलाइ द निजाम' (हमारा निष्ठापूर्ण सहायक निजाम) के पूरक में उद्धृत किया है । लेखक का पिता उस समय हैदराबाद की सेवा में था । अतः पुत्र द्वारा लिखित वृत्तान्त को विश्वसनीय स्वीकार कर सकते हैं ।

अपने स्वामी के हित तथा गौरव की रक्षा करने का प्रयत्न किया है। इस परिवर्तन से नाना स्वभावतः क्षुब्ध हो गया है। परन्तु मुझे उसकी भावना की चिन्ता नहीं है। उसके प्रति अधीनता की वृत्ति धारण नहीं करूँगा। अब वह मुझसे व्यक्तिगत द्वेष करने लगा है, क्योंकि मैंने साम्राज्य के नायब वकीले-मुतलक महादजी शिन्दे की ओर मैत्रीपूर्ण हाथ बढ़ाया है। जब तक नाना अपना अनुचित आचरण नहीं त्याग देता, तब तक कोई समाधान शक्य प्रतीत नहीं होता। वास्तव में आप सदृश मित्रों का ही यह कार्य है कि प्रयास करके इस कलह को शान्त कर दें। आपके साथ मेरी गाढ़ मैत्री के कारण नाना को बहुत ईर्ष्या है। इसी कारण मैं आपसे मध्यस्थता की प्रार्थना करता हूँ। आप इसका निर्णय पेशवा के पक्ष में करेंगे, तब भी मुझे कोई चिन्ता नहीं होगी। क्या आपने पहले झगड़ों में—जैसे कि नवाब वजीर, अर्काट के नवाब तथा अन्य शक्तियों के बीच—मध्यस्थता नहीं की है? इस प्रकरण में भी आप वही कार्य क्यों नहीं कर सकते?"

इस युक्ति का कर्क पैट्रिक पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। निजाम तथा ऊपर वर्णित दोनों नवाबों की स्थिति में आकाश-पाताल का अन्तर था। निजाम-अली स्वतन्त्र शासक था, जबकि अवध तथा अर्काट के नवाब पहले से ही अधी-नस्थ सहायक थे। पेशवा कभी ब्रिटिश मध्यस्थता स्वीकार नहीं कर सकता था। कर्क पैट्रिक ने आग्रहपूर्वक निजामअली तथा उसके मन्त्री का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। निजामअली ने अपने मन्त्री को पदच्युत करने से इनकार कर दिया। उसने कहा—"मुझको अपने मन्त्री पर पूर्ण विश्वास है। उसको मेरे हितों का इतना ध्यान है, जितना किसी अन्य व्यक्ति को नहीं हो सकता। अतः मेरी इच्छा उसे पदच्युत करने की नहीं है।"

नाना कुछ बातों में हठी अवश्य था, परन्तु कूटनीतिक शिष्टाचार का पूर्ण गौरव सदैव सुरक्षित रखता था। परन्तु मुशीरुल्मुल्क की दशा इससे सर्वथा विपरीत थी। जब पूना से हिसाब सम्बन्धी पत्र प्राप्त हुए और मराठा दूत गोविन्दराव काले ने उन्हें मन्त्री के समक्ष उपस्थित किया तो मन्त्री ने कहा—"मैं इस हिसाब को नहीं समझ सकता। नाना को स्वयं यहाँ आना पड़ेगा और इसको स्पष्ट करना होगा।" गोविन्दराव ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया—"नाना को यहाँ स्वयं आने का अवकाश नहीं है।" तब मुशीरुल्मुल्क ने कठोरता-पूर्वक उत्तर दिया—"तुम देख लेना, मैं स्वयं नाना को यहाँ लाऊँगा।" काले ने यह समाचार पूना भेज दिया और कहा कि हैदराबाद का समस्त दर-बार ऐसी ही भाषा का प्रयोग करता है। वे प्रकट रूप में गर्व करते थे कि पूना पर आक्रमण करके उसको जला डालेंगे तथा पेशवा को हाथ में मिट्टी का

प्याला लिये हुए यहाँ भिक्षा माँगने आने के लिए विवश कर देंगे। इस प्रकार की भाषा किसी भी सम्मानित शासन के लिए अशोभनीय है। जब यह वृत्तान्त काले ने पूना को भेजा तो इससे भारी क्षोभ उत्पन्न हो गया। इसका अर्थ ठीक-ठीक समझ लिया गया।

जब इस प्रकार की कटुता प्रतिदिन तीव्र होती जा रही थी तो निजामअली केवल इस अशुभ दिन को यथासम्भव टालते रहने वाले मार्ग का अनुसरण कर सकता था। कर्क पैट्रिक शान्तिपूर्ण हल पर तुला हुआ था और निजामअली अपने मन्त्री के परामर्शानुसार जोरों से युद्ध की तैयारियाँ कर रहा था। कर्क पैट्रिक को सन्तुष्ट करने के विचार से उसने पूना के साथ शान्तिपूर्ण वार्तालाप का ढोंग किया तथा इस कार्य के लिए जुलाई, १७९४ के आरम्भ में मीरआलम और गोविन्दराव काले को वहाँ भेजा। मीरआलम के साथ रघूत्तम हैबतराव तथा राय रायाँ रेवतीराव ढोंढाजी नामक एक अन्य सरदार भी था। मीरआलम निस्सार वादविवाद करता रहा। वह प्रत्येक साधारण विषय को भी निर्देशार्थ हैदराबाद भेज देता था, क्योंकि उसने स्वीकार कर लिया था कि उसको अन्तिम निश्चय करने के लिए पूर्ण अधिकार प्राप्त नहीं है। मीरआलम को मन्त्री का स्पष्ट निर्देश था—"आपका कार्य यह नहीं है कि जब तक स्वयं नाना इस प्रकार का प्रस्ताव न करे, तब तक मेरे और नाना के बीच मैत्रीपूर्ण वृत्ति स्थापित करने का प्रयत्न करें।" इसका उत्तर मीर आलम ने पूना से इस प्रकार लिखा—"आपसे मैत्री की चिन्ता यहाँ किसी को नहीं है। वे आपका नाम भी नहीं लेते हैं। वे आपको दोष नहीं देते और न आपके विरुद्ध कोई आरोप लगाते हैं। हमारे वार्तालाप में उन्होंने एक बार भी आपके लिए व्यक्तिगत रूप से स्पष्ट कुछ नहीं कहा है।"[७]

इस बीच मराठों के साथ युद्ध के भयानक परिणामों के विरुद्ध शोर ने निजाम सरकार को पूर्ण चेतावनी दे दी। उसने लिखा—"मराठा सरकार नैतिकता में बढ़ी हुई है। उनकी सेना भी अधिक शक्तिशाली है।" इस प्रकार ब्रिटिश तथा निजाम सरकार भिन्न दशाओं में प्रयास कर रही थीं। पूना में नाना फड़निस ने इन चालों को ठीक-ठीक समझ लिया तथा किसी भी प्रकार की घटना के लिए तत्परतापूर्वक तैयारी कर ली। मीरआलम को कोई अधिकार नहीं थे, इसलिए नाना ने वार्तालाप भंग कर दिया। मीर-

---

७ स्वयं शोर के २ मार्च, १७९५ के लेख में इस प्रकरण का संक्षिप्त वर्णन है। यह लेख सम्बन्धित तथा सुस्पष्ट है। इसमें तीनों पक्षों की राजनीतिक परिस्थिति की विशद व्याख्या है। देखो, हेस्टिंग्ज फ्रेजर कृत 'अवर फेथफुल ऐलाइ द निजाम' (हमारा निष्ठापूर्ण मित्र निजाम) परिशिष्ट, क्यू।

आलम का दूतमण्डल पूना में बहुत दिनों तक व्यर्थ प्रतीक्षा करता रहा तथा २० नवम्बर, १७६४ को हैदराबाद वापस आ गया। इसके बाद निजामअली के पुत्र आलीजाह ने कलह शान्त करने में व्यक्तिगत यत्न किया। उसको भी कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई। वास्तव में स्वयं लड़ाई के दिन तक सब लोगों की ओर से बिना युद्ध के कलह निपटाने के लिए इसी प्रकार के प्रयत्न होते रहे।

मीरआलम के दूतमण्डल की वापसी के बाद नाना फड़निस को सशस्त्र संघर्ष की अनिवार्यता का बोध हो गया। उसने मराठा सेनाओं को बीदर की दिशा में प्रयाण करने की विशिष्ट आज्ञा दे दी। शिन्दे तथा होल्कर के दल पहले ही अपने स्थित पड़ावों से दक्षिण की ओर चल चुके थे। दि बायने की इच्छा थी कि वह स्वयं अपने दल के साथ आये, परन्तु बीमारी के कारण वह न आ सका और अपने सहायक पैरों को इस कार्य के लिए भेज दिया। नाना ने पूना में सी० ए० बायड (एक अमरीकी) को नौकर रखकर एक दल प्रशिक्षित कर लिया था जो स्वयं पेशवा की आज्ञा के अधीन था। डुड्रेनेक के दल सहित तुकोजी होल्कर, रघुजी भोंसले तथा परशुराम भाऊ शीघ्र एकत्र हो गये। जनवरी, १७६५ के आरम्भ में निजाम की सेनाओं की ओर इन सेनाओं ने प्रयाण कर दिया। शोर ने पूना तथा हैदराबाद के रेजीडेण्टों को आज्ञा दी कि यदि युद्ध आरम्भ हो जाय तो वे उसमें कोई भाग न लें। उनसे स्पष्ट रूप में कहा गया कि जैसे ही सम्बन्धित सेनाएँ शत्रु देश में प्रवेश करें, वे उसी क्षण उनसे पृथक हो जायें। हैदराबाद में पहले से ही एक ब्रिटिश सहायक सेना थी। इसका अभिप्राय केवल आन्तरिक व्यवस्था बनाये रखना था। शोर ने इसके कमाण्डर को आज्ञा दी कि वह आरम्भ होने वाले युद्ध में कोई भाग न ले। उसने कहा—"दोनों हमारे सहायक हैं तथा हमारी इच्छा किसी के प्रति अनुचित कृपा प्रकट करने की नहीं है। हमको दृढ़तापूर्वक तटस्थ रहना है।" अन्तिम उपाय के रूप में शोर ने सुझाव दिया कि दोनों मुख्य व्यक्ति स्वयं एक दूसरे से भेंट करें तथा अपने मतभेदों को दूर करें। परन्तु यह प्रस्ताव अव्यावहारिक सिद्ध हुआ। चौथ के भारी शेष धन के भुगतान का प्रश्न स्पष्ट था। निजामअली ने कभी इसको अस्वीकार नहीं किया था। धन की वास्तविक मात्रा के विषय में मतभेद था। निजामअली ने समस्त धन की मात्रा का कभी खण्डन नहीं किया था।

गोविन्दराव काले ने यथाशक्ति प्रयत्न किया कि वह स्वयं निजामअली से वार्तालाप करके पुनः मैत्री स्थापित करे। निजामअली के हृदय में काले के प्रति उच्च वैयक्तिक सम्मान था। उसके व्यक्तिगत कमरों में भी काले को

स्वतन्त्र प्रवेश प्राप्त था।[८] काले की आकृति भव्य तथा भाषा चातुर्यपूर्ण थी। वह हिन्दुस्तानी बोली और मुस्लिम शिष्टाचार में निपुण था।

५. **खरडा का रण**—जब पूना में समाचार प्राप्त हुआ कि निजामअली की सेना बीदर से आगे बढ़ आयी है तो पेशवा ने दिसम्बर में अपने सैनिक डेरे में प्रवेश किया तथा जनवरी के आरम्भ में मराठा सेनाओं ने पूर्व की ओर यात्रा प्रारम्भ की। माधवराव रामचन्द्र कनाड़े को राजधानी पूना की रक्षा के लिए नियुक्त किया गया। रघुनाथराव के पुत्र बाजीराव तथा चिमनाजी असुविधा उत्पन्न कर सकते थे, अतः उन्हें कठोर नियन्त्रण के लिए कोपरगाँव से जुन्नार हटा दिया गया और उनकी देखभाल करने वाला दल भी बढ़ा दिया गया। घोड़ नदी तथा माण्डवगाँव से आगे बढ़कर सीना नदी पर स्थित मिरजगाँव के मार्ग से मराठा सेनाएँ पूर्व की ओर बढ़ीं। पूना से १५० मील पूर्व में स्थित खरडा नामक स्थान बीदर तथा पूना के बीच में है। इसके समीप दोनों विरोधी दलों ने डेरे लगा लिये। ५ अप्रैल को धनोड़ गाँव में मराठों ने होली का त्यौहार मनाया। नवाब खरडा के पश्चिम में लगभग ४ मील पर बहने वाली खर नदी पर ठहर गया था। उसी दिन दोनों दलों की अग्रगामी टोलियों के बीच हल्की झड़पें आरम्भ हो गयीं। विरोधी दलों में दोनों के गुप्तचर थे जो प्रत्येक की योजनाओं तथा प्रगतियों के पूर्ण समाचार भेजते थे। मराठा शिविर में इस प्रकार के समाचार प्राप्त हुए कि नवाब के पास १५० महिलाओं तथा ८० सेविकाओं का अन्तःपुर है। ये सब हाथी पर सवार थीं, प्रत्येक हाथी पर बन्द हौदे में दो स्त्रियाँ थीं। एक सप्ताह तक दोनों दल एक दूसरे के सम्मुख खड़े रण की प्रतीक्षा करते रहे। एक दिन शत्रु के स्थानों की खोज करते समय हरिपन्त फड़के के पुत्र बाबा पर सहसा आक्रमण किया गया। वह अपनी प्राणरक्षा के लिए भाग निकला। जब यह समाचार मुशीरुलमुल्क को प्राप्त हुआ तो उसने अपने स्वामी की उपस्थिति में

---

८ १७९० में गोविन्दराव ने लिखा कि वह निजामअली से उसके व्यक्तिगत कमरे में मिला और उसके शरीर पर फोड़ा देखा। यह वही विख्यात मराठा कूटनीतिज्ञ था, जिसने खरडा में निजामअली के पराभव के बाद भी उसे यथाशक्य आसान शर्तें प्राप्त कराने तथा दोनों दरबारों के बीच स्नेह सम्बन्ध पुनः जोड़ने का भरसक प्रयत्न किया। इस प्रकार गोविन्दराव ने यथाशक्ति प्रयास किया कि खुला युद्ध टल जाये। अप्रैल १७९४ में निजामअली के पुत्र सिकन्दरशाह का विवाह हुआ, जिसमें सम्मिलित होने के लिए उसने पेशवा को स्नेह तथा आग्रह सहित निमन्त्रण भेजा। परन्तु नाना फड़निस ने दोनों की व्यक्तिगत भेंट की आज्ञा नहीं दी।

उसी रात्रि को एक नृत्य का प्रबन्ध किया। इसमें नाना फड़निस, दौलतराव शिन्दे, परशुराम भाऊ तथा अन्य व्यक्तियों को भद्दे वस्त्र धारण किये हुए व्यक्तियों द्वारा प्रदर्शित किया गया। मराठा दूत काले जो इस उत्सव के समय उपस्थित था, इस अपमान पर अपनी अप्रसन्नता प्रकट करने के विचार से अकस्मात् सभा से चल दिया। इससे प्रकट होता है कि भावनाएँ किस प्रकार उत्तेजित हो गयी थीं।

मराठा सेना के मुख्य सेनापति पद पर किसी व्यक्ति की अधिकृत रूप से नियुक्ति बहुत समय से नहीं हुई थी, क्योंकि इस जटिल प्रश्न का निर्णय करने में नाना असमर्थ था। परशुराम भाऊ वरिष्ठ अनुभवी नेता था, परन्तु शिन्दे तथा होल्कर की अपेक्षा उसका स्थान नीचा था। दौलतराव १५ वर्ष का अनुभवहीन बालक था तथा तुकोजी होल्कर इतना वृद्ध था कि सर्वोपरि सेनानायक पद को सँभालने के लिए सर्वथा अयोग्य था। जीवबा बख्शी निस्सन्देह अनुभवी था, परन्तु वह मराठा सरकार के विभिन्न तत्त्वों की जटिलताओं तथा क्षमताओं से अपरिचित था। नाना अपने विश्वास प्राप्त ऐसे व्यक्ति को नियुक्त करना चाहता था जो संकटकालीन स्थिति में वश में रहे तथा उसके विचारों से सहमत हो। अतः उसने होली उत्सव के धुलेंडी वाले दिन ६ मार्च को सायंकाल रत्नपुर में दल बादल नामक विशेष शामियाने में दरबार किया। यहाँ नाना ने निजाम सरकार के साथ होने वाले समस्त आदान-प्रदान की कथा सुनायी। सबसे हार्दिक सहयोग की प्रार्थना करने के बाद उसने परशुराम भाऊ को बुलाकर प्रस्ताव किया कि वह मुख्य सेनानायक का पद स्वीकार करे। उसने कहा—"आप इस सभा में ज्येष्ठ तथा सर्वाधिक अनुभवी सेनानी हैं। आप ही इस अभियान का भार ग्रहण करें और अपने विचारानुसार जो उचित समझें वह करें।" उत्तर में भाऊ ने आग्रह किया—"शिन्दे तथा होल्कर सदृश शक्तिशाली तथा गौरव-सम्पन्न पुरुष उपस्थित हैं। उन्हीं में से किसी को यह कार्य दिया जा सकता है।" इस पर नाना ने परिस्थिति का स्पष्टीकरण किया तथा परशुराम भाऊ को ही यह उत्तरदायित्व सँभालने के लिए विवश कर दिया। भाऊ ने बाबा फड़के को द्वितीय स्थान पर नियुक्त कर लिया। इस प्रबन्ध के प्रति सम्पूर्ण सभा ने हार्दिक स्वीकृति दे दी।

मराठा सेना का शिविर मुख्यतया सीना नदी के तट पर था। उस समय मराठी पत्रों में निजाम के पक्षपातियों को मुगल कहा जाता था। वे खरडा से लगभग ४ मील खर नदी पर शिविर डाले पड़े थे। उनका अग्रदल तलसंगी गाँव तक फैला हुआ था। दो-तीन दिनों तक कुछ अनियत झड़पों के बाद निजाम की सेना के नायक ने रंगपंचमी के दिन (११ मार्च) विशेष मोर्चाबन्दी

की। वह अपनी सेना का अग्रभाग पृष्ठभाग से परिवर्तित करना चाहता था। इस हलचल पर कुछ मराठा सरदारों का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट हो गया। मराठे उन पर तुरन्त आक्रमण करने के लिए आगे बढ़े। परशुराम भाऊ अग्रभाग में अपनी तोपें लगाने के लिए कोई स्थान खोज रहा था, तभी शत्रु ने तुरन्त उस पर आक्रमण कर दिया, उसके मस्तक में चोट आयी। उसका चचेरा भाई विट्ठल बाबा जो उसके समीप खड़ा था, इस युद्ध में मारा गया। यह घटना पूर्ण आक्रमण का संकेत सिद्ध हुई। शिन्दे की सेना शक्तिपूर्वक आगे बढ़ी। होल्कर ने उसका अनुकरण किया। दोनों पक्षों के बीच अग्नि-वर्षा आरम्भ हो गयी।[६] जमकर युद्ध नहीं हो सका, क्योंकि निजामअली भय के कारण खरडा के दुर्ग में जा छिपा। मराठों ने तुरन्त इस दुर्ग को घेर लिया और अन्न-जल पहुँचना सर्वथा बन्द कर दिया। मराठे रात भर गढ़ की दीवारों पर अग्नि-वर्षा करते रहे। उन्होंने शत्रु की कुछ तोपों तथा अन्य वस्तुओं पर भी अधिकार कर लिया। बृहस्पतिवार १३ मार्च की प्रभात को निजामअली का एक सन्देशवाहक आया और उसने अग्नि-वर्षा बन्द करके शान्ति की शर्तों की प्रार्थना की।

नाना फड़निस छत्रपति को इस काण्ड का समाचार भेजते हुए युद्ध का वर्णन इस प्रकार करता है :

"हमने निजाम से इस कलह का शान्तिपूर्ण समझौता करने का यथाशक्ति प्रयत्न किया। परन्तु उसके मन्त्री मुईनुद्दौला ने मराठा राज्य का सर्वनाश करने के उद्देश्य से निन्दनीय विधियों तथा उपायों का प्रयोग किया। उसकी योजना पूना पर अधिकार करके वहाँ निजाम का झण्डा गाड़ देने की थी। उसने पूना में हत्याएँ करने के लिए भी कुछ लोगों को नियुक्त किया। ये पकड़ लिये गये तथा उनके दुष्ट उद्देश्यों का लिखित प्रमाण प्राप्त हो गया। मुगल लोग स्पष्ट कहते थे कि मराठों को उनके देश से बाहर निकाल देंगे। मुईनुद्दौला ने नवाब के मन में इस प्रकार विष भर दिया कि कोई शान्तिपूर्ण समझौता नहीं हो सका। हमने अत्यन्त धैर्य से कार्य किया तथा कठोर कार्रवाई से दूर रहे। परन्तु जब यह समाचार प्राप्त हुआ कि नवाब सुसज्जित सेना सहित पूना की ओर प्रयाण कर रहा है तो हम चुनौती स्वीकार करने के लिए विवश हो गये। हमने अपनी सेनाओं को एकत्र किया तथा उत्तर से शिन्दे के दलों को भी बुला लिया। हम बीदर की दिशा में बढ़े तथा श्रीमन्त को करीब २० मील पीछे रखकर आक्रमण की तैयारी की। ११ मार्च को तीसरे पहर दोनों सेनाओं में टक्कर हो गयी। तोपों, भालों, तलवारों तथा कटारों का इस छोटे-से परन्तु

---

६ पूना रेजीडेन्सी कॉरस्पौण्डेन्स, जिल्द ४, नं० १७८ तथा १७९ अ०

विनाशक रण में खुलकर प्रयोग हुआ। नवाब की हार हुई और वह भाग गया। हमने संध्या के बाद भी अपनी अग्नि-वर्षा जारी रखी। रात्रि को हमारे पिण्डारी शत्रु के शिविर में घुस गये। उनके हाथ लूट का बहुत-सा माल लगा। नवाब ने खरडा के गढ़ में शरण ली। १२ मार्च को भी सारे दिन अग्नि-वर्षा होती रही। उस दिन संध्या के समीप नवाब ने अपने कुछ आदमी हमारे पास भेजे। उन्होंने प्रार्थना की कि अग्नि-वर्षा बन्द करके सन्धि की शर्तें बतायी जायें। हमने मुईनुद्दौला के समर्पण की माँग की जो इस झगड़े की एक-मात्र जड़ है। नवाब तो सोच-विचार में ही रहा, परन्तु मुईनुद्दौला ने स्वयं वीरतापूर्वक आगे आकर इस विकट परिस्थिति से अपने स्वामी की रक्षा कर ली। उसने कहा—"मैं समर्पण के लिए तैयार हूँ। आप मेरा जो चाहें करें।" हमने निश्चय किया कि यदि वह हमारे राज्य को कोई हानि न पहुँचाने का वचन दे तो हम उसे अपने यहाँ नजरबन्द रख लें। बाद में उसका आदरपूर्वक स्वागत किया गया और उचित सुरक्षा में रख लिया गया। इस प्रकार शिन्दे, होल्कर तथा अन्य सरदारों के परामर्श के विरुद्ध भी हमने अपना हाथ रोक लिया। सरदारों ने एक स्वर से आग्रह किया था कि सम्पूर्ण निजामी राज्य को अधीन कर लिया जाये। इसके बाद पुराने देयधन के भुगतान के विषय में वार्तालाप आरम्भ हुआ। हम सहमत हो गये कि तीन करोड़ चौथ के हिसाब में तथा दो करोड़ युद्ध-व्यय के लिए चुकाये जायें। यह धन थोड़ा-थोड़ा करके तीन वर्षों में चुकाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त दौलताबाद का गढ़ भी हमको मिलना निश्चय हुआ है। नागपुर के भोंसले परिवार का प्रदेश, जिस पर नवाब ने हाल में अधिकार कर लिया है, उसको पुनः प्राप्त होने वाला है। साथ में उसका संचित भूमिकर भी मिलेगा। एक सप्ताह के भीतर दस्तावेजों का प्रमाणीकरण हो जायेगा। जीवाजी बल्लाल, भोंसले परिवार, होल्कर परिवार तथा हमारी सेना सबने इस भारी सफलता के प्राप्त करने में उत्साहपूर्वक सहायता दी। आपके आशीर्वाद द्वारा तथा ईश्वर की कृपा से यह सफलता प्राप्त हुई है।"[९]

इस अल्पकाल में प्राप्त होने वाली सफलता का कारण निस्सन्देह शिन्दे का निपुण तोपखाना था, जिसके संचालन के लिए फ्रेंच लोग नियुक्त थे। इस तोपखाने ने इस प्रकार का संहार किया कि उसके सामने कोई ठहर नहीं सकता था। इस प्रकार खरडा का काण्ड एक दो दिन की घटना सिद्ध हुआ। उस विपुल समय से इस काल में अत्यन्त विषमता है, जिसकी आवश्यकता प्राचीन गुरिल्ला युद्ध पद्धति द्वारा शत्रु को पराजित करने में होती थी। निजाम का फ्रेंच सेनापति रेमाण्ड चाहता था कि अगले दिन युद्ध पुनः आरम्भ किया

---

९ १० ऐतिहासिक पत्र, ३१३

जाये, परन्तु निजामअली ने दृढ़तापूर्वक ऐसा नहीं होने दिया। दोनों प्रतिद्वन्द्वियों की सेना के निम्नलिखित आँकड़े ध्यान में रखे जा सकते हैं[१०] :

मराठे : ८४ हजार घुड़सवार + ३८ हजार पैदल + १८२ तोपें।

निजाम : ४५ हजार ,, + ४४ हजार ,, + १०८ ,, ।

यद्यपि रण खरडा के समीप हुआ, पर निजामअली का विचार था कि गोदावरी क्षेत्र में नदी तथा औरंगाबाद के बीच में युद्ध हो।

११ मार्च के रण के बाद जो शान्ति प्रस्ताव किये गये, उनके कुछ रोचक विवरण गोविन्दराव काले ने दिये हैं। साररूप से उनका उद्धरण देना अनुचित न होगा।[११] जैसे ही निजामअली ने खरडा के गढ़ में प्रवेश किया, उसने काले को अपने पास बुलाकर कहा—"मुझे दो मास का अवकाश दो। मैं अजीमुलुमरा को उसके स्थान से हटा दूँगा।" काले ने इस प्रस्ताव पर विचार करने से इनकार कर दिया और कहा—"आप स्वामी हैं, जो आपकी इच्छा हो, करें।" गोविन्दराव अपने डेरे को वापस आ गया और मुगल शिविर को छोड़ने के लिए तैयार हो गया। निजामअली ने यह सुनकर तुरन्त घासी मियाँ को भेजकर काले को अपने पास बुलाया। उसकी यह चाल अवकाश प्राप्त करने के लिए थी। वह इस प्रकार स्वयं पेशवा से बातचीत करके नाना तथा मुशीरुलमुल्क के बीच वैर शान्ति का प्रबन्ध करना चाहता था। गोविन्दराव ने उत्तर दिया—"मैं केवल नौकर हूँ तथा दोनों राज्यों का हितैषी हूँ। मैं सच्चाई से आपका सन्देश अपने स्वामी तक पहुँचा दूँगा और उसका उत्तर आपके पास वापस लाऊँगा। परन्तु मैं नम्रतापूर्वक आपको स्मरण दिलाता हूँ कि जब तक आप अपने मन्त्री को उसके पद से हटा नही देंगे, तब तक किसी प्रस्ताव पर विचार नहीं किया जायेगा।" जैसे ही गोविन्दराव बाहर द्वार तक पहुँचा, निजाम के तीन अधिकारियों ने उससे बातचीत की। गोविन्दराव ने उनसे कहा—"मैं नवाब का सन्देश नाना को देने जा रहा हूँ। यदि वह सहमत नहीं होता तो मैं इस शिविर को वापस नहीं आऊँगा। एक प्रकार से अब मैं सदा के लिए विदा हो रहा हूँ।" यह समाचार अरिस्तूजाह को दिया गया। उसने तुरन्त अपने स्वामी को लिखा—"बिना किसी सोच-विचार के आप पेशवा की माँग स्वीकार कर लें और मुझको उसके पास भेजकर इस झगड़े को समाप्त करें। अन्यथा आपके राज्य की हानि होगी।" इस पर निजामअली मन्त्री

---

[१०] मैलेट का पूर्ण वृतान्त पी० आर० सी०, जिल्द ४, नं० २०२ में देखो।

[११] इस काले के लेख दीर्घकाय हैं। कुछ का मुद्रण राजवाड़े कृत इतिहास संग्रह, जिल्द ५, ७ तथा २२ में हो चुका है। जिल्द ५ का सम्बन्ध जून, १७९५ से अक्तूबर तक के समय से है।

को अन्त:पुर स्थित अपने व्यक्तिगत कमरे में ले गया। मन्त्री मुईनुद्दौला ने वहाँ उससे कहा—"आप मुझे मराठों का नजरबन्द बनाकर अपना मार्ग निकाल लें।"

निजाम बोला—"आप पूरी तरह शान्त रहें। मेरे पास आपके लिए अपनी योजनाएँ हैं। देखना यह है कि मैं उनका प्रबन्ध किस प्रकार कर सकता हूँ।"

इस बीच गोविन्दराव नाना का उत्तर लेकर वापस आ गया। उत्तर इस प्रकार था—"जब तक आप मन्त्री को नहीं निकालते, पेशवा आप से नहीं मिलेगा। हमारी इच्छा युद्ध जारी रखने की नहीं है, परन्तु यदि आप ऐसा ही चाहते हैं तो हमारा उत्तर तैयार है।" तब निजामअली ने शर्फुद्दौला को बुला कर उसका परामर्श माँगा। शर्फुद्दौला ने परशुराम भाऊ तथा अन्य व्यक्तियों को लिखा, जिनको वह अच्छी तरह जानता था। उन सबने एक ही उत्तर दिया—"जब तक मन्त्री मराठा शिविर में नहीं पहुँच जाता, तब तक किसी प्रकार का वार्तालाप न हो सकेगा।" इस प्रकार निजामअली तथा उसके परामर्शकों की समझ में आ गया कि कोई अन्य मार्ग नहीं रह गया है। विवश होकर उन्होंने माँग को मान लिया। रण के पूरे १५ दिन बाद २७ मार्च को काले तथा रंगोपन्त गोड़बोले द्वारा सुरक्षित मुशीरुलमुल्क मराठा शिविर में पहुँच गया। नाना फड़नविस उसके स्वागत के लिए लगभग ८ मील आगे आया। वे मिले और स्वतन्त्रतापूर्वक उन्होंने वार्तालाप किया। अन्त में वह पेशवा के सम्मुख वार्तालाप करने के लिए लाया गया। पेशवा ने बाहर आकर द्वार पर उसका स्वागत किया। रुक्नुद्दौला अपने हाथी से उतर पड़ा और गोविन्दराव उसको पेशवा के सम्मुख ले आया। उसके दोनों हाथ रूमाल से बँधे हुए थे। पेशवा ने अपने हाथी से उतरकर अभिनन्दनार्थ मन्त्री का हाथ पकड़ लिया। इसके बाद वे तीनों—पेशवा, दौला तथा नाना—एक हाथी पर सवार होकर विशालकाय दरबारी शामियाने में पहुँच गये। यहाँ पर पूर्ण सम्मान से अतिथि का स्वागत किया गया। इस समय उसका सिर नीचे झुका हुआ था। स्वागत विधि के समाप्त होने पर दौला को उस स्थान पर पहुँचा दिया गया जो उसके लिए विशेष रूप से तैयार किया गया था। दौला वहाँ बजाबा शिरोलकर की देखरेख में ठहरा दिया गया। इतिहास लेखक की टिप्पणी इस प्रकार है—"पेशवा की ग्रहदशा उत्तम है। इसी प्रकार की कल्पनातीत भव्य घटनाएँ घटित होती हैं।" "पेशवा तुरन्त पूना को चल पड़ा, जहाँ वह प्रथम मई, १७६५ शुक्रवार को पहुँचा। वहाँ मराठा राजधानी की ओर से उसका सार्वजनिक भव्य सत्कार किया गया। उसका जुलूस प्रकाश से जगमगाते नगर से होकर

निकला। उस पर स्वर्णपुष्पों की वर्षा की गयी। मुशीरुलमुल्क कोषागार में सुविधापूर्वक ठहरा दिया गया। इस प्रकार नाना फड़निस की उत्कट अभिलाषा पूर्ण हो गयी।" हैदराबाद का मन्त्री ठीक एक वर्ष तक नजरबन्द रहा। पेशवा की मृत्यु उसी वर्ष अक्तूबर में हो गयी। इस कारण अनेक परिवर्तन हो गये तथा ५ जून, १७९६ को मुशीरुलमुल्क मुक्त कर दिया गया।

इस वर्णन से स्पष्ट हो जायगा कि मराठों को इस महान विजय से व्यावहारिक रूप में कोई लाभ नहीं हुआ, यद्यपि उस समय इस विजय की प्रतिध्वनि समस्त दिशाओं में फैल गयी थी। कागज पर पाँच करोड़ की प्रतिज्ञा वाले धन में से उनको लगभग ३० लाख रुपये तथा ३० लाख की आय का प्रदेश मिला। शेष धन कभी प्राप्त नहीं हुआ। अन्त में स्थिति का रूप ऐसा हो गया कि मराठा राज्य समाप्त हो गया और हैदराबाद का राज्य भारत स्वतन्त्र होने के समय तक समृद्ध दशा में विद्यमान रहा। इतिहास इससे भलीभाँति परिचित है। खरडा के सन्धि-पत्र की केवल दो धाराएँ देखने योग्य हैं, क्योंकि उनको निजाम तथा मराठों के राज्य में शायद अब तक प्रचलित होना चाहिए था।

१. "दक्षिण में गौहत्या नही होनी चाहिए। इसी प्रकार महाराष्ट्र में मुस्लिम धर्म, ताजियों, खुदा-परस्ती (ईश्वर-पूजा) आदि का आचरण निर्विघ्न होना चाहिए।

२. "हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ईश्वर के एकसे बालक हैं। मुसलमान हिन्दू मन्दिरों को किसी प्रकार नष्ट न करें। हिन्दुओं ने मुसलमानों के पवित्र स्थानों, उनके पीरों (सन्तों) तथा उनके पैगम्बरों (धर्मोद्धारकों) के प्रति कोई अनादर नहीं किया है और न उनको कोई हानि पहुँचायी है। इसी प्रकार मुसलमान लोग हिन्दू धर्म को कोई कष्ट या पीड़ा न दें। बिना एक-दूसरे को बाधा पहुँचाये दोनों अपने धर्मों का स्वतन्त्रतापूर्वक पालन करें।"[१२]

दरबार-खर्च अथवा मन्त्री का विशेष पुरस्कार उन दिनों समस्त राज्य व्यवहारों में सदैव लगता था। इस कारण खरडा के सन्धि-पत्र के निर्माताओं को निजाम के कोष से १५ लाख रुपये मिले। इसमें से शिन्दे को ४ लाख एवं परशुराम भाऊ तथा बाबा फड़के में से प्रत्येक को एक लाख रुपये मिले। शेष धन अन्य व्यक्तियों को यथापूर्व अनुपात में बाँट दिया गया।

मराठा शिविर से प्राप्त २० अप्रैल, १७९५ का एक समाचार इस प्रकार है:

"सन्धि निश्चित हो गयी। नवाब मंजीरा नदी पर है। समझौतों का

[१२] ऐतिहासिक पत्र-व्यवहार, नं० ३१४, पृ० २९०

प्रमाणीकरण हो गया है। शिन्दे को एक करोड़ रुपये तथा बीड़ का जिला मिलेगा। (इन धाराओं का कभी पालन नहीं किया गया।) भोंसले ने निजाम से अलग सन्धि कर ली है। नवाब को अत्यन्त अपमान का अनुभव हो रहा है। महादजी पन्त गुरुजी शिविर में उपस्थित था तथा समस्त कठिन विषयों पर परामर्श दे रहा था। बाबा फड़के ने अपने पिता हरिपन्त की ख्याति भली प्रकार स्थिर रखी है।"

६. **निजामअली द्वारा नाना तथा काले ठगे गये**—खरडा में निश्चित सन्धि की शर्तों को कार्यान्वित करने का कार्य काले को सौंपा गया। वह निजामअली के साथ हैदराबाद गया। मीरआलम निजामअली का मन्त्री था, जिससे काले को बलपूर्वक शर्तों की पूर्ति करानी थी। निजामअली के सामने अपने पुत्र आलीजाह का विद्रोह था। उसने जून, १७९५ में बीदर के स्थान पर अपनी स्वाधीनता घोषित कर दी। गोविन्दराव में अपने कार्य के लिए अपेक्षित कठोरता न थी। वह निजामअली की मधुर प्रतिज्ञाओं तथा निस्सार प्रार्थनाओं के प्रभाव में आ गया। यही अवसर था जब मराठों का देश मुस्लिम नियन्त्रण से मुक्त किया जा सकता था। परन्तु गोविन्दराव ने अपने को हैदराबाद राज्य की यथापूर्व रक्षा करने में व्यस्त रखा। उसने नाना को लिखा—"मेरा प्रधान तथा सतत कार्य इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न करना रहा है, जिससे हैदराबाद तथा पूना के राज्य एक-दूसरे से पृथक न समझे जा सकें। उन दोनों में इस प्रकार संयोग हो जाये कि परस्पर कोई भी भय न रहे।" इस प्रकार का निरर्थक स्वप्न व्यावहारिक राजनीति की सीमाओं से बाहर था। दो परम्परागत शत्रु प्रेमपूर्वक निकट सम्पर्क में नहीं रखे जा सकते। अपने पुत्र के विद्रोह के कारण निजामअली की दशा अच्छी नहीं थी। काले ने इस स्थिति का मराठा हित में उपयोग करने के स्थान पर यथाशक्ति निजामअली की रक्षा का प्रयास किया। जुलाई में उसने नाना को लिखा—"इस अवसर पर आप उदासीन न रहें, अपितु विद्रोह का दमन करके इस राज्य की रक्षा करें। दोनों राज्यों को एक संयुक्त इकाई बन जाना चाहिए। आप निजामअली का कल्याण अवश्य करें। मैं जानता हूँ कि यदि इस शासक के विरुद्ध आपकी कोई कुटिल योजना होती, तो खरडा में उसको समाप्त कर देना आपके लिए साधारण बात थी। परन्तु आपने अपना हाथ रोक लिया और इस राज्य की रक्षा कर ली। पूना का श्रीमन्त तथा हैदराबाद का हजरत दो भिन्न व्यक्ति नहीं हैं। पुत्र स्पष्ट विद्रोही है, परन्तु पिता अपने पुत्र के दमन के लिए अपने कोष से आवश्यक धन व्यय करना नहीं चाहता।" इस प्रकार निश्चित हुए विशाल धन के प्रतिज्ञात अंशों को बलपूर्वक प्राप्त करने में काले असमर्थ रहा। उसने स्वयं लिखा—"इस प्रकार के परिणाम के लिए मैं स्वयं कुछ अंशों में

उत्तरदायी हूँ। मैंने आपके समक्ष निजामअली के पक्ष का समर्थन किया तथा भुगतान के लिए उसका उत्तरदायी बना। अब वह अपने वचन का पालन करना भूल गया है तथा वह मुझ पर आरोप लगाता है कि मैं उसके राज्य का मुख्य विनाशक हूँ।"

सितम्बर, १७९५ में ब्रिटिश रेजीडेण्ट कर्क पैट्रिक से निजामअली ने यह कहकर अपना मन हल्का किया—"पूना का पन्त प्रधान मेरे लिए महान दुख का कारण है। मुझको सदैव यह चिन्ता रहती है कि अपने ऊपर किये हुए अन्यायों का उससे प्रतिशोध लूँ। आप हमारे मित्र तथा सहायक हैं। क्या इस दुख में आप मेरी सहायता नहीं करेंगे ? कर्क पैट्रिक ने उत्तर दिया—"बिना अपने स्वामियों की आज्ञा के मैं इस प्रस्ताव का उत्तर नहीं दे सकता।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि खरडा में सहन की गयी पराजय तथा भारी दण्ड चुकाने से और प्रदेश त्याग करने से अतिपीड़ित होकर निजामअली ने नाना प्रकार की युक्तियाँ ढूँढ़ना आरम्भ कर दिया, जिनके द्वारा मराठा माँगों से बचा जा सके। काले लिखता है—"निजामअली की हार्दिक इच्छा है कि वह इन कड़ी शर्तों से बच जाये। उसकी इच्छा इन शर्तों को पूरा करने की नहीं है। सच्चाई, प्रतिज्ञा, प्रण आदि का उसकी दृष्टि में कोई मान नहीं है, क्योंकि वह पैशाचिक धूर्तता में डूबा हुआ है। खरडा से वापस होने पर उसकी मुद्रा बदल गयी है। वह कहता है कि स्वयं पेशवा से मिलने के पहले वह सन्धि का पालन नहीं कर सकता। इस विषय में वह विलम्ब करता जा रहा है। उसके पुत्र के विद्रोह से उसके कष्ट और भी बढ़ गये हैं। उसके मन में दुष्टता है और वह केवल प्रतीक्षात्मक खेल खेल रहा है।" इस प्रकार खरडा का समस्त प्रकरण एक प्रसहन बन गया। इससे मराठा राज्य को कोई लाभ नहीं हुआ। अक्तूबर में पेशवा की मृत्यु हो गयी तथा मराठा राजनीति की दिशा बदल गयी। प्रभावशाली विजय होते हुए भी नाना तथा काले अपनी चाल में परास्त हो गये।

७. **स्वर्णिम आशा समाप्त**—जब हम खरडा की शानदार विजय के ६ मास के भीतर घटित होने वाली इस घोर विपत्ति को ध्यान में रखकर सोचते हैं तो पेशवा के पालन-पोषण में होने वाली त्रुटियाँ और नाना तथा महादजी के बीच लगातार चलने वाला वैमनस्य अत्यन्त महत्त्वहीन हो जाता है। नाना ने उस अभियान का प्रबन्ध महान योग्यता तथा दूर-दृष्टि से किया था। इस बात की सर्वथा सम्भावना थी कि मराठा राज्य यथापूर्व समृद्ध रहेगा। तभी जुलाई, १७९५ के लगभग नाना को एक भयानक षड्यन्त्र का पता लगा। उसकी नीति के लिए वस्तुस्थिति अन्धकारमय होने लगी। ऐसा

मालूम हुआ कि पेशवा जुन्नार में नजरबन्द अपने नवयुवक दुष्ट चाचा बाजीराव से मिलकर गुप्त षड्यन्त्र कर रहा है।

सहसा अपने राजभवन की गौख से गिर जाने के कारण पेशवा की मृत्यु हो गयी अथवा वह जानबूझकर नीचे की मंजिल पर कूद पड़ा—यह ऐसा प्रश्न है, जिसका कोई अन्तिम निश्चय नहीं हो सकता। आत्महत्याएँ असन्दिग्ध प्रमाणों द्वारा सिद्ध नहीं की जा सकतीं। केवल समकालीन पत्रों में लिखित विवरण के आधार पर हम इस कथा का वर्णन कर सकते हैं।[१३] एक वृत्तान्त इस प्रकार है—"नाना फड़निस ने रघुनाथराव के तीनों पुत्रों को जुन्नार के स्थान पर नजरबन्द कर रखा था। उनका संरक्षक बलवन्तराव नागनाथ था। बलवन्तराव ने बाजीराव से मित्रता कर ली। बाजीराव ने उससे कहा कि वह उसे पेशवा से मिलाने का प्रयत्न करे। बलवन्तराव ने उत्तर में कहा—"यदि आप मुझे उसके लिए पत्र दें तो मैं यह प्रबन्ध कर सकता हूँ कि वह पत्र गुप्त रूप से उसके पास पहुँच जाये तथा आपको उत्तर मिल जाये।" तदनुसार बाजीराव ने पेशवा को पत्र लिखकर व्यक्तिगत रूप से मिलने की प्रार्थना की। बलवन्तराव यह पत्र पूना ले गया तथा उसने स्वयं यह पत्र पेशवा को दिया। पेशवा बाजीराव की प्रार्थना मान गया और उसने बलवन्तराव से कहा कि वह बाजीराव से मिलने पर प्रसन्न होगा तथा शीघ्र ही इस मिलन का प्रबन्ध करेगा। इस आशय का उत्तर उसने अपने हाथ से लिखकर बलवन्तराव को दिया। इसके बाद बलवन्तराव अपने घर पूना चला गया। इस बीच वहाँ नियुक्त पेशवा के एक सेवक ने नाना फड़निस को इस पत्र का समाचार दिया। नाना ने बलवन्तराव के क्लर्क से वह पत्र तुरन्त प्राप्त कर लिया और उसको लेकर राजभवन गया। नाना ने पेशवा से पूछा कि उसने बाजीराव को कौनसा पत्र लिखा है। पेशवा ने शपथपूर्वक इस तथ्य से इनकार किया। तब नाना ने पत्र प्रकट कर दिया और पूछा कि क्या वह पत्र उसका लिखा हुआ नहीं है? इस पर पेशवा का मस्तक लज्जा से झुक गया। नाना ने उससे कुछ कठोर शब्द भी कहे और स्पष्ट किया कि बाजीराव से सम्पर्क स्थापित करना किस प्रकार आपत्तिजनक है। नाना ने तुरन्त बलवन्तराव को पकड़कर एक गढ़ के कारागार में डाल दिया। इस पर पेशवा ने अत्यन्त दुखी होकर नाना को बुलाया तथा स्पष्ट किया कि वह समस्त कृत्य उसी का है। इस कारण बलवन्तराव को दण्ड नहीं मिलना चाहिए। इसकी ओर नाना ने ध्यान नहीं दिया, उल्टे उसकी प्रार्थनाओं के कारण उसकी निन्दा की। कुछ दिन पश्चात दशहरा का उत्सव आ गया। इस समय पेशवा बहुत रुष्ट तथा

---

[१३] राजवाड़े, जिल्द १०, पृ० ४१५

व्याकुल जान पड़ता था। आश्विन की तेरस को पेशवा सहसा ऊपर की मंजिल से कूद पड़ा और उसके हाथ और पैर टूट गये। चिकित्साकाल में उसका देहान्त हो गया।'' पेशवा की मृत्यु का यह उपलब्ध वर्णन उसी समय लिखा गया है। इससे प्रकट है कि नाना ने जो फटकार लगायी, उससे वह बहुत रुष्ट था। यही पेशवा की मृत्यु का मूल कारण है।[१४]

पूना में महादजी के आगमन के बाद पेशवा के विचार शीघ्र ही बदल कर व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की ओर झुक गये। राज्य के स्वामी के रूप में उसको अपनी स्थिति का भान होने लगा तथा उसकी इच्छा हुई कि वह अपने निर्देशक नाना से स्वतन्त्र होकर अपनी सत्ता का उपभोग करे। इसी उद्देश्य से महादजी पूना आया था। एक बार जब वह बग्घी में बाहर जा रहा था तो पेशवा ने देखा कि उसका अपना रक्षा-दल तथा नाना का रक्षा-दल साथ-साथ घोड़ों पर चल रहे हैं। यह शिष्टाचार का उल्लंघन था, जिस पर वह क्रुद्ध हो गया तथा उसने इसे तुरन्त ठीक कर दिया (जून, १७९१)। घासीराम कोतवाल (अगस्त, १७९१) तथा भोर के सचिव (१७९३) के प्रकरण इस बात के स्पष्ट उदाहरण हैं कि नाना के निश्चयों के विरुद्ध पेशवा अपनी सत्ता का प्रदर्शन कर रहा था। परन्तु पेशवा ने कभी नाना का अपमान नहीं किया तथा नाना से विनय की कि वह बनारस जाने का अपना निश्चय त्याग दे। मालूम होता है माधवराव में इस प्रकार का स्वभाव विकसित हो गया था कि उसको अपने गौरव या आत्मसम्मान की अवहेलना पर तुरन्त दुख होता था। उसने वे पुराने उदाहरण तथा उपाय खोज निकाले थे जिनका अनुसरण उसके पद पर स्थित प्रसिद्ध पूर्वाधिकारी करते थे। यह सम्भव है कि पेशवा के बढ़ते हुए पुरुषत्व में होने वाले इस परिवर्तन की ओर नाना का ध्यान नहीं गया हो तथा उसने पहले से चले आ रहे कठोर नियन्त्रण को शिथिल न किया हो। २५ वर्षों से नाना स्वेच्छाचारी शासक था। सखाराम बापू तथा मोरोबा फड़निस सदृश अपने प्रतिद्वन्द्वियों को उसने सफलतापूर्वक परास्त कर दिया था। राज्य में प्रत्येक व्यक्ति उसकी इच्छा के सामने नतमस्तक था। सभी उसकी कृपा प्राप्त करने का यत्न करते थे। जब जुलाई, १७९५ में बलवन्त-राव नागनाथ को उस अपराध के निमित्त दण्ड दिया गया जो उसका किया हुआ नहीं था तो पेशवा की स्थिति अपने राजभवन में ही तनावपूर्ण तथा निकम्मी हो गयी। पेशवा अपने संरक्षक द्वारा किये गये अपमान पर अत्यन्त रुष्ट हो गया, क्योंकि संरक्षक की वैधानिक स्थिति केवल एक सेवक की थी।

---

[१४] 'पेशवाईची आखेर' नामक वर्णन बलवन्तराव नागनाथ की कहानी को पुष्ट करता है।

इसका सर्वथा समान उदाहरण अल्पवयस्क अकबर की कथा में मिल सकता है जो अपने संरक्षक बैरामखाँ के नियन्त्रण से व्याकुल था। रघुनाथराव के अपराध चाहे जो कुछ रहे हों, परन्तु अब पेशवा को मालूम हो गया कि बाजीराव तथा उसके बन्धु उसके अपने हाड़-माँस हैं। वह स्वतन्त्रतापूर्वक उनसे मिलना चाहता था, विशेषकर इस कारण कि सामाजिक संसर्ग के लिए उसके अपने परिवार का एक भी व्यक्ति उसके समीप नहीं था। सम्भवत: स्वयं बाजीराव ने पेशवा के मन पर यह प्रभाव डाल दिया कि श्रीमन्त को पूना के अपने राजभवन में उससे अधिक स्वतन्त्रता नहीं है जो उसको जुन्नार के कारावास में प्राप्त है। उस समय यह विषय जनसाधारण के वार्तालाप का आधार था। इसके बाद घटनाएँ शीघ्रता से घटित होने लगीं।

कभी-कभी अल्पवयस्क व्यक्ति वास्तविक अथवा कल्पित अन्यायों से शीघ्र क्षुब्ध हो जाते हैं तथा अपना सन्तुलन खो देते हैं। ऐसे अवसरों पर उनको किसी शान्तिदायक उपाय की अपेक्षा होती है। माधवराव का जन्म अल्पवस्क तथा लगभग अपरिपक्व माता-पिता से हुआ था। उसको अपने माता-पिता से न तो पुष्ट शरीर प्राप्त हुआ और न शक्तिशाली स्फूर्तिमान हृदय। उसका पालन-पोषण ऐसी कोमलता से किया गया कि वह न तो शारीरिक कष्टों को सहन कर सकता था और न आत्मनियन्त्रण करने में समर्थ था। वह स्वेच्छाचारी, दुर्ललित तथा कोमल नवयुवक था। उसकी मुख्य धारणा यह थी कि वह समस्त दृष्टिगत विषयों का स्वामी है। वर्णन मिलता है कि गणपति त्यौहार के दिन (१७ सितम्बर) से उसको ज्वर आने लगा था। २७ सितम्बर के एक लेख में इस प्रकार विवरण है—"इन बारह दिनों से श्रीमन्त न तो स्नान कर सके है और न प्रार्थना, क्योंकि उनको ज्वर रहता है। कुप्रभावों को दूर करने के लिए दान दक्षिणा दिये गये।" दशहरे के दिन (२२ अक्तूबर) आवश्यक विधियों के कारण उसको असाधारण कष्ट सहन करना पड़ा। तीसरे पहर हाथी पर सवार होकर उसको यथापूर्व जुलूस का नेतृत्व करना पड़ा। सवारी में उसको मूर्च्छा आ गयी। यदि महावत अपने अंगोछे से उसको हौदे के डण्डों से न बाँध देता तो वह अपना सन्तुलन खोकर गिर पड़ता। वह तुरन्त राजभवन को वापस लाया गया। तीन दिन बाद २५ अक्तूबर को प्रात: पेशवा निर्बलता तथा ज्वर के कारण लेटा हुआ था। उस समय वह कुछ-कुछ बेहोशी की हालत में था। वह अकस्मात् अपने बिस्तर से उठकर गौख में चला गया। एक सेवक ने उसको वापस जाने का संकेत किया। इस पर वह गौख की रोक से (जो उन दिनों बहुत ऊँची नहीं होती थी) नीचे के फर्श पर बने जलाशय में गिर गया। इससे उसकी दाहिनी जाँघ टूट गयी और आगे

के दो दाँत गिर गये। सेवक उसको तुरन्त शीश भवन में उठा ले गये। नाना भी घटनास्थल पर पहुँच गया। एक हड्डी ठीक करने वाला लाया गया, घाव सीं दिया गया तथा सेंक आरम्भ हो गया। कुछ घण्टों में रोगी ने आँखें खोल दीं तथा कुछ हद तक उसने पुनः चेतना प्राप्त कर ली। मंगलवार, १७ अक्तूबर को सूर्यास्त के कुछ बाद उसका देहान्त हो गया।

तुकोजी होल्कर एकमात्र प्रमुख सरदार था जो घटनास्थल पर उपस्थित था। उसने इन्दौर में अपने पुत्र को निम्नलिखित समाचार भेजा—"इस रविवार को प्रातः आश्विन शुक्ल द्वादशी (२५ अक्तूबर) को श्रीमन्त प्रभात-कालीन स्नान के बाद दुमंजिले पर गौख में बैठ गये। वे गौख की रोक का सहारा लिये हुए थे और उनकी दादी, ताई, साठे तथा सेवकगण उपस्थित थे। वे सहसा उठ पड़े तथा अपने को सँभाल न सकने के कारण और मूर्च्छा की अवस्था में नीचे के जलाशय में गिर गये। लगभग एक घण्टे तक वे अचेत रहे। बाद में होश आने पर वे बोलने लगे। सौभाग्यवश ईश्वर के अनुग्रह से उनके प्राण बच गये हैं।" नाना ने लगभग इसी आशय का समाचार छत्रपति को भेजा।

अन्तिम क्षण के कुछ अधिक विवरण एक अन्य पत्र में इस प्रकार हैं—"२७ अक्तूबर को शान्त तथा सचेत पेशवा ने नाना तथा कुछ अन्य व्यक्तियों को अपने बिस्तर के पास बुलाकर कहा कि उसकी मृत्यु समीप है। वे बाजी-राव को ले आयें और राज्य का प्रबन्ध करें।" सब विवरण इस दृष्टि से समान हैं कि सितम्बर में पेशवा बीमार हो गया और धीरे-धीरे निर्बल होता गया। वह जानबूझकर ऊपर की मंजिल से कूद पड़ा, यह निश्चित रूप से सिद्ध नहीं हो सका है। नियमानुसार इस प्रकार की इच्छा कोई भी व्यक्ति नहीं लिखना चाहेगा। इस घटना के २५ वर्ष बाद समकालीन व्यक्तियों द्वारा प्रस्तुत सामग्री के आधार पर ग्राण्ट डफ कहता है कि वह जानबूझकर कूद पड़ा। ग्रांट के शब्द ये हैं—"परन्तु पेशवा की आत्मा निराशा की सीमा तक आहत हो गयी थी, उसके मन में स्थायी चिन्ता व्याप्त थी। २५ अक्तूबर को प्रातःकाल अपने भवन के छज्जे से वह जानबूझकर कूद पड़ा। उसके दो अंग टूट गये तथा उस फव्वारे के नल से उसको बहुत चोट आयी, जिस पर वह गिर गया था।"

२ नवम्बर, १७९५ को पूना के ब्रिटिश रेजीडेण्ट ने गवर्नर जनरल को इस प्रकार लिखा—"इस दुखद काण्ड के कारण के सम्बन्ध में नाना प्रकार के समाचार हैं। अत्यन्त संयत मनुष्यों तक में शायद एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं मिलेगा जो इसको केवल आकस्मिक घटना मानता हो। परन्तु कम से कम

इसका कारण असावधानी अवश्य है। अधिकांश प्रचलित वृत्तान्त यह है कि पेशवा मूर्च्छा या उन्माद के अस्थायी आवेश में ऊपर के बरामदे या छज्जे से नीचे के फव्वारे में कूद पड़ा या गिर गया। घटना चाहे जितनी विचित्र क्यों न प्रतीत हो, मैं आपको आश्वासन देता हूँ कि केवल अस्पष्ट प्रवाद के आधार पर ही नहीं, परन्तु विभिन्न स्रोतों से प्राप्त वर्णनों के आधार पर मैं आपको कष्ट दे रहा हूँ। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि पेशवा दो-तीन दिन से अस्तव्यस्त था, परन्तु मैं स्वीकार करता हूँ कि इस दुर्घटना के पहले मैंने यह बात नहीं सुनी थी। वास्तव में २२ को हिन्दुओं का एक मुख्य त्यौहार था। वह दिन सार्वजनिक जुलूस का था। उस समय इस प्रकार का कोई समाचार प्रकट नहीं हुआ था। मैं इन सात सप्ताहों में दो बार पेशवा से मिला हूँ। गत मास (सितम्बर) की २२ तारीख को मैं अन्तिम बार उससे मिला। मैंने उससे साधारण अवसरों से अधिक वार्तालाप किया, परन्तु मैं उसमें उन्माद का न्यूनतम लक्षण भी नहीं पा सका।"[१५]

ऊपर उद्धृत किये गये विवरणों में कुछ विश्वसनीय तथ्य प्रकट हो जाते हैं, जैसे—बलवन्तराव नागनाथ का षड्यन्त्र तथा नाना के उद्धत कार्य पर पेशवा का रोष। पेशवा का स्वास्थ्य कुछ समय से ज्वर तथा निर्बलता के कारण बिगड़ रहा था। उस समय जनसाधारण का विश्वास था कि पेशवा ने जानबूझकर आत्महत्या की है। मराठा इतिहास की इस घटना पर एक समालोचक विद्वान की टिप्पणी इस प्रकार है :

"महादजी की मृत्यु के बाद नाना ने पेशवा के पास समस्त स्वतन्त्र तथा अनियन्त्रित प्रवेश बन्द कर दिये। उसने पेशवा पर लगातार निगाह रखने के लिए अपने कृपापात्र नियुक्त कर दिये। नाना ने उसकी बाहरी प्रवृत्तियों पर प्रतिबन्ध लगा दिया। नाना की स्पष्ट आज्ञा के बिना कोई व्यक्ति—शासक तथा सरदार—भी पेशवा से नहीं मिल सकता था। इस प्रकार महादजी की मृत्यु के बाद नाना की नीति विपरीत सीमा को पहुँच गयी थी। नीच गुप्तचरों तथा स्वार्थी नौकरों के हाथों में पेशवा दुखी बन्दी बन गया था। इस प्रकार अल्पवयस्क प्रसन्नचित्त बालक के स्वभाव तथा मानसिक शक्ति की समस्त स्फूर्ति नष्ट हो गयी। वह निराशा और विषाद की चेतना से पराभूत हो गया। इस प्रकार इस चतुर, कुटिल, हठी, अति कायर तथा ईर्ष्यालु मन्त्री के संरक्षण से यह अल्पवयस्क स्वतन्त्रताप्रिय पेशवा इतना रुष्ट हो गया कि उसने आत्म-

---

[१५] पूना रेजीडेन्सी कॉरस्पौण्डेन्स, जिल्द २, पृ० ३९२-३९३

हत्या द्वारा अपने जीवन का अन्त कर दिया। कर्तव्य के उचित मार्ग की ओर नाना की आँखें इस घटना से भी नहीं खुलीं।"[१६]

इस मन्दभाग्य नवयुवक की दुखद मृत्यु की कथा समाप्त करने के पहले यह आवश्यक है कि उन अनेक मुख्य व्यक्तियों का कुछ वर्णन किया जाये, जिन्होंने प्रेम तथा श्रद्धा सहित उसकी सेवा की थी। पेशवा के अत्यन्त निकट रहने वाले नाना फड़निस, महादजी शिन्दे, हरिपन्त फड़के तथा परशुराम भाऊ पटवर्धन के अतिरिक्त बहुत-से अन्य पुरुषों ने भी अल्पवयस्क पेशवा के भाग्य-निर्माण में महत्त्वपूर्ण भाग लिया था। २० अक्तूबर, १७८९ में अपनी मृत्यु के समय तक रामशास्त्री प्रभु राज्य का मुख्य न्यायाधीश रहा। उसका उत्तराधिकारी अय्याशास्त्री हुआ, जिसके विषय में हमको अधिक ज्ञान नहीं है। कोलाबा का रघुजी आंग्रे एक पुराने मराठा परिवार का सम्माननीय व्यक्ति था। वह प्रायः पूना आता, नाना की योजनाओं का समर्थन करता तथा अल्पवयस्क पेशवा की उन्नति में गहरी रुचि रखता था। रघुजी की मृत्यु २७ मार्च, १७९३ को हो गयी। इसके बाद उसका परिवार शीघ्र ही महत्त्वहीन हो गया। नागपुर के भोंसले परिवार का पूना के कार्यों से निकट सम्पर्क था तथा वे साधारणतया नाना फड़निस का समर्थन करते थे। १९ मई, १७८८ को नागपुर में मुधोजी भोंसले की मृत्यु हो गयी। उसके तीन पुत्र थे। ज्येष्ठ रघुजी नागपुर का शासक हुआ। उसने बाद में अंग्रेजों के विरुद्ध १८०३ के मराठा युद्ध में विशेष भाग लिया। उसके बन्धुओं—खण्डोजी चिमना बापू तथा पेंकोजी मन्या बापू—का बाद के मराठा इतिहास से बहुत सम्बन्ध है। उन्होंने ब्रिटिश सत्ता के साथ विशेष सम्बन्ध पैदा कर लिये तथा अन्य मराठा सरदारों के सहयोग से यथाशक्ति अंग्रेजों का प्रतिरोध करने का प्रयास किया।

---

[१६] नाटू कृत 'महादजी शिन्दे की जीवनी', पृ० २५३-५८

अध्याय ११

तिथिक्रम

१७५०	शर्जाराव घाटगे का जन्म।
७ जनवरी, १७७५	बाजीराव द्वितीय का जन्म।
१७७८	शर्जाराव नाना फड़निस की सेवा में।
२७ मार्च, १७९३	रघुजी आंग्रे की मृत्यु।
१३ अगस्त, १७९५	अहल्याबाई की मृत्यु।
२७ अक्तूबर, १७९५	माधवराव द्वितीय की मृत्यु।
६ जनवरी, १७९६	जीवबा दादा की मृत्यु।
१२ फरवरी, १७९६	परशुराम भाऊ का जुन्नार जाना।
२५ फरवरी, १७९६	बाजीराव तथा उसके भाई का पूना लाया जाना।
२१ मार्च, १७९६	नाना फड़निस का सतारा गमन।
१२ मई, १७९६	चिमनाजी राजभवन में बाजीराव शिन्दे का नजर-बन्द।
२५ मई, १७९६	चिमनाजी को यशोदाबाई ने गोद लिया।
२ जून, १७९६	चिमनाजी को पेशवा के वस्त्र प्राप्त।
५ जून, १७९६	मुशीरुलमुल्क पूना में कारावास से मुक्त, उसका वहाँ एक वर्ष और ठहरना।
५ जून, १७९६	नाना फड़निस महाद में।
७ अक्तूबर, १७९६	नाना फड़निस का निजामअली से गुप्त समझौता।
२६ अक्तूबर, १७९६	परशुराम भाऊ तथा बालोबा तात्या नजरबन्द।
२५ नवम्बर, १७९६	नाना फड़निस का पूना को वापस आना।
६ दिसम्बर, १७९६	बाजीराव को पेशवा के वस्त्र मिलना।
३१ सितम्बर, १७९६	बाजीराव का नाना फड़निस के साथ समझौता।
२१ फरवरी, १७९७	मैलेट का पूना से अवकाश ग्रहण—यूथोफ उसका स्थानापन्न।
१३ अप्रैल, १७९७	पूना के मुरलीधर मन्दिर में दंगा।
मई, १७९७	विलियम टोन बाजीराव की सेवा में।
१० मई, १७९७	निजामअली खरडा की शर्तों से पूर्णतः मुक्त।
शरद्ऋतु, १७९७	अमृतराव द्वारा बाजीराव तथा नाना में वैरशान्ति का प्रयास।

१५ अगस्त, १७९७	तुकोजी होल्कर की मृत्यु। काशीराव उसका उत्तराधिकारी।
१४ सितम्बर, १७९७	मल्हारराव होल्कर का वध—बिठोजी तथा यशवन्तराव का पलायन।
३० सितम्बर, १७९७	दशहरा के जुलूस में जाने से नाना फड़निस का इनकार करना।
३१ दिसम्बर, १७९७	शिन्दे द्वारा नाना का पकड़ा जाना तथा नजरबन्द होना।
आरम्भिक मास, १७९८	बाजीराव शिन्दे तथा शर्जाराव द्वारा पूना में आतंकपूर्ण शासन।
२६ फरवरी, १७९८	बैजाबाई का दौलतराव शिन्दे से विवाह।
२४ मार्च, १७९८	पामर द्वारा यूथोफ से ब्रिटिश रेजीडेन्सी का भार सँभाला जाना।
२५ मार्च, १७९८	रेमाण्ड की मृत्यु।
६ अप्रैल, १७९८	शोर का गवर्नर जनरल के पद से अवकाश ग्रहण करना।
६ अप्रैल, १७९८	नाना फड़निस अहमदनगर में नजरबन्द।
१५ अप्रैल, १७९८	अप्पा बलवन्त का विषपान करना।
१५ मई, १७९८	घाटगे का शिन्दे महिलाओं से दुर्व्यवहार।
१७ मई, १७९८	रिचर्ड वेलेजली कलकत्ते में गवर्नर जनरल नियुक्त।
२५ जून, १७९८	अमृतराव तथा शिन्दे महिलाएँ पूना के समीप पराजित।
१५ जुलाई, १७९८	नाना फड़निस नजरबन्दी से मुक्त।
१६ जुलाई, १७९८	शाहू द्वितीय द्वारा सतारा के समीप रस्ते परास्त।
१६ जुलाई, १७९८	परशुराम भाऊ मुक्त, उसका शाहू के विरुद्ध प्रयाण।
१४ अगस्त, १७९८	परशुराम भाऊ द्वारा छत्रपति परास्त तथा नजरबन्द।
१७९९	शिन्दे महिलाओं का कोल्हापुर जाना।
अगस्त, १७९९	शिन्दे द्वारा महिलाओं से विराम सन्धि।
१७ सितम्बर, १७९९	परशुराम भाऊ का पट्टन कुड़ी में वध।
१४ जनवरी, १८००	महादजी की विधवा यमुनाबाई पर छुरी से आक्रमण।
२६ जुलाई, १८०९	शर्जाराव की हत्या।
१६ सितम्बर, १८६३	बैजाबाई की मृत्यु।
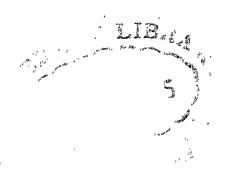
अध्याय ११

दुर्बुद्धि कार्यक्षेत्र में

[१७९६–१७९८ ई०]

१. उत्तराधिकारी की खोज में षड्यन्त्र ।
२. महाड स्थित नाना की आश्चर्यमयी चालें ।
३. बाजीराव पेशवा बना ।
४. धूर्त त्रिमूर्ति ।
५. नाना फड़निस कारावासी ।
६. शिन्दे महिलाओं द्वारा युद्ध ।
७. छत्रपति द्वारा स्वतन्त्र होने का प्रयास ।

१. **उत्तराधिकारी की खोज में षड्यन्त्र**—माधवराव द्वितीय की मृत्यु के पश्चात तुरन्त ही मराठा जगत की अन्तर्भूत समस्त शक्तियाँ स्वतन्त्र हो गयीं। उन्होंने एकता तथा संगठन को नष्ट करके राज्य का अन्तिम विनाश २५ वर्षों से भी कम समय में शीघ्र बुला लिया। इस विपत्ति के कारण नाना फड़निस ही राज्य की नौका का एकमात्र कर्णधार रह गया। परन्तु ऐसा लगता है कि उसके प्रयत्नों के लिए असफलता निश्चित हो चुकी थी। सत्ता के निमित्त भयावह संघर्ष आरम्भ हो गया। परन्तु पूना में पेशवा की गद्दी पर उत्तराधिकारी की स्थापना के पूर्व संघर्ष में बहुमूल्य समय नष्ट हो गया।

महादजी शिन्दे ने अपनी मृत्यु के समय उच्च प्रशिक्षण प्राप्त शक्तिशाली सेना छोड़ी थी जो किसी भी भारतीय शासक की सेना से श्रेष्ठ थी। परन्तु इसका नियन्त्रण उसके दत्तक पुत्र दौलतराव शिन्दे के अधिकार में आ गया जो सांसारिक अनुभवहीन १४ वर्ष का बालक था। महादजी की तीन विधवाएँ भी थीं—लक्ष्मीबाई, यमुनाबाई तथा भगीरथीबाई। ये स्वयमेव एक शक्ति थीं, क्योंकि महादजी के वृद्ध तथा अनुभवी सहायक उनके समर्थक थे। इस प्रकार शिन्दे के वंश में दो दल हो गये। मराठा राज्य का विकास शक्तिशाली सरदारों के शिथिल संघ के रूप में हुआ था। इसका प्रशासन बिना किसी निश्चित संविधान के सदैव व्यक्तियों द्वारा होता रहा था। ये विभिन्न प्रकार के तत्त्व किसी संविधान से बँधे नहीं थे। अनियन्त्रित शासन का सदैव यही दुर्भाग्य रहा है। सबकी सम्मति में नाना फड़निस जीवित मन्त्रियों में योग्यतम था। परन्तु उसको अपने स्वामी से शक्ति प्राप्त हुई थी; वह स्वामी के निर्देशानुसार ही कार्य करता था। उस समर्थन से रहित होकर उसकी शक्ति का कोई मूल्य नहीं रहा।

रघुनाथराव के पुत्र बाजीराव तथा चिमनाजी अप्पा एवं उसका दत्तक पुत्र अमृतराव—ये ही पेशवा के परिवार से सीधा सम्बन्ध रखने वाले जीवित व्यक्ति थे। ये सब जुन्नार में नजरबन्द थे। इन पर कठोर पहरा लगा हुआ था। इनको नाना फड़निस से बहुत घृणा थी। चिमनाजी की आयु उस समय केवल ११ वर्ष की थी। वह इतना छोटा था कि स्वयं कोई विचार अथवा कार्य करने में असमर्थ था। बाजीराव सावधानतापूर्वक इस विचार से परिस्थिति का अवलोकन कर रहा था कि इस पद के लिए उसके पिता की बहुत समय तक लालसा रही थी तथा उसने असफल युद्ध भी किया था। नाना ने आश्वासन दिया था कि निजाम के विरुद्ध युद्ध की समाप्ति के बाद वह उनके विषय में अन्तिम निर्णय करेगा। जब नाना ने उनके कष्टों की ओर ध्यान नहीं दिया तो उन्होंने बलवन्तराव नागनाथ के द्वारा सीधे पेशवा से प्रार्थना की। इसका परिणाम पहले ही बताया जा चुका है। नाना ने अपने मन में बाजीराव तथा उसके बन्धुओं को पेशवा के शासन में कोई स्थान न देने का निश्चय कर लिया था। परन्तु उसके पास उपायों की सफलता को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक सशस्त्र सेना नहीं थी। हरिपन्त की मृत्यु के पश्चात पूना में परशुराम भाऊ पटवर्धन ही उसका एकमात्र समर्थक रहा गया था। यद्यपि उस समय शिन्दे तथा होल्कर दोनों राजधानी में उपस्थित थे, पर नाना उनका विश्वास नहीं कर सकता था। रघुजी भोंसले भी १७९५ की वर्षाऋतु में वहीं था, परन्तु अपनी मृत्यु के कुछ दिन पूर्व पेशवा ने उसको नागपुर जाने की अनुमति दे दी थी। वह भीमा नदी तक भी नहीं पहुँच पाया था कि पेशवा के देहान्त का समाचार उसने सुना। कुछ विपत्तिपूर्ण घटना के तुरन्त बाद नाना ने उत्तराधिकार के विषय में अपनी योजनाओं को संगठित करने के लिए तास गाँव से परशुराम भाऊ को बुला लिया। भाऊ ४ नवम्बर को पूना पहुँच गया। इस सम्बन्ध में रघुजी भोंसले के वकील भी वहाँ पहुँच चुके थे। रघुनाथराव के पुत्रों को वंचित रखने सम्बन्धी निश्चय के कारण नाना ने प्रयत्न किया कि सपिण्ड सम्बन्धियों में से कोई अल्पायु बालक गोद ले लिया जाये। अधिकांश प्रमुख सरदारों ने इस पर आपत्ति की, क्योंकि बाजीराव निकटतम उत्तराधिकारी था तथा अज्ञात अपरिचित व्यक्ति की अपेक्षा उसको प्राथमिकता मिलनी चाहिए थी। परन्तु बाजीराव तथा उसके परिवार के विरुद्ध किये गये अपने पूर्व निश्चय को नाना नहीं छोड़ सका तथा मुख्य राजनीतिज्ञों और अधीन सरदारों के निरर्थक सम्मेलनों में बहुमूल्य समय नष्ट हो गया।

नाना उस समय शासन का संचालन कर रहा था। वह गोद लेने के

उद्देश्य से कई बालक पूना ले आया। वैसे महादजी पन्त गुरुजी सदृश नाना के दल के अधिकांश अनुभवी व्यक्तियों का दूरदर्शितापूर्ण संयत परामर्श इस विधि के विपरीत था। नाना ने इस विषय पर प्रत्येक व्यक्ति से पृथक-पृथक तर्क किया तथा अपने व्यक्तिगत प्रभाव के उपयोग से गोद लेने के प्रस्ताव के विषय में उनकी सम्मति प्राप्त कर ली, यद्यपि उनकी इच्छा ऐसा करने की बिलकुल नहीं थी। जैसे-जैसे समय बीतता गया, इस नीति का घोर विरोध किया गया। शिन्दे तथा होल्कर ने सुझाव रखा कि यदि किसी बालक को गोद ही लेना है तो यशोदाबाई चिमनाजी अप्पा को गोद ले लें। दोनों विचारों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए यह मध्यम मार्ग था। परन्तु इस मार्ग के अपने दोष भी थे। इसका अर्थ बड़े भाई बाजीराव का दमन करना होता। उसके स्वत्व की उपेक्षा सरलतापूर्वक नहीं की जा सकती थी। इस बीच ६ जनवरी, १७९६ को शिन्दे के प्रभावशाली मन्त्री जीवबा दादा बख्शी की मृत्यु हो गयी। वह नाना का मित्र था। उसके स्थान पर बालोबा पगनिस दौलतराव का मुख्यमन्त्री हुआ। उसने चिमनाजी अप्पा के गोद लिये जाने का खुला विरोध किया तथा बाजीराव के पेशवा होने के अधिकार का समर्थन किया। स्वयं बाजीराव भी इस समय निरुद्योग नहीं था। वह छल, कपट तथा धूर्तता की कलाओं द्वारा परिस्थिति को अपने लिये लाभदायक बनाना चाहता था। इन कलाओं पर उसका पूर्ण अधिकार था। उसने दौलतराव तथा उसके मन्त्री बालोबा को अपने पक्ष में कर लिया और शपथपूर्वक वचन दिया कि उनको सवा करोड़ रुपये नकद तथा २५ लाख वार्षिक आय का प्रदेश दिया जायेगा। नाना को इस गुप्त चाल का तब तक कुछ भी पता नहीं चला, जब तक निजामअलीखाँ द्वारा वह इस विपत्ति के प्रति सचेत नहीं किया गया। इस विपत्ति को टालने के यत्न के रूप में यह निश्चय किया गया कि यशोदाबाई चिमनाजी को गोद ले लें। इससे कठिनाई और बढ़ गयी। १२ फरवरी को उसने परशुराम भाऊ को जुन्नार भेजा और आज्ञा दी कि वह चिमनाजी अप्पा को पूना ले आये। उसे आवश्यकता पड़ने पर बल प्रयोग करने का भी अधिकार दिया गया। इस प्रकार का जटिल तथा टेढ़ा मार्ग अपनाने के लिए नाना के पास विशेष कारण था। भूतपूर्व पेशवा के नाम से उसने अनेक साहूकारों से ऋण ले रखा था। यदि विधिपूर्वक किसी पुत्र को गोद न लिया जाता और उत्तराधिकार बाजीराव सदृश किसी नवीन व्यक्ति को प्राप्त हो जाता तो वह इन ऋणों को चुकाने से सरलतापूर्वक इनकार कर सकता था, क्योंकि पिता के ऋणों का भुगतान करना पुत्र का ही परम्परागत कर्तव्य माना जाता रहा है।

परन्तु इस योजना के कारण नाना अधिक कष्ट में फँस गया। जुन्नार

पहुँचने पर परशुराम भाऊ ने बाजीराव को अत्यन्त दृढ़ पाया। उसने चिमनाजी को भाऊ के सुपुर्द करने से इनकार कर दिया और कहा—"अब पेशवा पद पर मेरा अधिकार है।" अनेक दिनों के तर्क-वितर्क तथा अनुनय-विनय के बाद निश्चय किया गया कि सब लोग पूना जायें और वहाँ उत्तरदायी अधिकारियों के साथ परामर्श के बाद कोई हल निकालें। बाजीराव की पत्नी तथा अमृतराव जुन्नार में ठहर गये और शेष व्यक्ति २५ फरवरी, १७९६ को चल दिये। वे ३ मार्च को पूना के पास खराड़ी स्थान पर पहुँच गये। यहाँ नाना, ब्रिटिश रेजीडेण्ट मैलेट तथा अन्य प्रमुख व्यक्ति आये और बाजीराव से मिले। बाजीराव तथा नाना के बीच व्यक्तिगत वार्तालाप हुए तथा समझौता हो गया। इसके अनुसार बाजीराव का पेशवा होना और नाना का प्रधानमन्त्री बनना निश्चित हुआ। ११ मार्च को उन दोनों ने एक-दूसरे को गम्भीरतापूर्वक पत्र लिखकर यह समझौता पक्का कर दिया। परन्तु यह केवल ऊपरी दिखावट थी, क्योंकि किसी को दूसरे की सच्चाई पर विश्वास नहीं था। इसके अतिरिक्त नाना तथा बाजीराव के बीच इस प्रकार स्वतन्त्रतापूर्वक हुए समझौते से शिन्दे को बहुत क्रोध आया, क्योंकि उस दशा में शिन्दे को वह विशाल धनराशि प्राप्त होने की सम्भावना नहीं थी जिसको देने के लिए बाजीराव सहमत हो गया था। जुन्नार में उपेक्षित एक अन्य व्यक्ति अमृतराव भी इसी परिस्थिति में था। शिन्दे अपनी शक्तिशाली सेनाएँ पूना भेजने को तैयार हो गया। बाजीराव ने शुभ दिन न मिलने का बहाना लेकर अपना नगर प्रवेश स्थगित कर दिया। शिन्दे ने नाना के प्रत्येक प्रस्ताव का विरोध किया। इसके उत्तर में नाना ने शिन्दे की सेना के सरदारों को प्रलोभन देने का प्रयत्न किया। बालोबा को समाचार प्राप्त हुए कि नाना के कार्यकर्ताओं द्वारा उसके जीवन के लिए संकट है। पूना का वातावरण एक-दूसरे के उद्देश्यों के प्रति सन्देह, द्वेष तथा भय से व्याप्त हो गया और दोनों पक्ष धीरे-धीरे विरोधी दलों के रूप में अलग हो गये। इस प्रकार की परिस्थिति में नाना को मालूम हुआ कि स्वयं उसका जीवन संकट में है। वह सहसा २१ मार्च को पूना से सतारा की ओर चल दिया। बाजीराव ने छत्रपति के पास समाचार भेजा कि वह नाना को अपने पास न फटकने दे। इस मन्त्री के पास जो शक्ति थी, वह सब नष्ट हो गयी।

इस समय बाजीराव ने शिन्दे को एक करोड़ से अधिक धन देने की अपनी प्रतिज्ञा का खण्डन कर दिया, क्योंकि वह शिन्दे की सहायता के बिना ही पूना पहुँच गया था। परन्तु उसने शिन्दे के प्रति मधुर भाषा उपयोग करने का पूरा ध्यान रखा और उसे अपना श्रेष्ठ तथा निष्ठापूर्ण मित्र बताया। बाजीराव

को छत्रपति से पेशवा के वस्त्र प्राप्त करने की चिन्ता थी। इस कार्य के लिए उसे शिन्दे तथा नाना दोनों की सहायता की आवश्यकता थी। छत्रपति को भी एक क्षण के लिए शक्ति प्राप्त हो गयी थी। पूना के कष्टों को समाप्त करने की इच्छा से नाना ने छत्रपति को पूर्ण शक्ति से कार्य करके शिन्दे और बाजीराव दोनों की योजनाओं को विफल करने की सलाह दी। परन्तु छत्रपति ने तब तक नाना के परामर्श पर कार्य करने से इनकार कर दिया जब तक वह बाजीराव तथा शिन्दे दोनों का समर्थन प्राप्त न कर ले। नाना सतारा के गढ़ में छत्रपति से मिला तथा चिमनाजी अप्पा को पेशवा के वस्त्र दिलाने का निश्चय करके नगर को वापस आया। इस बीच पूना में शिन्दे तथा बाजीराव ने प्रशासन से नाना को बिलकुल निकाल देने की योजना बना ली थी। उन्होंने नाना के सम्मान तथा सुरक्षा का आश्वासन देकर परशुराम भाऊ की सहमति भी प्राप्त कर ली। बाजीराव तथा उसका भाई इस समय शिन्दे के शिविर में थे और परशुराम भाऊ ने उन पर कठोर पहरा लगा रखा था।

जब प्रत्येक दल दूसरे को धोखा देने का यत्न कर रहा था तो नाना की प्रेरणा से १२ मई को परशुराम भाऊ ने चिमनाजी अप्पा को उसकी इच्छा के विरुद्ध बलपूर्वक पालकी में बैठाकर शनिवार भवन में पहुँचा दिया। नाना ने उसके भाई बाजीराव को शिन्दे की देखरेख में बन्दी रखा और उस पर पहरा लगा दिया। शिन्दे और बालोबा ने सतारा से पेशवा के वस्त्र प्राप्त होने की आज्ञा तुरन्त भेज दी। वे राजभवन में यशोदाबाई से मिले तथा उसे चिमनाजी अप्पा को पुत्र के रूप में गोद लेने का परामर्श दिया। भोली लड़की की आयु उस समय १५ वर्ष की भी न थी। वह इस प्रस्ताव को ठुकरा न सकी। कुछ उपस्थित पण्डितों ने गोद लेने के इस कार्य को अनियमित घोषित कर दिया, परन्तु कुछ पण्डित इस कार्य का समर्थन करने वाले भी मिल गये। सम्भवत: उनको कुछ प्रलोभन दिया गया था। गोद लेने की विधि २५ मई को पूर्ण हुई और एक सप्ताह बाद २ जून को चिमनाजी को पेशवा के वस्त्र पहना दिये गये। इस कार्य के लिए भव्य दरबार किया गया, जिसमें शिन्दे, होल्कर तथा अन्य प्रमुख सरदार उपस्थित थे। इस प्रकार असाधारण षड्यन्त्र तथा चिन्ता से पूर्ण सात मास व्यतीत होने पर पूना में पेशवा का रिक्त आसन भरा गया।

२. **महाद स्थित नाना की आश्चर्यभरी चालें**—मराठा राज्य का वैध शासक चुनने में होने वाला विलम्ब सर्वथा घातक सिद्ध हुआ। इससे केवल मतभेद रखने वाले व्यक्तियों को ही नहीं, बल्कि निजाम तथा अंग्रेज सदृश

ईर्ष्यालु बाह्य शत्रुओं को भी प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। शिन्दे के लगातार पूना में रहने के कारण उत्तर में उसकी शक्ति पूर्णतः असंगठित हो गयी। अशक्त चिमनाजी केवल रिक्त स्थान की पूर्ति करने वाला नाममात्र का पेशवा था। वास्तविक शक्ति शिन्दे के हाथों में थी। उसके अधिक शक्तिशाली होने के कारण परशुराम भाऊ को उसके सामने झुकना पड़ा। यदि इस समय नाना राजनीति से पूर्ण विदाई ले लेता, तो केन्द्रीय शासन में एकता स्थापित होने की कुछ सम्भावना थी। परन्तु दुर्भाग्यवश नाना ने स्वतन्त्र खेल आरम्भ कर दिया और अपनी उद्देश्य पूर्ति के लिए उन समस्त कलाओं का उपयोग किया, जिनको धन तथा कूटनीति द्वारा एकत्र किया जा सकता था। वह पूना में स्थापित व्यवस्था समाप्त चाहता था। चिमनाजी का उत्तराधिकार समाप्त करने का कार्य उसने क्यों अंगीकार किया—सत्ता के मोह के अतिरिक्त इसका कोई अन्य कारण दिखायी नहीं देता। उसने एक समय इसका स्वयं प्रस्ताव किया था। इसी उपाय द्वारा दुष्ट प्रतिभाशील बाजीराव दूर रखा जा सकता था, जिसे रुष्ट करने के लिए नाना आजीवन यथाशक्ति प्रयत्न करता रहा था। नाना को शिन्दे की सैन्यशक्ति का तथा अपने धन पर पड़ी उसकी लोभ-दृष्टि का भय था। दूसरी ओर शिन्दे को नाना की प्रतिष्ठा तथा राज्य में उसके प्रभाव से ईर्ष्या थी। शिन्दे का भय नाना के लिए भूत बन गया। अब नाना ने अपनी सारी सम्पत्ति तथा कूटनीति शिन्दे से बचने के लिए दाँव पर लगा दी। उसे पता था कि पूना में बन्दी मुशीरुल्मुल्क इस समय कारावास से मुक्त होना चाहता है तथा समस्त उपलब्ध साधनों से खरडा की सन्धि द्वारा निजामअली पर लगाये गये दण्डों को प्रभावहीन करने का इच्छुक है। अब अपनी आवश्यकता के समय नाना ने मुशीरुल्मुल्क के साथ गुप्त रूप से सम्पर्क स्थापित किया तथा इस बात का प्रबन्ध कर लिया कि यदि शिन्दे उसे किसी प्रकार हानि पहुँचाने की चेष्टा करे तो निजामअली से सैनिक सहायता प्राप्त हो सके। इस गुप्त प्रयास का समाचार शीघ्र ही शिन्दे तथा परशुराम भाऊ के कानों तक पहुँच गया। वे इस समय साथ-साथ कार्य कर रहे थे। उनको इस बात पर अत्यन्त क्रोध आया कि नाना ने अपने आजीवन शत्रु का आश्रय ग्रहण किया। उन्होंने नाना की दुष्ट प्रगतियों की रोकथाम करने के लिए अविलम्ब उपाय किया। परशुराम भाऊ आजीवन नाना का मित्र रहा था। उसने इस समय वाई स्थित नाना के पास अपने व्यक्तिगत दूत भेजे। भाऊ ने दूत से कहा कि वह नाना को उस कुमार्ग से दूर रखे, जिसका वह इस समय अनुसरण कर रहा है तथा विनय करे कि वह राजनीति से पूर्ण अवकाश ग्रहण करके बनारस में निवास करे। नाना ने इस मैत्रीपूर्ण आह्वान को स्वीकार करने से इनकार कर दिया। फलस्वरूप शिन्दे की सेनाएँ नाना को पकड़ने के

उद्देश्य से बाई पर चढ़ गयीं। जब इस प्रगति का समाचार नाना के पास पहुँचा तो वह अकस्मात् बाई से चलकर रायगढ़ पहुँच गया और महाबलेश्वर से महाद तक समस्त पर्वतीय मार्ग बन्द कर दिये।

पूरे चार मास तक (१० जून से १० नवम्बर तक) नाना ने अपने समस्त कूटनीतिक चातुर्य का उपयोग किया तथा शिन्दे की सेनाएँ अपने पास न पहुँचने देने एवं कई बाह्य शक्तियों का समर्थन प्राप्त करने के लिए महाद में रहकर अपना अधिकांश धन व्यय कर दिया। यह प्रयास अत्यन्त गुप्त रूप और चतुरता से किया गया। महाद में घटित कूटनीति के इस प्रकरण की नाना के जीवन के अद्वितीय अध्याय के रूप में प्रशंसा की गयी है। यह बात अलग है कि इससे राज्य को किसी प्रकार का कल्याण नहीं हुआ तथा वर्तमान कष्ट और भी अधिक बढ़ गये। यदि बीच में सेनाओं के प्रयाण के लिए संचार मार्गों को व्यवहारतः बन्द करने वाली वर्षाऋतु न आ जाती तो नाना इतनी देर तक शिन्दे के आक्रमण के सामने टिक नहीं सकता था। महाद में रहकर उसने जिस मार्ग का अनुसरण किया, उसके कारण परशुराम भाऊ के साथ उसकी आजीवन मैत्री तथा शिन्दे के साथ उसके सम्बन्ध नष्ट होना आवश्यक हो गया।

इस समय शिन्दे को धन की अत्यन्त आवश्यकता थी, क्योंकि पूना में उसको भारी सेना रखनी पड़ रही थी और उसकी आय कुछ भी नहीं थी। अपनी आवश्यकता पूरी करने के लिए एकमात्र उपाय निजामअली पर आक्रमण करके बलपूर्वक उस दण्ड का भुगतान प्राप्त करना था जो खरडा की सन्धि में निश्चित किया गया था। यह मार्ग संकटपूर्ण था, क्योंकि इसके कारण वह नवीन युद्ध में फँस सकता था। एकमात्र दूसरा विकल्प नाना से बलपूर्वक यथासम्भव धन छीन लेना था। नाना के पास कई करोड़ का धन होने की प्रसिद्धि फैल रही थी। अतः नाना का एकमात्र आवश्यक कार्य शिन्दे के हाथों से अपनी रक्षा करना हो गया। खरडा में अत्यन्त कष्टपूर्वक प्राप्त लाभों को गँवाकर नाना ने मुशीरुल्मुल्क तथा उसके स्वामी निजामअली को अपनी ओर मिला लिया। साथ ही अपने मित्र मैलेट द्वारा ब्रिटिश समर्थन प्राप्त करने का प्रबन्ध कर लिया। वास्तव में इस समय मैलेट को शिन्दे की फ्रेंच प्रशिक्षण प्राप्त सेना से अत्यन्त भय था। अतएव शिन्दे को झुकाने के साधन के रूप में उसने नाना की प्रार्थना का तुरन्त अनुकूल उत्तर दिया। यूरोप में उस समय परिस्थिति शीघ्रतापूर्वक परिवर्तित हो रही थी। नैपोलियन के नेतृत्व में फ्रेंच सत्ता का उदय हो रहा था और इंगलैण्ड लम्बे युद्ध में फँसा हुआ था। ब्रिटिश लोग भारत में शिन्दे को फ्रांस का सहायक तथा अपना शत्रु मानते थे।

दौलतराव तथा उसके अधीन अधिकारियों को इन यूरोपीय जटिलताओं का कोई ज्ञान नहीं था। बालोबा पड़निस ने नाना को पकड़ने तथा कड़ी नजरबन्दी की धमकी देकर उससे उसका धन छीन लेने का भरसक प्रयत्न किया।

वृद्ध मन्त्री के प्रति सम्मान के कारण परशुराम भाऊ ने नाना के विरुद्ध कठोर उपायों का घोर विरोध किया। शरण स्थान की खोज में नाना ने ब्रिटिश सुरक्षा के अधीन थाना में निवास का प्रबन्ध कर लिया। इन समस्त पूर्वोपायों का प्रबन्ध मौखिक सन्देशों द्वारा किया गया, जिससे उसके द्वारा लिखित पत्र पकड़ न लिये जायें और अपराध के प्रमाण रूप में प्रस्तुत न कर दिये जायें। इस प्रकार भूतपूर्व मन्त्री नाना ने अपनी शक्ति पुनः प्राप्त करने तथा पूना शासन में शिन्दे का बढ़ा हुआ प्रभाव नष्ट करने के उद्देश्य से महाद स्थित अपने सुरक्षित स्थान से षड्यन्त्रों का जाल बिछा दिया। पूना में भी नाना ने अपने समर्थकों का एक दल बना लिया, जिसमें बाबा फड़के, तुकोजी होल्कर, रघुजी भोंसले, मानाजी फड़के तथा कुछ अन्य व्यक्ति सम्मिलित थे। उसने अपने पक्ष में अनेक समीपवर्ती शक्तियों का भी समर्थन प्राप्त कर लिया। कोल्हापुर के राजा, जंजीरा के सिद्दी तथा टीपू सुल्तान की सहानुभूति भी उसे प्राप्त हो गयी। शिन्दे तथा परशुराम भाऊ के विरुद्ध अन्ध आवेश में नाना इस समय उक्त सरदारों के प्रति परम्परागत द्वेषभाव भूल गया। इसका एक-मात्र कारण यह था कि शिन्दे और भाऊ ने नाना को उसकी सत्ता से हटा दिया था। नाना ने मूर्खतावश कोल्हापुर के राजा से पटवर्धनों के विरुद्ध उसका समर्थन करने की प्रतिज्ञा कर ली। इस प्रयास के कारण बाद में मन्त्री घोर विपत्तियों में फँस गया।

नाना के कार्य अधिक समय तक गुप्त नहीं रह सकते थे, क्योंकि शिन्दे उनको सावधानी से देख रहा था तथा बालोबा और परशुराम भाऊ इनके कारण और भी अधिक रुष्ट हो रहे थे। शिन्दे के शिविर में भी नाना के मित्र थे—जैसे अबाजी चिटनिस, रामजी पाटिल, रायाजी पाटिल—जिन्होंने चातुर्यपूर्ण सुझावों द्वारा अल्पवयस्क दौलतराव पर बालोबा के परामर्श को अपने हित के लिए हानिकारक समझने का प्रभाव डाल दिया। महादजी शिन्दे की कृपापात्र दासी केसरजी पूना के मन्त्री का बहुत आदर करती थी। उसने दौलतराव पर अपना प्रभाव डाला और उसे नाना के साथ शान्ति करने के लिए सहमत कर लिया। नाना ने अपनी पूर्वशक्ति पुनः प्राप्त करने के लिए सभी उपाय तथा प्रयास किये। नाना को आशा थी कि वह अपना विपुल धन व्यय करके तथा परम्परागत शत्रुओं को सभी सुविधाएँ देकर अपनी पूर्वसत्ता पुनः प्राप्त कर लेगा।

परन्तु नाना ने सबसे बढ़कर कार्य स्वयं बाजीराव को अपनी योजना से सहमत करने का किया। बाजीराव इस समय बन्दी था तथा शिन्दे ने उस पर कठोर पहरा लगा रखा था। अब वह उसको आजीवन बन्दी के रूप में असीरगढ़ में डाल देने वाला था, जिससे चिमनाजी अप्पा की अल्पवयस्कता में उसको सर्वथा स्वतन्त्र अधिकार प्राप्त हो जाये। इस दशा से बचने के लिए बाजीराव ने नाना के प्रस्तावों की ओर अविलम्ब ध्यान दिया और उस समय दोनों में अस्थायी रूप से मेल हो गया। शिन्दे के मन्त्री बालोबा तात्या ने नाना की योजना की रोकथाम करने के लिए अविलम्ब उपाय किया। उसने मुशीरुलमुल्क के पास जाकर उसे ५ जून, १७९६ को निरोध से मुक्त कर दिया। इस प्रकार प्रचलित षड्यन्त्रों में एक और प्रसिद्ध तत्त्व बढ़ गया। अपने स्वामी के लाभ के लिए परिस्थिति का उपयोग करने के लिए मुशीर पूना में ठहरा रहा। इस समय निजामअली तथा मुशीरुलमुल्क दोनों ही अल्पवयस्क शिन्दे की अपेक्षा नाना के अधिक मित्र थे, क्योंकि शिन्दे यह स्पष्ट कह रहा था कि खरडा पर प्रतिज्ञात कर प्राप्त करने के लिए वह हैदराबाद राज्य से युद्ध करेगा। मुशीरुलमुल्क ने स्वतन्त्र होने पर इस गड़बड़ परिस्थिति से लाभ उठाकर मराठा राज्य के नाश का कार्य किया। उसने मई, १७९७ में पूना से प्रस्थान किया और जुलाई में हैदराबाद पहुँच गया।

महाद में रहकर नाना के षड्यन्त्रों का संचालन करने वाला उसका मुख्य कार्यकर्ता गोविन्दराव काले था। यह मुशीरुलमुल्क से मिलकर कार्य करता था। गोविन्दराव ने नाना तथा निजामअली के बीच गुप्त सन्धि का प्रबन्ध किया, जिस पर ७ अक्तूबर, १७९६ को हस्ताक्षर हो गये। इस समझौते के द्वारा हैदराबाद के शासक पर लगाया गया युद्ध की क्षतिपूर्ति करने वाला समस्त विशाल धन तथा प्रदेश समाप्त कर दिये गये। शर्त यह रखी गयी कि बाजीराव के पेशवा पद पर आसीन होने तथा नाना का उसका एकमात्र प्रशाशक बनने में निजामअली सम्पूर्ण हृदय से सहायता करेगा। नाना ने प्रतिज्ञा की कि जब बाजीराव पेशवा हो जायगा तो उससे इस सन्धि का प्रमाणीकरण करा लिया जायगा।[1]

इसी प्रकार का गुप्त समझौता नागपुर के भोंसले के साथ भी किया गया। स्वयं बाजीराव इस शृंखला की अत्यन्त निर्बल कड़ी था, जिसने इन गुप्त समझौतों के पालन के लिए न कोई प्रतिज्ञा की और न कोई उत्तरदायित्व स्वीकार किया। बाद में उसने वास्तव में इन समझौतों का खण्डन कर दिया

[1] मावजी तथा पारसनिस कृत 'सन्धियाँ तथा प्रतिज्ञाएँ', नं० १०, पृ० २२

तथा नाना का सर्वनाश करने में कोई प्रयत्न या चाल उठा नहीं रखी। उस समय उसने एक निपुण कूटनीतिज्ञ का कार्य किया।

यद्यपि पूना की सरकार ने ६ अगस्त, १७९६ को मुशीरुल्मुल्क को विधिपूर्वक हैदराबाद वापस चले जाने की आज्ञा दे दी, परन्तु वह किसी न किसी बहाने से वहाँ ठहरा रहा तथा घटनाओं का अवलोकन और शिन्दे के पक्ष का विरोध करता रहा। अपने उद्देश्यों की सिद्धि के लिए नाना ने एक अन्य दुर्बुद्धि पुरुष—अर्थात् शर्जाराव घाटगे—को शिन्दे की सभा में प्रविष्ट कर दिया। इसके सदृश मराठा राज्य के नाश में भाग लेने वाला पात्र इतिहास में दूसरा शायद ही मिल सकेगा। तुलोजी उर्फ सखाराम कागल (कोल्हापुर से करीब १० मील दक्षिण में) घाटगे परिवार का व्यक्ति था। उसको शर्जाराव की उपाधि वंश परम्परा से प्राप्त हुई और वह इतिहास में इसी नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसका जन्म १७५० के लगभग हुआ था। विचित्र स्वभाव का उत्साही व्यक्ति होने के कारण सम्बन्धियों से झगड़े के बाद उसने अपना घर त्याग दिया तथा परशुराम भाऊ पटवर्धन के अधीन सवारों में भरती हो गया। १७७८ में पूना में मोरोबा फड़निस के विद्रोह के समय जब नाना को अपने जीवन के प्रति संकट मालूम हुआ, तब उसने परशुराम भाऊ से ५०० निष्ठापूर्ण व्यक्तियों का विशेष अंगरक्षक दल माँगा। इन व्यक्तियों सहित सखाराम घाटगे नाना की सेवा में आ गया तथा बहुत समय तक साहस, निष्ठा और सूझबूझ के साथ उसने नाना की सेवा की। मार्च, १७९६ में नाना फड़निस अकस्मात् पूना से सतारा चल दिया तो उसने शर्जाराव को, शायद अपने गुप्तचर के रूप में, दौलतराव की सेवा में प्रवेश करने की अनुमति दे दी। उसने शिन्दे के मन में शीघ्र ही उच्च स्थान प्राप्त कर लिया तथा उसका विश्वस्त अधिकारी हो गया। बाजीराव सदृश प्रसिद्ध बन्दियों की देखरेख का कठिन कार्य उसे दिया गया जो उस समय शिन्दे की रक्षा में थे। इस प्रकार शर्जाराव ने विश्वास तथा उत्तरदायित्व का उच्च स्थान प्राप्त कर लिया। इनसे उसे बहुत-सा धन प्राप्त करने का अवसर भी मिल गया। अपनी घूसखोरी को गुप्त रखने तथा अल्पवयस्क शिन्दे के मन पर नियन्त्रण प्राप्त करने के लिए उसने अपनी प्रसिद्ध सुन्दरी पुत्री बैजाबाई का विवाह दौलतराव से करने की चाल चली।[२] नवयुवक दौलतराव को मोहित करने वाले बैजाबाई के व्यक्ति-

---

[२] ब्राउटन ने अपने मनोहर रेखा-चित्रों में बैजाबाई तथा उसके पिता दोनों को अमर बना दिया है। पिता की हत्या उसके जमाता की इच्छा पर २६ जुलाई, १८०९ को मानाजी फकड़े के पुत्र द्वारा कर दी गयी। बैजाबाई के अनेक बच्चे हुए, परन्तु वे शैशव काल में ही मर गये।

गत मनोहर गुणों के अतिरिक्त एक अन्य कारण भी था, जिससे वह इस कन्या से विवाह करने के लिए उत्सुक हुआ। उसके पिता महादजी के समान ही दौलतराव को भी कुलीन मराठा नहीं माना जाता था। समाज में घाटगे परिवार को उच्च समझा जाता था। अतः दौलतराव ने प्रयत्न किया कि इस परिवार से उसका वैवाहिक सम्बन्ध हो जाये। मराठा समाज के कट्टरपन्थियों ने इस सम्बन्ध का विरोध किया और शर्जाराव भी कुछ समय तक इस पर विचार करने से इनकार करता रहा। बैजाबाई की आयु उस समय १४ वर्ष की थी। विवाह २६ फरवरी, १७९८ को पूना में हुआ। अब शर्जाराव को शिन्दे के दरबार में अधिक शक्ति प्राप्त हो गयी, क्योंकि उसको नाना तथा अपने जमाई दोनों का समर्थन प्राप्त था। इस समय से उसने व्यवहार रूप में केवल शिन्दे के राज्य का ही प्रबन्ध नहीं किया, अपितु पूना के शासन में भी बहुत शक्ति प्राप्त कर ली। समयान्तर में वह दौलतराव के लिए भी अति धृष्ट तथा असह्य हो गया। उसने निर्दयतापूर्वक पूना को लूट लिया तथा वहाँ के निरपराध निवासियों पर कठोर अत्याचार किये। बैजाबाई वृद्धावस्था तक जीवित रही तथा भाग्य के विचित्र उत्थान-पतन का अनुभव करने के बाद १८६३ में उसका देहान्त हुआ।

३. बाजीराव पेशवा बना—मराठा शासन में शर्जाराव का प्रवेश नाना फड़निस के द्वारा हुआ था। उसने विवेकहीन स्वार्थ तथा अकारण निर्दयता के कारण उस नैतिक उच्चता को समाप्त कर दिया, जिससे अनेक पेशवाओं तथा उनके सहायकों ने मराठा राज्य को सुशोभित किया था। जब महाद में नाना अपनी योजनाएँ पूर्ण कर रहा था, तब बाजीराव शिन्दे के शिविर के विरोध में अपना जीवन नष्ट कर रहा था। वह प्रायः अनशन द्वारा आत्महत्या करने के लिए बड़बड़ाता, कसमें खाता और धमकियाँ देता था। उस समय वह शर्जाराव घाटगे की देखरेख में था। उसके द्वारा बाजीराव ने महाद स्थित नाना के पास सन्देश भेजना आरम्भ किया कि उसको पेशवा का स्थान दिला दिया जाये। नाना ने तुरन्त इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया तथा बालोबा तात्या और परशुराम भाऊ दोनों को राजी कर लिया कि वे शिन्दे को पकड़ कर बन्दी बना लें (२६ अक्तूबर, १७९६)। ये दोनों इस समय शासन का संचालन कर रहे थे। शर्जाराव ने दौलतराव के द्वारा इस कार्य का प्रबन्ध इस चतुरता से किया कि दोनों मन्त्रियों को आने वाली विपत्ति की शंका तक नहीं हुई। शिन्दे ने अपनी सेना की एक टुकड़ी कैप्टिन बायड (अमरीकी वेतनभोगी सैनिक) के अधीन महाद को प्रत्यक्ष रूप से नाना को पकड़ने और बन्दी बनाकर पूना को ले जाने के विचार से भेजी। बायड के पास नाना के

लिए गुप्त पत्र था कि वह बायड के साथ चला आये और अपनी पूर्व सत्ता ग्रहण कर ले। कार्यान्वित किये जाने वाले कार्यक्रम का एक अंश और भी था, जिसकी कल्पना शिन्दे ने विचित्र रूप से की थी। उसने प्रबन्ध किया कि जैसे ही नाना पूना में पहुँचे, मुशीरुल्मुल्क तथा यशवन्तराव होल्कर एक साथ पेशवा के महल पर धावा बोलकर चिमनाजी को पकड़ लें, जिससे बाजीराव का रास्ता साफ हो जाये। २७ अक्तूबर को यह समाचार परशुराम भाऊ के पास पहुँचा। वह तुरन्त अपने सैनिकों की एक टोली लेकर राजभवन को दौड़ा गया और चिमनाजी को अपने ही घोड़े पर बैठाकर शीघ्रतापूर्वक जुन्नार की ओर भाग आया। शिन्दे के सिपाही उसको पकड़ न सके। होल्कर ने शीघ्रता से उसका पीछा किया। शिवनेर के पास उसका परशुराम भाऊ से सामना हुआ। इस झड़प में वह (परशुराम भाऊ) घायल हो गया तथा बन्दी बनाकर माण्डवगन भेज दिया गया। वहाँ उस पर कठोर पहरा लगा दिया गया। चिमनाजी पकड़कर शिन्दे के शिविर में पहुँचा दिया गया तथा अपने भाई के साथ कुशलतापूर्वक ठहरा दिया गया। परशुराम भाऊ तथा उसके पक्षपातियों के घर लूट लिये गये और सम्पत्ति छीन ली गयी।

इस आश्चर्यजनक चाल का प्रबन्ध नाना की योजनानुसार शिन्दे ने चतुरतापूर्वक किया। बालोबा तथा परशुराम भाऊ सदृश अनुभवी व्यक्तियों के विरुद्ध यह विश्वासघातक प्रहार था जो केवल चार मास पूर्व उसी शिन्दे की इच्छाओं को कार्यान्वित करने के लिए चिमनाजी अप्पा को जुन्नार से पूना ले आये थे। यह आकस्मिक परिवर्तन नाना द्वारा दिये गये लोभ का परिणाम था। पूना से चिमनाजी के निष्कासन का समाचार तुरन्त महाद स्थित नाना के पास भेज दिया गया। नाना वहाँ से चल दिया और २५ नवम्बर को पूना पहुँच गया। नाना के निमन्त्रण पर रघुजी भोंसले भी उसी समय पूना आ गया। अगले दिन हड़पस के स्थान पर शिन्दे के शिविर में नाना विधिपूर्वक बाजीराव से मिला। इस समय समस्त मुख्य व्यक्ति—शिन्दे, होल्कर, भोंसले तथा निजामअली के प्रतिनिधि रूप में मुशीरुल्मुल्क—वहाँ उपस्थित थे। इस औपचारिक सम्मिलन के अवसर पर समस्त व्यक्तियों ने बाजीराव का अपने स्वामी के रूप में स्वागत किया। इन षड्यन्त्रों तथा विश्वासघातों के परिणामस्वरूप तभी से मराठों का वचन तथा प्रतिज्ञा समस्त भारत में असत्य तथा विश्वासघात के पर्यायवाचक शब्द हो गये। एक शताब्दी में भी इस कलंक को मिटाने में मराठा जाति समर्थ नहीं हो सकी। इस समस्त मराठा पतन का उत्तराधिकारी स्वयं बाजीराव हुआ तथा उसके वचन का कभी भी विश्वास नहीं किया गया। उसने लिखित रूप में नाना से प्रतिज्ञा की थी कि उसके प्रति

कोई अन्याय नहीं करेगा तथा उसको आजीवन पूर्ण कार्यपालिका शक्ति का उपभोग करने देगा। इसी प्रकार नाना ने भी निष्ठापूर्वक बाजीराव की सेवा करने का वचन दिया था। बाजीराव की ओर से दौलतराव तथा नाना की ओर से निजामअली और मुशीरुल्मुल्क इन प्रतिज्ञाओं के निष्ठापूर्वक पालन के लिए उत्तरदायी हुए। स्मरण रखना चाहिए कि नाना तथा मुशीर एक वर्ष पहले तक भयानक शत्रु थे। यह समस्त व्यापार निस्सार तथा अल्पकालीन विराम सन्धि थी। यह शीघ्र ही सिद्ध हो गया कि यह एक छल था जो खूब सोच-विचार कर किया गया था।

अब सतारा के निर्बल राजा को आज्ञा दी गयी कि वह पेशवा पद के नवीन वस्त्र भेजे। ५ दिसम्बर को ये वस्त्र बाजीराव को पहना दिये गये। इस अवसर पर किसी प्रमुख सरदार—सिन्धिया तथा होल्कर—ने भी उपस्थित होने की चिन्ता नही की। ६ दिसम्बर को जुलूस सहित बाजीराव नगर मे होकर निकला तथा उसने अपने पैतृक भवन में प्रवेश किया। यह भवन भूतपूर्व पेशवा ने गत वर्ष के अक्तूबर मास में रिक्त किया था।

इस प्रकार १७९६ का वर्ष बाजीराव के लिए अत्यधिक घटनापूर्ण रहा। उसको न कोई शिक्षा मिली थी और न किसी प्रकार का अनुभव था। उसने अपना जीवन निर्माण करने वाले अधिकतम वर्ष निरोध में व्यतीत किये थे। अब तक बाह्य जगत से उसका कोई सम्पर्क नहीं था। वह केवल भाग्य की लीला के कारण मराठा राज्य के उच्च आसन पर आसीन हो गया था। उसको आरम्भ से ही प्रतिकूल परिस्थिति से संघर्ष करना पड़ा था, यद्यपि उसका विश्वासघात तथा दुष्ट हृदय ही उसके अधिकांश कष्टों का कारण था। उसके घनिष्ठ मित्र भी सन्देह तथा क्रोध से न बच सके। शीघ्र ही नाना से उसका झगड़ा हो गया। उसने नाना से स्पष्ट कह दिया कि वह भूतपूर्व पेशवा माधवराव की भाँति उसके हाथ की कठपुतली बनकर नहीं रहेगा। नाना तथा बाजीराव के बीच जो वार्तालाप, समझौते तथा प्रतिज्ञाएँ हुई थीं, उनका अर्थ केवल दोनों पक्षों के वास्तविक अभिप्रायों को गुप्त रखना था। बाजीराव को गद्दी पर बैठे एक सप्ताह भी नहीं हुआ था कि दोनों का पारस्परिक द्वेष प्रकट हो गया। पेशवा होने पर बाजीराव ने सर्वप्रथम कार्य अपने पिता के समस्त परामर्शदाताओं और साथियों को मुक्त करने तथा उनको अपने व्यक्तिगत सम्पर्क में ले आने का किया। इन सबको भूतपूर्व शासन में कठोर दण्ड दिया गया था। अब इन लोगों ने नाना से उन अन्यायों का बदला लेना चाहा जो नाना ने उनके साथ किये थे। इन्हें पास रखने के प्रति नाना ने बाजीराव का विरोध किया। परन्तु बाजीराव ने हठ किया कि उसके पास

वे ही व्यक्ति रहेंगे जिनको वह चाहता है। नाना ने पेशवा से कहा कि वह अपनी रक्षा के लिए राजभवन में नियुक्त शिन्दे के सैनिकों को निकाल दे तथा उस सेवा के लिए अपने हुजरत दल के सैनिकों को नियुक्त कर दे। बाजीराव ने इस उचित परामर्श को घृणापूर्वक अस्वीकृत करते हुए कहा— "ये हुजरत के सैनिक आपके आदमी हैं। मैं इन पर विश्वास नहीं कर सकता।" इसी प्रकार की दृढ़ता से बाजीराव ने उस सन्धि को प्रमाणित करने से इनकार कर दिया जो निजामअली के साथ हुई थी और जिसके द्वारा खरडा का युद्ध-व्यय सम्बन्धी धन छोड़ दिया गया था तथा निजाम के प्रदेश उसको वापस कर दिये गये थे। मुशीरुल्मुल्क उस समय पूना में ही था। उसने खरडा की सन्धि का सर्वथा खण्डन किये जाने की माँग रखी। पर बाजीराव इससे सहमत न हुआ। वह अपने अयोग्य कृपापात्रों पर अधिकाधिक धन व्यय करने लगा। उनको भेंट तथा पुरस्कार दिये जाते, जिसमें राज्य का कोई हित निहित नहीं था। इस प्रकार नाना को मालूम हो गया कि प्रशासन का संचालन सम्भव नहीं है। कुछ ही दिनों में उनके बीच का तनाव इतना कटु तथा असह्य हो गया कि दोनों ने एक-दूसरे के प्रति सन्देह के कारण खुले दरबार में परस्पर मिलना बन्द कर दिया। आकस्मिक आक्रमण के भय से वे चौबीसों घण्टे सशस्त्र रक्षकों के बीच में रहने लगे। ऐसी दशा में साधारण प्रशासन की उपेक्षा होना स्वाभाविक था।

बाजीराव तथा नाना के सम्बन्धों के उदाहरण रूप में कुछ पत्र उद्धरण देने योग्य हैं। ३१ दिसम्बर, १७९६ को अर्थात पेशवा के गद्दी पर बैठने के केवल तीन सप्ताह बाद उनके बीच गुप्त समझौता हुआ।[३] इन ६ धाराओं में प्रशासन के संचालन के लिए आधार बनने वाले सिद्धान्तों का उल्लेख था। ये धाराएँ पूर्व पेशवाओं द्वारा स्वीकृत उदाहरणों की आवृत्ति-मात्र थीं। १२ धाराओं वाले एक अन्य पत्र में एक विनम्र प्रार्थना थी, जो नाना ने बाजीराव की अनुकम्पामय स्वीकृति के लिए उपस्थित की थी। इसका सार इस प्रकार है—"श्रीमन्त के कल्याणार्थ मेरी योजनाएँ अब सौभाग्यवश पूर्ण हो गयी हैं। मैं आपका प्रेमपात्र हो गया हूँ, यह जानकर मुझे अत्यन्त हर्ष हुआ है। अब मेरा शरीर अधिक सेवा के लिए असमर्थ हो गया है, अतएव मैं विनयपूर्वक किसी शान्त स्थान पर वास करके अपना शेष जीवन शान्तिमय ध्यान में व्यतीत करने और आपके कल्याण के लिए सदा प्रार्थना करते रहने की आज्ञा चाहता हूँ। इस उद्देश्य से निम्नलिखित प्रार्थनाएँ मैं श्रीमन्त की स्वीकृति के लिए उपस्थित करता हूँ :

१. आपने मुझे पुत्र गोद लेने की आज्ञा पहले ही दे दी है। यह काम

---

[३] ऐतिहासिक टिप्पणी, जिल्द ४, इतिहास संग्रह, पे० द० न० २१, पृ० १७२

मैं शीघ्र कर लूंगा। श्रीमन्त से प्रार्थना है कि मेरा फड़निस का पद मेरे दत्तक पुत्र को दिया जाये तथा जो लाभ मैं इस समय भोग रहा हूँ, वे सब उसको मिलते रहें। आप अपने मन से मेरे विषय में प्रत्येक सन्देह निकाल दें।

२. इस समय मेरी सेवा में नियुक्त रक्षादल के अतिरिक्त एक हजार सैनिकों को आज्ञा होनी चाहिए कि जहाँ मैं वास करूँ वहीं वे मेरी सेवा में रहें।

३. मुझको २५ हजार वार्षिक की जागीर दी जाये।

४. मेरी इच्छा बनारस जाकर शेष जीवन व्यतीत करने की है। मैं विधिपूर्वक लिखित आज्ञा चाहता हूँ कि आपने इच्छापूर्वक मुझको अवकाश ग्रहण करने की अनुमति दे दी है (ताकि मुझको विद्रोही न समझा जाये)।

५. शिन्दे, निजामअली, भोंसले, कोल्हापुर के छत्रपति तथा अन्य व्यक्तियों से मैंने जो राजनीतिक समझौते तथा प्रतिज्ञाएँ की हैं, उनका उचित पालन किया जाये एवं समय की आवश्यकतानुसार उन्हें कार्यान्वित किया जाये।

६. आवश्यकतावश सरकारी कार्य के लिए अपना जो व्यक्तिगत धन मैंने व्यय किया है, उसका भुगतान मिलना चाहिए।

७. हरिपन्त फड़के के पुत्रों अबा शेलुकर, दादा गडरे, बजाबा शिरोलकर, घोड़ो पन्त निजसुरे, रघोपन्त गोड़बोले, नरोपन्त चक्रदेव, गोविन्दराव पिंगले तथा दीर्घ समय से राज्य की निष्ठापूर्वक सेवा करने वाले अन्य लोगों के साथ यथापूर्व कृपामय व्यवहार होना चाहिए।

८. मराठा सरदारों अथवा विदेशी शक्तियों के साथ विधिपूर्वक निश्चित किये गये समझौतों का श्रद्धापूर्वक पालन होना चाहिए। शिन्दे, होल्कर तथा अन्य सरदार राज्यकार्य में परामर्श देते रहेंगे। उनके परामर्श का उचित मान होना चाहिए।

इस स्पष्ट पत्र से नाना की राजनीतिक बुद्धि को कोई श्रेय प्राप्त नहीं होता—विशेषकर इस बात का स्मरण करके कि २० वर्षों तक बाजीराव के साथ उसके सम्बन्ध इतने अधिक कटु रहे थे कि सरलता से ठीक नहीं हो सकते थे। बाजीराव से कृपा की आशा रखना नाना के लिए आत्मवंचना थी। अपने दत्तक पुत्र को अपना पद तथा लाभ दिये जाने की प्रार्थना एकदम हास्यास्पद है, क्योंकि गोद लिये जाने वाले व्यक्ति की योग्यता अज्ञात थी।

नाना के कष्ट का मुख्य कारण उसका संचित कई करोड़ धन था। विद्वान जीवनी लेखक खरे ने पता लगाया है कि उसकी संख्या कम से कम ६ करोड़ थी। बाजीराव तथा शिन्दे के विश्वास के अनुसार यह धन राज्य को हानि पहुँचाकर अन्यायपूर्वक एकत्र किया गया था। बाजीराव निर्धन था तथा उसमें

अपना नित्य का भोजन मोल ले सकने की भी सामर्थ्य नहीं थी। अतः वह हतबुद्धि हो गया कि बिना धन के किस प्रकार अपना निर्वाह करे। उसने अपने भाई अमृतराव को सब मामलों का निपटारा करने के लिए नाना के पास भेजकर समस्त बन्धुओं के साथ पितृतुल्य व्यवहार करने की प्रार्थना की। अमृतराव से कुछ भी न हो सका, तब बाजीराव ने सुझाव दिया कि मोरोबा फड़निस को कारागार से मुक्त करके उसे प्रशासन सौंप दिया जाये। एक समाचार में इस प्रकार उल्लेख है—"जो कुछ भी अब तक हुआ है, वह भविष्य में होने वाले की तुलना में सम्भवतः कुछ भी नहीं है।" इसका अर्थ था "राज्य का अन्त सन्निकट है।" पूना का वातावरण आशंका तथा व्याकुलता से आच्छादित हो गया। वहाँ के साहूकार अपना धन अन्य सुरक्षित स्थानों को ले जाने लगे। हत्या के भय से बाजीराव अपने महल से बाहर निकलने का साहस नहीं कर सकता था। बाजीराव ने प्रायश्चित की विरोधी विधि द्वारा अपने भाई चिमनाजी के गोद लिये जाने को समाप्त कर दिया।

पटवर्धनों से बाजीराव को अत्यन्त घृणा थी, क्योंकि वे उसके पिता के घोरतम शत्रु थे। इनमें परशुराम भाऊ पर उसकी वक्रदृष्टि विशेष रूप से थी, क्योंकि वह चिमनाजी अप्पा को बलपूर्वक जुन्नार से लाया था तथा पेशवा पद पर बाजीराव के उत्तराधिकार का विरोध किया था। माण्डवगन के कारागार में उसके साथ क्रूर व्यवहार किया जा रहा था तथा बाजीराव उसके परिवार के अन्य सदस्यों को भी न्यूनाधिक कष्ट दे रहा था। मराठा राज्य के सौभाग्य से उस समय ब्रिटिश नीति आक्रमणात्मक नहीं थी। हस्तक्षेप न करने वाला शोर उस समय ब्रिटिश शासन का मुख्य पुरुष था तथा उसी के समान शान्त यूथोफ मैलेट की अनुपस्थिति में पूना रेजीडेन्सी का संचालन कर रहा था। भारतीय घटनास्थल पर आगामी महान शासक वेलेजली के आने में एक वर्ष का समय था। बाजीराव का राज्य की चिन्ताओं से लेशमात्र भी सम्बन्ध नहीं था। वह अपने को जनता के सामने प्रार्थना, पूजा तथा धार्मिक कृत्यों में व्यस्त रखता तथा एकान्त में निन्दनीय विषयभोग में तल्लीन रहता। नाना उद्विग्न तथा दयनीय द्रष्टा बना रहा। वह प्रशासन पर प्रभावकारी नियन्त्रण रखने में असमर्थ था। इस समय प्रशासन गतिहीन था।[४]

---

४ बाजीराव के राज्यारोहण से मराठा कार्यों पर ब्रिटिश अधिकारियों का प्रभाव बढ़ता रहा। अतः हमें पूना के रेजीडेण्टों के नाम ध्यान में रखने चाहिए—

(१) चार्ल्स मैलेट—३ मार्च, १७८६—२१ फरवरी, १७९७

(२) यूथोफ—२१ फरवरी, १७९७—२४ मार्च, १७९८

इस प्रकार की परिस्थिति में पूना में सहसा एक छोटा-सा दंगा हो गया। इसकी स्मृति वहाँ अब तक बनी हुई है। नाना का ससुर विष्णुपन्त गदरे एक साहूकार था। उसने पूना में मुरलीधर मन्दिर का निर्माण किया था। १३ अप्रैल, १७९७ को मन्दिर की प्रतिष्ठा के समय सैनिक बैण्ड को बाजे बजाने की आज्ञा हुई। उस समय मराठा सरकार की सेवा में दो बैण्ड थे—एक अरबों का और दूसरा कैप्टिन बायड के दल का। दोनों नियत समय पर वहाँ पहुँच गये। प्राथमिकता के प्रश्न पर दोनों में दंगा हो गया। प्रत्येक दल ने हठ किया कि वह पहले बाजे बजायेगा। दंगे ने सहसा भयानक उपद्रव का रूप धारण कर लिया। दोनों दलों के कई आदमी मारे गये। इस प्रकार के अशुभ रक्तपात के कारण संस्कार स्थगित करना पड़ा। वह मन्दिर इस समय भी "हत्याओं का मुरलीधर" कहलाता है। इस घटना का अपना कोई महत्त्व नहीं है, परन्तु यह इस बात का उदाहरण है कि उस समय पूना के लोगों में भावनाएँ उत्तेजित हो रही थी।

धन की अधिक आवश्यकता के कारण बाजीराव ने जनता पर कई नये कर लगा दिये। उनमें से एक कर था 'सन्तोष पट्टी'—अर्थात बाजीराव के राज्यारोहण पर हर्ष के कारण जनता का दान। जनता का धन बलपूर्वक प्राप्त करने का यह विचित्र उपाय नये पेशवा के उर्वर मस्तिष्क का आविष्कार था। मुशीरुलमुल्क इस समय भी पूना में था और अपने स्वत्वों के लिए पूर्ण सन्तोष की माँग कर रहा था। इसका निपटारा बड़ी कठिनाई से १० मई, १७९७ को हो पाया। खरडा की समस्त शर्तों का निराकरण पेशवा ने प्रमाणित कर दिया। बन्दी तथा युद्ध-शरीर-बन्धक के रूप में आया हुआ निजाम का मन्त्री विजय के पूर्ण उल्लास सहित वापस गया।[५] पूना स्थित रघुजी भोंसले भी अपने स्वत्वों के विषय में सन्तुष्ट कर दिया गया और जून में उसको अपनी राजधानी वापस जाने की आज्ञा दे दी गयी। भविष्य में

---

(३) विलियम पामर—२४ मार्च, १७९८—७ दिसम्बर, १८०१
(४) बारी क्लोज—७ दिसम्बर, १८०१—२९ जुलाई, १८०९
(५) हेनरी रसल—२९ जुलाई, १८०९—२८ फरवरी, १८११
(६) एल्फिन्सटन—२८ फरवरी, १८११—३ जून, १८१८ तक जब वह बम्बई का प्रथम गवर्नर नियुक्त हो गया।

५ निजामअली के राजदूत रघुत्तम हैबतराव ने कुशलतापूर्वक यह सब प्रबन्ध किया। मराठा-निजाम तनाव के समय से वह पूना में रहकर परदे के पीछे से अपना कार्य कर रहा था। इसका परिणाम मराठा राज्य की हानि के रूप में निकला।

सद्भावना प्राप्त करने के लिए दौलतराव शिन्दे को अहमदनगर का गढ़ दे दिया गया।

४. दुष्ट विमूर्ति—बाजीराव तथा नाना में इतना स्पष्ट विरोध हो गया कि नाना ने पेशवा से उसके भवन में मिलने से इनकार कर दिया। जो कुछ राज्य कार्य उससे बन सकता था, उसको अपने घर पर ही करने लगा। एक अन्य व्यक्ति शिन्दे भी उनके कष्टों के लिए उत्तरदायी था। उसने इन दोनों को हानि पहुँचाकर यथासम्भव लाभ उठाने का प्रयत्न किया था। इस प्रकार मराठा राज्य के इन दोनों मुख्य सरदारों ने अपना समय पारस्परिक प्रति-द्वन्द्विता में नष्ट कर दिया। इन्होंने अपने बाह्य कार्यों पर लेशमात्र ध्यान नहीं दिया। इन्होंने उन शत्रुओं का प्रतिकार करने के लिए सैनिक आवश्यकता पर भी विचार नहीं किया जो प्रत्येक दिशा में शान्तिपूर्वक प्रतीक्षा कर रहे थे। अमृतराव ही एकमात्र व्यक्ति था, जिसको इस प्रकार की स्थिति पर अत्यन्त क्रोध तथा दुख होता था। उसने स्थिति सँभालने के लिए एक ओर अपने भाई बाजीराव तथा दूसरी ओर नाना और शिन्दे पर अपना शान्तिकारक प्रभाव डालने का यथाशक्ति प्रयास किया। परन्तु अन्य दलों ने इन प्रयासों का अर्थ विश्वासघात लगाया। स्वयं उसकी कोई शक्ति नहीं थी, इसलिए वह स्थिति नहीं सँभाल सका। फिर उसने बाजीराव को तैयार कर लिया कि वह अपनी स्थिति शक्तिशाली बनाने के लिए अपना प्रशिक्षण दल तैयार करे। तब बाजीराव ने खरडा के समय से नाना की सेवा में नियुक्त अमरीकी कैप्टिन बायड को अपनी सेवा में रख लिया।

इसी समय आयरलैण्ड निवासी विलियम टोन को भी बायड के अधीन कार्य करने के लिए नियुक्त किया गया। परन्तु इसके बाद बायड एक वर्ष से अधिक पूना में ठहर नहीं सका। टोन लगभग ५ वर्ष (१७९६-१८०१) तक मराठा सेवा में बना रहा। महेश्वर के समीप नर्मदा नदी पर होल्कर तथा शिन्दे के बीच हुए रण में वह मारा गया। उस समय टोन होल्कर की सेवा में था।[६]

---

[६] टोन का नाम मराठा इतिहास में अब तक जीवित है, क्योंकि उसने अपने ५ वर्षों के सेवाकाल में कर्नल मैलकम को महत्त्वपूर्ण पत्र लिखे थे। ये पत्र बाद में प्रकाशित हुए हैं। उनमें मराठा राज्य की स्थिति का स्पष्ट एवं विशद वर्णन है तथा वे निष्पक्ष भाव से महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री प्रस्तुत करते हैं। इन पत्रों का प्रथम प्रकाशन १८०३ के एशियाटिक ऐनुअल रजिस्टर में हुआ। बाद को वे 'बाम्बे कोरियर' में प्रकाशित हुए। उनमें बाजीराव, यशवन्तराव होल्कर, मानाजी फड़के तथा अनेक प्रसिद्ध व्यक्तियों के उत्तम शब्द चित्र हैं। उनमें समाज तथा धर्म पर लेखक की आँखों देखी उपयोगी टिप्पणियाँ भी हैं।

बाजीराव ने अपने नवयुवक मित्र दौलतराव के साथ १७९७ की ग्रीष्म-ऋतु विवाहोत्सवों में प्रसन्नतापूर्वक व्यतीत की। दौलतराव उससे केवल छह वर्ष छोटा था। तुकोजी होल्कर इस समय पूना में था। अब वह वृद्ध तथा अस्वस्थ था और अपने अविनीत पुत्रों तथा विभक्त परिवार का नियन्त्रण करने में असमर्थ था। १३ अगस्त, १७९५ को अहल्याबाई की मृत्यु हो जाने के कारण इस परिवार पर रहने वाला उसका शान्तिकारक प्रभाव भी नष्ट हो गया। १५ अगस्त, १७९७ को पूना में उसके शिविर में स्वयं तुकोजी का भी देहान्त हो गया। उसके चार पुत्र थे—काशीराव जो प्रौढ़ तथा मूर्ख था, मल्हारराव, विठोजी तथा यशवन्तराव जो कनिष्ठ था। अन्तिम तीनों पुत्र योग्य तथा वीर थे। ऐसा कोई व्यक्ति न था जो उनकी शक्तियों का नियन्त्रण करके उन्हें किसी उत्तम लक्ष्य की ओर प्रेरित करता। अतएव ये शक्तियाँ परिवार के प्रति लाभप्रद होने के स्थान पर घातक सिद्ध हुईं। काशीराव न्यायसंगत उत्तराधिकारी था, परन्तु उसमें अपने कार्यों के प्रबन्ध की क्षमता नहीं थी। शिन्दे के विरुद्ध होल्कर परिवार का प्राचीन विद्वेष तथा लाखेरी की स्मृति उनके हृदयों को विकल कर रही थी। बाजीराव का पूर्ण समर्थन प्राप्त होने पर दौलतराव ने प्राचीन अन्यायों का बदला लेने का निश्चय कर लिया। बाजीराव ने तुकोजी के उत्तराधिकारी का स्थान काशीराव को दिया था। दौलतराव ने उस पर नियन्त्रण प्राप्त कर लिया। अन्य तीनों भाई काशीराव के विरुद्ध संयुक्त हो गये तथा नाना फड़निस का समर्थन प्राप्त करने के बाद वे काशीराव का स्थान छीनने के लिए स्पष्ट रूप से कटिबद्ध हो गये। खुले युद्ध को रोकने में बाजीराव अपने निष्पक्ष प्रभाव का उपयोग न कर सका, क्योंकि उसने शिन्दे द्वारा नियुक्त व्यक्ति का समर्थन करने की प्रतिज्ञा कर ली थी। अपने पिता की मृत्यु के बाद तीनों छोटे भाइयों ने अपना पृथक दल बना लिया। उन्होंने अपने व्यक्तिगत स्वतन्त्र अनुचर एकत्र कर लिये तथा समबुर्दा के निकट ठहर गये।

उनकी योजना थी कि काशीराव को पकड़ लें तथा वीर मल्हारराव के हित में सेना के मुख्य स्थान पर अधिकार प्राप्त कर लें। यदि सम्भव हो सके तो शिन्दे के प्रदेशों पर धावा मारें। होल्कर बन्धुओं के अल्प-साधनों की तुलना में अपनी विशाल सेना सहित दौलतराव प्रबल था। उसने अविलम्ब उपाय किया कि या तो होल्कर दल के नेता मल्हारराव को पकड़ ले, या सम्भव प्रतीत हो तो किसी झगड़े में उसको मार डाले। जब मल्हारराव तथा दौलतराव सदृश दो दुस्साहसी नवयुवक निश्चय कर लें कि उनसे जो कुछ बन पड़ेगा करेंगे, जब उन दोनों का अधिपति पेशवा निश्चिन्त उदासीनता की वृत्ति धारण कर ले तथा यह न समझ सके कि यह तुच्छ गृहोपद्रव आरम्भ होकर

अन्त में विशाल रूप धारण करके उसे तथा उसके समस्त राज्य को निगल जायेगा, तो परिणाम पूर्व निश्चित ही समझना चाहिए। वृद्ध तुकोजी की मृत्यु के ठीक एक मास बाद १४ सितम्बर को शर्जाराव के परामर्शानुसार दौलतराव ने रात्रि के घोर अन्धकार में अपनी एक सैनिक मण्डली मल्हारराव को पकड़ लाने के लिए भेजी। मल्हारराव को शिन्दे के प्रयास की सूचना मिल गयी थी, इसलिए वह अपने शत्रुओं से वीरतापूर्वक युद्ध करने के लिए तैयार था। वह शिन्दे की सैन्य-मण्डली द्वारा आकस्मिक आक्रमण का प्रतिकार करने के विचार से अपने थोड़े-से साथियों सहित सारी रात जागता रहा। बिना किसी घटना के रात्रि व्यतीत हो गयी। प्रभात होने पर मल्हारराव ने समझा कि आशंकित संकट समाप्त हो गया है। वह सैनिक वर्दी उतारकर सोने चला गया। इस अरक्षित दशा में उस पर सहसा आक्रमण किया गया तथा वह अपने कुछ साथियों सहित मार डाला गया। उसकी पत्नी जीजाबाई को उस समय कुछ महीनों का गर्भ था। वह सुरक्षा की दृष्टि से पूना में होल्कर के प्रतिनिधि केशवपन्त कुन्ते के घर हटा दी गयी थी। उचित समय पर उसने पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम खांडेराव रखा गया। दौलतराव ने उन माँ-बेटों पर अधिकार कर लिया तथा उन्हें अपने शिविर में नजरबन्द कर दिया।

परन्तु दौलतराव मल्हारराव के दो अन्य बन्धुओं—विठोजी तथा यशवन्तराव—से न निपट सका। वे मल्हारराव की मृत्यु के बाद तुरन्त भाग निकले तथा लूटमार का जीवन व्यतीत करने लगे। उन्होंने बदले में शिन्दे के प्रदेश को लूटना आरम्भ कर दिया। त्रिमूर्ति अर्थात बाजीराव, दौलतराव तथा शर्जाराव ने इस समस्त कष्ट का उत्तरदायित्व नाना के सिर मढ़ दिया तथा उससे पिण्ड छुड़ाने के साधन संगठित कर लिये। विदेशी शक्तियों में अधिक लोकप्रिय होने के कारण उन्हें नाना की ओर से बहुत भय था। पटवर्धन परिवार, अमृतराव, महादजी की पत्नियाँ, शिन्दे के भारतीय अश्वारोही दल के अधिकारी तथा उसके सचिव न्यूनाधिक रूप में बाजीराव तथा दौलतराव से असन्तुष्ट थे। उनको प्रेरणा हुई कि वे किसी संगठित होने वाले विरोधी दल में सम्मिलित हो जायें।

होल्कर परिवार की कलह इस बात की सूचक है कि अन्य स्थानों पर भी इसी प्रकार की कलह हो रही थी। जब राज्य शारीरिक दृष्टि से सर्वथा स्वस्थ मनुष्यों की जन्मजात प्रवृत्तियों के लिए वैध साधन जुटाने में असमर्थ हो जाता है तो वे नियम विरुद्ध तथा लूटमार का जीवन अपना लेते हैं। राज्य का कर्तव्य है कि इस प्रकार के व्यक्तियों का उपयोगी धन्धों की ओर पूर्व

राजाओं की भाँति मार्ग-दर्शन करे। २७ मार्च, १७९३ को रघुजी की मृत्यु पर कोलाबा के आंग्रे परिवार में इसी प्रकार की कलह उठ खड़ी हुई। दौलतराव शिन्दे की माता इसी परिवार की पुत्री थी। बाद में दौलतराव से प्रार्थना की गयी कि वह अपने मामा बाबूराव आंग्रे की ओर से कोलाबा की उत्तराधिकार कलह में हस्तक्षेप करे। बाबूराव अपने कोलाबा पर अधिकार प्राप्त करने के उद्देश्य में कुछ समय के लिए सफल हो गया। परन्तु वह बुद्धिमत्तापूर्वक इस संघर्ष से हट गया और दौलतराव के अधीन सेवा करना स्वीकार करके दुखद परिणामों से बच गया।

शर्जाराव की दुष्ट मन्त्रणा द्वारा संचालित तथा बाजीराव की दुष्ट प्रवृत्तियों से संयुक्त दौलतराव का सैनिक बल इस समय मराठा राज्य के समस्त सरदारों, साहूकारों तथा नेताओं के लिए भय का कारण हो गया। समस्त राजधानी में प्रत्येक समृद्ध पुरुष के विषय में समाचार भेजने के लिए गुप्तचर नियुक्त कर दिये गये। अब उनका प्रहार नाना पर होने वाला था। उसको राज्यकार्य में अब कोई रुचि नहीं रह गयी थी तथा वह अपने पास भेजे गये विषयों में ही अपना परामर्श देता था। बाजीराव शिन्दे को जाने या उसके निजी महल से अपनी सैनिक रक्षामण्डली को हटा लेने की अनुमति नहीं देना चाहता था। नाना ने दौलतराव से कहा कि यदि वह पूना छोड़कर चला जाये तो उसे बहुत-सा धन दिया जायेगा। बाजीराव नाना से भी आगे बढ़ गया। उसने शिन्दे से प्रतिज्ञा की कि नाना के प्रतिशोध से अपनी रक्षा करने के लिए वह दो करोड़ रुपये देगा। दौलतराव के सम्मुख कठिन समस्या उपस्थित हो गयी कि इन दो परस्पर विरोधी योजनाओं में से वह किसको स्वीकार करे। दोनों दशाओं में नाना की थैलियों से नियत धन बलपूर्वक निकालना ही था। दीर्घकालीन तथा गम्भीर विचार के बाद त्रिमूर्ति ने द्वितीय मार्ग का अनुसरण करने का निश्चय किया—अर्थात नाना के शरीर पर अधिकार कर लिया जाये तथा उसको किसी दुर्गम गढ़ में डालकर उस पर कठोर पहरा लगा दिया जाये। उस दिशा में वे सुविधापूर्वक उसके समस्त धन का अपहरण कर सकेंगे तथा प्रशासन में स्वतन्त्र अधिकार प्राप्त कर लेंगे। इन दुष्ट योजनाओं का प्रतिकार करने के लिए कुछ संयत राजनीतिज्ञों ने एक आन्दोलन आरम्भ किया कि अमृतराव को प्रशासन का अधिकार दे दिया जाये। १७९७ की वर्षाऋतु में अमृतराव उद्योग करता रहा कि नाना से स्वेच्छापूर्वक अवकाश ग्रहण करने की प्रार्थना करे तथा समझौता करा दे, क्योंकि उस कष्ट का एकमात्र कारण नाना ही माना जाता था। काले, पिंगले, चक्रदेव तथा शेलुकर सदृश नाना के पक्षपातियों तथा राज्य के वयोवृद्ध हितैषियों ने अमृतराव की इस योजना का समर्थन किया। योजना परिपक्व हो गयी।

यह योजना कार्यान्वित होने ही वाली थी कि बाजीराव की दुष्ट बुद्धि ने इसे नष्ट कर दिया। उसको अपने भाई अमृतराव का प्राणघातक भय था। अतः वह उसका नियन्त्रण पसन्द नहीं करता था। उस पर विश्वास करने के स्थान पर बाजीराव ने उसे पूना से हटा देने का प्रबन्ध किया। उसने अमृतराव से कहा कि अपने व्यय के लिए निश्चित वार्षिक वृत्ति स्वीकार करके वह अवकाश ग्रहण कर ले। इस प्रकार त्रिमूर्ति की दुष्ट प्रवृत्तियों के नियन्त्रणार्थ अन्तिम प्रयास भी असफल हो गया।

इस समय टीपू सुल्तान के साथ ब्रिटिश सम्बन्ध तनावपूर्ण हो गये थे। प्रतीत होने लगा था कि युद्ध सन्निकट है। रेजीडेण्ट ने पेशवा से प्रार्थना की कि वह १७६० वाली पहली त्रिदलीय सन्धि का नवीनीकरण कर दे। नाना ने बाजीराव को परामर्श दिया कि वह इस सन्धि में सम्मिलित हो जाये। नाना की सम्मति में दोनों मित्रों—पेशवा तथा निजामअली—के एक पक्ष में हो जाने से शिन्दे का प्रतिकार हो सकता था। परन्तु बाजीराव और शिन्दे अत्यन्त घनिष्ठ मित्र तथा एक-दूसरे के लिए अत्यन्त आवश्यक थे। नाना के इस प्रस्ताव में उनको अपने नाश की गन्ध आ गयी। इसलिए उन्होंने इसे अस्वीकृत कर दिया। इसके साथ-साथ उन लोगों ने ब्रिटिश सहानुभूति भी खो दी।

५. नाना फड़निस कारावास में—इस समय महादजी शिन्दे की विधवाएँ बाजीराव तथा दौलतराव को बहुत कष्ट दे रही थीं। उन दोनों ने सोचा कि इस कष्ट का कारण नाना है। उसी ने इन महिलाओं को युद्ध के उग्र मार्ग पर चलने के लिए उत्तेजित किया है। अतः शिन्दे तथा बाजीराव ने नाना को रंगमंच से सर्वथा हटा देने का निश्चय किया। उन्होंने कुछ ही दिन पहले की गयी गम्भीर शपथों तथा लिखित प्रतिज्ञाओं की उपेक्षा कर दी जो उससे की थीं। १७६७ के दशहरे के दिन (३० सितम्बर) स्थिति अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी। उस दिन नाना ने सदा की भाँति जुलूस में भाग लेने तथा पेशवा को मुजरा करने से इनकार कर दिया। इस कारण भारी उत्तेजना फैल गयी तथा शिन्दे ने नाना पर निगाह रखने एवं उसकी स्वतन्त्र गतिविधि बन्द करने के लिए अपनी सेना उसके मकान के चारों ओर लगा दी। १५ दिन बाद बहुत-सी सेना लेकर शिन्दे पेशवा से उसके महल में मिला तथा नाना को वार्तालाप के लिए निमन्त्रित किया। नाना इस सम्मेलन में उपस्थित हुआ और उसने शिन्दे को तुरन्त उत्तर चले जाने के लिए परामर्श दिया। दौलतराव ने आग्रहपूर्वक कहा कि जब तक उसकी सेनाओं को उनका वेतन नहीं मिल जायेगा, वह वहाँ से हट नहीं सकता। उसने नाना से धन माँगा। बाजीराव ने कहा कि वह शिन्दे को धन नहीं दे सकता, क्योंकि उसके पास

इतना भी धन नहीं है कि अपने महल में दिये जला सके, पान खा सके और नित्य भोजन के लिए चावल मोल ले सके। उसने अपने कष्टों के लिए नाना फड़निस को उत्तरदायी ठहराया तथा किसी न किसी प्रकार उनका अन्त कर देने का निश्चय किया। इस पर बाजीराव ने शिन्दे को लिखित अनुमति दे दी कि वह नाना को पकड़ ले, बलपूर्वक उसके धन का हरण कर ले तथा नाना के अनुचरों और पक्षपातियों से उसको जो कुछ मिल सके, वह छीन ले। कहा जाता था कि नाना ने अपना नकद रुपया सुरक्षा की दृष्टि से इन लोगों को दे दिया है।

नाना पकड़ा जाने वाला है, यह सनसनीपूर्ण समाचार शीघ्र ही फैल गया। शिन्दे तथा बाजीराव ने बराबर दबाव डाला कि नाना अपने धन का पता बता दे। नाना ने उत्तर दिया कि जब शिन्दे पूना से चल देगा तथा उत्तर भारत की ओर अपने मार्ग पर बुरहानपुर तक पहुँच जायेगा, तब वह अपनी प्रतिज्ञानुसार उसे धन देगा। दौलतराव ने कहा कि जब तक उसकी सेनाओं का वेतन न चुका दिया जायेगा, वे यहाँ से हटेंगी ही नहीं। उसने मन्त्री से शरीरबन्धक तलब किये, जिससे उसकी अनुपस्थिति में बाजीराव का कोई अपकार न किया जा सके। साथ ही शिन्दे ने कहा कि दादा गदरे, बजाबा शिरोलकर, गोविन्दराव पिंगले तथा अबा शेलुकर तुरन्त उसकी सुरक्षा में रख दिये जायें। इसका अर्थ स्पष्ट वैमनस्य था, जिसके सम्बन्ध में नाना ने अमृत-राव से परामर्श किया। जनसाधारण में मुकेल नाम से विख्यात नेपोलियन के समय का कैप्टिन माइकेल फिलोज उस समय शिन्दे की सेवा में था। उसको भेजा गया कि वह मन्त्री से मिले तथा शिन्दे का अपने राज्य (उत्तर भारत) के लिए प्रस्थान एवं उसकी सेनाओं के लिए शेष वेतन की समस्या का निप-टारा करे। स्वयं नाना को इस सम्पूर्ण परिस्थिति से अत्यन्त घृणा हो गयी। जो जीवन वह लगभग एक वर्ष से व्यतीत कर रहा था, उसमें उसने स्वयं को इस प्रकार अरक्षित पाया कि वह पूना छोड़कर किसी अज्ञात स्थान के लिए चले जाने की तैयारियाँ करने लगा। इस समाचार से शिन्दे बहुत भयभीत हो गया, क्योंकि यदि नाना भाग निकलता तो वह निश्चय ही उसको तथा बाजीराव दोनों को घोर कष्ट में फँसा देने का यथाशक्ति प्रयत्न करता। शिन्दे ने इस संकटकाल में शर्जाराव से परामर्श किया तथा फिलोज की मध्य-स्थता द्वारा, मधुर शब्दों तथा आश्वासनात्मक सन्देशों द्वारा, नाना को असाव-धान बना दिया। नाना को फिलोज की सत्यनिष्ठा के प्रति विशेष आस्था थी, पर इस समय वह शर्जाराव के हाथों का यन्त्र बन गया तथा दोनों ने मिलकर नाना को बन्दी बनाने की योजना का विवरण निश्चित कर लिया। इसके अनुसार स्पष्ट संघर्ष तथा रक्तपात से बचने के लिए नाना को असाव-

धानी के समय पकड़ना निश्चित हुआ। दौलतराव ने नाना को निमन्त्रण भेजा—"आप मेरी पूना से विदाई सम्बन्धी भोज में मेरे साथ शिविर में भोजन करें।" जब इटली निवासी कैप्टिन ने उसको आश्वासन दिया कि इस सहभोज से कोई हानि न होगी तो उसने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। फिलोज ने अपना हाथ बाइबिल पर रखकर नाना के सम्मुख शपथ ग्रहण की कि वह शिन्दे के प्रस्थान तथा आतिथ्य के सदुद्देश्य का जिम्मेवार है। इस सहभोज के लिए १७९७ का ३१ दिसम्बर निश्चित किया गया। प्रसिद्ध मुरारराव के चचेरे भाई तथा नाना के विख्यात मित्र यशवन्तराव घोरपड़े ने शर्जाराव के प्रलोभन में आकर विश्वासघात किया तथा नाना को शिन्दे के शिविर वाले भोज में निर्भयतापूर्वक जाने के लिए तैयार कर लिया। पूना के ब्रिटिश रेजीडेण्ट ने १ जनवरी, १७९८ को गवर्नर जनरल के पास इस आगमन का समाचार इस प्रकार भेजा :

"नाना ने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया तथा लगभग दो हजार अनुचरों को अपने साथ लेकर वह तीसरे पहर शिन्दे के शिविर की ओर चल दिया। शिन्दे ने स्वाभाविक सम्मान सहित प्रवेश द्वार पर उसका स्वागत किया तथा कुछ समय तक साथ-साथ बैठे रहने के बाद वे अन्य कमरे में व्यक्तिगत वार्तालाप के लिए चले गये। यहाँ पर दौलतराव के चार व्यक्ति उपस्थित थे और नाना के साथ दादा गदरे, अबा शेलुकर, बजाबा शिरोलकर, रघोपन्त गोड़बोले तथा घोड़ोपन्त निजसूरे का एक भाई था। कुछ ही देर बाद जब कर्नल फिलोज के पैदल सैनिकों ने सम्मेलन स्थान को घेर लिया तो दौलतराव वहाँ से हट गया। दौलतराव के लगभग २० आदमियों ने सहसा कमरे में प्रवेश किया और नाना तथा उसके अनुचरों को पकड़ लिया। उनके समस्त आभूषण तथा अधिकांश वस्त्र उतार लिये गये। तब शिन्दे के सैनिकों ने नाना के अनुचरों पर आक्रमण आरम्भ किया। उनको लूट लिया, मार डाला, घायल कर दिया और भगा दिया। शिन्दे की सेना की बड़ी-बड़ी टुकड़ियाँ तुरन्त पूना में भेज दी गयीं तथा उन्होंने अपना प्रतिरोध करने वाले लगभग प्रत्येक व्यक्ति को लूट लिया।" समस्त विवरण इस बात पर एकमत हैं कि इस घटना में कर्नल फिलोज का मुख्य हाथ था।[७]

---

७ "नाना के प्रति विश्वासघात के कारण फिलोज को शीघ्र ही पूना से भगा दिया गया। इस समय वह बम्बई में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की रक्षा में रह रहा है।" पूना रेजीडेन्सी कॉरस्पौण्डेण्स, जिल्द ६, पृ० १६६—दिनांक ११ दिसम्बर, १७९८ का गवर्नर जनरल के नाम कर्नल पामर का पत्र।

बाजीराव ने शिन्दे तथा शर्जाराव को अपना साधन बनाकर यह लज्जा-जनक कार्य किया। इसका कारण निस्सन्देह नाना के धन के प्रति उसका लोभ तथा उसके हृदय को व्याकुल करने वाली चिरकालीन प्रतिशोध भावना थी।

मराठा शासन के सक्रिय रंगमंच से नाना के हटाये जाते ही पूना की जनता पर नये कष्ट टूट पड़े। आततायियों का मुख्य उद्देश्य मन्त्री, उसके मित्रों तथा सहकारियों से बलपूर्वक यथासम्भव अधिकाधिक धन एकत्र करना था। पूना के ब्रिटिश रेजीडेण्ट ने अपने उच्च अधिकारी को उन अन्यायों के पूर्ण समाचार भेजे जो पेशवा तथा शिन्दे ने मराठा शासन के नाम से किये थे। कुछ समय तक वे अपने कुकर्मों को किसी न किसी बहाने छिपाने में समर्थ हो गये। परन्तु समस्त जनता को सदा के लिए धोखे में रखना असम्भव था। शीघ्र ही उनके कुकर्म स्पष्ट प्रकट हो गये। नाना की सेवा में करीब चार हजार अरब रक्षक थे जो वीर तथा निष्ठापूर्ण सैनिक माने जाते थे। उन्होंने इस समय यह धमकी दी कि यदि उनका समस्त शेष वेतन अविलम्ब न दिया गया तो वे पेशवा की सत्ता के विरुद्ध विद्रोह कर देंगे। उन्होंने विद्रोहात्मक वृत्ति धारण कर ली थी, इसलिए उनको भगाने के लिए शिन्दे की सेना बुलायी गयी। परन्तु वे आसानी से भगाये नहीं जा सके। उन्होंने नगर को घेर लिया और भयंकर युद्ध के लिए तैयार हो गये। अपने राज-भवन के निकट भयानक रक्तपात के भय से पेशवा बहुत व्याकुल हो गया। उसने अरबों का वेतन शान्तिपूर्वक देकर उनसे अपना पिण्ड छुड़ा लिया। अरबों ने तुरन्त पूना के साहूकारों तथा नागरिकों के यहाँ नौकरी कर ली। ये लोग पेशवा को सम्पूर्ण शासनकाल में निरन्तर पीड़ा देते रहे। जब १८१८ की ग्रीष्मऋतु में मालेगाँव में अंग्रेजों और मराठों के बीच अन्तिम युद्ध हो रहा था, तब उन्होंने अंग्रेजों के विरुद्ध डटकर लड़ाई की।

जब नाना फड़निस के बन्दी बनाये जाने के बाद बाजीराव ने अपने राज-भवन पर नियुक्त शिन्दे के रक्षक दलों को हटा दिया। उनके स्थान पर उसने अपना दल भरती किया। इस दल को हजरत कहा जाता था। इसके कमाण्डर पर उसने अपना कृपापात्र अबा काले नियुक्त किया, जिसको सैनिक कौशल का कुछ भी ज्ञान नहीं था। नाना १७९७ के अन्तिम दिन बन्दी बनाया गया था। वह लगभग तीन मास तक पूना में शिन्दे के शिविर में बन्द रहा। इस समय शर्जाराव तथा उसके नीच अनुचरों ने पूना एवं समीपवर्ती स्थानों की जनता पर वर्णनातीत अत्याचार किये। उन्होंने प्रथम नाना तथा उसके बन्दी साथियों को अपना धन बताने के लिए विवश किया, परन्तु उनसे कुछ भी जानकारी नहीं मिल सकी। नगर में नाना के पक्षपातियों—नारायण

बाबूराव वैद्य, त्रिम्बकराव परचुरे, गंगाधरपन्त भानु, चिन्तोपन्त देशमुख तथा अन्य लोगों—को बहुत पीटा गया और उनका समस्त धन छीन लिया गया। जब नारायण वैद्य के कोड़े लगाये गये और बलपूर्वक धन प्राप्त करने के लिए उसके साथ शारीरिक दुर्व्यवहार किया गया तो उसने पेशवा को १ मार्च, १७९८ को वीरतापूर्वक उत्तर दिया—"आपने मुझको राजभवन में बुलाया है और कई दिनों से रोके हुए हैं। मैं आपसे स्पष्ट पूछना चाहता हूँ—'आप मुझसे धन क्यों माँगते हैं?' यदि मैंने कोई अन्याय किया है तो आप मुझे अवश्य दण्ड दें। आपको धन की आवश्यकता है, यह बात ठीक है। परन्तु यह कोई कारण नहीं है कि आप अपने सेवकों से उनका धन छीन लें। इस स्थिति में मैं आपको कुछ भी नहीं दूँगा। आपको मेरी सम्पत्ति के विषय में भ्रम है। मेरे पास देने के लिए कोई बचत नहीं है। यदि आप चाहते हैं कि मैं ऋण लेकर आपको रुपये दे दूँ तो मैं ऐसा करने से सर्वथा इनकार करता हूँ। मुझको ऋण मिल भी नहीं सकता। यदि इतने पर भी आप मुझको घर न जाने देंगे तो मैं अपने भाग्य के भरोसे रहूँगा। मेरे साथ आप जैसा चाहें वैसा व्यवहार करें। श्रीमन्त का धर्म सदाचारी, दयालु तथा न्यायप्रेमी होने का है। मैं सभी परिणाम भोगने को तैयार हूँ।"

पेशवा परिवार के एक माननीय वृद्ध सेवक अप्पा बलवन्त मेहेण्डेले को जब इसी प्रकार तंग किया गया तो उसने विष खा लिया। १५ अप्रैल, १७९८ को उसका देहान्त हो गया। इस प्रकार वह उन अपमानों से बच गया, जिनकी धमकी उसको दी गयी थी। जैसा ऊपर वर्णन हो चुका है, नाना फड़निस को बन्द करने के साथ ही उसके कुछ सहकारी भी पकड़कर बन्धन में डाल दिये गये थे। दुर्व्यवहारों की धमकियों के कारण वे मुक्त होने के लिए प्रति व्यक्ति कई लाख रुपये देने के लिए विवश हो गये। बाजीराव तथा शर्जाराव ने नाना के बहुसंख्यक मित्रों तथा पक्षपातियों के साथ इसी प्रकार के मार्ग का अनुसरण किया। शर्जाराव ने धन तथा लूट के लिए योजना बनाकर खोज की। वह इस कार्य के लिए नाना के पूना वाले घर में रहने लगा। एक लेखक कहता है—"अपनी पुत्री के विवाह के दसवें दिन से सखाराम घाटगे नाना के मकान में रहने लगा है। वहाँ नाना की दैनिक पूजा के पवित्र कमरे में नित्य बकरे काटे जाते हैं। घाटगे अब नाना के कार्यालय में उसके आसन पर बैठता है। पूना की जनता इस व्यक्ति को यमराज का अवतार मानती है। पेशवा तथा उसके भाई अमृतराव में नहीं बनती। अब सत्ता निकम्मे आदमियों के हाथ में है। शिन्दे ब्राह्मणों को नीचतम व्यक्ति मानता है। ईश्वर जो चाहेगा वह होगा।" इस नीच कृत्य में घाटगे का

साथी एक अन्य दुष्ट-बुद्धि पुरुष बालोजी कुंजर भी था। वह इस अकारण लूट तथा पीड़न में घाटगे का पेशवा द्वारा नियुक्त साथी था।

इस विशाल लूट के बीच १६ फरवरी, १७९८ को दौलतराव तथा बैजाबाई का विवाह अत्यन्त शोभा तथा प्रदर्शन के साथ हुआ। यह प्रदर्शन पूना के इतिहास में अभूतपूर्व था। वधू का पिता साधारण नागरिक से अकस्मात् शिन्दे के मन्त्री के स्थान पर पहुँच गया। अप्रत्यक्ष रूप से मराठा राज्य का एक-मात्र नियन्ता होने के लिए शर्जाराव ने दौलतराव का पूर्ण विश्वास प्राप्त कर लिया। कहा जाता है कि उसने दौलतराव को मदिरा पीने तथा अफीम खाने का अभ्यासी बना दिया। इनके प्रभाव में वह घाटगे की समस्त योजनाओं के प्रति अनुमति दे देता था। उसने यह नीच उद्देश्य अत्यन्त सुविधापूर्वक सिद्ध कर लिया, क्योंकि अपनी पुत्री में उसको अपनी सत्ता का एक और समर्थक प्राप्त हो गया था।

६. शिन्दे महिलाओं द्वारा युद्ध—आनन्द तथा सत्ता का यह एकछत्र उपभोग सहसा शिन्दे महिलाओं की ओर से आरम्भ किये गये युद्ध के प्रभाव से नष्ट हो गया। यह युद्ध १७९७ के अन्त के समीप छिड़ गया। महादजी शिन्दे की तीन विधवाएँ थीं—लक्ष्मीबाई, यमुनाबाई तथा भागीरथीबाई। उन्होंने अपने निर्वाह के लिए पर्याप्त स्वतन्त्र वृत्ति की स्वीकृति माँगी। गोद लिये जाने के पहले दौलतराव ने उनसे इस विषय में लम्बी चौड़ी प्रतिज्ञा की थी, परन्तु अपने आर्थिक कष्टों के कारण वह इसका पालन न कर सका तथा दक्षिण में उसके दीर्घकालीन निवास के कारण ये कष्ट बढ़ते ही गये। इन तीनों महिलाओं को सैनिक तथा प्रशासन सम्बन्धी कार्यों का अनुभव था। उनमें से भागीरथीबाई दौलताराव की हितैषिणी कही जाती थी। अन्य दो जो उज्जैन में रहती थीं, अपने कष्टों के कारण उससे युद्ध करने पर विवश हो गयीं। दौलतराव की सेवा में शक्तिशाली सारस्वत समुदाय ने उनका समर्थन किया। उत्साहशील लक्ष्मीबाई तथा यमुनाबाई ने चार वर्ष तक लगातार गृहयुद्ध का संचालन किया। इस गृहयुद्ध का क्षेत्र दक्षिण में पूना और कोल्हापुर से उत्तर में उज्जैन तथा बुन्देलखण्ड तक फैला हुआ था।

अब हम १७९८ की ग्रीष्मऋतु में पहुँचते हैं जो भारतीय इतिहास में अनेक अशुभ लक्षणों से परिपूर्ण है। सर जान शोर ने ६ अप्रैल को अवकाश ग्रहण कर लिया तथा भारत के भावी भाग्य निर्माता लार्ड वेलेजली ने मुख्य पुरुष के रूप में कलकत्ता में १७ मई को कम्पनी के शासन का भार सँभाल लिया। २६ अप्रैल को वह मद्रास में उतरा था। २५ मार्च को निजामअली के फ्रेंच सेनानायक रेमाण्ड की मृत्यु हो गयी। इसी कारण हैदराबाद के दरबार में

ब्रिटिश सत्ता का सुविधापूर्वक प्रवेश हो गया। इन विदेशी परिवर्तनों की ओर से बाजीराव तथा शिन्दे की आँखें पूर्णतः बन्द थीं। इसी प्रकार उन्होंने शिन्दे महिलाओं की शिकायतों पर कोई ध्यान नहीं दिया। विधवाओं का पक्ष न्याय-संगत था, इसलिए उन्हें निष्पक्ष पर्यवेक्षकों का सार्वजनिक समर्थन प्राप्त था। उन महिलाओं के पक्ष में अबा चिटनिस, नारायणराव बख्शी (जीवबा का पुत्र) तथा शिन्दे के अधिकांश सेनानियों ने सक्रिय रुचि ली, क्योंकि महादजी के समय से उन्होंने उनकी सेवा और सम्मान किया था।

इन महिलाओं ने भारी अनुचर दल सहित उत्तर से पूना की ओर प्रयाण किया। उनका निश्चय दौलतराव से अपने दुखों के प्रति न्याय प्राप्त करना था। इस आकस्मिक विस्फोट का अनेक असन्तुष्ट उत्साहशील व्यक्तियों ने स्वागत किया। मार्च के अन्तिम सप्ताह में नारायणराव बख्शी, देवजी जाउली, रायाजी और रामजी पाटिल तथा अनेक अन्य शक्तियों पर महिलाओं के पक्षपाती होने का सन्देह किया गया। अतः शर्जाराव के सुझाव पर वे या तो पकड़कर अहमदनगर में बन्द कर दिये गये, या अपमान सहित शिविर से निकाल दिये गये। यह कल्पना की गयी थी कि शिन्दे के शिविर में नाना फड़निस की उपस्थिति से महिलाओं के विद्रोह को प्रोत्साहन मिला है। अतः वह अकस्मात् ६ अप्रैल, १७९८ को अहमदनगर के गढ़ में पहुँचा दिया गया। इसी प्रकार बालोबा तात्या को भी वहीं पहुँचा दिया गया। जब महिलाएँ पूना की ओर बढ़ीं तो शर्जाराव घाटगे ने उनसे मिलने और जम्बगाँव ले जाने का प्रस्ताव किया। परन्तु उन्होंने उसका मुँह देखने से ही इनकार कर दिया। वे उसको अपने दर्शनों के सर्वथा अयोग्य अत्यन्त पापी तथा दुष्ट जीवित पुरुष मानती थीं। तब दौलतराव स्वयं उनसे मिला तथा बुरहानपुर में उनके निवास का प्रबन्ध करके उनकी अशान्त भावनाओं को शान्त करने का प्रयत्न किया। परन्तु उन्होंने बलपूर्वक छीने गये अपने समस्त आभूषण तथा सम्पत्ति को पुनः वापस किये बिना हटने से इनकार कर दिया। इस पर शर्जाराव ने उन पर बल प्रयोग का उपाय किया। बुरहानपुर को उनकी यात्रा का प्रबन्ध किया गया और १५ मई को इसके लिए पालकियाँ लायी गयीं। परन्तु महिलाएँ बाहर आना ही नहीं चाहती थीं, क्योंकि उनको विश्वास था कि बुरहानपुर भेजने के बहाने से वे अहमदनगर पहुँचाकर बन्धन में डाल दी जायेंगी। इस पर शर्जाराव ने उनके कमरों में घुसकर उनको बहुत-से कोड़े लगाये और बाहर घसीट लाया।

शिन्दे की सेना का मुजफ्फरखाँ नामक एक अन्य सैनिक सरदार महिलाओं के दल में सम्मिलित हो गया तथा पूना के समीप विशाल गृहयुद्ध आरम्भ हो

गया। महिलाएँ तथा उनका दल कोड़ेगाँव से प्रयाण करता हुआ पूना के निकट पहुँच गया। उनकी माँग थी कि शर्जाराव का समर्पण कर दिया जाये, क्योंकि वही समस्त दुखों का कारण है। इस समय अमृतराव ने अपने भाई से अति दुखित होकर घृणापूर्वक उसका परित्याग कर दिया तथा महिलाओं का समर्थन किया। नाना फड़निस के नजरबन्द होने के बाद उसे पेशवा का दीवान बनाने की प्रतिज्ञा की गयी थी, पर उसे अभी तक यह पद नहीं दिया गया था। अपने पक्ष की इस प्रकार की जोरदार वृद्धि प्राप्त करके महिलाओं की सेना लक्ष्मीबाई के निर्देश में उग्रता से आगे बढ़ी। लक्ष्मीबाई विशालकाय हाथी पर सवार होकर सेना का नेतृत्व कर रही थी। ८ जून को अर्द्धरात्रि के समय उन्होंने शिन्दे के शिविर पर आक्रमण किया तथा अग्नि-वर्षा द्वारा उसकी बहुत हानि कर डाली। दौलतराव इस प्रकार भयभीत हो गया कि उसने महिलाओं के साथ समझौते के लिए मध्यस्थों के रूप में रायाजी तथा रामजी पाटिल के साथ अबा चिटनिस को भेजा और कहा कि वह उनकी सब माँगें स्वीकार करने के लिए तैयार है। वास्तव में यह उसकी केवल चाल थी, जिसका परामर्श शर्जाराव ने दिया था। वह चाहता था कि समय मिल जाये और उनको पकड़ने के उपाय संगठित किये जा सकें। व्यर्थ के शान्ति प्रस्तावों में कुछ दिन बीत गये। महिलाएँ शर्जाराव के समर्पण की माँग करती रहीं और दौलतराव इससे इनकार करता रहा। तब महिलाएँ अपना शिविर खड़की में ले आयीं। यह करके वे असावधान हो गयी थीं तभी दौलतराव ने अपने पूरे बल से सहसा उन पर आक्रमण कर दिया। यह आक्रमण २५ जून को किया गया—विशेषकर अमृतराव के शिविर पर, जब उसके सैनिक मुहर्रम के ताजियों को जलमग्न करने के बाद वापस हो रहे थे। अमृतराव पूर्णतः परास्त हो गया। उसका समस्त शिविर, सज्जा तथा व्यक्तिगत सम्पत्ति नष्ट हो गयी। उसकी पत्नी तथा पुत्र समीप के गाँव में शरण लेने के लिए भाग गये। वह स्वयं दूर तक पीछे हट गया। २७ जून को उसका अपने परिवार से मेल हुआ। इसके बाद शिन्दे महिलाओं ने भाग-दौड़ के युद्ध का आश्रय लिया। दौलतराव के प्रशिक्षित पैदल इस युद्ध में उनका सामना नहीं कर पाये। इस प्रकार खड़की की विजय से शिन्दे को किसी प्रकार का लाभ नहीं हुआ। इस दुर्दशा में वह बाजीराव के पास गया तथा अत्यन्त दीनभाव से प्रार्थना की कि वह दोनों के स्वामी की हैसियत से इस कलह में मध्यस्थ का कार्य करके युद्ध बन्द करा दे। बाजीराव ने विट्ठलवाड़ी में महिलाओं से मिलने का प्रबन्ध किया, परन्तु वे अपनी इस माँग से टस से मस न हुई कि शर्जाराव तथा उसके पाँच परामर्शदाता उन्हें समर्पित कर दिये जायें। इसका पालन नहीं हो सका,

इसलिए वार्ता असफल हो गयी। अब दौलतराव तथा बाजीराव सब प्रकार असहाय हो गये। उनके पास केवल यही उपाय रह गया कि वे नाना फड़निस से पूना वापस आकर, प्रशासन का भार ग्रहण करने और महिलाओं से सन्धि करके पुनः शान्ति स्थापित करने की प्रार्थना करें। १५ जुलाई को नाना अहमदनगर से मुक्त करके पूना लाया गया। बाजीराव ने इस समय मोरोबा फड़निस को भी मुक्त कर दिया जो १७७८ से नजरबन्द था और इस समय रतनगढ़ (त्रिम्बकेश्वर के समीप) में था। उसे इस विचार से जुन्नार लाया गया कि यदि नाना फड़निस युद्ध बन्द करने में सफल नहीं होगा तो उसे दीवान बनाया जायगा। इस बीच में महिलाओं ने दौलतराव के यूरोपीय अधिकारियों को भी निष्ठाहीन करके अपनी ओर मिला लिया।

यह अच्छी तरह मालूम था कि महिलाओं के कष्ट का मुख्य कारण घाटगे है। यह बात दौलतराव की समझ में भी पूरी तरह आ गयी थी। अब उसको अपने यूरोपीय अधिकारियों की निष्ठा पर सन्देह हुआ, क्योंकि नाना फड़निस स्वतन्त्र होने से किसी भी समय उससे अपना बदला ले सकता था। इस विचित्र स्थिति में दौलतराव ने घाटगे को अपने पास से हटा देने का निश्चय किया। इस काम के लिए उपयुक्त बहाना भी तुरन्त मिल गया। माइकेल फिलोज के पुत्र के अधीन सेना के कुछ व्यक्तियों को घाटगे के कार्यकर्ताओं ने घायल कर दिया था। नवयुवक फिलोज बिगड़ गया और उसने घाटगे को उसके दल के चार अन्य व्यक्तियों सहित पकड़कर मजबूत रस्सों से बाँध दिया। उन्हें बन्दूकों के कुन्दों से पीटते हुए सेना ने बाजार में होकर निकाला और रात भर एक गन्दे कमरे में बन्द रखा। अगले दिन वे बाहर लाये गये। उनका शिविर लूट लिया गया और घाटगे घायल कर दिया गया। वह तुरन्त अहमदनगर के गढ़ में बन्द कर दिया गया।

उत्तर भारत में भी बहुत-से शक्तिशाली व्यक्ति महिलाओं से सहानुभूति रखते थे। यहाँ लकवा लाड़ ने उनका पक्ष अपना लिया और दौलतराव के कुप्रबन्ध के विरुद्ध खुला विद्रोह आरम्भ कर दिया। लकवा ने महिलाओं को आर्थिक सहायता भेजी तथा समाचार प्राप्त हुए कि वह महिलाओं की सेना का नेतृत्व करने के लिए दक्षिण आ रहा है। महिलाओं के आह्वान पर निजामअली और नागपुर के भोंसले परिवारों के दल भी अपने निवास-स्थानों से चल पड़े। इस निकटवर्ती संकट से बाजीराव अत्यन्त भयभीत हो गया। उसने पूना के नागरिकों को आज्ञा दी कि वे अपने-अपने गाँवों को भागकर अपनी रक्षा करें। इस समय वह नाना से नित्य प्रशासन का उत्तरदायित्व ग्रहण करने की प्रार्थना करता रहा, परन्तु नाना ने तब तक शासनसूत्र

सँभालने से दृढ़तापूर्वक इनकार कर दिया, जब तक निजामअली और ब्रिटिश सरकार सहमत होकर उसको यह आश्वासन न दे दें कि उसके व्यक्तित्व तथा गौरव का किसी प्रकार भी अपमान नहीं किया जायेगा। स्पष्ट ही इस प्रकार आश्वासन मिलना अशक्य था। एक विरोधी को कम करने के लिए नाना के सुझाव पर बाजीराव ने अपने भाई को ७ लाख वार्षिक आय की जागीर देकर पूना से विदा कर दिया। १ अक्तूबर, १७९८ को यह प्रस्ताव कार्यान्वित हो गया। इस समय से अमृतराव जुन्नार में रहने लगा तथा व्यावहारिक रूप से बाजीराव के कार्यों से अलग हो गया।

इस समय बाजीराव के राज्यारोहण काल को दो वर्ष व्यतीत हो चुके थे। अब तक प्रशासन के उचित तथा निर्विघ्न रूप से चलने की कोई आशा नहीं बँध पायी थी। इसके विपरीत, प्रशासन प्रत्येक दिशा में विकृत हो गया था। देश का नाश करने वाले दोनों प्रमत्त सरदारों की लूटमार, पीड़न, युद्धों और अशान्ति से जनता ऊब गयी थी। परिणामस्वरूप यह विश्वास फैल गया कि बाजीराव तथा शिन्दे शासन के लिए सर्वथा अयोग्य हैं। मराठा राज्य की रक्षा के लिए उस समय सबसे बड़ी आवश्यकता शासन में परिवर्तन किये जाने की थी। योग्य व्यक्तियों की कमी न थी, परन्तु बाजीराव तथा शिन्दे ने किसी संयुक्त प्रयास की अनुमति नहीं दी। उन्होंने स्वयं भी योग्य व्यक्तियों को कोई अधिकार नहीं दिया। इस खेदजनक ह्रास को नाना फड़निस असहाय होकर देखता रहा, क्योंकि उसमें वीरता तथा साहस का स्वाभाविक अभाव था। उसका शरीर और मन भी उसके वर्तमान कष्टों के कारण प्रत्यक्ष रूप से क्षीण हो गया था। सुयोग्य नेता न होने से दोनों नवयुवकों ने अपनी दुष्ट प्रवृत्तियों को पूर्णत: तृप्त किया तथा राज्य को सर्वनाश के निकट पहुँचा दिया। प्रत्येक दिन स्थिति बिगड़ती ही गयी। विश्वास तथा सच्चाई का सर्वथा लोप हो गया था। अंग्रेजों ने पेशवा पर दबाव डाला कि वह उस युद्ध में भाग ले जो वे टीपू सुलतान से लड़ना चाहते थे। बढ़ते हुए कष्टों के बीच सर्वथा विमूढ़ होकर शिन्दे ने बाजीराव से आग्रह किया कि वह नाना को वापस बुला ले तथा उसकी इच्छानुसार शर्तों पर प्रशासन उसके सुपुर्द कर दे। इस परामर्श के अनुसार १४ नवम्बर, १७९८ को लगभग अर्द्धरात्रि में केवल एक नौकर अपने साथ लेकर बाजीराव सहसा नाना के सम्मुख प्रकट हुआ। उसको साष्टांग प्रणाम करके और अपनी आँखों में आँसू भरकर याचना की कि वह राज्य का भार सँभाल ले। उसके शब्द इस प्रकार थे—"मैं निर्दोष तथा असहाय हूँ। आप मेरे पिता के समान हैं। मुझको बचायें

तथा इस ब्राह्मण राज्य की रक्षा करें।" चतुर पेशवा के इस नाटकीय कर्म पर नाना पिघल गया तथा उसने प्रशासन का कार्य पुनः सँभाल लिया।

नाना ने सर्वप्रथम इस बात पर बल दिया कि शिन्दे को उत्तर भारत जाने पर विवश किया जाये। १७ जनवरी, १७९९ को बाजीराव ने उसे विधिपूर्वक आज्ञा दे दी। परन्तु उसके पूना छोड़ने के पहले ही नाना से भय के कारण बाजीराव अपनी जीवन-रक्षा के लिए काँपने लगा। उसने शिन्दे से प्रार्थना की कि उसको मन्त्री, बालोबा और परशुराम भाऊ सदृश व्यक्तियों की दया पर छोड़कर वह पूना से न जाये। बाजीराव ने आग्रह-पूर्वक कहा कि ये व्यक्ति किसी क्षण अमृतराव को बुलाकर मुझको राज्यच्युत कर देंगे। इस पर शिन्दे ने अपना प्रयाण पुनः स्थगित कर दिया तो कोई आश्चर्य नहीं था।

दबाव डालने वाली बाह्य परिस्थितियाँ पेशवा के विरुद्ध यथाशीघ्र शक्ति-संचय कर रही थीं। परन्तु विकासों का वर्णन करने के पहले हमें शिन्दे महिलाओं द्वारा उपस्थित इस युद्धकाण्ड को समाप्त कर देना चाहिए। वैसे यह भावी घटनाओं के साथ भी सम्बन्ध रखता है।

इस समय तक महिलाओं को अपने निर्वाह के लिए कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ था। वे दौलतराव के किसी मौखिक या लिखित आश्वासन पर तब तक विश्वास नहीं करना चाहती थीं, जब तक बालोबा तात्या तथा अबाजी रघुनाथ सदृश शिन्दे के प्राचीन सेवक उनको प्रत्यक्ष आश्वासन नहीं दे देते। शान्ति प्रस्ताव असफल हो जाने पर दोनों महिलाओं ने सतारा तथा कोल्हापुर के राजाओं के साथ सहयोग करके १७९९ के आरम्भ में दक्षिण की ओर प्रयाण कर दिया। इस समय नारायणराव बख्शी तथा देवजी गउली महिलाओं के साथ थे। उनके दो अनुचर यशवन्तराव शिवाजी तथा बालाजी कृष्ण ने पेशवा के नासिक तथा खानदेश के जिलों में स्वतन्त्र रूप से लूटमार आरम्भ कर दी। दक्षिण को जाते हुए महिलाओं ने सांगोला, कासे गाँव तथा अन्य स्थानों को लूट लिया। वहाँ के निर्दोष निवासियों से जो कुछ मिल सका, वह छीन लिया। उन्होंने अपने कार्यकर्ता पहले ही कोल्हापुर भेजकर छत्रपति से मिलने का प्रबन्ध कर लिया था। छत्रपति उनसे कृष्णा नदी के समीप मिला तथा उनके व्यय के लिए कुछ धन भी दिया। दो महीने तक वे तथा छत्रपति परस्पर वार्तालाप करते रहे। उन्होंने पेशवा तथा शिन्दे को उनकी सत्ता से हटाने की योजनाएँ बना लीं। इस अवसर पर महाराजा के एक अवैध पुत्र का विवाह महादजी की एक पुत्री के साथ कोल्हापुर के समीप अकीवट के स्थान पर १४ मई को हुआ। इस प्रकार उनकी मैत्री पुष्ट हो गयी। अब महिलाओं

ने शिन्दे को इस प्रकार धमकियाँ दीं कि उसने विमूढ़ होकर बालोबा तात्या को अहमदनगर में अपने निरोध से शीघ्र मुक्त कर दिया तथा उसको महिलाओं के साथ सन्धि करने के लिए भेजा। जब वे पूना की ओर वापस आ रही थीं, तब बालोबा तथा अबा चिटनिस उनसे मिलने के लिए आगे बढ़े। सन्धि स्थापित हो गयी और उसके पालन के लिए बालोबा तथा अबा उत्तरदायी बने। अगस्त, १७९९ के अन्त के समीप महिलाओं के विरुद्ध दौलतराव का युद्ध अस्थायी रूप से बन्द हो गया। किन्तु कुछ दिनों बाद ही १४ जनवरी, १८०० को शर्जाराव की सेवा में रहने वाले एक हत्यारे ने शिन्दे महिला यमुनाबाई के सोते समय अकस्मात् छुरा भोंक दिया। इससे महिलाएँ अति रुष्ट होकर उत्तर भारत को चल पड़ीं और सौभाग्यवश दक्षिण में समाप्त अपना युद्ध पुनः आरम्भ कर दिया।

७. **छत्रपति द्वारा स्वतन्त्र होने का प्रयास**—अशान्ति तथा उपद्रवों के जघन्य विवरणों को पार करने में बहुत समय नष्ट हो जायेगा। वे स्वयं तुच्छ होते हुए, इस बात के दुखद उदाहरण हैं कि मराठा राज्य का भवन किस प्रकार विचलित होने लगा था। शिन्दे महिलाओं के विरुद्ध युद्ध के समान सतारा तथा कोल्हापुर के छत्रपतियों से भी बाजीराव को युद्ध करने पड़े। इन दोनों युद्धों के परिणाम न्यूनाधिक दुखदायी हुए। इनसे शासन के सम्बन्ध में बाजीराव की अयोग्यता और भी अधिक स्पष्ट हो गयी। दोनों छत्रपतियों की इच्छा बाजीराव की दासता से मुक्त होने की थी। वास्तव में वे ही मराठा राज्य के अधिपति थे और पेशवा उनका सेवक था। फिर लेखकों द्वारा उन्हें विद्रोही कहना विचित्र बात है। पेशवा माधवराव प्रथम उदारतापूर्वक शिवाजी के वंशज राजपरिवार के गौरव की रक्षा करता था। नाना फड़निस के शासन-काल में सतारा का छत्रपति अत्यन्त दीनावस्था को प्राप्त हो गया था तथा पिछले तीन वर्षों में उसके क्लेशों की सीमा नहीं रही थी, क्योंकि पूना प्रशासन में कोई स्थिरता शेष नहीं रह गयी थी। कुछ समय तक नाना अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए आशा दिलाता रहा कि वह छत्रपति को उसी प्राचीन आसन पर पुनः स्थापित कर देगा जो शाहू के समय में था। परन्तु यह आशा सफल न हुई। महाराजा शाहू द्वितीय का छत्रसिंह या चतरसिंह नाम का छोटा भाई उत्साहशील, महत्त्वाकांक्षी और योग्य व्यक्ति था। इस नवयुवक का उत्थान-पतनपूर्ण जीवन प्राचीनकाल के क्षत्रिय परिवारों की अधोगति का ज्वलन्त उदाहरण था। इस समय छत्रपति का केवल यह कार्य रह गया था कि पूना से विशेष आज्ञा पर किसी व्यक्ति को पेशवा पद के वस्त्र दे दे। उसको यह कार्य कभी नाना, कभी बाजीराव, कभी शिन्दे अथवा परशुराम भाऊ की इच्छानुसार

करना पड़ता था—वस्त्र प्राप्त करने वाला व्यक्ति राज्य का शासन करने के योग्य हो या न हो।

पूना में शीघ्रता से होने वाले नवीन परिवर्तनों से चतरसिंह तथा सतारा दरबार की संवेदनशीलता इस प्रकार उग्र हो गयी कि उन्होने उच्छृंखलताओं का दमन करने का निश्चय कर लिया। शिन्दे महिलाओं ने उन्हें उत्तेजित किया। दौलतराव तथा पेशवा के विरुद्ध उनका युद्ध दुष्ट शासन में स्वस्थ क्रान्ति उत्पन्न करने के लिए समस्त विचारशील मनुष्यों के लिए स्पष्ट आह्वान था। सतारा का चतरसिंह कोल्हापुर गया और उसने राजनीतिक परिवर्तन लाने के लिए सम्मिलित प्रयास के विषय में वहाँ के महाराजा का सहयोग प्राप्त कर लिया। शिन्दे द्वारा नाना फड़निस को बन्धन में डालने के बाद बाजीराव ने सतारा के छत्रपति को नाना के कार्यकर्ताओं का दमन करने की उत्तेजना दी थी। छत्रपति को तत्काल कार्य करने के लिए यह कारण पर्याप्त था। इस आह्वान का राजा शाहू तथा उसके भाई ने तत्परता से स्वागत किया। उन्होंने तुरन्त कुछ सैनिक एकत्र करके नगर में पेशवा के प्रबन्धक आप्टे तथा अभयंकर के मकानों पर आक्रमण कर दिया। वे शीघ्र परास्त करके बन्धन में डाल दिये गये (मार्च, १७९८)। इस प्रकार छत्रपति अपने गढ़ तथा नीचे सतारा के नगर में स्वतन्त्र हो गया। छत्रपति की इस सफलता से भयभीत होकर बाजीराव ने माधवराव रस्ते को छत्रपति का दमन करके नगर और गढ़ पर अधिकार करने के लिए भेजा। रस्ते अप्रैल में सतारा पहुँचा, परन्तु चतरसिंह के अनुचर विद्रोहियों पर वह कोई प्रभाव न डाल सका। वे बहुत-सी सेना लेकर १६ जून, १७९८ को गढ़ से नगर में उतर आये और रस्ते को कई मील पीछे धकेल दिया। इस पराजय से बाजीराव अत्यन्त भयभीत हो गया। अपनी कोई सेना न होने से उसके सम्मुख इस समय केवल माण्डवगन में बन्दी परशुराम भाऊ का आश्रय ग्रहण करने के अतिरिक्त दूसरा कोई चारा नहीं रह गया। बाजीराव को उससे प्रार्थना करनी पड़ी कि वह सतारा जाकर शासन को पुनः स्थापित करे। बहुत अनिच्छा होने पर भी बाजीराव ने भाऊ को मुक्त कर दिया। भाऊ तुरन्त आगे बढ़कर रस्ते के साथ हो गया। ४ अगस्त को चतरसिंह परास्त कर दिया तथा नगर और गढ़ पर अधिकार कर लिया गया। चतरसिंह अपनी प्राणरक्षा के लिए कोल्हापुर भाग गया। इस संकटपूर्ण समय में कोल्हापुर का दल सतारा को यथासम्भव सहायता देने में असफल रहा, अन्यथा चतरसिंह के लिए पेशवा की सेनाओं के विरुद्ध आक्रमणात्मक युद्ध करने का प्रत्येक अवसर था। इस प्रकार सतारा के छत्रपति का पुनः स्वाधीनता प्राप्त करने का प्रयत्न असफल हो गया।

परन्तु कोल्हापुर के छत्रपति शिवाजी की समस्या ने भिन्न रूप धारण कर लिया, क्योंकि इसमें उसके आजीवन विरोधी वयोवृद्ध परशुराम भाऊ का दुखद अन्त हो गया। इस समय कोल्हापुर में रत्नाकर पन्त राजदान नाम का एक चतुर साहसी ब्राह्मण अधिकारी था। उसने राज्य की शक्ति संगठित करके, थोड़े-से समय में दक्षिणी क्षेत्र में तुंगभद्रा नदी तक पेशवा और पटवर्धनों के प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। इस परिणाम के लिए स्वयं नाना फड़निस कुछ अंश तक उत्तरदायी था। १७९६ की शरदऋतु में जब नाना महाद के स्थान पर क्लेशपूर्ण स्थिति में था तथा अपने आजीवन मित्र परशुराम भाऊ से बदला लेने को व्याकुल था, तब इसने कोल्हापुर के छत्रपति को पूना की परिषद् की शक्ति का दमन करने के लिए प्रोत्साहित किया। इस कार्य के लिए उसने अपने पास से धन भी दिया। इसके अतिरिक्त नाना ने कोल्हापुर के राजा से गम्भीर प्रतिज्ञा की कि यदि पटवर्धन लोग उस पर आक्रमण करेंगे, तो वह उसकी रक्षा के लिए अपनी समस्त शक्ति का उपयोग करेगा। नाना की इस अवसरवादिता से छत्रपति तथा उसके चतुर मन्त्री रत्नाकर ने पूर्ण लाभ उठाया और पूना को हानि पहुँचाकर अपनी शक्ति बढ़ा ली। इस प्रकार परिस्थिति भयानक हो गयी। नाना ने परशुराम भाऊ को कोल्हापुर के विरुद्ध युद्ध न करने के लिए तैयार करने का प्रयत्न किया। पटवर्धन सरदार इस शक्तिहीन स्थिति को कैसे स्वीकार कर सकते थे, क्योंकि वंशपरम्परागत प्रयास तथा रक्त और धन के बलिदान द्वारा निर्मित उनके अस्तित्व को ही भय था। परशुराम भाऊ तथा उसके विशाल परिवार के व्यक्ति आत्मरक्षा में कोल्हापुर के विरुद्ध अस्त्र ग्रहण करने के लिए विवश हो गये। परशुराम ने तासगाँव में अपना महल बनाया था तथा अपने परिवार के स्थायी निवास स्थान के रूप में इसको वर्षों तक सावधानी तथा परिश्रम से सजाया था। छत्रपति ने उसके समस्त भवनों तथा नगर को भस्म कर दिया। इससे भाऊ का धैर्य समाप्त हो गया। इस अन्याय का बदला लेने का निश्चय करके उसने उत्सुकतापूर्वक प्रस्थान किया। इस समय शिन्दे महिलाओं ने कोल्हापुर के राजा के साथ सहयोग कर लिया था, इसलिए वीर चतरसिंह ने उनके आक्रमण में अपनी सहायता दी। १७९९ में कई महीनों तक रक्त रंजित युद्ध होता रहा।

परशुराम भाऊ के चार वीर पुत्र थे, जिनके सहयोग से उसने विशाल अभियान का संगठन किया तथा १७९८ के अन्त के समीप कोल्हापुर के प्रदेश पर आक्रमण कर दिया। आगामी वर्ष भर घोर संघर्ष होता रहा। इसके विवरणों के पूर्ण वर्णन की आवश्यकता नहीं है। परशुराम भाऊ ने कोल्हापुर के दक्षिण में करीब ३० मील पर निपानी के समीप पट्टन कुड़ी नामक स्थान

पर अपना शिविर लगाया। इस पर १६ सितम्बर, १७९९ को छत्रपति ने सहसा आक्रमण कर दिया और परशुराम भाऊ असावधान होने के कारण अपनी प्राणरक्षा के लिए लड़ता हुआ मारा गया। उसका शव छत्रपति के सम्मुख लाया गया। इस सफलता पर छत्रपति इतना अधिक प्रसन्न हुआ कि बदले के आवेश में शव का अपमान कर बैठा तथा उसका अन्त्येष्टि संस्कार नहीं होने दिया। परन्तु भाऊ के पुत्र—विशेषकर उसका ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्र पन्त—सर्वथा समर्थ थे। उन्होंने निर्भयतापूर्वक वीर युद्ध किया और कोल्हापुर को घेरकर छत्रपति को कठोर यातनाएँ दीं। शिन्दे तथा बाजीराव दोनों को आत्मरक्षा के निमित्त छत्रपति का दमन करना आवश्यक प्रतीत हुआ, क्योंकि वह शिन्दे महिलाओं से मिला हुआ था। अतः शिन्दे ने पटवर्धनों की सहायतार्थ कैप्टिन ब्राउनरिग के अधीन अपना शक्तिशाली तोपखाना पूना से भेजा। इस प्रकार १८०० की ग्रीष्मऋतु में भी यह युद्ध चलता रहा। इस समय शर्जाराव घाटगे को सत्ता पुनः प्राप्त हो गयी थी। उसने पटवर्धनों को मिलने वाली शिन्दे की सहायता बन्द कर दी तथा ब्राउनरिग को पूना वापस बुला लिया। ३० अप्रैल को रामचन्द्र पन्त ने कोल्हापुर का घेरा त्याग दिया और जामखिण्डी को चला गया। वहाँ पर उसके वंशज बहुत दिनों तक शासन करते रहे। यह द्वितीय युद्ध मराठा राज्य को व्यस्त करने वाले गृहयुद्ध का सबल प्रतीक है।

अध्याय १२

तिथिक्रम

१२ फरवरी, १७४२	नाना फड़निस का जन्म ।
२६ फरवरी, १७९६	निजामअली को पक्षाघात ।
अन्त १७९६	दि बायने का शिन्दे की सेवा से अवकाश ग्रहण—पेरों उसके स्थान पर ।
फरवरी, १७९७	आर्थर वेलेजली का भारत में आगमन ।
४ अक्तूबर, १७९७	रिचर्ड वेलेजली गवर्नर जनरल नियुक्त ।
७ नवम्बर, १७९७	रिचर्ड वेलेजली का भारत को प्रस्थान ।
२५ मार्च, १७९८	रेमाण्ड की मृत्यु ।
२६ अप्रैल, १७९८	रिचर्ड वेलेजली का मद्रास पहुँचना ।
२६ अप्रैल, १७९८	टीपू के लिए फ्रेंच सहायता का आना ।
१ सितम्बर, १७९८	निजामअली के फ्रेंच अधिकारियों का निष्कासन ।
२६ अप्रैल, १७९९	बालोबा तात्या का मुक्त होना ।
४ मई, १७९९	टीपू का वध, आर्थर वेलेजली का मैसूर पर अधिकार, यशवन्तराव होल्कर का नागपुर को पलायन ।
१३ मार्च, १८००	नाना फड़निस की मृत्यु ।
३१ मई, १८००	शिन्दे द्वारा अपने अधिकारियों का वध ।
८ जुलाई, १८००	नारायण बख्शी का वध ।
८ जुलाई, १८००	यशवन्तराव होल्कर द्वारा अहल्याबाई के धन पर अधिकार तथा उज्जैन की लूट ।
१ नवम्बर, १८००	यशवन्तराव द्वारा उज्जैन के समीप शिन्दे महिलाओं पर धावा ।
दिसम्बर, १८००	दौलतराव का पूना से उत्तर को प्रयाण ।
जून-सितम्बर, १८००	आर्थर वेलेजली द्वारा ढोंडिया बाघ का पीछा ।
३० जून, १८००	ढोंडिया का गोखले पर सहसा आक्रमण ।
१० सितम्बर, १८००	बेलारी के समीप ढोंडिया का वध ।
आरम्भ, १८०१	बिठोजी होल्कर द्वारा पेशवा के प्रदेश पर धावा ।
अप्रैल, १८०१	बापू गोखले का बिठोजी को पकड़ लेना ।
१६ अप्रैल, १८०१	बिठोजी होल्कर का वध ।

मई-अक्तूबर, १८०१	यशवन्तराव तथा दौलतराव के बीच नर्मदा के समीप रण।
मई-अक्तूबर, १८०१	पेरों द्वारा झांसी के समीप महादजी की विधवाएँ परास्त।
७ दिसम्बर, १८०१	पामर द्वारा पूना में क्लोज को कार्यभार दिया जाना।
फरवरी, १८०२	होल्कर थलनेर में; पाराशर दादाजी पूना में।
७ फरवरी, १८०२	घावों के कारण लकबा लाड़ की मृत्यु।
अप्रैल, १८०२	यशवन्तराव का पूना की ओर आगमन।
२५ अक्तूबर, १८०२	यशवन्तराव द्वारा पूना में पेशवा परास्त, उसका सुरक्षार्थ बसई को पलायन।
६ अगस्त, १८०३	मुशीरुल्मुल्क की मृत्यु।
१८२०-२५	नकली यशोदाबाई पेशवा का उत्तर में प्रकट होना।

अध्याय १२

संकट की ओर

[१७९८-१८०१]

१. भारत में महान शासक का आगमन
२. वेलेजली की प्रथम सफलता।
३. नाना फड़निस की मृत्यु तथा उसका चरित्र।
४. ढोंडिया बाघ का विद्रोह।
५. यशवन्तराव होल्कर का उदय।
६. विठोजी होल्कर का वध।
७. यशवन्तराव होल्कर रक्षक की स्थिति में।
८. यशवन्तराव का दक्षिण को प्रस्थान।
९. बाजीराव पूना में परास्त

१. भारत में महान शासक का आगमन—१८वीं शताब्दी के अन्तिम दशक में भारत में अराजकता तथा अव्यवस्था का दृढ़तापूर्वक दमन करने वाली कोई केन्द्रीय शक्ति नहीं थी। इसलिए समस्त देश में गृहयुद्ध तथा अव्यवस्था न्यूनाधिक उग्रता सहित व्याप्त रहे। इन संकटकाल में भारतीय रंगमंच पर रिचर्ड वेलेजली का आगमन हुआ। वह अपनी व्यापक दृष्टि तथा प्रेरक शक्ति में समकालीन व्यक्तियों से बहुत आगे बढ़ा हुआ था। उसने ब्रिटिश भारतीय कूटनीति एवं युद्ध में तुरन्त नवीन जीवन-शक्ति फूँक दी तथा अपने सात वर्ष के शासनकाल में भारतीय इतिहास की गतिविधि सर्वथा बदल दी। ४ अक्तूबर, १७९७ को इंगलैण्ड में वेलेजली की नियुक्ति गवर्नर जनरल के पद पर हुई। सात नवम्बर को वह अपनी समुद्रयात्रा पर चल दिया। गुड होप अन्तरीप पर मेजर डब्ल्यू० कर्क पैट्रिक से उसकी भेंट हुई। यह भारतीय कूटनीतिक उस समय अपने देश को वापस जा रहा था। उसके साथ वेलेजली का भारतीय परिस्थिति पर लम्बा वार्तालाप हुआ। वेलेजली ने उससे अपनी प्रश्नमाला के लिखित विस्तृत उत्तर प्राप्त किये। इनसे उसको भारतीय परिस्थिति का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त हो गया, जिसमें निर्णायक भाग लेना उसी के भाग्य में लिखा था। २६ अप्रैल, १७९८ को वेलेजली मद्रास पहुँच गया। दक्षिणी प्रान्त में कुछ दिनों तक ठहरकर वह १७ मई को कलकत्ता पहुँचा तथा उसी दिन अपना पद ग्रहण कर लिया। इस पद पर वह सात वर्ष से भी

अधिक समय तक कार्य करता रहा। वहाँ से उसने ३० जुलाई, १८०५ को त्यागपत्र दिया। उसकी असाधारण महत्त्वाकांक्षा अपने देश की महत्ता में वृद्धि करने की थी। दृढ़ साहस, सत्ता के प्रति प्रगाढ़ प्रेम तथा योग्य साधनों के निर्वाचन की अद्भुत क्षमता उसके विशेष गुण थे। उसने अपने अधीन अधिकारियों को अपनी इच्छानुसार आचरण करने पर विवश करके राजसी सत्ता का उपभोग किया। भारत के ब्रिटिश शासकों में इस दृष्टि से सम्भवतः वह महत्तम सिद्ध हुआ। १७८९ की फ्रेंच क्रान्ति से फ्रेंच राष्ट्र की जन्मजात शक्तियाँ जाग्रत हो उठी थीं और उसकी विजयी सेनाएँ उल्लासपूर्वक यूरोपीय महाद्वीप की समस्त दिशाओं में प्रयाण कर रही थीं तथा दास जातियों को स्वाधीनता, समानता और भ्रातृत्व का सन्देश पहुँचा रही थीं। इस प्रकार की विश्व क्रान्ति में केवल इंगलैण्ड बाधक था। १७९७ में जनरल बोनापार्ट ने आस्ट्रिया तथा इटली पर प्रभुत्व स्थापित करके पूर्व की ओर ध्यान दिया। उसका लक्ष्य भारत विजय था। वह यहाँ ईजिप्ट (मिस्र) तथा सीरिया के मार्ग से पहुँचना चाहता था। उसने टीपू सुल्तान को पत्र लिखकर फ्रेंच सहायता का प्रस्ताव किया तथा उससे अपने प्रतिनिधि मोचा और मसकत भेजने की प्रार्थना की जो उसको अभिप्रेत साहसिक कार्य के लिए आवश्यक जानकारी दे सकें। इन फ्रेंच योजनाओं की ओर वेलेजली ने विशेष ध्यान दिया तथा अपने आगमन पर भारत से फ्रेंच सत्ता के सर्वथा निराकरण का तुरन्त निश्चय कर लिया।

इस समय से पूर्व इसी शताब्दी में पेशवा माधवराव प्रथम तथा महादजी शिन्दे सदृश कुछ महापुरुष भारत ने उत्पन्न किये थे, परन्तु इस समय राष्ट्रीय स्रोत शुष्क हो गया प्रतीत होता था। इस समय भारत में आये हुए साम्राज्यवाद के इस महान समर्थक (वेलेजली) से टक्कर लेने वाला कोई व्यक्ति जीवित नहीं था। जब वेलेजली भारत की ओर समुद्रयात्रा कर रहा था, तब बोनापार्ट ने अपने प्रयाण के लिए स्थलीय मार्ग का अनुसरण किया। उसका उद्देश्य ब्रिटिश महत्त्वाकांक्षाओं का दमन करना था। अपनी यात्रा में वेलेजली फ्रेंच जनरल की योजनाओं के प्रतिकार के सम्बन्ध में उत्तम उपाय सोच रहा था कि संयोगवश फ्रेंच भाषा में लिखा हुआ एक पत्र उसके हाथ में पड़ गया। इस पत्र में मारिशस के गवर्नर जनरल द्वारा निकाली हुई एक घोषणा थी। इसमें उस टापू के फ्रेंच लोगों को मैसूर के टीपू सुल्तान की सहायतार्थ निर्मित होने वाले दल में भरती होने का आह्वान किया गया था। सुल्तान ने उनका व्यय सहन करने का प्रस्ताव किया था और इस कार्य के लिए अपने कार्यकर्ता मारिशस भेजे थे। इन कार्यकर्ताओं ने लगभग दो सौ रंगरूट एकत्र कर लिये

थे और उनको लेकर मंगलौर चल पड़े थे । वे २६ अप्रैल को अपने जहाजों से वहाँ उतर पड़े । ठीक उसी दिन वेलेजली मद्रास में उतरा ।

उस समय टीपू सुल्तान, निजामअली तथा दौलतराव शिन्दे केवल इन्हीं तीन भारतीय शासकों की सेवा में कुछ संख्या में फ्रेंच लोग थे । बुसी के समय से भारतीय शासकों को अपनी सेनाएँ पश्चिमी शैली पर पुनः संगठित करने, विशेषकर अपने तोपखाने को उन्नत करने तथा पर्याप्त प्रशिक्षित पैदल सेना द्वारा इसको पुष्ट करने की धुन-सी सवार थी । भारतीय लोग इस काम में अत्यन्त अकुशल थे । निजामअली ने इसी उद्देश्य से जनरल रेमाण्ड को रखा था । दौलतराव की सेवा में पेरों था जिसने १७९६ में दि बायने के अवकाश ग्रहण करने पर उसका स्थान लिया । इन भारतीय सेनाओं को इंगलिश न कहकर फ्रेंच क्यों कहा जाता था, यह निष्पक्ष विद्यार्थी कभी नहीं समझ सकता । यद्यपि इन दोनों स्थितियों में कमाण्डर जनरल दैवयोग से फ्रेंच लोग थे, परन्तु सर्वसाधारण सैनिक शुद्ध भारतीय थे । यदि कुछ मुख्य स्थानों पर थोड़े-से फ्रेंच अधिकारी थे तो अन्य स्थानों पर कुछ अंग्रेज भी थे । परन्तु वेलेजली ने अपने सिद्धान्तानुसार (अर्थात मनुष्य को राक्षस कहकर उसकी हत्या कर दी) उन सबको फ्रेंच सेनाएँ कहना उचित समझा, क्योंकि इस प्रकार वे सब इंगलैण्ड की शत्रु हो गयीं । आश्चर्य तो यह है कि दौलतराव तथा निजामअली फ्रेंच तथा इंगलिश का भेद तक नहीं जानते थे । भारतीयों के अनुसार समस्त यूरोपीय एक जाति (टोप वालों की जाति) के थे, जैसा कि उन्हें समस्त भारतीय भाषाओं में कहा जाता था । भारतीयों की कल्पना में यदि उनको कोई विशेष प्रशिक्षण प्राप्त न भी हुआ हो तब भी वे सैनिक विषयों में समान रूप से निपुण थे । टीपू सुल्तान के पास ईस्ट इण्डिया कम्पनी को अपना शत्रु समझने का पर्याप्त कारण अवश्य था, क्योंकि उन्होंने टीपू के अस्तित्व के लिए ही संकट उपस्थित कर रखा था ।

दौलतराव अपने सैनिक अधिकारियों का किस प्रकार नियन्त्रण करता था अथवा वह भारत की राजनीतिक परिस्थिति कहाँ तक समझता था, यह भावी घटनाक्रम द्वारा प्रत्यक्ष हो गया । फ्रेंच जनरल पेरों दौलतराव का ही सेनानी था । उसने संकटपूर्ण समय में अपने स्वामी का पक्ष त्याग दिया तथा लार्ड लेक को सुविधापूर्वक विजय प्राप्त कर लेने दी । अपने आगमन पर वेलेजली ने निश्चय कर लिया था कि वह तीन भारतीय शासकों—निजाम, टीपू तथा दौलतराव—का प्रभाव नष्ट कर देगा । इनमें से पहला इस समय सर्वथा रुग्ण था । खरडा की अपमानजनक चोट का उसको इस समय तक दुख था । खरडा के शीघ्र पश्चात ही उसके पुत्र ने विद्रोह कर दिया था । यह विद्रोह

रेमाण्ड ने दबाया। २५ फरवरी, १७९६ को निजामअली को लकवा मार गया तथा पेशवा माधवराव द्वितीय की मृत्यु के बाद पूना की राजनीति में विचित्र परिवर्तन के कारण ही हैदराबाद के शासक की रक्षा हो पायी। उसका मन्त्री मुशीरुल्मुल्क मराठा बन्धन से मुक्त कर दिया गया तथा निजामअली खरडा में लगायी गयी कड़ी शर्तों के पालन से भी बच गया। इस समय नाना फड़निस सदृश व्यक्ति भी उसके सक्रिय समर्थन की याचना करते थे। उसकी रुग्णता के सात वर्षों में (उसका देहान्त ६ अगस्त, १८०३ को हुआ) उसके कार्यों का प्रबन्ध मन्त्री मुशीरुल्मुल्क ने सफलतापूर्वक किया। यह मन्त्री ब्रिटिश गठबन्धन का उत्साही समर्थक था। अधिकांश महान भारतीय राज्य इस समय निर्बल हो गये थे।

अपने पद का भार सँभालते ही वेलेजली ने तत्काल पूर्ण करने के लिए अपने सम्मुख तीन प्रमुख कार्य रखे : (१) टीपू सुल्तान का सर्वनाश, (२) निजामअली के फ्रेंच दल को भंग करके उसके स्थान पर इंगलिश दल की नियुक्ति, (३) पूना की मराठा सरकार पर नियन्त्रण प्राप्त करना। इस कार्य के लिए दौलतराव को उसके उत्तरी क्षेत्र में भगा देना आवश्यक था। वहाँ अफगानों का राजा जमानशाह उसको निर्बल करने के लिए पर्याप्त था, क्योंकि उस समय वह भारत पर आक्रमण करने का यत्न कर रहा था। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए वेलेजली ने शोर की नीति त्याग दी और उसके स्थान पर उसने अपनी प्रसिद्ध 'सहायक प्रथा' (सबसीडियरी सिस्टम) का निर्माण किया। इसके द्वारा भारतीय शासकों के कार्यों में हस्तक्षेप करने का उसको पूर्ण अवसर प्राप्त हो सकता था तथा वे ब्रिटिश सत्ता की मैत्री के अधीन हो सकते थे।[1] यह पहले ही स्पष्ट हो गया था कि भारत में कलहग्रस्त विभिन्न शासकों के बीच सन्तुलन बनाये रखने वाली कोई प्रधान सत्ता नहीं है। यह भी स्पष्ट था कि कोई शासक विदेशी सहायता के बिना अपने अस्तित्व की रक्षा नहीं कर सकता। पूना के रेजीडेण्ट कर्नल पामर को वेलेजली से इस नयी नीति तथा उसके पालन के लिए विस्तृत निर्देश प्राप्त हुए। हैदराबाद के रेजीडेण्ट जे० ए० कर्क पैट्रिक को भी यही योजना कार्यान्वित करने के लिए मिली। मैसूर में लागू करने के लिए यह कार्यविधि मद्रास सरकार को भेज दी गयी क्योंकि निकट भविष्य में उस राज्य से युद्ध होने की सम्भावना थी।

अपना पद ग्रहण करने के बाद पाँचवें दिन वेलेजली ने पेशवा को सूचना भेजी कि उसने शासन का भार ग्रहण कर लिया है। उसने पेशवा पर यह

---

[1] यह वाक्यांश विचित्र तथा निरर्थक है, क्योंकि दोनों शब्द अर्थ में एक-दूसरे के विरुद्ध हैं।

प्रभाव डाला कि ब्रिटिश सत्ता के प्रति अपने मैत्री सम्बन्ध बनाये रखना आवश्यक है। इस नीति का पालन न होने की दशा में एक धमकी भी थी। इस समय उसने पामर को लिखा कि वह पेशवा को अपने शत्रुओं के विरुद्ध ब्रिटिश सहायता स्वीकार करने के लिए प्रलोभन दे। रघुनाथराव ने ऋण के बदले ब्रिटिश सरकार के पास अपने कुछ आभूषण गिरवी रख दिये थे। लगभग ६ लाख रुपयों के मूल्य के ये आभूषण इस समय भी ब्रिटिश सरकार के पास कलकत्ता में थे। पेशवा का विश्वास करने के लिए वेलेजली ने इन आभूषणों को अविलम्ब बिना ऋण का भुगतान किये वापस कर दिया।[२]

२. **वेलेजली की प्रथम सफलता**—सौभाग्य से वेलेजली के आगमन से एक मास पूर्व २५ मार्च, १७९८ को जनरल रेमाण्ड का देहान्त हो गया था। इस कारण हैदराबाद राज्य में उसकी प्रिय 'सहायक प्रथा' के प्रवेश का मार्ग सुगम हो गया था।[3] उसने निजामअली से तुरन्त 'सहायक मैत्री' का प्रस्ताव

---

२ पूना रेजीडेन्सी कॉरस्पौण्डेन्स, जिल्द २, पृ० ५३३।

3 रेमाण्ड का जन्म २० सितम्बर, १७७५ को हुआ था। वह व्यापार के लिए १७७५ में पाण्डिचेरी आया। वह पहले हैदरअली की सेना में भर्ती हुआ तथा १७८५ में वह निजामअली की सेवा में आ गया। रेमाण्ड ने उसी मार्ग का अनुसरण किया, जिसके द्वारा दि बायने शिन्दे की सेवा में पहुँच गया था। उसने निजामअली के लिए २० पैदल दल अर्थात लगभग १५ हजार सैनिक तैयार किये, जिनके पास अपना निपुण तोपाखाना भी था। उसके अधीन लगभग ११४ यूरोपीय अधिकारी थे। उसको अपने व्यय के लिए ५२ लाख रुपये वार्षिक आय के पृथक जिले मिले हुए थे। उसने श्रद्धापूर्वक अपने स्वामी की सेवा की। खरडा के रणक्षेत्र में उसका व्यवहार गौरवपूर्ण रहा। उस दिन निजाम की पराजय उसके कारण किसी भी प्रकार नहीं हुई थी। यह रण ११ मार्च, १७९५ को हुआ था तथा आगामी जून में निजामअली के पुत्र आलीजाह ने अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह करके बीदर में स्वयं को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। निजामअली ने अपने पुत्र को पराजित करने तथा उसको जीवित बन्दी करने का कार्य रेमाण्ड को सौंपा था। रेमाण्ड ने स्थान-स्थान पर उसका पीछा किया और अन्त में उसको पकड़ लिया। जब वह आलीजाह को हाथी पर बैठाकर हैदराबाद ला रहा था, तब उसने विष खाकर अपने जीवन का अन्त कर दिया (सितम्बर, १७९५)। फ्रांस के क्रान्तिकारी शासन के साथ रेमाण्ड का घनिष्ठ सम्पर्क था। भारत में फ्रेंच प्रभाव को पुनः स्थापित करने के लिए उसकी प्रबल आकांक्षा थी। गवर्नर जनरल के रूप में आने पर वेलेजली को हैदराबाद दरबार में स्थित सुयोग्य फ्रेंच योद्धा की ओर से ब्रिटिश सत्ता के प्रति घोर संकट की आशंका हो गयी थी।

किया। १ सितम्बर, १७९८ को निजामअली ने इसको स्वीकार करके इस पर हस्ताक्षर कर दिये। फ्रेंच अधिकारियों के स्थान पर ब्रिटिश अधिकारी नियुक्त हो गये। वैसे इस परिवर्तन में काफी कठिनाई हुई। सुगमतापूर्वक प्राप्त इस विजय से वेलेजली को टीपू सुल्तान के विरुद्ध अपनी बल-परीक्षा में अधिक आत्मविश्वास हो गया।

१७९८ के जुलाई से सितम्बर तक के महीनों में पामर ने बाजीराव तथा नाना पर दबाव डाला कि वे टीपू सुल्तान के विरुद्ध युद्ध के लिए प्रस्तावित सन्धि में सम्मिलित होने अथवा उससे दूर रहने के विषय पर अपना निश्चय प्रकट करें। वे यह भी स्पष्ट करें कि शिन्दे उत्तर की ओर प्रयाण कर रहा है या नहीं। यदि कर रहा है तो कब। १ नवम्बर को पेशवा के पास वेलेजली का एक विशेष पत्र आया, जिसमें प्रार्थना की गयी थी कि मराठा सेनाएँ मैसूर के विरुद्ध युद्ध के लिए प्रस्थान करें। निजामअली के साथ की गयी सहायक सन्धि की एक प्रति विचारार्थ पेशवा के पास भी भेजी गयी। आशा थी कि पेशवा अपनी ही इच्छा से उसका अनुकरण करेगा। बाजीराव ने उत्तर दिया कि मैसूर युद्ध के लिए अपनी निश्चित सैन्य संख्या भेजने में उसको दो मास लग जायेंगे। इसी समय टीपू सुल्तान के दूत भी पूना आ गये। उन्होंने अंग्रेजों के विरुद्ध मराठा सहायता की प्रार्थना की। दूतों का बहुत स्नेह तथा विधिपूर्वक स्वागत किया गया। कहा जाता है कि उन्होंने पेशवा की सहायता प्राप्त करने के लिए उसे १३ लाख रुपये नकद दिये। पामर ने पेशवा के इस आचरण का प्रबल विरोध किया। इस समय नाना अपनी ही सुरक्षा के निमित्त बहुत चिन्तित था, इसलिए इस विषय में कोई निर्णय नहीं करना चाहता था कि इस युद्ध में पेशवा कोई भाग ले या न ले और यदि ले तो किसकी ओर से : टीपू के अनुकूल या प्रतिकूल। उसने यह विषय सर्वथा बाजीराव की इच्छा पर छोड़ दिया। मराठा सेनाओं के नेतृत्व के लिए केवल एक व्यक्ति योग्य था—परशुराम भाऊ। वह इस समय कोल्हापुर के विरुद्ध जीवन-मरण के संघर्ष में व्यस्त था। बाजीराव में निर्णय करने की क्षमता कभी नहीं रही। वह अपने स्वभाव के अनुसार पामर को यह आश्वासन देने में समय नष्ट करता रहा कि वह अभियान की तैयारी कर रहा है। उसको पूर्ण विश्वास था कि युद्ध बहुत दिनों तक चलता रहेगा। वह अन्त में विजयी पक्ष का साथ देगा। पर नाना ने पेशवा को विलम्ब के विरुद्ध लिखित चेतावनी दी। शीघ्र ही समाचार प्राप्त हुआ कि ४ मई को एक घमासान युद्ध में टीपू का वध हो गया है। इससे बाजीराव अवाक् रह गया। टीपू के राज्य पर अधिकार कर लिया गया। उसके राज्य का अधिकांश भाग मैसूर के प्राचीन हिन्दू राजा को वापस दे दिया

गया। कुछ प्रदेशों को निजाम तथा अंग्रेजों ने अपनी वर्तमान सीमाओं की आवश्यकतानुसार अपने राज्यों में मिला लिया। थोड़ा-सा भाग बाजीराव के लिए अलग रख लिया गया। उसके लिए निम्नलिखित शर्तों का पालन करना था :

(१) कि पेशवा अंग्रेजों के साथ सहायक सन्धि कर ले।

(२) कि वह फ्रांसीसियों से युद्ध होने पर अंग्रेजों को सहायता दे।

(३) कि अपने तथा निजाम के बीच कलह उत्पन्न होने की दशा में पेशवा अंग्रेजों का निर्णय स्वीकार करे।

(४) कि पेशवा मैसूर के नवीन राजा के प्रति चौथ का अपना अधिकार छोड़ दे।

इन शर्तों के पालन का स्पष्ट अर्थ मराठा राज्य के स्वातन्त्र्य का अन्त था, इसलिए बाजीराव ने इन्हें स्वीकार करने से इनकार कर दिया। वेलेजली समझ गया कि पेशवा क्यों विलम्ब कर रहा था। जब उसके साथ अपने सम्बन्धों को उसने उसी प्रकार नियमित किया—अर्थात उसको परास्त करने के लिए प्रतीक्षात्मक चाल चली। टीपू सुल्तान की दुर्गति से बाजीराव को चेतावनी देने में नाना ने अपने कर्तव्य का पालन किया। उसने कहा—"टीपू का अन्त हो गया है और अंग्रेजों की शक्ति बढ़ गयी है। समस्त पूर्वी भारत पहले से ही उनका है। अब पूना उनका दूसरा शिकार होगा। दुर्दिन आने वाले हैं। भागकर हम नियति से बच नहीं सकते।"

परन्तु दोनों नवयुवकों—बाजीराव तथा दौलतराव—ने कोई शिक्षा ग्रहण नहीं की। वे निश्चिन्त भाव से अपने मार्ग पर चलते रहे। टीपू की गति से बचने के लिए उन्होंने घोषणा की कि उनका इरादा निजाम से लड़ने का है। पामर ने यह समाचार गवर्नर जनरल को भेज दिया। गवर्नर जनरल ने अपने पत्र में निजाम को यह बात बलपूर्वक लिखी—"जब तक ब्रिटिश सत्ता के साथ आपकी मैत्री बनी रहेगी, हम आप पर आक्रमण करने वाले किसी भी शत्रु के विरुद्ध अपनी समस्त सैनिक शक्ति सहित आपकी सहायतार्थ अविलम्ब उपस्थित होने को तैयार हैं। शिन्दे की ओर से आक्रमण का आप लेशमात्र भी भय न करें।" इस पत्र की एक प्रतिलिपि पामर ने बाजीराव तथा दौलतराव को दी और उसका अभीष्ट परिणाम हुआ। निजाम से युद्ध करने का स्वप्न वायु में विलीन हो गया। विशालकाय गवर्नर जनरल के समक्ष बाजीराव केवल एक बौने के सदृश था, जिसने मूर्खतापूर्वक अंग्रेजों के विरुद्ध भारतीय शासकों का संघ बनाने का प्रयत्न किया। उसको आशा थी कि टीपू कुछ समय तक डटा रहेगा और वह उपयुक्त अवसर पर उसका साथ देगा। उसने नागपुर

के रघोजी भोंसले को इसी नीति में सम्मिलित करने का प्रयत्न किया। दौलतराव तथा बाजीराव ने मैसूर के नवीन हिन्दू राजा तथा टीपू के पुत्रों के पास अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह करने की प्रेरणा देने के लिए गुप्त दूत भेजे। उनकी समझ में यह नहीं आया कि एक दूसरा विशालकाय पुरुष अर्थात गवर्नर जनरल का छोटा भाई आर्थर वेलेजली इस समय मैसूर में नियुक्त है। आर्थर ने बाजीराव के षड्यन्त्रों का पता लगाकर उनके प्रतिकार का तुरन्त उपाय कर दिया।

१७९९ में दिखावटी रूप से नाना मन्त्री बना रहा, पर उसमें प्रशासन में कोई उत्तरदायी भाग लेने की न इच्छा थी, न शक्ति। न इन दोनों नवयुवकों की इच्छा उसके परामर्श को कोई महत्त्व देने की थी। वह जानता था कि केवल उसका संचित धन प्राप्त करना ही इनका उद्देश्य है। अतः मन्त्री ने उस वर्ष साधारण विषयों के प्रबन्ध अर्थात अमृतराव, शिन्दे महिलाओं तथा दोनों छत्रपतियों की समस्याओं का निपटारा आदि में अपने को व्यस्त रखा।

शिन्दे की योजनाएँ शीघ्रतापूर्वक असफल होती गयीं। वह २२ अप्रैल, १७९९ को अहमदनगर से बालोबा तात्या को पूना ले आया तथा अपना मन्त्री पद स्वीकार करने को कहा। बालोबा ने यह प्रस्ताव तुरन्त ठुकरा दिया तथा उसने वही निरीह तथा उदासीन वृत्ति धारण कर ली जो नाना ने बाजीराव के प्रति अपना रखी थी। आगामी वर्ष नाना फड़निस की मृत्यु हो जाने से बाजीराव पर कोई नियन्त्रण नहीं रह गया। बालोबा तथा अबा चिटनिस, जिन्होंने शिन्दे महिलाओं की कलह का निपटारा किया था, शीघ्र ही शिन्दे तथा बाजीराव के लिए सरदर्द हो गये। इस समय इन दोनों—बाजीराव तथा शिन्दे—पर शर्जाराव का पूर्ण नियन्त्रण हो गया था। शर्जाराव के परामर्श से शिन्दे ने निश्चय किया कि वह अपने समस्त प्राचीन सेवकों को एक-एक करके निकाल देगा। उनके विरुद्ध शिन्दे ने जो ढंग अपनाया, वह अत्यन्त क्रूर तथा निन्दनीय था। बालोबा, उसका भतीजा ढोंडीबा, सदाशिव मल्हार, कृष्णोबा मोदी, देवजी गाउली सबके सब पकड़ लिये गये, उनके साथ दुर्व्यवहार किया गया और वे नजरबन्दी के लिए अहमदनगर भेज दिये गये। जब बालोबा को बलपूर्वक छीना जा रहा था तो उसकी पत्नी ने वास्तव में अपना सर फोड़ लिया। ३१ मई, १८०० को तुलाजी शिन्दे और मानाजी बाबले को शिन्दे महिलाओं का समर्थन करने के कारण तोप से उड़ा दिया गया। ८ जुलाई को यशवन्तराव शिवाजी तथा कुछ अन्य व्यक्तियों के नाक-कान काट लिये गये। सेना में उनका प्रदर्शन करने के बाद उन्हें मार डाला गया। ढोंडीबा पगनिस की भी यही दुर्दशा की गयी। नारायणराव बख्शी के शरीर में गोले बाँधकर

आग लगा दी गयी। इस प्रकार वह उड़ती हुई चील की भाँति आकाश में फेंक दिया गया। दौलतराव तथा बाजीराव ने अपने प्रशासन से प्रत्येक विचारशील व्यक्ति को हटा दिया। उन्हें सन्देह था कि ये कार्यकर्ता उन्हें (बाजीराव तथा दौलतराव को) पदच्युत करके तथा अमृतराव को राज्य का मुख्य पुरुष बनाकर क्रान्ति करने की योजना बना रहे हैं। स्वयं बालोबा बहुत दिनों से रोगी था। १ नवम्बर, १८०० को अहमदनगर में उसका देहान्त हो गया। इसी प्रकार महादजी का विश्वस्त तथा योग्य विदेश मन्त्री सदाशिव मल्हार उर्फ भाऊ बख्शी बालोबा से दो सप्ताह पूर्व मर गया। इस प्रकार नाना की मृत्यु के कुछ महीनों के भीतर ही भूतकाल से सम्बद्ध सभी कड़ियाँ टूट गयीं।

इन अत्याचारपूर्ण कृत्यों के कारण जनसाधारण को घृणा हो गयी, जिससे यशवन्तराव होल्कर तथा महादजी शिन्दे की दोनों विधवाओं जैसे व्यक्तियों को नवीन साहस मिल गया। इन्होंने अपने प्राचीन युद्ध को अब नयी उमंग से आरम्भ कर दिया। वेलेजली इन घटनाओं को सावधानीपूर्वक देखता रहा तथा अन्तिम प्रहार के लिए धैर्यपूर्वक तैयारी करता रहा।

बाजीराव तथा दौलतराव की इन विचारहीन अन्ध प्रगतियों के प्रतिकूल कुछ विचारशील, अनुभवी तथा जागरूक व्यक्ति मराठा राज्य की रक्षा के निमित्त एकमात्र विकल्प के रूप में अमृतराव का समर्थन कर रहे थे। बालोबा तात्या, नाना फड़निस, नारायण बख्शी तथा कुछ अन्य व्यक्तियों की इच्छा इस प्रकार का परिवर्तन उपस्थित करने की थी, परन्तु उनके प्रयास दुष्टता-पूर्वक कुचल दिये गये। यदि ब्रिटिश रेजीडेण्ट ने गवर्नर जनरल की सर्वग्राही योजनाओं का पूरा साथ दिया होता तो बाजीराव अपनी उस दुर्दशा को बहुत पहले ही प्राप्त कर लेता, जिसे वह अन्त में प्राप्त हुआ। पामर शान्त तथा तटस्थ व्यक्ति था, उसने शिन्दे के यूरोपीय अधिकारियों के साथ पूना में दो वर्ष के काल में (१७९८-१८००) मैत्री कर ली। उसने वर्तमान राजनीति की ओर ध्यान नहीं दिया तथा वह बाजीराव के ब्रिटिश आधिपत्य स्वीकार करने का प्रबन्ध नहीं कर सका, इसलिए लार्ड वेलेजली को उसे अन्यत्र बदलना पड़ा। उसके स्थान पर कर्नल क्लोज को नियुक्त किया गया। उसने ७ दिसम्बर, १८०१ को पूना में अपना पद ग्रहण कर लिया। क्लोज ने आर्थर वेलेजली के अधीन अपने दो वर्षों के मैसूर प्रबन्ध में अच्छी ख्याति प्राप्त कर ली थी। पूना में अपनी चार वर्षों की दुष्टतापूर्ण प्रवृत्ति के अन्त में दौलतराव ने १८०० के अन्त में उस स्थान को छोड़ दिया। वह अगली फरवरी में बुरहानपुर पहुँच गया। इसके बाद बाजीराव राजधानी में अपनी स्थिति बनाये रखने में समर्थ नहीं हो सका।

३. नाना फड़निस की मृत्यु तथा उसका चरित्र—प्रशासन में अपने पुन: प्रवेश के बाद नाना फड़निस बहुत दिनों तक जीवित नहीं रहा। दौलतराव द्वारा विश्वासघातपूर्वक पकड़ लिये जाने तथा नीति या बुद्धि के समस्त सिद्धान्तों के विरुद्ध बन्धन में डाल दिये जाने के कारण उसके अत्यन्त संवेदनशील मन तथा कोमल शरीर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा और उसका स्वास्थ्य शीघ्र ही बिगड़ गया। १७९८ के अन्त के समीप उसने मन्त्री पद स्वीकार कर लिया, पर वह अपना पूर्व स्वास्थ्य कभी प्राप्त न कर सका। वह अपनी मृत्यु के पूर्व उस अल्पकाल में वह कोई महत्त्वशाली कार्य न कर सका। उसका स्वभाव कुछ इस प्रकार का था, जिसने क्रमश: भीतर ही भीतर क्षीण करके उसकी समस्त शक्ति को नष्ट कर दिया। इस समय वह परित्यक्त तथा असहाय था। उसका कोई मित्र या साथी नहीं रह गया था, जिस पर वह भरोसा कर सकता। शत्रुओं द्वारा निरन्तर किये गये तिरस्कार और अपमान नाना के लिए असह्य हो गये। १ मार्च, १७९९ का एक समाचार इस प्रकार है—"नाना बहुत क्लेश में है। उसको कभी-कभी ज्वर हो जाता है।" ७ अप्रैल का एक अन्य समाचार देखिए—"नाना अपने रोग से अभी तक सँभल नहीं सका है। उसे कानों सम्बन्धी कष्ट हो गया है। वह केवल बेल बाग के मन्दिर तक पैदल जाता है।" दिसम्बर, १७९९ का एक समाचार प्रस्तुत है—"नाना में अब कोई शक्ति नही रह गयी है। वह पेशवा के महल तक भी पैदल नहीं चल सकता। यह महल उसके मकान के पास ही है।" फरवरी, १८०० से उसको प्रत्येक दिन ज्वर रहने लगा। ४ मार्च को स्वयं बाजीराव व्यक्तिगत रूप से उससे मिलने गया तथा उसके स्वास्थ्य का हाल पूछा। बृहस्पतिवार १३ मार्च की अर्द्धरात्रि के समय उसका देहान्त हो गया। नाना के शव को दाह-संस्कार के लिए ले जाने के समय वहाँ सेवा कार्य पर नियुक्त अरब रक्षकों ने दंगा कर दिया और अपना शेष वेतन माँगा। जब बाजीराव ने यह वेतन चुका दिया तभी उन्होंने शव को उठाने दिया। कैप्टिन ब्राउनरिग वहाँ आया और कहा—"नाना के साथ ब्राह्मण राज्य अस्त हो गया है। पूना का पतन हो गया है।" ब्रिटिश रेजीडेण्ट पामर ने गवर्नर जनरल को निम्न समाचार भेजा—"नाना के साथ मराठा शासन का समस्त विवेक तथा संयम चला गया है।" सर रिचर्ड टेम्पुल लिखता है—"महामन्त्री की मृत्यु से मराठा प्रशासन में सच्चाई तथा कुशलता के समस्त चिह्न नष्ट हो गये।" ग्रांट डफ ने लिखा है—"निस्सन्देह नाना फड़निस महान राजनीतिज्ञ था। उसके मुख्य अवगुणों का कारण व्यक्तिगत साहस का अभाव तथा उसकी महत्त्वकांक्षा थी। इनका नियन्त्रण सिद्धान्तों द्वारा नहीं होता था। उसका जीवन सदैव जनसाधारण के

समक्ष रहता था। व्यक्तिगत जीवन में वह परम सत्यप्रेमी, दयालु, मितव्ययी तथा उदार था। उसका सारा समय कठोर व्यवस्था द्वारा नियमित रहता था। जो कार्य उसने स्वयं किया वह विश्वास की सीमा से भी आगे बढ़ जाता है। मराठा जाति द्वारा उत्पन्न किये गये विलक्षण बुद्धियुक्त अन्तिम पुरुष के रूप में नाना निस्सन्देह देदीप्यमान है।"

नाना किसी प्रकार वृद्ध नहीं था। उसका जन्म १२ फरवरी, १७४२ को हुआ था। मृत्यु के समय उनकी आयु केवल ५८ वर्ष १ मास की थी। वह पेशवा के पुत्र विश्वासराव से ५ मास छोटा था। उसी के साथ उसका पालन-पोषण हुआ। उसकी लम्बाई साधारण, शरीर पतला तथा रंग गेहुँआ था। उसकी मुखाकृति गम्भीर थी, वह शायद ही कभी हँसता हुआ देखा गया होगा। उसका स्वभाव नियमित तथा स्वाध्यायशील था, भाषा नपीतुली होती थी तथा वह स्पष्ट वार्तालाप की अपेक्षा लेखनी से अधिक कार्य करता था। मराठा इतिहास के समस्त नायकों के आजकल प्राप्त पत्रों में सर्वाधिक पत्र उसी के लिखे हुए हैं। उसने कई विवाह किये। इनमें से ९ पत्नियों के नाम उपलब्ध हैं। जिउबाई नामक उसकी अन्तिम पत्नी जब उसकी मृत्यु पर विधवा हुई तो उसकी आयु ९ वर्ष की थी। बाजीराव की दुष्टता के सम्मुख अपना सतीत्व सुरक्षित रखने में उसको अपने जीवन में विचित्र उलटफेर देखने पड़े।[४]

फड़निस पद का अर्थ है—समस्त बहीखातों अथवा सार्वजनिक धनागार पर नियन्त्रण। इसका सम्बन्ध राज्य के आय-व्यय से था। इस कार्य में नाना पूर्णतः निपुण था। लिखित इतिहास में कोई भी अन्य भारतीय उसकी समता को नहीं पहुँचता। यह निपुणता उसने कठोर कार्यव्यवस्थापक माधवराव प्रथम के अधीन दस वर्ष सेवा करके प्राप्त की थी। उस पेशवा की मृत्यु के बाद नाना ने व्यावहारिक रूप में अपने ही उत्तरदायित्व पर समस्त प्रशासन का संचालन किया। उसने लेखापद्धति को उन्नत करके राज्य को कभी धन का कष्ट नहीं होने दिया। वैसे अनेकानेक युद्ध होते रहे और नाना को अन्य कार्य भी देखने पड़े। उसके विरुद्ध साधारणतः यह आरोप लगाया जाता है कि उसने राज्य को हानि पहुँचाकर अपनी कई करोड़ की सम्पत्ति का संचय किया। उसके समय के मनुष्य के लिए नाना की महत्तम न्यूनता युद्ध विद्या से अपरिचित होना थी। इस कारण उसको अन्य व्यक्तियों पर निर्भर रहना पड़ता था और वह समस्त प्रकार के कष्टों में फँस जाता था।

जो महत्तम श्रेय नाना की राजनीति को प्राप्त है, उसका सम्बन्ध महादजी

---

४ उसने १८३५ में एक पुत्र गोद लिया, जिसका देहान्त १८७७ में हो गया। उसके पुत्र का दत्तक पुत्र १९४८ में भी जीवित था।

के सहयोग में प्रथम मराठा युद्ध के समय ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध प्राप्त की गयी सफलता से है। इसी प्रकार उसकी अत्यन्त स्पष्ट असफलता यह थी कि पेशवा माधवराव द्वितीय की मृत्यु के बाद उसने मराठा राज्य की परिस्थिति का प्रबन्ध शोचनीय ढंग से किया। जब तक नाना का निष्ठापूर्ण सहयोगी हरिपन्त फड़के जीवित रहा, तब तक उसका प्रशासन सफल रहा। हरिपन्त की मृत्यु के बाद नाना की कोई स्थिर नीति नहीं रह गयी। उसने अस्थिरता तथा क्षणिक उपायों को खुली छूट दे दी। उसके जीवन के अन्तिम ५ वर्षों में उसके मन का संभ्रम प्रतिक्षण स्पष्ट हो जाता है। शाहू की मृत्यु पर मराठा राज्य में इसी प्रकार की संकटपूर्ण स्थिति आ गयी थी, परन्तु नाना ने विवेकपूर्ण ढंग से परिस्थिति को सँभाल लिया। उसने उत्तरदायी व्यक्तियों का सम्मेलन करके समस्त मुख्य व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त कर लिया।

यदि पेशवा की मृत्यु के तुरन्त पश्चात नाना फड़निस ने शिन्दे, होल्कर, भोंसले, आंग्रे, पटवर्धनों आदि उत्तरदायी सरदारों का तथा जीवबा बख्शी और बालोबा सदृश अनुभवी परामर्शदाताओं का प्रत्यक्ष सम्मेलन किया होता तो पेशवा पद पर अमृतराव का निर्वाचन हो जाने की अधिक सम्भावना थी, क्योंकि अंग्रेज भी विद्यमान उत्तराधिकारी व्यक्तियों में उसको सर्वाधिक योग्य व्यक्ति मानते थे। इस प्रकार बाजीराव दूर रखा जा सकता था। परन्तु नाना के उपायों से नीच षड्यन्त्र तथा रिश्वतखोरी का जन्म हो गया और निर्विघ्न प्रशासन की आशाएँ समाप्त हो गयीं। इस कठिन परिस्थिति में नाना की अनुदारता तथा अपने व्यक्तित्व को जनहित में लीन न करने की केवल निन्दा ही की जा सकती है। वह अपने समीप विद्यमान सत्ताधारी व्यक्तियों के चरित्र को अच्छी तरह जानता था। उसको अपनी नीति इस प्रकार निर्धारित करनी चाहिए थी, जिससे अवनति रुक सके।[५]

---

५ इस सम्बन्ध में एक अन्य समकालीन प्रसिद्ध व्यक्ति—अर्थात मैसूर का मन्त्री पुर्नैया—ध्यान में आ जाता है जो अपनी आयु तथा चरित्र में लगभग नाना के समान है। परन्तु उसका सम्बन्ध भिन्न परिस्थिति से था। उसने हैदरअली तथा टीपू सुल्तान दोनों की सेवा निष्ठापूर्ण भाव से की। वह नाना फड़निस की भाँति अपनी राजस्व क्षमता के लिए प्रसिद्ध था। टीपू के पतन के समय पुर्नैया का चरित्र इतना उत्कृष्ट और उसकी ख्याति इतनी उच्च थी कि वेलेजली ने हिन्दू राजा के मन्त्री पद के लिए उसी को निर्वाचित किया। इस राजा को विजयी अंग्रेजों ने मैसूर के राज्य पर पुनः स्थापित कर दिया था। पुर्नैया ने उस समय समृद्ध शासन की आधारशिला रखी, जिसका उपभोग भारत के क्रान्तिकारी काल में मैसूर ने किया। पुर्नैया आयु में नाना से ५ वर्ष बड़ा था। उसका देहान्त भी

नाना फड़निस की मृत्यु से मराठा इतिहास में एक विशेष परिवर्तन उपस्थित हो जाता है तथा मराठा और ब्रिटिश कर्मचारियों में एक विचित्र विषमता एवं दैवी विडम्बना प्रकट हो जाती है। महादजी शिन्दे, हरिपन्त फड़के, अहल्याबाई, माधवराव द्वितीय, तुकोजी होल्कर, जीवबा बख्शी, बालोबा तात्या, परशुराम भाऊ और अन्त में नाना फड़निस तथा अन्य व्यक्तियों का देहान्त थोड़े-से समय में हो गया। राजनीतिक क्षेत्र दो अयोग्य नवयुवकों—बाजीराव और दौलतराव—के अधिकार में रह गया। इसके साथ ही इतिहास के रंगमंच पर कुछ तेजस्वी ब्रिटिश पुरुषों—उदाहरणार्थ, तीनों वेलेजली बन्धु, मेटकाफ, कर्क पैट्रिक, क्लोज, एल्फिन्स्टन, मैलकम, जेन्किन्स तथा मनरो—का प्रादुर्भाव होता है। यह एक तेजस्वी मण्डल था, जिसके सदृश ब्रिटिश भारतीय इतिहास में कोई अन्य दल शायद ही पाया जाता हो। १५ वर्षों के शान्तिपूर्ण सुधारों से वारेन हेस्टिंग्ज के शासनकालीन दोषों का निराकरण हो गया था। इसी कारण उच्च क्षमता सम्पन्न व्यक्ति डण्डास की स्काटिश-प्रियता के कारण कम्पनी की सेवा के प्रति आकृष्ट हुए थे। इस प्रकार १८वीं शताब्दी के अन्त में इन ब्रिटिश राजनीतिज्ञों की विलक्षण बुद्धि द्वारा भारत के भाग्य का निर्णय हुआ।

४. ढोंडिया बाघ का विद्रोह—लार्ड वेलेजली का आगमन तथा नाना फड़निस और शिन्दे सरदारों का देहान्त अत्यन्त महत्त्व की घटनाएँ थीं। १८०० का वर्ष मराठों के भाग्य में विशेष ह्रास के साथ आरम्भ हुआ। वेलेजली टीपू सुल्तान के विरुद्ध युद्ध में पेशवा का सहयोग न पाकर रुष्ट था, परन्तु बाजीराव इस घटना के महत्त्व को न समझ सका। मैसूर युद्ध के लिए गवर्नर जनरल ने जो विशाल सैनिक दल एकत्र किया था, वह अब तक भंग नहीं हुआ था जबकि उसका कार्य पूरा हो गया था। टीपू सुल्तान से जीते हुए प्रदेशों के प्रबन्ध तथा उनमें व्यवस्थापूर्वक शासन की स्थापना के लिए वहाँ योग्य कमाण्डर के अधीन शक्तिशाली सेना रखना आवश्यक था। वेलेजली ने इस स्थान पर अपने भाई आर्थर को नियुक्त कर दिया जो बाद को ड्यूक ऑव वेलिंग्टन के नाम से प्रसिद्ध हुआ।[६]

उसके १५ वर्ष बाद हुआ। हैदरअली, टीपू, कृष्णाराव वाडियर, वेलेजली तथा क्लोज सदृश जिन विभिन्न स्वामियों की उसने क्रमशः सेवा की, उनसे उसे सम्मान प्राप्त हुआ।

६ भारतीय सेना के अधिकारी के रूप में फरवरी, १७९७ में आर्थर वेलेजली भारत आया था। वह लार्ड कार्नवालिस से सर जान शोर के नाम शक्तिशाली अनुरोध पत्र लाया था। रिचर्ड वेलेजली का आगमन बाद में हुआ। वह अपने साथ सचिव के रूप में अपने तृतीय बन्धु हेनरी वेलेजली को लाया।

आर्थर वेलेजली की आयु उस समय ३२ वर्ष की थी। उसका पद कर्नल का था। श्रीरंगपट्टन के युद्ध से पहले उसको वास्तविक युद्ध का अनुभव नहीं था। गवर्नर जनरल ने चण्ड आक्रान्ताओं के नेता के नाम से प्रसिद्ध जनरल बेअर्ड का अतिक्रमण करके मैसूर राज्य के मुख्य सेनाध्यक्ष के स्थान पर अपने भाई आर्थर को नियुक्त कर दिया। आर्थर विशेष रूप से प्रशासकीय तथा सैनिक क्षमता सम्पन्न था। बैरी क्लोज तथा जान मैल्कम दो चतुर अल्प-वयस्क अधिकारी आर्थर के सहायक नियुक्त किये गये। मनरो, वेब टाड, एल्फिस्टन, मेटकाफ जेन्किन्स तथा मराठा इतिहास में प्रसिद्ध अन्य व्यक्तियों ने वेलेजली बन्धुओं के कठोर अनुशासन में प्रारम्भिक प्रशिक्षण प्राप्त किया।

मैसूर प्रशासन में नियुक्ति के समय आर्थर वेलेजली को एक विचित्र सेवा-कार्य दिया गया। इसके परोक्ष परिणामों का सम्बन्ध मराठा राज्य के भाग्य से था। इससे ब्रिटिश अधिकारियों तथा उनकी सेनाओं को महाराष्ट्र में सैन्य-संचालन का प्रथम अनुभव प्राप्त हुआ। यह अनुभव बाद में मराठा राज्य को पराजित करने में अति मूल्यवान सिद्ध हुआ। यह कार्य ढोंडिया बाघ नामक एक मराठा लुटेरे के विचित्र विद्रोह का दमन था। बाघ कुछ समय से कर्णाटक क्षेत्र को नष्ट कर रहा था, अतः आर्थर वेलेजली का ध्यान उसकी ओर आकृष्ट हुआ।

ढोंडजी आदिलशाही शासकों के प्रति निष्ठा रखने वाले एक प्राचीन पवार परिवार का वंशज था। १८वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ढोंडिया ने क्रमशः कई स्वामियों—पटवर्धन परिवार, कोल्हापुर का राजा तथा तुंगभद्रा के उत्तर में छोटे-से राज्य लक्ष्मीश्वर के देसाई—की सेवा की थी। जिस किसी की उसने सेवा की, उसने ढोंडजी की अद्‌भुत सूझबूझ, वीरता तथा व्यवहार को बहुत उपयोगी पाया। परन्तु उसको इस समय मैसूर तथा मराठा राज्यों की सीमा रेखा बनाने वाली नदी के दोनों ओर की निर्दोष जनता पर अकारण लूटमार का अभ्यास था। हैदरअली तथा टीपू सुल्तान ने उस पर कड़ा नियन्त्रण कर रखा था। टीपू ने उसको पकड़कर मुसलमान बना लिया। मैसूर की ब्रिटिश विजय के बाद उसने लूटमार की अपनी प्राचीन गतिविधियाँ पुनः आरम्भ कर दीं। जून, १८०० में आर्थर वेलेजली ने आक्रमण करके उसे तुंग-भद्रा के उत्तर मराठा प्रदेश में खदेड़ दिया। तब वह पटवर्धनों तथा कोल्हापुर के राजा के लिए अभिशाप हो गया। उस समय ढोंडिया ने पेशवा के धारवाड़ गढ के रक्षक गोखले को परेशान कर डाला। अतः पूना में पेशवा तथा मैसूर में वेलेजली का आवश्यक कार्य इस कष्टदायक लुटेरे को नष्ट करना हो गया। उसके दमन के लिए सम्मिलित प्रयासों के निमित्त वेलेजली ने पटवर्धनों से

समझौता कर लिया। इसके अन्तर्गत पेशवा के प्रदेश में ब्रिटिश सेना का प्रवेश था। गवर्नर जनरल को राजनीतिक शिष्टाचार की कोई अधिक चिन्ता नहीं थी। उसने अपने भाई को आज्ञा दे दी कि पटवर्धनों की सेना के साथ वाघ का पीछा करते हुए वह अपनी सेनाओं को मराठा प्रदेश में ले जाये।

तदनुसार जनरल वेलेजली ने अपनी योजनाओं का निर्माण किया। १८०० की ग्रीष्मऋतु में उसने तुंगभद्रा को पार किया तथा रामचन्द्र अप्पा और अन्य पटवर्धन उसके साथ हो गये। उन्होंने मलप्रभा नदी की वर्षाकालीन बाढ़ों के कारण कठोर यातनाओं को सहन करते हुए भी सम्मिलित होकर धारवाड़ के जिले में चार मास तक विद्रोही का पीछा किया। इस नदी के तटों पर ढोंडिया अपने धावे करता था। स्थानीय जनता उसकी भली प्रकार सेवा करती थी। इस प्रकार उसको पीछा करने वालों की योजनाओं तथा उनकी प्रगतियों की सामयिक सूचना मिल जाती थी। ३० जून को ढोंडिया ने किट्टूर के समीप सहसा पेशवा की सेनाओं पर आक्रमण किया। इस अवसर पर ढोंडोपन्त गोखले मारा गया तथा उसका भतीजा बापू गोखले घायल हो गया (जो बाद को बाजीराव का सेनापति हुआ)। मालूम होता है कि इस सफलता से ढोंडिया का सिर फिर गया तथा उसको भविष्य में असीम अन्याय करने का लालच लग गया। इस पर आर्थर वेलेजली ने दृढ़ निश्चय से उसका पीछा किया। सम्मिलित सेनाओं को तीन भागों में विभाजित कर दिया गया और सारे प्रदेश में सफाई आरम्भ कर दी गयी। दो दल नदी के दोनों तटों के साथ पश्चिम से पूर्व को बढ़े और तीसरे दल ने समीप से उस साहसिक का पीछा किया। योजना निस्सन्देह कष्टसाध्य थी, क्योंकि वर्षा ने सम्पूर्ण देश को लगभग अगम्य बना दिया था। वेलेजली के चातुर्य की कठोर परीक्षा हो गयी और दीन असहाय विद्रोही के विरुद्ध उसके उपाय तथा विपुल साधन प्रभावशाली सिद्ध हुए। दो महीनों में ही वह अन्तिम श्वासें लेने लगा, क्योंकि उसके अधिकांश अनुचरों ने उसका पक्ष त्याग दिया। जहाँ कहीं वह जाता, वहीं उसका पीछा करने वाले पहुँच जाते। विषम संकटावस्था में वह तेजी से भागा और तुंगभद्रा के समीप बेलारी की ओर दक्षिण-पूर्व में चल दिया। अन्त में वह १० सितम्बर, १८०० को बेलारी के समीप भानु नामक स्थान पर डटकर लड़ने के लिए विवश हो गया। वह अपने ६०० अनुचरों के साथ लड़ता हुआ मारा गया। उस समय उसकी आयु ६० वर्ष की थी।

वेलेजली को भारतीय मित्रों के सहयोग से अपने प्रथम स्वतन्त्र अभियान का संचालन सफलतापूर्वक करने का गौरव प्राप्त हुआ। वह पटवर्धनों के साथ विशेष सम्पर्क में आया। उसने सामान्य रूप से मराठा प्रशासन तथा पूना

के शासकों के कष्टों और स्वभावों का मूल्यवान ज्ञान प्राप्त कर लिया। इस प्रकार कर्नल वेलेजली को मराठा चरित्र, उनके शासन, उनके नेताओं, उनकी क्षमता तथा उनकी सेनाओं की विधियों का निकट से परिचय प्राप्त हो गया। इस समय निकट सम्पर्क के कारण कर्नल आर्थर वेलेजली के साथ पटवर्धनों की स्थापित मित्रता बढ़ती गयी, क्योंकि वह युद्ध के भ्रातृत्व द्वारा जोड़ी गयी थी। इस मैत्री के कारण ही अन्त में बाजीराव की शत्रुता से पटवर्धन सरदारों की रक्षा हो सकी तथा वे वर्तमान समय तक अपनी प्राचीन स्थिति बनाये रखने में समर्थ हो सके। इसके अतिरिक्त इस अभियान द्वारा आर्थर वेलेजली महाराष्ट्र में युद्ध का अत्यन्त लाभदायक ढंग से अभिनय करने में समर्थ हो गया। यह अनुभव तीन वर्ष बाद होने वाले युद्ध में उसके लिए अत्यन्त कल्याणकारक सिद्ध हुआ।

ढोंडिया बाघ के नाश के बाद कर्नल आर्थर वेलेजली प्रत्यक्ष रूप से बिना किसी प्रयोजन या आवश्यकता के महाराष्ट्र प्रदेश में ठहरा रहा। भारतीय जनता को इस पर बहुत आश्चर्य हुआ। उसको मैसूर वापस न जाने के लिए गुप्त आदेश प्राप्त हुए थे। इस समय हम उसका वास्तविक उद्देश्य जानते हैं। बाजीराव पर उसी के महल में शिन्दे के रक्षकों की कठोर निगरानी थी। अतः उसने रेजीडेण्ट पामर से कहा कि वह शिन्दे का नियन्त्रण अधिक सहन नहीं कर सकता। उसको भय था कि शिन्दे उसको पदच्युत कर देगा। पामर ने परिस्थिति का समाचार गवर्नर जनरल को भेजा। उसने इस अवसर का प्रसन्नतापूर्वक स्वागत किया। वह बाजीराव को प्रलोभन दे सकता था कि वह अपनी रक्षा के लिए ब्रिटिश सहायक मित्र सेना रखना स्वीकार कर ले। यही कारण है कि गवर्नर जनरल ने अपने भाई को धारवाड़ के समीप ठहरे रहने का आदेश दिया। उनका यह निर्देश था कि यदि शिन्दे बाजीराव को कैद में डाल दे, या पेशवा पूना से भाग निकले, तो वह पूना की ओर प्रयाण करे। इन घटनाओं में से कोई भी घटित नहीं हुई, इसलिए कर्नल वेलेजली विवश होकर मैसूर वापस आ गया। ६ सितम्बर, १८०० को कर्नल पामर ने लिखा—"बाजीराव को अपने विवेक तथा षड्यन्त्र में अपनी दक्षता पर बहुत भरोसा है। इस भरोसे के कारण वह अपनी परिस्थिति से तब तक खेल करता रहेगा, जब तक उसका सर्वनाश न हो जाये।" वास्तव में यह भविष्य-वाणी सत्य सिद्ध हुई। बाजीराव ने कुछ समय तक वेलेजली बन्धुओं को धोखा देने का आनन्द अवश्य अनुभव कर लिया।

५. यशवन्तराव होल्कर का उदय—जब परिस्थिति असह्य हो जाती है तो वह अपने उपचार के लिए विचित्र उपाय ढूंढ लेती है। इसका सर्वश्रेष्ठ

उदाहरण यशवन्तराव का उदय है। वह भूतपूर्व तुकोजी होल्कर के अवैध पुत्रों में से एक था। सम्भवतः उसकी आयु अपने प्रतिद्वन्द्वी दौलतराव के बराबर ही थी। दौलतराव शिन्दे ने तुकोजी होल्कर के पुत्र मल्हारराव की जो दयनीय दशा कर दी थी, उस पर यशवन्तराव उग्र हो उठा और उसने अन्याय का बदला लेने का दृढ़ निश्चय कर लिया। अपने ज्येष्ठ भ्राता विठोजी तथा होल्कर परिवार के अन्य उत्साही नवयुवकों—उदाहरणार्थ, कुमार हरनाथसिंह, अभयसिंह, भारमल आदि—के साथ यशवन्तराव पूना से चल दिया। उसने जेजूरी में अपने परिवार के इष्टदेव की वन्दना की तथा अपने उद्देश्य की सफलता के लिए शक्ति तथा आशीर्वाद प्रदान करने की प्रार्थना की। यह सर्वथा निर्धन नवयुवक जेजूरी से धन की खोज में इधर-उधर दूर-दूर तक भटकता रहा। वह लोगों से मित्रता करता तथा अनियन्त्रित योजनाओं का स्वप्न देखता। दो वर्ष तक यशवन्तराव तथा उसके साथी इसी प्रकार भ्रमण करते रहे। उनको देश की दशा का बहुमूल्य अनुभव प्राप्त होता रहा और वे पीड़ित जनता के भावों को एकत्र करते रहे जिससे वे निर्णय कर सकें कि उनकी दीन अवस्था में कौनसे व्यक्ति उनके मित्र हो सकते हैं। दौलतराव के मन्त्री बालोबा तात्या ने उन कठोर कार्यो का सबल परन्तु व्यर्थ विरोध किया जो शिन्दे होल्कर परिवार के विरुद्ध कर रहा था। इस परिवार ने मराठा राज्य के निर्माण में शिन्दे के बराबर भाग लिया था। १७९९ के अन्त के समीप यशवन्तराव भोंसले राजा से सहायता की विनय करने के लिए नागपुर गया। गुप्तचरों ने यशवन्तराव की प्रगतियों की सूचना पेशवा तथा दौलतराव तक पहुँचायी। उन्होंने राजा को धमकी दी कि विद्रोही को आश्रय देने पर उसे दण्ड दिया जायेगा। उनके सुझाव पर राजा ने २० जनवरी, १८०० को यशवन्तराव को बन्दी बना लिया तथा यह समाचार पूना भेज दिया। यशवन्तराव अपने रक्षकों से छूट निकला तथा नागपुर से भागने के बाद ताप्ती और नर्मदा के वन्य-प्रदेशों में पुनः भटकता फिरा। यहाँ पर उसे लाल भवानी शंकर नामक निष्ठावान सेवक तथा परामर्शदाता मिल गया, जिसने बाद में सुख-दुख में उसका निरन्तर साथ दिया। दोनों घुमक्कड़ों ने दो सौ भील अनुयायी एकत्र करके उत्तर खानदेश में सुल्तानपुर तथा नन्दुरबार के प्रदेशों पर धावे करने आरम्भ कर दिये। यह सुनकर कि उसका भाई काशीराव उसके विरुद्ध प्रयाण कर रहा है, यशवन्तराव नर्मदा पार करके धार भाग गया। वहाँ आनन्दराव पवार ने कुछ समय तक उसको शरण दी और अपनी सेना में रख लिया। परन्तु शिन्दे ने आनन्दराव को डराकर विवश कर दिया कि वह अपने देश से यशवन्तराव को निकाल दे। यशवन्तराव ने

इस समय तक विपुल धन एकत्र कर लिया था, जिससे उसने बहुत-से सवार नौकर रख लिये।[७]

प्रतिशोध की तीव्र भावना से उत्तेजित होकर वह मालवा में शिन्दे प्रदेशों को स्वतन्त्रतापूर्वक लूटने लगा तथा खांडेराव को उसकी रक्षा से छीनने के विचार से अपने भाई काशीराव के विरुद्ध स्पष्ट युद्ध की घोषणा कर दी। काशीराव मल्हारराव की मृत्यु के पश्चात उत्पन्न हुआ था। यशवन्तराव ने घोषणा कर दी कि काशीराव होल्कर प्रदेश का न्यायसंगत उत्तराधिकारी है। इस निश्चय के कारण होल्कर राज्य के अधिकांश प्राचीन सेवक अपने अनुचरों सहित यशवन्तराव के साथ हो गये। यद्यपि एक आंख में अकस्मात् गोली लगने से वह काना हो गया था, फिर भी उसने शीघ्र ही जीवन की गति में वेग प्राप्त कर लिया। उसने महेश्वर में सुरक्षित अहल्याबाई के विशाल कोष पर धावा किया। इस प्रकार प्राप्त धन से उसने शिन्दे के विरुद्ध लगातार युद्ध किया। १८०० की ग्रीष्मऋतु में दोनों विरोधियों में घातक युद्ध आरम्भ हो गया। इसी समय पर महादजी शिन्दे की विधवाओं ने उत्तर में अपने युद्ध को पुनः आरम्भ कर दिया था तथा शिन्दे के उत्तरी प्रदेशों का प्रबन्धक लकबा लाड़ उनके साथ हो गया था। जब शिन्दे महिलाएँ मालवा पहुँचीं तो यशवन्तराव उनसे मिला तथा दौलतराव को पदच्युत करके उसके स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति को बैठाने में अपनी सहायता प्रस्तुत की। परन्तु अन्तिम सहमति निश्चित होने के पूर्व ही यशवन्तराव ने सहसा १ नवम्बर, १८०० को शिन्दे महिलाओं के उज्जैन स्थित शिविर पर धावा बोल दिया। लकवा शीघ्र ही घटनास्थल पर पहुँच गया तथा उसने यशवन्तराव और शिन्दे महिलाओं में फिर मेल करा दिया। महिलाएँ ग्वालियर की ओर चली गयीं और यशवन्तराव शिन्दे की सेनाओं से युद्ध करने के लिए नर्मदा की ओर लौट आया। ये सेनाएँ उसको परास्त करने के लिए तीव्र गति से बढ़ रही थी। दौलतराव ने दिसम्बर, १८०० में पूना छोड़ा। इसके पूर्व उसने बालोजी कुंजर को बाजीराव के पास अपने प्रशासनाधिकारी के रूप में नियुक्त कर दिया। उसने बाजीराव की रक्षा करने तथा उसकी गतिविधियों पर दृष्टि रखने के उद्देश्य से शर्जाराव घाटगे को भी पर्याप्त दल सहित नियुक्त कर दिया। मल्हारराव होल्कर की पत्नी तथा पुत्र खांडेराव सुरक्षार्थ बाजीराव के महल को हटा दिये गये। यदि दौलतराव में वह उत्साह होता जो यशवन्त-

---

[७] यशवन्तराव की आरम्भिक प्रगतियों के लिए देखो—फालके कृत 'कोटा के पत्र', जिल्द १, पृ० १२८, १२९, १३८, १४२ तथा १४३। उसकी मुद्रा १५१ पर देखो।

राव का जन्मजात गुण था, तो वह सुविधापूर्वक यशवन्तराव को कुचल सकता था। इधर शिन्दे को नर्मदा पहुँचने में बहुत समय लग गया।

इस बीच शिन्दे महिलाएँ शान्त नहीं बैठी रहीं। मध्य भारत में अपना प्रभाव स्थापित करने के बाद उन्होंने सम्राट का समर्थन प्राप्त करने का प्रयत्न किया। सम्राट ने उनकी सहायता के लिए बेगम समरू को भेज दिया। इस प्रकार दौलतराव की स्थिति संकटग्रस्त हो गयी। परन्तु सौभाग्यवश उसके तोपखाने का मुख्य अधिकारी पेरों उसके प्रति पूर्णतः निष्ठावान रहा। उसने झाँसी के समीप २ जून, १८०१ को शिन्दे महिलाओं पर आक्रमण किया। घनघोर युद्ध हुआ, परन्तु कोई निर्णय न हो सका। इस युद्ध में लकबा के गहरे घाव लगे, जिसके कारण वह ७ फरवरी, १८०२ को मर गया। इस प्रकार शिन्दे महिलाओं का पक्ष निर्बल हो गया। अपने अद्‌भुत पराक्रम से यशवन्त-राव ने मालवा में हलचल मचा दी। उसने उज्जैन को लूट लिया और जो कुछ धन मिला उसको उठा ले गया।

६. **विठोजी होल्कर का वध**—जब यशवन्तराव नर्मदा क्षेत्र में इस प्रकार व्यस्त था, तब उसका भाई विठोजी बेकार नहीं बैठा रहा। उसने सारे महा-राष्ट्र में पीड़ा और हत्याओं की धूम मचा दी। सभी विद्रोही व्यक्ति उसके साथ हो गये, जिन्होंने बाजीराव तथा दौलतराव के कारण अब तक अनेका-नेक कष्ट सहे थे। खानदेश तथा कृष्णा के बीच का प्रदेश अराजकता तथा अव्यवस्था का साकार दृश्य बन गया। सर्वत्र लूट तथा अग्निकाण्ड होने लगे। राजधानी की सीमाओं के बाहर बाजीराव के शासन का शायद ही कोई चिह्न रह गया था। सभी दिशाओं से उसके पास नित्य अत्याचार भरी गाथाएँ पहुँचने लगीं।

विठोजी होल्कर अपने द्वारा नष्ट किये गये सभी प्रदेशों में घोषित करता था कि वह अमृतराव का कार्यकर्ता है। बाजीराव ने सिद्ध कर दिया है कि वह अपने शासन के लिए अयोग्य तथा अक्षम है। इसलिए वह अमृतराव का शासन जमा रहा है। उसका एकमात्र उद्देश्य निकटवर्ती सर्वनाश से मराठा राज्य की रक्षा करना है। यह बाजीराव-विरोधी आन्दोलन १७९९ में आरम्भ हुआ तथा १८०३ के अन्त तक नित्य उग्र होता गया। यह बसई की सन्धि हो जाने के बाद समाप्त हुआ। चार वर्षों के इन उपद्रवों तथा उत्पातों से संसार को यह स्पष्ट हो गया कि बाजीराव के द्वारा कोई उन्नति सम्भव नहीं है। दोनों भाइयों—उत्तर में यशवन्तराव तथा दक्षिण में विठोजी—ने मिल कर उस सत्ता के समस्त चिह्न व्यवहार रूप से नष्ट कर दिये, जिसका उप-भोग पेशवा तथा उसका अनुचर शिन्दे करते थे। पेशवा इस प्रकार भयग्रस्त

हो गया कि उसने अमृतराव तथा विठोजी द्वारा अपने को समाप्तप्राय समझ लिया। उसने व्याकुल होकर शीघ्रतापूर्वक जितने व्यक्ति मिल सके उन सबको एकत्र करके बालोजी कुंजर और बापू गोखले के अधीन विठोजी के विरुद्ध भेज दिया। उपद्रव एक-एक करके विभिन्न स्थानों में होते थे, अतः बाजीराव सरलतापूर्वक उनका प्रतिकार करके अपने शत्रुओं को अलग-अलग कुचल सकता था। उनमें से बहुत-से पकड़ लिये गये और शेष मार डाले गये। बापू गोखले ने विठोजी होल्कर को जीवित पकड़ लिया तथा बेड़ियों में जकड़कर पेशवा के सम्मुख ले आया। पेशवा ने आवेश में आकर उसको हाथी के पैर से बँधवा दिया। वह महल के आँगन में इधर-उधर घसीटा गया तथा अत्यन्त निर्दयता से मारा गया। इस दृश्य को बाजीराव तथा उसका मन्त्री कुंजर ऊपर के छज्जे से प्रसन्नतापूर्वक देखते रहे। शव का पूरे २४ घण्टों तक प्रदर्शन करने के बाद अन्त्येष्टि की आज्ञा दी गयी। यह घटना १६ अप्रैल, १८०१ को घटित हुई। मूढ़तावश बाजीराव यह न समझ सका कि इस उग्र तथा विचारहीन कृत्य का उस पर क्या प्रभाव पड़ेगा। मराठा राज्य के कई हितैषियों ने उससे होल्कर परिवार के सदस्यों के प्रति नम्र उपाय व्यवहार में लाने के लिए आग्रहपूर्वक निवेदन किया, परन्तु बाजीराव ने उनकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया।

७. यशवन्तराव होल्कर रक्षक की स्थिति में—पेशवा के इस कृत्य से उसके भाग्य का निर्णय हो गया। जब विठोजी पूना में हाथी के पैर के नीचे घसीटा जा रहा था, तब यशवन्तराव नर्मदा तट पर शिन्दे की सेनाओं के साथ भयानक संघर्ष में संलग्न था। अक्तूबर, १८०१ के अन्त में कुछ महीनों बाद वह शिन्दे के पंजों से छूटकर दक्षिण में पेशवा की ओर ध्यान दे सका। इस ग्रीष्मकाल में नर्मदा तट का युद्ध इतिहास में स्मरणीय हो गया है। यहाँ शिन्दे के प्रशिक्षित यूरोपीय कमाण्डरों का पाला यशवन्तराव की अशिक्षित, अनियन्त्रित, उत्साही तथा जन्मजात विलक्षण बुद्धि से पड़ा। युद्धक्षेत्र नर्मदा के दक्षिण तट से लेकर उत्तर में इन्दौर तथा उज्जैन तक फैला हुआ था। इसमें नदी तथा उसके आगे विन्ध्य-पर्वतमाला ने नाना प्रकार की बाधाएँ उपस्थित कर रखी थीं। १८०१ में जून से अक्तूबर तक चार महीने घोर युद्ध होता रहा। दोनों ओर रक्त की नदियाँ बहीं और संहार हुआ। नर्मदा तथा उज्जैन के बीच का समस्त प्रदेश निर्जन हो गया। दौलतराव मई के अन्त में नर्मदा-तट पर पहुँच गया, परन्तु उसको नदी पार करने में पूरे तीन माह लग गये। उसने पूना स्थित शर्जाराव के पास बार-बार आग्रहपूर्वक समाचार भेजे कि वह शीघ्रतापूर्वक उसकी सहायता के लिए आ जाये। परन्तु यह राक्षस

(शर्जाराव) पेशवा से प्रतिज्ञात साहाय्यकर वसूल करने में व्यस्त था। इस समय यह बालोजी कुंजर के हाथों मरने से बाल-बाल बच गया। उस समय अधिकांश व्यक्तियों द्वारा अपनाये जाने वाले दुष्ट षड्यन्त्रों का उदाहरण होने के कारण इस विचित्र घटना का अध्ययन लाभप्रद है। शर्जाराव ने अपने को कष्टपूर्वक मुक्त कर लिया तथा नर्मदा-तट पर अपने जमाता का साथ देने के लिए पूना से १२ जुलाई को चल दिया।

उत्तर को जाते हुए शर्जाराव ने लूट तथा विनाश के रूप में अपने चरण-चिह्न छोड़े। वह ६ अक्तूबर को नर्मदा-तट पर पहुँचा। दोनों ने मिलकर यशवन्तराव को भयंकर रूप से पराजित कर दिया तथा इन्दौर और उज्जैन दोनों पर पुनः अधिकार जमा लिया। उन्होंने गत वर्ष होल्कर द्वारा उज्जैन में किये गये विनाश का बदला इन्दौर से लिया। दोनों प्रतिद्वन्द्वियों ने एक-दूसरे के अनुचरों को अपनी ओर मिलाने के लिए घूस तथा प्रलोभन का स्वतन्त्रतापूर्वक उपयोग किया। ३० अक्तूबर को होल्कर ने घाटगे को अच्छी तरह पछाड़ दिया। इसके बाद दोनों विरोधियों ने अलग होकर विभिन्न उपायों का उपयोग आरम्भ किया। इसमें केवल शिन्दे को हानि हो सकती थी, क्योंकि उसके पास बहुत-सा धन तथा देश था और आरम्भ में अकिंचन होने के कारण होल्कर के लिए लाभ ही लाभ था। सब मिलकर कहा जा सकता है कि होल्कर के प्रयास सफल हुए। दौलतराव ने शान्ति-वार्ता का प्रस्ताव करके इस विवाद के एक पक्ष के रूप में होल्कर को मान्यता दे दी। स्वामी के रूप में पेशवा ने शिन्दे तथा होल्कर दोनों को विशेष निर्देश द्वारा युद्ध बन्द करने की आज्ञा दी। परन्तु अब स्वामी (पेशवा) के शब्दों में कोई शक्ति नहीं रह गयी थी।

यद्यपि नर्मदा के अभियान में यशवन्तराव को निर्णायक विजय प्राप्त नहीं हुई थी, परन्तु उसने नेतृत्व के लिए निस्सन्देह ख्याति प्राप्त कर ली जो उसके प्रतिद्वन्द्वी दौलतराव की ख्याति की अपेक्षा काफी बढ़ी-चढ़ी थी। होल्कर ने अपने पास स्वामिभक्त अनुचरों की एक मण्डली एकत्र कर ली थी जिसमें श्याम-राव महादिक, फतेहसिंह माने, जीवाजी यशवन्त, हरनाथसिंह, अमीरखाँ तथा इन सबसे बढ़कर होल्कर परिवार के प्राचीन सेवक एवं पानीपत के युद्ध के अनुभवी पाराशर दादाजी के रूप में गम्भीर अनुभवी परामर्शदाता थे। ऊपर लिखे हुए नामों का उस समय के ऐतिहासिक पत्रों में बार-बार उल्लेख है।

इस प्रकार १८०१ का वर्ष व्यतीत हो गया। अगला वर्ष बाजीराव तथा उसके राज्य के लिए नवीन विपत्तियाँ लेकर उपस्थित हुआ। यशवन्तराव का भाग्य इस समय उदीयमान था। तीन वर्ष पहले का गृहहीन भगोड़ा इस

समय होल्कर परिवार का उद्धारक तथा शिन्दे और बाजीराव के लिए हौवा माना जाता था। उसका एकमात्र दोष मनमौजीपन था। मदिरापान की कुटेव से यह झक्कीपन और भी बढ़ गया था। इसके कारण उसकी बुद्धि अशक्त बन जाती थी। निस्सन्देह वह जन्मजात वीर था।

८. **यशवन्तराव का दक्षिण को प्रस्थान**—अब इस नाटक की चरम सीमा शीघ्रतापूर्वक समीप आने लगी। दक्षिण के लिए १८०२ का वर्ष यशवन्तराव के गूँजते हुए पराक्रमों के साथ आरम्भ हुआ। वहाँ के लोग यशवन्तराव के आगामी आक्रमण का स्थान निश्चय न कर पाने से भयभीत थे। उसका तात्कालिक उद्देश्य अपने भतीजे खांडेराव को दौलतराव के हाथों से छीनकर अपने पास ले आना था। उसने काशीराव को पहले ही पकड़कर सेंधवा के गढ़ में कड़ा पहरा लगा दिया। बाजीराव की आज्ञानुसार अब यशवन्तराव खानदेश में थलनेर के स्थान पर रहने लगा और ताप्ती के तट पर अपना शिविर लगा लिया। इस स्थान से पहली बार उसने पाराशर दादाजी के द्वारा बाजीराव से प्रार्थनाएँ आरम्भ कीं। उसने अपनी शिकायत दूर कराने के लिए पाराशर को पूना भेजा। शीघ्र संचार के लिए उसने विशेष डाक सेवा की स्थापना की। रघुजी भोंसले पूना पहुँचा और उसने बाजीराव को परामर्श दिया कि होल्कर के साथ सम्मानपूर्वक समझौता कर ले।

पाराशर फरवरी, १८०२ पूना में पहुँच गया। पेशवा उसकी बात नहीं सुनना चाहता था। यशवन्तराव ने आग्रहपूर्वक कहा कि पेशवा होल्कर तथा शिन्दे दोनों का स्वामी है। अतः उसको दोनों के साथ निष्पक्ष न्याय करना चाहिए। साथ ही उसने माँग रखी कि खांडेराव होल्कर को शिन्दे से छीन कर उसके पास भेज दिया जाये। बाजीराव ने उसके प्रति न्याय करने की कोई इच्छा प्रकट नहीं की। व्यर्थ समय व्यतीत किये जाने से रुष्ट होकर यशवन्तराव ने अपने दो सरदारों—फतेहसिंह माने तथा शहामतखाँ—को बाजीराव के प्रदेश से बलपूर्वक बदला लेने के लिए भेजा। स्वयं थलनेर से शीघ्र दक्षिण को चल पड़ा। अब बाजीराव को अपने जीवन के लिए संकट दीखने लगा। पेशवा की निष्कपटता के प्रथम प्रमाण के रूप में यशवन्तराव ने खांडेराव होल्कर को पुनः वापस दिये जाने की माँग रखी। उसने यह भी कहा कि अपने भाई विठोजी की हत्या के लिए वह कोई बदला लेना नहीं चाहता। बाजीराव का एकमात्र उत्तर कागज पर शान्ति प्रस्ताव का प्रदर्शन, शपथों एवं प्रतिज्ञाओं का लिखना तथा किसी न किसी बहाने कार्य में विलम्ब उपस्थित करना था। पाराशर तथा अहल्याबाई के विश्वस्त सचिव गोविन्दपन्त गणु ने नम्रतापूर्वक घुटने टेककर बाजीराव से विनय की कि होलकर को शान्त किया

जाये, जिससे कोई भयानक विपत्ति न आ जाये। परन्तु उसकी ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया गया। इसके विपरीत शर्जाराव ने खांडेराव होल्कर तथा उसकी माता को हटा दिया। उन दोनों तथा उनके कुछ अनुचरों के बेड़ियाँ डालकर उन पर कठोर पहरा लगा दिया। इस प्रकार यशवन्तराव और भी कुपित हो गया। इस समय दौलतराव ने अपनी सेनाओं को बाजीराव की सहायता के लिए दक्षिण भेज दिया, जिससे होल्कर की ओर से कोई हानि न होने पाये। इस प्रकार यशवन्तराव पेशवा से बलपूर्वक कोई निश्चय कराने के लिए विवश हो गया। उसके सरदारों ने कृष्णा नदी तक बाजीराव का प्रदेश निर्दय क्रोध से लूट लिया। इतने पर भी यशवन्तराव की याचनाओं की ओर बाजीराव ने कोई ध्यान नहीं दिया। वह पूर्ण निश्चिन्तता से पूना के समीपवर्ती उद्यान गृहों में आनन्दोपभोग के दैनिक क्रम में तल्लीन रहा। साथ ही उसने होल्कर परिवार का समस्त राज्य जब्त करने की आज्ञा दे दी। इस पराकाष्ठा पर झगड़ा और बढ़ गया तथा उपचार की सीमा के बाहर हो गया।

इसी समय बाजीराव ने पूना में प्रतिनिधि को बन्दी बनाकर तथा उसकी जागीर जब्त करके अपने लिये अधिक कष्ट को निमन्त्रण दिया। भूतपूर्व पेशवा की विधवा यशोदाबाई को इस समय उसने रायगढ़ में कठोर बन्धन में डाल दिया, क्योंकि वह उसकी स्थिति के लिए संकट का सम्भव कारण बन सकती थी।[८] ये उपकथाएँ संख्या में अनेक हैं, परन्तु इस समय इनको सविस्तार वर्णन के बिना ही छोड़ देना चाहिए। वैसे इन्होंने बाजीराव की स्थिति बहुत अंश तक क्षीण कर दी थी। उसने निष्ठा पर सन्देह हो जाने के कारण रस्ते परिवार की सम्पत्ति का अपहरण कर दिया और पटवर्धन परिवार पर अत्याचार किये। पूना पर यशवन्तराव के आक्रमण से बाजीराव अपनी राजधानी छोड़ने के लिए विवश हो गया। इस प्रकार बहुत दिनों से राज्य की सेवा करने वाले अनेक सरदारों की दुर्गति होने से बच गयी। ग्रीष्मऋतु के साथ-साथ पूना का वातावरण भयावह हो गया और विभिन्न सरदारों के प्रतिनिधियों के बीच रात-दिन विचार-विमर्श होने लगे। परन्तु बाजीराव ने यशवन्तराव की शिकायतों की ओर ध्यान देने की कोई इच्छा प्रकट नहीं की।

अपनी याचनाओं के प्रति बाजीराव को सर्वथा कठोर पाकर यशवन्तराव ने अप्रैल में दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। उसको मालूम हुआ कि शिन्दे की कुछ सेनाएँ बुरहानपुर पहुँच गयी हैं। बाजीराव ने इस समय एक व्यक्तिगत

---

८ इस महिला की मृत्यु (१८११ में) के बाद उत्तर भारत में १८२०-२४ के बीच एक ठगिनी प्रकट हुई। उसने इस महिला का रूप बना लिया। एल्फिस्टन के पत्र-व्यवहार में इस ठगिनी का उल्लेख है।

दूत यशवन्तराव के पास लौटने की प्रार्थना करने के लिए भेजा, परन्तु उसकी माँगों के विषय में कोई संकेत नहीं किया। यशवन्तराव आगे बढ़ा और चालिसगाम के समीप कासरबाड़ी की घाटी पार करके उसने न्याय की प्रार्थना करते हुए पेशवा को सम्मानपूर्वक विनम्र पत्र भेजे। उसने उपहार में हाथी और घोड़े भी भेजे। बाजीराव का उत्तर केवल यह था कि वह आगे न बढ़े। स्पष्ट ही उसका अभिप्राय समय प्राप्त करना था, जिससे शिन्दे के अनुशासित दल आ जायें। यशवन्तराव को इस चाल का पता चल गया, अतः वह गोदावरी तक बढ़ आया। इससे बाजीराव एकदम हक्का-बक्का हो गया और उसने होल्कर के कार्यकर्ता पाराशर से याचना की कि वह अपने स्वामी से ताप्ती तट को वापस जाने के लिए अनुनय-विनय करे। उसने वचन दिया कि यदि वह इस प्रकार वापस हो जायेगा तो उसकी माँगों पर उसी के अनुकूल विचार किया जायेगा तथा समस्त भूमि और सम्पत्ति वापस कर दी जायेगी। परन्तु ये निस्सार शब्द किसी को धोखा नहीं दे सकते थे। पाराशर ने दृढ़तापूर्वक कहा—"मैं चार महीनों से यहाँ आपके द्वार पर बैठा हुआ न्याय की याचना कर रहा हूँ। क्या आपने अब तक अपने एक भी वचन का वास्तव में पालन किया है ? मैं अपने स्वामी से वापस जाने के लिए किस प्रकार कह सकता हूँ ?" नागपुर के रघुजी भोंसले के दो कार्यकर्ता इस अवसर पर उपस्थित थे, उन्होंने दृढ़तापूर्वक पाराशर का समर्थन किया। बाजीराव की इच्छा नम्र हो जाने तथा होल्कर को कुछ सन्तोष देने की थी। परन्तु इस समय बालोजी कुंजर ने होल्कर की शिकायतों के प्रति घृणा प्रकट की तथा बाजीराव को अपने क्रूर शत्रु (यशवन्तराव) के साथ वैर शान्ति के संकटपूर्ण मार्ग का अनुसरण न करने की चेतावनी दी। वास्तव में यह कुंजर ही विठोजी होल्कर को दिये गये कठोर दण्ड के लिए मुख्य रूप में उत्तरदायी था। इस पर बाजीराव ने अपनी पूर्व कठोरता पुनः धारण कर ली और होल्कर के पक्ष में जरा-सी कानाफूँसी करने वाले को भी दण्ड देने लगा। इसके साथ-साथ वह अपनी समस्त उपलभ्य सेनाओं को भी एकत्र करता रहा, जिससे राजधानी पर आक्रमण की परिस्थिति का सामना कर सके। होल्कर सदृश क्षमता-सम्पन्न व्यक्ति से युद्ध करने के लिए उसने अपने कृपापात्रों तथा नीच सेवकों को सेना का कमाण्डर नियुक्त किया।

९. **बाजीराव पूना में परास्त**—अपने साथ किये गये अन्यायों का बदला लेने के विचार से यशवन्तराव अत्यन्त क्रोधपूर्वक अहमदनगर पर टूट पड़ा। यह नगर उस समय शिन्दे के अधिकार में था। यशवन्तराव ने शहर को लूट लिया और आगे बढ़कर श्री गोंडा और जम्बगाँव के स्थानों पर बने शिन्दे

के महलों को खोदकर जला डाला। महादजी तथा उसके सरदारों द्वारा निर्मित भव्य भवन भूमिसात कर दिये गये। इस भयानकता का बाजीराव के मन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसने वस्त्रों, उपहारों तथा सन्देशों सहित पाराशर पन्त को यशवन्तराव के पास भेजकर प्रार्थना की कि वह समस्त विनाशपूर्ण उपाय छोड़कर शान्तिमय मार्ग ग्रहण करे। इस समय होल्कर का पीछा करती हुई शिन्दे की सेनाएँ शीघ्रतापूर्वक बढ़ रही थीं। गोदावरी पार करने पर उनके सरदारों को समाचार प्राप्त हुआ कि बाजीराव होल्कर की धमकियों के सामने झुक गया है। इस पर उन्होंने बाजीराव को कड़े विरोध पत्र भेजे और वस्त्र तथा उपहार होल्कर के पास नहीं पहुँचने दिये। इससे बाजीराव अत्यन्त व्याकुल हो गया। वह भय से पराभूत होकर अपने मित्रों तथा परिचित व्यक्तियों से इस विपत्ति का प्रतिकार करने के विषय में परामर्श करता हुआ नगर में घूमता फिरा। होल्कर द्वारा प्रतिशोध के भय से बालोजी कुंजर काँप गया।

होल्कर के सरदार फतेहसिंह माने तथा मीरखाँ बहुत दिनों से महाराष्ट्र को नष्ट कर रहे थे। माने पण्ढरपुर पर टूट पड़ा। वहाँ के पुरोहितों तथा धर्माधिकारियों ने एक सप्ताह सामूहिक सभाएँ कीं तथा दिन-रात उत्सुकता-पूर्वक लूटमार से सकुशल रहने के लिए मन्दिर में प्रार्थनाएँ कीं। माने वहाँ पहुँचा, परन्तु उसने मन्दिर को कोई हानि नहीं पहुँचायी। उसने देवता को कुछ उपहार भी दिये। बारामती के स्थान पर ८ अक्तूबर को बाजीराव की सेनाओं से उसका भयानक युद्ध हुआ। इन सेनाओं का नेता बाबा पुरन्दरे था। माने ने घोषणा की कि उसका विचार अपने स्वामी पेशवा के विरुद्ध हथियार उठाने का नहीं है। परन्तु पुरन्दरे ने अग्नि-वर्षा आरम्भ कर दी तो माने को उसका उत्तर देना पड़ा। इस युद्ध में कई सरदार घायल हो गये तथा पेशवा की सेनाएँ भिन्न-भिन्न दिशाओं में तितर-बितर हो गयीं। इसके ठीक एक सप्ताह बाद यशवन्तराव स्वयं बारामती पहुँच गया तथा जब माने वहाँ पहुँचकर उसके साथ हो गया तो उसने अपना शिविर ढोंड में सगठित किया। इसके पहले यशवन्तराव ने जेजूरी में अपने कुलदेव के दर्शन किये। माने पेशवा का गर्वीला ध्वज उठा लाया था। यह ध्वज उसने पुरन्दरे को यह कहते हुए वापस कर दिया—"हम सब एक हैं। एक ही प्रभु के समान हैं। हम विद्रोही नहीं हैं।"

बारामती का यह तुच्छ युद्ध महान भावी घटनाओं का पूर्व संकेत था। इससे बाजीराव सर्वथा सामर्थ्यहीन हो गया तथा पूना के नागरिकों ने सुरक्षा की दृष्टि से नगर त्यागकर अन्यत्र आश्रय लिया। पेशवा ने अपने आभूषण तथा बहुमूल्य वस्तुएँ सिंहगढ़ भेज दीं तथा स्वयं रायगढ़ पलायन करने के लिए तैयार हो गया। परन्तु बालोजी कुंजर ने इस मार्ग का विरोध किया

तथा साग्रह कहा कि स्वामी के लिए इस प्रकार की कायरता प्रकट करना उपयुक्त नहीं है। उसने कहा—"यदि आप ही भागते हैं, तो आक्रान्ता से कौन लड़ेगा ?"

बाजीराव अपने प्रियतम मित्र शिन्दे से प्रतिक्षण प्रार्थना कर रहा था[६] कि वह अविलम्ब आकर उसकी सहायता करे, परन्तु वह नाना प्रकार के कष्टों द्वारा अभिभूत होने के कारण उज्जैन में न हट सका। उसके पास न धन था, न अन्य साधन, क्योंकि होल्कर ने उसके समस्त प्रदेश तथा प्रशासन को अस्त-व्यस्त कर दिया था। तथापि उसने अपने बख्शी सदाशिव भास्कर को शीघ्रता से भेज दिया तथा उसके साथ वे सब सेनाएँ कर दीं जिन्हें वह बाजी-राव की सहायता के लिए भेज सकता था। वह सेनानी अगस्त के अन्त के समीप पैठन पहुँचा तथा ८ सितम्बर को अहमदनगर। वह तीव्र गति से आगे बढ़ा। उसने शहामतखाँ के अधीन होल्कर की सेनाओं से टक्कर ली। यह युद्ध भागते हुए लड़ा गया। वह २२ अक्तूबर को राजधानी पहुँच गया। उसने अपना शिविर वनवाड़ी में लगाया। इससे बाजीराव के हृदय में नवीन साहस का उदय हुआ। शिन्दे का बख्शी विश्वासपूर्वक कहता था कि वह होल्कर के झुण्डों को अपनी तोपों से उड़ा देगा। बख्शी को धन की बहुत आवश्यकता थी। बालोजी कुंजर ने तीन लाख रुपये देकर उसकी आवश्यकता पूरी की। यशवन्तराव होल्कर के गुप्तचरों ने बहुत अच्छी सेवा की, अतः वह वीरता और अग्रदृष्टिपूर्वक किसी भी दैवयोग का सामना करने के लिए तैयार हो गया। उसकी इच्छा पेशवा को व्यक्तिगत हानि पहुँचाने की नहीं थी। शिन्दे ने उसके साथ अन्याय किया था। उसकी इच्छा अपने स्वामी से न्याय प्राप्त करने की थी। पेशवा के कारण दुखी जनता के विशाल भाग ने यशवन्तराव की गतिविधियों का स्वागत किया। बारामती से यशवन्तराव ने पेशवा को निम्न शब्दों में अन्तिम चेतावनी भेजी—"आप स्वामी हैं। मेरी इच्छा आपके विरुद्ध हाथ उठाने की कदापि नहीं है। शिन्दे के साथ मेरे झगड़े का शान्तिमय निपटारा करना आपको शोभा देगा। अंग्रेज हमारे द्वार पर मराठा राज्य पर अधिकार करने के अवसर की प्रतीक्षा कर रहे हैं। इसको केवल शिन्दे और होल्कर आपके साथ सहयोगपूर्वक निष्कपट सेवा करके रोक सकते हैं। व्यर्थ वार्तालापों में नष्ट करने के लिए मेरे पास समय नहीं है। मेरा निश्चय अपने ही बल से निपटारा करने का है। मैं आपको शान्तिमय निपटारे का यह अन्तिम अवसर दे रहा हूँ। यदि आपकी इच्छा रक्तपात रोकने की है तो

---

६ पेशवा द्वारा शिन्दे को पत्र, जिसमें ये शब्द हैं—प्राणसंख्या मित्राची भेंट कधीं होईल ?

बाल्लोजी कुंजर तथा दाजीबा देशमुख को अपनी ओर से तथा बाबूराव आंग्रे और निम्बाजी भास्कर को शिन्दे की ओर से शर्तें निश्चय करने के लिए तुरन्त भेज दें। केवल ये ही लोग उत्तरदायी रूप से बात का निश्चय कर सकते हैं। मैं और किसी से बात नहीं करूँगा। यदि ये कार्यकर्ता नहीं आयेंगे तो मैं सशस्त्र निर्णय प्राप्त करने पर विवश हो जाऊँगा। ऐसी दशा में आपसे प्रार्थना करूँगा कि आप स्वयं युद्ध से दूर रहें। मैं आपको या आपके पक्ष-पातियों को कोई हानि पहुँचाना नहीं चाहता। मैं केवल शिन्दे की सेनाओं से लड़ूँगा। यदि इस प्रकार का रण शिन्दे के प्रतिकूल रहे, तब भी आप पूना न छोड़ें। आप यह अवश्य स्मरण रखें कि मैं आप में शिन्दे के समान ही निष्ठा रखता हूँ। मेरा झगड़ा केवल शिन्दे से है तथा मैं अपने ढंग से उसका निर्णय करने के लिए तैयार हूँ। आप शिन्दे के हाथ की कठपुतली बन गये हैं तथा राज्य का नाश कर रहे हैं। अंग्रेज द्वार पर हैं। आप स्वामी का कर्तव्य करें और मुझे सेवक का कार्य करने दें।"

यह दृढ़ चेतावनी पेशवा के पास २३ अक्तूबर को प्रातःकाल पहुँच गयी। इसे सुनकर वह तुच्छ भय से भर गया। मराठा राज्य की उस विशाल राजधानी में एक भी व्यक्ति ने आगे आकर बाजीराव को यह परामर्श नहीं दिया कि वह होल्कर से मिलकर युद्ध को बन्द कर दे और राज्य की रक्षा करे। पूरे एक दिन के वार्तालाप के बाद बाजीराव ने बाबूराव नारायण वैद्य तथा पाराशर दादाजी के साथ अपने तीन आदमियों को होल्कर से मिलने भेजा। यशवन्तराव ने उनसे मिलने से इनकार कर दिया। उसने कहा—"कुंजर मुझसे मिलने से क्यों भागता है? यदि मेरी बात का उसको विश्वास नहीं है, तो वह जिनके नाम बताये, उन व्यक्तियों को मैं पेशवा के पास शरीर बन्धक के रूप में भेजने को तैयार हूँ। केवल कुंजर बैर-शान्ति का विरोध करता है, इसलिए जब तक वह नहीं आयेगा, शान्ति का कोई वार्तालाप नहीं हो सकता। मैं कल ही रणक्षेत्र में न्याय प्राप्त कर लूँगा। पेशवा से मेरी विनय है कि वह पूना न छोड़े। मैं ऐसा कोई कार्य नहीं करूँगा जो उसके जीवन या उसकी स्थिति को संकट में डाल दे। उस पर शिन्दे का जादू सवार है। कल अपनी तलवार से मैं वह जादू उतार दूँगा।"

पेशवा के सन्देशवाहक यह उत्तर वापस ले आये तथा उन्होंने कुंजर से प्रार्थना की कि वह स्वयं जाकर होल्कर से मिल ले। परन्तु दीवान ने इस सुझाव को ठुकरा दिया। उसने कहा—"हम रणक्षेत्र में होल्कर का अन्त करके उसकी उग्रता को सदा के लिए समाप्त कर देंगे।" होल्कर के कार्य-कर्ताओं ने घुटने टेककर पेशवा से प्रार्थना की कि वह उनके स्वामी होल्कर

के साथ शान्ति तथा मैत्री का मार्ग अपनायें। परन्तु उनके भीरु हृदय की उत्तेजनाओं तथा दुष्ट कृपापात्रों के परामर्श ने उसे युद्ध के आत्मघाती मार्ग पर अग्रसर कर ही दिया।

अन्त में हिन्दुओं के दिवाली त्यौहार का भाग्य निर्णायक सोमवार २५ अक्तूबर, १८०२ को आ ही गया, जिस दिन महाराष्ट्र तेल तथा उष्ण जल के स्थान पर रक्त से स्नान करने वाला था। दोनों सेनाएँ जानती थीं कि क्या होने वाला है, फिर भी गत रात्रि (हिन्दुओं की धन त्रयोदशी) को वे तैयार हो गयी थीं कि अगले दिन यथाशक्ति अपने कर्तव्य का पालन करेंगी। यशवन्तराव ने सन्देश भेज दिया कि वह प्रायः दो घण्टे तक प्रतीक्षा करेगा। बाद में ईश्वर द्वारा दिखाये मार्ग के अनुसार कार्य करेगा। बाजीराव ने जल्दी से नाश्ता किया। जैसे ही उसने पलायन आरम्भ किया, वैसे ही बालोजी कुंजर उसको बलपूर्वक शिन्दे के शिविर में ले गया। करीब ८ बजे शिन्दे की सेना ने यशवन्तराव के दल पर अग्नि-वर्षा आरम्भ कर दी। जब तक विरोधी पक्ष से पूरे २५ गोले न आ गये, तब तक यशवन्तराव अपने आदमियों को रोके रहा। होल्कर ने ११ बजे आक्रमण किया। बाजीराव तथा उसका भाई चिमनाजी वनवाड़ी में पेशवा के झण्डे के नीचे थे। रण आरम्भ होने पर स्वयं होल्कर शिन्दे की अग्नि-वर्षा का उत्तर देने के लिए उनकी तोपों पर वीरतापूर्वक झपटा, होल्कर ने तोपों पर अधिकार कर लिया तथा उनके मुख उन्हीं के दलों पर मोड़ दिये। जब पेशवा तथा उसके भाई ने देखा कि शिन्दे का दल परास्त हो गया है तथा उनके झण्डे छिन गये हैं तो वे अपनी जगह छोड़कर पार्वती पर्वत की ओर चल दिये। होल्कर के सैनिकों को अपना पीछा करते देखकर बाजीराव बड़गाँव के समीपवर्ती गाँव को भाग गया और वहाँ से सिंहगढ़ की तलहटी में पहुँच गया। नवयुवक चिमनाजी की इच्छा वहीं पर डटकर अपने सैनिकों को रण के लिए प्रोत्साहन देने की थी, परन्तु बाजीराव उसकी इच्छा के विरुद्ध उसको भी भगा ले गया। व्यक्तिगत साहस तथा समस्त सरदारों की समान रूप से उत्साहपूर्ण निष्ठा के कारण यशवन्तराव को उस रण में विजय प्राप्त हुई। इधर शिन्दे की सेना को अपने पर दृढ़ विश्वास नहीं था। सदाशिव भास्कर मारा गया तथा उसके सैनिकों ने अपनी पराजय स्वीकार कर ली। उन्होंने किसी योग्य तथा उच्च व्यक्ति के नेतृत्व के अभाव में अपने को होल्कर की दया पर छोड़ दिया। उनके ६ हजार सैनिक मारे गये तथा लगभग ४ हजार घायल हुए। होल्कर की हानि इसकी लगभग आधी हुई। रण की प्रचण्ड अवस्था में यशवन्तराव निर्भयतापूर्वक प्रत्येक स्थान पर जाता, समस्त रणक्षेत्र का अवलोकन करता

तथा अपने सैनिकों का मार्गदर्शन करता रहा। उसकी दृष्टि में कोई अस्थिरता आ जाती तो उसको तुरन्त रोक देता। यह सफलता उसके जीवन की शायद महत्तम उपलब्धि थी। बाजीराव का कोई भी सरदार नहीं मारा गया, क्योंकि उसकी भाँति वे सब भी सुरक्षित स्थानों को भाग गये थे। यह रण घोरपड़ी, वनवाड़ी तथा हड़पसर नामक तीन गाँवों के मैदान में हुआ, परन्तु इसको साधारणतया अन्तिम गाँव (हड़पसर) के नाम से पुकारा जाता है।

अध्याय १३

तिथिक्रम

१७९६	एल्फिस्टन का ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सेवा में प्रवेश करना।
१ अक्तूबर, १७९८	बाजीराव का अपने भाई अमृतराव को जागीर देना।
२९ जुलाई, १८०२	बड़ौदा के गायकवाड़ द्वारा अंग्रेजों से सहायक सन्धि करना।
३० अक्तूबर, १८०२	बाजीराव का बम्बई के गवर्नर को सुरक्षा सम्बन्धी आवेदन-पत्र।
७ नवम्बर, १८०२	अमृतराव का पूना पहुँचना।
१८ नवम्बर, १८०२	पाराशर दादाजी की मृत्यु।
२८ नवम्बर, १८०२	क्लोज का पूना छोड़ना तथा बसईं में बाजीराव के साथ होना।
१ दिसम्बर, १८०२	बाजीराव का हरनाई में बम्बई के लिए ब्रिटिश पोत पर सवार होना।
१६ दिसम्बर, १८०२	बाजीराव का बसईं पहुँचना तथा ब्रिटिश सहायता के लिए वार्तालाप आरम्भ करना।
अन्तिम सप्ताह, दिसम्बर, १८०२	अमृतराव के पुत्र विनायक द्वारा पूना में पेशवा के वस्त्र प्राप्त करना।
३१ दिसम्बर, १८०२	बसईं की सन्धि निश्चित (गवर्नर जनरल द्वारा १० मार्च, १८०३ को प्रमाणित)।
२७ फरवरी, १८०३	कालिन्स का बुरहानपुर स्थित शिन्दे के शिविर में पहुँचना।
९ मार्च, १८०३	आर्थर वेलेजली का हरिहर से पूना को प्रयाण।
१३ मार्च, १८०३	चार मास की लूट के बाद होलकर का पूना छोड़ना।
११ मार्च-३ अगस्त, १८०३	कालिन्स का शिन्दे तथा भोंसले से स्पष्ट उत्तर माँगना।

२० अप्रैल, १८०३	वेलेजली का पूना पहुँचना तथा राजभवन को अपनी सुरक्षा के लिए तैयार करना ।
१३ मई, १८०३	बाजीराव पूना में अपने आसन पर पुनः प्रतिष्ठित ।
जुलाई, १८०३	वेलेजली द्वारा अमृतराव मराठा संघ से पृथक ।
१६ जुलाई, १८०३	वेलेजली द्वारा होल्कर मराठा संघ से पृथक ।
७ अगस्त, १८०३	वेलेजली का मराठों के विरुद्ध युद्ध आरम्भ ।

अध्याय १३

पेशवा द्वारा स्वातन्त्र्य विक्रय

[१८०२–१८०३]

१. बाजीराव का पलायन—दारुण प्रहार। २. बसई की सन्धि—पूना द्वारा शक्ति संग्रह। ३. बाजीराव पूना में पुनः प्रतिष्ठित। ४. अमृतराव का देशद्रोह। ५. बाजीराव राजकार्य तथा उत्तर-दायित्व से मुक्त। ६. किंग कालिन्स शिन्दे के पास। ७. होल्कर द्वारा संघ का परित्याग।

१. बाजीराव का पलायन—दारुण प्रहार—हड़पसर के रण के साढ़े छह मास बाद तक बाजीराव पूना से अनुपस्थित रहा। उसने अपना अधिकांश समय मराठों के सीमान्त थाने बसई में व्यतीत किया। वह यशवन्तराव होल्कर के हाथ पड़ जाने की आशंका से व्यावहारिक रूप से अंग्रेजों की सुरक्षा में था। होल्कर ने पूना वापस आने के लिए पेशवा से यथाशक्ति अनुनय-विनय की। यशवन्तराव उसको सरलता से पकड़ सकता था, परन्तु अपने स्वामी के प्रति किसी क्रूर कर्म से वह सावधानीपूर्वक दूर रहा। होल्कर ने उसके पलायन के दिन उसके पास कई गाड़ी अन्न भेजा, जिससे उसे निराहार न रहना पड़े। २७ अक्तूबर को पेशवा ने अपने भाई, बालोजी कुंजर तथा कुछ शिन्दे रक्षकों के साथ पश्चिमी घाटों को अर्द्धरात्रि में पार किया, और रायगढ़ भाग गया। उसने महाद के पास बीरवाड़ी में एक मास व्यतीत किया। इस काल में वह ब्रिटिश सहायता प्राप्त करने के लिए बातचीत करता रहा। ३० अक्तूबर को उसने बम्बई के गवर्नर जोनाथन डंकन को निम्नांकित पत्र लिखा :

"मेरा सेवक होल्कर तथा उसका दल मेरे विरुद्ध षड्यन्त्र तथा अन्याय कर रहा है। उसके नीच व्यवहार से अति भयभीत होकर मैंने श्रीमान के साथ इस शर्त पर सन्धि करने का निश्चय किया है कि यदि इन विद्रोहियों में से कोई मेरे शरीर की माँग रखे तो स्पष्ट अस्वीकृत कर दी जाये। मुझको भागने का आदेश भी न दें। यदि यह प्रस्ताव आपको स्वीकार हो तो ऐसी परिस्थिति में आप मेरे व्यय का प्रबन्ध कर दें। महाद के बन्दरगाह में मुझको

सशस्त्र पोत दिलाने की कृपा करें। आप इस विषय की अधिक जानकारी को पत्रवाहक नरो गोविन्द आवटी से प्राप्त कर सकते हैं।"[1]

गवर्नर ने इस पत्र के विषय में उस समय बम्बई स्थित जान मैल्कम से वार्तालाप किया और भावी गतिविधि पर उसका लिखित परामर्श प्राप्त कर लिया। पेशवा के साथ अपने समस्त भावी व्यवहारों और वार्तालापों में उसने इसी के अनुसार कार्य किया। बाजीराव को भय था कि यशवन्तराव इस बीच में उसको बन्दी बना लेगा, इसलिए उसने अपना अधिकांश दल पूना वापस भेज दिया और स्वयं थोड़े-से अनुचरों के साथ सुवर्ण दुर्ग (हरनाई) की ओर बढ़ा। यहीं से वह १ दिसम्बर को हर्कूयन नामक ब्रिटिश पोत पर सवार हो गया। यह पोत वाणकोट का तत्कालीन ब्रिटिश कार्यकर्ता कैप्टिन कैनेडी लाया था। बाजीराव का स्वागत करने के लिए उसे बम्बई से विशेष निर्देश प्राप्त हुए थे। उसकी व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दो लाख रुपये दिये गये। उस समय कोंकण में पेशवा का मुख्य अधिकारी खांडेराव रस्ते सुवर्ण दुर्ग आया तथा उसने मुजरा करके पेशवा को अपना परामर्श दिया। बाजीराव को बम्बई यात्रा के समय तोपों से सलामियाँ दी गयीं और तट के समस्त ब्रिटिश पोतों तथा स्थानीय कार्यकर्ताओं ने भव्य रूप से उसका स्वागत किया। जिस पोत पर बाजीराव था, वह उसकी विशेष प्रार्थना पर दो दिन तक खेदाण्ड में ठहरा रहा, और १६ दिसम्बर को बसईं पहुँचा। यहाँ वह अपने ही क्षेत्र में होते हुए भी शत्रु से निश्चिन्त था तथा सशस्त्र ब्रिटिश सेनाओं को आसानी से बुला सकता था।

बाजीराव ने अपनी पूना की गद्दी पुन: प्राप्त करने के उद्देश्य से ब्रिटिश सहायता के लिए गवर्नर के साथ तुरन्त वार्तालाप आरम्भ कर दिया। १८०२ के अन्तिम दिन बसईं की प्रसिद्ध सन्धि अन्तिम रूप से निश्चित हो गयी। इस व्यवहार के लिए एकमात्र उत्तरदायी परामर्शदाता बालोजी कुंजर शीघ्र ही समझ गया कि यह उपाय आत्मघातक है। इस बीच पन्से, पुरन्दरे तथा पूना के कुछ अन्य सरदारों ने जैसे ही सुना कि उनका स्वामी भाग गया है, उन्होंने उससे वापस आने, होल्कर से वैर शान्त करने तथा अमृतराव की सहायता से एक नवीन योजना का निर्माण करने के लिए अनुनय-विनय करने का प्रयत्न किया, क्योंकि इसी से प्रशासन का पुनरुत्थान और राज्य की रक्षा हो सकती थी। बाजीराव की इच्छा कई बार इस सुझाव को स्वीकार करने की हुई, परन्तु प्रत्येक अवसर पर बालोजी कुंजर ने उसे इस मार्ग से विमुख कर दिया। इस बीच यशवन्तराव वनवाड़ी स्थित शिन्दे के महल में निवास

---

[1] आगामी पत्र-व्यवहार के लिए फोरेस्ट कृत मराठा ग्रन्थमाला देखो।

करने लगा। नगर की रक्षा के लिए विशेष रक्षक दल नियुक्त कर दिये गये तथा शिन्दे के समस्त अधिकारियों और सैनिकों को निकाल भगाया गया। उसने नाना फड़निस के पक्षपातियों तथा मोरोबा फड़निस और फड़के बन्धुओं को भी कारागार से मुक्त कर दिया। उसने अमृतराव को पूना लाने के लिए एक प्रतिनिधि-मण्डल भेजा जो बहुत अनुनय-विनय के बाद अत्यन्त अनिच्छापूर्वक ७ नवम्बर को पूना पहुँच गया। उसका विशेष सम्मान तथा सलामियों से स्वागत किया गया। दुर्भाग्यवश होल्कर के वृद्ध परामर्शदाता पाराशर दादाजी की अल्पकालीन ज्वर के बाद १८ नवम्बर को मृत्यु हो गयी। इससे केवल होल्कर की ही नहीं, मराठा राज्य की बहुत हानि हुई, क्योंकि वह सार्वजनिक सम्मान प्राप्त व्यक्ति होने के कारण दोनों युद्धमग्न दलों की एकमात्र कड़ी थी।[२]

महाराष्ट्र के समस्त हितैषियों के सम्मुख मुख्य विषय यह था कि ब्रिटिश हस्तक्षेप के विरुद्ध स्वातन्त्र्य की रक्षा किस प्रकार की जाये ? पेशवा के स्थान पर अमृतराव को लेकर पूना में होल्कर के नेतृत्व में शक्तिशाली संघ का संगठन किया गया। बड़ौदा के गायकवाड़ को छोड़कर समस्त प्रसिद्ध सरदारों ने इसका समर्थन किया। गायकवाड़ ने २६ जुलाई, १८०२ को पहले से पृथक सन्धि द्वारा ब्रिटिश सुरक्षा स्वीकार कर ली थी। आर्थर वेलेजली तथा कर्नल क्लोज की इच्छा संघ की योजना का समर्थन करने की थी परन्तु गवर्नर जनरल इसको लेशमात्र भी पसन्द नहीं करता था। उसका निश्चय मराठा राज्य में विद्यमान संकट से पूर्ण लाभ उठाकर मराठा प्रभुत्व को समाप्त कर देने का था। इस प्रकार उसका लक्ष्य सरलता से प्राप्त हो सकता था। इन लक्ष्यों को उसने शनैः-शनैः प्रकट किया।

पूना से बाजीराव के पलायन के बाद रेजीडेण्ट क्लोज का आचरण अद्‌भुत पहेली बन गया था। वह अमृतराव तथा होल्कर दोनों से सर्वथा प्रसन्न था। ऊपर से मालूम पड़ता था कि जिस मार्ग का वे अनुसरण कर रहे हैं, वह उसको पसन्द है। उन्होंने उससे पूना में ठहरे रहने की प्रार्थना की। उसने उत्तर दिया कि उसको गवर्नर जनरल की आज्ञा तुरन्त पूना छोड़ देने की है, क्योंकि पेशवा वहाँ से चला गया है। २८ नवम्बर को क्लोज पूना से बम्बई चल दिया। उसको बाजीराव की योजनाओं तथा प्रगतियों का पता था। रेजीडेण्ट की विदाई से अमृतराव तथा यशवन्तराव व्याकुल हो गये, क्योंकि उन्हें क्लोज

---

२ भवानीशंकर उसकी बहुत प्रशंसा करता है। सर यदुनाथ सरकार ने भी इसी प्रकार लाखेरी के रण के कारण अतीतकाल के कार्यों के लिए उसकी बुद्धिमत्ता की प्रशंसा की है।

के भविष्य सम्बन्धी कार्यों का पता था। इस विषय में क्लोज को कोई अधिकार न था। उसका कर्तव्य कलकत्ता से वेलेजली तथा बम्बई से डुंकन द्वारा निश्चय करके दी गयी आज्ञाओं का पालन करना था। वह वीरवाड़ी तथा महाद से चल दिया। सम्पूर्ण योजना क्लोज ने सावधानी से बनायी तथा लागू की थी। बाजीराव अपने भाई चिमनाजी के साथ बसई जाते समय गवर्नर से भेंट करने के उद्देश्य से कुछ समय के लिए रेवराण्डा से बम्बई गया। उसने सत्कार-पूर्वक बाजीराव का स्वागत किया तथा अनेक भोज और उपहार दिये। छोटे भाई चिमनाजी ने बाजीराव द्वारा अपनाये गये कुटिल मार्ग का तीव्र विरोध किया। उसने कहा—यदि हमारे भाग्य में अपना जीवन किसी स्थान पर निरोध में ही व्यतीत करना लिखा है तो हम इन विदेशियों की अपेक्षा अपने भाई अमृतराव द्वारा पकड़ा जाना ही क्यों न श्रेयस्कर समझें ? स्पष्ट है कि ये विदेशी अपने ही स्वार्थ का अनुसरण कर रहे हैं। बाजीराव इस युक्ति का बल समझ गया। वह पूना को वापस होने के लिए प्रस्तुत हो गया। परन्तु अंग्रेजों की ओर से सहायता के लुभावने प्रस्ताव तथा बालोजी कुंजर सदृश परामर्शदाता का विरोध इतने अधिक शक्तिशाली सिद्ध हुए कि निर्बल हृदय पेशवा उनका विरोध नहीं कर सका। वह समझता था कि उसमें उत्पन्न होने वाली किसी भी परिस्थिति का सामना करने की योग्यता है।

अमृतराव, यशवन्तराव तथा पूना के अन्य विवेकी पुरुषों ने अपने भावी कार्यक्रम पर बहुत समय तक चिन्तापूर्वक विचार किया। जब तक बाजीराव वास्तव में त्यागपत्र न दे दे, तब तक शासन करने के लिए एक समिति नियुक्त की गयी। अमृतराव, होल्कर, भोंसले तथा पटवर्धन लोग इसके सदस्य बने। शिन्दे का नाम भी इस समिति के लिए प्रस्तावित किया गया और वह लगभग सहमत भी हो गया, क्योंकि अंग्रेजों को बाहर रखने का एकमात्र यही उपाय था। निश्चय किया गया कि अमृतराव के पुत्र विनायक बापू को यशोदाबाई की गोद रखकर पेशवा बना दिया जाये। परन्तु बाजीराव ने उस महिला को रायगढ़ में कठोर बन्धन में डाल रखा था। होल्कर की सेनाएँ उसको मुक्त करके पूना लाने में असफल रहीं। इस प्रकार पेशवा पद के परिवर्तन का आन्दोलन बहुत दिनों से चल रहा था। इसका विज्ञापन बोलचाल के एक गूढ़ वाक्य द्वारा किया गया, जिसका अर्थ था—"पुरानी अँगूठी पर एक नया हीरा लगाया जायेगा।"[३] होल्कर ने फतेहसिंह माने को सतारा भेजा तथा दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में वह छत्रपति से विनायकराव के लिए पेशवा

[३] अंगूठीवरचा हिरा नवीन बसवायचा।

पद के वस्त्र ले आया। उस समय बाजीराव बसई में सन्धि की बातचीत कर रहा था। इस प्रकार पूना में नवीन शासन का आरम्भ हुआ। अधिकांश पूर्वाधिकारी अपने स्थानों पर पुनः नियुक्त कर दिये गये तथा राज्य के विभिन्न सरदारों को आश्वासन-पत्र भेजे गये। परन्तु इस संकटमय परिस्थिति में संगठन को नष्ट करने के लिए दुष्टबुद्धि शर्जाराव घाटगे घटनास्थल पर आ गया। इस समय वह शिन्दे का मुख्यमन्त्री था। उसको गर्व था कि वह होल्कर का दमन कर देगा। उसने बाजीराव से कहा कि वह महाद में ठहरा रहे। घाटगे ने बुरहानपुर में बहुत-सी सेना एकत्र कर ली। बेगम समरू दिल्ली से वहीं पहुँच गयी और शिन्दे की सेनाओं के साथ मिल गयी। इस प्रकार जब पूना तथा बुरहानपुर में किसी प्रकार मामला तय करने के लिए उपाय किये जा रहे थे, तभी बाजीराव नवम्बर के अन्त में महाद से चल दिया। उसने अपने को ब्रिटिश रक्षा के अधीन कर दिया। इस कार्य से पूना की परिस्थिति सर्वथा परिवर्तित हो गयी। अब तक के शिन्दे-होल्कर संघर्ष ने अब ब्रिटिश-मराठा शक्ति-परीक्षा का रूप धारण कर लिया। अकस्मात् पूना प्रशासन का अन्त हो गया और बाजीराव, दौलतराव तथा शर्जाराव की प्राचीन त्रिमूर्ति पुनः मराठा राज्य के लिए अभिशाप सिद्ध हो गयी। अमृतराव तथा यशवन्तराव ने परिस्थिति सँभालने के लिए कोई प्रयास उठा नहीं रखा था। उन्होंने बाजीराव से वापस आने तथा अपनाये गये विनाशक मार्ग का त्याग करने के लिए विनयपूर्वक याचना की। शिन्दे का परामर्शक बाबूराव आंग्रे रेवराण्डा में बाजीराव से मिला तथा उसने प्रयास किया कि बाजीराव स्वयं को अंग्रेजों के हाथों में सौंपने से दूर रहे। परन्तु बाजीराव टस से मस नहीं हुआ। अब उसको अपने भाई अमृतराव से हार्दिक घृणा थी। उसने उससे बार-बार बसई आने को कहा। दौलतराव शिन्दे ने भी बाजीराव से कहा कि वह कोई ऐसा कार्य न कर बैठे, जिसे फिर बदलना सम्भव न हो। वह दिसम्बर में यथाशीघ्र उज्जैन से पूना के लिए चल दिया।

२. बसई की सन्धि—पूना द्वारा शक्ति-संग्रह—बसई में बाजीराव के आगमन दिवस (१६ दिसम्बर) से दोनों में व्यापक तथा जटिल वार्तालाप होते रहे। अब बाजीराव को मालूम हो गया कि वह अंग्रेजों के जाल में अधिकाधिक रूप से बँधता जा रहा है। उसके सामने एक-एक करके नवीन शर्तें उपस्थित की गयीं। प्रत्येक धारा पर वाद-विवाद करने से बाजीराव को विश्वास हो गया कि उसके हाथ-पैर जकड़े जा रहे हैं। इस पूरे समय में विचित्र खींचतान होती रही। अंग्रेज लोग फंदे कस रहे थे और बाजीराव उनसे बचने का प्रयत्न कर रहा था। बाजीराव के पास इस समय कोई

दूरद्रष्टा परामर्शदाता नहीं था। केवल दो तुच्छ स्वार्थरत व्यक्ति उपस्थित थे—बलवन्तराव नागनाथ तथा रघुनाथ जनार्दन चिनापट्टनकर। पट्टनकर एक मराठा कार्यकर्ता था। इसने मद्रास में बहुत दिनों तक कार्य किया था। यह अंग्रेजों का पक्का पिट्ठू था। इसकी योग्यता केवल इंगलिश भाषा का ज्ञान ही थी। इन दोनों की सम्मति में अंग्रेज सरल स्वभाव, उदार तथा अपनी प्रतिज्ञा का सदैव सम्मान करने वाले थे। बसई में क्या हो रहा है, यह समाचार पाकर यशवन्तराव होल्कर ने वहाँ अकेले जाने तथा पेशवा से मिलकर एकपक्षीय प्रतिज्ञा के विरुद्ध चेतावनी देने का प्रयास किया। बाजी-राव ने उससे मिलना स्वीकार नहीं किया, जबकि सन्धि निश्चित होने के पहले शिन्दे तथा भोंसले से मिलने की उसकी प्रबल इच्छा थी। इस प्रकार की अस्थिरता पर कर्नल क्लोज ने बाजीराव को अमृतराव तथा होल्कर द्वारा भेजा हुआ प्रस्ताव स्वीकार कर लेने की धमकी दी। क्लोज ने कहा—"समय गम्भीर है। अतः विलम्ब नहीं किया जा सकता। पूना सरकार को पुनः स्थापित करने में अंग्रेज स्वतन्त्र हैं। वे जो भी प्रबन्ध उत्तम समझें, करें।" इस भर्त्सना का अभीष्ट प्रभाव हुआ और बाजीराव ने अत्यन्त क्षोभ तथा अनिच्छापूर्वक सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये। इसकी मूल शर्तें इस प्रकार थीं—

१. दोनों पक्ष इस पर सहमत हैं कि एक के मित्रों तथा शत्रुओं को दूसरे का मित्र तथा शत्रु समझा जाये।

२. अंग्रेज अपने प्रदेश की भाँति ही बाजीराव के प्रदेश की रक्षा करें।

३. इस कार्य के लिए कम से कम ६ हजार पैदलों की नियमित सहायक सेना स्थायी रूप से बाजीराव के राज्य में रखी जाये जिसके साथ साधारण अनुपात में तोपखाना भी हो।

४. इस सेना के व्यय के लिए बाजीराव अंग्रेजों को कुछ जिले दे, जिनकी वार्षिक आय २६ लाख रुपये हो।

५. पेशवा अपनी सेवा में अंग्रेज विरोधी किसी यूरोपीय को न रखे।

६. निजाम से कलह उत्पन्न होने की दशा में बाजीराव ब्रिटिश निर्णय को मान ले।

७. बाजीराव उस सन्धि का भी सम्मान करे जो गायकवाड़ ने हाल में अंग्रेजों के साथ की है तथा कलह की दशा में ब्रिटिश निर्णय को स्वीकार करे।

८. आवश्यकता पड़ने पर बाजीराव तथा अंग्रेज एक-दूसरे को अधिक सैनिक सहायता दें।

९. ब्रिटिश सरकार के साथ पूर्व-मन्त्रणा किये बिना पेशवा अन्य राज्यों के साथ युद्ध नहीं करेगा।[४]

बाजीराव द्वारा अपनी रक्षा के निमित्त ब्रिटिश सेनाएँ रखने के निश्चय का समाचार पूना में अगले दिन १८०३ के नव वर्ष दिवस को पहुँच गया। अमृतराव और होल्कर को इसके कारण बहुत दुख हुआ। उन्होंने २ जनवरी को मोरोबा फड़निस, बाबा फड़के तथा अपने पक्ष के अन्य व्यक्तियों के साथ सम्मेलन किया। होल्कर ने बलपूर्वक घोषणा की—"बाजीराव ने मराठा राज्य का नाश कर दिया है। अंग्रेज इस राज्य पर टीपू सुल्तान के समान ही प्रहार करेंगे।" बाजीराव के पूना प्रत्यागमन का प्रतिकार किस प्रकार किया जाये, इस समय पूना के मन्त्रियों को यही समस्या व्याकुल कर रही थी। होल्कर ने यशोदाबाई को पूना लाने का पुनः व्यर्थ प्रयास किया, जिससे अमृतराव की स्थिति वैध हो सके। अगस्त में युद्ध आरम्भ होने तक के अगले कुछ महीनों में वह स्पष्ट विषमता दृष्टिगोचर हुई जो अंग्रेजों तथा मराठों के बीच युद्ध तथा कूटनीति में एक-दूसरे का सामना करने के उपायों में थी। अंग्रेजों ने बुद्धिसम्मत नियोजन, शीघ्रतापूर्वक कार्य और सैनिक तैयारियों का परिचय दिया। इस कारण परिणाम पूर्व निश्चित हो गया।

जब बाजीराव को बसई में मालूम हुआ कि अमृतराव पूना में किस प्रकार व्यस्त है तो उसने १२ जनवरी को लिखा—"यशवन्तराव अत्यन्त धूर्त है। आप उसका साथ छोड़कर अविलम्ब मेरे पास चले आयें। इस विषय में कोई बहाना न करें।" उसी समय कर्नल क्लोज ने होल्कर को इस प्रकार लिखा—"विचारपूर्ण समझौते द्वारा बाजीराव ने हमारा सशस्त्र संरक्षण स्वीकार कर लिया है। अब उसकी रक्षा करना हमारा कर्तव्य हो गया है। गवर्नर जनरल की उत्कट इच्छा है कि वे बाजीराव तथा आप में मैत्री करा दें। आपने प्रायः बाजीराव के प्रति निष्ठापूर्ण रहने की तत्परता प्रकट की है। अब समय आ गया है कि आप अपनी सेनाओं सहित अविलम्ब पूना छोड़कर अपने न्याय-संगत क्षेत्र को वापस चलें और इस प्रकार अपने को निष्कपट सिद्ध कर दें। यदि आप ऐसा करेंगे तो गवर्नर जनरल बाजीराव द्वारा आपकी समस्त शिकायतों को दूर करा देगा। आप सदैव ब्रिटिश सत्ता के मित्र रहे हैं। पूना छोड़कर कृपया उस भावना की रक्षा करें। यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो हम लोगों के सम्बन्ध कटु हो जाने की सभी सम्भावनाएँ हैं।

---

४ इस सहमति पर बाजीराव तथा कर्नल क्लोज ने ३१ दिसम्बर को हस्ताक्षर किये तथा १८ मार्च, १८०३ को गवर्नर जनरल ने इसको प्रमाणित कर दिया।

इस सीधी धमकी को अमृतराव तथा होल्कर ठीक-ठीक समझ गये। अतः उन्होंने निकटवर्ती युद्ध के लिए मराठा संघ को यथाशक्ति संगठित करने का प्रयत्न किया। उन्होंने बाबा फड़के को निजामअली के विचारों का पता लगाने तथा उसका सहयोग प्राप्त करने के लिए हैदराबाद भेजा। यह व्यर्थ का स्वप्न था, क्योंकि निजाम पहले ही अपनी स्वतन्त्रता खो बैठा था। पूना में स्वयं होल्कर ने भोंसले के दोनों कार्यकर्ताओं श्रीधर लक्ष्मण तथा कृष्णराव माधव के सम्मुख परिस्थिति का स्पष्टीकरण किया एवं वीरतापूर्वक अग्रसर होकर उस संकट वेला में राज्य की रक्षा करने के लिए रघुजी भोंसले से अनुनय-विनय करने को कहा। वे होल्कर के साग्रह निवेदन का औचित्य समझ गये तथा योजना को क्रियान्वित करने के लिए अविलम्ब नागपुर चल दिये। दौलतराव शिन्दे ने भी अपना विशेष कार्यकर्ता नागपुर भेजकर ब्रिटिश चढ़ाई का विरोध करने तथा राष्ट्रीय स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखने के लिए सामूहिक प्रयत्न में भोंसले से सहायता की प्रार्थना की। शिन्दे को छोड़कर समस्त सरदार उत्साहपूर्वक सहमत हो गये कि यदि अंग्रेज बाजीराव को पूना लायेंगे तो वे उसका सशस्त्र विरोध करेंगे। शिन्दे ने अपनी कोई इच्छा प्रकट नहीं की तथा होल्कर ने पूना में अंग्रेजों से युद्ध का भय मोल न लेने का निश्चय किया।

पूना में १२ नवम्बर को स्थापित नवीन शासन केवल चार मास तक रहा। १३ मार्च, १८०३ को होल्कर ने नगर छोड़ दिया और अपनी उत्तरी यात्रा आरम्भ कर दी। यह समय अमृतराव तथा होल्कर दोनों के लिए निस्सन्देह असाधारण कष्ट तथा चिन्ता का था। उनको अपने नवीन शासन का निर्माण करना था। इसके लिए विशाल सेना की आवश्यकता थी, जिस पर बहुत भारी लागत पड़ती थी। होल्कर ने विजय प्राप्त कर ली थी, परन्तु वह सदैव भाग्याधीन साहसिक योद्धा रहा क्योंकि उसकी कोई निश्चित आय नहीं थी। उसने अपनी सेना का वेतन चुकाने के लिए अमृतराव से एक करोड़ रुपया माँगा। उसने साग्रह कहा—"मैंने शिन्दे का दमन करके तथा आपको सर्वोपरि आसन पर बैठाकर अपना कार्य कर दिया है। अब आप मेरे व्यय का भुगतान अवश्य कर दें।" अमृतराव के पास धन नहीं था और न उसको उस आसन का लोभ ही था। वह क्या कर सकता था? प्रमुख सरदारों का सम्मेलन करके यह निश्चय किया गया कि शिन्दे द्वारा शासन के सदस्यों, साहूकारों तथा समृद्ध नागरिकों से धन-संग्रह किया जाये—अर्थात क्रान्ति के व्यय के लिए नवीन कर लगाया जाये। कागज पर धन-संग्रह का निश्चय स्वीकार कर लिया गया, परन्तु उसकी वसूली अत्यन्त कष्टदायक सिद्ध हुई। होल्कर

बल प्रयोग पर विवश हो गया तथा इस कार्य के लिए उसने तीन कमाण्डर नियुक्त कर दिये—इनमें से एक मीरखाँ पठान था। असहाय नगर पर पठानों को छोड़कर जनता को घोर कष्ट दिया गया। उन्होंने कोई दया नहीं दिखायी। उन्होंने मकानों को खोद गिराया और जो कुछ भी उनको मिल सका उसे उठा ले गये। वे केवल सोना और चाँदी ही नहीं, अपितु बरतन, वस्त्र, साज-सज्जा की सामग्री तथा सभी कुछ उठा ले गये। पेशवा की स्वर्ण अम्बारी भी छीन ली गयी। नगर में चार महीने तक यह लूट-खसोट होती रही। अब नगर वास्तव में यमराज का निवास स्थान प्रतीत होने लगा था। जिलों में कुछ बड़े-बड़े नगरों की भी न्यूनाधिक यही दुर्दशा हुई। तब भी होल्कर ५० लाख से अधिक धन-संग्रह न कर सका। यह धन उसकी अपेक्षित धनराशि से आधा ही था। द्वितीय अर्द्ध-भाग उसको अन्यत्र खोजना पड़ा।

बाजीराव द्वारा ब्रिटिश रक्षा स्वीकार किये जाने से समस्त महाराष्ट्र में व्यापक क्रोध तथा व्याकुलता उत्पन्न हो गयी। लोगों के मन तथा उनके साधारण व्यवसाय अस्थिर हो गये। बेराड़, भील, रामुसी, कोली, पिण्डारी तथा उद्योगहीन घुमक्कड़ जातियों की टोलियों ने अपनी परम्परागत लूटमार आरम्भ कर दी, जिसके कारण जीवन सर्वत्र अरक्षित हो गया। महाराष्ट्र ने ऐसे नेता की व्यर्थ प्रतीक्षा की जो घटनास्थल पर आकर इस अराजकता तथा परेशानी का अन्त कर देता। जब बाजीराव को बसई में मालूम हुआ कि पूना में एक अन्य व्यक्ति (अमृतराव) पेशवा बनाया जा रहा है तो वह अमृतराव के विरुद्ध उग्र हो उठा तथा बसई के समीप भिवण्डी में उनका महल लूटने और नष्ट करने की आज्ञा दे डाली। इस समय से अमृतराव उसका सबसे बड़ा शत्रु हो गया।

इस प्रकार स्पष्ट हो जायेगा कि जनवरी से मार्च तक के तीन महीनों का उपयोग होल्कर के पक्ष तथा ब्रिटिश प्रतिनिधि ने किस प्रकार अपनी योजनाएँ विकसित करने में तथा तैयारियाँ पूर्ण करने में भिन्न-भिन्न रूप से किया। ९ मार्च, १८०३ को कर्नल वेलेजली बाजीराव को उसकी गद्दी पर बैठाने के उद्देश्य से हरिहर नामक स्थान से पूना की ओर चला। प्रस्थान के पहले उसने निम्नलिखित प्रेरणा प्रकाशित की :

"पेशवा बाजीराव ने कम्पनी सरकार की मित्रता तथा रक्षा प्राप्त कर ली है। हम उसके निमन्त्रण पर मित्र के रूप में महाराष्ट्र में प्रवेश कर रहे हैं। हमारी इच्छा किसी को दुख देने की नहीं है और न हमें किसी से कोई द्वेष है। समस्त मामलतदारों तथा अधिकारियों से हमारी प्रार्थना है कि वे प्रेम से हमारा साथ दें। हम अपने रक्षक दल नियुक्त कर रहे हैं। वे ध्यान रखेंगे कि

समाज के किसी शान्त सदस्य को कोई हानि न हो। हमको जो कुछ अन्न तथा वस्तुएँ अपेक्षित होंगी, उनका मूल्य बाजार भाव के अनुसार पूरा-पूरा चुका दिया जायेगा।" कर्नल वेलेजली के इस कार्य ने विरोध नहीं होने दिया तथा उसको पूना की ओर जाने के लिए सुविधापूर्ण तथा विघ्नबाधारहित मार्ग प्राप्त हो गया।

कर्नल वेलेजली ने पूना स्थित होल्कर को आश्वासन भेजा कि यदि वह अंग्रेजों के प्रबन्ध में हस्तक्षेप न करेगा तो वे उसे कोई कष्ट नहीं देंगे। रण से दूर रहने के लिए यशवन्तराव ने ब्रिटिश सेनाओं के आगमन के पहले ही पूना से हट जाना उचित समझा। इस विचार से वह पेशवा के महल में गया और २५ फरवरी को उसे बाजीराव तथा अमृतराव की पत्नियों से विदाई के वस्त्र प्राप्त हो गये। उसने अन्तिम रूप से नगर छोड़ दिया। होल्कर की अल्पवयस्क खांडेराव को उसके सुपुर्द कर दिये जाने की माँग पूरी नहीं की गयी, इसलिए शिन्दे से उसकी मैत्री न हो सकी।

३. **बाजीराव पूना में पुनः प्रतिष्ठित**—कर्नल वेलेजली के सुपुर्द अब बसई में निश्चित सन्धि की शर्तों के अनुसार बाजीराव को पूना में पेशवा की गद्दी पर पुनः प्रतिष्ठित करना रह गया। १८०३ के आरम्भिक मास दोनों वेलेजली बन्धुओं के लिए व्यग्रता तथा उत्तेजना से भरे हुए थे। ये मराठा राज्य को परास्त करने का अपना मुख्य उद्देश्य सिद्ध करने के विचार से अपने शासन-यन्त्र को निर्देश देते थे। इस उद्देश्य को सिद्ध करने के लिए उन्हें पर्याप्त सैनिक बल द्वारा समर्पित कूटनीति से मराठा संघ तोड़ना था। इसका अर्थ था होल्कर तथा अमृतराव को सान्त्वना देकर अनुकूल बना लिया जाये और बाजीराव को अकर्मण्यता में मग्न कर दिया जाये। उस समय असन्तुष्ट नागपुर के भोंसले तथा बड़ौदा के गायकवाड़ का उचित रूप से नियन्त्रण करके उन्हें विद्रोही संघ में मिलने से रोकना था। इसका अर्थ था आक्रमण से पहले केवल शिन्दे को पृथक करके उसकी प्रशिक्षित सेना का नाश कर दिया जाये। इस कार्य का अधिक सम्बन्ध शिन्दे के उत्तरी प्रदेशों पर अधिकार करने तथा दिल्ली सम्राट को ब्रिटिश रक्षा में ले लेने से भी था। इस कार्यक्रम का वास्तविक अर्थ यह था कि भारतीय महाद्वीप की समस्त युद्धप्रिय शक्तियाँ शान्त रहने के लिए बलपूर्वक बाध्य कर दी जायें। लार्ड वेलेजली विचित संगठनकर्ता था। १८०३ में भारतीय परिस्थिति से निपटने में वह अपने गौरव के उच्चतम शिखर पर पहुँच गया। तत्कालीन कमाण्डर-इन-चीफ लार्ड लेक को इस विशाल योजना का उत्तर भारत से सम्बन्धित भाग दिया गया।

नर्मदा के दक्षिण का क्षेत्र कर्नल वेलेजली को सौंपा गया। उसको पूना

की ओर बढ़ने और कर्नल क्लोज के साथ बाजीराव के बसई से लौटने पर स्वागत के लिए तैयार रहने की आज्ञा दी गयी। बम्बई के गवर्नर जोनाथन डंकन तथा मद्रास के गवर्नर लार्ड क्लाइव को आज्ञा हुई कि वे इस योजना के समर्थन के लिए तैयार हो जायें तथा कर्नल वेलेजली को सहयोग देने के लिए यथासमय कार्य करें। कर्नल मरे के अधीन बम्बई की सेनाओं का तथा जनरल स्टुअर्ट के अधीन मद्रास की सेनाओं का संगठन किया गया। निजाम की सहायक मित्र-सेना आवश्यकता पड़ने पर आगे बढ़ने के लिए कर्नल स्टीवेन्सन के अधीन परिंडा पर ठहरा दी गयी। सब मिलाकर ब्रिटिश सेना की संख्या ६० हजार से कुछ ऊपर थी। यह सेना भारत में किसी पूर्व अवसर पर एकत्र की गयी किसी भी सेना से बहुत बड़ी थी। इनके अतिरिक्त गवर्नर जनरल ने मेजर फ्रिथ को भारतीय शासकों के यूरोपीय तथा अन्य अधिकारियों को निष्ठाभ्रष्ट करने के विशेष कार्य पर नियुक्त किया। गवर्नर जनरल ने अपने विश्वस्त कार्यकर्ता कर्नल मरसर को समस्त उत्तर भारतीय शासकों पर निगाह रखने, उनका सहयोग प्राप्त करने तथा उनको विरोध के मार्ग से दूर रखने के लिए लार्ड लेक के पास नियुक्त कर दिया। गवर्नर जनरल के विशेष उपाय के रूप में सामयिक घोषणाओं द्वारा साधारण भारतीय जनता को सूचित रखा कि अंग्रेजों के उद्देश्य तथा योजनाएँ क्या हैं और उनसे सर्वसाधारण को क्या विशेष लाभ प्राप्त होंगे। इन पूर्वोपायों का क्षेत्र तथा प्रभाव पर्याप्त रूप से व्यापक थे। इस प्रकार की घोषणाएँ सर्वसाधारण तथा ब्रिटिश सेनाओं या भारतीय शासकों की सेनाओं में सेवा करने वालों में मुफ्त बाँटी गयीं। भारतीय शासकों की सेवा में रहने वाले सैनिकों को तीन महीनों के अन्दर अपनी सेवा छोड़कर ब्रिटिश सेना में भरती हो जाने पर उसके तात्कालिक वेतन और अन्य सुविधाएँ मिलते रहने, उचित सम्मान और ध्यान से उनके प्रति व्यवहार किये जाने तथा जातीय आधार पर कोई भेदभाव न रखने का आश्वासन दिया गया। अंग्रेजों के विरुद्ध हथियार उठाने तथा मराठा हित को सहायता देने पर चेतावनी दी गयी कि उन्हें फिर कभी ब्रिटिश सुरक्षा प्राप्त न होगी। इस प्रकार की घोषणाओं की पाण्डुलिपियाँ विभिन्न अधिकारियों के पास स्थानीय वातावरण तथा विशेष परिस्थिति के अनुसार आवश्यक परिवर्तन कर सकने के निर्देश सहित भेज दी गयीं।

गवर्नर जनरल ने समस्त सैनिक तथा असैनिक अधिकारियों के पास इस आशय की विस्तृत टिप्पणियाँ तथा सुझाव भेजे कि युद्ध आरम्भ होने पर वे इसमें किस प्रकार सहयोग दें? किन उद्देश्यों को प्राप्त करना है? किस प्रकार सामग्री प्राप्त की जाये? किस प्रकार रणोन्मुख सेनाओं द्वारा सर्वसाधारण का

अपकार, पीड़ा तथा हानि रोकी जाये ? विशेष संकट की दशा में कर्नल वेलेजली को गवर्नर जनरल के समस्त अधिकार सौंप दिये गये, जिससे कलकत्ता मे पूछताछ करने में आवश्यक रूप से होने वाला विलम्ब रोका जा सके। उत्तर भारतीय अभियान के उद्देश्य की स्पष्ट परिभाषा करके वह लार्ड लेक के पास भेज दिया गया।

वास्तविक युद्ध आरम्भ होने के पहले यह सब कार्य कर लिया गया। किन्तु कूटनीतिक गतिविधियों के द्वारा स्पष्ट युद्ध में प्रवेश किये बिना वही उद्देश्य प्राप्त करने के लिए कोई उपाय उठा न रखा गया।

कर्नल वेलेजली ने २० अप्रैल को पूना में प्रवेश किया। २२ को वह पेशवा के महल में गया तथा सुरक्षा की दृष्टि से उसने वहाँ की स्थिति देखी। उसने अपने पूना आने का समाचार बसई स्थित कर्नल क्लोज के पास भेज दिया। तब वह बाजीराव को अपने साथ लेकर वहाँ से चल पड़ा। बाजीराव पूना वापस होने के लिए अत्यन्त अधीर हो रहा था। ६ मई को यह टोली चिंचवाड़ पहुँच गयी तथा एक सप्ताह के बाद १३ मई को बाजीराव ने अपनी राजधानी में प्रवेश किया। उसने तोपों की सलामियों और हर्षध्वनि के साथ अपनी गद्दी पुनः प्राप्त कर ली। कलकत्ता, सूरत तथा अन्य महत्त्वशाली नगरों में तोपों की सलामियों से इस घटना की घोषणा की गयी। इस समय कर्नल क्लोज के साथ उसका सहायक माउण्ट स्टुअर्ट एल्फिंस्टन था। इसने १७९६ में कम्पनी की सेवा में प्रवेश किया था। इस प्रकार शान्तिपूर्ण ढंग से ब्रिटिश कूटनीति ने बाजीराव को पुनः प्रतिष्ठित कर दिया। साथ ही किसी विरोधी व्यक्ति को कोई उत्तेजना नहीं दी गयी। होल्कर चन्दवाड़ में घटनाचक्र की भावी गति की प्रतीक्षा करता रहा। अमृतराव जुन्नार वापस चला गया। बाजीराव का मित्र शिन्दे बुरहानपुर में ठहरा रहा तथा अंग्रेजों की ओर से सम्भावित संकट का सामना करने के लिए उपाय ढूँढ़ता रहा। उसने भोंसले की मित्रता प्राप्त करने के लिए नागपुर के साथ शीघ्र वार्तालाप आरम्भ कर दिया। यद्यपि नागपुर तथा बुरहानपुर के बीच बहुत ही कम दूरी थी तथापि दोनों सरदारों को परस्पर मिलने में ८ मास लम्बा समय लग गया। उनकी यह मूर्खता अभिशाप सिद्ध हुई।

४. अमृतराव द्वारा देशद्रोह—अब मराठा इतिहास का अत्यन्त दुखद अध्याय आरम्भ होता है। जिस शीघ्रता से घटनाएँ आगे बढ़ीं, उस गति से उसका स्पष्टीकरण नहीं किया जा सकता। बाजीराव अयोग्य सिद्ध हो चुका था। अतः सर्वसाधारण के मतानुसार पतनोन्मुख राज्य की रक्षा करने के लिए अमृतराव पेशवा परिवार का योग्यतम व्यक्ति था। ठीक इसी कारण बाजीराव

को उससे हार्दिक घृणा थी। इस समय होल्कर के साथ हो जाने तथा अपने पुत्र के लिए पेशवा पद प्राप्त कर लेने के कारण बाजीराव ने बहुत पहले (१ अक्तूबर, १७६८) नाना फड़निस के आग्रह पर दी गयी उसकी ७ लाख की वृत्ति बन्द कर दी। अतः अमृतराव इस समय सर्वथा असहाय स्थिति में था। न उसके पास कोई सेना थी, न दूसरा कोई साधन, जिससे वह बाजीराव के क्रोध से अपनी रक्षा कर सकता। उसमें यह साहस नहीं था कि ब्रिटिश विरोधी संघ का स्पष्ट रूप से नेतृत्व ग्रहण कर सकता। वेलेजली ने अमृतराव के कष्टों से लाभ उठाने में विलम्ब नहीं किया। इस प्रकार उसकी शत्रु-भावना निर्बल कर दी गयी। स्वयं बाजीराव ने ब्रिटिश-विरोधी आन्दोलन के पक्ष या विपक्ष में कोई निश्चित कार्यप्रणाली ग्रहण नहीं की। उसे अंग्रेजों के तत्कालीन सर्वग्राही उपायों से अत्यन्त खेद था। परन्तु जो प्रतिज्ञा उसने कर रखी थी, उससे हटने अथवा सन्धि का स्पष्ट खण्डन करने का उसमें साहस नहीं था। इस अस्थिरता के कारण स्वयं उसका नाश हो गया तथा अपने उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए ब्रिटिश कूटनीतिज्ञों ने इसका उपयोग किया।

अमृतराव को मराठा संघ में सम्मिलित होने से रोकने में कर्नल वेलेजली सफल हो गया। उसने अमृतराव को उसके भाई बाजीराव या किसी अन्य शासक के विरुद्ध ब्रिटिश सुरक्षा प्रदान की तथा अपने ही उत्तरदायित्व पर उसको पुरानी ७ लाख की जागीर एक लाख और बढ़ाकर वापस दिला दी। कर्नल वेलेजली के इस अकारण तथा अनधिकृत हस्तक्षेप का बाजीराव ने घोर विरोध किया तथा ईस्ट इण्डिया कम्पनी के गृहाधिकारियों तक शिकायत पहुँचायी। बाद को इस विषय में कर्नल वेलेजली से उसके आचरण का स्पष्टीकरण माँगा गया। वेलेजली का उत्तर इस विषय पर संक्षिप्त टीका है। वह इस प्रकार है—"अमृतराव पेशवा के पिता का दत्तक पुत्र है। वह मराठा राज्य के नागरिक तथा राजनीतिक कार्यों में बहुत योग्य व्यक्ति है। उन षड्यन्त्रों और उपद्रवों से उसका गहरा सम्बन्ध रहा है जो पूर्व पेशवा की मृत्यु के बाद हुए हैं। उसकी योग्यता की ख्याति किसी अन्य मराठा से बहुत ऊँची है। नाना फड़निस के समस्त अनुयायी तथा देश के व्यापारी उसको बहुत चाहते थे। वह सदैव दृढ़तापूर्वक वर्तमान पेशवा के शासन के विरुद्ध रहा। यदि बसई की सन्धि के फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार हस्तक्षेप न करती तो होल्कर उसी (अमृतराव) के पुत्र को गद्दी पर बैठाना चाहता था। जब मेरे अधीन ब्रिटिश सेनाओं के आगमन के कारण होल्कर पूना से हटने पर विवश हो गया, तब भी अमृतराव सबसे बाद में नगर से हटा। जब मैं पेशवा को शासन-कार्य पुनः सँभालने के लिए वापस ले आया, उस समय मुझे तथा कर्नल क्लोज को

अमृतराव तथा पेशवा के बीच समझौता करा देना आवश्यक प्रतीत हुआ। पेशवा अपने भाई से डरता था और घृणा करता था। हमने निकटवर्ती संघर्ष में उसको निष्पक्ष करके उसका समर्थन प्राप्त करना उचित समझा। हमने आग्रहपूर्वक उसकी शर्तें जान लीं, जिनका मुख्य सम्बन्ध इस विषय से था कि बसई की सन्धि के पहले उसके पास क्या था तथा उस सन्धि के बाद उसकी क्या हानि हुई ? तब हमने उस आय पर समझौता करा देना युक्तियुक्त समझा जो कम से कम सन्धि से पहले वाली आय के समान हो। वार्तालाप होता रहा तथा जब अगस्त, १८०३ में युद्ध छिड़ गया, तब मुझको सैनिक असुविधाओं के कारण यह काण्ड समाप्त कर देना उचित प्रतीत हुआ जो अमृतराव के प्रभाव के फलस्वरूप था। अतः मैंने अमृतराव से सन्धि कर ली और उसको ८ लाख की जागीर प्रमाणित कर दी। मैं यह अवश्य कहूँगा कि उसके बाद अमृतराव ने हमारी जो सेवा की उसे कभी न भूलना चाहिए।"[५]

२४ जुलाई, १८०३ को जनरल वेलेजली ने गवर्नर जनरल को लिखा—"अमृतराव के विषय में हमारी प्रस्तावित योजना से पेशवा सहमत नहीं होना चाहता था। उसका अभिप्राय यह था कि अमृतराव को अत्यन्त अपमानजनक स्थिति में बन्दी बनाकर रखा जाये। मुझको विश्वास हो गया कि यदि यह समाचार मैं अमृतराव के वकील को दे देता हूँ तो वह तुरन्त हमारे विरुद्ध संघ में सम्मिलित हो जायेगा। इस बीच में उसके वकील ने मुझसे निर्णय के लिए आग्रह किया। उसका कहना था कि मेरी इच्छा पर अमृतराव होल्कर तथा शिन्दे की सभाओं से अलग हो गया है। इस बात को लगभग ३ मास हुए। अब वे सरदार उसके शत्रु हैं। इस समय वे सरदार तथा पेशवा भी शत्रु के रूप में उस पर आक्रमण कर सकते थे। अतः मैंने अमृतराव को पत्र लिख कर यह आश्वासन देना उचित समझा कि ब्रिटिश सरकार उसके लिए इस प्रकार का प्रबन्ध करने का ध्यान रखेगी जो कि उसको स्वीकार्य हो। तब मैंने सैनिक तथा राजनीतिक विचारों के कारण उस सन्धि पर हस्ताक्षर कर दिये, जिसका उल्लेख पहले हो चुका है।"[६] आर्थर वेलेजली आगे लिखता है—

---

[५] वेलिंग्टन के पत्र, ओवेन कृत, पृ० ३४८—डण्डास को पत्र।

[६] ओवेन, पृ० २७१। पी० आर० सी०, जिल्द ७, दिनांक ६ जुलाई, १८०५ में उल्लेख है :—"सभासीन गवर्नर जरनल ने मान लिया कि सर आर्थर वेलेजली द्वारा अमृतराव से सर्वप्रथम १४ अगस्त, १८०३ को की गयी तथा १८०४ के जनवरी मास में प्रमाणित प्रतिज्ञा उचित थी। इसके द्वारा ८ लाख की वृत्ति निश्चित की गयी, जिसमें १ लाख की वे वृत्तियाँ भी सम्मिलित थीं जो उसके अनुयायियों के लिए स्वीकार की गयी थीं।"

"उस समय के पत्रों को देखने से पता चलेगा कि संघ के सदस्यों ने किस प्रकार होल्कर को हमारे विरुद्ध सक्रिय युद्ध में सम्मिलित करने के लिए जी-तोड़ प्रयत्न किया। यदि होल्कर ने शिन्दे के साथ अपनी प्रतिज्ञाओं का पालन किया होता तो मैं यह कहने का साहस नहीं कर सकता कि मैं वही सफलता प्राप्त करता जो मैंने की। अमृतराव ने शिन्दे का एक पत्र पकड़ लिया, जिसमें उसने पेशवा से अंग्रेजों की मैत्री त्याग देने का आग्रह किया था तथा प्रतिज्ञा की थी कि जैसे ही अंग्रेजों की पराजय हो जायेगी, वह (शिन्दे) बरार के राजा तथा पेशवा से मिलकर होल्कर का नाश कर देगा। अमृतराव ने यह पत्र होल्कर के पास भेज दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि संघ के सदस्यों के साथ सहयोग के विचार से दक्षिण की ओर दो यात्राएँ करने के बाद होल्कर वापस नर्मदा पार लौट आया तथा वास्तव में उसने एक भी आक्रमण नहीं किया। इसके विपरीत समस्त युद्ध में वह मेरे साथ मित्रवत व्यवहार करता रहा। यह प्रतिपादन करके मैं इस पत्र को समाप्त करता हूँ कि अमृतराव के साथ स्थायी समझौता करके मैंने उचित कार्य किया तथा उसको ७ लाख की वृत्ति देना उचित था।"[७]

इस प्रकार ब्रिटिश सरकार से स्थायी वृत्ति स्वीकार करके अमृतराव मराठा राज्य का प्रथम राजद्रोही सिद्ध हुआ।

५. **बाजीराव राज्य-कार्य तथा उत्तरदायित्व से मुक्त**—अब हमें देखना है कि बाजीराव पर उन उत्तरदायित्वों की क्या प्रतिक्रिया हुई, जिनको उसने सन्धि द्वारा अपने ब्रिटिश रक्षकों तथा राज्य के सदस्यों के प्रति स्वीकार किया था। कर्नल वेलेजली से उसने मुख्यतया शिकायत की कि उसके पास अपना कोई श्रद्धालु सेवक या अनुचर नहीं है। साथ ही वह निष्ठायुक्त और निष्ठाहीन व्यक्तियों में विवेक नहीं कर सकता है। वेलेजली ने सुझाव दिया कि वह प्रत्येक अधिकारी से निष्ठा की शपथ ले ले जैसा कि आजकल विधानसभाओं के सदस्यों द्वारा किया जाता है। इस प्रकार की शपथ के गुणों या अवगुणों का विचार न करके यह कहा जा सकता कि मराठा राजनीति में यह पद्धति सर्वथा नवीन थी तथा पूर्व शासनों में इसका कभी उपयोग नहीं किया गया। बाजीराव ने इसे तुरन्त स्वीकार कर लिया तथा प्रत्येक व्यक्ति को निष्ठा की शपथ लेने के लिए विवश करने लगा। वह लोगों को भोजों तथा गोष्ठियों के लिए बुलाता और आरम्भ होने के पहले इष्टदेव के सम्मुख प्रत्येक व्यक्ति से यह पवित्र शपथ करा लेता। अधिकांश व्यक्ति इस नवीन पद्धति से अप्रसन्न

---

७ ओवेन, पृ० ३४८

हो जाते, परन्तु अनिच्छापूर्वक स्वीकार कर लेते। जनरल वेलेजली पूना में रहकर शिन्दे, होल्कर तथा अन्य व्यक्तियों से शान्ति प्रस्ताव कर रहा था।

बाजीराव ने बलवन्तराव नागनाथ को जनरल के पास अपने सन्देश पहुँचाने के लिए नियुक्त किया। बिठोजी नायक नगर कोतवाल बनाया गया तथा सदाशिव मानकेश्वर बालोजी कुंजर की दीर्घकालीन अनुपस्थिति में पेशवा का मुख्यमन्त्री—स्थानीय परामर्शदाता—नियुक्त किया गया। कुंजर को बाजीराव ने बसई से वर्तमान परिस्थिति तथा सन्धि के परिणाम स्पष्ट करने के लिए शिन्दे के पास भेज दिया था। खांडेराव रस्ते उसका गृह-प्रबन्धक नियुक्त किया गया। इसने बाजीराव को पूना से भगाने में सहायता दी थी। अब राजनीति से सम्बन्धित शायद ही कोई कार्य बाजीराव के पास रह गया, क्योंकि जनरल वेलेजली ने शान्तिपूर्वक समस्त कर्तव्यों पर अपना अधिकार जमा लिया। बाजीराव कोई दरबार न करता, किसी अभ्यागत का स्वागत न करता और न कोई सम्मेलन बुलाता। किसी समय के शक्तिशाली साम्राज्य के प्रभावहीन स्वामी की ओर से समस्त राज्य-कार्य सीधे जनरल के पास भेज दिये जाते थे। इस प्रकार बाजीराव को मालूम हो गया कि वह केवल दिखाने के लिए शासक है, जिसके पास राजभवन में अपना व्यक्तिगत परिचारी वर्ग है। १ जुलाई को एक संवाददाता इस प्रकार टिप्पणी करता है—"अब श्रीमन्त शान्त तथा सुखी हैं। अब उनके पास केवल स्नान, प्रार्थना, भोजन, मदिरापान और भोग-विलास का दैनिक कार्यक्रम रह गया है। अब उन्हें किसी बाह्य कार्य की चिन्ता नहीं है। वर्षाऋतु के चार मास वह धार्मिक कार्यों में व्यस्त रहा है, जिनके लिए प्रसिद्ध पुरोहित विशेष रूप से बुलाये गये हैं। व्ययसाध्य भोजों तथा मधुर संगीत का नित्य प्रबन्ध होता है। भोजन-पात्र विपुल प्रसाधनयुक्त होते हैं। एक दिन पेशवा को ज्वर हो गया, जिसकी शान्ति के लिए दान तथा प्रार्थनाएँ की गयीं। पुरोहितों को खिलाने के लिए भोज्य-पदार्थों के निर्वाचन पर गरमागरम वाद-विवाद होते हैं। लावनियाँ गाने में निपुण जो दो सुन्दरी नर्तकियाँ बसई से बुलायी गयी हैं, उनके गायन गुप्त स्थान में होते हैं। वहाँ केवल थोड़े-से चुने हुए व्यक्ति उपस्थित होते हैं। पेशवा अपना अधिकांश समय यहीं व्यतीत करता है। गत वर्ष से उसको एक गुप्त रोग हो गया है। मोरोबा माने नामक निम्न सेवक को पुरस्कार रूप में पालकी का सम्मान दिया गया है। उसने पेशवा को भागने में सहायता दी थी। अब वह शरीर पर मोतियों तथा हीरों के आभूषण धारण किये रहता है। गत मंगलवार को पार्वती में आतिशबाजी छोड़ी गयी। वहीं पेशवा ने अपना रात्रि का भोजन किया था। उसकी इच्छा रहती है कि उसके मित्र तथा अधिकारी लोग उसे बाह्य स्थानों में भोजों तथा गोष्ठियों के लिए निमन्त्रित करें।"

जिन चार महीनों में मराठा इतिहास का अत्यन्त महत्त्वशाली युद्ध लड़ा गया, उन दिनों बाजीराव के जीवन का यह वर्णन पेशवा के जीवनस्तर की अधोगति का प्रमाण है। २४ जनवरी, १८०४ को कर्नल क्लोज को लिखे हुए पत्र में वेलेजली ने[८] बाजीराव के विषय में अपनी निम्नलिखित सम्मति प्रकट की है—"पेशवा को यह सूचित करना उचित होगा कि उसके राज्य में उच्चतम व्यक्ति से निम्नतम व्यक्ति तक कोई मनुष्य ऐसा नहीं है जो उसका विश्वास करता हो या जो ब्रिटिश सरकार की मध्यस्थता अथवा जमानत के बिना उसके साथ कोई सम्बन्ध या लिखा-पढ़ी चाहता हो। उसमें कोई सार्वजनिक भावना नहीं है। उसकी व्यक्तिगत प्रकृति भयंकर है। जब ब्रिटिश सेना सहायतार्थ नहीं होती, उस समय वह सर्वथा प्रजाविहीन हो जाता है। विषयभोग के लिए अपेक्षित धन के अतिरिक्त उसकी कोई इच्छा नहीं है। उसकी यदि कोई इच्छा है तो यह है कि जिनको वह 'विद्रोही' कहता है, वे उसके रक्षकों द्वारा पकड़ लिये जायें तथा प्रतिरोध के लिए उसके सुपुर्द कर दिये जायें।[९]

बाजीराव न अपने ब्रिटिश रक्षकों के साथ मित्रता बनाये रख सका और न मराठा संघ के साथ। उसकी उत्कट इच्छा होलकर को कठोर दण्ड दिलाने और स्वयं ब्रिटिश दासता से मुक्त होने की थी। पहले से युद्ध का छिड़ जाना सम्भव जानकर जनरल वेलेजली ने बाजीराव से कहा कि वह ऐसी आज्ञा प्रसारित करे, जिससे समस्त सरदार अंग्रेजों का साथ दें और शिन्दे सहित विद्रोहियों को दण्ड दें। वेलेजली के दबाव पर बाजीराव ने इस आशय की आज्ञा उसके हाथ में दे दी, परन्तु उसके साथ-साथ उसने पटवर्धन, विचूंरकर, पुरन्दरे, पन्से, रस्ते तथा अन्य सरदारों से गुप्त रूप से कहा कि वे युद्ध में अंग्रेजों का साथ न दें। उसने रामचन्द्र अप्पा पटवर्धन को मिलने के लिए आमन्त्रित किया और उससे अंग्रेजों का साथ देने के लिए स्पष्टीकरण माँगा। पटवर्धन ने स्पष्ट उत्तर दिया—"यथा राजा तथा प्रजा।"

पेशवा की दुपल्ली नीति वेलेजली के सामने न चल सकी, क्योंकि वह उससे अधिक चतुर था। जब वेलेजली ने कहा कि वह शिन्दे तथा भोंसले के विरुद्ध युद्ध में अपनी सेना सहित सम्मिलित हो तो बाजीराव हक्का-बक्का रह गया तथा अत्यन्त व्याकुल हो उठा। होल्कर के अत्याचार से अपनी रक्षा करने के लिए ही उसने ब्रिटिश सैनिक सहायता प्राप्त की थी। बसई की सन्धि से सहमत

---

८ आर्थर वेलेजली ३ मई, १७९६ को कर्नल हो गया; २९ मई, १८०२ को मेजर जनरल; २५ अप्रैल, १८०८ को लैफ्टीनेण्ट जनरल; तथा ३१ जुलाई, १८६१ को जनरल।

९ ओवेन कृत वेलिंग्टन के पत्र, पृ० ३६५ तथा ३९३, १२ मई, १८०४ का पत्र।

होने में उसकी हार्दिक इच्छा होल्कर को उचित दण्ड दिलाने की थी। परन्तु इस प्रकार की घटना घटित होने के स्थान पर उसने देखा कि वेलेजली तथा समस्त ब्रिटिश सरदार उसके मित्र शिन्दे तथा सहायक भोंसले को पराजित करने पर तुले हुए हैं। यह सब जिस प्रकार हुआ, उसे नीचे बताया जाता है।

६. **किग कालिन्स शिन्दे के पास**—बसई के शान्ति-वार्तालापों के बाद वेलेजली बन्धुओं का मुख्य उद्देश्य मराठा स्वातन्त्र्य का नाश करके उसके स्थान पर ब्रिटिश प्रभुता स्थापित करना था। इस सम्बन्ध में उनको शिन्दे की अनुशासित सेना से अधिक भय था। सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर होते ही गवर्नर जनरल ने शिन्दे से इन शर्तों पर अपनी स्वीकृति दे देने के लिए कहा। इस कार्य के लिए रेजीडेण्ट कर्नल कालिन्स को शिन्दे के पास उसने फतेहगढ़ शिविर में भेजा। कर्नल फ्लोज ने शिन्दे के पास बाजीराव के साथ निश्चित की गयी सन्धि की एक प्रतिलिपि भेजी। शिन्दे को यह प्रति बुरहानपुर में ६ जनवरी को प्राप्त हुई। इसके साथ बाजीराव के शत्रुओं का दमन करने में अंग्रेजों का साथ देने के लिए निमन्त्रण भी था। शिन्दे ने उत्तर दिया—"कालिन्स शीघ्र ही पहुँचने वाला है, अतः उसके साथ परिस्थिति पर वार्तालाप करके अपना उत्तर भेजूँगा।" वेलेजली ने इस उत्तर का अर्थ लगाया कि शिन्दे ब्रिटिश रक्षा में बाजीराव के पूना में पुनः प्रतिष्ठित होने के विरुद्ध नहीं है। कालिन्स शिन्दे के शिविर में २७ फरवरी को पहुँच गया, परन्तु बहुत दिनों तक शिन्दे ने उससे बात ही नहीं की। वे सर्वप्रथम ११ मार्च को मिले। इस दिन से ३ अगस्त तक शिन्दे तथा कालिन्स के बीच गरमागरमी होती रही। अन्त में कालिन्स युद्ध के संकेत के रूप में अजन्ता पहाड़ियों के नीचे फर्दापुर में स्थित शिन्दे के शिविर से चल दिया। प्रत्येक अपने कूटनीतिक चातुर्य से दूसरे को धोखा देने का प्रयत्न करता रहा। इस समय इन समाचारों का अध्ययन ज्ञानवर्धक है। इस कहानी को दोनों मुख्य व्यक्तियों के बीच संक्षिप्त संवाद के रूप में प्रस्तुत करना सुविधाजनक होगा। दोनों ही की सहायता के लिए परामर्शदाता उपस्थित रहते थे। शिन्दे के स्वभाव तथा चरित्र से हम पहले से ही परिचित हैं। कालिन्स सर्वथा विपरीत प्रकार का व्यक्ति था। वह नाटे डील का अत्यन्त आडम्बरपूर्ण तथा गर्वीला व्यक्ति था। वह सदैव विधिपूर्वक नियमित वस्त्र धारण किये रहता था। उसके स्वभाव के कारण एल्फिस्टन को उसके सहायक का कार्य करना असम्भव हो गया था। आर्थर वेलेजली उससे १८०३ में मिला और रेजीडेण्सी के शिविर में तोपों की सलामी से उसका स्वागत किया गया। उस समय वेलेजली ने अपने शिविर सहायक कैप्टिन ब्लैकिस्टन से कहा था—"कालिन्स को देखकर मुझे एक अल्पकाय बन्दर की याद आती है जो पूर्ण वेष-

भूषा धारण करके बारथोलोम्यू के मेले को जा रहा हो।" उसके गर्व तथा आडम्बर के कारण अन्य ब्रिटिश अधिकारी उसको साधारणतः "किंग (राजा) कालिन्स" कहते थे।

सिन्धिया के साथ अपनी प्रथम भेंट में कालिन्स ने पूछा—

कालिन्स—होल्कर के साथ आपके झगड़ों का हम समझौता करा देंगे। आप बसई की सन्धि अवश्य मान लें तथा हमसे अलग समझौता कर लें, जिससे हमारे पारस्परिक सम्बन्ध भूतकाल के समान स्नेहमय रहें और हमारे बीच शान्ति में बाधा न पड़े। आपके साथ हमारे सम्बन्ध मधुर रहें, इसे आप भी स्वीकार करते हैं।

शिन्दे—इस विषय पर विचार करने के लिए मुझको कुछ समय अवश्य मिलना चाहिए। होल्कर से कलह के विषय में मुझको ब्रिटिश मध्यस्थता की आवश्यकता नहीं है।

१६ मार्च को शिन्दे के वकील ने कालिन्स को सूचना दी कि "हमारी हार्दिक इच्छा है कि शान्ति बनी रहे तथा ब्रिटिश सरकार के साथ पूर्ववत मैत्री चलती रहे। होल्कर से कलह हमारा अपना विषय है। इस विषय पर हमको पहले पेशवा से परामर्श करना है। महादजी शिन्दे द्वारा की गयी साल्बई की सन्धि के प्रति हम दोनों अभी तक उत्तरदायी हैं। आप अच्छी तरह जानते हैं कि उस सन्धि में पेशवा तथा अंग्रेजों के बीच प्रतिज्ञाओं के पालनार्थ शिन्दे को प्रतिभू स्वीकार किया गया था। अतः बिना महाराजा से पूछे पेशवा के साथ सन्धि करना अंग्रेजों का अन्याय है।"

कालिन्स—पेशवा स्वामी है और शिन्दे उसका सेवक। क्या आप यह कहना चाहते हैं कि स्वामी को अपनी इच्छानुसार आचरण के लिए सेवक की अनुमति अवश्य लेनी चाहिए? हमने साल्बई की सन्धि की किसी भी प्रतिज्ञा को भंग नहीं किया है, तथा पेशवा अपने उत्तरदायित्व पर अन्य शक्तियों के साथ नवीन समझौता करने के लिए तैयार है। अन्तिम उत्तर देने के पहले आपका पेशवा से मिलना आवश्यक है, यह इसका निश्चित संकेत है कि आपको हमारी बातों का विश्वास नहीं है। अतः हम अनुमान करने के लिए स्वतन्त्र हैं कि आप बसई की सन्धि को स्वीकार नहीं करते। क्या यही बात है?

शिन्दे के वकील ने इस प्रश्न का उत्तर देने से इनकार कर दिया। २४ मार्च को कालिन्स ने पूछा—"बाजीराव को अत्यन्त आवश्यकता पड़ने पर हम उसकी सहायता करने आये और उसको होल्कर द्वारा होने वाले सर्वनाश से बचा लिया। वह आप दोनों का नाश कर देता। अतः अब आप हमसे निष्कपट कह दीजिए कि ब्रिटिश सत्ता के प्रति आप कौनसी वृत्ति धारण करना चाहते हैं।"

शिन्दे—जो कुछ अंग्रेजों ने किया, वह उनका अपना कार्य था। परन्तु यह विचित्र बात है कि बाजीराव ने इस गम्भीर प्रश्न के सम्बन्ध में हमको अब तक कुछ नहीं लिखा है। जब तक हमको यह न मालूम हो जाये कि उसका उद्देश्य क्या है, मैं आपको स्पष्ट उत्तर नहीं दे सकता। मुझे सूचना मिली है कि बाजीराव का कार्यकर्ता बालोजी कुंजर स्थिति स्पष्ट करने के लिए मेरे शिविर में आ रहा है। उसके आने पर मैं आपको उत्तर दूँगा। इस का यह अर्थ नहीं है कि हम सन्धि का तिरस्कार करते हैं। मेरी इच्छा आपका विरोध करने तथा ब्रिटिश सरकार के साथ अपनी परम्परागत मित्रता को भंग करने की बिलकुल नहीं है।

इसके शीघ्र पश्चात ही जनरल वेलेजली के सेना सहित पूना पहुँच जाने का समाचार मिला। तब शिन्दे ने पूछा—"पूना आने में ब्रिटिश सेनाओं का क्या उद्देश्य है? उन्हें वापस बुलाने के लिए गवर्नर जनरल को अवश्य लिखें।"

कालिन्स—आप बसई की सन्धि को स्वीकार करने की बात कहते हैं। उसी सन्धि के अनुसार ब्रिटिश सेनाएँ पूना पहुँची हैं। फिर वे वापस कैसे बुलायी जा सकती हैं?

जब कालिन्स तथा शिन्दे के बीच इस प्रकार का वाद-प्रतिवाद हो रहा था, तभी शिन्दे के वकील ने १८ अप्रैल को कालिन्स से मिलकर पूछा—"क्या अंग्रेज उस हानि की पूर्ति करने के लिए तैयार हैं जो उन्होंने मेरी जानकारी के बिना बसई की सन्धि करके की थी?"

कालिन्स—शिन्दे को रुष्ट करने अथवा उसकी प्रतिष्ठा को हानि पहुँचाने की हमारी कोई इच्छा नहीं है।

इस वार्तालाप के समय शिन्दे, भोंसले, होल्कर तथा अन्य सरदार अंग्रेजों के विरुद्ध एक विशाल संघ का संगठन करने के कार्य में व्यस्त थे। इसका समाचार गवर्नर जनरल के पास पहुँच गया। ४ मई को शिन्दे भोंसले से मिलने के लिए बुरहानपुर से चल दिया। भोंसले शिन्दे से मिलने के लिए अपनी सेना सहित नागपुर से चल दिया था। गवर्नर जनरल ने कालिन्स से पुछवाया कि वह शिन्दे से पूछे कि इन प्रयाणों का अर्थ अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध तो नहीं है; उसको चेतावनी दे कि यदि वह वास्तव में अंग्रेजों के साथ मैत्री-सम्बन्ध बनाये रखना चाहता है तो अविलम्ब उत्तर भारत में अपने प्रदेश को वापस चला जाये। वर्तमान संकटपूर्ण परिस्थिति में विशाल सेनाओं सहित दक्षिण में उसकी उपस्थिति से विपत्ति का भय है। यदि इस प्रकार की चेतावनी के विपरीत शिन्दे पूना की ओर प्रयाण में दृढ़ रहा तो गवर्नर जनरल

समझेगा कि उसका अभिप्राय बसई की सन्धि को भंग करना है। यह शत्रुतापूर्ण कार्य अंग्रेजों को अपनी समस्त शक्ति सहित रोकना ही पड़ेगा। गवर्नर जनरल ने यह भी कहा कि अपने मित्र निजामअली की रक्षा करना ब्रिटिश सरकार का कर्तव्य है। यदि शिन्दे निजाम पर आक्रमण करेगा तो अंग्रेज इसका अर्थ समझेंगे कि युद्ध की घोषणा हो गयी है।

गवर्नर जनरल ने कलकत्ते से ३ जून को कड़ा प्रत्यादेश भेजा तथा कालिन्स को आज्ञा दी कि वह शिन्दे का उत्तर प्राप्त करके उसे सीधा जनरल वेलेजली के पास पूना भेज दे। गवर्नर जनरल ने इसी प्रकार का प्रत्यादेश नागपुर के रेजीडेण्ट जोजिया वेब के द्वारा रघुजी भोंसले को भेजा। जनरल वेलेजली को उसी समय आदेश दिया गया कि दोनों रेजीडेण्टों से उत्तर प्राप्त करने के बाद जो कार्य आवश्यक समझे करे। इनके अतिरिक्त गवर्नर जनरल ने पेशवा को अलग से विस्तृत पत्र लिखा, जिसमें परिस्थिति की व्याख्या करने के बाद उसको आदेश दिया गया था कि वह फ्लोज तथा जनरल वेलेजली की इच्छा-नुसार अपनी सेना सहित युद्ध में पूर्ण सहयोग दे।

इस प्रकार जून-जुलाई में जनरल वेलेजली युद्ध की सम्भावना होने पर तैयारियों में व्यस्त रहा। उसने ब्रिटिश सेनाओं को अपने विभिन्न स्थानों से बढ़कर बरार में शिन्दे के शिविर के समीप एकत्र होने की आज्ञा दी। उसने यथासम्भव सरदारों को मित्र रूप में प्राप्त करने तथा अपनी इच्छा से मराठा संघ के अनुकूल होने वाले सरदारों को प्रलोभन देने का प्रयत्न किया। वेलेजली ने तुंगभद्रा से लेकर नर्मदा तक प्रत्येक छोटे-बड़े मराठा सरदार से प्रार्थना करके विरोधी पक्ष को निर्बल करने का यथाशक्ति प्रयास किया।

जब युद्ध की सम्भावना बढ़ने लगी तो जनरल वेलेजली ने निश्चय किया कि वर्षाऋतु में सैनिक गतिविधि के लिए दक्षिण बरार का क्षेत्र सर्वथा उत्तम रहेगा। उसने सम्बन्धित विभिन्न कार्यकर्ताओं तथा सरदारों के नाम इस आश्रय के स्पष्ट सामयिक निर्देश भेज दिये। गवर्नर जनरल ने इसी प्रकार की एक अन्य योजना बनाकर दिल्ली क्षेत्र में कार्यान्वित करने के लिए मुख्य सेनापति लार्ड लेक के पास भेज दी।

इन प्रवृत्तियों के कारण समस्त दक्षिण में लगभग हलचल-सी मच गयी। शिन्दे के शिविर में कालिन्स ने निर्णय के लिए लगातार दबाव डाला और शिन्दे ने उसी तत्परता से इसको टालने का प्रयत्न किया। जब कालिन्स ने उग्र होकर स्पष्ट उत्तर माँगा तो उससे कहा गया कि भोंसले आ रहा है। जब तक दोनों सरदार परस्पर मिल न लेंगे, तब तक कोई निश्चयात्मक उत्तर नहीं दिया जा सकता। इसका स्पष्ट अर्थ था कि शिन्दे तथा भोंसले तैयारियों के

लिए समय चाहते थे। कालिन्स ने इस कपट को पराजित करने का उपाय किया। गवर्नर जनरल ने कालिन्स से कहा कि वह शान्ति या युद्ध के सम्बन्ध में शिन्दे के निश्चय के लिए विशेष अवधि निश्चित कर दे।

अन्त में शिन्दे और भोंसले ४ जून को मलकापुर के समीप बोड़वाड़ में विधिपूर्वक प्रथम बार मिले। कालिन्स ने रघुजी से तुरन्त निश्चय की माँग की। रघुजी ने उत्तर दिया—"कल ही तो मुझे बसई की सन्धि का समाचार मिला है, अतः परिस्थिति पर विचार करने के लिए मुझे समय अवश्य मिलना चाहिए।" ८ जून को दोनों सरदारों के बीच प्रथम विचार-विमर्श हुआ। इसके बाद कालिन्स ने उत्तर के लिए फिर दबाव डाला। सरदारों ने विलम्ब किया तो १२ जून को कालिन्स ने लिखित धमकी दी कि यदि उसको तुरन्त स्पष्ट उत्तर नहीं दिया गया तो वह शिन्दे के शिविर से चल देगा। इस प्रकार यह काण्ड संकट की दिशा में अग्रसर हुआ। संघ के दोनों सदस्य उस समय दूरस्थ होल्कर से पत्र-व्यवहार कर रहे थे। १९ जून को कालिन्स ने शिन्दे को पत्र लिखकर उसमें कहा—"यदि आप दो दिन के भीतर अपना अन्तिम उत्तर मुझे नहीं देंगे तो मैं इसी मास की २२ तारीख को आपके शिविर से चल दूँगा।" इस पर शिन्दे ने सुविचारित उत्तर के लिए ६ दिन का समय माँगा। कालिन्स ने इसके अनुसार २८ को उत्तर माँगा। कुछ समय बाद दोनों सरदारों ने कालिन्स को सूचना दी—"हमको अभी तक बसई सन्धि की पूरी प्रतिलिपि प्राप्त नहीं हुई है। जब तक हमें वह नहीं मिलती और इस पर पेशवा के साथ व्यक्तिगत रूप में बातचीत नहीं कर लेते, तब तक हम अन्तिम निश्चय पर पहुँचने की स्थिति में नहीं हो सकते।" १ जुलाई को कालिन्स ने दौलतराव से मिलकर यह प्रबल चेतावनी दी—"अपने निश्चय में विलम्ब करके आप केवल हमारी परेशानियों को बढ़ा रहे हैं। आप यहाँ अपनी पूर्ण सेनाओं सहित उपस्थित हैं। ऐसे में यदि जनरल वेलेजली विवश होकर युद्ध छेड़ दें तो उत्तरदायित्व आपका होगा।"

४ जुलाई को तीनों फिर मिले। वहाँ भोंसले के वकील श्रीधर लक्ष्मण ने कहा कि बिना सब सरदारों से पूछे उन्हें अंग्रेजों से पृथक सन्धि करने का कोई अधिकार नहीं था। रेजीडेण्ट ने पूछा—"जब बाजीराव विवश होकर पूना से भाग निकला था, तब ये सरदार उसकी सहायता करने को क्यों नहीं गये? उसके जीवन तथा गद्दी की रक्षा करना अंग्रेजों का दोष नहीं है।" इस पर सरदारों ने रेजीडेण्ट को सूचित किया कि उनकी इच्छा सन्धि भंग करने की नहीं है। वे प्रतिज्ञा कर सकते हैं कि यदि अंग्रेजों ने युद्ध न छेड़ा तो वे अपनी सेनाएँ पूना नहीं ले जायेंगे। इस पर रेजीडेण्ट ने पूछा—"जब शिन्दे तथा

भोंसले दोनों ही होल्कर तथा अन्य सरदारों के साथ संघ की रचना कर रहे हैं तथा युद्ध की तैयारियाँ कर रहे हैं, तब उनके शान्तिमय वचनों का किस प्रकार विश्वास किया जा सकता है ? यदि उनका इरादा लड़ने का नहीं है तो शिन्दे को तुरन्त नर्मदा पार करके अपने देश को चला जाना चाहिए तथा भोंसले को नागपुर ।" उसने यह भी कहा—"जब आप दोनों अपने उद्दिष्ट स्थानों को पहुँच जायेंगे, तब मैं कर्नल वेलेजली से वापस होने के लिए प्रार्थना करूँगा ।"

इसके बाद शिन्दे तथा भोंसले ने गवर्नर जनरल के लिए एक पत्र तैयार करके आगे भेजने के लिए कालिन्स को दे दिया । इस समय कलकत्ता में गवर्नर जनरल को मालूम हुआ कि शिन्दे बुन्देलखण्ड में गोसाई हिम्मतबहादुर तथा गनी बेग को अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध की तैयारी करने की प्रेरणा दे रहा है । अत: गवर्नर जनरल ने कालिन्स से कहा—"वह शिन्दे से पूछे कि क्या वह उत्तर भारतीय सरदारों को अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह करने की उत्तेजना दे रहा है ? १६ जुलाई को कालिन्स शिन्दे से मिला और यही प्रश्न किया ।

शिन्दे—नहीं, मैंने उत्तर भारतीय सरदारों को इस प्रकार के पत्र नहीं लिखे हैं । इसके विपरीत मैंने उनको आक्रामक कार्यों के विरुद्ध चेतावनी दी है ।

कालिन्स—यदि यही बात है तो आपका विचार नर्मदा की ओर जाने का कब है ?

शिन्दे—मैं इस प्रश्न का उत्तर उस समय दूँगा, जब मुझको उन पत्रों के उत्तर मिल जायेंगे जो मैंने आपको गवर्नर जनरल के लिए दिये हैं ।

१४ जुलाई को दौलतराव को जनरल वेलेजली का एक पत्र मिला । इसमें कहा गया था कि वह निजाम राज्य की सीमा से हट जाये, क्योंकि अंग्रेजों ने विचारपूर्ण सन्धि द्वारा निजाम की रक्षा अंगीकार कर ली है । "यदि आप नहीं हटेंगे, और हमें कार्रवाई करने पर विवश होना पड़ा, तो युद्ध का उत्तरदायित्व आप पर होगा ।" शिन्दे तथा भोंसले ने इस पत्र पर गहराई से विचार करके निम्नलिखित टिप्पणी की :

भोंसले—मैं अपने देश में शिविर लगाये हूँ । अंग्रेजों को क्या अधिकार है कि वे मुझसे हटने को कहें ?

२५ जुलाई को व्यक्तिगत सम्मेलन में दौलतराव ने कालिन्स को सूचित किया—"हम दोनों अपने न्यायसम्मत क्षेत्रों के भीतर हैं । हमने आपसे पहले ही प्रतिज्ञा कर ली है कि हम पूना की ओर प्रयाण नहीं करेंगे और न हमारी इच्छा बसई की सन्धि को भंग करने की है । इस प्रकार स्पष्ट है कि हमको युद्ध की इच्छा नहीं है ।

कालिन्स—जनरल वेलेजली आपके लिखित या मौखिक शब्दों पर विश्वास करने में असमर्थ हैं। अतः अविलम्ब हटकर आप अपना वचन क्रिया द्वारा सार्थक करें। ऐसा कोई शत्रु यहाँ नहीं है जो आप पर आक्रमण कर सकता हो। विशाल सेनाओं सहित यहाँ ठहरने की आपको कोई आवश्यकता नहीं है। आप हटते क्यों नहीं हैं ?

शिन्दे—२८ जुलाई को हम इसका उत्तर देंगे।

उस दिन कालिन्स आया और उसने पूछा—"मैं कब आपका उत्तर लेने आऊँ ?"

वकील—शिन्दे और भोंसले आज मिलने वाले हैं। उसके बाद उत्तर दिया जायेगा।

कालिन्स—यदि कल दोपहर के पहले मुझको उत्तर नहीं मिला तो मैं आपके शिविर से वास्तव में चल दूँगा।

३१ जुलाई को कालिन्स ने फिर वही धमकी दी। उसके बाद शिन्दे और भोंसले ने उसको व्यक्तिगत वार्तालाप का निमन्त्रण दिया। इस सम्मेलन में उसको सूचना दी गयी—"हम दोनों इस शिविर (फर्दापुर) को छोड़कर बुरहानपुर वापस जाने के लिए तैयार हैं, परन्तु इसके पहले ही जनरल वेलेजली को भी अपने मुख्य स्थान श्रीरंगपट्टन को अवश्य वापस हो जाना चाहिए।" दोनों सरदारों ने कहा कि वह जनरल वेलेजली की प्रतियात्रा आरम्भ होने का एक दिन निश्चित कर दे, जिससे वे भी उसी दिन लौटना आरम्भ कर दें। कालिन्स ने यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। कालिन्स यह कार्य बिना जनरल के साथ परामर्श किये नहीं कर सकता था। इस पर शिन्दे तथा भोंसले ने प्रस्ताव किया कि हम स्वयं एक दिन निश्चित किये देते हैं। समस्त दल उसी दिन प्रयाण करें। तब रेजीडेण्ट ने कहा कि यह प्रस्ताव लिखित रूप में दिया जाये, जिससे इसे अधिकारियों के पास भेजकर वह उत्तर मँगवा ले।

इन सम्मेलनों तथा वार्तालापों का अन्त में कुछ भी फल नहीं हुआ तथा जनरल वेलेजली इस निश्चय पर पहुँचा कि शिन्दे तथा भोंसले केवल समय प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं, जिससे वे होल्कर को अपनी ओर मिला लें। जनरल वेलेजली ने कालिन्स से कहा कि वह अविलम्ब शिन्दे का शिविर छोड़ दे। उसने बताया कि इन लोगों का प्रस्ताव निरर्थक है, क्योंकि शिन्दे दो दिन के भीतर ही बुरहानपुर पहुँच जायेगा जबकि वेलेजली को अपने उद्दिष्ट स्थान तक पहुँचने में दो मास लग जायेंगे। यह सूचना कालिन्स के पास ३ अगस्त को पहुँची और वह अविलम्ब शिन्दे का शिविर छोड़कर औरंगाबाद

चल दिया। ६ अगस्त को दौलतराव को जनरल वेलेजली का निम्नलिखित पत्र प्राप्त हुआ :

"आपका पत्र मुझे मिल गया है। हमारी इच्छा आप लोगों के विरुद्ध युद्ध आरम्भ करने की नहीं है। आप दोनों सरदारों ने मुझको स्पष्ट संकेत दे दिया है कि आपका अभिप्राय हम पर आक्रमण करने का है, क्योंकि आपने निजाम की सीमा पर विशाल सेनाएँ एकत्र कर ली हैं तथा अपने स्थानों से हटना अस्वीकार कर दिया है। मैंने मित्रता का हाथ बढ़ाया और आपने उसको ठुकरा दिया। अब बिना अधिक वार्तालाप के मैं युद्ध आरम्भ कर रहा हूँ। इसका उत्तरदायित्व सर्वथा आपका है।"

अगले दिन ७ अगस्त को जनरल वेलेजली ने एक सामान्य घोषणा निकाल कर उस परिस्थिति का वर्णन किया, जिसके कारण वह शिन्दे तथा भोंसले के विरुद्ध युद्ध आरम्भ करने पर विवश हो गया था। सर्वसाधारण को प्रेरणा दी गयी कि वे युद्ध में भाग न लें, क्योंकि उनकी कोई हानि नहीं होगी।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि किस प्रकार सहसा युद्ध आरम्भ किया गया। सत्तात्मक राजनीति को अपने कार्य के समर्थन के लिए सदैव दिखा-वटी कारण प्राप्त हो जाते हैं। बाजीराव ने पेशवा पद से त्यागपत्र दे दिया था। उसको यह अधिकार था या नहीं कि वह अपने उत्तरदायी सरदारों की जानकारी तथा सलाह के बिना स्वतन्त्र समझौते पर हस्ताक्षर कर दे—ये ऐसे प्रश्न हैं, जिनका उत्तर इतिहास माँगता है। उत्तर चाहे जो कुछ भी हो पर क्या अंग्रेज यह कहने का साहस कर सकते हैं कि उन्होंने बसई की सन्धि को अक्षरश: तथा भाव सहित कार्यान्वित किया ? बाजीराव ने ब्रिटिश सहा-यता अपने विरोधियों—अमृतराव तथा होल्कर—का दमन करने के लिए प्राप्त की थी। यह करने के स्थान पर उन्होंने उसके मित्रों—शिन्दे तथा भोंसले—का दमन कर दिया। वास्तव में होल्कर स्वतन्त्र रूप से भागकर बच सकता था। उसको पुरस्कृत भी किया जा सकता था, यदि उसने बाद को ब्रिटिश इच्छा के वशवर्ती रहना अस्वीकार न कर दिया होता। इसके अतिरिक्त इस सौदेबाजी में बाजीराव मराठा संघ में अपनी समस्त सत्ता तथा नेतृत्व खो बैठा।

७. होल्कर द्वारा संघ का परित्याग—खानदेश को जाते हुए यशवन्तराव ने औरंगाबाद पर हमला किया और वहाँ से बलपूर्वक कर के रूप में ११ लाख रुपये प्राप्त किये। उसने पैठ एवं जालना को भी लूट लिया और भस्म कर दिया। अंग्रेजों के एक मित्र का इस प्रकार लूटा जाना उनके प्रति सीधी चुनौती था, परन्तु कर्नल वेलेजली ने इस अपमान को सहन कर लिया और

अपने ध्यान को शिन्दे तथा भोंसले की ओर अग्रसर किया। इन दोनों ने भयभीत होकर होल्कर से साथ देने की प्रार्थना की थी। काशीराव होल्कर ने यशवन्तराव को पुन: प्रसन्न करने का कार्य आरम्भ किया। सामान्य संकट को समझकर वह संघ में सम्मिलित होने के लिए सहमत हो गया। दौलतराव तथा रघुजी बोड़वाड़ में ४ जून को प्रथम बार मिले तथा कालिन्स द्वारा दी गयी धमकी का सामना करने के उपाय रूप में उन्होंने होल्कर की समस्त माँगों को स्वीकार करने की प्रतिज्ञा की। खांडेराव होल्कर जुलाई में यशवन्तराव के सुपुर्द कर दिया गया, परन्तु जिन जिलों पर दौलतराव ने अधिकार कर लिया था, वे वापस नहीं किये गये। इस बीच ७ अगस्त को अहमदनगर पर आक्रमण करके वेलेजली ने युद्ध आरम्भ कर दिया तथा भोंसले ने होल्कर से अविलम्ब संघ में सम्मिलित होने के लिए प्रार्थना की। यशवन्तराव ने रघुजी को २३ अगस्त को निम्नलिखित उत्तर दिया :

"मैंने पहले ही पूना में आपके वकीलों को अपनी आवश्यकताएँ स्पष्ट कर दी हैं तथा लिखित रूप में उनको आपके पास भेज दिया है। अपने राज्य तथा धर्म की रक्षा में मैं आपका साथ देने के लिए पूर्णत: तैयार हूँ। मेरी प्रार्थना स्वीकार करने के स्थान पर आपने मुझसे केवल खानदेश से छिन्द-वाड़ी वापस चले जाने को कहा। मैं तुरन्त वापस आ गया। आप जानते हैं कि कई गत मासों से मैं आपसे किस प्रकार विनय कर रहा हूँ कि होल्कर के वे प्रदेश वापस कर दिये जायें, जिन पर शिन्दे ने अधिकार कर लिया है। यदि वह यह प्रार्थना स्वीकार कर लेगा तो मैं आपके साथ सम्मिलित होने को तैयार हूँ। भीकनगाँव मे (नर्मदा के समीप) मैं आपके उत्तर की प्रतिज्ञा कर रहा हूँ।[१०]

शर्जाराव के परामर्श के कारण शिन्दे ने होल्कर को सन्तुष्ट नहीं किया। उसने अपने द्वारा अधिकृत प्रदेशों को भी नहीं छोड़ा। वेलेजली ने अपना कार्य तीव्र गति से करके होल्कर को मराठा मित्रों में सम्मिलित होने से रोक लिया। उसने होल्कर को लिखा—"मैं व्यक्तिगत रूप से मिलना चाहता हूँ।" इसका अति संक्षिप्त उत्तर होल्कर ने दिया—"भावी घटनाओं की रूपरेखा पर ही हमारा मिलना हो सकता है।"[११] इसके स्पष्टीकरण की आवश्यकता है।

दौलतराव द्वारा बाजीराव को लिखा हुआ एक पत्र अमृतराव ने पकड़ लिया और जनरल वेलेजली के पास भेज दिया। वेलेजली ने इसे यशवन्तराव

---

१० ऐतिहासिक पत्र, ३७३

११ 'जशा भेटी व्हावयाच्या तगा घड़तील।'

के पास भेज दिया। इस पत्र में दौलतराव ने बाजीराव से कहा था कि वह यशवन्तराव की लेशमात्र चिन्ता न करे—"यह हमारा आडम्बर मात्र है कि हम उसकी माँगों को पूरा कर रहे हैं। युद्ध के बाद हम दोनों उससे अपना पूरा बदला ले लेंगे।"[१२]

दौलतराव के इस कपट आचरण से यशवन्तराव की आँखें खुल गयीं तथा उसने संघ में सम्मिलित होने का विचार सर्वथा त्यागकर सीधे मालवा की ओर प्रयाण किया। वह महत्त्वपूर्ण पत्र यशवन्तराव के पास भेजकर वेलेजली ने चतुरतापूर्वक एक शत्रु को युद्ध से अलग कर दिया। उसने मालकम को २० जून को लिखा—"शिन्दे, होल्कर तथा बरार का राजा और सम्भवतः अन्य सरदार भारत में पृथक तथा स्वतन्त्र सत्ताएँ हैं जो सम्भवतः इस समय रक्षात्मक संघ में सम्मिलित हो जायेंगे। हम इसका ध्यान अवश्य रखें और अपने सैनिक-बल को न घटायें। जिन विषयों का पेशवा के अधिकार में रहना आवश्यक है, उनका पालन करने के लिए पेशवा की अनिच्छा तथा असमर्थता का मैंने वर्णन नहीं किया है। क्या वह इस समय शिन्दे तथा होल्कर से नित्य पत्र-व्यवहार नहीं करता है ? शिन्दे को लिखे हुए उसके उस पत्र में भी जो लगभग बलपूर्वक उससे छीना गया है, सन्धि-भंग का विषय है। इस पत्र में वह अपनी इच्छा स्पष्ट प्रकट करता है कि वह जहाँ है वहीं बना रहे, जबकि वह जानता है कि गवर्नर जनरल की इच्छा शिन्दे को नर्मदा पार भेजने की है तथा केवल इसी घटना से शान्ति सुनिश्चित हो सकती है।"[१३]

२३ जून को वेलेजली ने कर्नल क्लोज को लिखा—"संघ के सदस्य अभी तक अपने काम सँभाल नहीं सके हैं। अभी होल्कर उनकी योजना में सम्मिलित नहीं हुआ है। इसी कारण उनकी इच्छा निश्चय में विलम्ब करने की है। होल्कर का उद्देश्य अपने प्रदेश पर अधिकार करना मालूम होता है। शिन्दे तथा हमारे बीच होने वाले युद्ध द्वारा वह अपना उद्देश्य प्राप्त करना चाहता है। यदि हममें तथा शिन्दे में युद्ध न हुआ, तब भी वह उस प्रदेश पर अधिकार कर लेगा, परन्तु इस प्रकार निश्चयपूर्वक नहीं। उस समय भोंसले की मध्यस्थता से स्थापित शान्ति द्वारा या शिन्दे के विरुद्ध अपने अविराम युद्ध द्वारा वह यह उद्देश्य प्राप्त कर सकेगा। स्पष्ट है कि होल्कर का उद्देश्य यह अवश्य है कि वह हमारे विरुद्ध संघर्ष से दूर रहे तथा दूसरों को प्रेरित करके उन्हें इसमें फँसा दे। परन्तु सम्भव है कि शिन्दे और भोंसले उसकी इस इच्छा को समझते हों तथा उससे अपना साथ देने का आग्रह कर रहे हों।

---

[१२] ओवेन कृत, वेलिंग्टन के पत्र, पृ० ३५०

[१३] ओवेन, पृ० २४३-४४

यह कार्य करने का इस समय उनके पास अच्छा अवसर है। उसको केवल सचेत भर करना है कि अंग्रेज तुम पर आक्रमण करने वाले हैं। इस दृष्टि से यह दुख की बात है कि कर्नल कालिन्स के मुंशी से कह दिया कि हमारा इरादा होल्कर पर हमला करने का है। इस समय इस प्रकार की घोषणा नीति-विरुद्ध होने के अतिरिक्त असत्य भी है। मेरी सम्मति में गवर्नर जनरल के निर्देशानुसार हमको इसका दृढ़तापूर्वक खण्डन करना चाहिए। यदि आपकी भी यही सम्मति है तो इस विषय पर कर्नल कालिन्स को सुझाव देना उपयुक्त होगा।"[१४]

वास्तव में यह कार्य जनरल वेलेजली द्वारा कूटनीतिक प्रयोग सिद्ध हुआ कि उसने पेशवा की इच्छानुसार होल्कर पर आक्रमण नहीं किया। इस कार्य के लिए उसने केवल शिन्दे तथा भोंसले को ही लक्ष्य बनाया और इस प्रकार होल्कर को संघ में सम्मिलित होने से रोक दिया। यद्यपि जनरल वेलेजली के प्रति होल्कर की वृत्ति कठोर थी, परन्तु वह बाद को शिन्दे की चाल समझ कर युद्ध से दूर रहा। १६ जुलाई को जनरल वेलेजली ने होल्कर को लिखा—

"मेरी इच्छा आपके तथा कम्पनी सरकार के बीच विद्यमान सद्भावना को प्रोत्साहन देने की है। इस विचार से मैं बसई में माननीय कम्पनी तथा पण्डित प्रधान के बीच निश्चित की गयी सन्धि की एक प्रति आपके पास भेज रहा हूँ। इसकी सामान्य रक्षात्मक शर्तों से आपको मालूम हो जायेगा कि इसमें भारत की शान्ति तथा सुरक्षा का प्रबन्ध है। आपको यह भी मालूम हो जायेगा कि १२वीं धारा में समस्त महान मराठा जागीरदारों का प्रभावकारी प्रबन्ध किया गया है। इन जागीरदारों में होल्कर परिवार का नाम विशेष रूप से दिया हुआ है। आप देखेंगे कि इस सन्धि में आपके परिवार का हित तथा सुरक्षा सम्बन्धित है। वास्तव में उनकी रक्षा किसी अन्य प्रकार से नहीं हो सकती। स्थिति इस प्रकार की है जिससे मुझे आपकी ओर से कोई सन्देह नहीं है कि आप अपने हितों के अनुकूल आचरण करेंगे तथा कम्पनी के साथ शान्ति को बनाये रखेंगे। मैं यह पत्र एक सम्मानित अधिकारी कदरनवाजखाँ के हाथ भेज रहा हूँ। इन पर मुझे विश्वास है और ये मेरी इच्छाओं के विषय में प्रत्येक वह बात स्पष्ट करेंगे[१५] जो आप जानना चाहेंगे।"

इस पत्र का अभीष्ट प्रभाव हुआ तथा होल्कर संघ में सम्मिलित होने से रुक गया। बाद में जनरल वेलेजली ने इस कल्याणकारक परिणाम के लिए होल्कर को बधाई दी। यशवन्तराव को इस समय धन का अत्यन्त्र कष्ट था।

---

[१४] ओवेन, पृ० २४६

[१५] ओवेन, पृ० २६२

उसने अपने प्रदेशों सहित शिन्दे तथा भोंसले से धन माँगा। १० जुलाई को कालिन्स लिखता है—"कल तीसरे पहर खांडेराव होल्कर यशवन्तराव के पास पहुँच गया। दौलतराव ने निर्देश भेजे हैं कि होल्कर का समस्त प्रदेश उसे दे दिया जाये।" ४ अगस्त को कर्नल क्लोज ने सूचना भेजी—"होल्कर इस समय भी ताप्ती के समीप है। यद्यपि शिन्दे ने वैर-भाव बहुत कुछ शान्त कर दिया है, फिर भी ऐसा नहीं मालूम होता कि उसका इरादा अविलम्ब हमारे विरुद्ध शिन्दे का साथ देने का है।"[१६] स्पष्ट है कि होल्कर आरम्भ हो चुके युद्ध के परिणाम की प्रतीक्षा कर रहा था। उसे आशा थी कि वह उपयुक्त अवसर पर इनमें सम्मिलित हो जायेगा। जब होल्कर तथा अमृतराव इस प्रकार संघ से पृथक कर दिये गये तो पटवर्धन परिवार तथा अन्य छोटे-छोटे सरदारों ने भी उनका अनुकरण किया। इसमे युद्ध में अंग्रेजों का कार्य बहुत हल्का हो गया।

जनरल वेलेजली का उत्तम प्रयास विजय का सर्वोपरि अधिकारी था। उसने अवसर पर कुछ भी नहीं उठा रखा। उसने मराठा संघ की शक्ति न्यूनतम सीमा तक पहुँचा दी। उसने युद्ध कार्यों के लिए उत्तम ऋतु तथा अत्यन्त उपयुक्त क्षेत्र चुन लिया। उसने अपने शत्रुओं को एक विशेष स्थान पर कीलित कर दिया तथा उनकी स्वाभाविक छापामार प्रवृत्ति को कोई अवसर नहीं दिया। वह पूना के इतने समीप रहा कि बाजीराव तथा अन्य विघ्नकारी व्यक्तियों की विरोधी प्रगतियों का नियन्त्रण कर सके। तुलना करने पर प्रतीत होता है कि इस राजनीतिक प्रवृत्ति के संचालनार्थ मराठों में बहुत ही कम क्षमता थी।

इस महत्त्वपूर्ण संकट-काल में पूना की परिस्थिति का वर्णन इस प्रकार किया गया है—"क्लोज साहब पेशवा से मिलने आया और उसने कहा—'इस समय समस्त पगड़ी वाले सरदारों ने एका कर लिया है। इस अवसर पर क्या आपकी इच्छा है कि जो कुछ उपाय हमको उचित जँचें, हम उन्हें करें?' श्रीमन्त ने उत्तर दिया—'आप सर्वथा निश्चिन्त रहें। मैं कभी आपका साथ नहीं छोड़ूँगा। मैं शिन्दे को गोदावरी तट पर बुलाऊँगा तथा अपने विचारों के अनुकूल कर लूँगा।' तब श्रीमन्त पर दबाव डाला गया कि वह सन्धि की शर्तों के अनुसार अपनी सेनाएँ भेजे। अंग्रेजों के इस प्रकार के व्यवहार पर उसको बहुत क्रोध है। वह कहता है कि वे झूठे हैं। बलवन्तराव नागनाथ के द्वारा उसने गुप्त रूप से शिन्दे तथा भोंसले दोनों को अंग्रेजों का दमन करने को उत्तेजित किया है। होल्कर का सहयोग प्राप्त हो गया है। अब तीनों सरदार युद्ध के लिए तैयार हैं।"[१७]

---

[१६] पूना रेजीडेण्सी कॉरस्पौण्डेन्स, जिल्द ९, पृ० २०१ तथा २०२
[१७] खरे, ६६५५ तथा ६६५६

अध्याय १४

तिथिक्रम

१७५५	पेरों का जन्म ।
१७८०	पेरों का भारत पहुँचना ।
दिसम्बर, १७९५	दि बायने द्वारा अवकाश ग्रहण—पेरों उसके स्थान पर ।
जून, १८०३	गवर्नर जनरल द्वारा युद्धोद्देश्य निश्चित ।
६ अगस्त, १८०३	निजामअली की मृत्यु ।
७ अगस्त, १८०३	लेक का शिन्दे के विरुद्ध कानपुर से प्रयाण ।
८ अगस्त, १८०३	वेलेजली का अहमदनगर के विरुद्ध प्रयाण ।
१२ अगस्त, १८०३	वेलेजली द्वारा अहमदनगर के गढ़ पर अधिकार ।
२९ अगस्त, १८०३	वेलेजली का औरंगाबाद पहुँचना ।
३ सितम्बर, १८०३	पेरों द्वारा शिन्दे की सेवा का परित्याग ।
५ सितम्बर, १८०३	लेक द्वारा अलीगढ़ पर अधिकार ।
६ सितम्बर, १८०३	शिन्दे तथा भोंसले का जलनापुर के समीप मिलना ।
१४ सितम्बर, १८०३	लेक का दिल्ली में प्रवेश तथा सम्राट से मिलना ।
१८ सितम्बर, १८०३	जगन्नाथपुरी पर अंग्रेजों का अधिकार ।
२४ सितम्बर, १८०३	मराठे असाई में परास्त ।
सितम्बर-दिसम्बर, १८०३	राजपूत तथा अन्य सरदारों द्वारा पृथक-पृथक सन्धियों के आधार पर ब्रिटिश रक्षा स्वीकृत ।
२ अक्तूबर, १८०३	लेक का मथुरा पर अधिकार ।
१५ अक्तूबर, १८०३	स्टीवेन्सन का बुरहानपुर पर अधिकार ।
१७ अक्तूबर, १८०३	आगरा पर अधिकार ।
२१ अक्तूबर, १८०३	आशिर्गढ़ द्वारा आत्मसमर्पण ।
२९ अक्तूबर, १८०३	भोंसले का औरंगाबाद के विरुद्ध प्रयाण ।
अक्तूबर, १८०३	कटक पर अधिकार ।
१ नवम्बर, १८०३	लासवाड़ी का रण—शिन्दे परास्त ।
६ नवम्बर, १८०३	शिन्दे द्वारा युद्ध-विराम की प्रार्थना ।
२९ नवम्बर, १८०३	अड़गाम का रण—अंग्रेजों की विजय ।
१७ दिसम्बर, १८०३	भोंसले द्वारा देवगाँव में सन्धि ।

३० दिसम्बर, १८०३	शिन्दे द्वारा सुरजी अंजनगाँव में सन्धि स्वीकार।
जनवरी, १८०४	वेलेजली द्वारा होल्कर को चेतावनी।
२६ जनवरी, १८०४	लेक द्वारा होल्कर को चेतावनी।
फरवरी, १८०४	होल्कर द्वारा लेक को चुनौती।
२७ फरवरी, १८०४	शिन्दे के साथ बुरहानपुर की सन्धि निश्चित।
मार्च, १८०४	होल्कर का अजमेर, पुष्कर तथा जयपुर प्रदेश को लूटना।
१६ अप्रैल, १८०४	गवर्नर जनरल द्वारा होल्कर के विरुद्ध युद्ध-घोषणा।
मई-अप्रैल, १८०४	वेलेजली तथा क्लोज बम्बई में।
जून, १८०४	लेक कानपुर को वापस—मालवा की घाटियों की रक्षार्थ मोन्सन को उसकी आज्ञा।
जुलाई-अगस्त, १८०४	मोन्सन से होल्कर का युद्ध।
१ जुलाई, १८०४	मोन्सन द्वारा हिंगलाजगढ़ पर अधिकार।
८ जुलाई, १८०४	मोन्सन मालवा से वापस।
८ जुलाई, १८०४	मरे का उज्जैन पहुँचना।
१६ जुलाई, १८०४	मोन्सन का चम्बल पार करना।
३१ अगस्त, १८०४	मोन्सन का वापसी में आगरा पहुँचना।
अगस्त-अक्तूबर, १८०४	आर्थर वेलेजली कलकत्ता में।
३ सितम्बर, १८०४	लेक द्वारा होल्कर के विरुद्ध प्रयाण।
८ अक्तूबर, १८०४	होल्कर द्वारा दिल्ली पर सहसा आक्रमण का प्रयास।
१७ नवम्बर, १८०४	होल्कर फर्रुखाबाद में परास्त।
१३ दिसम्बर, १८०४	लेक का डीग पर अधिकार।
१९ दिसम्बर, १८०४	लेक का भरतपुर के सम्मुख पहुँचना।
७ जनवरी, १८०५	लेक द्वारा भरतपुर का घेरा—हस्तगत करने में असफल।
१० अप्रैल, १८०५	जाट राजा और लेक में शान्ति स्थापित।
अप्रैल-मई, १८०५	सबलगढ़ में मराठों की सभा।
जून-सितम्बर, १८०५	शिन्दे द्वारा रेजीडेण्ट (आवासी) नेन्किन्स पर रोक।
३० जुलाई, १८०५	लार्ड वेलेजली का त्यागपत्र—कार्नवालिस उसका उत्तराधिकारी।
५ अक्तूबर, १८०५	कार्नवालिस की मृत्यु—बार्लो उसके स्थान पर।

२१ नवम्बर, १८०५	शिन्दे द्वारा लेक के साथ मुस्तफापुर की सन्धि ।
२४ दिसम्बर, १८०५	होल्कर द्वारा राजघाट की सन्धि ।
२६ मई, १८०६	वेलेजली पर पार्लियामेण्ट में अभियोग ।
अक्तूबर, १८०८	यशवन्तराव होल्कर उन्मादग्रस्त ।
२८ अक्तूबर, १८११	यशवन्तराव होल्कर की मृत्यु ।

अध्याय १४

मराठा स्वातन्त्र्य का अन्त

[१८०३-१८०५ ई०]

१. दक्षिण में युद्ध ।

२. उत्तर भारतीय अभियान—पेरों द्वारा विश्वासघात ।

३. भोंसले तथा शिन्दे द्वारा शान्ति-सन्धि ।

४. आर्थर वेलेजली की मनोवृत्ति ।

५. होल्कर का प्रकोप ।

६. कर्नल मोन्सन की विपत्ति ।

७. अजेय भरतपुर ।

८. सबलगढ़ की सभा—ब्रिटिश रेजीडेण्ट का अपमान ।

९. वेलेजली का वापस बुलाया जाना—नीति-परिवर्तन ।

१०. यशवन्तराव होल्कर का अन्त ।

१. दक्षिण में युद्ध—अगस्त, १८०३ के आरम्भ में जनरल वेलेजली ने दोनों मराठा सरदारों शिन्दे तथा भोंसले के विरुद्ध युद्ध आरम्भ किया तथा अपने कूटनीतिक चातुर्य और बाहुबल के कारण उसे चार मास से कम ही समय में विजय के साथ अन्त तक पहुँचा दिया । दक्षिण में वेलेजली तथा अन्य ब्रिटिश कमाण्डरों के अधीन सेनाओं की संख्या लगभग ४० हजार थी । निजामअली की मृत्यु ६ अगस्त अर्थात उसी दिन हो गयी जब वेलेजली ने वालकी में अपने शिविर स्थान को अहमदनगर पर धावा किया । शिन्दे उस समय निजाम की सीमा से २० मील के अन्दर बुरहानपुर में था। यह स्थान पूना के लिए प्रयाण अथवा निजाम के प्रदेश पर आक्रमण के लिए बहुत ही सुविधाजनक था । अपने देश का आह्वान शिरोधार्य करके अनेक त्रुटियों के होते हुए भी मराठों ने सब मिलाकर बहुत ही श्रेयस्कर कार्य किया । उनका राष्ट्रीय गर्व तथा कठोर दृढ़तापूर्ण युद्ध जनरल वेलेजली की प्रशंसा का पात्र बन गया । उनको सबसे बड़ी असुविधा अपने ही स्वामी बाजीराव के कारण हुई । बाजीराव की अस्थिरता का प्रभाव प्रत्येक मराठा के मन पर पड़ा ।

मराठा पत्रों में उस प्रलोभन का वर्णन है, जिसे जनरल वेलेजली ने बाजीराव के दरबार में देने का प्रयास किया, परन्तु कर्नल क्लोज ने इसे क्रोधपूर्वक अस्वीकार कर दिया और कहा कि इस प्रकार के नीच उपायों का आश्रय मैं नहीं लूंगा । जनरल वेलेजली ने क्लोज को ५ अगस्त, १८०३ को लिखा—"मुझे विश्वास हो गया है कि पेशवा के दरबार में जो कुछ हो रहा

है, उनका यथार्थ ज्ञान होना आपके लिए नितान्त आवश्यक है और धन व्यय किये बिना आपको यह ज्ञान प्राप्त होना सम्भव नहीं है। आपको तुरन्त रघुत्तमराव (पूना में निजाम का वकील) को कुछ धन दे देना चाहिए।" उन समस्त प्रयत्नों तथा उपायों के लिए जनरल वेलेजली ने पेशवा से लिखित आज्ञा भी प्राप्त कर ली, जिनका उपयोग उसने मराठों के दमन के लिए किया।

वेलेजली का उद्देश्य दो शक्तिशाली स्थानों—बुरहानपुर तथा अहमदनगर—के बीच एकत्र शिन्दे की सैनिक-शक्ति का विनाश करना था। अहमदनगर में गोला-बारूद, अस्त्र-शस्त्र तथा सामग्री विपुल मात्रा में थी। शिन्दे की शक्तिशाली सेना इसकी रक्षा पर नियुक्त थी। वेलेजली का ध्यान सर्वप्रथम इसी गढ़ पर गया। वह ८ अगस्त को वालकी से चला तथा १० को उसने इस गढ़ पर अग्नि-वर्षा आरम्भ कर दी। शिन्दे का यूरोपीय अधिकारी, जिस पर रक्षा का भार था, तुरन्त वेलेजली से मिल गया। उसे पहले ही घूस देकर फोड़ लिया गया था। अपनी स्थिति अरक्षित देखकर ब्राह्मण किलेदार ने शर्तों के लिए प्रार्थना की तथा १२ को इस स्थान का समर्पण कर दिया। किलेदार बम्बई भेज दिया गया तथा गढ़ पर पेशवा का ध्वज फहरा दिया गया। इस उपाय द्वारा विदेशी विजय गुप्त रखी गयी। इस सफलता से पूना के साथ ब्रिटिश यातायात सुनिश्चित हो गया तथा शिन्दे अपना ध्यान निजाम के प्रदेश की ओर देने के लिए विवश हो गया।

वेलेजली तुरन्त गोदावरी पार करके औरंगाबाद की रक्षा के लिए झपटा, जहाँ वह २९ को पहुँच गया। उसने पहले से ही शिन्दे की प्रगति रोकने के लिए स्टीवेन्सन को जाफराबाद में नियुक्त कर रखा था। यह स्थान जाफराबाद से कुछ मील दक्षिण-पूर्व में है। शिन्दे की भोजन-सामग्री संग्रह करने वाली मण्डलियों—अर्थात पिण्डारियों तथा स्टीवेन्सन की बाह्य चौकियों—के बीच तुरन्त झड़पें आरम्भ हो गयीं। भोंसले जलनापुर के समीप शिन्दे के साथ हो गया तथा ६ सितम्बर से दोनों शत्रु-दलों के बीच भयानक संघर्ष आरम्भ हो गये। ये संघर्ष २४ सितम्बर को असाई के रण में समाप्त हुए। मराठा पक्ष से गोपालराव भाऊ (लाखेरी में यश प्राप्त) तथा भोंसले परिवार की ओर से विट्ठलपन्त बख्शी चीफ कमाण्डर थे। जनरल वेलेजली को गुप्त रूप से मालूम हो गया कि वेतन न चुका सकने के कारण शिन्दे का अपनी सेना से झगड़ा है। उसने इस अवसर से पूरा लाभ उठाया। उसके तोपखाने के बैल बाहर चर रहे थे। तभी २४ दिसम्बर को दोपहर के थोड़े बाद वेलेजली ने शिन्दे पर आक्रमण कर दिया। गोपालराव ने धैर्यपूर्वक इसका सामना किया तथा अद्भुत सफलता के साथ उत्तर दिया। यद्यपि अंग्रेजों ने निर्णायक विजय प्राप्त

कर ली थी, फिर भी मराठों का पीछा करना उनके लिए असम्भव काम हो गया, क्योंकि सैनिकों की मृत्यु के रूप में उनको भारी व्यय चुकाना पड़ा था। वेलेजली ने सूचना भेजी—"अन्त में शत्रु की पंक्ति सब ओर से टूट गयी तथा ब्रिटिश अश्वारोही उनके अस्त-व्यस्त पैदलों के बीच घुस पड़े। परन्तु उनकी कुछ सेनाएँ अच्छी व्यवस्था से भाग निकलीं तथा उनकी अनेक तोपें हमारी सेनाओं पर अग्नि-वर्षा करती रहीं। ले० कर्नल मैक्सवेल मारा गया तथा हम कुछ समय बाद ही इस छुट-पुट अग्नि-वर्षा को समाप्त कर सके। हमको इस विजय का बहुत भारी व्यय चुकाना पड़ा है। हमारे अनेक अधिकारी तथा सैनिक मारे गये हैं (६६३ यूरोपीय तथा १७७८ भारतीय, जैसा कि समाचार से प्रकट है)।" इस विजय के समाचार से गवर्नर जनरल का हृदय प्रफुल्लित हो उठा तथा वह दुखद चिन्ताओं से मुक्त हो गया। पूना से शर्जाराव घाटगे तथा पेशवा ने शिन्दे को सान्त्वना के पत्र लिखे। उन्होंने शोकाकुल शिन्दे को अधिक प्रयास के लिए उत्तेजना दी तथा अपने पिण्डारियों की सहायता से छापामार युद्ध का आश्रय लेने का परामर्श दिया।

क्षतविक्षत मराठा सेनाएँ महत्त्वशाली स्थान तथा उसके रक्षादुर्ग आशिर्गढ़ की अंग्रेजों के अधिकार में जाने से रक्षा करने के लिए बुरहानपुर की ओर पीछे हटीं। वेलेजली स्वयं दक्षिण-पश्चिम में ठहरा रहा और उन दोनों स्थानों को छीनने के लिए स्टीवेन्सन को उत्तर की ओर भेजा। किन्तु भोंसले अकस्मात चक्कर काटकर २९ अक्तूबर को औरंगाबाद के सम्मुख डट गया, जिससे वह निजाम के राज्य से पहुँचने वाली वेलेजली की रसद को रोक सके। स्टीवेन्सन ने बुरहानपुर की ओर प्रयाण किया और १५ अक्तूबर को उस स्थान पर आसानी से अधिकार कर लिया क्योंकि शिन्दे ने उसकी रक्षा का प्रबन्ध नहीं किया था। इसके बाद स्टीवेन्सन सहसा आशिर्गढ़ के सम्मुख प्रकट हुआ। उस गढ़ के रक्षक ने २१ अक्तूबर को दुर्गस्थ सेना का शेष वेतन चुकाने के लिए नकद ७ लाख रुपये लेकर गढ़ का समर्पण कर दिया। शिन्दे की सेना के ९ यूरोपीय अधिकारी तथा कुछ सैनिक अंग्रेजों से मिल गये। उन्होंने उस घोषणा से लाभ उठाया जो वेलेजली ने निकाली थी। उत्तरी क्षेत्र में लार्ड लेक द्वारा प्राप्त सफलताओं के समाचार से दक्षिण में शिन्दे तथा भोंसले दोनों ही निरुत्साह हो उठे। इस प्रकार उनकी अन्तिम पराजय निश्चित हो गयी।

अपनी सेना शिन्दे की सेनाओं से पृथक करने के बाद भोंसले सहसा पश्चिम की ओर झपटा। उसका उद्देश्य बम्बई तथा पूना के साथ वेलेजली का सम्बन्ध-विच्छेद करना था। परन्तु वेलेजली उसकी योजनाओं को विफल करने के लिए बिलकुल तैयार था। पेशवा का भाई अमृतराव भी इस समय स्वतन्त्र

था। उसे नेतृत्व ग्रहण करने तथा संकटकाल में मराठा राज्य की रक्षा करने का निमन्त्रण मिल रहा था। इसलिए वेलेजली का ध्यान उसकी ओर भी गया।

६ नवम्बर को शिन्दे का कार्यकर्ता यशवन्तराव घोरपड़े (प्रसिद्ध सन्ताजी के भाई मालोजी का पौत्र) अपने स्वामी के लिए शान्ति की शर्तों का प्रबन्ध करने के लिए वेलेजली के शिविर में पहुँच गया तथा १२ नवम्बर को अमृतराव भी आ गया और उस कार्य में घोरपड़े के साथ हो गया, क्योंकि उसको अंग्रेजों के युद्ध जीत लेने का विश्वास हो गया था। इसके बाद वेलेजली ने अमृतराव को अपने ही शिविर में ठहरा लिया तथा उसकी उच्च प्रतिष्ठा का उपयोग इस प्रकार की शान्ति स्थापित करने के लिए किया, जिसके द्वारा स्वतन्त्र प्रभुत्व के लिए मराठों के सभी अधिकार नष्ट हो जायें। स्टीवेन्सन ने भोंसले के दृढ़ दुर्ग गाविलगढ़ की ओर प्रयाण किया। वह २६ नवम्बर को बालापुर से चला। वेलेजली उसके साथ हो गया था। दोनों ने मिलकर भोंसले की सेना के विरुद्ध सवेग प्रयाण किया। इस बीच शिन्दे ने इस सेना को सहायता पहुँचा दी थी तथा इस प्रकार पूर्व निश्चित विराम सन्धि का उल्लंघन कर दिया। २६ को दोनों अंग्रेज कमाण्डरों को बालापुर से कुछ मील उत्तर में अड़गाम के स्थान पर एक ही शिविर में साथ-साथ ठहरी हुई शत्रु सेनाओं का पता लग गया। उन्होंने बहुत देर हो जाने पर भी उसी दिन तीसरे पहर आक्रमण कर दिया। वेलेजली की सेनाएँ शत्रु की तोपों की मार में आते ही अपनी पंक्तियाँ भंग करके भाग खड़ी हुई। इन सेनाओं ने असाई रणक्षेत्र में अद्भूत वीरता का व्यवहार किया था, यद्यपि उस समय की अग्नि-वर्षा बहुत अधिक उग्र थी। सौभाग्यवश जनरल बहुत दूर न था, इसलिए वह सेनाओं को एकत्र करने वाला पुनः मोर्चा बनाने में सफल हो गया। अन्यथा अंग्रेजों की पराजय होनी निश्चित थी। बरार का राजा अपनी ३८ तोपों तथा सम्पूर्ण गोला-बारूद अंग्रेजों के हाथों में छोड़कर भाग गया। अड़गाम के इस रण से मराठों का सर्वनाश पूर्ण हो गया। गाविलगढ़ पर बाद को आक्रमण किया गया तथा २५ दिसम्बर को अधिकार कर लिया गया।

२. **उत्तर भारतीय अभियान—पेरों द्वारा विश्वासघात**—इस अल्पकालीन परन्तु रक्तरंजित युद्ध को समाप्त करने वाले शान्ति-प्रस्तावों की कथा आरम्भ करने के पहले उत्तर भारत के रणों का वर्णन अवश्य हो जाना चाहिए। जब १७६२ की ग्रीष्मऋतु में महादजी शिन्दे पूना वापस आया, उसी समय से उसके उत्तरी क्षेत्रों की रक्षा तथा प्रबन्ध दि बायने करता था। दिसम्बर, १७६५ में उसके अवकाश ग्रहण कर लेने पर, यह कार्य उसके द्वितीय स्थानीय पेरों को दिया गया। "दि बायने भारत के समस्त यूरोपीय साहसिकों में बुद्धिमान तथा

चरित्रवान था। वह योग्य सैनिक तथा महान नेता था। पेरों सर्वथा संकुचित हृदय मनुष्य था तथा परिश्रमी प्रशासक होने पर भी उसके चरित्र में कोई आकर्षण नहीं था।"[1] उसने अपने उत्कृष्ट स्थान का उपयोग शक्ति-संग्रह, धन-संचय तथा अपनी जागीर को समृद्ध बनाने में किया। उसके अधीन समस्त भारतीयों ने दौलतराव से आग्रह किया कि वह उसको हटा दे, या कम से कम आगरा को उसके अधिकार से अलग कर दे। कालिन्स ने फरवरी, १८०२ में सूचना भेजी कि यह फ्रेंचमैन गुप्त रूप से यशवन्तराव होल्कर से मिला हुआ है और वर्षों तक शिन्दे के जिलों की आय का अपहरण करके अत्यन्त धनी हो गया है। उसके साथ वार्तालाप में रेजीडेण्ट को मालूम हो गया था कि यह व्यक्ति दौलतराव तथा उसके भारतीय सरदारों का प्रबल विरोधी है। उसने कालिन्स से कहा था कि वह शीघ्र ही फतेहगढ़ में ब्रिटिश सुरक्षा प्राप्त कर लेगा।

युद्धारम्भ के समय पेरों के पास ४५ हजार की संख्या वाले ५ दल थे। इनके अतिरिक्त आगरा तथा अलीगढ़ में उसके पास उत्तम तोपखाने थे, जिनसे वह वीरतापूर्वक लेक का सामना कर सकता था। २३ जून को गवर्नर जनरल ने निम्नलिखित उद्देश्यों को निश्चित करके चीफ कमाण्डर के पास भेज दिया। युद्ध की दशा में इनके अनुसार कार्य करना आवश्यक था।

१. गंगा तथा यमुना के बीच शिन्दे के समस्त प्रदेशों पर अधिकार करना;

२. शाहआलम को अपनी सुरक्षा में लेना;

३. शिन्दे का उत्तर भारत से निराकरण करने के लिए राजपूत राजाओं तथा अन्य राज्यों के साथ मैत्री-सम्बन्ध स्थापित करना; तथा

४. बुन्देलखण्ड पर अधिकार करना।

---

[1] पी० ई० राबर्ट्स कृत 'वेलेजली के अधीन भारत'। एच० आर० सी०—प्रवृत्ति वर्णन १९४३, डा० हलीम का लेख: "पेरों का जन्म १७७५ में फ्रांस में हुआ था। वह १७८० में सफ्रें के नौ-समूह में भारत आया था। फ्रेंच ध्वज का परित्याग करके वह भाग्यसेवी सैनिक हो गया। उसने क्रमशः गौहद के राना, भरतपुर के राजा तथा बेगम समरू की सेवा की। अन्त में वह १७९० में दि बायने की सेना में सम्मिलित हो गया तथा १७९६ में उसके स्थान पर चीफ कमाण्डर हो गया। वह इस स्थान पर ३ सितम्बर, १८०३ तक बना रहा। उसकी जागीर की आय ४० लाख रुपये वार्षिक थी। उसको नमक कर पर एकमात्र अधिकार था। केवल इन दो स्रोतों से उसको १६,३२,४४४ रुपये की वार्षिक आय थी। न्यूनतम अनुमान के अनुसार विविध स्रोतों से उसकी मासिक आय १ लाख रुपये थी। इसके अतिरिक्त अपनी पूँजी के ब्याज से भी उसको भारी आय थी।

लार्ड वेलेजली ने यह भी कहा—"शिन्दे का भूतपूर्व सेनापति दि बायने इस समय बोनापार्ट का मुख्य विश्वासपात्र है—क्यों और कैसे, यह आप जान सकते हैं। मैं आपको पेरों के साथ कोई भी समझौता करने के लिए पूर्ण अधिकार देता हूँ। इस समझौते का सम्बन्ध उसके व्यक्तिगत हितों तथा सम्पत्ति की सुरक्षा से हो और ब्रिटिश सरकार की ओर से उसके लिए कोई युक्तिसंगत पुरस्कार भी होना चाहिए। इस प्रकार उसे अपने समस्त सैनिक साधनों तथा अधिकार को आपके सुपुर्द करने का प्रलोभन मिल जायेगा।"[२]

लेक कानपुर से ७ अगस्त को चला तथा २८ को शिन्दे के प्रदेश की सीमा पर पहुँच गया। इसके पहले ही उसने शिन्दे के अधिकारियों को ब्रिटिश सेवा में प्रवेश प्राप्त करने के लिए अपनी घोषणाएँ भेज दी थीं। २० अगस्त को पेरों ने इच्छा प्रकट की कि वह शान्त वार्तालाप द्वारा कठिनाइयों को हल करना चाहता है। इस पर २९ को लेक ने अपना व्यक्तिगत कार्यकर्ता पेरों से मिलने भेजा तथा अलीगढ़ के समीप उसकी सेनाओं पर आक्रमण भी कर दिया। यद्यपि पेरों की सेनाओं की संख्या १५ हजार थी, परन्तु बिना एक गोली चलाये ही वे शान्तिपूर्वक पीछे हट गयीं। विशाल शस्त्रागार तथा युद्ध-भण्डार और ७० लाख नकद रुपयों सहित अलीगढ़ का महत्त्वशाली गढ़ लेक के हाथ लग गया। यह कार्य लार्ड वेलेजली की सम्मति में अत्यन्त अद्भुत था।

एक सप्ताह बाद पेरों ने सुना कि उसके निकालने की आज्ञा हो गयी है। उसने तुरन्त त्यागपत्र दे दिया तथा अपने परिवार, सम्पत्ति तथा अपने परिचारी वर्ग सहित ब्रिटिश प्रदेश में होते हुए लखनऊ चले जाने के लिए लेक से प्रार्थना की। लेक ने अपने रक्षा दल के साथ उसको लखनऊ पहुँचा दिया। इसके बाद ८ नवम्बर को पेरों लखनऊ से चन्द्रनगर चल दिया। वहाँ से एक जहाज में यूरोप के लिए बैठ गया। उसके साथ उसकी समस्त सम्पत्ति तथा दो ताम्रवर्ण शिशु थे—एक पुत्र और एक पुत्री। इनकी माता एक नीच जाति की महिला थी, जिससे पेरों ने विवाह कर लिया था। नेपोलियन ने उससे मिलने से इनकार कर दिया, क्योंकि उसने सैनिक-धर्म के प्रति असत्य व्यवहार किया था। पेरों ने २ लाख ८० हजार रुपये ईस्ट इण्डिया कम्पनी की पूँजी में लगाये। उसके सम्बन्ध में समकालीन सम्मति इस प्रकार है—"पेरों अंग्रेजों की सुरक्षा में मराठों, सिखों, राजपूतों तथा भारत की समस्त जनता के न्यायसंगत प्रतिशोध से बच गया। वह अपने अपयश के चिह्नस्वरूप अपने हीरों तथा लाखों की सम्पत्ति का प्रदर्शन करने के लिए फ्रांस वापस आया। उसने यह

---

२ 'वेलेजली के पत्र', जिल्द ३, पृ० २०८, नं० ५० पर यह साधिकार पत्र।

सम्पत्ति मन्दभाग्य शिन्दे से चुरायी थी तथा उसके साथ विश्वासघात भी किया था। इस विश्वासघाती के आचरण से अंग्रेजों के लिए हिन्दुस्तान का प्रभुत्व सुनिश्चित हो गया।" १८३४ में फ्रांस में उसकी मृत्यु हो गयी।[3]

५ सितम्बर को लेक ने अलीगढ़ पर अधिकार कर लिया और तुरन्त दिल्ली की ओर प्रयाण कर दिया। ६ को वह शाहदरा पहुँचा। यहीं पर शिन्दे का सेनापति बुर्की यमुना पार करके लेक से युद्ध करने के लिए आगे बढ़ा। वह पेरों का उत्तराधिकारी था। वह नीच वंश का दुष्ट स्थानापन्न अधिकारी था। वह कलकत्ता में रसोइया तथा आतिशबाज रहा था। वह कायर था। उसने परास्त होकर तीन दिन बाद अपने तीन अधिकारियों सहित लेक के सामने आत्मसमर्पण कर दिया। लेक को भेजे हुए एक समाचार में सम्राट ने ब्रिटिश सुरक्षा स्वीकार करने की प्रबल इच्छा प्रकट की थी। लार्ड वेलेजली ने एक गोपनीय पत्र-व्यवहार में इसको पहले ही स्वीकार कर लिया था। १४ सितम्बर को अंग्रेजों ने दिल्ली में प्रवेश करके गढ़ पर अपना ध्वज फहरा दिया तथा अन्धे शाहआलम द्वितीय को अधिकार में ले लिया। शाहआलम अब भी समस्त भारत में सम्मान का मूल स्थान माना जाता था। १६ सितम्बर को चीफ कमाण्डर शाहजहाँ द्वारा निर्मित राजभवन में सम्राट के सम्मुख उपस्थित किया गया। उसने देखा कि सम्राट नाना प्रकार के कष्टों—जैसे वृद्धावस्था, अपकृष्ट अधिकार, अत्यन्त दरिद्रता—से पीड़ित है तथा छोटे-से फटे हुए वितान के नीचे बैठा है। यह उसकी राजसी सत्ता का शेष चिह्न था। दिल्ली को कर्नल आक्टरलोनी के अधिकार में छोड़कर २४ सितम्बर को लेक ने आगरा की ओर प्रयाण किया। यह स्थान अब तक शिन्दे की सेनाओं के अधिकार में था।

महादजी की प्रिय राजधानी मथुरा पर २ अक्तूबर को अधिकार करने के बाद, लेक ४ अक्तूबर को आगरा के समीप पहुँच गया। उसने भरतपुर के राजा से सन्धि कर ली। उत्तर भारतीय शासकों में से सर्वप्रथम इसी ने ब्रिटिश सरकार के साथ मैत्री की। आगरा ने १७ अक्तूबर को आत्मसमर्पण कर दिया। यहाँ २८ लाख रुपये मिले। जनरल ने अपने अधिकारियों तथा सैनिकों को इसे आपस में पुरस्कार के रूप में बाँट लेने की आज्ञा दी। गवर्नर जनरल को मुख्य सेनापति के इस कार्य पर बहुत क्रोध आया।[4]

उत्तर में लेक की इन तीव्र गति वाली सफलताओं से शिन्दे अत्यन्त भयभीत तथा उद्भ्रान्त हो गया। अगस्त के आरम्भ में युद्ध होते ही अपने

---

३ पी० ई० राबर्ट्स कृत 'वेलेजली के अधीन भारत', पृ० २२४

४ 'वेलेजली के पत्र', जिल्द ३, पृ० ४१४

उत्तरी प्रदेशों की रक्षा करने के लिए अपने १५ अनुशासित दल नर्मदा पार भेज दिये थे। ये दल उसकी सेना के उत्कृष्ट भाग माने जाते थे तथा सर्व-साधारण में इनका नाम "दक्षिण के अजेय वीर" था। परन्तु उनके घटनास्थल पर पहुँचने से पहले ही आगरा तथा दिल्ली का पतन हो गया था और इस क्षेत्र में शिन्दे की सेना नष्ट हो चुकी थी। केवल दो दल शेष बचे थे जो इस समय दक्षिण से आये हुए दलों में सम्मिलित हो गये। २७ अक्तूबर को लेक इस सेना को कोई नवीन बाधा उत्पन्न करने से रोकने के लिए आगरा से चला। अपना भारी सामान फतेहपुर सीकरी के समीप छोड़कर उसने भरतपुर से दक्षिण में करीब २० मील प्रयाण किया और १ नवम्बर को वह लासवाड़ी में शत्रु शिविर के समीप पहुँच गया। एक गहरे नाले की रक्षा में शत्रु ने अपना सुदृढ़ शिविर बना लिया था। लेक ने तुरन्त इस शिविर पर आक्रमण कर दिया। यद्यपि वह विजयी रहा, परन्तु उसको बहुत बड़ी हानि सहन करनी पड़ी। उसके सहस्रों सैनिक मारे गये, जिनमें अनेक उच्च-पदस्थ अंग्रेज अधिकारी थे—जैसे मेजर जनरल वीर, मेजर ग्रिफिथ्स तथा अन्य। वीरता तथा रण में शिन्दे की सेना ने अपना उत्कृष्ट परिचय दिया, यद्यपि उनकी ७१ तोपें छीन ली गयीं और १३ हजार सैनिकों में से लगभग आधे सैनिक खेत रहे। "हमारे सवार पीछे ढकेल दिये गये तथा अनेक अधिकारी तथा सैनिक मारे गये। करीब ११ बजे हमारे पैदलों ने शत्रु के सवारों पर हमला आरम्भ किया और शत्रु के सवार शीघ्र भगा दिये। लासवाड़ी तथा मलपुरा के गाँवों से उन्होंने अत्यन्त भारी अग्नि-वर्षा की। हमने करीब ३ घण्टे में शत्रु की समस्त तोपों, नगाड़ों को छीन लिया, परन्तु हमारी बहुत हानि हुई। हमारे १३ अधिकारी मारे गये तथा ४० घायल हुए।"[५]

लासवाड़ी के इस रण में शिन्दे की सेनाओं ने फ्रेंच प्रशिक्षण द्वारा प्राप्त उच्च निपुणता का परिचय दिया। स्वयं लेक ने कहा—"यदि उनके फ्रेंच अधिकारियों ने सेनाओं का नेतृत्व किया होता तो परिणाम अत्यन्त संदिग्ध हो गया होता।" इस पराजय से शिन्दे की शक्ति का सर्वनाश हो गया। लार्ड वेलेजली ने गुजरात, बुन्देलखण्ड तथा उड़ीसा के अन्य छोटे क्षेत्रों में भी मराठों पर आक्रमण करने में विलम्ब नहीं किया। शिन्दे के अधिकार में गुजरात में दो शक्तिशाली स्थान थे—भड़ौंच तथा पावागढ़। बड़ौदा ने ब्रिटिश रक्षा पहले ही स्वीकार कर ली थी तथा इस समय वह उस क्षेत्र में उनकी युद्ध-प्रवृत्तियों का मुख्य आधार बना हुआ था। कर्नल मरे ने अपनी सेना की एक

---

५ 'भारत में युद्ध तथा क्रीड़ा' (वार एण्ड स्पोर्ट इन इण्डिया), पृ० २१६

टुकड़ी भड़ौंच के विरुद्ध भेजी। इसके प्राचीर पर २९ अगस्त को अधिकार कर लिया गया। और इस प्रकार अंग्रेजों को ११ लाख वार्षिक आय का प्रदेश प्राप्त हो गया। उसी दल ने पूर्व की ओर आगे बढ़कर १७ सितम्बर को चम्पानेर के नगर तथा उसके सन्निकट पावागढ़ के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार गुजरात में शिन्दे की समस्त शक्ति का अन्त हो गया।

उड़ीसा में भी अंग्रेजों की युद्ध प्रवृत्तियाँ हुईं। वहाँ १८ सितम्बर को जगन्नाथपुरी पर अधिकार कर लिया गया। यह नगर भोंसले परिवार के अधिकार में था। उसी दिन बालासोर का आत्मसमर्पण हो गया। कटक पर अक्तूबर में अधिकार कर लिया गया था। इस प्रकार समस्त प्रान्त ने अधीनता स्वीकार कर ली, जिससे अंग्रेजों को कलकत्ता से मद्रास तक निर्विघ्न मार्ग प्राप्त हो गया।

बाजीराव प्रथम के समय से पेशवाओं ने उत्तर भारत का आधिपत्य प्राप्त कर लिया था। वे केवल दिल्ली के सम्राट का ही नियन्त्रण नहीं करते थे, अपितु अधिकांश राजपूत और जाट राजा, दोआब के नवाब तथा बुन्देला सरदार उनके अधीन थे। अब वे सब मराठा आधिपत्य से मुक्त करके पृथक सन्धियों द्वारा ब्रिटिश अधीनता में लाये गये। सन्धियाँ प्रत्येक के साथ विशेष रूप से की गयीं। इस प्रकार बहुत-से छोटे-छोटे सरदार मराठा निष्ठा से पृथक कर दिये गये—उदाहरणार्थ, गोसाईं नेता हिम्मतबहादुर, बाजीराव तथा मस्तानी का पौत्र शमशेर बहादुर, झाँसी का राजा तथा अम्बूजी इंगले। यह पहले महादजी शिन्दे की सेवा में प्रसिद्ध सैनिक था। गोहद के राना के साथ भी इसी प्रकार का व्यवहार किया गया। इन सरदारों में से प्रत्येक को किस प्रकार एक सामान्य व्यवस्था में बाँधा गया तथा ब्रिटिश प्रतिष्ठा पर इस काण्ड की क्या प्रतिक्रिया हुई—यह उस समय की राजनीति का शिक्षाप्रद अध्ययन है।[६]

३. भोंसले तथा शिन्दे द्वारा शान्ति-सन्धि—इस प्रकार अगस्त में आरम्भ होने वाला युद्ध १८०३ की समाप्ति के पूर्व ही व्यावहारिक रूप से समाप्त हो गया, तथा इसके द्वारा ब्रिटिश लोग भारत के प्रधान अधिकारी बन गये। जनरल वेलेजली ने भोंसले तथा शिन्दे के साथ पृथक-पृथक व्यवहार किया। ये ही दो सरदार मराठा राज्य की रक्षा के लिए अग्रसर हुए थे। युद्ध समाप्त करने का जनरल वेलेजली का यह उपक्रम गवर्नर जनरल ने ठीक नहीं समझा, क्योंकि उसके निर्देश इस प्रकार थे—"दौलतराव तथा रघुजी को पकड़कर

६ पाठकों को गोहद के काण्ड के विषय में ओवेन द्वारा पृ० ३९० पर उद्धृत जनरल वेलेजली के पत्र-संख्या २२० का अध्ययन करना चाहिए।

शान्ति की याचना करने के लिए लार्ड के चरणों में कलकत्ता भेज दिया जाये।" जनरल वेलेजली ने उत्तर में लिखा—"मुझमें शिन्दे को अधिक हानि पहुँचाने की सामर्थ्य नहीं है। उसकी सेना में अब केवल सवार रह गये हैं, जिनको हम तंग नहीं कर सकते और जो हमारा बहुत अपकार कर सकते हैं। रक्षा के लिए हमारा निर्बलतम स्थान गुजरात है। शान्ति के निश्चय में मैं कोई हानि नहीं देखता हूँ। इसीलिए मैंने शान्ति कर ली है। मैं विश्वास के साथ कहता हूँ कि जो कुछ मैंने किया है, वह मेरे विचार में ठीक है। मुझे विश्वास है कि मैंने गवर्नर जनरल की आशा से भी बढ़कर शान्ति स्थापित कर दी है।"[७]

जनरल वेलेजली ने शान्ति का प्रस्ताव भेजने के लिए जो समय चुना, वह सर्वथा उपयुक्त था। इस समय दोनों मराठा सरदार काफी झकझोर दिये गये थे। उनको मालूम हो गया था कि संकट उनके निकट है। वे इससे बचना चाहते थे तथा इसके निमित्त नवीन प्रयास के लिए उनको समय की आवश्यकता थी। जिस प्रकार उन्होंने सम्मिलित रूप से युद्ध का संचालन किया था, उसी प्रकार उन्होंने सम्मिलित शान्ति स्थापित करने का यथाशक्ति प्रयास किया। किन्तु जनरल वेलेजली ने प्रत्येक के साथ पृथक सन्धि करने का हठ किया। उसने समस्त शक्तियों पर यह सामान्य शर्त लगा दी थी कि आन्तरिक कलह की दशा में अधीनस्थ मित्रों का कर्तव्य ब्रिटिश निर्णय को आधिपत्य प्राप्त अधिकारी के निर्णय के रूप में स्वीकार करना होगा।

जनरल वेलेजली ने भोंसले के पास अपनी शर्तें भेज दीं तथा वह उन्हें स्वीकार करने के लिए विवश किया गया। इस प्रकार उसकी राजधानी नागपुर आक्रमण से बच सकती थी। १७ दिसम्बर को एलिचपुर से कुछ मील उत्तर में स्थित देवगाँव में उसने निम्नलिखित शर्तों पर हस्ताक्षर कर दिये :

१. समस्त पूर्वीय समुद्रतट सहित कटक का प्रान्त अंग्रेजों को दे दिया जाये।

२. वर्धा नदी तक पश्चिम बरार का प्रान्त निजाम को दे दिया जाये।

३. भोंसले उन सन्धियों का सम्मान करे जो अंग्रेजों ने उसके अधीन शासकों के साथ की हैं।

४. भोंसले मराठा संघ को भंग कर दे तथा अपनी सेवा में अंग्रेजों के किसी शत्रु को स्थान न दे।

इस सन्धि के द्वारा भोंसले शिन्दे से पृथक कर दिया गया। इस प्रकार वेलेजली को अपनी समस्त शक्ति शिन्दे के विरुद्ध एकत्र करने का अवसर मिल गया। शिन्दे ने स्वयं को अधिक समय तक युद्ध करने में असमर्थ समझ कर अपने दूत कमलनयन मुंशी तथा प्रधानमन्त्री विट्ठल पन्त को वेलेजली

---

७ ओवेन कृत 'वेलिंगटन के पत्र', नं० १८४, १९१ तथा १९२

के साथ शर्तों पर वार्तालाप करने भेजा। विट्ठल पन्त बहुत वृद्ध था तथा अपने समय का सर्वश्रेष्ठ भारतीय कूटनीतिज्ञ माना जाता था। कई दिनों के वार्तालाप के बाद शिन्दे ने निम्नलिखित शर्तें स्वीकार कर लीं तथा ३० दिसम्बर को सुरजीअंजन गाँव की प्रसिद्ध सन्धि पर हस्ताक्षर कर दिया :

१. शिन्दे अंग्रेजों को गंगा-यमुना का दोआब, यमुना पर स्थित दिल्ली-क्षेत्र, बुन्देलखण्ड के कुछ भाग, भड़ौंच, गुजरात के कुछ जिले, अहमदनगर का गढ़ तथा गोदावरी नदी तक अजन्ता का क्षेत्र दे दे।

२. शिन्दे सम्राट पर अपना नियन्त्रण त्याग दे।

३. शिन्दे पेशवा, निजाम तथा गायकवाड़ पर अपने समस्त अधिकारों को छोड़ दे, तथा उन सब सहायक शासकों की स्वतन्त्रता को मान्यता दे, जिन्होंने अंग्रेजों के साथ पृथक सन्धियाँ कर ली हैं।

४. शिन्दे अपनी सेवा में किसी फ्रेंच, अमरीकन या अंग्रेजों के किसी शत्रु को न रखे। शिन्दे से ब्रिटिश सहायक सेना स्वीकार करने के लिए भी कहा गया, परन्तु उसने ऐसा करने से इनकार कर दिया। अधिक प्रार्थना करने पर बुरहानपुर तथा असीरगढ़ उसको वापस कर दिये गये। भोंसले से लिया गया बरार का देश निजाम को दे दिया गया, क्योंकि युद्ध में उसने अंग्रेजों को अपना सहयोग दिया था।

सब कुछ देखते हुए जनरल वेलेजली ने अपने दोनों परास्त शत्रुओं की ओर सैनिक सौम्यता तथा विशालहृदयता का परिचय किया। उसको ब्रिटिश परिस्थिति की कठिनाइयों का पूरा पता था। वह जानता था कि स्वयं नष्ट हुए बिना किसी प्रकार अपनी सफलता से लाभ नही उठाया जा सकता है। वह अपने अधीन शासकों का अपमान करने की अपेक्षा उन्हें अपराध करने के लिए असमर्थ बना देने की नीति अधिक उत्तम समझता था। युद्ध के कारण कम्पनी के साधनों पर अत्यन्त भार पड़ा था। जनरल ने बुद्धिमत्तापूर्वक अपने को सीमा के बाहर न जाने से रोक लिया तथा अपनी माँगें नम्र करके मराठों के मन से कटुता हटा दी। उसको यशवन्तराव होल्कर की प्रगतियों का पता था। वह इस समय असहाय अवश्य कर दिया गया था, परन्तु वह बिना संघर्ष के ब्रिटिश प्रभुत्व स्वीकार करने वाला नहीं था, जबकि बाजीराव पूना से उसको उत्तेजित करने का यथाशक्ति प्रयास कर रहा था। इस तीव्रगामी क्रान्ति से देश की परम्परागत राजनीति में सहसा परिवर्तन हो गया था। इस कारण भारत में अशान्ति तथा क्रोध भड़क उठा। रघुजी भोंसले की मनोवृत्ति इस परिवर्तन का आदर्श रूप है। वह युद्ध में सहसा फँस गया था, इस कारण उसको बहुत हानि सहन करनी पड़ी थी। अतः उसने भविष्य में

राजनीतिक प्रगति का पूर्णतया त्याग कर दिया। जब अंग्रेजों ने उससे पूछा कि वह उनका मित्र है या शत्रु तो उसने उत्तर दिया—"मैं न आपका मित्र हूँ, न शत्रु। इन शब्दों का वास्तविक अर्थ मैं नहीं जानता।" माउण्ट स्टुअर्ट एल्फिस्टन नागपुर का रेजीडेण्ट नियुक्त किया गया और उसने वहाँ चार वर्ष तक कार्य किया।

इसी प्रकार वेलेजली ने अमृतराव को बनारस भेज दिया, क्योंकि वह राष्ट्रीय विद्रोह का केन्द्रविन्दु बन सकता था। पहले उसको सपरिवार अहमदनगर के गढ़ में रखा गया। वह यहाँ पर अपने प्रतिहिंसक भाई के शक्य अपकारों से सकुशल रह सकता था तथा साथ ही मराठा शक्ति के पुनरुज्जीवन के निमित्त उसकी प्रगतियों पर यहाँ निगाह रखी जा सकती थी। वहाँ उसने अपनी सम्पत्ति एकत्र कर ली और व्यक्तिगत सामान बाँध लिया। १८०४ के अन्त में वह अपना स्वदेश त्यागकर बनारस चल दिया। व्यक्तिगत व्यय के लिए उसे ८ लाख वार्षिक वृत्ति मिल गयी।

दौलतराव शिन्दे की दशा भिन्न थी। उसकी परिस्थिति वास्तव में दयनीय हो गयी थी। वह गौरव तथा शक्ति के उच्चतम शिखर से कष्ट तथा दरिद्रता के गहन गर्त में गिर गया था। उसकी शक्ति तथा महादजी शिन्दे के गौरव का मूल कारण उसकी शक्तिशाली सेना नष्ट हो गयी थी। उत्तर में अत्यन्त उर्वर प्रदेश उसके हाथ से छिन गये थे और सम्राट तथा उसकी राजधानी पर उसका मूल्यवान अधिकार जाता रहा था। पीड़ादायक भार के कारण उसके पास सिर उठा सकने का कोई साधन नहीं रह गया था। उसका शत्रु होल्कर अब तक सकुशल था और राजपूत राजाओं पर अपना प्रभुत्व प्रदर्शित कर सकता था। यही प्रभुत्व दौलतराव के हाथों से निकल गया था। जॉन माल्कम ने शिन्दे के साथ सन्धि निश्चित की थी तथा अब वह उसके दरबार में रेजीडेण्ट नियुक्त कर दिया गया था। वह तथा एल्फिस्टन इस समय से एक पीढ़ी तक मराठों के भाग्य संरक्षक बने रहे तथा उन दोनों ने बम्बई के गवर्नरों के रूप में अपना कार्य समाप्त किया। यशवन्तराव होल्कर उत्तर में नित्य आक्रमणशील होता गया तथा दौलतराव के पास उसके क्रोध से अपनी रक्षा करने का कोई साधन नहीं था। इस कारण शिन्दे इतना असहाय हो गया कि सुरजीअंजन गाँव की सन्धि के दो मास के भीतर ही उसने माल्कम से एक ब्रिटिश सहायक सेना के लिए याचना की। इस कार्य के लिए २७ फरवरी, १८०४ को एक पूरक सन्धि निश्चित की गयी जो बुरहानपुर की सन्धि कही जाती है। यह सन्धि यशवन्तराव होल्कर के सर्वनाश का उपक्रम था। दौलतराव अब अंग्रेजों के विरुद्ध कोई संघ बनाने का स्वप्न नहीं

देख सकता था। इसके बदले में अंग्रेजों ने उसको आश्वासन दिया कि वे किसी भी शत्रु से उसकी रक्षा करेंगे तथा उसके आन्तरिक प्रशासन में किसी प्रकार के हस्तक्षेप से दूर रहेंगे। इस प्रकार दौलतराव को अब मराठा राज्य में अपनी नष्ट शक्ति पुनः प्राप्त कर लेने की मूर्खतापूर्ण आशा ... ने लगी।

४. **आर्थर वेलेजली की मनोवृत्ति**—जो युद्ध अभी समाप्त हुआ था, उसको प्रायः द्वितीय मराठा युद्ध कहा जाता है। कुछ हद तक यह ठीक भी है, क्योंकि इसका उद्देश्य मराठों की सार्वभौम सत्ता को नष्ट कर देना था। पेशवा और गायकवाड़ कूटनीतिक उपायों द्वारा परास्त कर दिये गये तथा शिन्दे, भोंसले और होल्कर वास्तविक युद्ध द्वारा नष्ट कर दिये गये। किन्तु यह ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि इस युद्ध में समस्त मराठा जाति ने भाग नहीं लिया था। दक्षिण के सरदार इससे सर्वथा अलग रहे। पेशवा ने अपनी अदूरदर्शिता से सब काम बुरी तरह बिगाड़ दिया। लार्ड वेलेजली का निश्चय मराठा राज्य को किसी न किसी प्रकार नष्ट कर देने का था। यदि उसकी इच्छा यह राज्य बनाये रखने की होती तो वह मराठा सत्ता का उपभोग करने के लिए सर्वथा उपयुक्त पुरुष के रूप में अमृतराव का समर्थन करता।

१५ जनवरी, १८०४ को जनरल वेलेजली द्वारा प्रेषित समाचार स्वयमेव गवर्नर जनरल की नीति की पर्याप्त निन्दा करता है। वह लिखता है—"श्रीमन पेशवा की सरकार इस समय केवल नाममात्र की सरकार है। अब बाजीराव पूना से ५ मील के देश का प्रबन्ध भी नहीं कर सकता। यह सब देश जंगल बन गया है, जहाँ चोरों का राज्य है। वह स्वयं सरकार का संचालन करने में अयोग्य है तथा किसी अन्य व्यक्ति का न तो विश्वास करता है, और न कोई अधिकार देता है। उसके पास देश का कार्य-संचालन करने वाला कोई व्यक्ति नहीं है। अमृतराव अवश्य सरकार की स्थापना कर सकता था, परन्तु पेशवा को उससे इतनी घृणा है कि उससे अमृतराव का भाई के रूप में स्वागत करने तथा सरकार में उसकी कोई विश्वस्त स्थान देने के लिए अनुनय-विनय भी नहीं की जा सकती। केवल यह उपाय व्यवहार योग्य प्रतीत होता है कि राज्य के बहुत-से उन प्राचीन सेवकों को मुक्त कर दिया जाये, जिन्हें अन्यायपूर्वक कारागार में डाल दिया गया है अथवा विभिन्न पर्वतीय दुर्गों में नजरबन्द रखा जा रहा है।[८]

पूना में जनरल वेलेजली ने बहुत समय तक पेशवा के मन्त्री सदाशिव मानकेश्वर के साथ वार्तालाप किया, जिसकी सूचना गवर्नर जनरल को इस प्रकार भेजी गयी—"मैंने मानकेश्वर से कहा कि मेरी सम्मति में श्रीमन्त के

८ ओवेन कृत 'वेलिंगटन के पत्र', नं० २०७, पृ० ३६४

लिए सात वर्ष के कष्टों तथा गृहयुद्ध के बाद क्षमा तथा अनुरंजन द्वारा अपना शासन तथा देश का प्रबन्ध करना अधिक उत्तम होगा। इन सात वर्षों में राज्य का लगभग प्रत्येक व्यक्ति उसके शासन तथा सेना के विरुद्ध रहा है। सबके प्रति प्रतिशोध के चक्कर में पड़ना उसके लिए उचित न होगा। वैसे उसकी इच्छा यही है। यह कार्य संकटपूर्ण तथा विवेकहीन सिद्ध होगा।" यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि यह लाभदायक परामर्श अकारण अस्वीकार कर दिया गया, तथा उसका जो परिणाम हुआ वह इतिहास में स्थायी रूप से लिखा हुआ है।

जनरल वेलेजली से जो कुछ बन पड़ा वह उसने परिस्थिति सँभालने के लिए किया। परन्तु एक ओर बाजीराव सदृश दुष्ट व्यक्ति था, जिससे कोई आशा नहीं की जा सकती थी तथा दूसरी ओर सत्ता का भूखा गवर्नर जनरल था, जिसका निश्चय अपनी उचित या अनुचित आज्ञा का अविलम्ब पालन कराने के लिए दृढ़ निश्चय था। ध्यानपूर्वक पत्रों का अध्ययन करने से यह तथ्य प्रकट होता है कि उस समय अधिकार सम्पन्न तथा भारत के भाग्य का निपटारा करने वाले दोनों भाइयों में अगाध प्रेम नहीं था।[९]

५. **होल्कर का प्रकोप**—मराठा राज्य का बिखर जाना यशवन्तराव की नवजात महत्ता का मुख्य कारण था। उसकी शक्ति का रहस्य उसके प्रदेशों का विस्तार नहीं, अपितु उसके अनुयायियों की संख्या थी। उत्तर भारत के सब निकाले हुए सैनिक तथा निश्च्छल परिश्रम अथवा व्यावसायिक योग्यता द्वारा उन्नति करने की अपेक्षा लूट द्वारा समृद्ध होने की इच्छा रखने वाले

---

९ युद्ध की समाप्ति के बाद मार्च, १८०४ में जनरल पूना वापस आ गया। यहाँ पर वह तथा कर्नल क्लोज कई बार पेशवा से मिले। पेशवा भी उनसे मिलने आया। हीराबाग में पेशवा ने उनको कई भोज दिये तथा उनके आमोद-प्रमोद का प्रबन्ध किया। इसके बाद दोनों अंग्रेज सज्जन साथ-साथ बम्बई वापस आ गये। वहाँ वे पूरे दो मास तक मराठा राज्य की भावी स्थिति पर विचार-विमर्श करने में व्यस्त रहे। इसके बाद जून में वे फिर पूना पहुँचे। वहाँ से जनरल वेलेजली अपने स्थायी स्थान श्रीरंगपट्टन को चला गया। वहाँ से गवर्नर जनरल के निमन्त्रण पर यशवन्तराव होल्कर की प्रगतियों के सम्बन्ध में विचार-विमर्श के लिए तुरन्त कलकत्ता चला गया। अगस्त से नवम्बर तक चार मास कलकत्ता में व्यतीत करने के बाद जनरल वेलेजली दिसम्बर, १८०४ में श्रीरंगपट्टन वापस आ गया। आगामी मार्च (१८०५) में जनरल वेलेजली नेपोलियन के धावों का सामना करने के लिए जहाज में बैठकर अकस्मात मद्रास से इंगलैण्ड चल दिया।

समस्त उच्छृंखल व्यक्ति उसके झण्डे के नीचे एकत्र हो गये। उसका कोई स्थिर शासन नहीं था। वास्तव में उसका राज्य उसके घोड़े की जीन थी। वह साहसी, स्वेच्छाचारी तथा निःशंक था। उसकी आज्ञा में ६० हजार सवार तथा विशाल तोपखाना था।[१०]

असाई के रण तक यशवन्तराव की प्रगतियों का वर्णन पहले हो चुका है। वर्तमान युद्ध का भार केवल शिन्दे तथा भोंसले पर पड़ा। उस समय होल्कर ने युद्ध से दूर रहकर अपने जीवन की महत्तम भूल की, क्योंकि वह अच्छी तरह जानता था कि अकेले अंग्रेजों की शक्ति का सामना नहीं किया जा सकता। ५ जनवरी, १८०४ को आर्थर वेलेजली ने उसे इस प्रकार लिखा—"मुझे आपको यह सूचना देते हुए हर्ष होता है कि मैं शिन्दे तथा भोंसले के साथ मित्रता की सन्धि द्वारा अपना पूर्व प्रीतिमय सम्बन्ध पुनः स्थापित करने में सफल हो गया हूँ। मैं आपको इस संघर्ष से दूर रहने के लिए बधाई देता हूँ। आपने युद्ध से अलग रहकर मुझको यह सफलता प्राप्त करने के लिए समर्थ कर दिया। इस युद्ध में आपके विवेकपूर्ण आचरण तथा दूरदर्शिता की मैं बहुत प्रशंसा करता हूँ तथा आश्वासन देता हूँ कि जब तक आप कम्पनी या उसके मित्रों के न्यायसंगत हितों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे, तब तक हम आपके मार्ग में कभी बाधा नहीं डालना चाहेंगे। माल्कम स्वयं यह पत्र आपको देगा। उसको आदेश दिया गया है कि इस विषय पर जो कुछ आप कहें, उसे वह हमको सूचित कर दे, जिससे कम्पनी के साथ आपके निर्बाध सम्बन्ध बने रहें।"

१८०३ ई० की ग्रीष्मऋतु में होल्कर ने औरंगाबाद से चौथ कर संग्रह किया, परन्तु जनरल वेलेजली ने उसको रोकने का कोई प्रयास नहीं किया। उसी वर्ष के अक्तूबर में जब शिन्दे तथा भोंसले बरार में अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध में फँसे हुए थे तो होल्कर ने उज्जैन को लूट लिया तथा यथापूर्व कर संग्रह करता हुआ शीघ्रतापूर्वक जयपुर की ओर बढ़ा। जयपुर, जोधपुर तथा भरतपुर के राजाओं ने पहले ही पृथक-पृथक सन्धियों द्वारा ब्रिटिश सहायक सेना स्वीकार कर ली थीं। अतः जयपुर के विरुद्ध होल्कर का कार्य अंग्रेजों के विरुद्ध सीधी चुनौती थी। किन्तु होल्कर ने लार्ड लेक को आश्वासन दिया कि वह ब्रिटिश मैत्री का बहुत मान करता है तथा जयपुर के सम्बन्ध में वह केवल अपने परम्परागत अधिकारों का प्रयोग कर रहा है। इसी समय उसने अपने विशेष सन्देशवाहक नागपुर भेजे तथा भोंसले राजा को प्रेरणा दी कि

[१०] काये कृत 'माल्कम की जीवनी', जिल्द १, पृ० ३०५; वेलेजली के पत्र', जिल्द ४, पृ० १०७; मिल कृत 'इतिहास', जिल्द ६, पृ० ४६५

ब्रिटिश अतिक्रमण का प्रतिरोध करने तथा उससे अपने राज्य और धर्म की रक्षा करने में होल्कर का हाथ बँटाये। होल्कर ने इसी प्रकार के सन्देश-वाहक जोधपुर के राजा, अम्बूजी इंगले तथा अन्य कई सरदारों के पास भी भेजे। उसने माछेरी के रावराजा को पत्र लिखकर सर्वापहारक ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध विद्रोह करने का आह्वान दिया। रावराजा ने होल्कर का यह पत्र लार्ड लेक के हाथों में रख दिया। इस प्रकार ब्रिटिश अधिकारियों को विश्वास हो गया कि होल्कर ने अब दोहरी चाल आरम्भ कर दी है। अत: लार्ड लेक गत वर्ष शिन्दे के विरुद्ध निर्विघ्न रूप से युद्ध का संचालन करने के लिए भरती किये गये दलों को भंग नहीं कर सका। साथ ही उसने होल्कर से निपटने के लिए गवर्नर जनरल से आज्ञा माँगी। लार्ड वेलेजली यशवन्तराव द्वारा होल्कर राज्य के अपहरण को अपनी स्वीकृति देने के लिए तैयार नहीं था। उसने अपनी इच्छा प्रकट की कि यदि यशवन्तराव काशीराव के हित में अवकाश ग्रहण कर ले तो उस दशा में उसे जीवन-निर्वाह के लिए पर्याप्त वृत्ति दे दी जायेगी। इस विचार से गवर्नर जनरल ने लार्ड लेक से यशवन्तराव को इस आशय की लिखित चेतावनी देने को कहा—यद्यपि ब्रिटिश सरकार की इच्छा आपके साथ अपने मैत्री-सम्बन्ध सुरक्षित रखने की थी, परन्तु उसके मित्रों के विरुद्ध कोई अतिक्रमण सहन नहीं किया जा सकेगा। लार्ड लेक ने ये भावनाएँ २९ जनवरी, १८०४ को पत्र द्वारा होल्कर के पास भेज दीं तथा वह स्वयं होल्कर के शिविर के पास डट गया। इस पर होल्कर ने अपने दो प्रतिनिधि लार्ड लेक के पास भेजकर उससे निम्नलिखित माँगों की पूर्ति करने के लिए कहा :

१. भारतीय शासकों पर उसके परम्परागत चौथ के अधिकार में अंग्रेजों को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

२. दोआब तथा बुन्देलखण्ड के कुछ परगने—जैसे इटावा, हरियाना तथा अन्य—होल्कर के अधिकार में पुन: दे दिये जायें, क्योंकि उन पर उसके परिवार का अधिकार था।

३. वह अंग्रेजों के साथ उन्हीं शर्तों पर मैत्री-सम्बन्ध स्थापित करने के लिए तैयार है, जिनको उसने पहले शिन्दे के सामने उपस्थित किया था।

लार्ड लेक ने इन माँगों को अपरिमित समझा तथा होल्कर के प्रतिनिधियों को अपने शिविर से निकाल दिया। साथ ही होल्कर को स्पष्ट लिख दिया कि वह केवल युक्तिसंगत तथा स्वीकार्य प्रस्ताव ही भेजे। इस पर मराठे (होल्कर) ने अंग्रेज (लेक) को अपनी प्रसिद्ध चुनौती दी। फरवरी, १८०४ को उसने लिखा—"युद्ध की दशा में यद्यपि मैं रणक्षेत्र में ब्रिटिश तोपखाने का

सामना नहीं कर सकता, तथापि सैकड़ों कोस का प्रदेश पददलित कर दूंगा। मैं उनको लूट लूंगा और जला दूँगा तथा सतत युद्ध में मैं अपनी सेना के आक्रमणों द्वारा लाखों मनुष्यों को खून के आँसू रुला दूँगा। मेरी सेना के आक्रमण 'समुद्र की लहरों' की भाँति विनाशकारी होते हैं।"[११]

होल्कर के कारण लार्ड लेक इतना कर्तव्यमूढ़ हो गया कि उसने गवर्नर जनरल को इस प्रकार लिखा—"मुझको जितना दुख इस दुष्ट के कारण हुआ है, इतना पहले कभी नहीं हुआ। हम भारी व्यय पर भी रणक्षेत्र में डटे रहने के लिए विवश हो गये हैं। यदि हम पीछे हटते हैं तो होल्कर जयपुर पर टूट पड़ेगा और वहाँ से बलपूर्वक एक करोड़ रुपये एकत्र कर लेगा। इस प्रकार वह अपनी सेना को पहले से अधिक भयावह बना सकेगा। यदि मैं आगे बढ़ता हूँ और कोई मार्ग खुला रह जाता है तो वह भाग निकलेगा और हमारे प्रदेशों में घुसकर उनको नष्ट कर देगा और जला देगा।"

तीर्थयात्रा के बहाने से यशवन्तराव अजमेर के समीप पुष्कर गया और उन दोनों स्थानों को लूट लिया। उसने शिन्दे को अपना साथ देने के लिए साग्रह प्रार्थनाएँ भेजीं। वह जयपुर पर इस भयानक रूप से टूट पड़ा कि समस्त उत्तर भारत भयभीत हो गया। गवर्नर जनरल इस परिस्थिति को अधिक सहन न कर सका। उसने १६ अप्रैल को लार्ड लेक तथा जनरल वेलेजली को होल्कर के विरुद्ध अविलम्ब युद्ध आरम्भ करने का आदेश दिया। जनरल ने कर्नल मरे को गुजरात से मालवा में प्रवेश करने तथा होल्कर के प्रदेशों को छीन लेने की आज्ञा दी। लेक अपने दलों सहित जयपुर प्रदेश में आ गया। दौलतराव शिन्दे इस प्रकार भयभीत तथा उद्भ्रान्त हो गया था कि उसने अपने को विवश द्रष्टा के रूप में रेजीडेण्ड माल्कम के हाथों में सौंप दिया। पूना में बाजीराव भी उन दुष्टतापूर्ण कपट प्रबन्धों तथा षड्यन्त्रों से मुक्त नहीं रहा जो होल्कर के कार्यकर्ताओं ने उस क्षेत्र में आरम्भ कर दिये। कर्नल क्लोज बाजीराव की प्रगतियों को अत्यन्त चिन्ता से देखता रहा। यद्यपि बाजीराव होल्कर की शक्ति तथा प्रभाव-वृद्धि के बहुत विरुद्ध था, परन्तु उसने ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रस्तावित उपायों को अपना कोई समर्थन नहीं दिया।

६. **कर्नल मोन्सन की विपत्ति**—मुख्य सेनानायक ने होल्कर के विरुद्ध प्रयाण कर दिया। उसका अग्रदल कर्नल मोन्सन की अध्यक्षता में उससे एक मंजिल आगे था। आशा थी कि कर्नल मरे गुजरात से मालवा में प्रवेश कर

---

[११] मिल कृत 'भारत का इतिहास', जिल्द ६, पृ० ४६५; 'वेलेजली के पत्र' जिल्द ४, पृ० १०७

लेगा । होल्कर विवश होकर जयपुर के प्रदेश से दक्षिण की ओर हट गया । लेक के सैनिकों को गरमी से बहुत क्लेश पहुँचा था तथा उनको विश्वास हो गया था कि होल्कर के पलायन की अति तीव्र गति के कारण वे उसका पीछा नहीं कर सकते । अतः उन्होंने वर्षाऋतु के अन्त तक सक्रिय युद्ध स्थगित करने का निश्चय कर लिया । जून के अन्त में लार्ड लेक ने अपनी मुख्य सेना कानपुर की छावनी को हटा दी, तथा मोन्सन को बूँदी और लाखेरी के मार्गों पर अधिकार करके उनकी रक्षा करने की आज्ञा दी । इस प्रकार होल्कर को मालवा से उन घाटियों के उत्तर में लौटने में बाधा उपस्थित हो सकती थी । आशा थी कि मरे मालवा पहुँच जायेगा तथा शिन्दे के दलों के साथ सहयोग करता हुआ होल्कर की देखभाल रखेगा । मोन्सन अपनी सुरक्षित स्थिति मात्र से सन्तुष्ट न था, अतः पर्याप्त दलों या आवश्यक सामग्री के बिना ही वह उन घाटियों के आगे होल्कर के प्रदेश में घुस गया । मोन्सन ने बापू के अधीन शिन्दे के एक दल के साथ चम्बल को पार किया तथा मरे के साथ मिल जाने की इच्छा से कोटा के दक्षिण में करीब ३० मील मुकुन्दरा की घाटी से वेग सहित होल्कर के पीछे बढ़ा । जब वह घाटी के दक्षिणी सिरे पर था, तब उसको पता चला कि उसकी सामग्री कम पड़ गयी है । वह ५० मील और दक्षिण में स्थित तथा शत्रु द्वारा अधिकृत हिंगलाजगढ़ के दुर्ग तक बढ़ गया । उसने प्रथम जुलाई को सुविधापूर्वक इस दुर्ग पर अधिकार कर लिया ।

होल्कर पहले से ही मालवा में था । उसको धन की बहुत आवश्यकता थी । उसने अपना कोष भरने के लिए मन्दसौर को लूट लिया । यह समृद्ध नगर शिन्दे के अधिकार में था । जब वह चम्बल पार करने को तैयार हो रहा था, तभी मोन्सन ने उसको नष्ट करने का यह अनुकूल अवसर समझा और नदी पार करते समय उस पर आक्रमण कर दिया । बाद में उसको मालूम हुआ कि होल्कर अपनी विशाल सेना सहित पहले ही सकुशल नदी पार कर चुका था । इस सेना का सामना करने में वह असमर्थ था । ठीक इसी क्षण उसको बड़नावर से कर्नल मरे का हड़बड़ी भरा सन्देश मिला कि "मेरे पास होल्कर से युद्ध करने के लिए पर्याप्त सेना नहीं है, अतः मैंने गुजरात वापस होने का निश्चय कर लिया जहाँ होल्कर के आक्रमण की आशंका है ।" इस विचित्र स्थिति में मोन्सन ने ८ जुलाई को शत्रु द्वारा अविलम्ब आक्रमणों से अपनी रक्षा करने के उद्देश्य से चम्बल से मुकुन्दरा की ओर लौटना आरम्भ किया । मरे को अपना सन्देश भेजे हुए केवल ५ दिन ही हुए थे, जब उसको मालूम हुआ कि होल्कर की इच्छा गुजरात पर टूट पड़ने की नहीं है । अतः उसने अपनी योजना बदल दी । वह अविलम्ब पीछे हटा तथा ८ जुलाई को

अर्थात ठीक उसी दिन जिस दिन मोन्सन ने होल्कर के सामने से पीछे हटना आरम्भ किया, उज्जैन पहुँच गया। वास्तव में मरे तथा मोन्सन दोनों एक-दूसरे के इतना निकट आ गये थे कि सुविधापूर्वक मिलकर संकट से अपनी रक्षा कर सकते थे। इस प्रकार पारस्परिक सन्देश भेजने की एक साधारण गलती के कारण ब्रिटिश सेना पर भयानक विपत्ति आ टूटी, जिससे भारत तथा इंगलैण्ड दोनों देशों में लार्ड वेलेजली की नीति समाप्त हो गयी। होल्कर परिवार के क्रमबद्ध इतिहास में मोन्सन के पीछे हटने के इस काण्ड का वर्णन इस प्रकार है :

"यशवन्तराव अपने हल्के सवारों सहित मन्दसौर पर टूट पड़ा। इस स्थान को लूटने में उसे एक मास लग गया। यहाँ पर उसको मालूम हुआ कि कोटा तथा बापू शिन्दे के दलों के साथ कुछ ब्रिटिश सेनाएँ हिंगलाजगढ़ पहुँच गयी हैं। उसने अपने साथ करीब ८० हजार शीघ्रगामी हल्के सवार लेकर ७ जुलाई को उन पर अचानक आक्रमण किया। इस विशाल सेना द्वारा परास्त होकर मोन्सन मुकुन्दरा घाटी की ओर शीघ्रतापूर्वक पीछे हट गया। उसके साथ का कोटा वाला दल सर्वथा नष्ट हो गया। सेण्ट लूकास अपने हाथी पर मारा गया। कोटा के राजा ने मोन्सन की सहायता इस उद्देश्य से की थी कि मोन्सन सकुशल चम्बल पार कर सके। परन्तु उन पर्वतीय प्रदेशों के भीलों की सहायता से होल्कर उन पर उग्रतापूर्वक टूट पड़ा। अपनी रक्षा के लिए भागते समय छोटा-सा ब्रिटिश दल लूट लिया गया तथा उसका सारा सामान छीन लिया गया। २४ अगस्त को बनास नदी पर एक अन्य भयानक रण हुआ, जिसमें मोन्सन के बहुत-से सैनिक मारे गये, या जब होल्कर के सैनिक बहुत निकट से उनका पीछा कर रहे थे तब वे नदी में डूब मरे। बनास नदी पर हुए इस रण में होल्कर के तोपखाने का अधिकारी माकनसिंह मार डाला गया और मोन्सन ने उसकी बहुत-सी तोपें छीन लीं। परन्तु यशवन्तराव स्वयं साहसपूर्वक आगे बढ़ा और उसने बहुत-से शत्रुओं को मार गिराया। भारी तोपखाना, चढ़ी हुई नदी के कारण होल्कर का साथ न दे सका, परन्तु उसके सवारों ने तैरकर शीघ्रता से नदी पार कर ली और शत्रुओं का पुनः पीछा करने लगे। इस प्रकार मोन्सन आगरा पहुँचने में सफल हो गया, और होल्कर ने फतेहपुर में अपना शिविर लगाया।"

इस शोचनीय काण्ड के कुछ अन्य विवरण भी उद्धरण देने योग्य हैं। इनको पी० ई० राबर्ट्स ने अपनी पुस्तक 'वेलेजली के अधीन भारत' में भली प्रकार उद्धृत किया है। "कोटा के राजा को लौटते हुए अंग्रेजों का स्वागत करने का साहस नहीं हुआ तो उनको संघर्षपूर्वक चम्बल नदी के तट पर पहुँचना

पड़ा। नदी पार कर ली गयी और १६ जुलाई को बड़ी तोपें तोड़कर छोड़ दी गयीं। २७ को मोन्सन रामपुरा पहुँचा, परन्तु होल्कर के लुटेरे दलों के बढ़ते हुए आक्रमणों के कारण वह अपनी वापसी जारी रखने पर विवश हो गया। वह २४ अगस्त को बनास नदी पर पहुँचा। जब वह नदी पार कर रहा था, तभी उस पर कष्टपूर्ण अवस्था में आक्रमण किया गया। उसने अपना सामान छोड़ दिया और अगले दिन कुशलगढ़ पहुँच गया। यहाँ शत्रु के टिड्डी दल ने उसे लगभग घेर लिया, परन्तु वह संघर्ष करता रहा और २७ को वह हिण्डौनगढ़ पहुँच गया। थकान तथा क्षुधा से पीड़ित यह क्षीण दल अपनी सहन-शक्ति के लगभग अन्त पर ३१ अगस्त को आगरा पहुँच गया। यह दल सर्वथा साहसहीन तथा अव्यवस्थित था। लौटना आरम्भ करने के ५० दिन बाद यह दल आगरा पहुँचा था।" मोन्सन की इस विपत्तिपूर्ण वापसी से ब्रिटिश अस्त्र-शस्त्रों पर कलंक का टीका लग गया तथा बहुत दिनों तक अनेक योग्य सैनिकों तथा कूटनीतिज्ञों के लिए यह काण्ड पर्याप्त टीका-टिप्पणी का विषय बना रहा।

होल्कर के विरुद्ध युद्ध-संचालन के विषय में अत्यन्त धैर्यहीन होकर गवर्नर जनरल ने अपने भाई आर्थर को तुरन्त अपने पास बुलाया। वह उस समय मैसूर स्थित अपने स्थायी स्थान को जाने के लिए पूना छोड़ने ही वाला था। सितम्बर-अक्तूबर के महीनों में दोनों भाइयों के बीच गम्भीर तथा दीर्घकालीन विचार-विनिमय होता रहा। सर्वसाधारण की माँग थी कि युद्ध का संचालन जनरल वेलेजली के सुपुर्द किया जाये, परन्तु लार्ड लेक के अधीन कार्य करने से उसने इनकार कर दिया तथा मोन्सन प्रकरण का शान्त विश्लेषण लिखने के बाद वापस हो गया। बाद में इस विश्लेषण की बहुत प्रशंसा की गयी। अन्त में वह इंगलैण्ड चल दिया।[१२]

७. **अजेय भरतपुर**—मोन्सन की पराजय से यशवन्तराव होल्कर को नवीन स्फूर्ति प्राप्त हो गयी। अब उसने अपने समस्त दलों को लेकर उत्तर की ओर प्रयाण किया। उसने मथुरा पर अधिकार कर लिया तथा ८ अक्तूबर को वह दिल्ली पर टूट पड़ा। लार्ड लेक अपनी सेनाओं को पुनः संगठित करके ३ सितम्बर को कानपुर से चल दिया तथा वेगपूर्वक होल्कर का पीछा किया। वह दिल्ली को उसके हाथों में पड़ने से बचाना चाहता था, क्योंकि इस असामयिक घटना से होल्कर की शक्ति अमित रूप से बढ़ जाती। दिल्ली पर अधिकार करने के लिए एक सप्ताह तक अत्यन्त प्रयास करने के बाद लेक के

---

[१२] ओवेन कृत 'वेलिंगटन के पत्र', नं० २४७, दिनांक फोर्ट विलियम, १२ सितम्बर, १८०४, पृ० ४२६

असाधारण आक्रमण से बचने के विचार से होल्कर को हटना पड़ा। नव दोआब के उर्वर प्रदेश को नष्ट करने तथा अवध में प्रवेश करके ब्रिटिश जनरल के लिए कठिन समस्या उपस्थित करने के विचार से अपने सवारों को लेकर उसने बागपत के स्थान पर यमुना पार की। लेक अपने दलों को दो भागों में विभाजित कर तुरन्त होल्कर के पीछे लग गया। उस पर सहसा आक्रमण किया तथा १७ नवम्बर को फर्रुखाबाद के निकट वह परास्त कर दिया गया। सर्वथा पराजित होकर होल्कर ने कानपुर स्थित मुख्य ब्रिटिश केन्द्र पर आक्रमण करने की योजना त्याग दी। वह शीघ्रतापूर्वक पुनः यमुना पार करके डीग भाग गया। लेक उसके पीछे तुरन्त वहाँ पहुँच गया तथा १ दिसम्बर को उसने उस गढ़ पर घेरा डाल दिया। दो महीनों की लगातार भाग-दौड़ की परेशानी तथा प्रयाण के कष्टों से भगोड़ा तथा पीछा करने वाला दोनों पूर्णतः श्रान्त हो गये थे। उनको कभी भी २५ मील प्रतिदिन से कम नहीं चलना पड़ा था तथा कभी-कभी वे ७० मील प्रतिदिन चले थे। होल्कर समझ गया कि वह बहुत दिनों तक टिक नहीं सकता।

भरतपुर के जाट राजा रणजीतसिंह ने इस समय स्पष्ट रूप से होल्कर का पक्ष अपना लिया। उसने गत सप्ताह ब्रिटिश सरकार के साथ हस्ताक्षर करके निश्चित की गयी मित्रता की सन्धि का खण्डन कर दिया। इस प्रकार होल्कर को लूटमार का कुछ और समय मिल गया। शिन्दे ने भी इस समय अनिश्चित मनोवृत्ति का परिचय दिया, क्योंकि वह होल्कर का पूर्णतः पद-दलित होना नहीं देख सकता था। जाट लोग वीर योद्धा थे। अपनी स्वाधीनता की रक्षा करने के दृढ़ निश्चय का प्रदर्शन वे कई बार पहले मराठों के विरुद्ध कर चुके थे। उन्होंने भारत के उद्धारकर्ता के रूप में होल्कर का स्वागत किया। गवर्नर जनरल तथा चीफ कमाण्डर ने जाट राजा को होल्कर से पृथक करने का प्रत्येक सम्भव प्रयास किया, परन्तु वह सफल न हो सका। लेक ने डीग पर घेरा डाल दिया तथा १३ दिसम्बर, १८०४ को दोनों ओर से भयानक जन-हानि के बाद गढ़ पर उसका अधिकार हो गया।

तब दोनों मित्र पत्थर की दीवारों के अजेय दुर्ग भरतपुर को हट गये। यहाँ पर वे युद्ध करने को तैयार हो गये। राजा अन्दर से गढ़ की रक्षा कर रहा था तथा होल्कर बाहर से घेरा डालने वालों को तंग कर रहा था। लार्ड लेक १९ दिसम्बर को उस दुर्ग के सम्मुख पहुँच गया। तब यहाँ उग्र तथा विक्रान्त संघर्ष आरम्भ हुआ, जिसे भारत के इतिहास में अमर महाकाव्य की प्रसिद्धि प्राप्त हो गयी है। इस स्थान पर ७ जनवरी, १८०५ को घेरा डाला गया। इसे हस्तगत करने के लिए अवरोधकों के सभी प्रयत्न असफल हो गये।

१० अप्रैल को घेरा त्याग दिया गया। इन तीन महीनों में सामूहिक प्रयास द्वारा दुर्ग पर अधिकार करने के कई सुनियोजित आक्रमण निरर्थक सिद्ध हो गये और उनके कारण भयानक हानियाँ हुईं।[१३]

पी० ई० राबर्ट्स लिखता है—"९ जनवरी तथा २१ फरवरी के बीच लेक ने चार पृथक सामूहिक आक्रमण किये जो सभी भयानक क्षति सहित असफल कर दिये गये। ये अनावश्यक आक्रमण भयानक तथा अक्षम्य भूल थे। लेक की उग्र प्रकृति उस विलम्ब को सहन न कर सकी जो सामूहिक प्रयास के पहले आवश्यकतानुसार दीवारों की प्रारम्भिक तोड़फोड़ के लिए अपेक्षित था। लेक की असफलता लार्ड वेलेजली के लिए भयानक तथा अन्तिम प्रहार सिद्ध हुई। अपनी चमत्कारिक सफलता होते हुए भी अन्तिम पराजय अनिवार्य समझकर भरतपुर के राजा ने शान्ति की शर्तें जानने के लिए प्रतिनिधि भेजा।" एक दैनिक वृत्तकार कहता है—"राजा के वकील का लार्ड लेक ने अपने शिविर में स्वागत किया तथा जिन शर्तों का प्रस्ताव किया गया, उनसे अनुमान होता है कि शान्ति निश्चित हो जायेगी। आशा थी कि इतने रक्तपात तथा अनेक वीर अधिकारियों एवं सैनिकों की क्षति के बाद उस स्थान के सम्पूर्ण समर्पण की माँग रखी जायेगी। परन्तु हमारी स्थिति यह है कि मार करने वाली सभी तोपें बेकार हो गयी हैं और भारी गोलियाँ पूर्णतः समाप्त हो गयी हैं। हमारे लगभग एक-तिहाई अधिकारी तथा सैनिक मार डाले गये तथा घायल हो गये हैं। इन सब विपत्तियों के होते हुए भी हमें अपना उद्देश्य अर्थात शान्ति प्राप्त करना अभीष्ट है। शिन्दे की प्रगतियों के समाचारों से लार्ड लेक को राजा के साथ सम्मानपूर्वक मेल करने के लिए और भी प्रेरणा मिली। भरतपुर में हमारी असफलताओं तथा हमारी सेना की क्षीण दशा का समाचार पाकर शिन्दे ने सन्धि को तोड़कर हमारे विरुद्ध संघ में सम्मिलित होने का यही उपयुक्त अवसर समझा। वह विशाल सेना तथा १८० तोपें लेकर हमारी ओर बढ़ा। उसने हमारे विरुद्ध युद्ध की घोषणा नहीं की थी, परन्तु हमें रणक्षेत्र का त्याग करने से पहले अधिक रक्तपात की आशंका करनी चाहिए। सैनिक का दुखपूर्ण भाग्य तथा गौरव कुछ इसी प्रकार का है।"[१४]

१० अप्रैल को राजा के साथ पृथक सन्धि कर ली गयी। वह अंग्रेजों को

---

[१३] 'होलकर कैफियत' के पृ० १०२ पर इस संघर्ष का विशद वर्णन है। जानशिप भी देखो।

[१४] 'भारत में युद्ध तथा क्रीड़ा', पृ० ३९२। एक अधिकारी की दिनचर्या से उत्तर भारत में लार्ड लेक के अभियान का १८०२ तथा १८०६ के बीच का चलता हुआ वर्णन दिया गया है।

व्यय के निमित्त धीरे-धीरे २० लाख रुपये देने के लिए सहमत हो गया तथा अंग्रेज राजा के पास युद्ध के पहले का समस्त राज्य रहने देने के लिए राजी हो गये। इसके बाद होल्कर अकेला रह गया। इसलिए उसे भगोड़ा बनना पड़ा।

८. सबलगढ़ की सभा—ब्रिटिश रेजीडेण्ट का अपमान—जाट राजा को होल्कर से पृथक करने में सफल होने पर अंग्रेज अपनी समस्त शक्ति होल्कर के विरुद्ध प्रयोग कर सकते थे। सौभाग्य से एक पठान सैनिक मीरखाँ उसका निष्ठापूर्ण अनुयायी बन गया। उसने कुछ समय तक होल्कर के पतनोन्मुख भाग्य की रक्षा की। जब यशवन्तराव उत्तर में व्यस्त था, तब दक्षिण में उसके समस्त प्रदेशों—चन्दवाड़, लासलगाम, ढोडप, गलना आदि—पर अंग्रेजों ने सितम्बर तथा अक्तूबर, १८०४ में अधिकार कर लिया था। उसी समय बुन्देलखण्ड में भी उसके प्रदेशों की यही दशा हुई। यहाँ मीरखाँ तथा अम्बूजी इंगले ने मिलकर पर्याप्त सफलता सहित अंग्रेजों का प्रतिरोध किया।

इस व्याकुल देश में शान्ति स्थापित होने के स्थान पर गवर्नर जनरल की अतिक्रमणशील तथा उग्र नीति और सहायक मित्र-सन्धियों की योजना के अशुभ परिणाम प्रकट होने लगे। जब उसे अपने भाई आर्थर से कोई सहायता नहीं मिली तब उसने माल्कम को व्यक्तिगत परामर्श के लिए बुलाया। उसने भी स्पष्ट असहमति प्रकट की, अतः उसे दौलतराव शिन्दे का नियन्त्रण करने में असमर्थ बताकर उसके रेजीडेण्ट पद से हटा दिया। शिन्दे इस समय व्याकुल था तथा ब्रिटिश सत्ता के दुखदायी जुए को हटा फेंकने का प्रयत्न कर रहा था। शिन्दे बुरहानपुर से चलकर बुन्देलखण्ड की ओर बढ़ा। उसका विचार होल्कर का साथ देने तथा ब्रिटिश विरोधी संघ का संगठन करने का था। इस संकटपूर्ण समय तथा व्यापक अशान्ति का स्पष्ट प्रतिबिम्ब अध्ययन के लिए उपलब्ध विशाल इंगलिश साहित्य में देखा जा सकता है।[१५]

इस समय शिन्दे का मन दो विरोधी निष्ठाओं—ब्रिटिश सरकार के साथ मित्रता तथा मराठा राज्य के प्रति कर्तव्य—के बीच फँसा हुआ था। उसकी आय के समस्त स्रोत समाप्त हो गये थे। अतः वह अपनी विशाल सेना का व्यय सहन करने में समर्थ नहीं रहा था। नवम्बर, १८०४ में माल्कम के उत्तराधिकारी वेब का देहान्त हो गया तथा सहायक जेन्किन्स ने उस पद का भार

---

[१५] देखो, कार्ये कृत 'माल्कम की जीवनी तथा उसका पत्र-व्यवहार' दोनों वेलेजली बन्धुओं के पत्रों के साथ तथा १८ अक्तूबर, १८०४ का लिखा हुआ गवर्नर जनरल के नाम शिन्दे का पत्र जो मिल के इतिहास, जिल्द ६, पृष्ठ ५०२ पर उद्धृत है।

ग्रहण कर लिया। उसे १८०५ के आरम्भिक मासों में भरतपुर के युद्ध के परिणामस्वरूप उत्पन्न डाँवाडोल परिस्थिति का सामना करना कठिन कार्य प्रतीत हुआ। अम्बूजी इंगले अपनी नवीन मैत्री का स्पष्ट खण्डन करके मराठा पक्ष में सम्मिलित हो गया। उसको इस समय दुष्टबुद्धि शर्जाराव घाटगे की ओर से कुछ समर्थन मिल गया था। जब रेजीडेण्ट का शिविर सागर में लगा हुआ था तो उस पर शिन्दे के पिण्डारियों ने धावा बोल दिया। इसने घाव पर नमक का काम किया। लार्ड लेक तथा माल्कम किसी भी प्रकार भरतपुर के विरुद्ध युद्ध समाप्त करने तथा जाट राजा को होल्कर के दुष्ट प्रभाव से पृथक करने में सफल हो गये। होल्कर अपनी ६० हजार विशाल सेना सहित सबलगढ़ से शिन्दे के साथ हो गया। तब यहाँ नवीन ब्रिटिश सफलताओं को समाप्त करने के लिए उपाय संगठित करने के उद्देश्य से मराठा जाति के उत्तम विचारकों तथा योद्धाओं का विशाल सम्मेलन हुआ। सतारा के छत्रपति का माहसी बन्धु चतरसिंह भी प्रतिनिधि रूप में वहाँ पर उपस्थित था। इसी अवसर पर किसी समय ब्रिटिश रेजीडेण्ट जेन्किन्स ने क्रुद्ध होकर धमकी दे डाली। इसका फल उसे कारावास के रूप में भुगतना पड़ा। शिन्दे के अंग-रक्षकों ने जून से सितम्बर तक चार महीने उसे मराठा शिविर में बन्दी रूप में रखा। होल्कर अपना उत्साह शिन्दे में नहीं फूँक सका। "उसकी निर्बलता, अकर्मण्यता, स्वाभाविक गौरवहीनता तथा विषयाशक्ति" के कारण उसके व्यक्तिगत हितों के साथ राष्ट्र-हित का भी नाश हो गया। लार्ड वेलेजली वापस बुला लिया गया तथा लार्ड कार्नवालिस भारतीय घटना-स्थल पर पहुँच गया।[१६]

९. **वेलेजली का वापस बुलाया जाना—नीति-परिवर्तन**—वेलेजली ने अधीन-सहायक सन्धियों की प्रथा भारत के आकुल प्रदेशों में ब्रिटिश आधिपत्य के अधीन शान्ति तथा व्यवस्था स्थापित करने के विचार से आरम्भ की थी। मुगल सम्राट की छत्रछाया में अधिपति शासक के जिस स्थान का निर्माण मराठों ने लगभग ५० वर्षों तक कर रखा था, वह महादजी शिन्दे तथा नाना फड़निस की मृत्यु के बाद नष्ट-भ्रष्ट हो गया। इस व्यवस्था पर अन्तिम

---

[१६] लार्ड वेलेजली के युग-प्रवर्तक चरित्र के अध्ययन के लिए विशाल साहित्य विद्यमान है—उदाहरणार्थ, उसके अपने पत्र, उसके भाई आर्थर के पत्र, माल्कम कृत 'भारत का राजनीतिक इतिहास', जिल्द १ और २; कार्ये कृत 'माल्कम की जीवनी', जिल्द १ तथा २; थार्न कृत 'मराठा युद्ध', 'भारत में युद्ध तथा क्रीड़ा'; पी० ई० राबर्ट्स कृत 'वेलेजली के अधीन भारत'; तथा पी० आर० पत्र-व्यवहार के अनेक खण्ड।

प्रहार उस समय हुआ, जब स्वयं पेशवा ने बसई की सन्धि द्वारा ब्रिटिश रक्षा स्वीकार कर ली। लार्ड वेलेजली ने मराठा विलयन की प्रक्रिया को सहायता दी, परन्तु उसने इसे अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक उपस्थित करने का प्रयत्न किया। सावधान बुद्धिमान मराठों को पहले ही मालूम हो गया था कि मराठा राज्य अधिक नहीं टिक सकता, क्योंकि अपनी ही स्पष्ट त्रुटियों के कारण उसका शीघ्र पतन हो जायेगा। लार्ड वेलेजली ने स्वयं १८ जुलाई, १८०४ के अपने लम्बे पत्र में प्राप्त लाभों का गम्भीरतापूर्वक संक्षिप्त वर्णन किया है। उसने साधिकार कहा कि मैंने भारत में आन्तरिक युद्ध के कारणों पर नियन्त्रण प्राप्त कर लिया है जो अनेक वर्षों से भारत के अनेक उर्वर प्रान्तों को जनहीन कर रहे थे। पी० ई० राबर्ट्स कहता है—"इन साधिकार उक्तियों से लगभग जानबूझकर किया गया अज्ञान प्रकट होता है। वेलेजली समझ बैठा था कि भारतीय शासक सर्वथा इससे सहमत हैं एवं उनका भविष्य सुरक्षित है। सत्य यह है कि मराठा सरदारों के हृदय में दूसरों को लूटने और नष्ट करने की शक्ति छिन जाने की तुलना में सभी सम्भव लाभ हेय थे। वेलेजली की योजनाओं तथा उपायों से इंगलिश मन्त्रिमण्डल का भय जाग्रत हो उठा।"

"लार्ड वेलेजली गृह-मन्त्रालय के अधिकारियों की सर्वथा अवहेलना करता हुआ दक्षिण से उत्तर तक युद्धों में व्यस्त रहा तथा उसने क्रमशः अनेक शासकों की शक्ति नष्ट कर दी। उसने एक महान क्रान्ति करके कम्पनी को महान मुगल की गद्दी पर बैठा दिया तथा भारत के आधे भाग पर प्रत्यक्ष रूप से शासन करने एवं शेष आधे भाग पर नियन्त्रण रखने की उत्तरदायित्वपूर्ण स्थिति में पहुँचा दिया। बोर्ड ऑव कण्ट्रोल के प्रेसीडेण्ट (नियन्त्रण समिति के अध्यक्ष) तथा उसके मित्र लार्ड कासिलरा को भी अंग्रेजों द्वारा नवविजित प्रदेशों की विशालता तथा अवश्यम्भावी विनाशक परिणामों के विषय में भय हो गया। होल्कर के विरुद्ध युद्ध की घोषणा से वेलेजली के पापों का घड़ा भर गया तथा मोन्सन के विपत्तिपूर्ण प्रत्यागमन के समाचार से लगभग भय की भावना उत्पन्न हो गयी। लार्ड कार्नवालिस के भारत आने तथा १७९३ में उसकी वापसी पर भारतीय राजनीति की जो दशा थी, उसे पुनः वापस लाने के लिए विनय की गयी। इंगलैण्ड वापस होने पर भी वेलेजली निर्देशकों की निन्दा से न बच सका। २२ मई, १८०६ को पार्लियामेण्ट में प्रस्ताव पेश हुआ, जिसमें "मार्क्विस वेलेजली द्वारा अवध के नवाबों पर किये गये जुर्मों तथा अत्याचारों के सम्बन्ध में आरोप की धाराएँ भी थीं। संसद को विश्वास दिलाया गया कि लार्ड वेलेजली ने भारत भूमि पर पैर रखने के अपने अशुभ दिन से लेकर वहाँ से विदा होने के दिन तक नित्य अपहरणशीलता, अत्याचार,

निर्दयता तथा छल-कपट का दृश्य उपस्थित रखा, जिसके कारण विवश होकर समस्त देश विद्रोह की दशा में पहुँच गया।" सौभाग्यवश संसद ने इस विषय को त्याग दिया। कम्पनी के निर्देशकों तथा मालिकों की सभा ने लार्ड वेलेजली की नीति की निन्दा की, क्योंकि "उसने विजय योजनाओं तथा साम्राज्य प्रसार में सार्वजनिक धन विपुल मात्रा में व्यय कर दिया था।"[१७]

प्रधानमन्त्री पिट ने स्पष्ट कहा कि भारत के प्रत्येक रोग का एकमात्र चिकित्सक लार्ड कार्नवालिस है। कार्नवालिस से अनुनय-विनय की गयी कि अपनी इच्छा के विरुद्ध तथा स्वास्थ्य की बिगड़ी हुई दशा में भी वह यह कार्य स्वीकार कर ले। वह ३० जुलाई, १८०५ को भारत पहुँचा तथा उसी दिन शासन-भार ग्रहण कर लिया। इंगलैण्ड के अधिकारियों से वह वर्तमान व्यवस्था को आमूल बदल देने की प्रतिज्ञा करके चला था। उसने कहा कि भारतीय शासकों के विषय में मेरा मूल उद्देश्य इस भावना को दूर करना होगा कि अंग्रेजों की व्यवस्थित योजना भारत के प्रत्येक शासक पर अपना नियन्त्रण स्थापित करने की है। यह भावना समस्त भारत में फैली हुई थी। यह कार्य सिद्ध करने के लिए वह युद्ध भूमि को चल दिया। वह सम्मान को बिना त्यागे शान्तिपूर्ण वार्तालाप द्वारा होल्कर के विरुद्ध युद्ध समाप्त कर देना चाहता था।

कार्नवालिस ने देखा कि आर्थिक अवस्था अत्यन्त शोचनीय है। लार्ड लेक की सेना को ५ महीनों से वेतन नहीं मिला था। इस धनाभाव को दूर करने के लिए चीन भेजे जा रहे नकद धन से २५ लाख रुपये ले लिये गये।

लार्ड वेलेजली द्वारा स्थापित मित्रताओं से नवीन समस्याएँ उत्पन्न हो गयी थीं। पेशवा सदृश शासकों ने ब्रिटिश रक्षा का आश्वासन पाकर सामयिक प्रशासन के प्रति समस्त चिन्ता त्याग दी थी तथा उन्हें केवल व्यक्तिगत विश्राम और भोग-विलास की इच्छा रह गयी थी। प्रशासन सम्बन्धी दोषों को हटाने तथा नागरिक उपद्रवों के दमन का उत्तरदायित्व ब्रिटिश सरकार पर आ पड़ा था। ब्रिटिश रक्षा के कारण पेशवा तथा निजाम दोनों का प्रशासन दोषग्रस्त हो चला था। दौलतराव, बाजीराव, निजाम तथा अवध का नवाब वजीर वेलेजली की पद्धति से उत्पन्न कुशासन तथा अत्याचार के ज्वलन्त उदाहरण बन गये थे। इनके कारण बुराइयों को प्रोत्साहन मिल रहा था तथा भलाइयों का ह्रास हो रहा था। मुनरो ने भारतीय शासकों के पास सहायक सेना रखने की नीति की कठोर आलोचना की। "इस प्रकार की सेना रखने के विरुद्ध अनेक महत्त्वपूर्ण आपत्तियाँ हैं। इसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति

---

[१७] मार्शमैन, जिल्द २, पृ० १८२

यह होती है कि इस प्रकार की सेना रखने वाले प्रदेश का शासन निर्बल तथा शोषक हो जाता है, समाज के उच्च वर्गों में सम्मान की भावना नष्ट हो जाती है तथा समस्त जनता पतित और दरिद्र हो जाती है। ब्रिटिश सेना की उपस्थिति से शासक अकर्मण्य हो जाता है, क्योंकि इस उपस्थिति से उसे अपनी रक्षा के लिए अपरिचित व्यक्तियों पर विश्वास करने की शिक्षा मिलती है। इस पद्धति के कारण शासक को अपनी प्रजा की घृणा का कोई भय नहीं रह जाता, इसलिए वह लोभी तथा निष्ठुर हो जाता है। जहाँ इस पद्धति का प्रवेश हो जायेगा, वहाँ पतनोन्मुख ग्रामों तथा घटती हुई जनसंख्या के लक्षण शीघ्र ही प्रकट हो जायेंगे। अतः मैं निस्सन्देह कह सकता हूँ कि सहायक पद्धति अपने द्वारा सुरक्षित प्रत्येक शासन को नष्ट कर देगी। ब्रिटिश रक्षा के लाभों का मूल्य अत्यन्त भयंकर है। इसका क्रय-मूल्य है—स्वाधीनता, राष्ट्रीय चरित्र तथा राष्ट्र को आदरणीय बनाने वाली प्रत्येक वस्तु का बलिदान। वहाँ के निवासी केवल पशुओं की भाँति शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत करने के अतिरिक्त और कोई आकांक्षा नही कर सकते। उनमें से एक व्यक्ति भी अपने देश की विधान सभा में या नागरिक और सैनिक शासन में कोई भाग लेने की आशा नहीं कर सकता। जिन व्यक्तियों को किसी राजस्व या न्याय कार्यालय में तुच्छ पद के अतिरिक्त कोई अन्य स्थान प्राप्त हो सकने की आशा नहीं है, उनसे उत्तम चरित्र की कोई अपेक्षा नहीं की जा सकती। अतः ब्रिटिश अस्त्रों द्वारा भारत विजय का परिणाम समस्त राष्ट्र की उन्नति के स्थान पर उसका पतन होगा। हम यह अपेक्षा नहीं कर सकते कि विदेशी प्रभुत्वाधीन राष्ट्र में स्वतन्त्र राष्ट्र के समान आत्मसम्मान तथा उच्च आदर्श मिलेंगे। समस्त राष्ट्र का चरित्र पतित कर देना केवल अनुदारता ही नहीं है, बुद्धि-विरुद्ध कार्य भी है।"[१८]

वेलेजली के चरित्र से सम्बन्धित यह समस्त वाद-विवाद अब इतिहास को अर्पित हो चुका है, परन्तु हम पी० ई० राबर्ट्स के निर्णय को अविलम्ब स्वीकार कर सकते हैं। वह यह कहता है—"मुझको अपना यह सुविचारित दृढ़ विश्वास अवश्य लिख देना चाहिए कि वेलेजली आश्चर्यकारी कुशलता तथा भव्य क्षमतायुक्त प्रशासक था। अन्त में उसके देशवासियों को मालूम हो गया कि उन्होंने एक महान शासक को जन्म दिया जो अपने विचित्र कार्य-क्षेत्र में नियति द्वारा निश्चित समय पर कर्तव्य-पालन कर सका।"

लार्ड कार्नवालिस आते ही अविलम्ब उत्तरी प्रान्तों को चल पड़ा। ५ अक्तूबर को गाजीपुर में उसका देहान्त हो गया। उसके बाद शासन का भार

---

[१८] ग्लीन कृत 'सर टामस मुनरो की जीवनी', प्रथम संस्करण, जिल्द १, पृ० ४६०

कौंसिल (सभा) के ज्येष्ठ सदस्य सर जार्ज बार्लो को सँभालना पड़ा। उसने निष्ठा तथा कठोरतापूर्वक उन समस्त उपायों को कार्यान्वित किया, जिनकी रूपरेखा भूतपूर्व गवर्नर जनरल ने तैयार की थी। माल्कम तथा लेक इन उपायों को कार्यान्वित करने के लिए घटनास्थल पर उपस्थित थे। उनके विचार में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किसी भी सुविधा से यह प्रकट न होने देना था कि वह बलपूर्वक प्राप्त की गयी है, क्योंकि अधिक समय तक युद्ध जारी रखने में वे असमर्थ थे। लार्ड लेक केवल सैनिक था—इस उत्तरदायित्व का मुख्य भाग माल्कम पर आ पड़ा, लेक अपने वर्ग के पक्षपातों से मुक्त न था। वह स्पष्ट वक्ता था, उसकी प्रकृति ऋजु तथा सरल थी और वह पूर्ण रूप से सम्मानित व्यक्ति था। वह असैनिकों तथा क्लर्कों का पर्याप्त अपमान करता था। उसने शिविर की भाषा में अत्यन्त स्पष्टता से 'लिखना छोड़ो, लड़ने पर ध्यान दो'[१६] का नारा लगाया। माल्कम ने लार्ड लेक के नाम से शिन्दे को एक उग्र पत्र लिखकर रेजीडेण्ट जेंकिन्स को अविलम्ब मुक्त करने की माँग की। अवज्ञा की दशा में युद्ध की धमकी भी दी गयी। इस प्रकार के पत्र से शिन्दे की आशाएँ तथा भय जाग्रत हो उठे। उसकी ग्वालियर तथा गोहद पर अधिकार प्राप्त करने की इच्छा समाप्त हो गयी। शर्जाराव निकाल दिया गया, तथा बहुत पहले अवकाश-प्राप्त मुंशी कमलनयन को ब्रिटिश सरकार तथा शिन्दे के दरबारों के बीच पत्र-व्यवहार का साधन बनने का निमन्त्रण दिया गया। वह शिन्दे का एकमात्र परामर्शदाता बन गया तथा उसने चुपचाप माल्कम की समस्त इच्छाओं को पूरा कर दिखाया। जेंकिन्स १३ सितम्बर को मुक्त कर दिया गया तथा अब शिन्दे ने अपने को अन्तिम रूप से होल्कर से अलग कर लिया। यह कार्य १२ नवम्बर की नवीन सन्धि द्वारा निश्चित किया गया। इसे मुस्तफापुर की सन्धि कहा जाता है। इस पर मुंशी के हस्ताक्षर थे। यह मुंशी उत्तर भारत का ब्राह्मण था। जब उसको स्थायी जागीर के रूप में पर्याप्त पुरस्कार दिया गया तो वह माल्कम के हाथ की कठपुतली बन गया। इस जागीर का उपभोग उसका परिवार अब तक करता रहा है। उसको मराठों की कामनाओं या राष्ट्रीय हितों के प्रति कोई चिन्ता नहीं थी। इस सन्धि-पत्र से रक्षा तथा आक्रमण के शब्द जानबूझकर निकाल दिये गये, जिससे शिन्दे युद्ध के पहले के समान अपने स्वतन्त्र शासक होने का विश्वास कर सके। इस नवीन सन्धि से सुरजी अंजनगाँव की सन्धि की मुख्य धाराएँ पुष्ट कर दी गयीं, चम्बल को दोनों राज्यों की सीमा निश्चित किया गया। स्वयं शिन्दे के लिए ४ लाख रुपये नकद का वार्षिक भत्ता स्वीकार

---

[१६] काये, जिल्द १, पृ० ३४३

किया गया तथा उसकी पत्नी बैजाबाई और पुत्री प्रत्येक को २ लाख रुपये वार्षिक के हिसाब से भत्ता दिया गया। ब्रिटिश सरकार ने उदयपुर, जोधपुर, कोटा, मालवा और मेवात में अन्य राजपूत राजाओं के साथ अपनी नवीन मैत्री त्याग दी। उसने शिन्दे के सहायक शासकों के साथ कोई सन्धि और ताप्ती तथा चम्बल के बीच शिन्दे द्वारा होल्कर से छीने गये प्रदेशों में कोई हस्तक्षेप न करने की प्रतिज्ञा की। एक विशेष धारा इस आशय की भी रखी गयी कि शिन्दे अपनी सेवा या मन्त्रणाओं में शर्जाराव को कभी स्थान न देने की प्रतिज्ञा करता है। अन्तिम शर्त का सम्मान अस्वीकृति द्वारा किया गया।

१७. यशवन्तराव होल्कर का अन्त—इस प्रकार कातर हृदय शिन्दे ने इंगलिश विरोधी संघ की रचना रूपी साहसिक योजना में यशवन्तराव होल्कर का साथ पुनः त्याग दिया। वह सबलगढ़ में शिन्दे का शिविर छोड़कर अजमेर की ओर चल दिया। वहाँ उसने जोधपुर के राजा से अपना साथ देने के लिए व्यर्थ प्रार्थना की। इस पर वह दिल्ली के उत्तर में पटियाला की ओर बढ़ा, क्योंकि उसे सिख तथा अफगान लोगों से सहायता मिलने की आशा थी। लार्ड लेक निकट से उसके पीछे लगा रहा। इस समय प्रथम बार ब्रिटिश सेना ने सतलज को पार किया तथा व्यास नदी पर अपना शिविर लगाया। २९ नवम्बर, १८०५ को होल्कर अपने चचेरे भाई को लिखता है—"मैं पटियाला तथा अन्य स्थानों के सिख शासकों से मिल चुका हूँ। वे अंग्रेजों का प्रतिरोध करने में मेरी योजनाओं का साथ देने के लिए तैयार हैं। मुझे लाहौर के रणजीतसिंह तथा अफगानिस्तान के शाह के भी मैत्रीपूर्ण पत्र प्राप्त हुए हैं। अधिक साधन एकत्र करने के लिए मैं १३ को सतलज नदी पार करके अमृतसर और लाहौर के निकट पहुँच गया। सिखों का समर्थन प्राप्त हो जाने की मुझे पूरी आशा है। शिन्दे द्वारा संघ के त्याग से महान हानि हुई है। वह अस्थायी एवं स्वार्थपूर्ण लाभ का शिकार हो गया और उसने राज्य का नाश कर दिया है। मुझे अब भी अपहृत स्थिति पुनः प्राप्त कर लेने की आशा है।"[२०]

स्पष्ट है कि यशवन्तराव को भारी भ्रम था। व्यक्तिगत वीरता चाहे जितनी उच्च क्यों न हो, ब्रिटिश सदृश संगठित शक्ति की तुलना नहीं कर सकती। रणजीतसिंह वेश बदलकर ब्रिटिश शिविर को देखने गया तथा उसने लार्ड लेक और माल्कम के साथ समझौता करना निश्चित कर लिया। उसने समझौते में होल्कर का समर्थन न करने की प्रतिज्ञा की। अपने समर्थकों के

---

[२०] 'होल्कर राज्य', मराठी जिल्द २, नं० ७२

प्रबल परामर्श से यशवन्त ने संघर्ष त्याग दिया तथा युद्ध समाप्त करने के लिए ब्रिटिश प्रस्ताव स्वीकार कर लिये। दो ब्रिटिश प्रतिनिधि उसके शिविर में उससे मिले। वहीं २४ दिसम्बर को सन्धि निश्चित हो गयी। इसे राजघाट की सन्धि कहते हैं। होल्कर ने चम्बल नदी के उत्तर-पश्चिम में समस्त प्रदेशों पर अपना अधिकार त्याग दिया तथा अंग्रेजों ने उस नदी के दक्षिण-पूर्व में उसके अधिकृत प्रदेशों पर उसका अधिकार बना रहने देने का आश्वासन दिया। नर्मदा के दक्षिण में भी होल्कर के प्रदेश वापस दे दिये गये।

सन्धि निश्चित हो जाने के बाद होल्कर लौट आया तथा राजस्थान होकर जाते हुए उसने जयपुर के राजा से बलपूर्वक १८ लाख रुपये वसूल कर लिये। उसने अन्य स्थानों से भी इसी प्रकार रुपये वसूल किये। "मैंने अपने पूर्वजों के राज्य की रक्षा कर ली, यह कहता हुआ वह विजयोल्लास से इन्दौर पहुँचा। यशवन्तराव के उपायों के विषय में चाहे जो कुछ कहा जाये, परन्तु इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि उसका उदय शून्य से हुआ। वह सत्ता पा गया तथा उसकी उन्नति के कारण उसकी व्यक्तिगत वीरता और साहसपूर्ण कर्म थे। वह उदाहरणीय अन्तिम मराठा योद्धा था, जिसने इतिहास में अपना स्थान प्राप्त कर लिया। उसके गुणों तथा अवगुणों के विषय में भिन्न-भिन्न सम्मतियों का होना सम्भव है। उसने नागपुर के व्यंकोजी भोंसले को १५ फरवरी, १८०६ को लिखा—"विदेशियों ने मराठा राज्य को अपने चंगुल में दबा लिया था। ईश्वर जानता है कि उनके अतिक्रमण का प्रतिरोध करने के लिए मैं किस प्रकार गत ढाई वर्षों में प्रत्येक वस्तु का बलिदान करता रहा हूँ। मैंने दिन-रात बिना एक क्षण का विश्राम लिये युद्ध किया है। मैंने दौलतराव शिन्दे से मिलकर स्पष्ट किया कि हम सबके लिए सम्मिलित होकर विदेशी प्रभुत्व समाप्त करना अत्यन्त आवश्यक है। परन्तु दौलतराव ने मुझे धोखा दिया। पारस्परिक सहयोग तथा सद्भावना से ही हमारे पूर्वज मराठा राज्य के निर्माण में समर्थ हो सके थे। परन्तु अब हम स्वार्थी हो गये हैं। आपने मुझको लिखा है कि आप मेरी सहायतार्थ आ रहे हैं, परन्तु आपने भी अपनी प्रतिज्ञा का पालन नहीं किया। यदि आप योजनानुसार बंगाल में बढ़ आते तो हम ब्रिटिश सरकार को निश्चेष्ट कर सकते थे। परन्तु अब भूतकालीन विषयों पर बात करना व्यर्थ है। जब मैंने देखा कि सब लोगों ने मेरा साथ छोड़ दिया है तो ब्रिटिश प्रतिनिधि द्वारा अपने पास लाया हुआ प्रस्ताव स्वीकार कर लिया तथा युद्ध को समाप्त कर दिया।"[२१]

---

[२१] ऐतिहासिक पत्र-व्यवहार, ३६४

नीति परिवर्तन के परिणामस्वरूप जयपुर राज्य से ब्रिटिश रक्षा हटा ली गयी। अब शिन्दे तथा होल्कर दोनों जयपुर के राजा से अपना बदला लेने के लिए स्वतन्त्र थे। इसके परिणामस्वरूप अंग्रेजों पर ऐसे मित्र का परित्याग करने का अमिट कलंक लग गया, जिसने संकटकाल में उनकी सहायता की थी। इसी कारण लार्ड लेक ने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया तथा वह इंगलैण्ड वापस चला गया।

इसके बाद यशवन्तराव होल्कर की स्थिति भयानक हो गयी। उसके पास बहुत बड़ी सेना तो थी, परन्तु उसके निर्वाह के लिए धन नहीं था। उसमें नागरिक प्रशासन की योग्यता भी नहीं थी। उसकी अशान्त आत्मा शान्तिमय जीवन व्यतीत करना पसन्द नहीं कर सकती थी। प्रत्येक स्थान पर उसे पूर्ण निराशा के दर्शन हुए। उसकी प्रकृति उग्र हो उठी तथा विरोध सहन करना उसकी शक्ति से बाहर की बात हो गयी। उसको मित्र तथा शत्रु का विवेक न रहा। 'शक्तिशाली तोपखाने द्वारा ही अंग्रेज परास्त किये जा सकते हैं', इस दृढ़ विश्वास के साथ उसने भानपुरा में तोपों की एक निर्माणशाला स्थापित की तथा अत्यन्त गरमी में भी वहाँ रात-दिन काम किया। इसका प्रभाव उसके दिमाग पर पड़ा। अक्तूबर, १८०८ में उस पर उन्माद का प्रकोप हुआ। इसका कारण सम्भवतः उसके भतीजे खांडेराव की मृत्यु का दुख भी था तथा मदिरा का अत्यधिक सेवन भी। वह तीन वर्ष तक इस दशा में रहा तथा भानपुरा में २८ अक्तूबर, १८११ को ३० वर्ष की आयु में उसका देहान्त हो गया। उसकी आयु दौलतराव शिन्दे की आयु के लगभग समान थी। उसके कई पत्नियाँ थीं, जिनमें से भावी इतिहास में तुलसीबाई का स्थान रहा। उसका ९ वर्ष का अल्पकालीन चरित्र साहसी घटनाओं से परिपूर्ण है। वह कई बार बाल-बाल बचकर निकल भागा। उसके आदमी उससे प्रेम भी करते थे तथा भय भी खाते थे। उसका क्रोध नियन्त्रण योग्य नहीं था। आरम्भिक जीवन में उसकी एक आँख जाती रही थी। थार्न ने इस विचित्र व्यक्ति का उत्तर रेखाचित्र दिया है। उसने बहुत दिनों तक होल्कर को अत्यन्त समीप से देखा था।[२२]

अपने राजनीतिक जीवन के आरम्भ में कई वर्षों तक यशवन्तराव ने अपने भतीजे खांडेराव के नाम से कार्य किया, परन्तु शनैः-शनैः यह दुराव कष्टदायक हो गया। १८०५ में वह स्वयं होल्कर राज्य के प्रभु के रूप में प्रकट हो गया। उसके भतीजे खांडेराव की मृत्यु कोटा के समीप शाहपुर में हैजा के कारण १० वर्ष की आयु में ३ फरवरी, १८०६ को हो गयी। यशवन्तराव का बड़ा

२२ 'भारत में लार्ड लेक द्वारा युद्ध के संस्मरण', पृ० ४९७-९८

भाई काशीराव १८०८ में बीजागढ़ के समीप एक युद्ध में मार डाला गया। कहा जाता है कि इन दोनों मृत्युओं का कारण स्वयं यशवन्तराव था, परन्तु प्रमाण द्वारा यह बात सिद्ध नहीं होती। यशवन्तराव के अपनी पत्नी सरबाई से मल्हारराव नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। यह दस वर्ष की आयु में अपने पिता का उत्तराधिकारी हुआ। यशवन्तराव की मृत्यु के बाद तुलसीबाई ने इसी मल्हारराव के नाम से प्रशासन का संचालन किया। २० दिसम्बर, १८१७ को महीदपुर के शिविर में उसकी हत्या कर दी गयी।

अध्याय १५

तिथिक्रम

१९ दिसम्बर, १७९३	गोविन्दराव गायकवाड़ का रावजी अप्पाजी तथा गंगाधर शास्त्री के साथ पूना से बड़ौदा को प्रस्थान।
९ सितम्बर, १८००	गोविन्दराव गायकवाड़ की मृत्यु।
२० जनवरी, १८०२	मेजर वाकर का रेजीडेण्ट के रूप में बड़ौदा में आगमन।
६ जून, १८०२	आनन्दराव गायकवाड़ का विशेष सन्धि द्वारा ब्रिटिश रक्षा स्वीकार करना।
२९ जुलाई, १८०२	शास्त्री द्वारा बड़ौदा रेजीडेण्सी कार्यालय में सेवा स्वीकार।
जुलाई, १८०२	रावजी अप्पाजी का देहान्त।
२ अक्तूबर, १८०४	अहमदाबाद का क्षेत्र पेशवा द्वारा गायकवाड़ों को १० वर्ष के पट्टे पर दिया जाता है।
२७ मार्च, १८०६	प्रतिनिधि बसन्तगढ़ में परास्त तथा घायल।
१७ नवम्बर, १८०६	पेशवा द्वारा अपने भाई चिमनाजी को पृथक जागीर देना।
१७ नवम्बर, १८०६	बड़ौदा में ऐजेन्सी कमीशन स्थापित।
२६ फरवरी, १८०९	जलने के कारण चिमनाजी अप्पा की पत्नी का देहान्त
१८१०	मेजर वाकर का त्याग-पत्र। रिवेट कार्नक बड़ौदा में रेजीडेण्ट नियुक्त।
२५ मई, १८१०	खांडेराव रस्ते द्वारा विष-पान।
१० अक्तूबर, १८१०	बापू गोखले पेशवा की सेना का सेनापति नियुक्त।
१८ फरवरी, १८११	एल्फिस्टन द्वारा रेजीडेण्सी का भार ग्रहण।
१८१२	पूना को दूतमण्डल के नेतृत्व के लिए गंगाधर शास्त्री का नाम प्रस्तावित।
२९ मई, १८१२	चिमनाजी अप्पा का द्वितीय विवाह।
१९ जुलाई, १८१२	पण्ढरपुर की सन्धि—अपने जागीरदारों से पेशवा की कलह समाप्त।
१ अक्तूबर, १८१२	कोल्हापुर के राजा के साथ पेशवा की सन्धि।
फरवरी, १८१३	कर्नल फोर्ड पेशवा द्वारा विशेष दल में नियुक्त।

मई, १८१३	शास्त्री बड़ौदा की सेवा में मुतलिक नियुक्त।
जनवरी, १८१४	शास्त्री का पूना में आगमन।
६ फरवरी, १८१४	शास्त्री की पेशवा से भेंट।
१७ जून, १८१४	रूपराम चौधरी की मृत्यु।
२३ अक्तूबर, १८१४	अहमदाबाद का पट्टा समाप्त।
२७ फरवरी, १८१५	खुर्शेदजी मोदी द्वारा आत्महत्या।
१६ अप्रैल, १८१५	शास्त्री द्वारा अपने पुत्र का यज्ञोपवीत संस्कार।
७ मई, १८१५	शास्त्री का पेशवा के साथ नासिक को जाना।
जुलाई, १८१५	पेशवा तथा शास्त्री का नासिक से पण्ढरपुर जाना—एल्फिस्टन का एलौरा प्रस्थान।
२० जुलाई, १८१५	पण्ढरपुर में शास्त्री की हत्या।
६ अगस्त, १८१५	एल्फिस्टन का पूना वापस आना।
१६ सितम्बर, १८१५	त्रिम्बकजी डेंगले का अंग्रेजों द्वारा पकड़ा जाना।
२६ सितम्बर, १८१५	डेंगले थाना में बन्दी।

अध्याय १५

न्यायसंगत प्रतिफल

[१८०६-१८१५ ई०]

१. बाजीराव के कष्ट ।

२. बाजीराव का अपने जागीरदारों से झगड़ा ।

३. बाजीराव का प्रशासन—सदाशिव मानकेश्वर, खांडेराव रस्ते, खुर्शेद जी मोदी तथा त्रिम्बकजी डेंगले ।

४. गायकवाड़ द्वारा सहायक सन्धि पर हस्ताक्षर ।

५. पेशवा और गायकवाड़ का विवाद; शास्त्री का मिशन ।

६. शास्त्री की हत्या ।

७. कष्ट का दूसरा दौर—त्रिम्बकजी का समर्पण ।

१. बाजीराव के कष्ट—बसई की सन्धि से शिवाजी महान द्वारा स्थापित मराठा स्वातन्त्र्य का अन्त हो गया। इस शोचनीय परिणाम के उत्तरदायी मुख्य रूप से बाजीराव तथा उसका मित्र दौलतराव शिन्दे हैं। दोनों १८१८ में स्वातन्त्र्य के दुखदायी अन्त के समय जीवित थे तथा इसके बाद भी बहुत वर्षों तक जीवित रहे। बाजीराव की जीवनचर्या तथा प्रशासन का विस्तृत वर्णन पहले हो चुका है। इस प्रकार की कुटिलता तथा दुष्टता का इतिहास में शायद ही कोई अन्य उदाहरण हो। विभिन्न प्रकार के अनुभवों तथा उन्नति के पर्याप्त अवसर होते हुए भी बाजीराव ने कोई शिक्षा ग्रहण नहीं की और अपने दीर्घ शासनकाल में वह कुछ भी नहीं भूला। अनेक भारतीय हितैषियों के अतिरिक्त क्लोज, माल्कम तथा एल्फिस्टन ने उसे सदाचरण के मार्ग पर लाने का यथाशक्ति प्रयास किया, परन्तु इससे पेशवा को कुछ भी लाभ नहीं हुआ। पूना रेजीडेन्सी के पत्र-व्यवहार के दीर्घकाय खण्डों में इस मनुष्य के जीवन पर दुखद टीकाएँ हैं। ये शिन्दे के सम्बन्ध में लिखे गये ब्राउटन के पत्रों के समान ही बाजीराव की कहानी प्रकट करते हैं। १८०३ से १८१८ तक बाजीराव के शेष शासनकाल के वर्ष अनेक घटनाओं तथा परिस्थितियों से परिपूर्ण हैं। अब उनका वर्णन किया जायगा।

परम्परागत पद के अनुसार पेशवा को मराठा राज्य के समस्त सदस्यों पर अपना नियन्त्रण रखने का अधिकार था। स्वयं बाजीराव को बसई की सन्धि

निश्चित करते समय यह ध्यान नहीं था कि मैं उस पद का त्याग कर रहा हूँ। ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधियों ने इस बात को शायद जानबूझकर अस्पष्ट छोड़ दिया। उस समय मराठा राज्य के अन्य सदस्यों के प्रति पेशवा की स्थिति जाननी आवश्यक नहीं थी। जैसे ही बाजीराव ब्रिटिश रक्षा में अपनी राजधानी को वापस आया, वैसे ही उसको आशा हुई कि अंग्रेज उसको मराठा राज्य के समस्त अंगों पर अधिकार स्थापित करने में सहायता देंगे। शिन्दे तथा भोंसले के विरुद्ध युद्ध उनकी पराजय में समाप्त हुए। इनका परिणाम यह हुआ कि उन्होंने ब्रिटिश सरकार के साथ अलग-अलग सन्धियाँ कर लीं और इस प्रकार पेशवा के नियन्त्रण से निकल गये। इसके बाद होल्कर ने युद्ध आरम्भ किया तथा उन दोनों की तरह उसने भी पृथक सन्धि स्वीकार कर ली। बड़ौदा का गायकवाड़ पहले ही मराठा संघ से पृथक हो गया था। अतः इन चार मुख्य सदस्यों को मालूम हुआ कि वे पूर्व मराठा राज्य के सम्मिलित कार्यों से पृथक हो गये हैं। पेशवा के न्यायसंगत क्षेत्र का विस्तार अब उत्तर में खानदेश से लेकर दक्षिण में तुंगभद्रा नदी तक रह गया था। उस नदी के दक्षिण के प्रदेश टीपू की पराजय के बाद ही पेशवा के अधिकार से निकल चुके थे। इसी प्रकार इस समय पेशवा के पूर्वी तथा दक्षिण-पूर्वी प्रदेशों की सीमा कर्णाटक के भाग तथा हैदराबाद का राज्य थे। इस प्रकार पेशवा का राज्य सभी ओर से बहुत संकीर्ण हो चुका था।

उक्त चारों मराठा सदस्यों के विरुद्ध तथा निजाम या बुन्देलखण्ड के शासकों के समान किसी बाह्य शक्ति के विरुद्ध, यदि बाजीराव को अब कोई स्वत्व उपस्थित करना था तो वह इसे ब्रिटिश सरकार के पास निर्णयार्थ भेजने के लिए बाध्य हो गया। अपने कार्यों के फलस्वरूप उपस्थित इस स्पष्ट सत्य को बाजीराव पहले न समझ सका। वह इस विषय पर ब्रिटिश सरकार के साथ कई वर्षों तक निरन्तर व्यर्थ वाद-विवाद करता रहा। अन्त में वह अंग्रेजों का वशवर्ती बनने के लिए विवश कर दिया गया। उसे विदेशी शक्तियों के साथ सीधा व्यवहार करने या पहले अधीन शासकों का नियन्त्रण रखने से रोक दिया गया।

आन्तरिक प्रशासन के विषय में भी पेशवा अपने निकटतम अधीन सरदारों—पटवर्धन परिवार, रस्ते, पंसे, पुरन्दे तथा कुछ अन्य व्यक्तियों—पर बिना ब्रिटिश नियन्त्रण के अपने अधिकार का प्रयोग करने के लिए स्वतन्त्र नहीं था। प्रतिनिधि, कोल्हापुर का राजा तथा सावन्तवाड़ी का राजा कुछ ऐसे व्यक्ति थे, जिनके साथ पेशवा के सम्बन्ध न्यूनाधिक अनिश्चित थे तथा उनको निश्चित करने में समय लगा। बाजीराव ने अपनी परिस्थिति के सामने

समर्पण करने के स्थान पर प्रत्येक मामले में प्रधान सत्ता के निश्चय का विरोध किया। उसमें ब्रिटिश सरकार के प्रति अपनी शत्रुता स्पष्ट प्रकट करने का साहस नहीं था। अतः बाह्य रूप से वह पूर्ण सद्भावना दिखाता रहा, परन्तु उसके कार्य उसके शब्दों को प्रायः असत्य सिद्ध कर देते थे। बसई की सन्धि से ५ नवम्बर, १८१७ तक उसके १६ वर्ष के शासनकाल का यही संक्षिप्त इतिहास है। अन्त में उसने स्पष्ट युद्ध आरम्भ कर दिया जो उसके पूर्ण नाश का कारण बना।

शासक या प्रधानमन्त्री को अपने प्रबन्ध के लिए साधनभूत व्यक्तियों की योग्यता को पहचान कर अधिक से अधिक लाभ के निमित्त उनका उपयोग करना पड़ता है। शिवाजी तथा बाजीराव प्रथम में यह नेतृत्व शक्ति थी, परन्तु बाजीराव प्रथम के पौत्र बाजीराव द्वितीय में इस शक्ति का खटकने वाला अभाव था। बिठोजी तथा यशवन्तराव होल्कर या उनका उच्छृंखल बड़ा भाई मल्हारराव, शर्जाराव घाटगे, फतेहसिंह माने, बालोजी कुंजर, त्रिम्बकजी डैंगले, बाबा फड़के, बालाजीपन्त नाटू, चतरसिंह भोंसले, बलवन्तराव नागनाथ, ढोंडिया वाघ इन सब में तथा पेशवा के कार्यों में प्रमुख भाग लेने वाले अन्य व्यक्तियों में कोई न कोई विशेष जन्मजात क्षमता थी। यदि उसका उचित उपयोग किया जाता तो राज्य को लाभ होता परन्तु उचित निर्देश के अभाव के कारण यह क्षमता नष्ट हो गयी तथा पेशवा का नाश हो गया। पेशवा के सन्देहपूर्ण तथा दुष्ट प्रबन्ध के कारण परिचारी वर्ग या सर्वसाधारण व्यक्ति के लिए ईमानदारी से परिश्रम करना या सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत करना असम्भव हो गया। पेशवा को ब्रिटिश रेजीडेण्ट से नित्य अपने कल्पित अन्यायकर्ताओं को दण्ड देने के लिए प्रार्थना करनी पड़ती थी। अब हम उसके दुष्ट प्रशासन के विस्तृत उदाहरण देते हैं।

औंध का प्रतिनिधि क्रोधी स्वभाव तथा दुष्ट प्रकृति का व्यक्ति था। उसने अपनी माता से झगड़ा किया, अपनी विवाहिता पत्नियों के साथ दुर्व्यवहार किया तथा अपना समय एक नीच जाति की रखैल के साथ व्यतीत किया। यह इतिहास में ताई तेलिन (तेल पेरने वाली) के नाम से प्रसिद्ध है। इसका प्रेमी (प्रतिनिधि) जब पेशवा से संघर्ष कर रहा था तो इसने उसकी वीरतापूर्वक सेवा की थी। पेशवा ने उसकी समस्त सम्पत्ति तथा भूमि का अपहरण करके अपने सरदार बापू गोखले को दे दिया था। इस पर प्रतिनिधि डाकू बन गया तथा उसने पेशवा के पूना क्षेत्र को नष्ट कर दिया। बाजीराव ने बापू गोखले को विद्रोह का दमन करने की आज्ञा दी। प्रतिनिधि परास्त हो गया तथा पकड़कर एक अप्रसिद्ध गढ़ में बन्दी कर दिया गया। उसकी रखैल वीर ताई ने अनेक अनुयायी एकत्र करके उस गढ़ पर आक्रमण किया,

जहाँ प्रतिनिधि बन्दी था। उसने प्रतिनिधि को मुक्त करके वसोटा के दुर्गम गढ़ में अपने पैर जमा लिये तथा बापू गोखले एवं उसकी सुसज्जित सेना का प्रतिरोध किया। प्रतिनिधि ने अब अपनी लूटमार की प्रवृत्ति पुन: नवीन स्फूर्ति से अपना ली। प्रतिनिधि घोषणा करता फिरता था कि मैं क्षत्रपति का सेवक हूँ, उसकी सत्ता का अपहरण करने वाले पेशवा का नहीं। बापू गोखले ने उस पर पुन: आक्रमण किया। २७ मार्च, १८०६ को करहाड के समीप वसन्तगढ़ के नीचे भयानक युद्ध हुआ, जिसमें प्रतिनिधि के कई घाव आये और एक भुजा जाती रही। वह पूना लाकर परिरोध में डाल दिया गया। महिला ताई को परास्त करने, पकड़ने तथा पूना में बन्दी बनाने में ८ महीने घोर संघर्ष करना पड़ा।

२. **बाजीराव का अपने जागीरदारों से झगड़ा**—यद्यपि बसई की सन्धि से महाराष्ट्र के बाहर अपने अधिकृत प्रदेशों से बाजीराव का अधिकार जाता रहा था, परन्तु पूना में स्थिरता प्राप्त कर लेने से इस क्षति की पूर्ति हो गयी थी। इस कारण उसने अभूतपूर्व विश्राम तथा समृद्धि का उपभोग आरम्भ कर दिया था। १८०५ के बाद दस वर्ष तक अंग्रेजों से प्राप्त प्रबल रक्षा के कारण उसके राज्य में पूर्ण शान्ति रही। उसकी आय आशातीत रूप से बढ़ गयी। खंडेराव रस्ते तथा सदाशिव मानकेश्वर उसके मुख्य परामर्शदाता थे। इन्होंने परिश्रमपूर्वक रेजीडेण्ट कर्नल क्लोज के साथ प्रेम-सम्बन्ध स्थापित कर लिया। कर्नल क्लोज विशालहृदय तथा उदार विचारों का मनुष्य था। उसका सम्बन्ध नम्र स्वभाव वाले गवर्नर जनरल लार्ड मिण्टो से था। मिण्टो ने वेलेजली के शासनकाल में उत्पन्न कटुता दूर करने के लिए भारतीय शासकों के प्रति मृदुतापूर्ण नीति धारण कर रखी थी।

कर्नल क्लोज जुलाई, १८०६ में हैदराबाद गया। उसने पूना वाले अपने पद का भार एल्फिस्टन के आने तक अस्थायी रूप से हेनरी रसल को दे दिया तथा १८ फरवरी, १८११ को अपने पद का भार स्थायी रूप से ग्रहण कर लिया। अत: बाजीराव को एल्फिस्टन के आने के बाद आरम्भ होने वाले कष्टों से पहले शान्ति, समृद्धि तथा उपभोग सहित उत्तम समय प्राप्त हो गया। वह धार्मिक क्रियाओं, तीर्थयात्राओं तथा सामाजिक समारोहों में व्यस्त रहा। वह साधारणत: अपना समय पूना के समीप पाशन, कोठरूड़, बड़गाँव, फुलगाँव आदि स्थानों पर विशेष रूप से बनवाये हुए आमोदगृहों में व्यतीत करता था। धन-संचय के साथ बाजीराव का लोभ भी बढ़ता गया। १० अक्तूबर, १८१० को उसने बापू गोखले को अपनी सेना का मुख्य अधिकारी नियुक्त कर दिया।

बाजीराव के अधीन अनेक सरदार थे, जिन्हें राज्य की सेवा के निमित्त

बड़ी-बड़ी सेनाएँ रखने के लिए बड़ी-बड़ी जागीरें मिली हुई थीं। अब ब्रिटिश रक्षा में होने के कारण पेशवा को इन जागीरदारों की सेवाओं की कोई आवश्यकता नहीं रह गयी। अतः उसने इन जागीरों को घटाने का यत्न किया, जिससे उसकी आय बढ़ सके। पटवर्धन, रस्ते, पंसे परिवारों के सरदार तथा निपानी के देसाई बड़ी-बड़ी जागीरों का परम्परागत उपभोग करते थे। उनसे छुटकारा पाने का कोई सुलभ मार्ग दिखायी न देने पर पेशवा ने उनको पीड़ित करना आरम्भ किया। इसके परिणामस्वरूप उन्होंने अपने दुःख निवारण के लिए रेजीडेण्ट से प्रार्थना की। कर्नल क्लोज ने स्थिति गम्भीर होने तक कोई उपाय नहीं किया। बाद में रेजीडेण्सी में एल्फिस्टन का आगमन हो गया। उसने एक वर्ष तक परिस्थिति का अध्ययन किया, प्रमाण एकत्र किये, जागीरदारों के साथ व्यक्तिगत वार्तालाप किये तथा शान्तिपूर्ण समझौते के लिए पेशवा की मध्यस्थता की। इन सरदारों में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा बहुसंख्यक पटवर्धन लोग थे। उन्होंने १८०३ के युद्ध से पहले आर्थर वेलेजली से ब्रिटिश रक्षा का आश्वासन प्राप्त कर लिया था। उन्होंने गत कई वर्षों में अनेक कारणों से पेशवा तथा कुछ छोटे सरदारों की भूमियों पर अधिकार करके अपनी जागीरें भी बढ़ा ली थीं तथा उनको सुदृढ़ कर लिया था। पेशवा के साथ उनके सम्बन्ध इन दिनों मैत्रीपूर्ण नहीं थे। इस समय बाजीराव ने उनके सामने अनेक भारी माँगें रखीं तथा उन्हें आज्ञापालन के लिए बलपूर्वक विवश करने का यत्न किया। उन्होंने पेशवा का प्रतिरोध किया, उसके प्रति विद्रोह कर दिया तथा यदि ब्रिटिश अस्त्रों ने उसकी रक्षा न की होती तो वे उसे पदच्युत करने में सफल भी हो जाते। इस परिस्थिति में बाजीराव ने जागीरदारों के दमन में सहायक सेना का उपयोग करने के लिए रेजीडेण्ट से अनुमति प्राप्त करने की प्रार्थना की। एल्फिस्टन ने जागीरदारों का अस्तित्व मिटा देना उचित न समझा, क्योंकि उनको अपनी जागीरों पर उतना ही अधिकार था जितना कि बाजीराव को अपनी रियासत पर। रेजीडेण्ट ने समझौते की योजना का प्रस्ताव किया और उसे अनुमोदन के लिए गवर्नर जनरल के पास भेज दिया। योजना का अनुमोदन हो गया और वह स्वीकृति के लिए पेशवा के पास भेज दी गयी। पेशवा ने अपने आन्तरिक प्रशासन में ब्रिटिश सरकार के हस्तक्षेप का प्रबल विरोध किया तथा जब तक हो सका वह प्रस्तावित समझौते का विरोध करता रहा। अन्त में १८ जुलाई, १८१२ को पण्ढरपुर के स्थान पर पेशवा तथा उपस्थित सरदारों ने अत्यधिक दबाव के कारण इस निर्णय पर अपने हस्ताक्षर कर दिये। पण्ढरपुर के इस समझौते में निम्न शर्तें हैं :

१. भूतकालीन हानियों को दोनों पक्ष भूल जायें।

२. पेशवा जागीरदारों की सनदों में दी हुई या दीर्घकालीन व्यवहार द्वारा स्वीकृत माँगों के बाहर उनसे कोई नवीन माँग न करे।

३. जागीरदार अपनी-अपनी सनदों में निश्चित सैन्य-संख्या सहित पेशवा की सेवा करें।

४. ब्रिटिश सरकार की अनुमति के बिना पेशवा उनकी जागीरों को जब्त न करे।

५. पेशवा जागीरदारों के साथ यथापूर्व आदरपूर्ण विधि से व्यवहार करे।

६. जागीरदार पेशवा को वे समस्त भूमियाँ वापस दे दें, जिन पर उनका कोई परम्परागत अधिकार नहीं है।

७. ब्रिटिश सरकार ने जागीरदारों तथा उनके सम्बन्धियों की व्यक्तिगत रक्षा के लिए आश्वासन दिया।

८. असहमति की दशा में दोनों पक्ष ब्रिटिश सरकार का निर्णय स्वीकार कर लेंगे।

९. ब्रिटिश सरकार ने जागीरदारों के साथ पृथक सन्धि करने का अपना अधिकार सुरक्षित कर लिया।

बाजीराव ने दावा किया कि पहले कोल्हापुर तथा सावन्तवाड़ी के राजा उसके अधीन थे, परन्तु अब उसके आधिपत्य को स्वीकार नहीं करते। एक ओर ये दोनों राज्य तथा दूसरी ओर ब्रिटिश सरकार पेशवा के लिए निरन्तर कष्ट का कारण सिद्ध हुए, क्योंकि उनकी सापेक्ष स्थिति की स्पष्ट परिभाषा कभी नहीं की गयी। पहले पेशवा माधवराव प्रथम ने कोल्हापुर के साथ कामचलाऊ समझौता कर लिया था जो बाजीराव द्वितीय के शासनकाल में समाप्त हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि दक्षिण के जागीरदार तथा कोल्हापुर का राजा सदैव संघर्षरत रहने लगे। एल्फिस्टन ने इस प्रश्न को भी ले लिया तथा बम्बई की सरकार और पेशवा के साथ राजा की स्थिति स्पष्ट रूप से निश्चित कर दी। राजा किसी मार्ग का निश्चय करने में असमर्थ था, अतः उसने विलम्ब किया तथा समझौते को टालता रहा। आक्रमण की धमकी देने पर ही वह ब्रिटिश निर्णय को स्वीकार करने के लिए तैयार हुआ। एक सन्धि-पत्र तैयार किया गया तथा १ अक्तूबर, १८१२ को राजा ने इसको स्वीकार कर लिया। उसने मलवन का गढ़ अंग्रेजों को समर्पित कर दिया।

३. बाजीराव का प्रशासन—अधिकांश अन्य शासकों के उदाहरण का अनुकरण करते हुए बाजीराव ने अपने पास अनुशासित पैदल दल के साथ

छोटा-सा तोपखाना भी रखना अपने विचार से आवश्यक समझा। इस प्रस्ताव पर उसने गवर्नर जनरल का अनुमोदन प्राप्त कर लिया तथा चीफ कमाण्डर पद के लिए उसने मेजर जोन फोर्ड को निर्वाचित किया। यह पहले पूना में कैप्टिन के रूप में कार्य कर चुका था और इसका सम्बन्ध कर्नल क्लोज के शासनकाल में रेजीडेन्सी से रह चुका था। इस नवीन दल की रचना फरवरी १८१३ में हुई। इसमें अधिकांश उत्तर भारत के लोग तथा थोड़े-से मराठे भी थे। उन सबने निष्ठापूर्वक बाजीराव की सेवा करने तथा भक्ति-भाव सहित उसकी आज्ञाओं का पालन करने की शपथ ग्रहण की। शान्तिकाल में इस दल का वार्षिक व्यय साढ़े तीन लाख रुपये था, परन्तु युद्धकाल में यह आवश्यकतानुसार बढ़ाया जा सकता था। फोर्ड का मासिक वेतन २,५०० रुपये था। २४ धाराओं का सहमति-पत्र विधिपूर्वक तैयार किया गया और मेजर फोर्ड ने इस पर अपने हस्ताक्षर कर दिये। साथ ही उसने अपने हाथ से यह बढ़ा दिया—"मैं अपनी समस्त सेना सहित पेशवा की सेवा निष्ठा तथा भक्तिपूर्वक करूँगा, जब कभी और जहाँ कहीं भी वह मुझे आज्ञा देगा। मैं कम्पनी सरकार द्वारा उठायी गयी किसी आपत्ति की ओर ध्यान न दूँगा। पेशवा के हित सम्बन्धी किसी विश्वास को मैं भंग न करूँगा तथा उसके विरुद्ध किसी राजनीतिक षड्यन्त्र में मैं भाग नहीं लूँगा।" उस गम्भीर सहमति-पत्र में ये शब्द स्पष्ट रूप से लिखे हुए हैं। अब मराठी में इसका मुद्रण हो गया है। फोर्ड ने अपना वचन किस प्रकार भंग किया, यह बाद में ज्ञात हो जायेगा।[1] इस समय बाजीराव ने गोसाईं योद्धाओं की भी एक टुकड़ी भरती की, जिनका मुख्याज्ञापक मनोहरगिरि था। मनोहर का देहान्त १८१३ में हो गया और उसके स्थान पर रूपराम चौधरी नियुक्त किया गया।

अपने राजस्व प्रशासन में बाजीराव ने जिस भयंकर बुराई को प्रवेश दे दिया, वह थी ठेकेदारी की प्रथा—अर्थात कर संग्रह के कार्य को ऊँची से ऊँची बोली बोलने वाले को दे देना। यह उपाय उसने बहुत धन एकत्र करने तथा अपनी सेवा में रहने वाले कृपापात्रों को अत्यन्त लाभप्रद कार्य दे देने के विचार से अपनाया था, जिसके लिए उनकी योग्यता या निपुणता का कोई विचार नहीं रहेगा। यह उपाय समस्त वर्गों—विशेषकर कृषकों—के प्रति विनाशक

---

१ इतिहास संग्रह—सरजाम यादी—नं० ३५, पृ० ९३-१०१। इंगलिश लेखकों का यह कहना ठीक नहीं है कि फोर्ड ने अपनी सहमति में अंग्रेजों के विरुद्ध कभी युद्ध न करने की विशेष शर्त रख दी थी। इस प्रकार उसने १८१७ में युद्ध आरम्भ होने पर पेशवा का पक्ष-त्याग करके किसी प्रकार भी विश्वास भंग नहीं किया।

सिद्ध हुआ। इसके कारण देश दरिद्र हो गया तथा उसकी दशा दयनीय हो गयी, क्योंकि राजस्व के ठेकेदार अपने समय में अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहते थे, और वे बिना दया के जनता को पीड़ित करते थे। बाजीराव की वार्षिक आय लगभग सवा करोड़ रुपये थी तथा इसमें से वह साधारण तौर पर कम से कम ५० लाख रुपये प्रतिवर्ष बचा लेता था। उस समय धन लगाने के लिए लाभप्रद व्यापार नहीं थे। समयान्तर में अंग्रेजों से बाजीराव का संघर्ष बढ़ने लगा तथा शीघ्र ही या कुछ विलम्ब से युद्ध होने की सम्भावना दीखने लगी। उसके कृपापात्रों—खुर्शेदजी मोदी तथा त्रिम्बकजी डैंगले—ने युद्ध के लिए उसे तैयार रहने का परामर्श दिया। शनैः-शनैः वह अपने दलों को बढ़ाने लगा। अक्तूबर, १८१४ में बाजीराव बेलारी के समीप कार्तिक स्वामी के मन्दिर के दर्शन करने गया। इसके लिए उसने नवीन रक्षक दल नियुक्त किया। वापस आ जाने पर भी उसने यह दल भंग नहीं किया।

अपने छोटे भाई चिमनाजी के साथ बाजीराव के सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण नहीं थे। उसे सदैव भय रहता था कि यह छोटा भाई मेरे विरुद्ध षड्यन्त्र करेगा, अतः उसको स्वतन्त्रता नहीं दी गयी। चिमनाजी की स्थिति राजभवन में बन्दी की स्थिति से अच्छी नहीं थी। वह प्रायः रुष्ट तथा संतप्त रहने लगा और उसने अपने लिये स्वतन्त्र निर्वाह वृत्ति की प्रार्थना की। इस चिन्ताजनक कलह को समाप्त करने के लिए कर्नल क्लोज मध्यस्थ बना। १७ नवम्बर, १८०६ को कर्नल क्लोज तथा दोनों भाइयों की एक सभा हुई। चिमनाजी ने कहा कि उसकी इच्छा प्रशासन में कोई भाग लेने की नहीं है। इस पर बाजीराव ने चिमनाजी को २ लाख रुपये वार्षिक की निर्वाह वृत्ति दे दी। उस समय से वह पूना में अलग रहने लगा, परन्तु बाजीराव पूर्ववत सन्देह करने के कारण उस पर निगाह रखता रहा। चिमनाजी का विवाहित जीवन सुखी न था। उसकी पत्नी सीताबाई का देहान्त २६ फरवरी, १८०९ को हो गया। सीताबाई की मृत्यु का कारण जलने का भारी घाव था। यह घाव ओंकारेश्वर के मन्दिर में दिया जलाते समय हो गया था। उसके बाद तीन वर्ष तक उसने विवाह नहीं किया। उसका द्वितीय विवाह २० मई, १८१२ को हुआ। जब १८१७ में बाजीराव ने अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध आरम्भ किया तो वह अपने पलायन में भाई को भी अपने साथ लेता गया।

निरन्तर नीचतापूर्ण षड्यन्त्र तथा सचाई का सर्वथा अभाव बाजीराव के आचरण के सारभूत पैतृक गुण थे। ब्रिटिश सरकार तथा अपने अधीन व्यक्तियों और सेवकों के प्रति उसका व्यवहार इसी प्रकार का था। वह सन्देह तथा विश्वासघात से पूर्ण वातावरण में अपना जीवन व्यतीत करता था।

उसके अभिन्न मित्रों तथा निकटतम सेवकों को भी कभी निश्चय नहीं होता था कि आगामी क्षण क्या होने वाला है। वह अपने समस्त स्वतन्त्र समय में यथाशक्ति विषयभोग में तल्लीन रहता था। वैसे जनसाधारण के समक्ष इस पर धार्मिक भक्ति का परदा पड़ा रहता था। षड्यन्त्रों की रचना तथा गुप्तचरों की नियुक्ति उसके विशेष प्रिय विषय थे। विशेषकर तब, जब उसको रेजीडेन्सी के साथ व्यवहार करना होता था। जब पेशवा रेजीडेण्ट की प्रगतियों तथा योजनाओं के विषय में गुप्त सूचना प्राप्त करने का प्रयत्न करता तो कर्नल क्लोज उसकी नीच चालों की ओर कोई ध्यान नहीं देता था। एल्फिन्स्टन आया तो वह इस गुप्त तथा नीच आचरण पर क्रुद्ध हो गया। उसने समय आने पर इस परम्परा को समाप्त कर देने का निश्चय कर लिया। बाजीराव की सेवा मे बिठोजी गायकवाड़ तथा बाजी नायक दो कार्यकर्ता थे। वह इनसे रेजीडेन्सी को मौखिक सन्देश तथा पत्र ले जाने का कार्य लेता था।

खाँडेराव रस्ते तथा सदाशिव मानकेश्वर पेशवा के दो कार्यवाहक अधिकारी थे। वे सदैव उसके पास उपस्थित रहते थे। त्रिम्बकजी डैंगले भी बाद में इनमें सम्मिलित कर लिया गया। क्योंकि बाजीराव का प्रशासन मुख्य रूप से इन व्यक्तियों पर निर्भर था, अतः इनके पिछले जीवन और व्यक्तिगत चरित्र को जानना आवश्यक है।

सदाशिव मानकेश्वर पण्ढरपुर के समीप तेमभुरनी का निवासी था और धर्मोपदेशक का व्यवसाय करता था। इस कारण वह सुवक्ता तथा व्यवहार कुशल हो गया था। उसने बाजीराव का ध्यान आकृष्ट कर लिया तथा वह सदाशिव को अपने कुछ दूत-मण्डलों में स्थान देने लगा। उसके पास न कोई राजनीतिक दृष्टि थी और न कोई विशेष बुद्धि। कर्नल क्लोज उसके विषय में इस प्रकार कहता है—"इस प्रकार के अत्याचारपूर्ण षड्यन्त्रों के संचालन के लिए बाजीराव सदाशिव मानकेश्वर से अधिक उपयुक्त कोई अन्य व्यक्ति नहीं खोज सकता था जो उसकी अपेक्षा पेशवा का पूर्णरूप से अधिक भक्त हो, षड्यन्त्र में निपुण हो तथा ब्रिटिश सरकार का भयानक शत्रु हो। इस प्रकार के मन्त्री के अधीन संसार का कोई शासन उन्नति नहीं कर सकता था।"[२]

खाँडेराव रस्ते सर्वथा भिन्न प्रकार का व्यक्ति था। उसका मूल सम्बन्ध उसी रस्ते परिवार से था, जिसने बालाजीराव की पत्नी गोपिकाबाई को जन्म दिया था। उसको उत्तराधिकार के रूप में कोई जागीर प्राप्त नहीं हुई थी।

---

२ पूना रेजीडेन्सी कॉरस्पौण्डेन्स, जिल्द ८, पृ० ८ तथा १६०

वह तो पेशवा के राजस्व विभाग का एक अधिकारी था। जब बाजीराव यशवन्तराव होल्कर से हारकर पूना से पलायन कर रहा था, उस समय रस्ते कोंकण जिले का सर सूबेदार था। रस्ते ने महाद में पेशवा की अच्छी सेवा की तथा बसई जाने में उसको स्नेहपूर्वक सहायता दी। उस समय से वह बाजीराव का कृपापात्र बन गया और बाद में राज्य के अनेक महत्त्वपूर्ण कार्यों पर नियुक्त किया गया। परन्तु सदाशिव मानकेश्वर को उससे हार्दिक घृणा थी, क्योंकि जनता उसकी सत्यप्रियता तथा उत्साह की सदैव प्रशंसा करती थी। बाजीराव अपने दोनों मन्त्रियों को कलहग्रस्त रखकर अपने दरबार के इन दो प्रसिद्ध व्यक्तियों द्वारा एक-दूसरे पर लगाये गये दोषारोपणों का आनन्द लेना चाहता था। सहसा २५ मई, १८१० को खाँडेराव की मृत्यु हो गयी। सम्भवतः उसने आत्महत्या कर ली थी। उसकी मृत्यु की सूचना पाकर ब्रिटिश रेजीडेण्ट ने समाचार भेजा—"खाँडेराव ने बाजीराव की दुर्दिनों में विशेष सेवा की। परन्तु उसमें तथा सदाशिव मानकेश्वर में राजनीतिक शत्रुता इस प्रकार बढ़ गयी थी कि पेशवा के लिए किसी न किसी को निकाल देना सर्वथा आवश्यक हो गया था। उसके प्रतिस्पर्धी (रस्ते) की अपेक्षा मानकेश्वर से पृथक होना अधिक कष्टसाध्य कार्य था। अतः उसने खाँडेराव का बलिदान कर दिया। उसका चरित्र तथा उसके गुण मानकेश्वर के चरित्र तथा गुणों से इस प्रकार बढ़े-चढ़े हुए थे, एवं उसने पेशवा की कृतज्ञता तथा प्रेम जाग्रत करने का इस प्रकार प्रयास किया था कि दोनों के बीच निर्वाचन की आवश्यकता पड़ने पर पेशवा को खाँडेराव को श्रेष्ठता देनी चाहिए थी। परन्तु व्यक्तिगत तथा गुप्त विचार का प्रभाव पेशवा की पसन्द पर अधिक पड़ा। राजनीतिक प्रतिस्पर्धा के सभी पहलुओं में खाँडेराव की अपेक्षा मानकेश्वर चाहे जितना ही हेय क्यों न रहा हो, परन्तु उसके अन्तःपुर में उच्चता का जो गुण था उसका रस्ते परिवार में कोई प्रतिस्पर्धी नहीं था।[3]

खुर्शेदजी मोदी का कार्य भिन्न प्रकार का था। उसका जन्म १७५५ में हुआ था। वह कैम्बे का निवासी था। इस पारसी सज्जन का परिचय स्थानीय कार्यालय में कम्पनी के व्यापारिक प्रतिनिधि चार्ल्स मैलेट से हो गया। मैलेट को वह चतुर तथा उपयोगी मालूम हुआ। अतः उसने १७८६ में मोदी को पूना के रेजीडेन्सी कर्मचारियों में सम्मिलित कर लिया। वह मराठी तथा

---

3 पूना रेजीडेन्सी कॉरस्पौण्डेन्स, जिल्द ७, नं० ३५५, दिनांक ३० सितम्बर १८१०, पृ० ५०१। मराठी पत्रों के अनुसार रस्ते ने आत्महत्या कर ली। उसने अपनी पत्नी को व्यभिचारी पेशवा के महल में जाने की आज्ञा नहीं दी, इसलिए बाजीराव उससे अप्रसन्न हो गया।

इंगलिश अच्छी तरह जानता था। अतः क्रमशः आने वाले रेजीडेण्ट पेशवा सरकार के साथ विवादास्पद विषयों की व्याख्या करने के लिए उसे द्विभाषिये का काम सौंपते रहे। उसको कर्नल क्लोज का विश्वास प्राप्त था। उसने वैमनस्य शान्त करने में निपुण होने के कारण बाजीराव का ध्यान आकृष्ट कर लिया। वह अपने मधुर तथा समाधानकारक समर्थन द्वारा रेजीडेन्सी के साथ होने वाले झगड़े शान्त कर सकता था। पूना के अनेक प्रभावशाली सज्जन रेजीडेण्ट के पास पहुँचने तथा अपनी शिकायतें दूर करने के लिए खुर्शेदजी की मध्यस्थता का उपयोग करते थे। सदाशिव मानकेश्वर की उससे घनिष्ठ मित्रता हो गयी थी। उसके द्वारा मानकेश्वर विश्वस्त जानकारी प्राप्त कर लेता था। पेशवा का कार्यकर्ता बजाजी नायक इस कार्य के लिए मोदी से नित्य मिलकर राजनीति से सम्बन्धित अनेक कार्यों में पेशवा की चिन्ता शान्त कर देता था। इस प्रकार इन तीन व्यक्तियों (सदाशिव मानकेश्वर, मोदी तथा बजाजी) ने दीर्घकाल तक बाजीराव के हितों की सेवा की और राज्य के अनेक कार्यों का सफलतापूर्वक संचालन किया। पूना में मोदी की एक साथ दो स्थितियाँ थी। वह रेजीडेन्सी का कर्मचारी था तथा पेशवा का राजस्व संग्राहक था। यह व्यवस्था कुछ समय तक चलती रही। सदाशिव मानकेश्वर को मोदी की शक्ति से ईर्ष्या हो गयी और उसके प्रति द्वेष के कारण बाजीराव के प्रोत्साहन पर उसने एल्फिस्टन से विधिपूर्वक शिकायत कर दी कि मोदी अपने कर्तव्य-पालन में घूस लेता है और इस ढग से वह सार्वजनिक हित की हानि करता है। एल्फिस्टन भारतीय भाषाएँ जानता था, अतः उसको द्विभाषिया की आवश्यकता नही थी। वह सम्बन्धित पक्षों से सीधा व्यवहार करता था और उपलब्ध साधनों से पूर्ण जानकारी प्राप्त कर लेता था। इस प्रकार वह अपने विचार और ज्ञान सर्वथा अपने तक ही सीमित रखता था। अतः पेशवा के साथ व्यवहार संचालन के लिए उसे खुर्शेदजी की सेवाओं की कोई आवश्यकता नहीं रह गयी। पेशवा के षड्यन्त्रों का एल्फिस्टन को पूरा पता था। साथ ही उसको यह भी मालूम हो गया कि मोदी अपकार कर रहा है। उसने मोदी को बुलाकर दो कार्यों में से एक को पसन्द करने को कहा। वह या तो अपने सम्पूर्ण समय में रेजीडेन्सी का कार्य करे या सर्वथा बाजीराव की सेवा में अपना स्थानान्तरण करा ले और रेजीडेन्सी के साथ सम्पूर्ण रूप से सम्बन्ध त्याग दे। इस पर पारसी सज्जन ने रेजीडेन्सी की सेवा करना अधिक अच्छा समझा और पेशवा के दरबार के साथ सम्बन्ध छोड़ दिया।

पूना में गंगाधर शास्त्री का आगमन जनवरी १८१४ में हुआ। वह पेशवा के साथ गायकवाड़ की कलह का समाधान करने बड़ौदा के दूत के रूप में

आया था। पेशवा ने अपनी ओर से त्रिम्बकजी डैंगले को शास्त्री के दूतमण्डल से निपटने के लिए नियुक्त किया। शास्त्री योग्यतापूर्वक अपने पक्ष का समर्थन कर रहा था तथा ब्रिटिश सरकार उसका साथ दे रही थी। ऐसे में बाजीराव को अपना प्रयोजन सिद्ध करना एक विषम समस्या बन गयी। त्रिम्बकजी ने गायकवाड़ के साथ पेशवा का विवाद तय करने में परामर्श लेने के लिए मोदी के साथ गुप्त वार्तालाप किया। एलिफस्टन को इस षड्यन्त्र का पूरा पता था और उसने दोनों मित्रों मोदी तथा त्रिम्बकजी को एक-दूसरे से पृथक कर देना आवश्यक समझा। एलिफस्टन ने परिस्थिति का समाचार गवर्नर जनरल को भेजा तथा आज्ञा प्राप्त कर ली कि मोदी को ५०० रुपया मासिक की पेन्शन देकर कार्यमुक्त कर दिया जाये तथा उससे अपनी जन्मभूमि गुजरात में जाकर रहने को कहा जाये। इस आज्ञा से मोदी के सम्मान तथा गौरव की भावना को भारी चोट पहुँची। उसने पूना में अपना कार्य समाप्त करके रेजीडेण्ट से अन्तिम विदाई ले ली। उसी रात्रि को घर पहुँचने पर उसने विषपान कर लिया तथा २७ फरवरी, १८१५ को उसका देहान्त हो गया। इस घटना से समस्त नगर में असाधारण हलचल मच गयी। मोदी द्वारा निर्मित पूना नगर का गणपति मन्दिर इस समय तक उस पारसी के नाम का स्मरण दिलाता है।

बाजीराव का एक अन्य अनुरक्त सेवक रूपराम चौधरी था जो गोसाई दल का कमाण्डर था। उसकी मृत्यु भी लगभग इसी समय हुई (१७ जून, १८१४)।

त्रिम्बकजी डैंगले निम्बगाँव जाली का मराठा पाटिल था। वह बहुत दिनों से बाजीराव का व्यक्तिगत सेवक था तथा हाल में जासूस (सन्देशवाहक) का कार्य करता था। उसका कर्तव्य सरकार के लिए समाचार प्राप्त करते हुए भ्रमण करने का था। महाद को पलायन के समय वह बाजीराव के साथ था। उसने व्यक्तिगत भारी जोखिम उठाकर बाजीराव का गुप्त पत्र रेजीडेण्ट के पास पहुँचा दिया और इस प्रकार पेशवा की कृपा प्राप्त कर ली। उस समय से बाजीराव उसके उत्साह तथा सूझबूझ के विषय में उच्च भावना रखने लगा। बाजीराव ने उसे अनेक कठिन तथा गुप्त कार्यों पर नियुक्त किया। त्रिम्बकजी मोड़ी लिपि लिखता था तथा अपने समय के अनुसार व्यावहारिक रूप से शिक्षित था। उसे हिसाब-किताब और साधारण व्यापार का पर्याप्त ज्ञान था। वह कुशाग्रबुद्धि व्यक्ति था और बिना किसी विचार के पेशवा की इच्छाएँ कार्यान्वित करने के लिए सदैव तत्पर रहता था। बाजीराव ने उसको सतारा के छत्रपति की प्रगतियों पर निगाह रखने के लिए नियुक्त किया, क्योंकि उसे सन्देह था कि वह रेजीडेण्ट से मिलकर षड्यन्त्र कर रहा है। त्रिम्बकजी ने छत्रपति के भाई चतरसिंह को चतुरतापूर्वक पकड़ लिया। यह

बाजीराव को उसकी सत्ता से पदच्युत करा देने का प्रयत्न कर रहा था। त्रिम्बकजी ने आवासी के साथ सदाशिव मानकेश्वर के सम्बन्ध प्रकट कर दिये तथा बाजीराव का विश्वास प्राप्त कर लिया। राज्य के अनेक कठिन तथा महत्त्वपूर्ण कार्यों में पेशवा को त्रिम्बकजी पर अधिकाधिक विश्वास होता गया। पूना में शास्त्री के आगमन के समय से गायकवाड़ के साथ झगड़े निपटाने में त्रिम्बकजी पेशवा का मुख्य साधन हो गया। त्रिम्बकजी ने चतुरतापूर्वक रेजीडेण्ट की योजनाओं का पता लगा लिया तथा बाजीराव को सतर्क रहने के लिए पहले से चेतावनी दे दी। इससे एल्फिस्टन त्रिम्बकजी से चिढ़ गया। यही चिढ़ बाद में रेजीडेण्ट तथा पेशवा के बीच सम्बन्ध-विच्छेद का मुख्य कारण बनी। एल्फिस्टन बहुत दिनों तक त्रिम्बकजी की नीच चालों की उपेक्षा करता रहा और त्रिम्बकजी स्पष्ट गर्व करता रहा कि यदि पेशवा केवल उसके मार्गदर्शन का अनुसरण करे तो वह अपनी चतुरता से अंग्रेजों को घुटने टिका सकता है। त्रिम्बकजी ने अपने गुप्त कार्यकर्ताओं को नागपुर एवं शिन्दे और होल्कर के पास भेजा तथा उनको अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह करने की उत्तेजना दी। इस समय नेपाल का युद्ध हो रहा था जिसमें अंग्रेजों को अनेक बार घोर पराजय सहन करनी पड़ी। इस कारण भारतीय शासकों को ब्रिटिश आधिपत्य को उखाड़ फेंकने की आशा होने लगी। पेशवा की ओर से रेजीडेण्ट के साथ वार्तालाप करते हुए त्रिम्बकजी ने इस प्रकार का स्वर तथा मुद्रा धारण कर ली जो अत्यन्त उत्तेजक थी। इस प्रकार वह एल्फिस्टन की दृष्टि में सर्वथा निन्दनीय हो गया। उसने गवर्नर जनरल के पास सूचना भेजी कि जब तक डेंगले पेशवा का परामर्शदाता बना रहेगा, तब तक पेशवा को ब्रिटिश सरकार के प्रति सत्यता, मैत्री तथा सम्मान के मार्ग पर लाने की कोई आशा नहीं की जा सकती। इस प्रकार पेशवा तथा रेजीडेण्ट के बीच सम्बन्ध वैमनस्य-पूर्ण हो गये। अब केवल ज्वाला धधकाने वाली एक चिनगारी की आवश्यकता थी। शास्त्री की हत्या से यह चिनगारी प्राप्त हो गयी।

४. **गायकवाड़ द्वारा सहायक सन्धि पर हस्ताक्षर**—१८ अगस्त, १७६८ को दमाजी गायकवाड़ का देहान्त हो गया। वह अपने परिवार का योग्यतम व्यक्ति था। उसके बाद उसके पुत्रों के बीच बहुत समय तक उत्तराधिकार के लिए संघर्ष होता रहा। अन्त में इन्हीं पुत्रों में से एक को पूना में पेशवा ने सेना खासखेल के वस्त्र दे दिये और वह १६ दिसम्बर, १७६३ को अपनी पैतृक सम्पत्ति पर अधिकार करने के लिए बड़ौदा चल दिया। नाना फड़निस ने रावजी अप्पाजी नामक व्यक्ति को गोविन्दराव के साथ उपदेशक तथा पथ-प्रदर्शक के रूप में बड़ौदा भेजा। गंगाधर शास्त्री पटवर्धन भी इसी मण्डली के साथ आया था। वह वाई के समीप स्थित मेनावली का निवासी था और

परम्परागत पुरोहित का पेशा करता था। उसने पूना सरकार में क्लर्क का कार्य किया था। गोविन्दराव तथा रावजी दोनों ने राज्य सुरक्षित रखने के लिए घोर संघर्ष किया। उन्हें पेशवा द्वारा पूना से सहायता प्राप्त होने की बहुत कम आशा थी, इसलिए अपनी अनिश्चित सत्ता को सहायता प्राप्त करने के विचार से उन्होंने अनेक अरब सैनिकों को भरती कर लिया। १९ दिसम्बर १८०० को गोविन्द का देहान्त हो गया तथा उसके ४ वैध और ४ अवैध पुत्रों में उत्तरदायित्व पुनः कलह का विषय बन गया। अवैध पुत्रों में से कुछ प्राय: योग्य थे, परन्तु प्रशासन में किसी अधिकार वाले पद पर उनका कोई स्वत्व नहीं था। मल्हारराव गोविन्दराव का चचेरा भाई था। वह काडी में रहता था तथा उसने वहाँ पर अपना स्वतन्त्र स्थान स्थापित कर लिया था। रावजी की सहायता से गोविन्दराव का ज्येष्ठ पुत्र आनन्दराव अपने पिता की गद्दी का उत्तराधिकारी हुआ, परन्तु उसके वेतनार्थी अरब सैनिकों ने उसे बहुत कष्ट दिया, क्योंकि उसके पास उनका शेष वेतन चुकाने के लिए धन नहीं था। इस संकटकाल में रावजी ने कैम्बे की ब्रिटिश फैक्टरी से आर्थिक सहायता प्राप्त कर ली। इस समय बम्बई के गवर्नर जोनाथन डंकन की इच्छा गुजरात में ब्रिटिश प्रभाव स्थापित करने की थी। उसने अपने विश्वस्त कार्यकर्ता मेजर वाकर को दो हजार सेना सहित आनन्दराव की परिस्थिति का अध्ययन तथा सैनिक सहायतार्थ उसकी प्रार्थना पर विचार करने के लिए बड़ौदा भेजा।

अरबों ने बदले में रावजी के परिवार को पकड़ लिया। आते ही वाकर २० जनवरी, १८०२ को आनन्दराव से मिला तथा उसको मालूम हो गया कि राजा अपने कार्यों में अयोग्य है तथा उसको अपने दीवान रावजी पर पूर्ण विश्वास है। वह अपने चचेरे भाई मल्हारराव से अत्यन्त द्वेष करता है जो उस समय काडी में विद्रोह कर रहा था। इस पर वाकर ने आनन्दराव के दल का समर्थन करना तथा रावजी की योजना का अनुसरण करना निश्चित कर लिया। परिणामस्वरूप उसने मल्हारराव को दण्ड देने के विचार से रावजी के भाई बाबाजी के अधीन गायकवाड़ की सेनाएँ अपने साथ लेकर अविलम्ब काडी पर धावा कर दिया। शीघ्र ही मल्हारराव को आज्ञाकारी बनाकर नड़ियाद में जागीर दे दी गयी। ६ महीने में ही वाकर ने आनन्दराव की स्थिति सुरक्षित कर दी। उसने समस्त उपद्रवों का दमन कर दिया तथा बदले में एक सहमति-पत्र प्राप्त कर लिया, जिस पर ६ जून, १८०२ को विधिपूर्वक हस्ताक्षर हो गये। इस समझौते के अनुसार कम्पनी को व्यय के निमित्त सूरत अठवीसी का जिला सर्वदा के लिए मिल गया। यह सहमति-पत्र रावजी कृत कैम्बे की सन्धि कहलाता है।

वाकर तुरन्त बम्बई आ गया और इस प्रबन्ध के सम्बन्ध में गवर्नर की स्वीकृति लेकर वापस आ गया। २९ जून, १८०२ को आनन्दराव ने कर्नल वाकर को लिखा—"अपनी प्रजा को मेरी यह प्रेरणा है कि वह मेरे प्रशासन में किये गये मेजर वाकर के प्रत्येक कार्य में सहायता करे। वाकर ने मुझे अरबों द्वारा उत्पन्न संकटपूर्ण परिस्थिति में सहायता दी है और मुझे बचा लिया है। किसी को मेजर वाकर का विरोध नहीं करना चाहिए। यदि कोई दुष्ट व्यक्ति मेरी इन इच्छाओं के विरुद्ध आचरण करेगा तो मेजर वाकर को उन्हें दण्ड देने का अधिकार है। वह निस्संकोच होकर अपना कार्य बलपूर्वक कर सकता है, चाहे रावजी अप्पाजी, उसके पुत्र तथा सम्बन्धी भी उसका विरोध करें या इसके बाद दी गयी मेरी कोई आज्ञा इसके विरुद्ध हो। इस प्रकार अंग्रेजों ने गायकवाड़ के राज्य तथा नीति पर अपना कठोर नियन्त्रण स्थापित कर लिया।

मेजर वाकर का प्रबन्ध निर्विघ्न रूप से न चल सका। जुलाई, १८०३ में रावजी की मृत्यु के बाद बड़ौदा में इस प्रबन्ध का प्रबल विरोध उठ खड़ा हुआ। रावजी के पुत्र सीताराम ने इस विरोध का नेतृत्व किया। इस पर १८०६ में मेजर वाकर ने राज्य-कार्यों का प्रबन्ध करने के लिए राजनियुक्त प्रतिनिधियों का आयोग नियुक्त किया। आनन्दराव का भाई फतेहसिंह इस आयोग का सदस्य नियुक्त किया गया। मेजर वाकर ने १८१० में अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। उसके स्थान पर कैप्टिन रिवेट कार्नक रेजीडेण्ट नियुक्त हुआ जो बहुत समय तक इस पद पर रहा। ब्रिटिश हस्तक्षेप तथा कार्नक की अत्याचारी नीति के विरुद्ध बड़ौदा में प्रबल क्रोध उत्पन्न हो गया। बाद को कार्नक बम्बई का गवर्नर नियुक्त किया गया तथा १८३९ में उसने सतारा के राजा प्रतापसिंह को पदच्युत कर दिया।

पहले वर्णन हो चुका है कि पेशवा के कार्यालय का एक चतुर क्लर्क गंगाधर शास्त्री रावजी अप्पाजी के साथ बड़ौदा गया था। १८०२ में जब वहाँ ब्रिटिश रेजीडेन्सी स्थापित हुई, तब उसने देशी सहायक के रूप में ब्रिटिश सेवा में प्रवेश पा लिया। वह शीघ्र ही रेजीडेण्ट का मुख्य समाचारदाता हो गया तथा उस समय बड़ौदा प्रशासन में वर्तमान ब्रिटिश विरोधी षड्यन्त्रों तथा कपट-प्रबन्धों को प्रकट करके रेजीडेण्ट का कृपापात्र बन गया। इस प्रकार राज्य के अधिकांश प्रभावशाली व्यक्तियों को शीघ्र ही उससे भारी द्वेष हो गया। इनमें रानियाँ तथा सीताराम रावजी भी सम्मिलित थे। इस परिस्थिति में ब्रिटिश विरोधी दल ने गोविन्दराव बन्धुजी गायकवाड़ को बड़ौदा के साथ होने वाले अन्याय के निवारणार्थ पेशवा का समर्थन प्राप्त करने १८१४ में

पूना भेजा। पूना पहुँचने पर गोविन्दराव बन्धुजी की खुर्शेदजी मोदी तथा त्रिम्बकजी डँगले से मित्रता हो गयी। बड़ौदा से अगले वर्ष भगवन्तराव गायकवाड़ के रूप में उसी मण्डल में एक अन्य प्रतिनिधि पहुँच गया। इन प्रतिनिधियों ने बम्बई के सरकारी क्षेत्रों को भी प्रलोभन दिया तथा ब्रिटिश योजनाओं एवं उपायों के महत्त्वपूर्ण गुप्त समाचार प्राप्त कर लिये। बड़ौदा में रेजीडेण्ट को इन गुप्त प्रबन्धों के विस्तृत समाचार देने के कारण शास्त्री बड़ौदा में तथा उसके बाहर विशाल जनसमुदाय में सर्वथा निन्दनीय हो गया।

५. **पेशवा-गायकवाड़ कलह : शास्त्री का दूतमण्डल**—गायकवाड़ों की ओर से पेशवा को देने के लिए विशाल धनराशि हो गयी थी। इसका मुख्य कारण २४ लाख रुपये का वार्षिक कर तथा संचित उत्तराधिकार शुल्क था जो उस समय बहुत भारी हुआ करता था। यह अधिपति शासन की आय का महत्त्व-शाली साधन था। यदि सन् १७५३ से गणना की जाती तो यह संचित राशि लगभग ३ करोड़ की भारी मात्रा तक पहुँच सकती थी। इसके अतिरिक्त दोनों पक्षों की ओर से उपस्थित किये गये हिसाबों में बहुत अन्तर था। किसी निश्चय पर पहुँचने के पहले लिखित प्रमाणों का व्यक्तिगत प्रमाणीकरण आवश्यक समझा गया। बाजीराव ने आग्रहपूर्वक बड़ौदा पर अपने स्वत्व का प्रतिपादन किया तथा वह विलम्ब सहन न कर सका। १८०७ से समझौते के लिए उपाय किये जा रहे थे। १८१२ में फतेहसिंह गायकवाड़ ने प्रस्ताव किया कि गंगाधर शास्त्री को पूना भेजा जाये। उसने इस दूतमण्डल का व्यय देना अंगीकार कर लिया। बम्बई सरकार सहमत हो गयी। उसने शास्त्री की रक्षा का विशेष आश्वासन दिया तथा इस कार्य को स्वीकार करने के लिए शास्त्री को प्रोत्साहन दिया। विभिन्न दलों—बड़ौदा सरकार, बड़ौदा रेजीडेण्ट, बम्बई सरकार, पूना रेजीडेण्ट तथा पेशवा सरकार—के बीच इस दूतकार्य के विवरणों की रचना में एक वर्ष से भी अधिक समय लग गया। बड़ौदा से चलने से पहले शास्त्री ने अपनी सम्पत्ति के विषय में इच्छा-पत्र तैयार करके फतेहसिंह गायकवाड़ से प्रमाणित करा लिया। यह ध्यान रखना चाहिए कि गायकवाड़ की प्रार्थना पर शास्त्री ने बड़ौदा आवासीगृह से बड़ौदा सरकार के पास मई, १८१३ में अपनी सेवाएँ स्थानान्तरित करा ली थीं। उसको मुतलिक की उपाधि दी गयी थी तथा ६ हजार रुपये वार्षिक का वेतन। इस सम्बन्ध में शास्त्री के चरित्र पर एल्फिस्टन की उक्तियाँ उद्धृत करने योग्य हैं, क्योंकि उसने पूना में शास्त्री का निकट से अवलोकन किया था। वह कहता है—"यह मनुष्य महा चतुर तथा योग्य व्यक्ति है। यह समस्त बड़ौदा राज्य को उच्चतम व्यवस्था में रखता है तथा यहाँ भी कार्य में अपना विपुल धन व्यय करता है।

यह अपनी सवारी का प्रबन्ध इस प्रकार करता है कि समस्त नगर का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर ले। यह बहुत बड़ा विद्वान शास्त्री है, परन्तु अंग्रेजों की बिलकुल नकल करता है। यह जल्दी चलता है, जल्दी बोलता है, विघ्न डालता है और प्रतिवाद करता है। पेशवा तथा उसके मन्त्रियों को बुड्ढे खूसट तथा निन्दनीय धूर्त कहता है। उसकी भाषा में इंगलिश शब्दों का मिश्रण होता है। वह किसी (उदाहरणार्थ होल्कर) के सम्बन्ध में इस प्रकार बोलेगा—'बहुत ट्रिक्स वाला था, लेकिन बड़ा अकलमन्द कौकआई (कुक्कुटाक्ष) था'।"[४]

एक अन्य विषय के कारण भी पूना तथा बड़ौदा के बीच संघर्ष बहुत बढ़ गया। उसका सम्बन्ध गायकवाड़ के साथ-साथ पेशवा के गुजरात वाले आधे भाग से था। अहमदाबाद के प्रबन्ध में यह अर्धभाग पेशवा ने गोविन्दराव के पुत्र भगवन्तराव को पट्टे पर दे दिया था। यह पट्टा २ अक्तूबर, १८०४ को पेशवा ने इस शर्त पर दस वर्ष के लिए नवीन कर दिया था कि गायकवाड़ लोग पेशवा को साढ़े चार लाख रुपये प्रतिवर्ष देते रहेंगे। इस प्रकार पट्टे की दस वर्ष की अवधि १८१४ में समाप्त होने वाली थी। ब्रिटिश अधिकारियों की उत्कट इच्छा थी कि अहमदाबाद का प्रबन्ध बहुत समय तक गायकवाड़ के पास यथापूर्व बना रहे। पेशवा ने गायकवाड़ को यह पट्टा अधिक समय तक देने पर प्रबल आपत्ति की तथा २३ अक्तूबर, १८१४ को उसने लिखित आज्ञा द्वारा अपने कृपापात्र त्रिम्बकजी डैंगले को उस नगर का प्रबन्धक नियुक्त कर दिया। डैंगले ने अहमदाबाद स्वयं न जाकर वहाँ का प्रबन्ध करने के लिए विट्ठल नरसिंह को अपना प्रतिनिधि नियुक्त कर दिया।

शास्त्री जनवरी, १८१४ में पूना पहुँच गया और पेशवा ने त्रिम्बकजी को तुरन्त ही स्पष्ट रूप से अपने विश्वास में ले लिया। उसकी नियुक्ति बड़ौदा के कार्यकर्ताओं के साथ वार्तालाप करने के लिए की गयी। शास्त्री जब ६ फरवरी को पेशवा के सम्मुख उपस्थित हुआ, तब उसका स्वागत उत्साह से नहीं किया गया। वह पेशवा के लिए उपहार लाया था। उसने रेजीडेण्ट की उपस्थिति में इन उपहारों को पेश करने का हठ किया। इस कार्य पर पेशवा ने प्रबल आपत्ति की। मार्च में दूतमण्डल के विषय पर वार्तालाप आरम्भ हुए, परन्तु यह शीघ्र ही स्पष्ट हो गया कि जल्दी निश्चय होने की कोई सम्भावना नहीं है। जून में पूना के रेजीडेण्ट ने बम्बई सरकार से उन षड्यन्त्रों

---

४ बहुत ही चतुर व्यक्ति, परन्तु बहुत बुद्धिमान तथा मुर्गे की सी तिरछी आँख का। कोलब्रुक कृत 'एल्फिस्टन की जीवनी', जिल्द १, पृ० २७६

के विरुद्ध शिकायत की, जिनका संचालन गोविन्दराव बन्धुजी पूना में कर रहा था।

शास्त्री शीघ्र समझ गया कि पेशवा की इच्छा कलह के विषय में उसकी मध्यस्थता स्वीकार करने की नहीं है। उसने देखा कि प्रत्येक व्यक्ति उससे धन झपटने पर तुला हुआ है। अतः उसने शीघ्र निश्चय किया कि वह बड़ौदा वापस चला जायगा, जहाँ उसे निस्सन्देह दीवान का पद मिल जायगा। दशहरा के समीप एल्फिस्टन ने शास्त्री को सूचना दी कि दूतमण्डल की सफलता की कोई सम्भावना नहीं है, अतः उसको वापस हो जाना चाहिए। किन्तु शास्त्री को मालूम था कि यदि वह कोई उपयोगी फल प्राप्त किये बिना वापस जायेगा तो उसका प्रतिस्पर्धी सीताराम तथा बड़ौदा का अन्य अधिकारी-वर्ग प्रबल हो जायेगा। इस प्रकार वे विरोधी संगठित कर लेंगे। इस समय पेशवा का दरबार भी समझ गया कि यदि शास्त्री हताश होकर वापस जाता है तो अवश्य ही पूना तथा बड़ौदा दोनों सरकारों से समान रूप से बदला ले लेगा, क्योंकि ब्रिटिश सरकार ने उसका पक्ष ग्रहण कर लिया है। इस प्रकार के परिणाम को कैसे रोका जाय, यही बाजीराव तथा त्रिम्बकजी की चिन्ता का विषय हो गया। इसी अस्थिर दशा में १८१४ का वर्ष व्यतीत हो गया।

१८१५ के आरम्भ में भगवन्तराव गायकवाड़ पूना आया। वह गोविन्दराव का पुत्र तथा आनन्दराव का अवैध भाई था। उसने नवीन षड्यन्त्र आरम्भ किये। रेजीडेण्ट के विरोध पर भी वसन्त पंचमी (१४ फरवरी, १८१५) को पेशवा ने भरे दरबार में उसका स्वागत किया। इस अवसर पर भगवन्तराव ने पेशवा को आनन्दराव का हस्तलिखित पत्र दिया। इसी समय अपने बड़ौदा स्थित गुप्तचरों से बाजीराव को समाचार मिला कि आनन्दराव तथा फतेहसिंह वास्तव में ब्रिटिश रक्षक दल द्वारा बन्दी बना लिये गये हैं तथा उनकी उत्कट इच्छा है कि पेशवा उनके लिए कार्य की स्वाधीनता दिला दे। बाजीराव ने इस विषम स्थिति का समाचार एल्फिस्टन को भेजा, परन्तु उसने इस आरोप को स्वीकार नहीं किया। इस पर पेशवा तथा रेजीडेण्ट के बीच बड़ौदा एवं पूना के दोनों शासकों की स्थिति के विषय में चिन्ताजनक दीर्घकालीन वाद-विवाद होने लगा। बाजीराव का कहना था कि गायकवाड़ उसका पुराना अधीन शासक है, अतः यह जानना उसका कर्तव्य है कि वर्तमान स्थिति में उसको कोई कष्ट तो नहीं हो रहा है। सत्यान्वेषण के लिए उसकी इच्छा रेजीडेण्ट से स्वतन्त्र रूप में अपने विश्वस्त कार्यकर्ता बड़ौदा भेजने की है। एल्फिस्टन ने पेशवा के अधिपतित्व सम्बन्धी अधिकार का खण्डन किया। पेशवा ने बलपूर्वक कहा कि गायकवाड़ बिना उससे पूछे हुए कोई पृथक सन्धि

नहीं कर सकता, क्योंकि पेशवा उसका अधिपति है। उसने कहा—"क्या उसको पेशवा से अपने पदवस्त्र लेने के लिए यहाँ नहीं आना चाहिए ?" इस प्रकार स्वत्वों के सम्बन्ध पर बहुत समय तक वादविवाद होता रहा। एल्फिस्टन का केवल यही उत्तर था कि गायकवाड़ अब पेशवा का अधीन शासक नहीं है। जब तर्क से काम नहीं चला तो पेशवा ने यह प्रश्न गवर्नर जनरल के पास निर्णयार्थ भेज देने को कहा। यह १८१५ की बात है, जब अंग्रेजों का नेपाल के साथ भयानक युद्ध हो रहा था और नेपाल में अंग्रेजों की सतत पराजयों के कारण समस्त देश में उनके विरुद्ध असन्तोष उत्पन्न हो गया था। अतः इस संकटकाल में बड़ौदा तथा पूना के रेजीडेण्ट जानबूझकर कठोर शब्दों के उपयोग से दूर रहे। फरवरी, १८१५ में एल्फिस्टन ने बाजीराव को सूचना दी—"यदि बड़ौदा राज्य पर नियन्त्रण रखने का अपना स्वत्व आप नहीं छोड़ते तो इस विवाद में ब्रिटिश सरकार की मध्यस्थता करना निरर्थक है। इस समय सीताराम के कार्यकर्ता—अर्थात गोविन्दराव बन्धुजी तथा भगवन्तराव—यहाँ हमारे विरुद्ध सक्रिय षड्यन्त्रों का संचालन कर रहे हैं। आप उनको पकड़कर मुझे अवश्य सौंप दें। अन्यथा मैं शास्त्री से वापस जाने के लिए कह दूँगा। इसी के अनुसार एल्फिस्टन ने शास्त्री को पूना छोड़ देने का परामर्श दिया, क्योंकि उसका दूतकार्य असफल सिद्ध हो गया था। शास्त्री ने इस सुझाव को स्वीकार नहीं किया। उसने साग्रह कहा—"अब चूँकि अन्य उपाय असफल हो गये हैं। अतः आप मुझे कुछ समय दें, जिससे मैं आपसे स्वतन्त्र रूप में बाजीराव के साथ व्यक्तिगत उपाय करने का यत्न करूँ। यदि मैं सफल हो जाता हूँ तो ठीक है, अन्यथा वापस चला जाऊँगा।"

जब इस प्रयास का समाचार पेशवा के कानों तक पहुँचा तो वह तथा डैंगले कुछ-कुछ चक्कर में पड़ गये। यदि ब्रिटिश मध्यस्थता का आश्रय नहीं लिया जाता तो उनको अपने ऋण का पैसा कैसे प्राप्त हो सकता था। यदि शास्त्री खाली हाथ वापस जायेगा तो अंग्रेज इसे अपना व्यक्तिगत अपमान समझेंगे तथा वे इसका बदला पेशवा से ले लेंगे। इस सम्बन्ध में वे उसके आधिपत्य तथा ऋण दोनों का हरण कर सकते हैं। इस प्रकार के परिणाम से बचने के लिए बाजीराव तथा त्रिम्बकजी दोनों ने शास्त्री के प्रति अपना व्यवहार सहसा बदल दिया। उन्होंने पूर्व विरक्ति त्यागकर स्नेहपूर्ण वृत्ति धारण कर ली। शास्त्री से तुरन्त वापस न जाकर कुछ समय ठहरने की प्रार्थना की गयी तथा धन सम्बन्धी विवाद के निपटारे के लिए अन्य उपाय निकाले गये। उन्होंने एक अन्य उपाय के रूप में गायकवाड़ द्वारा पेशवा को सदा सर्वदा के लिए ७ लाख रुपया वार्षिक आय का प्रदेश देने का प्रस्ताव किया। यह

युक्तियुक्त प्रस्ताव दोनों पक्षों के लिए हितकारी था और वास्तव में यह गायकवाड़ के लिए अधिक कल्याणकारी था, क्योंकि वह इस प्रकार पेशवा की दासता से सर्वदा के लिए मुक्त हो जाता। शास्त्री ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया तथा एल्फिस्टन से वहाँ ठहरने के लिए तब तक समय माँगा, जब तक इस पर पूर्ण वार्तालाप न हो जाये और बड़ौदा से स्वीकृति न आ जाये।

६. **शास्त्री की हत्या**—मार्च तथा अप्रैल में इस विषय पर अधिक वार्तालाप हुआ, जिसमें त्रिम्बकजी तथा बाजीराव ने शास्त्री के प्रति विपुल स्नेह तथा माधुर्य का प्रदर्शन किया। उन्होंने शास्त्री के गुणों की बहुत प्रशसा की तथा उससे बड़ौदा छोड़कर पूना में बाजीराव के मन्त्री के रूप में आ जाने का प्रस्ताव किया। इन लुभावनी आशाओं से शास्त्री का मन पूर्णतः उनके वश में हो गया तथा उसने इन उक्तियों का समान स्नेह से अनुकूल उत्तर दिया। विशेषकर त्रिम्बकजी उसका घनिष्ठ मित्र हो गया। १६ अप्रैल को शास्त्री ने पूना में अपने पुत्र का यज्ञोपवीत संस्कार अत्यन्त शोभा तथा वैभव से किया। इसमें पेशवा उपस्थित था। इस अवसर पर बाजीराव ने अपनी पत्नी की बहन का विवाह शास्त्री के पुत्र से करने का प्रस्ताव किया। पूना की जनता सहसा यह पारस्परिक स्नेह उमड़ता देखकर चकित हो गयी तथा इस पर स्वतन्त्र टीका-टिप्पणी करने लगी। बम्बई की सरकार ने शास्त्री के आचरण का अनुमोदन नहीं किया, क्योंकि इसका अर्थ गायकवाड़ राज्य के घरेलू मामलों में पेशवा के हस्तक्षेप के अधिकार को स्पष्ट स्वीकार करना होता। शास्त्री अंग्रेजों के आश्वासन पर पूना आया हुआ वैध राजदूत था। अतः बम्बई की सरकार ने ८ मई को शास्त्री को दूत-कार्य यथासम्भव शीघ्र समाप्त कर देने की आज्ञा दी। जब यह आज्ञा पूना पहुँची, तब दोनों पक्ष दौरा कर रहे थे। अतः इस पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। शास्त्री को असावधान करने के लिए बाजीराव ने अपने साथ नासिक, त्रिम्बक तथा पण्ढरपुर की तीर्थयात्रा करने का प्रस्ताव किया। नासिक में ही उससे अपने पुत्र का विवाह करने के लिए कहा गया। इस उत्सव के लिए विशाल तैयारी की गयी।

इस बीच बड़ौदा से समाचार मिला कि फतेहसिंह राव ७ लाख वार्षिक आय का प्रदेश ऋण के भुगतान के रूप में सर्वदा के लिए पेशवा को देने का प्रस्ताव नहीं करता। इस निश्चत से शास्त्री की योजनाएँ समाप्त हो गयीं तथा वह संभ्रम में पड़कर सोचने लगा कि पेशवा से की गयी प्रतिज्ञाओं से सम्मानपूर्वक किस प्रकार बचा जा सकता है। उसने अपने पुत्र का विवाह करने से इनकार कर दिया। बाजीराव बिना दुख के यह अपमान सहन नहीं

कर सकता था। शास्त्री की पत्नी को पेशवा की पत्नी से मिलने के लिए निमन्त्रण प्राप्त हुआ। शास्त्री ने अपनी पत्नी को व्यभिचारी पेशवा के महल में भेजने से इनकार कर दिया। तैयारियाँ पूरी हो गयी थीं तथा अतिथि आ पहुँचे थे। इस प्रकार अन्तिम समय विवाह-संस्कार को छोड़ देना राज्य के अध्यक्ष का अपमान था, जिसको त्रिम्बकजी बिना बदला लिये नहीं छोड़ सकता था। उसने तथा पेशवा ने इस विषय में पूर्ण शान्ति धारण कर ली तथा अपनी दुष्ट योजना का कोई भी लक्षण प्रकट नहीं होने दिया।

पूना के दरबारी दल ने ७ मई को नासिक के लिए प्रस्थान किया। उनके साथ एल्फिस्टन, शास्त्री तथा उसका सहायक बापू मैराल थे। यात्रा में त्रिम्बकजी ने बड़ौदा के अतिथियों के प्रति अपूर्व घनिष्ठता प्रकट की। बिना किसी प्रतिकूल घटना के वे लोग नासिक पहुँच गये तथा जून का मास वहाँ साधारण नित्यक्रम में व्यतीत हो गया। जुलाई में वह एकादशी पड़ी, जब पण्ढरपुर की तीर्थयात्रा आवश्यक समझी जाती थी। बचत के विचार से प्रस्ताव किया गया कि एक छोटी-सी मण्डली ही थोड़े समय में यह यात्रा कर ले। बापू मैराल से पूना चले जाने को कहा गया। एल्फिस्टन अपनी इच्छा-नुसार आचरण करने के लिए स्वतन्त्र था। उसने इस अवसर से थोड़े समय के लिए समीपवर्ती एलौरा की गुफाओं को देखने का लाभ उठाया। जून के अन्त के समीप यह दल पृथक हो गया। बाजीराव, त्रिम्बकजी तथा शास्त्री नासिक से सीधे पण्ढरपुर गये तथा दल का अधिकांश भाग पूना चल दिया। एल्फिस्टन एलौरा चला गया।

पण्ढरपुर को जाते हुए मार्ग में बाजीराव ने अपने व्यक्तिगत रक्षक दल की संख्या बढ़ा दी तथा उनको अपने पहरे पर सतर्क रहने की चेतावनी दी। उनके पण्ढरपुर आने के कुछ समय पश्चात गोविन्दराव बन्धुजी द्वारा लिखा हुआ एक पत्र शास्त्री को प्राप्त हुआ, जिसमें चेतावनी दी गयी थी कि शास्त्री फिर बड़ौदा नहीं देख सकेगा। इस चेतावनी को जानकर शास्त्री प्रायः घर ही रहने लगा। उसके साथ सेवा करने वाले थोड़े-से व्यक्तिगत नौकर थे। एकादशी हो गयी तथा २१ जुलाई को वापसी आरम्भ होने वाली थी। २० को सायंकाल त्रिम्बकजी मन्दिर गया तथा उसने अपना क्लर्क शास्त्री के पास भेजकर अन्तिम बार ईश्वर प्रार्थना के लिए बुला लाने को कहा। उसने कहलाया—"अब यहाँ भीड़-भाड़ नहीं है। अतः मन्दिर में अवश्य आयें।" शास्त्री ने अपने सेवक के हाथ यह उत्तर भेजा—"मैं पूर्णतः स्वस्थ नहीं हूँ। अतः क्षमा करें।" इस पर त्रिम्बकजी ने वही प्रार्थना फिर भेजी और शास्त्री ने देखा कि इस प्रकार की मैत्रीपूर्ण साग्रह प्रार्थनाओं को अस्वीकार करना

सभ्यता नहीं है, अतः वह अपने घर से छोटी-सी तंग गली में होकर मन्दिर को चल दिया। उसके साथ सात निहत्थे अनुचर थे। उसने जाते समय सुना कि किसी ने प्रश्न किया—"शास्त्री कौनसा है ?" तथा दूसरे ने उत्तर दिया—"वह जो माला पहने है।" उसकी उँगली शास्त्री की ओर उठी हुई थी। शास्त्री मन्दिर में पहुँच गया। त्रिम्बकजी ने उसका स्वागत किया तथा देवता के दर्शन करने के बाद दोनों कुछ समय तक बैठे हुए बातचीत करते रहे। बाद में मन्दिर के एक वृद्ध पुरोहित ने शास्त्री से कुछ कहा और मिठाई दी। इसके बाद शास्त्री लौट पड़ा। उसके आगे-आगे त्रिम्बकजी के मार्गदर्शक थे। वह उसी गली से वापस हो रहा था जिससे आया था। अब अँधेरा हो चला था। वे कुछ ही डग बढ़े थे कि शस्त्रधारी व्यक्तियों का एक दल 'हटो-हटो' चिल्लाता हुआ उनके पीछे दौड़ता आया। उन्होंने शास्त्री के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। उसके चार अनुचर घायल होकर भाग निकले। शोर होने पर वृद्ध पुरोहित तथा शास्त्री के तीन नौकर अपने हाथों में जलती हुई मशालें तथा मिठाइयाँ लेकर आये और यह भयानक दृश्य देखा। उन्हें नंगी तलवारें लिये हुए ५ आदमी मिले जो मन्दिर की ओर दौड़े जा रहे थे। जिसने भी इस काण्ड को देखा, उसने इसका कर्त्ता त्रिम्बकजी को ठहराया। अगले दिन शास्त्री के अनुचरों ने त्रिम्बकजी से इस सम्बन्ध में खोज करने की प्रार्थना की। उसने उत्तर दिया—"अपराधियों का पता कैसे लग सकता है ? शास्त्री के अनेक शत्रु थे। बड़ौदा में सीताराम, कान्होजी गायकवाड़ तथा अन्य लोग।" अगले दिन शास्त्री की मण्डली शीघ्रतापूर्वक पूना वापस आ गयी। वहाँ आने पर उनको पेशवा का सन्देश मिला कि अब वे मुझसे मिलने न आयें। बाजीराव तथा डैंगले कुछ दिनों तक राजधानी नहीं पहुँचे। वे एकान्त में रहने लगे। उनके पास दृढ़ शरीर रक्षक थे। उन्होंने स्वयं इस काण्ड का कोई अन्वेषण नहीं किया तथा तीव्र चेतावनी प्रसारित कर दी कि कोई भी व्यक्ति इस विषय पर बातचीत न करे। इस प्रकार का वार्तालाप रोकने के लिए नगर में गुप्तचर लगा दिये गये।

७. कष्ट का दूसरा दौर : त्रिम्बकजी का समर्पण—प्राचीन प्रसिद्धि प्राप्त तीर्थस्थान में उच्चकुलीन ब्राह्मण की हत्या के समाचार से समस्त देश में व्याकुलता की धारा प्रवाहित हो गयी। एल्फिस्टन को यह समाचार २५ जुलाई को एलौरा में प्राप्त हुआ। उसने तुरन्त पेशवा को निम्नलिखित पत्र लिखा—"श्रीमन्त के दरबार में एक विदेशी राजदूत की हत्या की गयी है। आपके धर्म के एक महोत्सव के बीच में लगभग मन्दिर ही में एक ब्राह्मण के प्राण लिये गये हैं। मैं श्रीमन्त से यह गुप्त नहीं रख सकता कि इस अपराध

से सम्बन्धित व्यक्तियों को दण्ड न देने के कारण आपके शासन के विरुद्ध इस प्रकार के दोषारोपण किये गये हैं, जिनकी कल्पना नहीं की जा सकती। मैं उनको प्रकट करना अपना कर्तव्य समझता हूँ, जिससे श्रीमन्त जान लें कि आपकी प्रसिद्धि के लिए बहुत हानिकारक होने के कारण इन आरोपों का खण्डन कितना आवश्यक है। मुझे यह कहने की आज्ञा दी जाये कि जब तक त्रिम्बकजी स्वतन्त्र है, तब तक वह अपने पद के कारण ऐसे अनेक अवैध कर्म कर सकता है। वह जानबूझकर ऐसे कर्म कर सकता है, जिससे श्रीमन्त तथा ब्रिटिश सरकार के बीच क्षोभ उत्पन्न हो जाये। इसलिए डैंगले, गोविन्दराव बन्धुजी और भगवन्तराव को अविलम्ब पकड़ने के लिए उपाय करना अत्यन्त आवश्यक है। श्रीमन्त से प्रार्थना है कि ऐसे व्यक्ति के द्वारा उत्तर भेजा जाये, जिसका त्रिम्बकजी से कोई सम्बन्ध न हो।"

अब पेशवा ने स्वयं अपनी शरीर-रक्षा के लिए प्रबल प्रयत्न आरम्भ कर दिये। नवीन सेनाएँ भरती की गयीं तथा दूर-दूर से सैनिक बुलाये गये। वापसी की यात्रा में एक हजार कर्णाटकी सेनाएँ उसकी पालकी के चारों ओर थीं। एल्फिस्टन २६ जुलाई को एलौरा से चलकर ६ अगस्त को पूना पहुँच गया। त्रिम्बकजी अगले दिन वहाँ आ गया तथा पेशवा ने भी दो दिन बाद नगर में गुप्त रूप से प्रवेश किया। उसकी पालकी ढकी हुई थी तथा उसको स्वाभाविक सलामी भी नहीं दी गयी। एल्फिस्टन ने तुरन्त दृढ़ मनोवृत्ति से काम लिया तथा निर्भीकतापूर्वक सब परिस्थिति स्वयं सँभाल ली। उसने तुरन्त जोरदार रिपोर्ट लिखकर गवर्नर जनरल के पास भेज दी। इस पत्र में उसने अपने वांछित कार्य का संकेत किया तथा इस सम्बन्ध में आवश्यक अधिकारों की प्रार्थना की। पूना को वापस होते समय वह पण्ढरपुर में कुछ लोगों से मिला था। इससे उसे सर्वसाधारण के विश्वास का पता चल गया कि यह हत्या डैंगले ने की है और स्वयं बाजीराव का इसमें हाथ है। अतः एल्फिस्टन ने निश्चय किया कि यदि अन्वेषण के पश्चात उसका अपराध सिद्ध करने के लिए पर्याप्त प्रमाण प्राप्त हो गये तथा उसके कृपापात्र डैंगले को पर्याप्त दण्ड दिया जा सका तो पेशवा के लिए भी यह पर्याप्त दण्ड होगा। संकटकालीन दशा में रक्षा की दृष्टि से उसने जालना की सहायक सेना को घोड़ नदी पर लगे शिविर में जाने की आज्ञा दी तथा एक दल पूना भेज दिया।

बाजीराव तथा त्रिम्बकजी ने रेजीडेण्ट के कार्यों का छिपा हुआ आशय समझ लिया तथा वे अवश्यम्भावी प्रतीत होने वाले युद्ध की तैयारियाँ करने लगे। वे इस अपराध में उनका हाथ सिद्ध करने वाला प्रत्येक प्रमाण नष्ट

करने लगे। सारे नगर पर भयानक असमंजस तथा मौन गतिविधि छा गयी। एल्फिस्टन ने अपना कार्य अविलम्ब किया। ११ को उसने कहा कि वह पेशवा से तुरन्त मिलना चाहता है। पेशवा ने उत्तर दिया कि मैं रुग्ण हूँ। अगले दिन फिर वही प्रार्थना की गयी। बाजीराव ने कहा कि वह तीन दिन तक अपनी पुत्री की मृत्यु का शोक मनायेगा। यह लड़की जिस दिन जन्मी उसी दिन मर गयी थी। तब एल्फिस्टन ने बाजीराव के नाम व्यक्तिगत पत्र लिख कर उसके मन्त्री सदाशिव मानकेश्वर के पास भेज दिया तथा यह पत्र बाजी-राव को दे देने के लिए लिख दिया। मानकेश्वर ने उत्तर दिया कि मैं यह पत्र पेशवा को नहीं दे सकता। तब एल्फिस्टन ने यह पत्र अपने मुंशी के हाथ पेशवा के पास भेज दिया। परन्तु बाजीराव ते मुंशी से भी मिलना स्वीकार नहीं किया तथा अपने दो कार्यकर्ता रेजीडेन्सी भेजकर पूछा कि पत्र का विषय क्या है। इन कार्यकर्ताओं के सम्मुख एल्फिस्टन ने स्पष्ट कर दिया—"हमको यह सिद्ध करने के लिए प्रमाण मिल गये हैं कि हत्यारा त्रिम्बकजी है। वह अन्वेषण के लिए अविलम्ब हमारे सुपुर्द कर दिया जाये। स्वयं पेशवा के विरुद्ध हमें कुछ नहीं कहना है। परन्तु यदि वह त्रिम्बकजी को कानून से बचाना चाहेगा तो वह भी हत्या के प्रति उत्तरदायी समझा जायेगा।" इस पर १५ अगस्त को बाजीराव ने पत्र स्वीकार कर लिया, जिसमें एल्फिस्टन ने समस्त काण्ड का स्पष्ट वर्णन किया था। पत्र में यह भी लिखा था—"आप ब्राह्मण हैं तथा एक ब्राह्मण राज्य के प्रधान हैं। एक ब्राह्मण की स्पष्ट हत्या हुई है जो बिना खोज के नहीं छोड़ी जा सकती—यह आप भी मानेंगे। मुझे भय है कि आपके पास तथ्य वास्तविक रूप में नहीं पहुँचे हैं। अतः मैं उन्हें आपके समक्ष उपस्थित करने के लिए विवश हूँ। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इस हत्या का उत्तरदायी त्रिम्बकजी है। जनसाधारण का भी यही विचार है। अनेक दिन व्यतीत हो गये हैं तथा यह विचित्र बात है कि इस विषय में आपने अब तक न अन्वेषण आरम्भ किया है और न अपराधियों को अब तक पकड़ा है जबकि मैंने अन्वेषण की माँग बार-बार रखी है। इस कार्य की ओर त्रिम्बकजी भी ध्यान नहीं देता है। मेरे पास यह स्पष्ट करने का पर्याप्त प्रमाण है कि वही मुख्य अपराधी है। अतः मैं कहता हूँ कि आप अविलम्ब त्रिम्बकजी, गोविन्दराव बन्धुजी और भगवन्तराव गायकवाड़ को पकड़ लें। यदि आप इस प्रकार का कोई उपाय करने से इनकार करेंगे तो परिणामों के लिए उत्तरदायी होंगे। मैं आपको यह अन्तिम चेतावनी देता हूँ।"

शास्त्री की हत्या की योजना बाजीराव ने आरम्भ की हो या नहीं, पर

यह स्पष्ट है कि उस पर त्रिम्बकजी द्वारा योजना बनाते समय उसे रोकने का उपाय न करने का आरोप लगाया जा सकता था। पेशवा यह सोचकर उदासीन रहा कि इसमें मेरा कोई हाथ नहीं है। उपलब्ध प्रमाण से यह स्पष्ट है कि हत्या का षड्यन्त्र शास्त्री के शत्रुओं ने बड़ौदा में रचा और उस राज्य के ब्रिटिश विरोधी व्यक्तियों ने इसको सहायता दी, क्योंकि उनके विचार में शास्त्री राज्य का नाश कर रहा था। योजना पूना पहुँची तथा त्रिम्बकजी और बड़ौदा के दोनों कार्यकर्ताओं ने इसे कार्यान्वित किया। बाजीराव की इच्छा थी कि वह बड़ौदा राज्य पर अपने आधिपत्य का प्रतिपादन करे। वह शास्त्री को इस कार्य में मुख्य बाधा समझता था। बाजीराव ने डैंगले को पकड़ने या उसको कारागार में डालने का कोई उपाय नहीं किया। इसके विपरीत वह पूना में ठहरे हुए बापू मैराल तथा शास्त्री के दल पर अत्याचार करने लगा। रेजीडेण्ट ने उनकी रक्षा की तथा उन्हें विषम आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए धन भी दिया। त्रिम्बकजी ने घूस देकर उनमें से कुछ को पथभ्रष्ट करना चाहा। उसने पूना के समीप सेनाएँ एकत्र कर लीं। इस पर एल्फिस्टन ने आपत्ति की। उसने बाजीराव से इन सेनाओं हो हटा देने के लिए कहा तथा आज्ञापालन न होने की दशा में समस्त सहायक सेना नगर में बुला लेने की धमकी दी।

बाजीराव ने टालने वाला उत्तर दिया। उसने डैंगले को भ्रमण करने तथा ब्रिटिश हितों को हानि पहुँचाने वाला विद्रोह फैलाने की अनुमति दे दी। एल्फिस्टन ने इन सब चालों को समझ लिया तथा वीरतापूर्वक सामना करने के लिए तैयार हो गया। उसने निजाम की सेनाओं को जालना बुला लिया तथा त्रिम्बकजी का सामना करने और पकड़ने के लिए कर्नल स्मिथ को नियुक्त कर दिया। इस प्रकार अगस्त १८१५ का मास व्यतीत हो गया। गवर्नर जनरल के निर्देश पहुँच जाने से एल्फिस्टन के हाथ मजबूत हो गये थे। इन निर्देशों में उसके द्वारा इस विषम परिस्थिति में अपनाये गये तात्कालिक तथा शक्तिशाली उपायों की प्रशंसा की गयी थी। गवर्नर जनरल ने बाजीराव को भी लिखा और आज्ञा दी कि वह हत्या का पूर्ण अन्वेषण करे तथा रेजीडेण्ट को उसके कार्य में सहायता दे। गवर्नर जनरल ने पेशवा को आश्वासन दिया कि यदि त्रिम्बकजी अपराधी सिद्ध हो जायेगा तब भी उसको मृत्युदण्ड नहीं दिया जायेगा। पेशवा को यह गम्भीर चेतावनी भी दी गयी कि यदि उसने अपना कर्तव्य-पालन नहीं किया और त्रिम्बकजी को कानून के पंजे से बचाना चाहा तो इसके गम्भीर परिणाम होंगे। इसी समय गवर्नर

जनरल ने रेजीडेण्ट को बाजीराव के साथ अपना समस्त पत्र-व्यवहार बन्द करने तथा त्रिम्बकजी को न भागने देने की आज्ञा दी।

७ दिसम्बर को एल्फिस्टन ने बाजीराव को गवर्नर जनरल का पत्र दे दिया तथा चौबीस घण्टे के अन्दर त्रिम्बकजी को समर्पित करने की माँग उसके सामने रखी। ५ सितम्बर को पेशवा ने रेजीडेण्ट को सूचित किया—"मैं स्वयं त्रिम्बकजी को अपनी नजरबन्दी में रखे हुए हूँ। आप उसके समर्पण की माँग न करें।" एल्फिस्टन ने उत्तर दिया—"पहले मेरे पास सूचना आनी चाहिए कि त्रिम्बकजी निरोध में है। तब हम आगामी कार्य करेंगे।" ५ सितम्बर को बाजीराव ने त्रिम्बकजी को कठोर कारावास के लिए वसन्तगढ़ भेज दिया तथा इसकी सूचना रेजीडेण्ट को दे दी। तब रेजीडेण्ट ने कहा—"इससे प्रश्न हल नहीं होता। यह आश्वासन कौन देगा कि त्रिम्बकजी कैद में है। वह भाग सकता है तथा परेशानी पैदा कर सकता है। अतः उसको रेजीडेण्ट की रक्षा में समर्पित कर देना चाहिए। यदि आप इससे सहमत हैं तो यह काण्ड यहीं समाप्त हो जायेगा तथा ब्रिटिश सरकार के साथ आपके सम्बन्ध यथापूर्व बने रहेंगे। अन्यथा मैं आपके हित में हानिकारक सिद्ध होने वाले उपाय कार्यान्वित करने को विवश हो जाऊँगा।"

वास्तव में पेशवा द्वारा सूचित त्रिम्बकजी की कैद नाममात्र की थी। इसके पश्चात शीघ्र ही बाजीराव वाई गया और नवीन सेनाएँ भरती करने लगा। एल्फिस्टन ने शिरूर से सहायक सेना बुला ली तथा निम्नलिखित सन्देश द्वारा बाजीराव को चेतावनी दी—"अब भी आप त्रिम्बकजी को समर्पित करके इस काण्ड को समाप्त कर दें। शास्त्री परिवार को कुछ निष्कृति देने के अतिरिक्त आपको और कोई कष्ट नहीं दिया जायेगा। यदि आप आज्ञापालन न करेंगे और पूना छोड़ देंगे तो आप परिणामों के लिए तैयार रहें।" यह कठोर सन्देश पाकर बाजीराव ने कर्नल फोर्ड को बुलाकर उससे परामर्श माँगा। फोर्ड ने उत्तर दिया—"बचने का केवल एक मार्ग है कि त्रिम्बकजी का समर्पण कर दिया जाये।" तब बाजीराव ने फोर्ड से कहा—"आप जाकर रेजीडेण्ट को यह सूचना दे दीजिए कि पेशवा शीघ्र ही आज्ञापालन करेगा।" ११ सितम्बर को कैप्टिन हिक्स ८५० सैनिकों सहित वसन्तगढ़ भेजा गया। १९ सितम्बर को उसने त्रिम्बकजी को अपनी रक्षा में ले लिया। गोविन्दराव बन्धुजी तथा भगवन्तराव गायकवाड़ भी उसी प्रकार २५ सितम्बर को समर्पित कर दिये गये। २६ सितम्बर को वे सब कठोर निरोध के लिए थाना के गढ़ में भेज दिये गये।

इस हत्या से केवल बड़ौदा राज्य को लाभ हुआ। पेशवा की ओर गायकवाड़

का ऋण सर्वथा समाप्त कर दिया गया। बड़ौदा में ब्रिटिश हस्तक्षेप का प्रतिकार करने के सम्बन्ध में सीताराम की योजना पूरी तरह असफल हो गयी तथा वह कुछ समय के लिए बम्बई में बन्दी कर दिया गया।[५] शास्त्री के पुत्र को बड़ौदा में उच्च पद दिया गया। गोविन्दराव बन्धुजी तथा भगवन्तराव शासनकर्ता गायकवाड़ के सुपुर्द कर दिये गये। बापू मैराल का किसी रोग के कारण पूना में देहान्त हो गया।

---

५ बाद में सयाजीराव द्वितीय ने १८१९ में सीताराम रावजी को बड़ौदा में दीवान के पद पर नियुक्त कर दिया। सीताराम का देहान्त १८२३ में हुआ।

अध्याय १६

तिथिक्रम

१८०७	शिन्दे तथा भोंसले द्वारा भोपाल पर आक्रमण।
१८०९	मीरखाँ का नागपुर पर आक्रमण।
१८१३-१४	शिन्दे तथा भोंसले द्वारा भोपाल का घेरा।
२९ अक्तूबर, १८१४	भोपाल के नवाब द्वारा ब्रिटिश मैत्री स्वीकृत।
मार्च, १८१६	नेपाल युद्ध समाप्त।
२२ मार्च, १८१६	रघुजी भोंसले द्वितीय की मृत्यु।
२७ अप्रैल, १८१६	अप्पा साहेब भोंसले द्वारा ब्रिटिश मैत्री स्वीकृत।
१२ सितम्बर, १८१६	त्रिम्बकजी डेंगले का थाना से पलायन।
१ जनवरी, १८१७	पर्सोजी भोंसले की मृत्यु।
फरवरी, १८१७	त्रिम्बकजी सतारा के समीप प्रकट।
१३ जून, १८१७	पेशवा पर नवीन सन्धि लागू।
जुलाई-सितम्बर, १८१७	बाजीराव माहुली में।
९ अगस्त, १८१७	माल्कम का बाजीराव के पास आना।
१६ अगस्त, १८१७	पिण्डारियों के विरुद्ध ब्रिटिश अभियान आरम्भ।
५ नवम्बर, १८१७	शिन्दे द्वारा अंग्रेजों के साथ नयी सन्धि पर हस्ताक्षर तथा किरकी का रण।
१५ नवम्बर, १८१७	यखड़ा का रण।
१६ नवम्बर, १८१७	बाजीराव का पूना से पलायन।
१७ नवम्बर, १८१७	पेशवा के महल पर ब्रिटिश ध्वज फहराया।
२६ नवम्बर, १८१७	अप्पा साहेब द्वारा ब्रिटिश रेजीडेन्सी पर आक्रमण।
१४ दिसम्बर, १८१७	सतारा का राजा बाजीराव के साथ।
१७ दिसम्बर, १८१७	पिण्डारी शाहाबाद में परास्त।
२० दिसम्बर, १८१७	तुलसीबाई होल्कर की हत्या।
२१ दिसम्बर, १८१७	महीदपुर का रण।
६ जनवरी, १८१८	होल्कर के साथ महीदपुर की सन्धि।
६ जनवरी, १८१८	कोड़ेगाँव का रण।
३ फरवरी, १८१८	नामदारखाँ पिण्डारी द्वारा अधीनता स्वीकार।
२१ फरवरी, १८१८	बाजीराव के विरुद्ध ब्रिटिश घोषणा।

१५ फरवरी, १८१८	करीमखाँ पिण्डारी द्वारा अधीनता स्वीकार।
१६ फरवरी, १८१८	अष्टा का रण; बापू गोखले का वध; सतारा का राजा अंग्रेजों के हाथ में।
१८ मार्च, १८१८	अप्पा साहेब बन्दी।
मार्च, १८१८	चीतू पिण्डारी का चीते द्वारा वध।
१२ मई, १८१८	अप्पा साहेब का हिरासत से भाग निकलना—आशिर्गढ़ में शरण प्राप्त।
मई, १८१८	बाजीराव नर्मदा के समीप धूलकोट में।
१७ मई, १८१८	बाजीराव के कार्यकर्ताओं की मालकम से भेंट।
३१ मई, १८१८	मालकम का बाजीराव से मिलना।
३ जून, १८१८	बाजीराव द्वारा मालकम के प्रति आत्मसमर्पण।
१२ जून, १८१८	बाजीराव द्वारा उत्तर की यात्रा आरम्भ।
१६ जून, १८१८	रघुजी भोंसले तृतीय नागपुर में प्रतिष्ठापित।
फरवरी, १८१९	बाजीराव का बिठूर पहुँचना।
६ अप्रैल, १८१९	आशिर्गढ़ हस्तगत—अप्पा साहेब का पलायन।
१८२६	अप्पा साहेब को जोधपुर में आश्रय प्राप्त।
१५ जुलाई, १८४०	अप्पा साहेब की मृत्यु।
२८ जनवरी, १८५१	बाजीराव द्वितीय की मृत्यु।

अध्याय १६

अन्तिम प्रयास

[१८१७–१८१८ ई०]

१. त्रिम्बकजी का अद्भुत पलायन । २. बाजीराव पर नवीन सन्धि लागू । ३. नागपुर का अप्पा साहेब । ४. पिण्डारी लोग तथा उनके कार्य । ५. पिण्डारियों का विनाश । ६. होल्कर की सत्ता नष्ट । ७. पेशवा द्वारा युद्ध । ८. पेशवा का पलायन । ९. ब्रिटिश घोषणा—बाजीराव के कष्ट । १०. माल्कम के प्रति पेशवा का आत्मसमर्पण ।

१. त्रिम्बकजी का अद्भुत पलायन—गवर्नर जनरल ने त्रिम्बकजी को थाना के गढ़ में बन्दी रखने तथा उस पर सर्वथा यूरोप-निवासियों का पहरा लगा देने की आज्ञा दी । एल्फिस्टन ने इस प्रबन्ध के विरुद्ध अपनी आपत्ति लिख भेजी । उसने कहा कि थाना इतना समीप है कि वहाँ रहकर बन्दी को दुष्टता करने की पर्याप्त सुविधाएँ मिल सकती हैं । यह बात सत्य सिद्ध हो गयी । बन्दी ने अपनी परिस्थिति से पूर्ण लाभ उथाया तथा अंग्रेजों द्वारा पकड़े जाने के लगभग १ वर्ष बाद १२ सितम्बर, १८१६ को सायंकाल भाग निकला । इस प्रकार उसने अपने बन्धनकर्ताओं को चकित कर दिया ।

त्रिम्बकजी के सब के सब पहरेदार यूरोप-निवासी थे तथा मराठी भाषा नहीं जानते थे । बन्दी के साथ सज्जनता का व्यवहार किया जाता था । उसके रहने का कमरा मकान की दूसरी मंजिल पर था । नीचे घुड़साल थी । बाजीराव ने एक चतुर मराठा सईस को चुनकर एक इंगिलश अधिकारी के पास नौकर रखवा दिया । सईस लोग घोड़ों को मलते समय प्रायः कुछ गीत गाया करते हैं । नीचे की मंजिल वाली घुड़साल में सईस का कार्य करने वाले इस विशेष व्यक्ति ने अपने गीतों द्वारा ऊपर के बन्दी को घुड़साल के पीछे एक पुरानी टूटी-फूटी दीवार से होकर भागने का मार्ग बताया । बाजीराव ने घोड़ों का प्रबन्ध कर लिया था । सम्भव है त्रिम्बकजी ने योजना को समझकर इसी प्रकार उत्तर दिया हो । इस सीधे-सादे दीखने वाले खेल में यूरोपीय पहरेदारों

को किसी दुष्टता का सन्देह नहीं हुआ।[1] १२ सितम्बर, १८१६ को सायंकाल डैंगले तथा सईस अन्धकार में भाग निकले और जंगलों को पार करके खानदेश पहुँच गये। ये लोग कुछ महीनों तक उस क्षेत्र के जंगली मनुष्यों के साथ रहते रहे। कुछ समय बाद त्रिम्बकजी दक्षिण की ओर हट आया तथा सतारा में पूर्व महादेव की पहाड़ियों में शरण ली। बाजीराव ने वहाँ गुप्त रूप से उसकी सहायता की।

इस समय पेशवा ने रेजीडेण्ट के प्रति अपने व्यवहार में इस प्रकार का मधुर स्वर तथा दीनभाव धारण कर लिया कि उसने प्रभावित होकर बाजीराव के व्यवहार के विषय में अत्यन्त अनुकूल वृत्तान्त भेजे तथा उसको सूचित किया—"जनरल आपके इस परिवर्तन की बहुत प्रशंसा करता है।" यह समय १८१७ का आरम्भ था तथा ब्रिटिश सरकार पिण्डारियों के विरुद्ध तीव्र वेग से युद्ध की तैयारियाँ कर रही थी। इस सम्बन्ध में पेशवा ने कई उपयोगी सुझाव दिये जिससे वह रेजीडेण्ट के धन्यवाद का पात्र हो गया। एल्फिस्टन को यह सन्देह कभी नहीं हुआ कि उसके साथ बहुत बड़ा कपटाचरण किया जा रहा है।

फरवरी, १८१७ में एल्फिस्टन को पता लगा कि नीरा नदी के क्षेत्र में त्रिम्बकजी प्रकट हो गया है। तब उसने बाजीराव से उसे पकड़वाने को कहा। उस समय दक्षिण में होने वाली विविध हलचलों तथा उपद्रवों के समाचार रेजीडेण्ट के पास पहुँचते रहते थे। एल्फिस्टन की प्रार्थना पर बाजीराव ने बापू गोखले को आज्ञा दी कि वह सेना लेकर जाये तथा विद्रोही त्रिम्बकजी को पकड़ लाये। गोखले यह समाचार लेकर वापस लौट आया कि कहीं पर हलचल नहीं है, सर्वत्र शान्ति विराजमान है। इसके विपरीत रेजीडेण्ट को यह सूचना मिली कि हिन्दुओं के नव वर्ष दिवस (१८ मार्च) को त्रिम्बकजी विद्रोह का झण्डा खड़ा करने वाला है। जब बाजीराव ने एल्फिस्टन को गोखले द्वारा लाये गये सर्वत्र शान्ति के समाचार भेजे तो रेजीडेण्ट ने स्पष्ट कह दिया कि यह समाचार निराधार है। तब बाजीराव ने विद्रोही का पीछा करने के लिए स्वयं जाने का प्रस्ताव किया। रेजीडेण्ट ये यह प्रस्ताव स्वीकार करने से

---

[1] बिशप हिबर ने अपने जर्नल में इस गीत का पद्यानुवाद किया है: जिल्द २, पृ० ८। उसका हिन्दी गद्यानुवाद यह है—"धनुर्धर झाड़ी के पीछे छिपे हुए हैं, घोड़ा पेड़ के नीचे है। ऐसा वीर मुझको कहाँ मिलेगा जो जंगल-जंगल मेरे साथ घूमता फिरे। वहाँ ५५ घोड़े तथा ५४ आदमी तैयार खड़े हैं। जब ५५वाँ व्यक्ति अपने घोड़े पर चढ़ लेगा, तब दक्षिण फिर समृद्ध हो जायेगा।"

इनकार कर दिया तथा १५ मार्च को कर्नल स्मिथ को आज्ञा दी कि वह अपने दल सहित पूना के लिए कूच करे। उसने गवर्नर जनरल से बाजीराव के साथ युद्ध आरम्भ करने का अधिकार माँगा, क्योंकि उसकी सम्मति में बाजीराव के साथ अधिक दिनों तक शान्ति नहीं रखी जा सकती थी।

२. **बाजीराव पर नवीन सन्धि लागू**—पेशवा ने भी तीव्रगति से युद्ध की तैयारियाँ आरम्भ कर दीं तथा अपना धन एवं बहुमूल्य वस्तुएँ सुरक्षा के निमित्त रायगढ़ भेज दीं। १ अप्रैल को एल्फिस्टन ने धमकी भरा पत्र लिखा कि वह डैंगले को पकड़कर उसका समर्पण नहीं करेगा तो उसके विरुद्ध तुरन्त युद्ध आरम्भ कर दिया जायेगा। ६ अप्रैल को पेशवा ने व्यक्तिगत स्पष्टीकरण के लिए रेजीडेण्ट को अपने महल में बुलाया तथा कपटपूर्ण वाग्वैदग्ध्य के साथ धाराप्रवाह रूप में अपने मन की बात कही। इस प्रकार पेशवा ने अपने को निर्दोष तथा असहाय प्रदर्शित करना चाहा। परन्तु एल्फिस्टन न इतना कोमल हृदय था, न सीधा-सादा कि बाजीराव की करुणामय याचना का प्रभाव उस पर पड़ता या छल-कपट के कारण वह पथभ्रष्ट हो जाता। पेशवा का भाषण समाप्त होने पर, एल्फिस्टन ने अपना कठोर निश्चय पुनः दोहराया कि उसको एक मास का समय दिया जायेगा, जिसके भीतर वह त्रिम्बकजी को पकड़ ले। असफलता की सम्भावना न रहने के लिए रायगढ़, पुरन्दर, सिंहगढ़ तथा त्रिम्बक के चार मुख्य गढ़ों को चोबीस घण्टे के अन्दर प्रतिभू रूप में अंग्रेजों को समर्पित कर दे। यह धमकी बाजीराव के हृदय में चुभ गयी। फिर भी उसने इसे शान्तिपूर्वक सह लेने का बहाना किया। इस धमकी को कार्यान्वित करने के लिए एल्फिस्टन की सेनाएँ नगर घेरने के लिए अपने शिविर से चल पड़ीं। इस पर बाजीराव अत्यन्त भयभीत हो गया तथा १० बजे प्रातः उसने एल्फिस्टन के हाथों में चारों गढ़ों के समर्पण की आज्ञा रख दी। स्पष्ट था कि ऐसा करते हुए उसे कठोर वेदना हो रही थी। बाद में डैंगले के समर्पण के सम्बन्ध में वार्तालाप हुआ तथा गरम-ठण्डे आवेशों के बीच बहुत इधर-उधर करने के बाद कातर पेशवा ने त्रिम्बकजी के पकड़ने के लिए निम्नलिखित घोषणा प्रकाशित की[२]:

"त्रिम्बकजी डैंगले माननीय ब्रिटिश सरकार की हिरासत स भाग निकला है तथा उसने विद्रोह आरम्भ कर दिया है। जो कोई भी उसको पकड़ लेगा तथा जीवित या मृतक के रूप में लायेगा, उसको एक लाख नकद रुपये का पुरस्कार दिया जायेगा। साथ ही पेशवा की सरकार पकड़ने वाले व्यक्ति को एक हजार रुपये की आय वाला गाँव इनाम में देगी। उसका ठीक पता बताने

---

२ ऐतिहासिक टिप्पणियाँ, जिल्द ४, २३

वाले को भी ५ हजार रुपये का नकद इनाम मिलेगा। जो जानबूझकर समाचार को छिपा लेंगे, उनको कठोर दण्ड दिया जायेगा।" इसमें डैंगले के १२ सहायकों के नामों का भी उल्लेख है।[३]

पहले ही संकेत दिया जा चुका है कि इस समय एक विशाल भारतीय षड्यन्त्र का संगठन हो रहा था तथा मराठा राज्य के प्रधान के नाते बाजीराव पर इसका नेतृत्व स्वीकार करने के लिए अनेक दिशाओं से दबाव डाला जा रहा था। बाजीराव का विश्वासपात्र बालोजी कुंजर इस कार्य में सिद्धि प्राप्त करने के लिए इन दिनों अत्यन्त क्रियाशील था। एल्फिस्टन शान्तिपूर्वक इन योजनाओं का अवलोकन कर रहा था। वह बाजीराव को उनसे दूर रखने का यथाशक्ति प्रयत्न कर रहा था। इसका परिणाम यह हुआ कि अन्त में समस्त ब्रिटिश विरोधी आन्दोलन समाप्त हो गये। ब्रिटिश कूटनीति का समर्थन पर्याप्त बल द्वारा किया गया तथा भारतीय दरबारों में समस्त ब्रिटिश कार्यकर्ताओं ने सुसंगठित रूप से यथासमय उपाय किये। ये उन प्राचीन गुप्त उपायों की अपेक्षा अन्त में अति प्रबल सिद्ध हुए, जिनका उपयोग साधारणतः भारतीय करते थे जो कि हास्यास्पद लगते हैं। उदाहरणार्थ, भारतीय शासकों ने उस समय गुप्त लिपि में लिखे हुए पत्र स्वतन्त्रतापूर्वक भेजे। इनमें से कुछ को एल्फिस्टन के गुप्तचरों ने पकड़ लिया।[४]

वसई की सन्धि के समय में स्थिति में सर्वथा परिवर्तन हो गया था। अतः पुरानी शर्तें अब कार्यक्षम नहीं रह गयी थीं। एल्फिस्टन ने पेशवा के साथ नवीन सन्धि करने के लिए गवर्नर जनरल से आज्ञा प्राप्त कर ली। १ जून १८१७ को एल्फिस्टन ने यह सन्धि स्वीकृत होने के लिए पेशवा की सेवा में उपस्थित की। वार्तालाप तथा संकोच प्रदर्शन के पश्चात पेशवा ने १३ जून

---

३ जान ब्रिग्स कृत—'संस्मरण', पृ० ४४-४५

४ एल्फिस्टन को अपनी सेवा में शक्तिशाली गुप्तचर रखने की अनुमति प्राप्त थी। इस कार्य के लिए विपुल धन उसकी इच्छा पर छोड़ दिया गया था, जिसकी कोई जाँच नहीं होती थी। अपने भारतीय कार्यकर्ताओं को उसने उदारतापूर्वक धन दिया तथा उनसे महत्त्वशाली सूचनाएँ प्राप्त कीं। उसके गुप्तचरों में से कुछ प्रसिद्ध व्यक्तियों के नाम स्थानीय स्मृति में अब तक जीवित हैं—जैसे बालाजी पन्त नाटू, गणेश पन्त, सतारा के चिटनिस परिवार के व्यक्ति, बापू भट्ट आदि। स्वयं पेशवा के कुछ अधिकारी तथा कुछ निकट सेवक भी रेजीडेण्ट से गुप्त वेतन पाते थे। वास्तव में उस समय शायद ही कोई ऐसा भारतीय शासक था जो ब्रिटिश धन के लोभ में नहीं फँस गया हो।

को इस पर हस्ताक्षर कर दिये। इस सन्धि-पत्र द्वारा त्रिम्बकजी शास्त्री का हत्यारा घोषित कर दिया गया, भारतीय शासकों पर पेशवा का आधिपत्य अन्तिम रूप से समाप्त हो गया, महाराष्ट्र के बाहर पेशवा के समस्त प्रदेश ब्रिटिश सरकार को मिल गये, वह विदेशी दरबारों से अपने वकील वापस बुलाने के लिए विवश किया गया तथा अब वह उनके साथ पत्र-व्यवहार या दूतों का आदान-प्रदान करने से भी रोक दिया गया। इस प्रकार मराठा संघ अन्तिम तथा सार्वजनिक रूप से भंग कर दिया गया।[५] ये शर्तें निश्चित रूप से कठोर थीं तथा निश्चय था कि उनका फल बुरा होगा।

३. **नागपुर का अप्पा साहेब**—इस प्रकार की नवीन सन्धि ऊपर थोपे जाने से पेशवा कुपित हो गया तथा विवश होकर युद्ध के समीप पहुँच गया। इस युद्ध से दो अन्य युद्धों अर्थात नागपुर के राजा से युद्ध तथा पिण्डारियों से युद्ध का निकट सम्बन्ध है। होल्कर की सेना का नाश पिण्डारियों के युद्ध के अन्तर्गत ही है।

१८०३ के युद्ध के दुखद अनुभव के बाद रघुजी भोंसले मराठा संघ के समस्त राजनीतिक कार्यों की ओर विरक्ति धारण किये हुए था। वह अपना ध्यान अपने प्रदेश नागपुर की रक्षा पर ही सीमित रखता था। ब्रिटिश सरकार ने सहायक सन्धियों की व्यवस्था में सम्मिलित होने के लिए उस पर बार-बार दबाव डाला, परन्तु इस प्रकार की सन्धि को स्वीकार करने से वह दृढ़तापूर्वक इनकार करता रहा था। जब यशवन्तराव होल्कर ने उससे अंग्रेजों के विरुद्ध सहयोग की प्रार्थना की, तब भी उसने उसका साथ देने से इनकार कर दिया। कुछ समय तक वह दौलतराव शिन्दे के साथ मैत्री बनाये रहा। जब कार्नवालिस ने लार्ड वेलेजली की नीति उलट दी तथा भारतीय शासकों के कार्यों में हस्तक्षेप न करने की घोषणा कर दी तो रघुजी तथा दौलतराव ने १८०७ में भोपाल के नवाब पर दबाव डाला कि वह होशंगाबाद तथा शिवनी के अपने दो जिले छोड़ दे। ये जिले पहले भोंसले के थे। बाद में नवाब ने इनको छीन लिया था। मराठों की निगाह में नवाब नवोदित शक्ति था, जिसने अंग्रेजों के समर्थन से मालवा के एक भाग पर अधिकार कर लिया था। इस भाग पर पूर्णरूप से मराठों का न्यायसंगत अधिकार था।

१८०९ में होल्कर के सहायक मीरखाँ ने भोपाल के नवाब के सहयोग से नागपुर पर आक्रमण की धमकी दी, परन्तु रघुजी ने वीरतापूर्वक उनका सामना

५ 'पेशवाओं का अन्त' नामक क्रमबद्ध मराठी इतिहास है; पृ० १७६-१७६ में यह सन्धि विस्तार से दी हुई है। देखो—कालब्रुँक, जिल्द १, पृ० ३०६। लार्ड हेस्टिंग्ज की व्यक्तिगत वार्ता, पृ० २९०

करके पीछे हटने पर विवश कर दिया। इस अवसर पर गवर्नर जनरल लार्ड मिण्टो ने कर्नल क्लोज के अधीन एक ब्रिटिश सेना रघुजी की सहायतार्थ भेजी थी। उसने यह संकेत भी दिया कि रघुजी को अपने ही हित में उस सेना को स्थायी रूप से अपनी सेवा में रख लेना चाहिए। धन्यवाद देने के स्थान पर रघुजी ने यह कार्य अस्वीकार कर दिया। इसके बाद १८१३-१४ में शिन्दे तथा होल्कर ने मिलकर भोपाल पर आक्रमण किया तथा उस स्थान को घेर लिया। नवाब वजीर मुहम्मदखाँ ने इतनी वीरतापूर्वक नगर की रक्षा की कि आक्रान्ताओं को हताश होकर वहाँ से भागना पड़ा।[६]

१८१४ में नेपाल का युद्ध आरम्भ होने पर समस्त भारत में अत्यन्त अशान्ति की लहर दौड़ गयी। सुरक्षात्मक उपाय के रूप में ब्रिटिश सरकार ने भारतीय शासकों के साथ नवीन सन्धियाँ करने का प्रयत्न किया। इस प्रकार की एक सन्धि उन्होंने भोपाल के नवाब के साथ कर भी ली। (२६ अक्तूबर १८१४)। अब इस सन्धि द्वारा नवाब शिन्दे के प्रति निष्ठा रखने से मुक्त हो गया। मार्च १८१६ में नेपाल का युद्ध समाप्त हो गया। इस मास रघुजी भोंसले का देहान्त हो गया (२२ मार्च)। अब नागपुर में ब्रिटिश प्रवेश को सुविधा हो गयी जिसका उसने बहुत दिनों तक प्रतिकार किया था।

पर्सोजी बाला साहेब नामक रघुजी का एक वयस्क पुत्र था। उस समय उसकी आयु ३८ वर्ष की थी, परन्तु वह पक्षाघात का रोगी था। वह लगभग अन्धा होने के कारण राज्यकार्य करने में सर्वथा अयोग्य था। रघुजी के भाई व्यंकोजी मन्या बापू के मुधोजी अप्पा साहेब नामक पुत्र था। उस समय उसकी आयु २० वर्ष की थी तथा वह सभी दृष्टियों से अपने परिवार का योग्य सदस्य था, परन्तु भूतपूर्व रघुजी ने उसके साथ कभी कृपा का व्यवहार नहीं किया था। मृत्यु-शैय्या पर पड़े हुए रघुजी ने उसको बुलाकर आज्ञा दी कि वह पर्सोजी का ध्यान रखे तथा अपने परिवार के गौरव को सुरक्षित रखे। इस परिस्थिति से स्वार्थ पर लोगों को सुविधाएँ प्राप्त हो गयीं तथा उन्होंने नवीन प्रवृत्तियाँ आरम्भ कर दीं। ब्रिटिश रेजीडेण्ट जेंकिन्स भी शक्ति प्राप्त पुरुष था। उसने नागपुर प्रशासन में परिवर्तनों को वहाँ पर बलपूर्वक ब्रिटिश सहायक सेना नियुक्त करने की दृष्टि से देखा। उसने मुधोजी अप्पा साहेब को सहायक सन्धि स्वीकार करने पर राजी कर लिया तथा २७ अप्रैल, १८१६ को रात्रि के समय गुप्त रूप से इस सन्धि पर हस्ताक्षर करा लिये। वैसे उत्तरदायी सरकारी नौकरों की सामान्य सम्मति इसके विरुद्ध थी। उचित समय पर गवर्नर जनरल

---

६ पूना रेजीडेन्सी कॉरस्पौण्डेन्स, जिल्द ५

ने अप्पा साहेब द्वारा हस्ताक्षर की हुई सन्धि प्रकाशित कर दी तथा अप्पा साहेब को वीरतापूर्ण उचित कार्य के लिए बधाई दी। शर्तों की पूर्ति के रूप में कर्नल डवटन अपनी सेनाएँ लेकर नागपुर पहुँच गया। पर्सोजी की माता बाँका बाई तथा पत्नी काशीबाई और कुछ प्रमुख अधिकारियों को इस व्यवस्था से घृणा थी। वे सब अप्पा साहेब पर क्रुद्ध हो गये, क्योंकि उसने अपनी व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा को तृप्त करने के लिए राज्य के स्वातन्त्र्य का बलिदान कर दिया था। परिणामस्वरूप सर्वत्र षड्यन्त्र तथा परेशानी फैल गयी। अतः अप्पा साहेब को नागपुर में अपना जीवन इस प्रकार संकटग्रस्त प्रतीत हुआ कि वह बाहर जाकर नगर के समीप सहायक सेना के शिविर में रहने लगा। यहाँ अप्पा साहेब ने एक षड्यन्त्र की रचना की, जिसके द्वारा पर्सोजी की हत्या हो जाये तथा शासक के समस्त अधिकार उसको प्राप्त हो जायें। १ फरवरी १८१७ को पर्सोजी अपने बिस्तर पर मरा हुआ पाया गया। जेंकिन्स ने उसकी मृत्यु के सम्बन्ध में अन्वेषण किया, परन्तु उसकी हत्या का कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिल सका। पर्सोजी की पत्नी काशीबाई चिता पर सती हो गयी। अप्पा साहेब ने अपने कार्यकर्ताओं को अपने पद के वस्त्र प्राप्त करने बाजीराव के पास पूना भेजा। बाजीराव इस समय अपने राज्य के बाहर अधिपत्य सत्ता से वंचित किया जा रहा था। अतः इस समय वह ब्रिटिश विरोधी षड्यन्त्र का संगठन कर रहा था। अप्पा साहेब अपने व्यवहार में स्पष्ट परिवर्तन दिखाने लगा। वह सहायक सन्धि द्वारा पराधीनता को हटाने की इच्छा से पेशवा के विचारों से सप्रेम सहमत हो गया तथा उसकी सहायतार्थ अत्यन्त प्रबल आश्वासन दिये। सितम्बर १८१७ के आरम्भ में उसने पिण्डारी नेता चीतू से मित्रता करली तथा पर्याप्त संख्या में नवीन सेना भरती कर ली। जब उसने सुना कि बाजीराव ने ५ नवम्बर १८१७ को पूना रेजीडेन्सी पर आक्रमण कर दिया है तो उसने भी नागपुर रेजीडेन्सी पर आक्रमण द्वारा उसी मार्ग का अनुसरण किया। बाजीराव ने उसको सेना साहब सूबा के वस्त्र तथा भूषण भेज दिये थे। उसने २४ नवम्बर को खुले दरबार में उनका स्वागत किया, यद्यपि आवासी ने इसका विरोध किया था। यह आचरण रेजीडेन्सी पर आक्रमण का स्पष्ट संकेत था। रेजीडेन्सी नागपुर के पुराने नगर के पश्चिम में करीब दो मील पर सीताबल्दी नाम के प्रसिद्ध स्थान पर दो पहाड़ियों की तलहटी में थी। अप्पा साहेब की सेना १८ हजार थी और उसके पास २६ तोपें थीं तथा ब्रिटिश सेना बहुत छोटी थी। राजा के पास अरब सैनिकों का एक दल था। उसने २६ नवम्बर को प्रातःकाल छोटी-सी ब्रिटिश सेना पर आक्रमण किया और सीताबल्दी की पहाड़ी पर अधिकार कर लिया। इसके

बाद उन्होंने नीचे की रेजीडेन्सी को घेर लिया। अंग्रेज डटे रहे, परन्तु उनका गोला-बारूद और सामान समाप्त हो गया। छोटी-सी सेना का एक चौथाई भाग मार डाला गया या परास्त कर दिया गया। परन्तु कैप्टिन फिजग्रेल्ड की वीरता द्वारा रणक्षेत्र सुरक्षित रह गया। वह बंगाल अश्वारोही दल का कमाण्डर था। उसने निर्भय होकर राजा के दल के मुख्य भाग पर आक्रमण किया और उनकी दो तोपें छीन लीं। दोपहर तक संघर्ष समाप्त हो गया। ब्रिटिश सेना पूर्णरूप से विजयी हुई। इसका सर्वाधिक श्रेय ब्रिटिश सेवा में वर्तमान भारतीय सैनिकों के साहस तथा दृढ़ता को था। शीघ्र ही समस्त दिशाओं से सहायक सेनाएँ नागपुर पहुँच गयीं तथा जेंकिन्स राजा से अपनी इच्छानुसार शर्तों पर सन्धि करने में समर्थ हो गया। उसे अपनी सेनाएँ भंग करने, अपनी तोपें अंग्रेजों को सौंपने तथा स्वयं रेजीडेन्सी में आकर रहने की आज्ञा दी गयी। अप्पा साहेब ने शर्तें मान लीं तथा १६ दिसम्बर को वह रेजीडेन्सी में पहुँच गया। इसके पहले ही राजभवन में उसकी अरब सेनाएँ परास्त हो चुकी थीं। आगामी ८ जनवरी को वह अपने पूर्व पद पर विधिपूर्वक स्थापित कर दिया गया। उसकी आत्मा पराधीन नहीं हुई थी। पेशवा इस समय पलायन कर रहा था, तथा उसने अप्पा साहेब के पास अपना साथ देने के लिए दूत भेजे थे। अप्पा साहेब के साथ गुप्त पत्र-व्यवहार प्रकट हो जाने से उसकी योजनाएँ विफल हो गयीं। १६ मार्च को अप्पा साहेब अपने राजभवन में बन्दी बना कर रेजीडेन्सी लाया गया। वहाँ पर खोज के बाद उस पर अपने चचेरे भाई की हत्या का आरोप सिद्ध कर दिया गया। यह अभियोग आज्ञार्थ गवर्नर जनरल के पास भेज दिया गया। उसने अप्पा साहेब को इलाहाबाद के गढ़ में कैद करने की आज्ञा दी। पर्सोजी की पत्नी दुर्गाबाई से पुत्र गोद लेने के लिए कहा गया। इसके लिए रघुजी की पुत्री बानूबाई के दस वर्षीय बालक बाजीबा गूजर को चुना गया। गोद लेने का संस्कार १६ जून, १८१८ को हुआ, तथा उत्तराधिकारी का नाम रघुजी बापू साहेब रखा गया। अगले दशहरे के दिन ९ अक्तूबर, १८१८ को विधिपूर्वक उसका राजतिलक किया गया और नागपुर प्रशासन को ब्रिटिश पद्धति के अनुसार पुनः संगठित कर दिया गया।

इस बीच रेजीडेन्सी में बन्दी अप्पा साहेब ने अपने सहायकों की मण्डली सहित शक्तिशाली ब्रिटिश रक्षादल के अधीन ३ मई, १८१८ को इलाहाबाद के लिए अपनी यात्रा आरम्भ कर दी। उसके पास लगभग १०० व्यक्तिगत अनुचर थे। १२ मई की रात को वे जबलपुर के समीप रायचूर नामक ग्राम में ठहरे। मार्ग में अप्पा साहेब ने अपने रक्षादल की निष्ठा भ्रष्ट कर दी थी।

उनको मराठा शासक की पतित दशा पर दया आ गयी। प्रभात से पूर्व शिविर में सर्वत्र शान्ति थी। तभी एक पहरे वाले सिपाही ने अपनी वर्दी के समान एक जोड़ी वस्त्र अप्पा साहेब को दे दिये। अप्पा साहेब उन कपड़ों को पहन कर भाग गया। दिन निकलने पर ही इस घटना का पता चल सका तथा तुरन्त भगोड़े का पीछा आरम्भ किया गया। अप्पा साहेब महादेव की पहाड़ियों के गोंड प्रदेश में चला गया। वहाँ एक गोंड सरदार ने उसे शरण दे दी। शीघ्र ही वर्षा ऋतु का आगमन हुआ तथा वे वन्य प्रदेश पीछा करने वालों के लिए अगम्य हो गये। ब्रिटिश सरकार ने अप्पा साहेब को पकड़ने के लिए घोषणाएँ प्रकाशित कीं तथा इनाम की जागीरों सहित एक एक लाख का नकद पुरस्कार प्रस्तुत किया। बाद को यह पुरस्कार दूना कर दिया गया, परन्तु कुछ भी सफलता प्राप्त न हुई। दो वर्ष तक समस्त मध्य भारतीय जंगलों की पूरी तलाशी ली गयी, परन्तु अप्पा साहेब का पता न चला। वास्तव में उसके भ्रमण नाटकीय सिद्ध हुए, क्योंकि जनता को इस मन्द भाग्य तथा दयनीय शासक के प्रति सहानुभूति थी। नागपुर तथा पूना के निकाले हुए सैनिक कुछ पिण्डारियों के साथ उसके पास एकत्र हो गये। ये पिण्डारी मैदानों से भगा दिये गये थे। इन सबने छापामार लड़ाई का आश्रय लिया, तथा अंग्रेजों की खोज से बहुत दिनों तक बचे रहे।

जब ब्रिटिश सेनाएँ गोंड प्रदेश पार करके अप्पा साहेब के पास पहुँच गयीं और उसको वहाँ से निकाल बाहर किया तो वह आशिर्गढ़ के दुर्ग को भाग गया। उस दुर्ग का रक्षक यशवन्तराव लाड शिन्दे की सेवा में था। उसने अप्पा साहेब को शरण दे दी। अंग्रेजों ने ९ अप्रैल, १८१९ को इस दुर्ग पर अधिकार कर लिया, परन्तु अप्पा साहेब पुनः भाग निकला।[७] कई वर्ष तक वह उत्तर भारत में घूमता रहा, परन्तु कहीं आश्रय स्थान न पा सका। वह लाहौर पहुँचा। उसके पीछे-पीछे ब्रिटिश सेनाएँ भी वहाँ पहुँच गयीं। वहाँ सिक्ख राजा से उसको कोई सहायता न मिल सकी। अतः वह वापस लौटकर १८२९ में जोधपुर पहुँचा। यहाँ के शासक राजा मानसिंह ने उसको शरण दी तथा भगोड़े की ओर से कोई अपकार न होने के

---

७ मालकम की सेवा में एक ब्रिटिश गुप्तचर जंगल निवासी सन्त नखी बाबा के नाम से प्रसिद्ध था। इस गुप्तचर द्वारा मालकम को मालूम हुआ कि अप्पा साहेब का विचार पंजाब जाने तथा रणजीतसिंह की शरण प्राप्त करने का है। ऐतिहासिक संग्रह साहित्य, जिल्द १, पृ० १६४; २६ मई १८१९ का पत्र।

लिए ब्रिटिश सरकार को जमानत दी। यहीं पर अप्पा साहेब ने १५ जुलाई १८४० को ४४ वर्ष की आयु में अपनी जीवन-लीला समाप्त की।

४. **पिण्डारी लोग तथा उनके कार्य**—पिण्डारियों के कार्यों से मराठा शक्ति के उदय का घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह लुटेरा अश्वारोही दल समस्त भारतीय सेनाओं को सहायता पहुँचाता था। उनका वास्तविक इतिहास शायद अभी तक नहीं लिखा गया है। उनसे सम्बन्धित ब्रिटिश वर्णनों में स्वाभाविक पक्षपात है जो उनकी अन्तिम वर्षों की प्रवृत्तियों के कारण उत्पन्न हो गया था। इन प्रवृत्तियों के कारण यह विचार दृढ़ हो गया कि पिण्डारी समाज के शत्रु हैं तथा इस प्रकार के जघन्य एवं हानिकारक प्राणियों का सर्वनाश होना ही चाहिए। एक समय वे मराठों द्वारा विकसित युद्ध-प्रणाली के सुलभ आवश्यक अंग थे। शिवाजी तथा सन्ताजी घोरपड़े के समय से इस शैली के अन्तर्गत अवेतनभोगी सहायकों का एक वर्ग विशेष होता था, जिसका सम्बन्ध प्रत्येक शासक की निश्चित सेना से रहता था। इस दल का कर्तव्य रण समाप्त होने पर युद्धस्थल में प्रवेश करना होता था। ये शत्रु की सम्पत्ति तथा शिविर सज्जा पर अधिकार करके उसकी पुनरुत्थान शक्ति को नष्ट कर देते थे और इस प्रकार शत्रु पूर्णतया समाप्त हो जाता था। इनको नियमानुसार वेतन नहीं मिलता था। इनसे अपेक्षा की जाती थी कि ये शत्रु प्रदेश की लूटमार करके अपना निर्वाह कर लेंगे। मुगल सामाज्य के पतनोन्मुख काल, विशेषकर औरंगजेब के शासनकाल के अन्तिम वर्षों में पिण्डारियों का उदय हुआ।[८] उसके बाद पेशवा बाजीराव प्रथम तथा उसके शिन्दे, होल्कर, पवार सदृश सरदारों के समय में भी मराठा कमाण्डरों के शिविरों में इन पिण्डारी भ्रमण-कारियों का एक दल रहता था। ये उपद्रवी चतुर होते थे। इनके पास अपने घोड़े रहते थे परन्तु उनका कोई स्थायी स्वामी नहीं होता था, जिसकी आज्ञा का अनुसरण किया जाता। ये समयानुसार अपनी ही योजनाओं पर अपना कार्य करते थे। जब तक दक्ष शासकों द्वारा नियन्त्रित मराठा राज्य संगठित इकाई के रूप में अपना कार्य करता रहा, तब तक अपने लम्बे तथा वेगपूर्ण प्रयाणों में अद्वितीय और सुनिश्चित कार्य सम्पन्न करने वाले भ्रमणशील दल अपने नियमित व्यवसाय का अनुसरण करते रहे तथा सहाय्यप्रद माने जाते रहे, जघन्य नहीं। परन्तु लार्ड वेलेजली के समय से जब प्राचीन मराठा युद्ध-शैली भंग हो गयी तो राज्य बहुसंख्यक अश्वारोही मराठा दल को कोई उपयोगी

---

८ मराठी शब्द पेंढा या पेंढार की व्युत्पत्ति संदिग्ध है। इसका अर्थ भ्रमण-शील लोगों की टोली है और यह नियमित सेनाओं के बुंगा या बाजारू बुंगा के समानार्थक है।

कार्य न दे सका, अतः वे भी इन लुटेरे दलों में सम्मिलित हो गये। जैसे-जैसे भारतीय राज्य एक-दूसरे के बाद ब्रिटिश रक्षा में पहुँचते गये और उनकी सेनाएँ भंग होती गयीं, वैसे-वैसे इनकी संख्या भी बढ़ती गयी। बार्लो तथा मिण्टो के शासनकालों में सहायक सन्धियों की ब्रिटिश नीति के अस्थायी परित्याग से पिण्डारियों की प्रवृत्तियाँ सहसा उन्नत हो गयीं। उन दिनों कुछ समय के लिए ब्रिटिश प्रसार रोक दिया गया था तथा इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी जो पिण्डारियों के तीव्र विकास के अनुकूल थी।

इस अस्थिर काल में मालवा तथा बुन्देलखण्ड में पेशवा तथा उसके अधीन शासकों की सत्ता शनैः-शनैः क्षीण होती गयी और क्रोध की दशा में उनको इन पिण्डारी दलों को शरण देना और उनकी लूटमार की प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करना लाभदायक प्रतीत हुआ। कलकत्ता स्थित प्रधान ब्रिटिश सरकार के पास उनके अधीन प्रान्तीय कार्यकर्ताओं की ओर से भेजे हुए समाचारों का ताँता बँध गया, जिनमें इन पिण्डारियों द्वारा वर्ष-प्रतिवर्ष बढ़ती हुई मात्रा में किये गये भयानक सर्वनाश का वर्णन होता था। वे निरपराध जनता पर अत्याचार करते, शारीरिक पीड़ा देते तथा बलात्कार करते थे। उन्होंने टिड्डी दल की भाँति देश को नष्ट कर दिया। जो कुछ भला काम वे किसी समय करते थे, उसका अब लोप हो गया तथा उन्होंने जनता का जीवन असह्य बना दिया।[६] लार्ड हेस्टिंग्ज का ध्यान अपने आगमन के शीघ्र पश्चात ही इस विषय की ओर गम्भीर रूप से आकृष्ट हुआ। उसने शीघ्र ही पिण्डारियों से व्यवस्थित युद्ध करने के लिए गृहाधिकारियों की आज्ञा प्राप्त कर ली। नेपाल युद्ध के कारण इसमें विलम्ब हो गया, क्योंकि वह पहले ही छिड़ चुका था।

इन पिण्डारी दलों का अधिकांश भाग शिन्दे तथा होल्कर की सेवा में था। इसी कारण इन्हें शिन्देशाही तथा होल्करशाही की विशेष उपाधियाँ मिली हुई थीं। दो पिण्डारी नेताओं हीरा तथा बुरहान ने महादजी शिन्दे की अच्छी सेवा की थी। शिन्दे ने उनको स्थायी निर्वाह के लिए नर्मदा के उत्तर विन्ध्य पर्वतमाला के क्षेत्र में नेमावाढ़ के प्रदेश में जागीरें दे दी थीं। इस प्रकार वह प्रदेश उनका मुख्य स्थान बन गया। हीरा तथा बुरहान की मृत्यु १८०० के लगभग हो गयी। हीरा के दो पुत्र थे—दोस्त मुहम्मद तथा वासिल मुहम्मद। ये लोग बाद में प्रसिद्ध नेता हुए। एक अन्य पिण्डारी सरदार करीमखाँ यशवन्त राव होल्कर के आश्रय से प्रसिद्ध हो गया तथा उसकी योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए मुख्य साधक बन बैठा। भोपाल राज्य पर करीमखाँ की लूट-

---

६ देखो ईस्टविक कृत लुत्फुल्ला की आत्मकथा।

मार अत्यन्त असह्य हो गयी। वह तथा उसके साथी चम्बल के मुहाने से गोदावरी के मुहाने तक स्वतन्त्र घूमकर बुरी तरह लूटमार करते थे। दौलत-राव शिन्दे ने उसको व्यक्तिगत भेंट के लिए राजी करके ग्वालियर के गढ़ में कैद कर लिया। ५ वर्ष निरोध में रहने के बाद उसने शिन्दे को भारी जुर्माना चुका दिया, अतः वह मुक्त कर दिया गया। नामदारखाँ नामक उसका एक शिष्य था। उसने शिन्दे के प्रदेशों को बहुत कष्ट दिया। उसके गुरु के साथ जो दुर्व्यवहार किया गया था, उसका उसने भारी बदला ले लिया। इसके बाद उन दोनों ने मिलकर चीतू नामक अन्य निर्भीक व्यक्ति के सहयोग से अभूतपूर्व मात्रा में विनाश-कार्य आरम्भ कर दिया। १८११ के दशहरा वाले दिन नेमावाड़ में उनकी विशाल सभा हुई। २५ हजार से भी अधिक व्यक्ति अपने सुन्दर घोड़ों तथा असाधारण वैभव सहित इस सभा में सम्मिलित हुए। यहाँ उन्होंने समस्त भारत में फैलने की एक विशाल योजना बनायी तथा प्रत्येक दल को विशेष कार्य दे दिये गये।

दोनों नेताओं में शीघ्र झगड़ा हो गया, अतः समस्त योजना नष्ट हो गयी। शिन्दे ने चीतू को अपनी ओर कर लिया और उन दोनों ने मिलकर करीमखाँ पर आक्रमण किया। करीमखाँ फिर पकड़कर निरोध में डाल दिया गया। इस सफलता से चीतू का साहस बढ़ गया तथा वह १५ हजार अनुचर साथ लेकर नर्मदा स्थित अपने शिविर से चल पड़ा। १८ हजार का एक अन्य दल लेकर दोस्त मुहम्मद उसके साथ हो गया। दोनों ने १८१४ के दशहरा का उत्सव साथ-साथ मनाया और इसके बाद वे अपने-अपने दल लेकर साह-सिक कार्य करने पृथक दिशाओं में चल पड़े। आगामी वर्ष (१८१५) उन्होंने उसी पराक्रम की आवृत्ति की। इस बार चीतू दो दल लेकर दक्षिण की ओर गया—एक दल ताप्ती नदी के साथ बढ़ा तथा दूसरे ने स्वयं चीतू के नेतृत्व में निजाम के राज्य पर धावा किया। चीतू नवम्बर में कृष्णा नदी तक पहुँच गया तथा उसके तटों पर बढ़ता हुआ ठेठ पूर्वी समुद्रतट पर स्थित नदी के मुहाने तक पहुँच गया। वह गोदावरी के किनारों पर बढ़ता हुआ वापस आ गया। उसको लूट में असंख्य धन मिला, जिसे बेचने के लिए नेमावाड़ में बहुत बडा बाजार लगाया गया। यहाँ बहुमूल्य आभूषणों तथा वस्तुओं की खुली बिक्री हुई। इससे उन लुटेरों द्वारा इन वर्षों में किये गये विनाश का अनुमान हो सकता है। यशवन्तराव होल्कर के पास अमीरखाँ तथा शहामतखाँ नामक दो पठान सरदार थे। उनके पराक्रमों में उनके भाग का उल्लेख पहले हो चुका है। जब यशवन्तराव ने १८०२ की दीवाली के अवसर पर पेशवा को परास्त करके पूना से भगा दिया था, इन दोनों साहसी वीरों ने उसे सहायता

दी थी। अमीरखाँ ने मन्दसौर के हिन्दू व्यापारियों से बलपूर्वक धन संग्रह किया—वह उनकी उँगलियों पर रूई लपेटकर आग लगा देता था। स्वीकार किया जाता है कि उदयपुर की कृष्णाकुमारी की हत्या अमीरखाँ की आज्ञा से की गयी थी। शहामतखाँ का १८१४ में देहान्त हो गया, परन्तु उसका सहकारी होल्कर राज्य की सेवा करता रहा। महीदपुर के रण के पूर्व उसको प्रलोभन दिया गया कि वह होल्कर की सेवा त्यागकर टोंक की नवाबी स्वीकार कर ले। उसके वंशज दीर्घकाल तक वहाँ शासन करते रहे।

पिण्डारी नेताओं ने १८१६ में अपनी प्रवृत्ति पुन: आरम्भ की। वे अपने मालवा स्थित मुख्य स्थान से फरवरी में चले। उन्होंने ठेठ मासुलीपट्टन तक विशाल प्रदेश पर धावा बोल दिया। १० मार्च को वे मासुलीपट्टन पहुँच गये। वहाँ से उन्होंने मद्रास के ब्रिटिश प्रदेशों में प्रवेश किया। प्रत्येक दिन वे करीब ४० मील धावा करते तथा कम से कम ५० गाँवों को नष्ट कर देते थे। कड़प्पा को लूटकर वे उत्तर की ओर मुड़ गये और अपना पीछा करने वाली ब्रिटिश सेनाओं को धोखा दे दिया। बाद में उन्होंने हैदराबाद तथा पूना के प्रदेशों को लूट लिया और १७ मई को नर्मदा पार कर नेमावाड़ स्थित अपने निवास-स्थान पर पहुँच गये। यह चमत्कारपूर्ण कार्य उन्होंने साढ़े तीन महीनों में पूरा कर लिया। हम उनके द्वारा किये गये महान विनाश की कल्पना-मात्र कर सकते हैं तथा विभिन्न स्थानों के जिन ब्रिटिश शासकों के प्रदेश में विनाश-लीला रची गयी उनकी परेशानियों का सहज ही अनुमान किया जा सकता है। १८१५-१८१६ के दो वर्षों में पिण्डारियों ने समस्त दक्षिण भारत के दो चक्कर लगा डाले। अंग्रेजों ने इस विनाश का सूक्ष्म अन्वेषण किया तो प्रकट हुआ कि पिण्डारी मद्रास प्रान्त में केवल १२ दिन तक ठहरे थे। इसी अल्प समय में उन्होंने १८२ आदमियों को मार डाला, ५०० को घायल कर दिया तथा कम से कम ३५०० अन्य व्यक्तियों को नाना प्रकार की हानियाँ पहुँचायीं। इसके अतिरिक्त उन्होंने कम से कम १० लाख का धन लूट लिया। ब्रिटिश सरकार के प्रदेशों को अपनी प्रवृत्तियों के लिए उन्होंने विशेष रूप से इसलिए चुना था जिससे अंग्रेजों द्वारा पिण्डारियों के सर्वनाश के उपाय निष्फल किये जा सकें। पेशवा का कार्यकर्ता बालोजी कुंजर इस समय मराठा सरदारों को यह परामर्श देता हुआ भ्रमण कर रहा था कि वे पिण्डारियों का साथ दें, जिससे ब्रिटिश सत्ता के प्रसार का विरोध किया जा सके। अत: ब्रिटिश योजनाओं का उद्देश्य पिण्डारियों को घेर लेने के अतिरिक्त उन्हें गुप्तरूप से सहायता पहुँचाने वाले समस्त ब्रिटिश विरोधी व्यक्तियों को भी घसीट लेना निश्चित किया गया। कहा जा सकता है कि ये

ब्रिटिश विरोधी दल पेशवा, नागपुर के अप्पा साहेब तथा मालवा के होल्कर के सम्मिलित प्रयासों के फल थे। मराठा स्वातन्त्र्य को सुरक्षित रखने के अस्पष्ट विचार से एक साथ विद्रोह आरम्भ करने की जो योजना बनी, ये उसकी उपशाखाएँ थीं। अतः पिण्डारी युद्ध तथा मराठा युद्ध एक तथा उसी उद्देश्य के परस्पर पूरक हैं, जिसके साथ बालोजी कुंजर, त्रिम्बकजी डैंगले तथा अन्य अनेक साहसी पुरुषों ने अपने आपको एकरूप कर लिया था। इन भारतीय शासकों को अपनी सत्ता के ह्रास से अत्यन्त वेदना थी। अतः जब पिण्डारी लोग ब्रिटिश प्रशासकों को क्लेश पहुँचाते थे तो इन्हें अदृष्ट रूप से सन्तोष होता था। इन ब्रिटिश प्रशासकों ने अब सावधान होकर प्रत्येक भारतीय शासक को केन्द्रीय आन्दोलन का साथ देने से रोकने का प्रयत्न किया। इन उपायों को आगे स्पष्ट किया जायेगा।

५. **पिण्डारियों का विनाश**—सभी विरोधों के दमन तथा समस्त भारत में ब्रिटिश शासन का असंदिग्ध आधिपत्य स्थापित करने के लिए गवर्नर जनरल ने व्यापक नीति की घोषणा की। विभिन्न स्थानीय अधिकारियों को आज्ञा दी गयी कि वे प्रत्येक भारतीय शासक से लिखित निवेदन प्राप्त कर लें कि पिण्डारी लोग शान्ति के मार्ग में कण्टक हैं तथा वे पूर्ण विनाश के पात्र हैं। पिण्डारियों की रक्षा करने का साहस किसी को नहीं हुआ, यद्यपि अनेक व्यक्ति अपने हृदय में उनके प्रति सहानुभूति रखते थे। पिण्डारी उपद्रव पर काबू पाने योग्य व्यापक प्रगति के लिए महान उपायों की आवश्यकता थी। ये महान उपाय जयपुर, भोपाल, नागपुर, पूना तथा हैदराबाद राज्यों के प्रदेश में कार्यान्वित किये जाने थे। इनके बीच ब्रिटिश प्रदेश भी आ जाते थे। गवर्नर जनरल ने समस्त शासकों को इस युद्ध में भाग लेने का निमन्त्रण दिया तथा जिन्होंने इस युद्ध में भाग नहीं लिया उनके साथ ब्रिटिश सरकार के शत्रुओं के समान व्यवहार करने की चेतावनी दी। स्वभावतः कार्य की विशेष योजना तैयार करने में सरकार को एक वर्ष से अधिक लग गया। स्पष्ट कह दिया गया कि बार्लो तथा मिण्टो की हस्तक्षेप शून्य नीति का परित्याग कर दिया गया है तथा समस्त शासकों को निमन्त्रण दिया गया कि पिण्डारियों के दमन के उद्देश्य से ब्रिटिश शासन के साथ नवीन सन्धियाँ करें। गवर्नर जनरल ने देश को दो भागों—उत्तरी तथा दक्षिणी—में विभक्त कर दिया। इनके बीच में नर्मदा नदी थी। तत्कालीन ब्रिटिश दूत चार्ल्स मेटकाफ को उत्तरी शासकों के साथ सन्धि करने के लिए नियुक्त किया गया तथा जौन माल्कम को दक्षिण में यही कार्य सौंपा गया। १८१७ की वर्षा ऋतु में इन दोनों दूतों ने अपने सुपुर्द किया हुआ कार्य सम्पन्न किया। मेटकाफ ने कोटा, भोपाल, बूंदी, उदय-

पुर, जोधपुर तथा जयपुर के शासकों के साथ विशेष सन्धियाँ कर लीं। अतः ब्रिटिश अधिपत्य स्वीकार कर लेने के कारण उनमें से अब एक भी पिण्डारियों को शरण नहीं दे सकता था।

इसी प्रकार जौन माल्कन पूना, नागपुर तथा हैदराबाद गया। निजाम पहले से ही अंग्रेजों का मित्र था। माल्कम पेशवा या नागपुर के राजा को नहीं मिला सका, क्योंकि वे ब्रिटिश शासकों को पहले से परेशान कर रहे थे। माल्कम ने भ्रमण करके ब्रिटिश रणनीति की योजनाएँ संयुक्त कीं। उसने विभिन्न क्षेत्रों में नियुक्त रेजीडेण्टों तथा कमाण्डरों को पूर्ण निर्देश दिये। उसके बाद माल्कम तथा मेटकाफ गवर्नर जनरल से मिले तथा उन्होंने ऋतु अनुकूल होते ही अभियान आरम्भ करने की पूरी तैयारी कर दी। गवर्नर जनरल स्वयं आगरा के सम्मुख यमुना-तट पर स्थित ब्रिटिश शिविर में आ गया और बाद में वहाँ से बुन्देलखण्ड चला गया।

पेशवा ने इस बीच में मराठा सरदारों को एक साथ विद्रोह करने के लिए गुप्त सन्देश भेजे तथा अपनी सेना बढ़ा ली। इसका बहाना उसने यह बनाया कि माल्कम से पिण्डारियों के विरुद्ध युद्ध में सहयोग देने का निमन्त्रण पाकर मैंने ऐसा किया है। शिन्दे दो परस्पर विरोधी आह्वानों में फँसकर कर्तव्य-विमूढ़ हो गया था। उसको मराठा संघ के सदस्यों से सहानुभूति थी, परन्तु वह ब्रिटिश सेनाओं से घिरा हुआ था। अतः असहाय होकर उसने ५ नवम्बर, १८१७ को ब्रिटिश सरकार के साथ नवीन सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर कर दिये तथा पिण्डारियों के विरुद्ध युद्ध करने में उनको सहयोग देने के लिए बाध्य हो गया। ब्रिटिश सेना दो विशाल विभागों में संगठित की गयी। एक विभाग उत्तरी क्षेत्रों के लिए था। वह जनरल आक्टरलोनी के अधीन यमुना पर नियुक्त किया गया। दूसरा विभाग सर टामस हिस्लप के अधीन दक्षिण में युद्ध करने के लिए नर्मदा-तट पर नियुक्त किया गया। राजनीतिक विषयों पर परामर्श देने के लिए माल्कम इस सेना के साथ था। इन दो मुख्य विभागों के अधीन छोटी-छोटी टोलियाँ सामरिक महत्त्व के विभिन्न स्थानों पर नियुक्त की गयीं। पिण्डारियों की संख्या उस समय लगभग २३ हजार थी। वे तीन शिविरों के अन्तर्गत तीन विभागों में बँटे हुए थे। उनके नेता चीतू, करीमखाँ तथा वासिल मुहम्मद थे। उन्होंने मराठा शासकों का समर्थन प्राप्त करने का उत्साहपूर्ण प्रयत्न किया। पूना, नागपुर और इन्दौर के शासकों से उनको आंशिक सहायता मिली भी।

गवर्नर जनरल ने १६ अक्तूबर, १८१७ को अपना अभियान आरम्भ किया। ब्रिटिश सेनाएँ अपने मुख्य स्थानों से चल पड़ीं और मालवा में पिण्डा-

रियों के आश्रय स्थानों की ओर बढ़ीं। करीमखाँ तथा वासिल मुहम्मद १३ दिसम्बर को झालावाड़ के समीप शाहावाद के स्थान पर परास्त कर दिये गये। वे उदयपुर के जंगलों में भाग गये। वे शीघ्र ही अपने आश्रय स्थानों से निकाल दिये गये। उग्रतापूर्वक पीछा किये जाने पर वे नर्मदा की ओर भाग निकले। वे सर्वथा किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये और उनके अनुयायियों ने उनका पक्ष छोड़ दिया। गवर्नर जनरल ने तुरन्त आत्मसमर्पण कर देने वालों को क्षमा करने का वचन दिया। वासिल मुहम्मद ने अपने को शिन्दे के सुपुर्द कर दिया और जब वह पलायन का प्रयास करता हुआ पकड़ लिया गया तो उसने विषपान कर लिया। करीम खाँ ने १५ फरवरी, १८१८ को माल्कम के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। गोरखपुर के समीप उसको छोटी-सी रियासत दे दी गयी। एक अन्य नेता नामदारखाँ ने ३ फरवरी को भोपाल के समीप देवराजपुर में कर्नल ऐडम्स के प्रति आत्मसमर्पण किया। पिण्डारी सरदारों में सर्वाधिक भयंकर चीतू का अविराम तथा कठोरतापूर्ण उत्साह से तब तक पीछा किया गया, जब तक वह आशिर्गढ़ के समीप जंगल में न भाग गया। वहाँ एक चीता उसको खा गया। इस प्रकार कई वर्ष पुराने पिण्डारी उपद्रव का शीघ्र ही लोप हो गया।

६. **होल्कर की सत्ता समाप्त**—पिण्डारी युद्ध मराठा सत्ता के समस्त चिह्नों का सर्वनाश करने तथा सम्पूर्ण भारत में असंदिग्ध ब्रिटिश आधिपत्य स्थापित करने के लिए एक विशाल ब्रिटिश योजना थी। योजना के अन्तर्गत एक दीर्घकालीन प्रक्रिया में पूना के अतिरिक्त न्यूनाधिक रूप से इन्दौर, नागपुर, बड़ौदा तथा ग्वालियर सम्मिलित थे। इनके साथ पृथक-पृथक रूप से निपटा गया। यशवन्तराव होल्कर की मृत्यु के बाद उसकी नवयुवती सुन्दरी पत्नी तुलसीबाई ने मल्हारराव के नाम से सत्ता सँभाली। तुलसीबाई में राज्य-कार्य की असाधारण क्षमता थी। मल्हारराव यशवन्तराव का अन्य पत्नी से उत्पन्न पुत्र था। उसकी आयु उस समय चार वर्ष की थी। तुलसीबाई ने अपने कृपापात्र गणपतराव तथा उसके साथ तात्या जोग की सहायता से होल्कर राज्य का बहुत योग्यता से प्रबन्ध किया। इस कार्य में उसने राज्य के प्राचीन सेवकों, अपने पति के मुस्लिम सहकारियों अमीरखाँ एवं गफूरखाँ तथा एक पड़ोसी मित्र कोटा के जालिमसिंह का सहयोग प्राप्त कर लिया। उसके कष्ट का प्रमुख कारण धनाभाव था। बिना धन के वह सेना नहीं रख सकती थी और बिना सेना के राज्यकार्य चलाना असम्भव था। उसका कष्ट दौलतराव शिन्दे के कारण और भी अधिक हो गया। शिन्दे ने होल्कर के अरक्षित प्रदेशों पर अत्यन्त उग्रता से धावा किया और तुलसीबाई तथा मल्हार-

राव को मार डालने का भी यत्न किया। इस प्रकार की विषम परिस्थिति में उसको पूना से पेशवा का अंग्रेजों के विरुद्ध तीव्र आक्रमण में भाग लेने के लिए सेना भेजने का आग्रहपूर्ण निमन्त्रण मिला। निराश होकर वह मल्हार-राव को अपने साथ लेकर इन्दौर से रामपुरा को चली गयी तथा कोटा के पास जालिमसिंह के यहाँ शरण ली। ब्रिटिश शासक ध्यानपूर्वक उसकी गति-विधि देखते रहे तथा उन्होंने उसकी सेना का दक्षिण की ओर कूच रोकने के लिए अविलम्ब उपाय किये। १८१७ के अन्तिम मासों में यह सेना दो दलों के बीच फँस गयी। माल्कम ने तुलसीबाई की परिस्थिति का ध्यानपूर्वक अव-लोकन किया तथा उसके सम्मुख वही शर्तें उपस्थित कीं जिन्हें शिन्दे स्वीकार कर चुका था। तात्या जोग ने उसे इन शर्तों को स्वीकार करके ब्रिटिश रक्षा ग्रहण करने का परामर्श दिया। परन्तु इस समय वास्तविक सत्ता उसके हाथों में नहीं थी। वास्तविक सत्ता सेनानायक पठान नेताओं, विशेषकर रोशन बेग तथा रामदीन के पास थी। रोशन बेग अनुशासित दलों का नेता था और रामदीन के अधिकार में मराठा अश्वारोही थे जो उस समय भारत में सर्वोत्तम माने जाते थे।[१०]

यह जानकर कि ब्रिटिश प्रस्ताव स्वीकार करने से उनकी शक्ति का सर्व-नाश हो जायेगा, पेशवा के पास से पर्याप्त धन आने तथा अधिक धन की प्रतिज्ञा से प्रोत्साहित होकर दोनों सरदारों ने रण का मार्ग ग्रहण करने का आग्रह किया तथा महिला को होल्कर सेना को दक्षिण की ओर प्रयाण करने की आज्ञा दे देने के लिए विवश कर दिया। होल्कर राज्य का एक मुख्य समर्थक अमीरखाँ था। उसने दिसम्बर के आरम्भ में अंग्रेजों का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया कि उसकी सेनाओं का शेष वेतन चुका दिया जायेगा तथा उसको टोंक की नवाबी दे दी जायेगी। अमीरखाँ द्वारा यह पक्षत्याग संकेत सिद्ध हुआ। अन्य सैनिक सरदारों का विश्वास था कि तुलसीबाई तथा उसके परामर्शदाता उनको अंग्रेजों के हाथ बेच देना चाहते हैं, अतः उन्होंने इस विश्वासघाती योजना को विफल करने का निश्चय कर लिया। १९ दिसम्बर को सायंकाल उन्होंने राज-प्रतिनिधि तथा मन्त्री को पकड़कर कठोर निरोध में डाल दिया तथा एक सभा बुलायी। इसमें बन्दियों के साथ व्यवहार निश्चित करने के लिए गरमागरम वादविवाद हुए। २० की प्रातः तुलसीबाई कारावास से बाहर लायी गयी तथा सिप्रा नदी के तट पर स्थित महीदपुर पहुँचायी गयी (उज्जैन के उत्तर में ३० मील पर)। वहाँ इस अभागी महिला

---

[१०] मिल कृत 'भारत का इतिहास', जिल्द ८, पृ० २८३। काये कृत 'माल्कम' जिल्द २, पृ० २०१

का सिर धड़ से अलग कर दिया गया तथा रक्तरंजित अवशेष नदी में ड
दिये गये। उस समय उसकी आयु पूरे ३० वर्ष की भी नहीं थी।

हिसलप के अधीन विभिन्न ब्रिटिश सेनाओं ने होल्कर की सेना
शिविर तुरन्त घेर लिया (२१ दिसम्बर) तथा वे सामने वाले तट पर
गये। हिसलप ने अत्यन्त साहस से होल्कर दल पर आक्रमण किया, यद्य
उसके शत्रु उस पर घोर अग्नि-वर्षा कर रहे थे। उसमें ७७८ आदमी मारे
अथवा घायल हो गये, फिर भी उसने निर्णायक विजय प्राप्त कर ली। अल
वयस्क मल्हारराव होल्कर वंश-परम्परागत वीरतापूर्वक लड़ते हुए दलों
बीच अपने घोड़े पर घूम-घूमकर अपने सैनिकों से पीठ न दिखाने की प्रार्थ
करता रहा। उसकी २० वर्षीया विधवा बहन भीमाबाई ने भी रण में वै
ही वीरता का परिचय दिया। वह विजय प्राप्त करने के लिए सुन्दर घोड़े
सवार होकर अपने अश्वारोही दल का नेतृत्व कर रही थी। विठोजी के
हरिराव होल्कर ने अत्यन्त वीरता से युद्ध किया तथा अंग्रेजों को बहुत हा
पहुँचायी। परन्तु इस प्रकार का साहस तथा उत्साह ब्रिटिश सेना के उत्त
तोपखाने के सामने कुछ नहीं कर सका। विजेताओं ने ६३ तोपों तथा विशा
रण-सामग्री सहित होल्कर के समस्त शिविर पर अधिकार कर लिया।
के बाद अमीरखाँ और गफूरखाँ ने माल्कम के समक्ष अपनी मध्यस्थता प्रस्
की तथा तात्या जोग के सहयोग से ६ जनवरी, १८१८ को सन्धि कर ली
इसे मन्दसौर की सन्धि कहते हैं। इसमें उल्लिखित धाराओं के अनुसार ब्रिटि
आधिपत्य का सम्मान करना तथा बूँदी के उत्तर एवं सतपुड़ा पर्वतमाला
दक्षिण में होल्कर के समस्त प्रदेश अंग्रेजों को देना निश्चित हुआ। इस
अतिरिक्त होल्कर ब्रिटिश सहायक सेना को अपने यहाँ स्थान देने तथा अप
सेना को घटाकर ३ हजार करने के लिए सहमत हो गया।[११] गफूरखाँ
जावरा की जागीर मिली। उत्तर भारत के निर्भीक ब्राह्मण योधा रामदीन
आत्मसमर्पण करने से इन्कार कर दिया। अन्य किसी व्यक्ति से यह कार्य
हो सका। वह अपने अधीन सैनिकों को लेकर भगोड़े पेशवा का वीरतापूर्व
साथ देने के लिए चल पड़ा।

७. **पेशवा द्वारा युद्ध**—बाजीराव ने कड़े दबाव तथा वेदना के कार
१३ जून वाले सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये थे, परन्तु उसके हृदय
अन्याय की कटु अनुभूति विद्यमान थी। वह अपनी वार्षिक यात्रा पर पण्ढ
पुर गया तथा लगभग तीन महीने तक अपनी राजधानी को नहीं लौटा। व

---

[११] होल्कर के राजपत्र (१९४५ में मुद्रित), जिल्द २, नं० १४७

अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध की तैयारियों में व्यस्त रहा। ब्रिटिश सरकार से पिण्डारियों के विरुद्ध युद्ध का समर्थन करने के लिए निमन्त्रण प्राप्त हुआ। उससे पेशवा को नवीन सेनाएँ भरती करने का उचित कारण मिल गया। अंग्रेजों की ओर से भी छल-कपट कुछ कम स्पष्ट नहीं था। गवर्नर जनरल ने पेशवा को उसकी दोहरी नीति के कारण सदा-सर्वदा के लिए समाप्त करने का निश्चय कर लिया था। वह बहुत दिन से इसी प्रकार का व्यवहार कर रहा था। २५ जून को आषाढ़ पूजा करने के बाद बाजीराव पण्ढरपुर से माहुली गया। उसका प्रकट उद्देश्य वहाँ अधिक मास में धर्म-ग्रन्थों द्वारा विहित स्नान करना था। इस समय उसका अनुयायी दल बहुत बढ़ गया था। उसने कई भारतीय शासकों को गुप्त रूप से अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह करने को उत्तेजित किया था। बर्मी साम्राज्य का सहयोग प्राप्त करने के लिए भी विस्तृत षड्यन्त्र किया गया था।[१२]

इस समय जान मालकम पिण्डारी युद्ध में सहयोग प्राप्त करने के लिए दक्षिण के दरबारों का दौरा कर रहा था। माहुली में वह पेशवा से मिला। वह अपनी भेंट का वर्णन इस प्रकार करता है—"९ अगस्त को ७ बजे प्रातःकाल मैं महाराजा से मिलने गया। ६ वर्ष पहले मैं उससे मिला था तथा उस समय से उसमें कोई अधिक परिवर्तन न हुआ था। वह चिन्ताग्रस्त अवश्य मालूम होता था। उसने हर्षपूर्वक मेरा स्वागत किया और कहा—'मुझको गद्दी पर बैठाने में वेलेजली तथा क्लोज के साथ आप भी थे। इतनी दूर से मिलने आकर आपने सिद्ध कर दिया है कि आप अब भी मेरे साथ सहानुभूति रखते हैं। मुझको हर्ष है कि ऐसे व्यक्ति के समक्ष अपना हृदय खोलकर रखने का अवसर प्राप्त हुआ है जो मुझ पर विश्वास करता है।' हम साढ़े तीन घण्टे तक वार्तालाप करते रहे। जो बातचीत हुई वह राजनीतिक विषय होने के कारण गुप्त है, परन्तु परिणाम सन्तोषजनक था।" मालकम को मालूम हुआ कि पूना की अपमानजनक सन्धि से बाजीराव के हृदय को गहरी चोट पहुँची है। अतः बाजीराव ने पुनः-पुनः अभिवादन किया तथा आश्वासन भरी बातें कहीं। उसने कहा कि वह सदैव अंग्रेजों का मित्र रहा है। उसने पिण्डारियों के विरुद्ध युद्ध में सहायता देने के लिए लम्बी-चौड़ी प्रतिज्ञाएँ कीं। अपनी स्थिति के कष्टों का उसने स्वतन्त्रतापूर्वक वर्णन किया तथा पुनः कहा कि उसके साथ कठोर व्यवहार किया गया है। साथ ही एल्फिस्टन ने उसकी कटु निन्दा की है। स्पष्टतः वह चिन्तित तथा हताश है। मालकम ने दुखी

---

[१२] लार्ड हेस्टिंग्ज का व्यक्तिगत वृत्त, पृ० ३६९

पेशवा को सान्त्वना तथा प्रोत्साहन देने का प्रयत्न किया तथा उसको विदा होते समय पेशवा के सन्तुष्ट होने का विश्वास हो गया, यद्यपि वह आश्वासित नहीं हुआ था। हो सकता है, उस समय बाजीराव निष्कपट हो गया हो, परन्तु उसमें चरित्र की स्थिरता लेशमात्र भी नहीं थी। अतः उसके वचनों का कोई विश्वास नहीं किया जा सकता था। मालकम ने १० अगस्त को पूना वापस आकर एल्फिस्टन से आग्रह किया कि बाजीराव के आचरण पर सन्देह न किया जाये तथा इस सन्देह का कोई प्रभाव सरकार की सैनिक योजनाओं पर न पड़ना चाहिए। एल्फिस्टन ने अपनी वीरतापूर्ण मनोवृत्ति के कारण इच्छा न होते हुए भी इस विषय में अपनी सहमति दे दी।[१३]

बाजीराव के प्रति अधिक नम्रता से व्यवहार करने से सम्बन्धित मालकम के सुझाव से एल्फिस्टन सर्वथा असहमत था। उसका विचार था कि वर्षों के निकटवर्ती अनुभव के कारण केवल मैं ही उस गम्भीर छल-कपट को समझ सकता हूँ. जिसे पेशवा सुविधापूर्वक कर सकता है। जो मनुष्य थोड़े समय के लिए इसके सम्पर्क में आते हैं, वे उसके मधुर व्यवहार तथा वाक्चापल्य के कारण धोखा खा जाते हैं। मालकम के परामर्शानुसार एल्फिस्टन ने पेशवा के प्रति अपनी पूर्व कठोरता शिथिल कर दी। उसने स्वयं लिखा है कि केवल इसी सुविधा के कारण रेजीडेन्सी को जलाया जाना तथा बाद के समस्त घोर कृत्य सम्भव हो सके।

माहुली में अपने पास मालकम के आगमन का अपनी गुप्त योजनाओं के विकास में उत्तम उपयोग करने में पेशवा सफल रहा। अगस्त में माहुली के स्थान पर वार्षिक मेला होता है। इसके महत्त्वशाली अंग मल्ल-युद्ध तथा व्यायाम सम्बन्धी आमोद-प्रमोद होते हैं। इस समारोह के प्रतिस्पर्धियों में से पेशवा ने नवीन सेनाओं के लिए शक्तिशाली तथा उपयोगी रंगरूट छाँट लिये। उसने अपनी सेना के चीफ कमाण्डर बापू गोखले से विधिपूर्वक शपथ ग्रहण करा ली कि वह उसके द्वारा युद्ध-संचालन में हस्तक्षेप न करेगा। पेशवा ने निपुण सेना तैयार करने के लिए बापू गोखले की इच्छा पर एक करोड रुपये दिये। अपहृत रियासतों वाले सरदारों तथा जागीरदारों से अपने आयोजित अभियान में हार्दिक सहायता प्राप्त करने के लिए प्रलोभन देने की दृष्टि से सबकी रियासतें लौटा दी गयीं। जिन सरदारों से उसका वैमनस्य था, उनको पुनः प्रसन्न कर लिया। उसने पटवर्धन, पंसे, रस्ते परिवारों तथा अन्य सरदारों और निपानी के अप्पा देसाई को व्यक्तिगत रूप से

---

[१३] काये कृत मालकम की जीवनी, जिल्द २, पृ० १७०, १७२

मिलने के लिए निमन्त्रण दिया तथा प्रत्येक से मित्र के रूप में यथाशक्ति सहयोगपूर्ण प्रयास के लिए निवेदन किया। उसने छत्रपति से मिलकर अपने विचार प्रकट किये तथा उससे सहयोग और भेद गुप्त रखने की शपथ ले ली। जब बाजीराव को पता लगा कि राजा गुप्त रूप से ब्रिटिश रेजीडेण्ट के साथ हानिकारक षड्यन्त्र कर रहा है तो उसे तथा उसके परिवार को पकड़कर वसोंटागढ़ में कठोर बन्धन में डाल दिया। बाजीराव ने गोविन्दराव काले, अन्याबा मेहेण्डले, दादा गडरे तथा नाना फड़निस के शासनकाल के अन्य वृद्ध तिरस्कृत कूटनीतिज्ञों को अपनी सेवा में बुला लिया और प्रत्येक शक्य उपाय से अपनी स्थिति सबल करने के लिए उनके विचार ज्ञात किये। सितम्बर के अन्त में पेशवा माहुली से पूना वापस आ गया।

दोनों प्रतिद्वन्द्वियों—बाजीराव तथा एल्फिस्टन—ने अपनी योजनाओं को किस प्रकार विकसित किया, इस सम्बन्ध में ब्रिग्स के संस्मरण अच्छा वर्णन देते हैं।[१४] एल्फिस्टन की गतिविधि की सूचना प्राप्त करने के लिए बाजीराव ने रेजीडेन्सी के सेवकों को घूस देने तथा कम्पनी की सेनाओं को प्रलोभन देने में बहुत धन व्यय किया। बाजीराव की सेना के इंगलिश कमाण्डर को दो लाख रुपये मिले कि वह त्रिम्बकजी तथा उसकी गतिविधि के सम्बन्ध में जानकारी देता रहे। भारत के देशी दरबारों के साथ सम्पर्क रखने के लिए एल्फिस्टन ने नियमित डाक व्यवस्था स्थापित कर ली और इस विभाग का प्रबन्ध उसने पूना के ब्रिटिश पोस्ट मास्टर को सौंप दिया। एल्फिस्टन के इस पूर्ण प्रबन्ध के कारण उसके पास नित्य सूचनाएँ पहुँचती रहीं कि पेशवा के दूत विभिन्न भारतीय दरबारों में किस प्रकार व्यस्त हैं तथा अपने स्वामी के हित में वे किस प्रकार विपुल धन व्यय कर रहे हैं। बाद में पता चला कि अपनी डेढ़ करोड़ रुपये की वार्षिक आय में से बाजीराव प्रतिवर्ष एक-तिहाई बचा लेता था। इस प्रकार १८१७ के अन्त में उसके पास रत्नों तथा नकदी के रूप में ८ करोड़ से अधिक धन अवश्य रहा होगा। उसने रेजीडेन्सी के प्रत्येक कर्मचारी को घूस दी, परन्तु एल्फिस्टन की सतर्कता उसके लिए प्रबल विघ्न सिद्ध हुई। बालाजी पन्त नाटू, यशवन्तराव घोरपड़े, सतारा का चिटनिस एवं अन्य व्यक्ति एल्फिस्टन के गुप्त सम्वाददाता थे। वे लोग बाजीराव की प्रत्येक गति और योजना का समाचार भी उसको पहुँचा देते थे। इसके विपरीत बाजीराव का ढंग असंस्कृत था तथा उसके कार्यकर्ता बाह्य जगत से अपरिचित थे। अतः वह सार्वजनिक उपहास का विषय बन गया। कम्पनी के सिपाहियों को भ्रष्ट करने का कार्य वामन भट्ट कर्वे तथा शंकराचार्य स्वामी को

---

[१४] कोलब्रुक कृत, 'एल्फिस्टन की जीवनी', जिल्द १, पृ० ३०१

दिया गया और इंगलिश अधिकारियों को भ्रष्ट करने का भार सन्दूर शाखा से यशवन्तराव घोरपड़े को सौंपा गया। यशवन्तराव ने बाजीराव से धन स्वीकार कर लिया, परन्तु एक अन्य स्रोत से एल्फिस्टन को इस तथ्य का पता चल गया। इस प्रकार हम जान सकते हैं कि बाजीराव की समर्थक पुरोहित मण्डली ने किस निपुणता से उसकी सेवा की होगी।

बाजीराव ने पिण्डारियों के विरुद्ध युद्ध में सहयोग की गम्भीर प्रतिज्ञा की थी, अतः एल्फिस्टन ने कैप्टिन फोर्ड तथा उसके सम्पूर्ण दल को अपनी आज्ञा में ले लिया। बाजीराव ने इस दल का पालन-पोषण सावधानी के साथ अपने ही उपयोग के लिए किया था।

दशहरा का वार्षिक समारोह ६ अक्तूबर को हुआ। उस दिन पेशवा ने रेजीडेण्ट के साथ जानबूझकर अपमानजनक व्यवहार किया। १४ अक्तूबर को दोनों एक-दूसरे से मिले जो दैवयोग से उनका अन्तिम मिलन था। इस अवसर पर पेशवा ने असाधारण रूप से कठोर भाषा का उपयोग किया। "मेरे ऊपर किसी प्रकार का विश्वास नहीं किया जाता"—इसका पेशवा ने निवारण करना चाहा। वार्तालाप में स्पष्ट गतिरोध उपस्थित हो गया तथा आगे क्या होने वाला है, इस विषय में दोनों अपने पृथक विचार लेकर एक-दूसरे से अलग हो गये। एल्फिस्टन ने इसका परिणाम निकाला कि बाजीराव निश्चय रूप से शत्रु तो है, परन्तु उसको सहसा युद्ध का साहस न हो सकेगा। बापू गोखले के अतिरिक्त उसका कोई अन्य परामर्शदाता इस मार्ग पर चलने के लिए अनुमति नहीं देगा। बाजीराव की तैयारियों से पूरी जानकारी रखने वाले विठ्ठलराव विंचूरकर ने युद्ध-घोषणा के विरुद्ध अपनी दृढ़ सम्मति प्रकट की। गोविन्दराव काले ने[१५] कुछ-कुछ संशयात्मक शब्दों में विंचूरकर का समर्थन किया। बाजीराव को अच्छी तरह मालूम था कि शिन्दे पूर्णतः अंग्रेजों के वश में है तथा होल्कर और नागपुर का भोंसले उसको ठोस सहायता नहीं दे सकते।

८. **पेशवा का पलायन**—रेजीडेण्ट का निवास-स्थान पेशवा का पूर्ण आक्रमण सहन करने में किसी प्रकार समर्थ न था। संगम वाली रेजीडेन्सी उसका केवल दो पैदल पलटनों वाला व्यक्तिगत अंगरक्षक दल था। उस समय की नियमित छावनी नगर से पूर्व गारपीर नामक स्थान पर थी। यहाँ इस

---

[१५] यह काले प्राचीन समय का अन्तिम मराठा कूटनीतिज्ञ था। १३ सितम्बर १७८६ को अपने पिता की मृत्यु पर उसने निजाम के दरबार में राजदूत का कार्य सँभाला था। उसने मराठा राजनीति के विचित्र उत्थान-पतन देखे थे। उसका देहान्त नवम्बर, १८२३ में हुआ।

समय डाकघर है। वहाँ देशी पैदलों की दो पलटनें कर्नल बर के अधीन थीं। नगर के इस निकटवर्ती स्थान को कुछ समय से अरक्षित समझा जाता था, अतः एलिफस्टन ने बर की सेना को किरकी गाँव हटा दिया था। वहाँ उसको उत्तर-पश्चिम में लगभग ५ मील पर डपुरी में नियुक्त कैप्टिन फोर्ड की सहायक सेना की सहायता प्राप्त हो सकती थी। फोर्ड तथा उसके अधिकारियों की पेशवा के दरबार से—विशेषकर मोरो दीक्षित तथा बापू गोखले के साथ—अच्छी मित्रता थी। ३० अक्तूबर को बम्बई के यूरोपीय दल की अनायास सहायता बर को प्राप्त हो गयी तथा रेजीडेण्ट के साथ परामर्श द्वारा उसने किरकी में अपना स्थान इस प्रकार तैयार कर लिया कि पेशवा के सहसा आक्रमण का सामना कर सके। समस्त ब्रिटिश सेना में ३ हजार से अधिक सैनिक न थे और उनके पास केवल ५ तोपें थीं।

३ नवम्बर को एलिफस्टन ने अपनी परिस्थिति इस प्रकार भयावह पायी कि उसे सिरूर को सहायता के लिए आग्रहपूर्ण सन्देश भेजना पड़ा। सिरूर अहमद-नगर की सड़क से ३६ मील दूर था। पेशवा ने यह समाचार सुनकर ५ तारीख को विठोजी गायकवाड़ के हाथ अपना अन्तिम आदेश भेजा और माँग रखी कि बम्बई का दल दूर भेज दिया जाये तथा सिरूर से आने वाली सेना को लौटने का आदेश दे दिया जाये। एलिफस्टन ने इसका पालन करने से इनकार कर दिया। उसने उत्तर दिया कि स्वयं पेशवा की तैयारियों के कारण सेनाओं का बुलाना आवश्यक हो गया है। विठोजी के वापस आने के एक घण्टे के अन्दर ही मराठा सवारों के विशाल दल ब्रिटिश शिविर की ओर बढ़ते हुए दिखायी पड़े। रेजीडेण्ट केवल यह प्रबन्ध कर सका कि अपने कर्मचारी-वर्ग तथा रक्षा दल के साथ घरों से निकलकर होल्कर पुल को पार करता हुआ सकुशल बर के शिविर में पहुँच जाये। इसके तुरन्त बाद पेशवा की सेनाओं ने रेजीडेन्सी को आग लगाकर भूमिसात कर दिया। इसमें एलिफस्टन का बहुमूल्य पुस्तका-लय तथा भारत के इतिहास के लिए हस्तलिखित सामग्री थी। इतिहासकार ग्राण्ट डफ इस समय रेजीडेण्ट के कर्मचारियों में था। रेजीडेन्सी में आग लगाने के बाद बापू गोखले ने गणेश खिण्ड के मैदान से किरकी के ब्रिटिश शिविर पर आक्रमण आरम्भ किया। होने वाले रण के नाम इन दोनों स्थानों अर्थात किरकी एवं गणेश खिण्ड के नामों पर पड़ गये हैं।

५ नवम्बर को तीसरे पहर ४ बजे दोनों सेनाएँ एक-दूसरे के सम्मुख खड़ी थीं। पेशवा ने पार्वती पहाड़ी से रण का अवलोकन किया। एलिफस्टन ने अपनी ओर से वीरतापूर्वक आक्रमण करने का निश्चय किया तथा बर को परामर्श दिया कि आक्रमण की प्रतीक्षा करने के स्थान पर वह मराठों पर टूट

पड़े। ब्रिटिश सेनाओं की निर्भीक प्रगति से मराठा विश्वास तुरन्त नष्ट हो गया। ब्रिटिश वाम पक्ष के सामने गहरा नाला था जो शीघ्रगामी मराठा सवारों के लिए विनाशक सिद्ध हुआ। ब्रिटिश दक्षिण पक्ष पर अलग लड़ाई हुई। यहाँ आक्रमण का नेतृत्व करते हुए मोरो दीक्षित को तोप का गोला लगा और उसका देहान्त हो गया। अँधेरा हो जाने पर बाजीराव के आग्रहपूर्ण बुलावे पर बापू गोखले गणेश खिण्ड में अपने शिविर को वापस हो गया। रणक्षेत्र पर अंग्रेजों का ही अधिकार रहा। उनकी बहुत कम हानि हुई। कुल ८६ व्यक्ति मरे और घायल हुए, जबकि मराठों के ५०० सैनिक हताहत हुए। मराठों की सेना अनुमानतः १८ हजार सवारों तथा ८ हजार पैदलों की थी और उनके पास १४ तोपें थीं।

अब बाजीराव अनिश्चय तथा भय के कारण युद्ध-संचालन में पहले के समान असमर्थ रहा तथा ५ नवम्बर को युद्ध न कर सका। यह युद्ध उसने अकारण आरम्भ किया था और बापू गोखले की सभी गतिविधियों में हस्तक्षेप किया था। इस समय उसको बहुत बड़ी सहायता मिल गयी थी, क्योंकि अधिकांश मराठा सरदार तथा रामदीन के अधीन होल्कर की सेना उसके साथ थी। जनरल स्मिथ सिरूर से १३ तारीख को किरकी पहुँच गया तथा उसने रेजीडेण्ट की सहायता से तुरन्त आक्रमणात्मक युद्ध आरम्भ करने का निश्चय किया। उसके तोपखाने की भयानक अग्निवर्षा का सामना मराठे नहीं कर सके। स्मिथ ने तोपखाने का सहारा लेकर १५ नवम्बर को वर्तमान बन्द के पास यखड़ा के स्थान पर नदी पार कर ली तथा घोरपड़ी पर अधिकार कर लिया। १६ की रात्रि को २ बजे बाजीराव अकस्मात पुरन्दर को वापस हो गया, यद्यपि उसके परामर्शदाता उससे ऐसा कर्म न करने के लिए आग्रह-पूर्वक विनय करते रहे। उसने अपने भाई चिमनाजी को भी वहाँ न ठहरने दिया और न सेनाओं का नेतृत्व करने दिया। पेशवा के इस कार्य से परिस्थिति अंग्रेजों के अधिकार में चली गयी। एल्फिन्स्टन ने धमकी दी कि यदि बाजीराव की सेनाओं ने विरोध किया तो वह पूना पर गोलाबारी करेगा। बालाजी पन्त नाटू ने एल्फिन्स्टन पर अपने प्रभाव का उपयोग करके राजधानी पर आक्रमण नहीं होने दिया। उसने स्वयं पेशवा के महल पर ब्रिटिश ध्वज फहरा दिया। एक प्रत्यक्षदर्शी लिखता है—"जब गोखले तथा उसके सैनिक दृढ़ निश्चयपूर्वक रण का प्रयास कर रहे थे, तभी श्रीमन्त रात को भाग निकला। इससे उसकी सेनाएँ अपना साहस खो बैठीं तथा समस्त सम्पत्ति सहित उसके राज्य और राजधानी पर अंग्रेजों का सुविधापूर्वक अधिकार हो गया। बाजीराव माहुली गया तथा एल्फिन्स्टन उसके पीछे-पीछे लोनी चल दिया।

सोमवार १७ नवम्बर को नाट्ट और राबिन्सन केवल २५ सैनिक लेकर शनिवार भवन को गये तथा बिना विरोध के उन्होंने वहाँ ब्रिटिश ध्वज फहरा दिया। नगर में पहरा लगा दिया गया है तथा साधारण कार्य पुनः आरम्भ हो गया है। अब राबिन्सन ने राजभवन में अपना कार्यालय खोल लिया है तथा वही प्रशासन का संचालन करता है।"[१६]

पूना के पतन पर युद्ध का परिणाम पूर्वनिश्चित-सा हो गया। अब शेष कार्य केवल यह था कि भगोड़े पेशवा का पीछा करके उसे पकड़ लिया जाये। नवम्बर १८१७ से मई १८१८ तक अपने पलायन के सात मासों में पेशवा ने अपना जन्मजात अनिश्चय तथा कायरता स्पष्ट प्रकट कर दी। पूना में होने वाले पेशवा के युद्ध को सहायता देने के लिए नागपुर तथा महीदपुर के रण उपयुक्त समय पर हुए थे। बापू गोखले यखड़ा से भगोड़े पेशवा की रक्षार्थ निकला। पेशवा जेजुरी होकर दक्षिण गया। उसका अभिप्राय छत्रपति तथा उसके परिवार को अपने अधिकार में लेना था, जिससे वे अंग्रेजों का पक्ष ग्रहण न कर लें। उसके माहुली पहुँचने पर निपानी का अप्पा देसाई एक हजार वेतनार्थी अरब सैनिक लेकर उसके साथ हो गया। अब पेशवा को वह दशा सहन करनी पड़ी जिसको ब्रिटिश सेनाओं द्वारा चलता हुआ घेरा कहा जा सकता है। भगोड़े को इच्छानुकूल कार्य के लिए विवश करने में बहुत समय लग गया।

पेशवा ने माहुली से नरो आप्टे को भेजा कि वह छत्रपति को वसोटा के गढ़ से ले आये तथा स्वयं और भी दक्षिण की ओर मिरज के समीप चला गया। यहाँ २९ को उसने सुना कि कुछ ब्रिटिश सेनाएँ दक्षिण से उस पर आक्रमण करने के लिए आ रही हैं। वह बापू गोखले से उनसे निपटने के लिए कहकर स्वयं पण्ढरपुर वापस हो गया। यहाँ १४ दिसम्बर को अपनी माता तथा दो बन्धुओं के साथ छत्रपति प्रतापसिंह उसके साथ हो गया। पेशवा द्वारा पलायन की दशा में सहसा परिवर्तन तथा शीघ्र प्रयाणों के कारण उसका पीछा करने वालों को उसके बराबर चलना कठिन कार्य हो गया। जिस किसी दिशा में ब्रिटिश सेनाएँ दिखायी पड़ती, बापू गोखले उनको तंग कर डालता। इस प्रकार पेशवा अहमदनगर की ओर बढ़ चला। परन्तु वह पुनः अपना मार्ग बदलने पर विवश हो गया, जब उसको पता चला कि एक अन्य ब्रिटिश सेना पूर्व से उसे घेर रही है। अब वह संगमनेर की ओर बढ़ा और उसका विश्वासपात्र मित्र त्रिम्बकजी उसके साथ हो गया। त्रिम्बकजी अपने साथ उस पहाड़ी प्रदेश में भ्रमण करने वाले लुटेरे दल भी लाया था।

---

[१६] ऐतिहासिक टिप्पिणयाँ, जिल्द १, ३१

पेशवा ने संगमनेर से जुन्नार तथा नारायणगाँव की ओर प्रयाण किया तथा कल्पना की जाने लगी कि वह पुनः अपनी राजधानी पर अधिकार कर लेगा, क्योंकि उसका प्रवेश रोकने के लिए वहाँ कोई ब्रिटिश रक्षा-दल नहीं था। बापू गोखले ने अपने स्वामी की रक्षा का सदैव यथाशक्ति प्रयत्न किया तथा अपने इकलौते पुत्र गोविन्दराव की मृत्यु के रूप में आने वाली व्यक्तिगत विपत्ति वीरतापूर्वक सहन कर ली। ३० दिसम्बर को थकावट के कारण उसके पुत्र का देहान्त हो गया था। बाजीराव खेड़ तथा चाकन की ओर बढ़ा। उसने एक मास से कुछ ही अधिक समय में ४०० मील का चक्कर लगा लिया था।

एल्फिस्टन अभियान के संचालन में स्वयं व्यस्त रहा। वह पीछा करने में लगी हुई सेनाओं को सूचनाएँ भेजता और जहाँ आवश्यकता होती सहायक सेनाएँ भेजने का प्रबन्ध करता था। पेशवा खेड़ पहुँचा तो एल्फिस्टन को भय हुआ कि उसका आगामी लक्ष्य पूना होगा। अतः उसने कैप्टिन स्टाण्टन के पास सिरूर शीघ्र आह्वान भेजा कि जो कुछ सेना उसके पास हो, उसे लेकर पूना की रक्षा के निमित्त दौड़ आये। थोड़ी-सी पैदल सेना तथा दो तोपें लेकर, जिन पर २४ यूरोप-निवासी नियुक्त थे, स्टाण्टन तुरन्त चल दिया तथा पहली जनवरी, १८१८ की प्रातः भीमा नदी पर स्थित कोड़ेगाँव की उच्च भूमि पर ठहर गया। पेशवा उस समय समीप ही था तथा उसने बापू गोखले को शत्रु सेना नष्ट करने की आज्ञा दे दी। अचानक आक्रमण के कारण स्टाण्टन को गाँव का आश्रय लेना पड़ा। यहाँ दिन-भर भयानक युद्ध हुआ। बाजीराव निश्चिन्त होकर पास की पहाड़ी से इस रण को देखता रहा। अपने लम्बे प्रयाण के कारण स्टाण्टन तथा उसके सिपाही थक गये थे तथापि वे सारे दिन अत्यन्त साहस से युद्ध करते रहे। सायंकाल के समीप उनमें थकावट के लक्षण दिखायी पड़ने लगे। उनके लगभग १७५ सिपाही मारे जा चुके थे, जिनमें से चार ब्रिटिश अधिकारी भी थे और बहुत-से घायल हो गये थे। परन्तु बाजीराव ने अपना पलायन सहसा पुनः आरम्भ कर दिया, क्योंकि उसको सूचना मिली थी कि जनरल स्मिथ उसका पीछा करते हुए समीप पहुँच गया है। अपने घायल सिपाहियों को लेकर स्टाण्टन सिरूर वापस आ गया। बाद में उस स्थान पर इस यशस्वी रण में प्राण देने वाले सिपाहियों की स्मृति सुरक्षित रखने के लिए एक स्मारक बनाया गया।

ब्रिटिश दलों ने पेशवा को विश्राम नहीं लेने दिया। पीछे से जनरल स्मिथ के पहुँचने की सूचना पाकर वह पुनः दक्षिण की ओर मुड़ा। मुनरो तथा प्रिज्लर भी उसके पीछे-पीछे आ पहुँचे। तब वह पण्ढरपुर की ओर चल पड़ा। अष्टा में जनरल स्मिथ बापू गोखले पर आ चढ़ा। १९ फरवरी, १८१८ के

घोर रण में बापू मारा गया। इसे वर्तमान युद्ध का अन्तिम घमासान रण कहा जा सकता है। अपने अनुरक्त सेनापति की मृत्यु से पेशवा की पूर्व स्थिति प्राप्त करने सम्बन्धी समस्त आशा टूट गयी। उसने रण का परिणाम देखने की प्रतीक्षा नहीं की और अपनी पत्नी तथा तीन अन्य महिलाओं को पुरुष वेश में घोड़ों पर बैठाकर शीघ्र ही भाग निकला। बाजीराव ने लगभग एक करोड़ रुपये मूल्य की अपनी समस्त सम्पत्ति तथा सतारा के राजा और उसके दल को असहाय रूप में शिविर भूमि पर छोड़ दिया था। वे सब अंग्रेजों के हाथों में पड़ गये। जनरल स्मिथ ने शीघ्र एल्फिस्टन को निम्नलिखित सन्देश भेजा—"मैं आपको अपने सौभाग्य का व्यक्तिगत वर्णन भेज रहा हूँ, क्योंकि राजा का परिवार मेरे पास है और गरीब गोखले आज सायंकाल विधिपूर्वक जला दिया जायेगा। वह वास्तव में योद्धा की भाँति लड़ा था। मेरा निवेदन है कि आप मुझे राजा के परिवार के भार से मुक्त कर दें, क्योंकि मैं उनके साथ रहकर कोई उपयोगी काम नहीं कर सकता।" एल्फिस्टन ४ मार्च को वेलसर के स्थान पर जनरल स्मिथ से मिला तथा राजा को अपने अधिकार में ले लिया। राजा अपनी मुक्ति पर बहुत प्रसन्न हुआ। उसके विषय में एल्फिस्टन ने लिखा है—"वह लगभग २० वर्ष का नवयुवक है। हँसमुख तथा निष्कपट है, पर बुद्धिहीन नहीं है। उसकी माता में भी कुछ योग्यता तथा दक्षता है। वह सुन्दर वृद्ध महिला है। उसकी आँखें बहुत सुन्दर हैं। उसका स्वभाव बहुत अच्छा है और कहा जाता है कि उसमें अनेक गुण हैं।"

९. **ब्रिटिश घोषणा—बाजीराव के कष्ट**—शीघ्र ही पेशवा का सर्वनाश करने के लिए एल्फिस्टन ने पेशवा के अधीन अधिकारियों को उसकी सेवा छोड़ने के लिए प्रलोभन दिया। गवर्नर जनरल की आज्ञा से उसने एक घोषणा प्रकाशित की, जिसमें बाजीराव के विरुद्ध ब्रिटिश पक्ष का प्रतिपादन किया गया था। यह घोषणा इस प्रकार थी—"जब से बाजीराव ने शासन ग्रहण किया, तभी से नाना प्रकार के राजद्रोह तथा विद्रोह होते रहे हैं। उसके शासनाधीन प्रदेश में उसकी सत्ता कभी स्थापित न हो सकी। होल्कर विद्रोह कर रहा था, तब उसने अपने देश को छोड़ दिया और कातरभाव से बसई पहुँचकर ब्रिटिश सरकार के साथ सन्धि कर ली। सम्मानित कम्पनी की सेनाओं की सहायता से वह अपने शासन पर पुनः स्थापित हो गया और कम्पनी की रक्षा में देश की समृद्धि पुनः जीवित हो उठी। कम्पनी सरकार की इच्छा थी कि न्याय के सिद्धान्तों के अनुसार गायकवाड़ शासन के साथ उसका झगड़ा निपटा दे। गायकवाड़ सरकार ने कम्पनी के आश्वासन पर अपने दूत गंगाधर शास्त्री को पूना भेजा। बाजीराव के एक सार्वजनिक अधिकारी ने पण्ढरपुर की पवित्र

भूमि पर इस शास्त्री की हत्या कर दी। कम्पनी सरकार ने हत्यारे त्रिम्बकजी के समर्पण की माँग प्रस्तुत की। एक विशाल सेना एकत्र करनी पड़ी, तब कहीं वह हमारे अधिकार में किया जा सका। इसके बाद बाजीराव ने विदेशी शासकों को पत्र भेजे तथा उनको अपनी सेनाओं को तैयार रखने की प्रेरणा दी। उसका उद्देश्य कम्पनी सरकार को युद्ध में फँसाकर उसकी क्षति करना था। पेशवा ने घोषणाएँ कीं तथा बार-बार अनेक रूपों में उनकी आवृत्ति की कि उसका राजनीतिक अस्तित्व एवं सुख-शान्ति का उपभोग केवल कम्पनी सरकार के कारण है। उन पर ध्यान देकर पेशवा के साथ नवीन सन्धि निश्चित की गयी, जिससे कि उसकी सत्ता सुरक्षित रहे तथा वह उपद्रव करने के साधनों से वंचित कर दिया जाये। इसके बाद कम्पनी के शासन का निश्चय पिण्डारियों के दमन के उपाय करने के सम्बन्ध में हुआ। बाजीराव ने स्वीकार किया कि ये उपाय उसके लिए बहुत कल्याणकारी होंगे। इस कार्य में उसने अपना हार्दिक सहयोग भी प्रस्तुत किया। इस बहाने उसने अपना धन कम्पनी के हितों के विरुद्ध उद्देश्य रखने वाले विदेशी शासकों के पास भेज दिया। तब उसने अकस्मात असनी सेना को सुसज्जित करके कम्पनी की सेनाओं पर आक्रमण कर दिया। उसने ब्रिटिश प्रतिनिधि के निवास-स्थान तथा उसकी छावनी लूट ली और भस्म कर दी। तलेगाँव के समीप उसने दो ब्रिटिश अधिकारियों का बध भी कर दिया। पेशवा ने गंगाधर शास्त्री के हत्यारे त्रिम्बकजी डैंगले को अपने साथ कर लिया है। कम्पनी की सरकार को विश्वास है कि बाजीराव अपने राज्य पर शासन करने में अयोग्य है। उसे समस्त सार्वजनिक अधिकारों से वंचित करने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। उसके पीछे एक छोटी-सी सेना लगा दी गयी है। थोड़े-से समय में किसी भी वस्तु का सम्बन्ध बाजीराव से नही रह जायेगा तथा सतारा के राजा की वृद्धि के उपाय किये जायेंगे। अपने पद तथा गौरव और अपने दरबार के पद एवं गौरव की रक्षा करने के लिए उसे राज्य दिया जायेगा। इन उपायों को क्रियान्वित करने के लिए महाराजा का ध्वज सतारा के गढ़ पर फहरा दिया गया है तथा उसके अनुयायियों को सन्तोषजनक आश्वासन दिये गये हैं। महाराजा अपने प्रदेशों पर प्रशासन करेगा। जो प्रदेश माननीय कम्पनी के लिए सुरक्षित कर दिये गये हैं, उसका शासन इस प्रकार किया जायेगा कि वेतनों, इनामों तथा निर्वाहों को कोई हानि न पहुँचे। प्रत्येक व्यक्ति अत्याचार तथा दुराचार से सुरक्षित हो जायेगा। जो लोग बाजीराव की सेवा में हैं उनको चाहिए कि वे यह सेवा छोड़ दें तथा दो महीने के अन्दर अपने निवास-स्थानों को वापस चले जायें। यदि वे ऐमा नहीं कर सके तो नष्ट हो जायेंगे। बाजीराव की सेवा में जो सार्वजनिक अधिकारी हैं, उनको चाहिए कि वे

अपनी सूचना भेज दें तथा अपने घरों को वापस हो जायें। उन्हें बाजीराव को कोई सहायता अथवा राजस्व कर का कुछ भी धन नहीं देना चाहिए। सार्वजनिक अधिकारी बाजीराव को सहायता देंगे तो उनके वेतनों और सार्वजनिक भूमियों का अपहरण कर लिया जायेगा। दिनांक ११ फरवरी, १८१८—५ रबीउल आखिर।"[१७]

इस घोषणा से बाजीराव की समस्त आशाओं पर तुषारापात हो गया। अंग्रेजों ने छत्रपति को सतारा स्थित उसकी गद्दी पर बैठा दिया तथा घोषणा में विस्तारपूर्वक वर्णित उपाय कार्यान्वित कर दिये। प्रस्ताव से लाभ उठाकर बाजीराव के बहुत-से अनुचरों ने उसका पक्ष त्याग दिया। मुख्य ब्रिटिश सेना उसके पीछे लगा दी गयी तथा जनरल प्रिज्लर के अधीन एक अन्य दल उन मराठा गढ़ों को हस्तगत करने के लिए संगठित किया गया, जिन पर इस समय भी बाजीराव के प्राचीन रक्षकों का अधिकार था।

अब कोई स्थान ऐसा नहीं रह गया जहाँ बाजीराव जा सके। वह उत्तर में इस आशा से बढ़ा कि दौलतराव शिन्दे तथा नागपुर का अप्पा साहेब उसको शरण देंगे। परन्तु शरण देने के स्थान पर उसे अप्पा साहेब से सहायता का दुःख भरा आह्वान प्राप्त हुआ। अब इस प्रकार की विचित्र स्थिति उत्पन्न हो गयी जैसी दो डूबते हुए मनुष्यों द्वारा परस्पर सहायता की याचना से होती है। बाजीराव ने गोदावरी को पार किया तथा बिना किसी विशेष योजना के बरार होता हुआ चाँदा की ओर चल दिया। अप्रैल के आरम्भ में वह वर्धा पहुँचा तथा यह जानकर बहुत दुखी हुआ कि अप्पा साहेब पहले ही बन्दी बनाकर किसी दूसरे स्थान को भेजा जा रहा है। वह वापस होने पर विवश हो गया और तभी कर्नल ऐडम्स ने उसको आ दबोचा। उसने १७ अप्रैल को माहुर तथा उमरखेड़ के बीच शिवनी के समीप पेशवा पर अग्नि-वर्षा आरम्भ कर दी। बाजीराव भयभीत होकर अपनी प्राणरक्षा के लिए घोड़े पर तेजी से भाग निकला तथा थोड़े-से अनुचर साथ लेकर खानदेश से वेगपूर्वक भागा। उसने ५ मई को ताप्ती पार की। पेशवा को उस समय शिन्दे द्वारा अधिकृत आशिरगढ़ में शरण प्राप्त होने की आशा थी। वास्तव में गढ़ के रक्षक यशवन्तराव लाड को अपने स्वामी की गुप्त आज्ञा प्राप्त हुई थी कि वह पेशवा को आने दे तथा रक्षा करे।[१८]

---

१७ ब्लैकर कृत मराठा युद्ध, पृ० ४६२। मिल तथा विल्सन, जिल्द ८, पृ० ६०१

१८ मिल द्वारा उद्धृत पत्र, जिल्द ८, पृ० ६०५

परन्तु भिन्न-भिन्न दिशाओं से ब्रिटिश सेनाओं के बड़े-बड़े दल उस स्थान पर टूट पड़े तथा लाड ने देख लिया कि वह बाजीराव को किसी भी प्रकार की सहायता देने में असमर्थ है। भगोड़े पेशवा को उस समय जो कष्ट भोगने पड़े या उसके समक्ष उपस्थित थ, उसका वर्णन एक मराठी गीतिकाव्य में इस प्रकार है :

(गद्यानुवाद)

"राजभवन के भोग-विलास में पालित-पोषित श्रीमन्त इस समय जंगलों मे भ्रमण कर रहा है। कड़ी धूप में उसको काँटों तथा झाड़ियों से होकर अपना मार्ग निकालना पड़ता है। वह अपने घोड़े की स्वयं मालिश करता है तथा घास-दाना देता है। वह एक छोटी पतली चद्दर को असम भूमि पर बिछा लेता है और उसी पर रात्रि व्यतीत करता है। कभी सूर्यास्त के पहले और कभी अर्द्धरात्रि के बाद चावल उसको खाने के लिए मिल जाते हैं। वह उनको लकड़ी के प्याले में रखकर खा लेता है। प्रत्येक विश्राम स्थान पर उसके कृपापात्र सेवक साथ छोड़ते चले जाते हैं। हा ! बालाजी विश्वनाथ के परिवार के किसी भी व्यक्ति की ऐसी दशा कभी नहीं हुई। हाथी, घोड़े, ऊँट, धन सभी कुछ पीछे छूटता जा रहा है। बाजीराव को अपने जीवन में न जाने कितना कष्ट सहन करना होगा। मार्ग में उसकी आँखों से आँसू टपक पड़ते हैं। जब किसी से उसकी भेंट हो जाती है, तब वह ये शब्द कहता है—यह हमारा अन्तिम मिलन है। यदि आप जीवित रहें तो कृपा रखें तथा मिलें।"

यह करुणा भरा वर्णन पेशवा के दुखों को यथार्थ रूप से प्रतिबिम्बित करता है। पेशवा ने दौलतराव शिन्दे को एक करुण पत्र लिखा, जिसमें अपने पूर्वजों, उसके वंश पर की गयी कृपा तथा उदारता का वर्णन किया गया था और बाद में अपनी संकटग्रस्त दशा में उसकी सहायता की याचना थी। वह पत्र अपने उद्दिष्ट स्थान पर न पहुँच सका। यदि पहुँचा भी होता तो दौलतराव क्या कर सकता था ? वह पत्र माल्कम ने पकड़ लिया। वह नर्मदा क्षेत्र में भगोड़े पेशवा की गतिविधि को ध्यानपूर्वक देख रहा था। केवल अबा पुरन्दरे तथा विंचूरकर को छोड़कर लगभग समस्त सरदारों तथा उसके भाई ने भी इस समय उसका साथ छोड़ दिया था। उसने दौलतराव शिन्दे के पास पहुँचने का यथाशक्ति प्रयत्न किया। परन्तु यह ऐसा करने में समर्थ न हो सका, क्योंकि धूलकोट के समीप समस्त दिशाओं से ब्रिटिश सेनाओं ने उसको अति समीप से घेर लिया था। यह स्थान नर्मदा के समीप था तथा इस पर शिन्दे का अधिकार था। अब केवल एक आश्रय अर्थात अपनी रक्षा के लिए माल्कम की उदारता को जाग्रत करना रह गया था। अतः धूलकोट से उसने अपने सन्देशवाहकों—

आनन्दराव चन्दावरकर तथा रामचन्द्र भोजराज—को माल्कम के पास अपने व्यक्तिगत पत्र के साथ भेजा, जिससे वे उस अधिकारी के प्रति उसकी आत्म-समर्पण की शर्तों पर बातचीत करें। बाजीराव के कार्यकर्ता १७ मई को मऊ पहुँचे तथा उनको मालूम हुआ कि माल्कम बाजीराव को नाममात्र की सत्ता भी पुनः दिलाने की आशा नहीं दे सकता। उसने कहा कि बाजीराव उपाधि या राज्य के प्रति अपने समस्त अधिकार खो चुका है। यदि वह बिना शर्त के तुरन्त अधीनता स्वीकार कर ले तथा अन्यायपूर्वक छेड़ा गया युद्ध समाप्त कर दे तो शायद वह अपनी सरकार को उसकी पतित दशा पर दया तथा उदारता-पूर्वक ध्यान देने को राजी कर सकेगा। उसने कहा—"अब विरोध करने में कोई लाभ नहीं है। पेशवा को चाहिए कि वह अपने को ब्रिटिश सरकार की कृपा पर छोड़ दे। इस प्रकार वह सर्वनाश से बच जायेगा।" इस पर मराठा दूत ने माल्कम से याचना की कि वह शिविर में उसके स्वामी से मिलने की कृपा करे। माल्कम ने इस प्रार्थना को तो अस्वीकार कर दिया, परन्तु एक विश्वस्त अधिकारी भेज दिया कि वह पेशवा से मिले और उसके द्वारा समर्पण की शर्तों पर वार्तालाप करे। इस कार्य के लिए माल्कम ने मद्रास सेना के लेफ्टीनेण्ट लो को चुना तथा उसको पूर्ण और विस्तृत निर्देश दे दिये। इनमें पेशवा की व्यक्तिगत रक्षा का आश्वासन भी था। माल्कम स्वयं पेशवा के शिविर की ओर गया तथा उसे अपने परिवार एवं समीपवर्ती अनुचरों सहित आत्मसमर्पण करने के लिए निमन्त्रित किया।

१०. **माल्कम के प्रति पेशवा का आत्मसमर्पण**—ठीक इसी समय माल्कम को समाचार मिल गया कि नागपुर का अप्पा साहेब कारागार से भाग गया है। उसने बाजीराव से चलने वाले वार्तालाप को इस घटना की प्रति-क्रिया से सुरक्षित रखना आवश्यक समझा। अतः उसने पेशवा के साथ व्यक्ति-गत भेंट के प्रभाव की परीक्षा लेने का निश्चय किया। ३१ मई को रक्षा-दल के ३०० पुरुषों के साथ माल्कम खेड़ी नामक गाँव गया, जहाँ पेशवा भी आ गया था। उसके पास करीब २ हजार सवार, ८०० पैदल तथा दो तोपें थीं। प्रथम जून को इंगलिश जनरल पेशवा के शिविर में गया और उसको दीन तथा उदास दशा में पाया। गुप्त वार्तालाप के लिए दोनों एक छोटे-से डेरे में चले गये। पेशवा के साथ दो परामर्शदाता थे तथा माल्कम अकेला था। यह भेंट बहुत दुखद रही। "भाग्यहीन पेशवा बहुत देर तक अपने दुखों तथा भय के विषय पर तत्परतापूर्वक बातचीत करता रहा। उसने विश्वास दिलाया कि वह निर्दोष तथा दया का पात्र है और उसे सच्चे मित्र की आवश्यकता है। उसने कहा कि मेरे परिवार के व्यक्ति भी रक्त का सम्बन्ध भूल गये हैं। इस

दुखपूर्ण दशा में माल्कम के अतिरिक्त वह किसी मित्र का आश्रय नहीं ले सकता। अपनी आँखों में आँसू भरकर उसने माल्कम से अपनी रक्षा तथा सहायता की याचना की।"

इसका माल्कम ने नम्रता परन्तु दृढ़तापूर्वक इस प्रकार उत्तर दिया—"मैं वास्तव में आपका सच्चा मित्र हूँ, परन्तु यह मित्र का कर्तव्य नहीं है कि वह आपको झूठी आशाएँ दिलाये। अब समय आ गया है कि आप अपने समस्त धैर्य तथा साहस से कार्य करें और वीरोचित दृढ़ता से अपने मन्द भाग्य को सहन करें। यह निश्चय कर लिया गया है कि आप शासक नहीं रह सकते। दक्षिण के किसी भाग में आपका रहना भी असम्भव है। श्रीमन्त की जाति समस्त युगों में अपने साहस के लिए प्रसिद्ध रही है। ब्राह्मण ललनाएँ अपने पतियों की चिताओं पर सती हो गयी हैं। पुरुषों ने अपने इष्टदेव को प्रसन्न करने के लिए पर्वतों की चोटियों से कूदकर अपना बलिदान कर दिया है। आपको तो ऐसा कोई बलिदान नहीं करना पड़ा। आपसे केवल इसी बलिदान की अपेक्षा है कि आप अपनी अधिकृत सत्ता त्याग दें। आप इसे पुनः प्राप्त करने की आशा नहीं कर सकते। यह आपके दुर्भाग्य का स्थल रहा है, अतः इस देश को छोड़ दीजिए। आपको केवल यही बलिदान करना है और इसके बदले में आपको सुरक्षित आश्रय-स्थान तथा उदार निर्वाह-वृत्ति मिल जायेगी।"

इन सबके प्रति बाजीराव सहमत हो गया, परन्तु उसने इन कठोर शर्तों का रूप-परिवर्तन करने के लिए जी-तोड़ प्रयत्न किया। माल्कम ने उत्तर दिया कि इन मूलभूत शर्तों के शिथिल किये जाने की आशा नहीं है। पेशवा को चाहिए कि वह अपने को ब्रिटिश सरकार की उदारता पर छोड़ दे, अन्यथा सामना करने के लिए तैयार हो जाये।

अब पेशवा में सामना करने की कोई शक्ति नहीं रह गयी थी। वह केवल विजेता की उदारता से ही कुछ आशा कर सकता था। उसने कहा—"नहीं! मैं आपके पास हूँ। आप मेरे मित्र हैं। मैं आपको नहीं छोड़ूँगा। एक समय मेरे तीन मित्र थे—वेलेजली, क्लोज तथा माल्कम। पहला यूरोप में है—वह बड़ा आदमी है। दूसरा स्वर्ग में है। केवल आप यहाँ हैं। क्या नष्ट पोत का नाविक अभीष्ट बन्दरगाह पर पहुँचकर उसको छोड़ने की इच्छा कर सकता है?"

परन्तु जनरल अपने निश्चय से डगमगाने वाला न था। उसने उत्तर दिया—"आज ही सायंकाल को मैं आपके पास वे प्रस्ताव भेज दूंगा जो मुझको अपनी सरकार की ओर से मिले हैं। यदि वे २४ घण्टे के अन्दर स्वीकार नहीं

किये गये तो आपके साथ अविलम्ब शत्रु तुल्य व्यवहार किया जायेगा।'' जब माल्कम चलने लगा तो बाजीराव ने धीरे से उसके कान में कहा—''अब मुझको अपनी सेना पर कोई शक्ति या अधिकार नहीं है। मुझको स्पष्ट अवज्ञा का भय है। आपको जाने देने की मेरी बिलकुल इच्छा नहीं है। इसका कारण यह है कि आपकी उपस्थिति में मेरी स्वाधीनता तथा प्राण सुरक्षित होने की भावना है।''

रात को दस बजे माल्कम अपने डेरे को वापस आया। प्रातःकाल ही पेशवा की स्वीकृति के लिए प्रस्ताव भेज दिये गये। इनमें ये शर्तें थीं :

१. पेशवा द्वारा सत्ता का परित्याग।

२. माल्कम के प्रति आत्मसमर्पण। उसके पास केवल थोड़े-से अनुचर रहेंगे तथा उसके साथ सम्मानपूर्वक व्यवहार का आश्वासन दिया जायेगा। वह बनारस या गवर्नर जनरल द्वारा उसके निवास के लिए निश्चित किसी अन्य स्थान को सकुशल पहुँचा दिया जायेगा।

३. वह उत्तर की ओर अपनी यात्रा पर तुरन्त चल पड़े। उसके परिवार को उसके पास पहुँचने की अनुमति बाद में दी जायेगी।

४. अपने तथा अपने परिवार के निर्वाहार्थ उसको उदार वृत्ति दी जायेगी। वृत्ति की मात्रा गवर्नर जनरल द्वारा निश्चित होगी, परन्तु माल्कम वचन देता है कि यह ८ लख प्रतिवर्ष से कम न होगी।

५. बाजीराव के प्रति अनुरक्ति के कारण सर्वनाश सहन करने वाले जागीरदारों तथा वृद्ध अनुयायियों, चरित्रवान ब्राह्मणों तथा अब तक पेशवा द्वारा सहायता-प्राप्त धार्मिक स्थानों के सम्बन्ध में बाजीराव की प्रार्थनाओं और याचनाओं पर उदारतापूर्वक ध्यान दिया जायेगा।

६. बाजीराव स्वयं २४ घण्टे के अन्दर माल्कम के शिविर में आ जाये।

इनके अतिरिक्त माल्कम की माँग थी कि बाजीराव अपने मन्त्री त्रिम्बकजी डैंगले का समर्पण कर दे। पेशवा ने सविनय कहा कि शक्तिशाली सेना का स्वामी होने के कारण डैंगले को पकड़ लेना उसके बूते की बात नहीं है। पेशवा ने अपने मन्त्री का त्याग कर दिया तथा माल्कम को सूचना भेज दी कि अंग्रेज उसके साथ इच्छानुसार व्यवहार कर सकते हैं। परन्तु इस विषय में भी दुष्ट पेशवा अपनी नीच चाल से नहीं चूका। उसने अपने कुछ अनुयायियों को डैंगले के पास से वापस बुलाने की आज्ञा माँगी तथा इस बहाने उसके पास सन्देश भेज दिया कि वह किस प्रकार बन्दी होने से बच सकता है।

बाजीराव ने माल्कम के शिविर को कुछ और सन्देश भी भेजे, जिनमें विलम्ब के कारणों के रूप में कुछ नये प्रस्ताव थे। परन्तु माल्कम ने उनको

स्वीकार करने से इनकार कर दिया तथा उनको वापस भेज दिया। वह निश्चिय समय पर पेशवा के शिविर पर आक्रमण करने की तैयारी कर रहा था। अगले दिन उसके शिविर से कुछ दूरी पर मालकम को एक सवार अपनी ओर आता हुआ मिला। मालकम ने पूछा—"क्या तुम्हारा स्वामी आ रहा है ?" दूत ने उत्तर दिया—"यह दिन अशुभ है।" "वास्तव में पेशवा के लिए यह दिन अशुभ होगा, यदि वह यहाँ पर दो घण्टे के अन्दर नहीं पहुँच जाता।" दूत ने कहा—"वह पहरे वालों और सन्तरियों से डर रहा है।" मालकम ने उच्च स्वर से कहा —"भाग जाओ।" बाद में उसने लेफ्टिनेण्ट लो को पहले से ही पेशवा के पास पहुँच जाने को भेज दिया। ३ जून की प्रातः १० बजे पेशवा पहुँच गया। वह उदास तथा निराश था। उसने आत्मसमर्पण कर दिया। इस प्रकार दुखद नाटक के अन्तिम दृश्य का अभिनय हुआ और परदा गिर पड़ा। पेशवा की श्रीमन्त की उपाधि छिन गयी। अब वह महाराज कहा जाने लगा। लार्ड हेस्टिंग्ज ने मालकम द्वारा स्वीकृत शर्तों के लिए उचित समय पर अपनी अनुमति प्रदान कर दी, परन्तु उसने उस भारी वृत्ति के प्रति आपत्ति की, जिसका वचन मालकम ने दिया था। मालकम ने आग्रहपूर्वक कहा कि बाजीराव को अपने भाई अमृतराव से कम वृत्ति नहीं दी जा सकती, यद्यपि वह पेशवा नहीं है।"[१९]

बाजीराव द्वारा १२ जून को नर्मदा पार कर लेने पर उसकी सेना भंग कर दी गयी। उत्तर को जाते हुए उसके परिचारी वर्ग में ६०० सवार, २०० पैदल तथा रामचन्द्र पन्त सूबेदार, बलोबा सलफड़े तथा अन्य आश्रितजन थे। बाजीराव की प्रार्थना पर लेफ्टिनेण्ट लो को उसके साथ रहने की आज्ञा दी गयी। बिठूर तक वह धीरे-धीरे गया, क्योंकि उसके अन्तिम निवास-स्थान के निश्चय करने में कुछ समय लग गया। वह अजमेर होकर गया तथा कई महीने मथुरा में व्यतीत किये। मुंगेर या गोरखपुर की अपेक्षा उसने बनारस को अच्छा समझा, यद्यपि इन स्थानों का भी सुझाव रखा गया था। अन्त में कानपुर के समीप बिठूर का स्थान पसन्द किया गया। यहाँ पर वह फरवरी, १८१९ में पहुँच गया। यहीं पर २८ जनवरी, १८५१ को उसका देहान्त हुआ।

बाजीराव ने बिठूर में अपने जीवन को धार्मिक कृत्यों में व्यतीत किया। अपनी सत्ता, पद या मराठा राज्य के स्वातन्त्र्य के नाश पर उसको प्रत्यक्ष रूप से कोई शोक या पश्चात्ताप नहीं था।

---

[१९] इस विषय पर एक विवाद उपस्थित हो गया, जिसका अध्ययन काये कृत 'मालकम की जीवनी' में किया जा सकता है, जिल्द २, पृ० २३७-५४

तिथिक्रम

अध्याय १७

१७७७	शाहू द्वितीय का छत्रपति के रूप में गोद लिया जाना।
८ जुलाई, १७८९	कैप्टिन ग्रांट डफ का जन्म।
१८ जनवरी, १७९३	प्रतापसिंह का जन्म।
१७९५	रामचन्द्र भाऊ साहेब का जन्म।
१८०५	शाहजी अप्पा साहेब का जन्म।
१८०५	चतरसिंह सबलगढ़ की सभा में।
४ मई, १८०८	शाहू द्वितीय की मृत्यु—प्रतापसिंह उसका उत्तराधिकारी।
अगस्त, १८१०	चतरसिंह बड़ौदा में।
१० फरवरी, १८११	चतरसिंह का पकड़ा जाना और हिरासत में रखा जाना।
४ मार्च, १८१८	प्रतापसिंह तथा एल्फिन्स्टन की भेंट।
१० अप्रैल, १८१८	प्रतापसिंह सतारा में प्रतिष्ठापित।
१५ अप्रैल, १८१८	चतरसिंह की मृत्यु।
जुलाई, १८१८	त्रिम्बकजी डेंगले का पकड़ा जाना तथा चुनारगढ़ में उसकी नजरबन्दी।
१५ सितम्बर, १८१९	प्रतापसिंह की स्थिति स्पष्ट करने के लिए सन्धि।
१८२०	यशवन्तराव लाड की मृत्यु।
५ अप्रैल, १८२२	प्रतापसिंह को शासक के अधिकार प्राप्त।
अप्रैल, १८२२	ग्रांट डफ द्वारा अवकाश ग्रहण—सतारा में ब्रिग्स उसका उत्तराधिकारी।
१ सितम्बर, १८२४	बिशप हीबर का डेंगले से वर्तालाप।
१८२६	ग्रांट डफ कृत "मराठों का इतिहास" प्रकाशित।
१० अक्तूबर, १८२९	त्रिम्बकजी डेंगले की मृत्यु।
जून, १८३०	चिमनाजी अप्पा की मृत्यु।
४ सितम्बर, १८३९	प्रतापसिंह राजच्युत—शाहजी प्रतिष्ठापित।
१४ अक्तूबर, १८४७	प्रतापसिंह की मृत्यु।

५ अप्रैल, १८४८	शाहजी अप्पा साहेब की मृत्यु—सतारा का राज्य अपहृत ।
जून, १८५७	नाना साहेब सिपाही विद्रोह में सम्मिलित ।
१८ जून, १८५८	झाँसी की रानी की रणभूमि में मृत्यु ।
२३ सितम्बर, १८५८	ग्रांट डफ की मृत्यु ।

अध्याय १७

अन्तिम दृश्य

[१८१८-१८४८ ई०]

१. चतरसिंह भोंसले तथा छत्रपति का परिवार। **२. प्रतापसिंह की सतारा में स्थापना।**
३. विजित प्रदेश का प्रबन्ध। **४. प्रतापसिंह की दुखद कथा।**
५. मराठा पतन के कारण। **६. संस्मरण।**

१. चतरसिंह भोंसले तथा छत्रपति का परिवार—१७४६ में शाहू प्रथम की मृत्यु के बाद सतारा का छत्रपति मराठा राजनीति में केवल शून्य तुल्य ही नहीं हो गया, अपितु शनैः-शनै पेशवा के हाथों में उसकी स्थिति प्रायः बन्दी की सी हो गयी। सतारा के गढ़ में उस पर कठोर पहरा लगा हुआ था। उस पर इतने प्रतिबन्ध लगे थे कि उसका तथा उसके परिवार का जीवन असह्य हो गया था। अब छत्रपति का कर्तव्य केवल नवीन पेशवा के अधिकार ग्रहण करने पर उसको पेशवा के अधिकृत वस्त्र भेज देना रह गया था। शाहू के उत्तराधिकारी रामराजा का देहान्त १७७७ में हो गया, परन्तु उसने मरने के पहले वावी निवासी त्रिम्बकजी भोंसले के ज्येष्ठ पुत्र विठोजी को गोद ले लिया। अब वह शाहू द्वितीय के नाम से उसका उत्तराधिकारी हुआ। इसके बाद त्रिम्बकजी अपने परिवार तथा अपने कनिष्ठ पुत्र चतरसिंह के साथ सतारा आकर रहने लगा। नवीन छत्रपति (जन्म लगभग १७६३) पुष्ट शरीर वाला नवयुवक था। अपना उच्च पद ग्रहण करते समय उसको अपने परिवार की दशा को सँभाल लेने की पूर्ण आशा थी। वह सोचता था कि जहाँ तक मेरे वश की बात होगी, मैं मराठा राज्य की सेवा करने का यत्न करूँगा। परन्तु शीघ्र ही उसकी आँखें खुल गयीं। उसको पता चल गया कि छत्रपति की गद्दी पर आरोहण के कारण उसकी दशा उन्नत होने के स्थान पर और भी बिगड़ गयी है। विशेषकर नाना फड़निस के दीर्घ शासनकाल में, जिसने राजपरिवार की वृत्तियों को कम करके उन पर अधिक प्रतिबन्ध लगा दिये थे। पूना की सरकार छत्रपति को केवल एक खर्चीला पुछल्ला मानती थी, जिसका कोई निश्चित कार्य नहीं था। उसका समस्त परिवार अपनी दास तुल्य स्थिति से चढ़ने लगा तथा उन्होंने पेशवा सरकार की स्थिति को खोखला

करने योग्य कोई अवसर हाथ से नहीं जाने दिया। वे प्राय: पेशवा से लड़ने या उपद्रव करने में पेशवा के विरुद्ध कोल्हापुर के राजा का साथ देते थे। विशेषकर चतरसिंह को अपमान की यह स्थिति असह्य जान पड़ी तथा इस दुख को मिटाने के लिए वह उपाय करने लगा। उसका जन्म १७७३ में हुआ था। वह वीर तथा होनहार बालक था। उसे अपने उच्च-वंश पर गर्व था। उसने मराठा राज्य के पुनरुज्जीवन का स्वप्न देखा तथा अनेक विषम तत्त्वों के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया।

राजा शाहू द्वितीय की रानी आनन्दीबाई माई साहेब के तीन पुत्र हुए थे—प्रतापसिंह बाबा (जन्म १८ जनवरी, १७९३), रामचन्द्र भाऊ साहेब (जन्म १७९५) तथा शाहजी अप्पा साहेब (जन्म १८०५)। इस महिला का वर्णन करते हुए एल्फिस्टन मुक्त-कंठ से प्रशंसा करता है। वह कहता है—"वह मेधाविनी है, गुणसम्पन्न तथा व्यवहारकुशल है, उसका आचरण सुन्दर है तथा वह शुभ गुणों से युक्त है।" एक अन्य इंगलिश सज्जन लिखते हैं—"माई साहेब घोड़े की सवारी में निपुण है। उसकी स्वाभाविक रूप से सुन्दर आकृति शोभन मराठा वस्त्रों में निखर उठती है। वह परदा नहीं करती तथा अपने मधुर निष्कपट वार्तालाप द्वारा दर्शकों पर तुरन्त प्रभाव डाल लेती है। उसका स्तर उच्च तथा नैतिक है और उसमें असाधारण क्षमता है। भारतीय महिलाओं की स्वाभाविक भीरुता उसको छू तक नहीं गयी है। मुझे उसके तीनों पुत्रों में बहुत रुचि है। उनका पारस्परिक तथा माता के साथ प्रेम, सारल्य एवं अनुरक्ति दर्शनीय है।"[1]

४ मई, १८०८ को राजा शाहू द्वितीय का देहान्त हो गया। उसका उत्तराधिकारी प्रतापसिंह हुआ। पेशवा बाजीराव द्वितीय को राजपरिवार के इन व्यक्तियों के साथ कोई विशेष प्रेम न था, अत: माई साहेब तथा वीर साहसी चतरसिंह बाजीराव के पुन: प्रशासन के कारण शीघ्र ही होने वाले नाश से वे अपने हितों की रक्षा करने का उपाय करने लगे। चतरसिंह योग्य साथियों की एक मण्डली एकत्र करके भाग्य की खोज में निकल पड़ा। उसने शर्जाराव घाटगे से मित्रता कर ली। घाटगे ने उसको अनुरोध सहित बाजीराव के पास भेजा, परन्तु बाजीराव उसको बिना दया के कठोर दण्ड का पात्र विद्रोही समझता था। तब लगभग एक हजार व्यक्ति अपने साथ लेकर चतरसिंह पूना से चल दिया। उसको यह देखकर बहुत दुख हुआ कि बाजीराव ने अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार कर ली है। उसने उस समय अंग्रेजों के साथ युद्ध में व्यस्त दौलतराव शिन्दे से भी व्यर्थ ही प्रार्थना की। इस समय उसके

---

[1] कोल ब्रुक कृत 'एल्फिस्टन की जीवनी', जिल्द २, पृ० ३५

अनेक सतारा निवासी मित्र उसके साथ हो गये थे। उन्होंने नागपुर जाकर रघुजी भोंसले से गम्भीर परामर्श किया। उसने चतरसिंह तथा उसके साथियों को १५ हजार मासिक वेतन पर नौकर रख लिया। कुछ दिन बाद १८०५ की ग्रीष्म ऋतु में सबलगढ़ नामक स्थान पर वह दौलतराव शिन्दे से उसके द्वारा आयोजित सम्मेलन के अवसर पर मिला। सम्मेलन व्यर्थ रहा, अतः चतरसिंह दिल्ली जाकर लार्ड लेक से मिला। अंग्रेजों की सेवा में वह सरलता-पूर्वक नौकरी प्राप्त कर सकता था, परन्तु इस अवसर को अस्वीकृत करके उसने ब्रिटिश विजयों से मराठा राज्य की रक्षा में व्यस्त यशवन्तराव होल्कर का साथ दिया। जोधपुर के राजा मानसिंह तथा उदयपुर के राणा ने उसका भव्य स्वागत किया। परन्तु उसे मराठा राज्य के पुनरुज्जीवन के लिए आशा की एक भी किरण कहीं दिखायी नहीं पड़ी। कान्होजी गायकवाड़ नामक एक अन्य नवयुवक वीर से उसकी भेंट हो गयी जो उसी की भाँति गायकवाड़ राज्य का नाश रोकने के निमित्त प्रयत्नशील था। मालवा में मन्दसौर नामक स्थान पर दोनों नवयुवकों की भेंट हुई। वे गुजरात गये, परन्तु कोई निश्चित परिणाम प्राप्त न कर सके। तब चतरसिंह उज्जैन वापस आया। वहाँ उसको मालूम हुआ कि सतारा में उसके भाई शाहू द्वितीय का देहान्त हो गया है तथा उसकी पत्नी और पुत्र को पेशवा ने निरोध में डाल दिया है। यशवन्तराव होल्कर का मानसिक सन्तुलन नष्ट हो जाने का समाचार पाकर वह और भी अधिक हताश हो गया। तब वह जुलाई, १८०९ में धार गया, जहाँ वह दो वर्ष तक अपने राज्य में आरम्भ होने वाले उपद्रवों के दमन में व्यस्त रहा।

इसी समय बाजीराव ने अपने विश्वासपात्र त्रिम्बकजी डेंगले को किसी न किसी शक्य उपाय से विद्रोही चतरसिंह का दमन करने की आज्ञा दी। त्रिम्बकजी ने चतरसिंह के पास अपने दूत भेजे और बाजीराव के नाम से पदोन्नति के दिखावटी वचन देकर उसको सतारा बुलाया। अपने परिभ्रमणों से तंग आकर अगस्त, १८१० में चतरसिंह बड़ौदा पहुँचा और उसने गंगाधर शास्त्री से परामर्श किया। गंगाधर ने कहा—"शक्तिशाली ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध मराठा राज्य के पुनरुज्जीवन विषयक आपकी योजना की सफलता के लिए लेशमात्र भी आशा नहीं है तथा उत्तम मार्ग यही है कि जो कुछ सेवा अंग्रेज आपको देना चाहें, उसको स्वीकार कर लीजिए।" इस परामर्श को अस्वीकार कर चतरसिंह त्रिम्बकजी डेंगले के प्रलोभन में फँस गया तथा गिरना नदी पर स्थित मालेगाँव में उससे मिलने गया। दोनों सरदारों के शिविर आमने-सामने दोनों तटों पर थे। पवित्र शपथों द्वारा त्रिम्बकजी ने चतरसिंह को व्यक्तिगत रूप से अपने पास मिलने आने के लिए राजी कर लिया। १० फरवरी, १८११ को भोज का प्रबन्ध किया गया, जिसमें चतरसिंह

तथा उसके साथी पहुँच गये। व्यक्तिगत वार्तालाप के लिए गुप्त स्थान को जाते समय चतरसिंह तथा उसके साथियों पर सहसा आक्रमण किया गया तथा मालेगाँव के गढ़ में बन्दियों के रूप में उनका निरोध कर दिया गया। इसके बाद चतरसिंह को बेड़ियाँ पहनाकर रायगढ़ के समीप कोंगोड़ी के गढ़ को हटा दिया गया। यहाँ मन्दभाग्य नवयुवक ने कष्टप्रद कारावास के सात वर्ष व्यतीत किये। १५ अप्रैल, १८१८ को मृत्यु ने उसके क्लेशों को समाप्त कर दिया।

चतरसिंह का यह विफल जीवन मराठा राज्य को जकड़ने वाले ह्रास का एक दृष्टान्त है। इसका कारण अन्तिम पेशवा की मूर्खता है जो उसने अनेकानेक उत्साहशील तथा देशभक्त नवयुवकों की सेवाओं का उचित रूप से उपयोग नहीं किया।

२. **प्रतापसिंह की सतारा में स्थापना**—अपने पिता की मृत्यु के बाद शीघ्र ही प्रतापसिंह का अभिषेक हुआ तथा अपनी माता के मार्गदर्शन में उसने छत्रपति का जीवन आरम्भ किया। वे पेशवा की सद्भावना प्राप्त करने तथा अपने जीवन की कठोरता कम करा सकने के प्रयत्न में सफल नहीं हो सके। गंगाधर शास्त्री की हत्या से मराठा राज्य की आशाओं का नाश हो गया तथा प्रत्येक उच्च स्थानीय व्यक्ति केवल अपनी ही रक्षा की चिन्ता करने लगा। प्रतापसिंह तथा उसकी माता ने पूना के रेजीडेण्ट से गुप्त प्रयत्नों द्वारा बाजीराव की दुष्ट योजनाओं के विरुद्ध सहायता की प्रार्थना की। बाजीराव ने अंग्रेजों के विरुद्ध अपना युद्ध आरम्भ करने पर छत्रपति को सपरिवार सतारा से वसौंटा के एकान्त दुर्ग को हटाकर बन्दी कर दिया। इसका वर्णन पहले हो चुका है कि बाजीराव किस प्रकार अपने पलायक युद्ध में छत्रपति को साथ ले गया तथा छत्रपति किस प्रकार १९ फरवरी, १८१८ को अष्टा के रण के बाद अंग्रेजों के हाथों पड़ गया। आवासी एल्फिस्टन ने टामस मुनरो के परामर्श से अपनी प्रसिद्ध घोषणा प्रकाशित की, जिसमें बाजीराव की अपराधशीलता का वर्णन किया गया तथा मराठा शासन के अध्यक्ष पद से उसको च्युत कर दिया गया। एल्फिस्टन तथा जनरल प्रिज्लर ने १० फरवरी को सतारा के गढ़ पर अधिकार कर लिया और वहाँ प्रतापसिंह को उसके पूर्वजों के स्थान पर पुनः स्थापित करने की तैयारी की। एल्फिस्टन तथा प्रतापसिंह ४ मार्च, १८१८ को ससवाड़ के समीप बेलसार नामक स्थान पर परस्पर सप्रेम मिले। वहाँ से एल्फिस्टन छत्रपति को सतारा ले आया और १० अप्रैल को प्रतापसिंह को उसकी पुरानी गद्दी पर बैठा दिया गया। कैप्टिन ग्राण्ट (भावी इतिहासकार) को उसका रेजीडेण्ट तथा संरक्षक, और विश्वस्त

कार्यकर्ता बालाजी पन्त नाटू को उसके सहायक के रूप में नियुक्त किया गया। गवर्नर जनरल की आज्ञा से सतारा के वर्तमान जिले के लगभग बराबर का छोटा-सा प्रदेश छत्रपति द्वारा शासन के लिए दिया गया। इस समय की ब्रिटिश परिस्थिति का संक्षिप्त वर्णन एल्फिस्टन इस प्रकार करता है—"हमने कभी पहले सम्पूर्ण देश की विजय का प्रयास नहीं किया था। एक राजा की स्थापना द्वारा मैसूर की भी रक्षा कर ली गयी थी। अब यही कार्य हम पूना तथा नागपुर में कर रहे हैं। यदि हम असफल रहे (अपनी नीति में सफलता प्राप्त करने में) तो शिन्दे से युद्ध करना होगा। होल्कर विद्रोह करेगा, सिक्ख और गोरखे उसका साथ देंगे और हैदराबाद भी उबल पड़ेगा। यदि किसी मूलभूत स्थान पर आक्रमण किया गया तो अन्य प्रान्तों में भी ज्वाला फैल जायेगी तथा हमारा समस्त साम्राज्य ताश के पत्तों के घर की भाँति धराशायी हो जायेगा। जितना हम पचा नहीं सकते उससे अधिक हड़प लेना निश्चय ही बहुत बुरी योजना है। इतने राज्यों को नष्ट करके तथा उनका क्षेत्र घटाकर हमने कलह के कारण बढ़ा ही दिये हैं, जबकि हमारा उद्देश्य उनको दूर करना था।"[२]

फिर भी गवर्नर जनरल ने पेशवा द्वारा विजित प्रदेश का अधिकांश भाग ब्रिटिश राज्य में मिला लेने का निश्चय किया तथा उसने प्रतापसिंह के शासन के लिए छोटा-सा भाग छोड़ दिया। राजा को आज्ञा हुई कि वह ब्रिटिश सत्ता का मित्र बना रहे। मराठी जनता ने इस व्यवस्था का तुरन्त अनुमोदन नहीं किया, क्योंकि अब छत्रपति तुच्छ शासक की दशा को प्राप्त हो गया था। कुछ समय बाद २५ सितम्बर, १८१९ को प्रतापसिंह के साथ विधिपूर्वक सन्धि की गयी, जिसमें उसके राज्य क्षेत्र तथा अधिपति सत्ता के साथ उसके सम्बन्ध स्पष्ट कर दिये गये। वह न वाह्य शक्तियों के साथ पत्र-व्यवहार कर सकता था और न अपनी सेना बढ़ा सकता था। ब्रिटिश सरकार के प्रति उसको सर्वदा निष्ठा रखनी थी। आरम्भ से ही राजा प्रतापसिंह नाटू से अप्रसन्न हो गया, क्योंकि नाटू के विषय में स्वार्थी एवं षड्यन्त्रकारी होने की प्रसिद्धि थी।

कैप्टिन ग्राण्ट जो प्रतापसिंह से साढ़े तीन वर्ष बड़ा था, सतारा में तीन वर्ष तक बना रहा तथा १८२२ में उसने ३४ वर्ष की आयु में अवकाश ग्रहण किया। इसके कुछ ही समय बाद प्रतापसिंह को प्रशासन के पूर्ण अधिकार दे दिये गये। इस समय ग्राण्ट मराठों के इतिहास के लिए सामग्री संग्रह करने में अधिक व्यस्त रहा। यह सामग्री वह अपने साथ इंगलैण्ड लेता गया। वहाँ

---

२ कोलब्रुक कृत 'एल्फिस्टन की जीवनी', जिल्द २, पृ० ४०-४४

पर उसने अपना महान ग्रन्थ लिखकर १८२६ में प्रकाशित किया। इस ग्रन्थ में शासक जाति के प्रति पक्षपात का कुछ पुट है। कैप्टिन ग्राण्ट ने बाद को अपने मूल नाम के साथ डफ शब्द जोड़ दिया। ६६ वर्ष की आयु में २३ सितम्बर, १८५८ को उसका देहान्त हो गया।[3]

३. विजित प्रदेश का प्रबन्ध—पेशवा के अधीन हो जाने तथा प्रतापसिंह की पुनः स्थापना से १८१८ के युद्ध का मुख्य उद्देश्य पूर्ण हो गया। मराठा सरदारों के अधिकार वाले गढ़ों को जीतने में अधिक समय नहीं लगा। केवल थोड़े-से गढ़ इसके अपवाद थे—उदाहरणार्थ, शोलापुर, थलनेर, आशिर्गढ़ तथा मालेगाँव। इनके कारण विजेताओं को कुछ कम कष्ट नहीं हुआ। शिवाजी की राजधानी रायगढ़ ने ७ मई, १८१८ को प्रिज्लर के प्रति आत्मसमर्पण कर दिया। उस समय अग्निवर्षा के परिणामस्वरूप १६८९ के मुगल अवरोध से बचे हुए शिवाजी के समय के समस्त प्राचीन बहीखाते नष्ट हो गये। शिन्दे के सरदार यशवन्तराव लाड ने आशिर्गढ़ की बलपूर्वक रक्षा की। अन्त में वह बन्दी बना लिया गया। उसकी वीरता से उसके विजेता इस प्रकार प्रभावित हुए कि उसका वध करने के स्थान पर उन्होंने उसे घर जाने की स्वतन्त्रता दे दी। लाड का देहान्त १८२० में अत्यन्त कष्टपूर्ण दशा में हुआ। आशिर्गढ़ में दौलतराव शिन्दे, अप्पा साहेब भोंसले तथा अन्य व्यक्तियों के गुप्त पत्र-व्यवहार की विशाल राशि मिली, जिसका अपने 'संस्मरण' लिखने में माल्कम ने यथेष्ट उपयोग किया।

बाजीराव के प्रति निरन्तर निष्ठापूर्ण रहने वाले इने-गिने मराठा सरदारों में विंचूर का सरदार विट्ठल नरसिंह भी था। उसने अन्तिम समय तक बाजी-राव का पक्ष त्यागने से तथा ब्रिटिश प्रस्तावों का लाभ उठाने से इनकार कर दिया, जिसका परिणाम उसका सर्वनाश हुआ। बाद में वह गवर्नर एल्फिस्टन से मिला तथा अपने दावों के प्रति न्याय करने की प्रार्थना की। उसने कहा कि उसको अपने स्वामी के प्रति निष्ठापूर्ण आचरण का पुरस्कार मिलना

---

3 इंगलैण्ड के एक अल्पसंख्यक वाणिज्य समुदाय द्वारा भारत विजय विस्मय-कारक अद्‌भुत घटना है। इसका स्पष्टीकरण करने के लिए उस समय के अनेक ब्रिटिश अधिकारियों ने कई ग्रन्थ तथा पत्रक लिखे जो एक शताब्दी से अधिक समय तक वास्तविक राष्ट्रीय इतिहास का आसन ग्रहण किये रहे। टाड, माल्कम, विल्कीज, मुनरो, जेंकिन्स, वाकर, दोनों फोर्ब्स, स्वयं डफ को छोड़कर भी, उन अनेक लेखकों में से थोड़े-से व्यक्तियों के नाम हैं, जिन्होंने इस क्षेत्र में आरम्भिक सहायक लेखकों का कार्य किया। बाद में बहुत-सी लीपापोती भी की गयी।

चाहिए, न कि दण्ड। एल्फिस्टन पर इस तर्क का प्रभाव पड़ा, तथा उसने विट्ठल को छोटी-सी जागीर दे दी जो अब तक उसके परिवार के अधिकार में रही।

बाजीराव के दुष्ट कर्मों में मुख्य सहायक त्रिम्बकजी डैंगले बहुत दिनों तक लापता रहा। बाजीराव द्वारा अधीनता स्वीकार करने के बाद उसने विजेता अंग्रेजों को बहुत कष्ट दिया। आत्मसमर्पण की शर्तों के लिए उसने जनरल डवटन से प्रार्थना की। डवटन ने उसकी प्राण-रक्षा के अतिरिक्त और कोई आश्वासन देने से इनकार कर दिया। तब उसका निरन्तर पीछा किया गया। वह बिना किसी निश्चित निवास-स्थान के इधर-उधर घूमा करता तथा अनेक स्थानों में गुप्त रूप से शरण प्राप्त कर लेता था। अन्त में नासिक जिले में डिण्डोरी के समीप स्थित अहिरगाँव में उसका पता लग गया तथा जुलाई, १८१८ में वह चन्दवाड़ के गढ़ में बेड़ियाँ डालकर बन्दी कर दिया गया। ब्रिटिश अधिकारियों ने उसका प्राणहरण न करके उसे बनारस के समीप चुनारगढ़ भेज दिया। यहाँ पर १० वर्ष से अधिक समय तक बन्दी का जीवन व्यतीत करने के बाद १० अक्तूबर, १८२९ को वह मर गया।[४]

बाजीराव के आत्मसमर्पण पर मराठा राज्य का इतिहास समाप्त हो गया बताया जाता है, परन्तु मुझको विश्वास है कि मराठा जाति का इतिहास समाप्त नहीं होता। यह आवश्यक नहीं है कि प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रबन्ध के उस कार्य का वर्णन किया जाये जो एल्फिस्टन तथा उसके पद पर रहने वाले उत्तराधिकारियों ने किया, और न इसका सम्बन्ध उसके आगामी शताब्दी में भारतीय प्रश्नों के निपटाने में ग्रहण किये गये ब्रिटिश राजनीति के रूपों से है। ये ब्रिटिश भारत के इतिहास के अंश हैं, परन्तु अंग्रेजों के अखण्ड लाभों के विषय में कुछ कह देना आवश्यक है। अपहृत जागीरों को छोड़कर बाजीराव के राज्य की आय १८१५ के वृत्तान्त के अनुसार लगभग ९७ लाख वार्षिक थी। इसमें से लगभग २३ लाख आय का प्रदेश सतारा के छत्रपति के लिए अलग निकाल दिया गया। बाजीराव की निर्वाह वृत्ति ८ लाख रुपये प्रतिवर्ष थी। अन्य व्यय चुकाने के बाद ब्रिटिश सरकार के पास ६२ लाख रुपये वार्षिक की अखण्ड आय रह गयी थी। बाद को अपहृत भूमियों से २५ लाख वार्षिक की आय और भी बढ़ गयी। प्रिंसप कहता है कि मराठा राज्य की आय से प्रशासन का व्यय

---

४ बिशप हीबर ११ सितम्बर, १८२४ को कारावास में उससे मिला। उसने डैंगले का रोचक वृत्तान्त लिखा है। डैंगले ने बिशप को बताया कि एल्फिस्टन मित्र तथा शत्रु दोनों था—मित्र इसलिए कि उसने मेरे परिवार का ध्यान रखा और शत्रु इसलिए कि उसने मुझे अपना जीवन कारावास में नष्ट करने पर विवश कर दिया।

निकालने के बाद ब्रिटिश सरकार को ५० लाख रुपये प्रतिवर्ष का अखण्ड लाभ होता था।

एल्फिस्टन ने विजित प्रदेश को तुरन्त ही ४ भागों या कमिश्नरियों में विभाजित कर दिया। कृष्णा के दक्षिण प्रदेश पर उसने मद्रास प्रान्त के योग्य प्रशासक चैप्लिन को नियुक्त किया। इसके कार्य की बाद में बहुत सराहना हुई। एल्फिस्टन के गवर्नर होकर बम्बई जाने पर चैप्लिन पूना का प्रथम कमिश्नर हो गया। कृष्णा तथा नीरा के मध्यवर्ती प्रदेश के प्रबन्ध के लिए कैप्टिन राबर्ट्सन नियुक्त किया गया। यह प्रदेश बाद में प्रतापसिंह को दे दिया गया। हैनरी पाटिंजरे को मध्य कमिश्नरी सौंपी गयी। इस क्षेत्र का विस्तार भीमा के चन्दवाड़ तक था। खानदेश की उत्तरी कमिश्नरी कैप्टिन ब्रिग्स को दी गयी। असाधारण रूप से इन चारों योग्य अधिकारियों ने एल्फिस्टन के निर्देश में राजस्व, पुलिस, न्याय तथा सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक स्थितियों से सम्बन्धित मराठा शासन तथा प्रशासन के विषय में परिश्रमपूर्वक बहुमूल्य ज्ञान-राशि का संग्रह करके सावधानी से लेखबद्ध कर दिया। इस प्रकार उन्होंने स्थायी ख्याति प्राप्त कर ली। एल्फिस्टन ने एक विशाल प्रश्नमाला तैयार करके चारों कमिश्नरों से उसका उत्तर माँगा तथा उनसे विशेष अध्ययन के लिए उपयोगी बहुमूल्य ज्ञान तथा आँकड़े एकत्र कर लिये। जो उत्तर इन चार अधिकारियों ने दिये, उनके आधार पर स्वयं एल्फिस्टन ने विशाल वृत्तान्त लिखा जो इस समय इस प्रान्त की भूतकालीन शासन-प्रणालियों पर उत्तम पुस्तक है।

पटवर्धन परिवार पर बाजीराव की कृपा कभी नहीं रही थी। एल्फिस्टन की घोषणा से लाभ उठाकर वे युद्ध से दूर रहे तथा उन्होंने अपनी जागीरों का प्रमाणीकरण करा लिया। ये जागीरें अब तक उनके पास रहीं। भोर का पन्त सचिव, प्रतिनिधि, फालटन का निम्बालकर सरदार, अकालकोट का सरदार, जट का सरदार तथा वाई का शेख मीरा—इन ६ सरदारों ने छत्रपति के शासनाधीन रहना पसन्द किया तथा वे सतारा राज्य के अन्त तक अपने स्थानों में निरन्तर बने रहे।

४. **प्रतापसिंह की दुखद कथा**—इस छोटे-से राज्य का निर्माण शुद्ध सामयिक आवश्यकता के कारण हुआ था। यह राज्य सर्वथा एल्फिस्टन की कल्पना का परिणाम था। भारत और इंगलैण्ड के शासनों द्वारा विहित सामान्य नीति के विरुद्ध एल्फिस्टन ने इस राज्य का निर्माण किया था। इस प्रकार आरम्भ से ही ब्रिटिश अधिकारी इस नवीन राज्य को यथासम्भव शीघ्र नष्ट करना चाहते थे। प्रतापसिंह और उसकी माता द्वारा एल्फिस्टन से बाजीराव

के अत्याचार के विरुद्ध रक्षा की प्रार्थना पर उनको आश्वासन दिया गया था कि आपके स्वत्वों पर सहानुभूतिपूर्वक विचार किया जायेगा। फरवरी, १८१८ में बापू गोखले के वध के बाद वे अंग्रेजों के अधिकार में आ गये, तब उनसे स्थायी प्रबन्ध होने तक अल्प निर्वाह वृत्ति की प्रतिज्ञा की गयी। प्रतापसिंह की आयु उस समय २६ वर्ष की थी। वह अपने कार्यों का प्रबन्ध करने के लिए सर्वथा योग्य था। उसको प्रशासन की कला का प्रशिक्षण देने के लिए एक अधकचरे ब्रिटिश सैनिक को नियुक्त किया गया। इस प्रशिक्षण में ढाई वर्ष का समय लग गया तथा ५ अप्रैल, १८२२ को प्रशासन का अधिकार प्रताप-सिंह को प्राप्त हो गया। उस समय कैप्टिन ग्रांट ने अपने ही उत्तरदायित्व पर उसके कार्यों का प्रबन्ध किया। उसका निश्चित लक्ष्य ब्रिटिश हितों का विकास था। प्रतापसिंह की क्षमता के विषय में उसकी रिपोर्ट बहुत कुछ पक्षपातपूर्ण है। उस पर ब्रिटिश सत्ता के संगठन की अधीरता का रंग चढ़ा हुआ है।[५]

एक समकालीन मराठा साक्षी प्रतापसिंह के चरित्र के विषय में यह प्रमाण उपस्थित करता है—"उसकी बुद्धि बहुत कुशाग्र थी तथा वह असाधारण रूप से व्यवहारकुशल था। वह निपुण अश्वारोही तथा वीर योद्धा था। उसका हृदय शुद्ध तथा उदार था। साथ ही वह परम्परागत ज्ञान से सुपरिचित था। जिन व्यक्तियों के सम्पर्क में वह आता, उनके गुणों तथा अवगुणों को शीघ्र जान लेता था। वह अत्यन्त निष्पक्ष भाव से जटिल एवं कलहग्रस्त प्रश्नों का निर्णय कर देता था। वह प्रशासन का संचालन दृढ़ता एवं नियमपूर्वक करता था। उसका स्वभाव बदला लेने की अपेक्षा सदा क्षमा करने का था। अपने धार्मिक कृत्यों में वह सावधान था तथा दुखी-दरिद्र जनता के क्लेश दूर करने में उसको आनन्द प्राप्त होता था।[६] इस राजा के चरित्र तथा कार्य के विषय में इसी प्रकार के उद्धरण आरम्भ में उसके पास रहने वाले ब्रिटिश अधिकारियों ने भी लिखे हैं। १४ लाख वार्षिक की अखण्ड आय में से उसने अपने २० वर्ष के प्रशासन में ४० लाख रुपये केवल सार्वजनिक कल्याण पर व्यय किये।

उसको शनैः-शनैः ब्रिटिश विरोधी पक्षपात कैसे हो गया, यह रोचक प्रश्न है। इसी के कारण प्रतापसिंह का चरित्र बदनाम कर दिया गया है। अपनी किशोरावस्था में पेशवा का बन्दी रहते हुए उसने कोई अवगुण ग्रहण नहीं किया और सरल योद्धा के रूप में उसका विकास हुआ। वह अपने व्यवहार में उदार तथा स्पष्टवक्ता था। अपनी जाति और धर्म के नियमों के पालन

---

५ ये वृत्तान्त एल्फिस्टन के लेखों के भाग हैं, जिनका प्रकाशन इस समय सरकार द्वारा पी० आर० सी० माला, जिल्द १५ में हो रहा है।

६ शेडगाँव का क्रमिक इतिहास, पृ० १५६

में उसको बहुत निष्ठा थी। सर्वप्रथम जो कुछ उसके मन में आता, उसको प्रकट करने में वह कभी भय नहीं करता था। उसका यह लक्षण ब्रिटिश सत्ता के अधीन शासक वाली उसकी स्थिति के प्रतिकूल था। उसके आन्तरिक विचारों का यह संघर्ष हम उसके अपनी दिनचर्या में दिये लेखों में देख सकते हैं। कैप्टिन ग्राण्ट के परामर्शानुसार यह दिनचर्या वह प्रतिदिन नियमपूर्वक लिखता था। यह दिनचर्या इस समय पूना में पेशवा के दफ्तर में कई खण्डों में सुरक्षित है। इसमें उसने गवर्नरों तथा प्रसिद्ध ब्रिटिश अधिकारियों के साथ अपने वार्तालापों का वर्णन कहीं-कहीं दे दिया है। इस दिनचर्या से अपने छोटे भाई के प्रति उसकी दया तथा शिकार का शौक प्रकट होते हैं। अपने राज्य में उसने पाठशालाएँ खोलीं। इस प्रकार सतारा में उसके द्वारा सार्वजनिक शिक्षा का सर्वप्रथम आरम्भ हुआ। कैप्टिन ग्राण्ट ने १८२१ में अवकाश ग्रहण कर लिया, परन्तु प्रतापसिंह ने उसके साथ पत्र-व्यवहार द्वारा बहुत दिनों तक नियमित सम्पर्क जारी रखा। वह इंगलैण्ड से प्राय: दुष्प्राप्य वस्तुएँ तथा विदेशी निर्माण के अद्‌भुत पदार्थ मँगाता और उनके मूल्य का धन नियमपूर्वक भेज देता था। वह इंगलैण्ड की रॉयल एशियाटिक सोसाइटी का सदस्य बनाया गया। इस प्रकार उसको जीवन में स्वस्थ प्रवेश प्राप्त हो गया तथा भविष्य में उससे अधिक उन्नति की आशा हो चली थी। उसका सेनापति बाला साहेब उत्साही नवयुवक था। वह अपने स्वामी पर निष्ठा रखता था और उसके कार्यवाहक अधिकारी का कार्य करता था।

अगले रेजीडेण्ट कर्नल ब्रिग्स की इच्छा से प्रतापसिंह ने महाबलेश्वर के पठार तक दृढ़ तथा स्थायी सड़क बना दी। महाबलेश्वर उसके राज्य के अन्तर्गत था। यहाँ पर उसने यूरोपीय तथा भारतीय आगन्तुकों के लिए उपयुक्त ग्रीष्मकालीन निवास-स्थान स्थापित किया। यह सड़क बाद में महाद तथा पश्चिमी समुद्रतट तक बढ़ा दी गयी। महाबलेश्वर का पर्वतीय आश्रय-स्थान १८२७ में रचित विशेष समझौते द्वारा ब्रिटिश सरकार को दे दिया गया। पहाड़ी पर बाजार लगाया गया और इसका नाम माल्कम पेठ रखा गया। इसके बदले में प्रतापगढ़ का दुर्ग तथा शिवाजी द्वारा निर्मित वहाँ का भवानी मन्दिर प्रतापसिंह के अधिकार में दे दिये गये। इस समय महाबलेश्वर में दर्शकों को जो अनेक पहाड़ियाँ तथा उनकी चोटियाँ दिखायी पड़ती हैं, वे कई प्रसिद्ध ब्रिटिश सज्जनों के नामों का स्मरण कराती हैं। बम्बई के कई गवर्नर प्रतापसिंह से सतारा में मिले तथा उन्होंने नव-स्थापित शासन की स्वस्थ उन्नतशील प्रगति पर उसको बधाई दी। इंग्लैण्ड के गृहाधिकारियों ने उसकी सेवाओं की सराहना की तथा १८३५ में प्रशंसात्मक प्रमाण सहित रत्नजटित तलवार भेजी।

परन्तु इन सम्मान चिह्नों के भारत पहुँचने के पूर्व ही राजा तथा बम्बई सरकार के सम्बन्ध बिगड़ चुके थे, अतः ये वस्तुएँ रोक ली गयीं। इस परिवर्तन के स्पष्टीकरण की आवश्यकता है।

१८१९ की सन्धि के अनुसार प्रतापसिंह बाह्य जगत से कोई सम्पर्क नहीं रख सकता था। राजा को यह शर्त कष्टदायक मालूम हुई, क्योंकि इसके कारण वह अपने राज्य से बाहर न तो विवाह का प्रस्ताव कर सकता था और न अन्य व्यक्तियों से मिल-जुल ही सकता था। प्रथम चार रेज़ीडेण्टों—ग्रांट, ब्रिग्स, राबर्ट्सन तथा लाडविक—के शासनकाल शान्तिपूर्वक निर्विघ्न समाप्त हो गये परन्तु जब कर्नल ओवेन्स ने १८३७ में कार्यभार ग्रहण किया तो दोनों के बीच की स्वाभाविक मैत्री क्षीण होने लगी। रेज़ीडेण्ट का जासूसी भरा सन्देहशील आचरण राजा के लिए दुखदायी हो गया। साम्राज्यवादी महत्त्वा-कांक्षा की नयी लहर का प्रभाव बम्बई सरकार पर भी पड़ा। अब वह प्रतापसिंह को अनावश्यक शक्ति समझने लगी तथा उसका राज्य छीनने के उपाय ढूँढ़ने लगी। प्रतापसिंह सदृश गर्व तथा गौरवयुक्त पुरुष इस परिवर्तन को कैसे सहन कर सकता था। उस पर राजद्रोह का आरोप लगाया गया कि वह ब्रिटिश सरकार के उन्मूलन का प्रयास कर रहा है। ४ सितम्बर, १८३९ को वह राज्यच्युत कर दिया गया। उसे अपना आचरण स्पष्ट करने का अवसर भी नहीं दिया गया। इसके बाद वह बनारस भेज दिया गया। लम्बी स्थल-यात्रा में उस पर पहरा रखने वालों ने उसे तथा उसके परिवार को हृदय-विदारक यातनाएँ दीं। अपनी अयोग्यता के लिए बदनाम उसके छोटे भाई शाहजी अप्पा साहेब को राजा बना दिया गया। प्रतापसिंह बनारस में अपना कष्टप्रद जीवन १४ अक्तूबर, १८४७ अर्थात अपने देहान्त तक बिताता रहा। २ दिसम्बर, १८४४ को उसने गवर्नर जनरल लार्ड हार्डिंग्ज के पास प्रबल विरोध पत्र भेजा, जिसमें अपने साथ किये अन्यायपूर्ण व्यवहार का वर्णन किया गया था। यह पत्र भाषा तथा तर्क का दुर्लभ उदाहरण है। इसे प्रतापसिंह के कार्यकर्ता जार्ज टामसन ने तैयार किया था।

प्रतापसिंह के निस्सन्तान उत्तराधिकारी शाहजी का देहान्त ५ अप्रैल, १८४८ को हो गया तथा सतारा का अल्पजीवी राज्य ब्रिटिश राज्य में मिला दिया गया। प्राचीन होते हुए भी इस नवनिर्मित राज्य का सम्पूर्ण इतिहास भारत में ब्रिटिश नीति पर अद्भुत टीका है। सतारा का मिलाया जाना १८५७ के विद्रोह का प्रेरक कारण बन गया।

पेशवा परिवार में सबसे अधिक लम्बे जीवन अर्थात ७६ वर्ष की आयु का उपभोग बिठूर में पेशवा बाजीराव ने किया। घोंड़ो पन्त नाना साहेब उसका

दत्तक पुत्र था। अपने पिता की निर्वाहवृत्ति न मिलने पर उसने १८५७ में विद्रोही सिपाहियों का साथ दिया। इसी कारण वह ब्रिटिश भारतीय इतिहास में बदनाम हो गया। उसके बाद उसके परिवार का लोप हो गया।

बाजीराव के भाई चिमनाजी अप्पा को दो लाख रुपये वार्षिक की वृत्ति मिलती थी। अपने भाई के आत्मसमर्पण के बाद वह १८१६ के आरम्भ में बनारस चला गया। वहाँ ६ जून, १८३० को उसका देहान्त हो गया। उसके कोई सन्तान न थी। उसके पश्चात उसका वंश भी नष्ट हो गया। उसके आश्रित जनों में मोरोपन्त ताम्बे भी था, जिसकी पुत्री लक्ष्मीबाई का विवाह झाँसी के राजा गंगाधर पन्त से हुआ। उसने १८५७ के सिपाही विद्रोह में झाँसी की रानी के नाम से ख्याति प्राप्त की। वह १८ जून, १८५८ को ग्वालियर के समीप अंग्रेजों से युद्ध करती हुई मारी गयी।

बाजीराव के दत्तक भाई अमृतराव के वंशज इस समय भी (१६४८) जीवित हैं। केवल उन्हीं के कारण भारतीय इतिहास में स्थायी स्थान पाने वाले पेशवाओं के प्रसिद्ध वंश की स्मृति अब तक शेष है।

५. **मराठा पतन के कारण**—पूर्व पृष्ठों में मराठा राज्य की मुख्य कथा का वर्णन है—किस प्रकार इसका उदय हुआ? किस प्रकार इसका विस्तार हुआ तथा किस प्रकार शीघ्र ही इसका अन्त हो गया? भारत में मराठों का आकस्मिक उदय सदैव तन्मयता भरी रुचि का विषय रहा है तथा अनेक योग्य विद्वानों ने उन कारणों की व्याख्या करने में अथक परिश्रम किया है, जिनके द्वारा वह राज्य के अन्तिम अध्यायों में वर्णित दुखद अन्त को प्राप्त हुआ। उस समय के विचारकों के लिए भी यह कोई कम आश्चर्य की बात न थी कि शिवाजी की विलक्षण बुद्धि द्वारा निर्मित तथा प्रथम चार पेशवाओं द्वारा परिश्रमपूर्वक सुरक्षित यह विशाल भवन किस प्रकार इतनी सरलता से भूमिसात हो गया। उसके पतन पर प्रतीत होता है कि प्राचीन प्रतिभा, विवेक तथा वीरता आदि इस गुणसम्पन्न जाति से सहसा विदा हो गये थे। समय पर इस दुर्दशा की रोकथाम क्यों न हो सकी तथा भारत का स्वातन्त्र्य सुरक्षित क्यों न रखा जा सका? इस प्रकार के प्रश्नों से केवल मराठों का मन ही नहीं, अपितु अनेक भारतीय तथा विदेशी विचारकों का मन भी बहुत समय से आकुल है। अनेक विद्वानों ने उनका उत्तर दिया है। इस प्रकार के ऐतिहासिक तर्क के विषयों में सर्वसम्मत निर्णय की अपेक्षा नहीं की जा सकती।

मानव इतिहास की यह विचित्र तथा आश्चर्यजनक घटना है कि एक छोटी-सी पश्चिमी सत्ता का प्रवेश हजारों मील दूर से भारत में हो जाये तथा वह इस महाद्वीप को अधीन कर ले, जहाँ पर असीमित साधन-सम्पत्ति वाली

वीर सैनिक जातियों के निवास-स्थान हों। इसकी व्याख्यायें अनेक प्रकार के सिद्धान्त उपस्थित किये गये हैं। कुछ लेखकों ने एक मोहक सिद्धान्त का निर्देश किया है कि पश्चिमी यूरोप की जातियों के शारीरिक तथा मानसिक गठन में कोई ऐसा तत्त्व है जो उनको एशिया निवासी निरक्षर लोगों पर सुविधापूर्वक विजय प्राप्त करने की क्षमता देता है। आधुनिक काल में गोपाल हरि देशमुख, रानाडे, भण्डारकर, तिलक, प्रो० लिमये सदृश अनेक महाराष्ट्रीय विचारकों तथा लेखकों ने अपने-अपने ढंग से इस विचित्र घटना की व्याख्यार्थ प्रबल युक्तियाँ दी हैं। इनमें पक्षपात तथा अनुराग का पर्याप्त पुट मालूम होता है। मराठा इतिहास के दो प्रमुख विद्वानों—राजवाड़े तथा खरे—ने विशेष रूप से इस विषय पर बहुत कुछ लिखा है। खरे ने एन० सी० केलकर के ग्रन्थ "मराठे तथा इंगलिश" का विशाल परिचय लिखा है जो मराठा राज्य की नाश शताब्दी के स्मरणार्थ १९१८ में प्रकाशित हुआ। खरे ने अपने लेख में मराठा चरित की जन्मजात निर्बलताओं तथा न्यूनताओं की तीव्र आलोचना की है। उसने उदाहरण भी उपस्थित किये हैं। वह कहता है—(१) मराठों में कोई राष्ट्रीय भावना न थी। (२) आन्तरिक ईर्ष्या तथा स्वार्थी विश्वासघात ने जनहित पर विजय प्राप्त कर ली। (३) व्यक्तिगत रूप से मराठे चतुर तथा वीर थे, परन्तु उनमें राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य के लिए आवश्यक एकात्मभाव का सर्वथा अभाव था। (४) अन्वेषण तथा उन्नति की वैज्ञानिक मनोवृत्ति का सर्वथा अभाव था। (५) उन्होंने रक्षा के मुख्य साधन तोपखाने की उन्नति की उपेक्षा की। (६) सैनिक-सेवा के लिए वेतन के बदले में जागीर देने की हानिकारक प्रणाली विनाशक सिद्ध हुई। (७) पेशवा माधवराव प्रथम की मृत्यु के बाद महाराष्ट्र में कोई योग्य नेता प्रकट नहीं हुआ। (८) एक जाति के रूप में मराठों में अनुशासन तथा विधिपूर्वक पूर्व-रचना के गुणों का शोचनीय अभाव है। (९) अंग्रेज कूटनीति की कला में सिद्धहस्त तथा पूर्ण अधिकारी थे। इसमें मराठों के साथ उनकी कोई तुलना नहीं हो सकती।

यह सम्भव नहीं है कि मानव की उद्योगशीलता या मानव मस्तिष्क की कार्यक्षमता का माप या ज्ञान उसी यथार्थता से प्राप्त किया जा सके जो प्राकृतिक विज्ञान में अपेक्षित होती है। अतः किसी व्यक्ति विशेष की चातुर्य-कारिता या व्यक्तिगत अनुभव के समर्थन में इस प्रकार के अनेक सामान्य कारण प्रस्तुत किये जा सकते हैं। हम सुविधापूर्वक उनको मान सकते हैं तथा उनका बल स्वीकार कर सकते हैं। कई गत शताब्दियों से पूर्वी मस्तिष्क की सामान्य प्रवृत्ति जीवन में विज्ञान द्वारा मार्गदर्शन को स्वीकार करने से इनकार करती रही है, किन्तु साधारण पश्चिम निवासी का यह विशेष गुण है। एशिया

के शासकों को गणतन्त्रीय या संस्कारी समाज के नियमों से कभी भी कोई प्रेरणा प्राप्त नहीं हुई। वे अपने व्यवहार में सर्वदा स्वतन्त्र रहे। पूर्वी देशों में राष्ट्र का भाग्य केवल व्यक्ति ही बनाते-बिगाड़ते थे तथा व्यक्तियों में साधारणत: वे निर्बलताएँ पायी जाती हैं, जिनकी ओर खरे ने अपने विद्वत्तापूर्ण विश्लेषण में संकेत किया है। इस सूची में हम कुछ और निर्बलताओं को भी जोड़ सकते हैं। पूर्वी राजनीति का एक भयानक दोष यहाँ पर पितृ-परम्परागत सेवा तथा व्यवसाय का विनाशक नियम स्वीकार किया जाना है। यह नियम हमारे व्यक्तिगत जीवन को नियन्त्रित करता है। पितृ-परम्परागत स्वत्व योग्यता के विचार के बिना समस्त देश में दुर्निवार्य हो गये तथा शक्तिशाली शासक भी उनका तिरस्कार नहीं कर सके थे। शनैः-शनै इस प्रथा के कारण व्यक्तिगत क्षमता तथा उपक्रम का ह्रास हो गया और भयानक सामाजिक पतन आ धमका। यदि किसी पिता ने अपने को योग्य व्यक्ति सिद्ध कर दिया तो यह आवश्यक नहीं है कि उसका पुत्र या पौत्र भी उतना ही योग्य निपुण सिद्ध होगा। ४० दिन के शिशु माधवराव द्वितीय को पेशवा के पद पर बैठा दिये जाने का परिणाम शोचनीय ही हुआ। वास्तव में मराठा पतन का यह एक प्रबल कारण है।

किन्तु राजवाड़े इन साधारण कारणों में से अधिकांश को अस्वीकार करते हैं। वह बलपूर्वक कहते है कि वैज्ञानिक मनोवृत्ति का अभाव ही मराठा पतन का मुख्य कारण है। इस अभाव के कारण मराठे अपने पश्चिमी प्रतिद्वन्द्वियों पर सफलता प्राप्त करने में समर्थ नहीं हो सके जो विज्ञान तथा अनुशासन में प्रशिक्षित थे। हम राजवाड़े के स्वाभाविक ढग से लिखित इस प्रकार के विवरण से पूर्ण सहमत हैं—"जब १८१८ के आरम्भिक मासों में पेशवा बाजीराव द्वितीय जनरल स्मिथ तथा अन्य कमाण्डरों के अधीन ब्रिटिश दलों के सम्मुख भागने में व्यस्त था, उस समय यदि पेशवा का साथ देने वाले किसी मराठा सवार से यह प्रश्न किया जाता कि वह क्यों भाग रहा है, क्या उस पर कोई विशेष भय छा गया है, तो वह निश्चय ही बिना अधिक विचार के उत्तर देता कि उसको दो टाँगों वाले गोरे का कोई भय नहीं है। वह तो उसके हाथ में लगी लम्बी मार करने वाली बन्दूक से डरता है। युद्ध-संचालन में प्राप्त उसकी वैज्ञानिक सुसज्जा से भी डरने की बात कहता।" मराठा राज्य के पतन के मुख्य कारण के सम्बन्ध में राजवाड़े का विचार संक्षेप में इस प्रकार है। इसको पश्चिम की वैज्ञानिक उन्नति से हार खानी पड़ी। इसका आरम्भ कोलम्बस के साथ हुआ तथा इसके द्वारा पुर्तगालियों का जैसा छोटा राष्ट्र भी पूर्वी देशों में अपना साम्राज्य स्थापित करने में समर्थ हो गया। आर्थर वेलेजली की शक्ति-

शाली बन्दूकों ने ही असाई तथा अड़गाँव के रणक्षेत्रों में शिन्दे के दलों की शक्ति चूर्ण-चूर्ण कर दी। ब्रिटिश तोपखाने ने ही यशवन्तराव होल्कर की शक्ति को नष्ट कर दिया था। इसी शक्तिशाली अस्त्र से क्लाइव ने तुलाजी आंग्रे को परास्त कर दिया था। यदि बाजीराव द्वितीय के पास संगठित तोपखाना होता तो वह अपने समस्त दोषों के होते हुए भी अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध में इस सरलता से परास्त नहीं हो जाता। संक्षेप में राष्ट्र की स्वाधीनता तथा स्वातन्त्र्य को केवल निपुण सेनाएँ ही सुरक्षित रख सकती हैं—अर्थात् वे सेनाएँ जिनके सैनिक सुशिक्षित हैं, जो नवीनतम अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित हैं तथा जिनके सेनापति योग्य हैं। राष्ट्र के रूप में मराठों में युद्ध के इस परमावश्यक आधार का अभाव था। इसकी अपेक्षा उनके समस्त अन्य दोष नगण्य हैं। रानाडे लिखते हैं—"यदि इस नूतन नीति (शिन्दे के प्रशिक्षित दल) के साथ-साथ सैनिक कौशल के आवश्यक ज्ञान तथा उच्च अस्त्रों के निर्माण और उपयोग में वैज्ञानिक पद्धति भी प्राप्त की जाती तो यूरोपीय अधिकारियों द्वारा छोड़े जाने पर देशी दलों को निश्चेष्ट कर देने वाली निराश्रयता उत्पन्न न होती। परन्तु मालूम होता है कि इस दिशा में कोई ध्यान नहीं दिया गया तथा वे युद्धक्षेत्र में अभूतपूर्व रूप से असहाय हो गये।"[७]

वैज्ञानिक उन्नति के इस विषय पर विचार करते समय यह बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए कि आवश्यक ज्ञान रखने वाले दि बायने तथा पेरों सदृश थोड़े-से सेनानी ही सेना को युद्ध में निपुण बनाने के लिए पर्याप्त नहीं हैं। वैज्ञानिक भाव तथा सुसज्जा सेना के प्रत्येक भाग तथा समाज के जनसमुदाय में व्याप्त होने चाहिए—समस्त जनता उपयुक्त अस्त्रों के प्रयोग में योग्य हो तथा जनसाधारण सैनिक कौशल के पालनार्थ अनुशासन और विधिपूर्वक संगठन में प्रशिक्षित हों। इस विषय में विज्ञान की जो सामान्य उन्नति यूरोप में हुई थी, उसका लेशमात्र प्रभाव भी एशिया निवासियों पर नहीं पड़ा। साधारण भारतीय किसी भी यूरोप-निवासी के सम्मुख सर्वथा असहाय था। भारतीय समाज में ज्ञान तथा शिक्षा का सामान्य स्तर भी शोक का विषय था—वह यूरोपीय आक्रमण के विरुद्ध भारत की रक्षा के लिए आवश्यक स्तर से बहुत नीचे था। अपने दृष्टिकोण में भारतीय मस्तिष्क अति आध्यात्मिक हो गया था।

इस सम्बन्ध में हम एक अन्य तत्त्व की उपेक्षा नहीं कर सकते। वह तत्त्व निस्सन्देह जाति-पाँति की परम्परागत व्यवस्था में निहित संकीर्ण कट्टरता एवं जातीय गर्व था। बाद में पूना सरकार की गतिविधि में यह प्रबल हो गया

७ विविध लेख, पृ० ३५४। प्रो० लिमये का भी यही विचार है।

था। इसके ब्राह्मण शासकों ने प्रतिक्रियावादी शक्तियों को प्रेरणा दी तथा समाज के पुनरुज्जीवन के लिए सुधारों का वीरतापूर्वक समर्थन करने के स्थान पर जीर्ण-शीर्ण प्रथाओं को प्रोत्साहन दिया। इस दोष के कारण अलग होने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो गयी तथा अनेक मराठा सरदार राज्य की सेवार्थ सामान्य संकट के समय एक-दूसरे का साथ न दे सके। १८वीं शताब्दी के अन्त तथा १९वीं शताब्दी के आरम्भ में मराठा राज्य के भाग्य में निस्सन्देह एक विनाशक संगठन घटित हुआ—जब पूना का शासन दो अपक्व दुष्ट नवयुवकों—पेशवा बाजीराव द्वितीय तथा दौलतराव—के अधिकार में आ गया। वे दोनों समान रूप से अयोग्य थे। युद्ध तथा कूटनीति के क्षेत्रों में सहसा उनका पाला ब्रिटिश क्षमता की तेजस्विता से पड़ा। उस समय के ब्रिटिश शासकों की सूची-मात्र पर ध्यान देने से इसका हम सुविधापूर्वक अनुमान कर सकते हैं।[८] आंग्ल भारतीय इतिहास में भी इस प्रकार के प्रतिभावान पुरुषों का समूह अपवादस्वरूप है, जैसा कि १८वीं तथा १९वीं शताब्दियों के मिलन समय पर यह समूह उपस्थित हो गया था। यदि इस प्रकार के विरोधियों से टक्कर होने पर दोनों मराठा नवयुवक खड़े रह सकने के लिए अति दुर्बल सिद्ध हुए तो क्या हमको आश्चर्य करना चाहिए? इस सम्बन्ध में राजवाड़े आगे लिखते हैं—"अपने जन्म से ही इंगलिशमैन राजनीतिप्राणा है। उस पर सज्जनता की कलई चढ़ी हुई है, परन्तु अपने हृदय में वह पिशाच है। जहाँ पर राजनीति आ जाती है, वह स्वयं अपने पिता का भी आदर न करेगा। तब वह किसी अन्य व्यक्ति का आदर कैसे कर सकता है? अतः कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि आध्यात्मिक महत्ता के अपने उच्च गर्व सहित हम इंगलिशमैन के सामने अल्प-काल में ही परास्त हो गये।"

मनुष्य का भाग्य बहुधा इस प्रकार निश्चित हो जाता है, जिसके कारण की खोज कारण-कार्य के सिद्धान्तानुसार सदैव नहीं की जा सकती। उसके विकास से हमें दैवयोग अथवा अदृष्ट का प्रपंच मानना पड़ता है। अपने महान ग्रन्थ 'यूरोप का इतिहास' में फिशर लिखता है—"इतिहास के पृष्ठ पर उन्नति का तथ्य स्पष्ट तथा विशाल रूप में लिखा है, परन्तु उन्नति प्रकृति का नियम नहीं है। एक पीढ़ी द्वारा प्राप्त उन्नति दूसरी पीढ़ी द्वारा नष्ट की जा सकती है।" उसके विचार से इतिहास को वे तत्त्व ध्यान में रखने पड़ते हैं, जिनको "दैवयोग" तथा "अदृष्ट" शब्दों द्वारा व्यक्त किया गया है। मराठा इतिहास में इस प्रकार के अनेक तत्त्व हैं। उसके अनेक महापुरुषों की असामयिक

---

८ अध्याय १२, भाग ३ का अन्त, पृ० ३६०

तथा असम्भावित मृत्यु हो गयी—उदाहरणार्थ शिवाजी, बाजीराव प्रथम, माधव-राव प्रथम तथा अल्पवयस्क होनहार बालक मन्दभाग्य पेशवा माधवराव द्वितीय। जिस समय ये मृत्युएँ हुईं, उनसे निस्सन्देह राज्य को क्षति पहुँची तथा हमारे भावी इतिहास के क्रम में मौलिक परिवर्तन हो गया। पाठक को अपने मन में उन स्थितियों का ध्यान करना चाहिए, जिनमें इन महापुरुषों की मृत्युएँ हुई। ये समस्त मृत्युएँ असामयिक तथा सर्वथा असम्भावित मृत्युएँ थीं। शिवाजी की मृत्यु के कारण ही मुगल सम्राट महाराष्ट्र पर आक्रमण कर सका। बाजीराव की मृत्यु से निजाम निश्चित सर्वनाश से बच गया तथा उसका वंश दक्षिण में स्थायी हो गया। पेशवा माधवराव प्रथम की मृत्यु पर आन्तरिक तथा विदेशी दोनों प्रकार की छिपी हुई विघटनकारी शक्तियों को महाराष्ट्र की भूमि पर खुली छूट मिल गयी और उन्होंने नाश की गति तीव्र कर दी। १७९५ में माधवराव द्वितीय की मृत्यु के कारण मराठा नेतृत्व पर दुष्ट-बुद्धि बाजीराव द्वितीय का अधिकार हो गया। यदि यह घटना घटित न हुई होती तो मराठा राज्य का स्वतन्त्र जीवन बहुत दिनों तक बने रहने की सभी सम्भावनाएँ थीं। यह बात दूसरी है कि वे सदा-सर्वदा के लिए न हों। यदि इतिहास से मानवता को कोई शिक्षा प्राप्त करनी है तो इन सम्भावनाओं पर अवश्य ध्यान देना होगा। एल्फिस्टन लिखता है—"अंग्रेजों के सौभाग्य से न तो बाजीराव में और न शिन्दे में यह बल तथा साहस था कि वे संकटग्रस्त समय पर वीरता-पूर्वक प्रतिरोध करते। यदि उस समय पेशवा के स्थान पर उससे अधिक वीर कोई अन्य होता तो यह कल्पना करना कठिन नहीं है कि अंग्रेजों की क्या दशा हुई होती। सफलतापूर्वक युद्ध करने के विपुल साधन—सेनाएँ, धन, अस्त्र-शस्त्र, गोला-बारूद—मराठों के पास थे। प्रत्येक वस्तु उपलब्ध थी, केवल नेता का अभाव था। दक्षिण में बाजीराव तथा उत्तर में दौलतराव दोनों ही अपने राष्ट्र के प्रति देशद्रोही थे। अतः वे युद्ध में हार गये।[६]

६. **संस्मरण**—१८१८ में मराठा शासन ने अपना स्थान ब्रिटिश आधिपत्य को दे दिया। उस समय से अब तक (१९४८) १३० गर्मियाँ व्यतीत हो चुकी हैं। भारत के इतिहास में यह असामान्य घटना महत्त्व की हुई। अब लगभग डेढ़ शताब्दी के बाद इस देश ने ब्रिटिश शासकों से अपना स्वातन्त्र्य पुनः प्राप्त कर लिया है। यह स्पष्ट है कि इस विदेशी शासन ने भारतीय जीवन में विशाल परिवर्तन उपस्थित कर दिये हैं। इसका मुख्य कारण यह तथ्य ही है कि इसने संसार की दो विचित्र जातियों के बीच परस्पर

---

६ कोलब्रुक कृत जीवनी, जिल्द १, पृ० ३७२

प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित कर दिया है। पूर्ववर्ती मराठा शासनकाल की स्मृति भी धुँधली हो गयी है, जिसके इतिहास का वर्णन अब तक किया गया है। इस इतिहास से हमको क्या शिक्षा मिलती है ?

जीवन सतत संघर्ष है—मनुष्य का मनुष्य के विरुद्ध, मनुष्य का अपने वातावरण के विरुद्ध संघर्ष जो शारीरिक, बौद्धिक तथा नैतिक धरातलों पर हुआ करता है, इससे नवीन रूप, नवविचार तथा अज्ञातपूर्व समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। वैयक्तिक तथा राष्ट्रीय जीवन में विनाश तथा निर्माण साथ-साथ विद्यमान रहते हैं। जीवन की प्रगति विकास के नियमानुसार होती है। हम कभी निष्क्रिय नहीं रहते। इस विचार दृष्टि से किसी को मराठा शासन के लोप पर न तो शोक होना चाहिए, न वर्तमान विकास पर अनुचित रूप से हर्ष। हमारी मुक्ति हमारे ही हाथों में है।

मराठे छोटे-छोटे ग्रामीण पाटिलों तथा कृषकों से किस प्रकार अपने देश के स्वामी तथा शासक बन गये, इस ग्रन्थ का ध्येय इसी प्रश्न की व्याख्या करना है। शिवाजी के नेतृत्व में मराठों का उदय तथा पेशवाओं के नेतृत्व में उनका प्रसार—इनका सम्बन्ध केवल दो विशेष परिवारों की प्रवृत्तियों से है। उनके प्रतिनिधियों का इतिहास के पृष्ठ से लोप हो गया है, अतः इस समय पक्षपातहीन पुनरावलोकन तथा सहानुभूति के आलोक में उनके प्रति ठीक न्याय किया जा सकता है। इन दोनों परिवारों ने अपनी बुद्धि के अनुसार जो कुछ भी बन सका वह अपने राष्ट्र के लिए किया।

हिन्दू जीवन के स्वाभाविक आध्यात्मिक रूप तथा नम्र एवं उदार चरित्र का मुसलमानों के अमानुषी दुष्ट व्यवहार, उनकी लूटमार, लोभ, विनाश तथा बलपूर्वक धर्म-परिवर्तन से घोर विरोध है। निजाम आसफजाह को पालखेड़ से सम्मानपूर्वक भाग जाने दिया गया। पेशवा माधवराव प्रथम ने अपने चाचा की हत्या नहीं की। ऐसा करने से अनेक भावी संकटों से राज्य की रक्षा हो जाती। तुलाजी आंग्रे का निर्दयतापूर्वक वध न करके उस पर ३० वर्ष तक मृत्युपर्यन्त कठोर पहरा लगा रहा। हमको मानना पड़ेगा कि अत्यन्त अल्प अवधि वाले मराठा शासन पर मुगल शासनकाल के समान धब्बे नहीं लगे हैं—उदाहरणार्थ, अपने ही सगे भाई के हाथ से दारा शिकोह की निर्दय हत्या या अलीवर्दीखाँ द्वारा २१ मराठा सरदारों की पैशाचिक हत्या या शाहआलम द्वितीय का अपने ही सेवक तथा सहधर्मी गुलाम कादिर द्वारा नीचे गिराया जाना तथा अन्धा किया जाना। सब मिलाकर मराठा शासन सदय तथा कल्याणकारक था। वह अकारण अत्याचार से मुक्त था तथा उसको लोकहित का ध्यान था। शुद्ध गृहकलह के कारण सम्पन्न पेशवा

नारायणराव की हत्या को छोड़कर उनसे कोई ऐसा पाप नहीं हुआ, जिसके विषय में हम कह सकें कि यह पाप मराठा इतिहास के पन्नों को कलंकित करता है। पेशवाओं के पराक्रम का सर रिचर्ड टेम्पुल निम्नलिखित प्रमाण उपस्थित करता है—"उच्चतम तथा अत्यन्त सुसंस्कृत जाति के ब्राह्मण पेशवा परिवार ने एक राजवंश स्थापित किया तथा सौ वर्ष से अधिक समय तक इसको सुरक्षित रखा। इस परिवार ने भारत के अशान्त भाग्य तथा संसार के एक अत्यन्त विपुल जनसंख्यक साम्राज्य पर शासन किया। भारत के विविधता-पूर्ण इतिहास में यह ब्राह्मण राजवंश शायद अपूर्व तथा विचित्र है। संसार की किसी अन्य जाति की अपेक्षा ब्राह्मणों ने अपनी रक्तशुद्धि को सबसे अधिक सुरक्षित रखा। अतः उनसे आशा थी कि राजत्व को प्राप्त करने पर वे राजाओं के रूप में किसी विशेष क्षमता का परिचय देंगे। प्रथन चार पेशवाओं ने इस आशा को पूर्ण कर दिया। भारत के हिन्दू राजाओं के अनेक वंशों में एक ने भी पेशवाओं के समान योग्य शासकों की वंश-परम्परा उत्पन्न नहीं की। इतिहास का विद्यार्थी तुरन्त प्रश्न करेगा—"क्या भारत के मुसलमान राजवंशों में कोई भी वंश ऐसा है, जिसने पेशवाओं के समान योग्य चार राजाओं को जन्म दिया हो? केवल एक वंश में—अर्थात महान मुगल वंश में—इनके समानान्तर चार व्यक्ति मिल सकते हैं। अकबर से औरंगजेब तक चारों मुगल सम्राट इन चार पेशवाओं के समान ही महान थे।"[१०]

यद्यपि पेशवाओं का शासनकाल स्वल्प था, तथापि उन्होंने भारत के इस विचित्र महाद्वीप में राष्ट्रीय शासन का अत्यन्त प्रेरक आदर्श सदा-सर्वदा के लिए उपस्थित कर दिया। इस प्रकार हमारी आधुनिक राजनीति के लिए भी मराठा इतिहास शिक्षाओं से परिपूर्ण है। मराठों को अपनी फूट का दण्ड सहन करना पड़ा। यदि भविष्य में भारतीय राष्ट्र को अपना सम्मान उन्नत रखना है तो यह कार्य केवल इसके विभिन्न तत्त्वों में हार्दिक ऐक्य बना रहने से ही हो सकता है। अपने मुस्लिम पूर्वाधिकारियों की तुलना में मराठे प्रशा-सन कला में सामान्यतः अधिक निपुण तथा चतुर सिद्ध हुए। परन्तु ब्रिटिश लोग मराठों की अपेक्षा निश्चित रूप से अधिक बढ़-चढ़कर थे। अतः उन्होंने सरलतापूर्वक मराठों का स्थान ग्रहण कर लिया। उनका उदय बहुत मन्द गति से हुआ हो, यह बात दूसरी है। मुगल सम्राट—कम से कम प्रथम ६—वास्तव में योग्य पुरुष थे, परन्तु वे भी इस आरोप से बच नहीं सकते कि उन्होंने इस विशाल महाद्वीप की समुद्री रक्षा समस्या के प्रति अपराधपूर्ण

उपेक्षा की। जब बाबर ने दिल्ली में अपना ध्वज लहराया, उसके कुछ ही वर्ष पहले पुर्तगालियों ने गोआ पर अधिकार कर लिया था और अपने पैर स्थायी रूप से जमा लिये थे। सम्राटों को इस विषय पर अवश्य विचार करना था कि इस छोटी-सी विदेशी टोली ने महान सफलता किस प्रकार प्राप्त कर ली। एक शताब्दी के भी बाद अंग्रेजों ने मद्रास में अपना उपनिवेश स्थापित किया तथा १६३९ में सेण्ट जार्ज तथा सेण्ट डेविड के नामों पर प्रसिद्ध दो गढ़ बना लिये। यह घटना शक्तिशाली शासक शाहजहाँ के समय की है। जब शाहजहाँ के उत्तराधिकारी औरंगजेब ने आगरा में अपने समक्ष शिवाजी को झुका दिया था, तभी अंग्रेजों ने बम्बई को प्राप्त कर लिया। उन्होंने १६९९ के लगभग कलकत्ता में फोर्ट विलियम नामक गढ़ बना लिया जब यह सुयोग्य सम्राट बंगाल पर शासन करता था।

इन तिथियों को ध्यान में रखकर आप देखें कि समकालीन राजनीति में अज्ञात शासक शिवाजी ने अपने ढंग से किस प्रकार कार्य किया। १७वीं शताब्दी के सप्तक दशक के आरम्भ में जब औरंगजेब दिल्ली में अपनी युवावस्था में था तभी शिवाजी ने कल्याण से विनगोर्ला तक पश्चिम तट के कई चक्कर लगाये (१६६०-१६६४) और समुद्री रक्षा की आवश्यकता समझकर विजयदुर्ग, मलवन (सिन्धुदुर्ग) सुवर्णदुर्ग तथा कोलाबा में दृढ़ जलदुर्ग स्थापित किये। इनमें पोतप्रांगण तथा आयुधागार भी थे। औरंगजेब ने स्थल पर शिवाजी के विरुद्ध जोरदार कार्रवाई की, परन्तु विद्रोही की समुद्रतटवर्ती प्रवृत्तियाँ उसके ध्यान में न आयीं, क्योंकि सम्राट को केवल सूरत से मक्का तक तथा मक्का से सूरत तक मुसलमान यात्रियों के सुरक्षापूर्वक पहुँचने भर की चिन्ता थी। एक बार औरंगजेब की झड़प अंग्रेजों से भी हुई थी, परन्तु उनकी समुद्रतटवर्ती अतिक्रमणात्मक प्रवृत्तियों का दमन करने का उसने कोई यत्न नहीं किया।

यदि बुद्धिमान औरंगजेब की दृष्टि ऐसी थी तो उत्तर मुगलों के ह्रासोन्मुख शासन पर आश्चर्य करने की किसी को क्या आवश्यकता है? खान दौरां, कमरुद्दीनखाँ, सआदतखाँ, सबने पश्चिम समुद्रतट पर मराठा प्रवृत्तियों की उपेक्षा की, जहाँ बहुत समय तक आंग्रे परिवार त्रास का कारण बना रहा। पेशवा बसई की विजय का अनुसरण न करने के कारण निन्दा का पात्र अवश्य है। बसई पर पुर्तगालियों का अधिकार था। मराठा राजनीतिज्ञ समीपवर्ती क्षेत्रों की धार्मिक स्वाधीनता की रक्षा करते थे, परन्तु उन्होंने समुद्री आयुधागारों तथा पोतागारों को भी उन्नत करने की ओर ध्यान नहीं दिया, जहाँ युद्धपोतों का निर्माण किया जा सकता। ये स्थान पहले से विद्यमान थे।

नवीन मराठों शासकों का कार्य उनको उन्नत करना था। मराठे अपनी तोपें तथा बन्दूकें प्रायः अंग्रेजों से मोल लेते थे। अंग्रेज निरर्थक जीर्ण-शीर्ण वस्तुओं को बेचकर भारी दाम ले लेते थे। भारत की समुद्री रक्षा का प्रश्न अभी तक विचाराधीन है, क्योंकि भारत का विदेशी व्यापार इसी पर निर्भर है। अतः इस समस्या की प्राचीन कहानी से हमको अत्यन्त बहुमूल्य शिक्षाएँ प्राप्त हो सकती हैं। सैनिक-शक्ति के बल पर ही राज्य का शासन किया जाता है, यह प्राचीन कहावत स्वाधीनता की रक्षा के लिए स्थायी महत्त्व रखती है।

"मनुष्य की अपनी स्थिति स्वयं उसकी बनायी हुई है तथा मनुष्य की स्थिति वही होगी जो वह बनायेगा।" यह स्पष्ट सत्य समस्त इतिहास का सार है। महाराष्ट्र निवासी न्यायाधीश रानाडे ने ह्रासोन्मुख मराठा शासन के इस परिवर्तन का लगभग दैवी विधान के रूप में उत्साहपूर्वक स्वागत किया। वह अपने देश के परमभक्त थे तथा ब्रिटिश विजेताओं द्वारा भारत में प्रचारित नवीन व्यवस्था के तेजस्वी परिणाम थे। वे लिखते हैं—"वह केवल आकस्मिक घटना का फल नहीं हो सकता कि इस देश का भाग्य एक ऐसे राष्ट्र द्वारा मार्गदर्शन के सुपुर्द किया गया है जो अपने स्वभाव से शक्ति-सम्पन्न है, जबकि हम स्वभावतः निर्बल हैं, जिसका जीवन सम्बन्धी विचार आशामय है, जिसकी संगठनात्मक शक्तियों का कभी भी अतिक्रमण नहीं हुआ है। तब तक यह धारणा सुविधापूर्वक नहीं बनायी जा सकती कि भारत में निवास करने वाले इस प्रकार के विशाल जनसमुदाय, विदेशी प्रभुत्व के प्रभाव तथा निग्रह में शताब्दियों तक बने रहें, जब तक ईश्वर के विधान में यह अपेक्षा न हो कि जनता के चरित्र तथा शक्ति के निर्माण में उनके (अंग्रेजों) द्वारा उन दिशाओं में स्थायी कल्याण हो सके, जिनमें भारतीय जनता सर्वथा असमर्थ है।" महाराष्ट्र का सवा सौ वर्ष के ब्रिटिश प्रभुत्व का इतिहास रानाडे के आशावाद को सर्वथा न्यायसंगत सिद्ध करता है, चाहे हमको इसका कितना ही शौक क्यों न हो कि शिवाजी की प्रतिभा द्वारा निर्मित भवन इस प्रकार शीघ्रतापूर्वक ध्वस्त हो गया।

आधुनिक समय के एक अन्य महान विद्वान सर जदुनाथ सरकार ने भी हाल में इसी विचार को भिन्न रूप से प्रकट किया। मराठों के नवीन इतिहास के इस अन्तिम खण्ड का नाम रखा गया है—"महाराष्ट्र में सूर्यास्त"। सर जदुनाथ को इस नाम पर आपत्ति है। वह इसको "नवप्रभात का आगमन" कहते हैं। उनका तर्क यह है—"तथाकथित सूर्यास्त उस राज्य तथा समाज का हुआ जो अन्दर तक सड़ गया था। यदि १८०२ में अंग्रेज हस्तक्षेप न

करते तो प्रकृति अवश्य इसको नष्ट कर देती। अपने भूतकाल पर शोक मत करो, क्योंकि वह मर चुका है और कभी वापस आने वाला नहीं है। आगे देखो तथा वर्तमान अवसर से लाभ उठाओ। विश्वोन्नति तथा विश्व-विचार की तीव्रगति से प्रवाहित आधुनिक धारा में प्रवेश करो। जब हम राग रहित होकर दूरदर्शितापूर्वक विचार करते हैं तो मराठा इतिहास हमें यही शिक्षा देता है।"

इस प्रकार अपने भूतकाल पर विचार करने के बाद हमको साहसपूर्वक नवीन कार्यों के लिए तैयार हो जाना चाहिए। आज के स्वतन्त्र भारत में ये कार्य हमारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। यह कहकर मैं अपने राष्ट्र के इतिहास के जीवनव्यापी अध्ययन को समाप्त करता हूँ।